# भारतमें गाय

[ दो खंडोंमें ]

पहला खंड

## नस्ल-संवर्धन—गव्य-धन्धा

लेखक

श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्त

भाषान्तरकार

श्रीरमावल्लभ चतुर्वेदी






खादी प्रतिष्ठान

१५, कॉलेज स्क्वायर, कलकत्ता

प्रकाशक
श्रीहेमप्रभा देवी,
खादी प्रतिष्ठान,
१५, कॉलेज स्क्वायर,
कलकत्ता।

# भारतमें गाय

पहला खंड — नस्ल-संवर्धन—गव्य-धन्धा।

दूसरा खंड — गायका शरीर—उसके रोग और चिकित्सा।

प्रथम संस्करण—अक्टूबर १९४९—३०००

मूल्य :—दोनों खंड १३)

मुद्रक
श्रीचारुभूषण चौधुरी,
खादी प्रतिष्ठान प्रेस,
सोदपुर, २४ परगना।

# प्राक्कथन*

श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त स्वर्गीय आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायके प्रथम और सर्वश्रेष्ठ छात्रोंमें एक हैं। वह एक ही पुस्तकमें गाय सम्बन्धी सभी प्राप्त साहित्यका संकलन करनेके अधिकारी हैं। गाय उत्कर्षकी जननी कही गयी है, यह यथार्थ है। लेखकने पढ़ा बहुत है और प्रसंगानुसार उन्हें अपनी पोथीमें उद्धृत किया है। पढ़े लिखे लोग भी मानते हैं कि, भारतके ढोर देश पर भार हैं और उसकी उपज यहाँकी प्रजासे बँटा लेते हैं जिससे प्रजाकी हानि होती है। असरदार युक्तियोंसे लेखकने यह भ्रम दूर किया है। उन्होंने गायकी उपयोगिता दिखायी है कि, वह दूध देनेवाली, भारवाही बैल पैदा करनेवाली, खेतोंको खाद देनेवाली और मरनेके बाद अपनी हड्डी और चमड़ा देनेवाली है। उन्होंने भारतके खेतकी जुताईके लिये ढोरको इन्जिनसे श्रेष्ठ सिद्ध किया है। उन्होंने ढोर और अन्य प्राणी, धरती और मनुष्यका अविच्छिन्न और अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध सिद्ध किया है। अन्तमें उन्होंने सिद्ध किया है कि गाय भैंससे श्रेष्ठ है। वह इसलिये नहीं कि भैंस काट डाली जाय या भूखों मार डाली जाय, बल्कि इसलिये कि, आज जो गायकी उपेक्षा करके भैंसकी पीठ ठोंकी जा रही है, वह न हो। आज अज्ञानके कारण गाय अभाव पैदा करनेवाली हो गयी है, इसके बदले वह बहुप्रदा कैसे हो और आहारके लिये गोवध करना धनकी बर्बादी है यह जो जानना चाहें उनसे और गोभक्तोंसे इस पोथीके पढ़नेकी सिफारिश करता हूँ।

पढ़नेवाले यह जान चकित होंगे कि लेखकने अपने हालके कारावासमें यह कुल लिखा है।

महाबालेश्वर,<br>
२० मई, १९४५

मो० क० गान्धी

*अंग्रेजीसे अनूदित।

# भूमिका

[ अंग्रेजी संस्करणसे अनूदित ]

"भारतमें गाय" अलीपुर सेन्ट्रल जेलमें लिखी गयी थी। यह जेल मेरा पुराना घर है। १९४२ में मैं जैसे ही जेलमें दाखिल हुआ, जेलरने मुझसे गोशालाका भार लेनेका आग्रह किया। यहाँ मैं पहले भी काम कर चुका था। शुरूमें ६ महीने, मैं गोशालाका काम करता रहा और बचा समय "होम एन्ड भिलेज डाक्टर" के बंगला अनुवादमें लगाता रहा। जब यह काम पूरा हो गया तब मैंने गोपालन पर पोथी लिखनेका काम हाथमें लिया। इस विषयका साहित्य पाना कठिन काम था। मैं सजावार कैदी था। जेल-कोडके अनुसार कैदी एकबार ५ से जादा किताबें नहीं पा सकता। मुझे पशुपालन पर आधुनिक साहित्य और शास्त्रीय पत्रिकाओंकी जरूरत थी। मैं जेलकी गोशालाका काम कर रहा था इसलिये गिनतीकी बाधाके बिना किताबें मँगानेकी आज्ञा मिल गयी।

उस जेलकी गोशालामें ७० ढोर थे। वर्षों पहले मैंने दयनीय दशासे इसकी उन्नति की थी और बहुत अच्छी हालतमें छोड़ा था। वह सब बिगड़ चुका था। लगातार उपेक्षा और अबोध-प्रबन्धसे ठट्ठकी दुर्दशा हो गयी थी। पिछले दो वर्षोंसे पशुओंको अनुपयुक्त, पर दामी आहार दिया जा रहा था। साथ ही दुर्भाग्यसे किसी तरहका हरा चारा पशुओंको नहीं दिया जा रहा था। पशु लटे दुबले थे। बच्चे ब्यानेके पहले या बाद मर जाते थे। कुछ अन्धे थे। देरसे पुरैन निकलने, गर्भपात और बाँझपनकी भी शिकायतें थीं। यह सब ही दुष्पोषणका फल था। सामने कठिन काम पड़ा था। गोशाला सुधारनेके लिये मुझे जेल अधिकारियोंने सभी सुविधाएँ दीं। मुझे यह देख अचरज हुआ कि, नये व्यवहारका ठट्ठ पर कैसा अच्छा असर पड़ा। वत्स-मृत्यु हवा हो गयी। गायोंके पश्म चमकने लगे। बछड़ोंपर मांस चढ़ने लगा। ऋतुकाल स्वाभाविक हो गया। ६ महीनेमें ही गोशाला फिरसे दर्शनीय हो गयी। गायोंकी बुरी हालत तुरत ही सुधर गयी। जेल अस्पतालसे लगी प्रयोगशालाका पूरा फायदा मैंने अपने कामके लिये लिया। यहाँ मुझे अपनी जरूरतकी कुल दवायें मिल जाती थीं और अणुवीक्षण-यंत्रसे काम ले सकता था। मेरे लिये जेल गोपालनका गवेषणालय बन गया।

# गान्धीजीके प्रार्थनान्तिक भाषणोंके सारांश

## दिल्ली—२१-११-४७

मैं गोसेवाका काम खूब जानता हूँ, लेकिन ऐसा नहीं कह सकता हूँ कि सब लोग उसको ले लेते हैं और अपना लेते हैं। गोसेवाके नामसे गौशाला चला रहे हैं वे भी ऐसा नहीं कर सकते, तो मैं कैसे कहूँ कि वे गायको आजाद कर सकते हैं। यह तो मैंने कह दिया है कि यह बहुत कठिन काम है। हम अज्ञान हैं। इस बारे में हमें सच्ची दिलचस्पी नहीं है। हिन्दूके लिये यह धर्म है, और जब तक हिन्दू इसका पालन नहीं करे तो दूसरोंको किस मुँहसे कह सकते हैं कि गायको न मारो। मैंने तो कह दिया है कि दूसरे मुल्कमें ऐसा नहीं होता है। हिन्दुस्तान ही ऐसा मुल्क है जहाँ ऐसा होता है। बाकी सब जगह नहीं होता है। अगर हम ही उस धर्मका पालन न करें तो दूसरा कौन कर सकता है? मुझसे कहा गया कि मैं एक गोशालामें १० मिनटके लिये तो चलूँ। मैंने कहा कि मैं १० मिनटमें क्या कहूँगा? १० मिनटसे ज्यादा तो यहाँ बोल सकता हूँ। वहाँ जाऊँ और १० मिनट बाद आ जाऊँ यह अनाचार सा हो जाता है। उसमें है क्या? मेरे जानेसे हो क्या सकता है? उसी बारेमें मैं यहाँ कह देना चाहता हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि इस कार्यमें कोई भी लग जाय, जैसे ये भाई हैं वे यह काम करें, तो उसको इसके लायक बनना होगा। मैं अगर सफाई का काम करने को कहूँ तो उसे हर एक कोई नहीं कर सकता है उसमें भी उसको शास्त्री बनना होगा। कताईका काम करने को कहूँ, झाड़ू करने को कहूँ, गाय धोनेको कहूँ, ये काम आसान नहीं हैं। दूध अच्छा है या बुरा यह नहीं बता सकता। गाय को खाना खिलानेका काम भी आसान नहीं है तो गोसेवाका काम आसान कैसे हो सकता है? वह किसी मदरसा, संस्थामें जाय और काम सीखे तो काम सीख सकता है। गौ का मैला मोद, छान निकलता है उसको देखे। उसके गोबरका पूरा उपयोग नहीं जानते हैं, गोबरको जला देते हैं। जमीनको साफ करते हैं। जलाना आसान है, पैसा नहीं लगता। गोबर उठा लेते हैं, यह चोरी तो नहीं है लेकिन उसको जला देते हैं यह उसका दुरुपयोग हुआ। जैसे एक खासी चादर है, ओढ़नेके लायक है, लेकिन उसका इस्तेमाल ओढ़नेमें न करें दूसरे काममें करें जबकि उस कामके लिये और कपड़ा मिल सकता है। इसी

तरहसे गोबर है, मूत्र है। उसका सदुपयोग करना है तो वह एक ही तरीका है। वह यह है कि हम उसको खादमें ले आयें। तो वह पीछे बढ़िया खाद हो जाता है। उसको कहो जीवन भरका खाद हो गया। उससे हमारी जमीन बहुत अच्छी हो जाती है। उसमें ऐसी शक्ति है। उसमें भी अधिक नहीं जाना चाहता, लेकिन अगर हम सदुपयोग करें तो लाखों रुपये बचा सकते हैं। करोड़ोंका हिसाब निकलता है। इसका सबसे ज्यादा जाननेवाला तो सतीश चन्द्र दास गुप्त है। मेरे तो दोस्त हैं। वे अपनेको सेवक मानते हैं। मेरे ख्यालमें उनकी किताबका हिन्दुस्तानीमें तर्जुमा भी हो गया है। बड़ी भारी पुस्तक है। इसके बारेमें दुनियाभरकी किताबोंका उसमें निचोड़ है। मैं समझता हूँ कि वह इस शास्त्रकी अच्छी किताब है। उसने सब किताबोंको देख कर ही यह किताब लिखी है, ऐसी बात नहीं है, वह खुद गोशाला चलाता है। हम गौकी कैसी सेवा कर सकते हैं—उसमें शास्त्रीय ढंगसे बताया गया है। हम तो ऐसा करते हैं कि जब गाय मर जाती है, बछड़ा मर जाता है तो उसका दफन कर देते हैं या चमार को दे देते हैं, तो पीछे वह क्या करे? उसके लिये हम गुनहगार हैं। वह गायको काट देता और मांसको खा लेता है। देखा तो नहीं हूँ लेकिन मैं तो उनके साथ रहनेवाला हूँ इसलिये सुनता हूँ कि भद्दी क्रिया करते हैं। उसका तो उपयोग करना चाहिये, चमड़ा निकालना चाहिये, जूता बनाना चाहिये। जब गायको मार डालते हैं, हत्या करते हैं तब मैं उसके चमड़ेको नापाक मानता हूँ, जो गाय स्वाभाविक तरीकेसे मर जाती है तो उसकी हड्डी ले ली, चरबी ले ली, चमड़ा ले लिया और बाकी खादके लिये उपयोग होता है। जिन्दा रहती है तब भी काममें आती है। गोबर देती है, दूध देती है, घी देती है। मैं तो कहूँगा कि जो लोग गौशाला चलाते हैं वे तीन बात—गोपूजा, गोसेवा और गोरक्षा सीखलें। [illegible] दिलमें गुमान रखें कि हम तो गायका पालन करते हैं, लेकिन अपने पैसे का सदुपयोग न करें तो वे धर्मका नाश करते हैं। यदि व्यापारी बुद्धिसे ये काम करें तो गोधन आज अमूल्य हो सकता है। आज अमूल्य नहीं है। हमारे साथी आज ऐसे पड़े हैं वे सुनाते हैं कि गाय उन्हें खा जाती है, क्योंकि गाय को जितना खाना देना पड़ता है उससे वह कम दूध देती है, तो जाहिर है कि वह खा जाती है, लेकिन ऐसा क्यों होता है? अगर हम गौ की सेवा करते करते ऐसे मिल जाँय जैसे दूधमें शक्कर, तो नुकसान नहीं हो सकता, लेकिन हम शराब पीयें, सट्टा करें तो यह

बोझ तो हो जायगा और पीछे दूधके साथ शकर नहीं बन सकते। हम भिक्षावृत्तिके नहीं बने। हम जैसे पेट भर खाँय उसको भी खिलायें तब तो ठीक है। ऐसा करनेके लिये कितने ही सिख आयें हिन्दू आयें तो मुझे परवाह नहीं, वे जमीन को बरबाद नहीं करते, हमको बरबाद नहीं करते। हमारे साथ वे भी सेवा करते हैं तो धनकी वृद्धि करते हैं। यह स्वाभाविक कानून है। अगर हम सच्चे गोसेवक बनें तो वह काफी दूध देगी और बैल भी देगी, आखिर वही तो बैल देती है। बैल देनेवाली गाय कैसे बनती है? क्या खिलायें? यह सब शास्त्रके मुताबिक चले तो गोधनका सच्चा उपयोग हो सकता है, नहीं तो गोशालाओंको जो करोड़ों रुपये देते हैं वह बरबाद हो जायगा। शास्त्रको ठीक तरह पढ़ें और उसके मुताबिक गोसेवा करे। यह सब गोशालामें ज्यादा हो सकता है। जनता भी सीखे और गाय रखे। मेरा ख्याल है कि जितना दूध हमें चाहिये उतना तो हम एक एक घरमें नहीं पा सकते लेकिन हर जगह आदर्श गोशालायें बन सकती हैं। अगर ऐसा हुआ तो मेरा विश्वास है कि चन्द वर्षोंमें हमारा मुल्क जो पशुबलमें सबसे आले दर्जेका है, होना चाहिये, दुनियाका मुकाबला कर सकता है। तब हमारी गाय बेहाल नहीं मरेगी। और करोड़ों रुपये जो हम बरबाद करते हैं उसे हम बचा सकते हैं, इसमें मुझे कोई शक नहीं है।

---

## दिल्ली—२२-११-४७

भाइयो और बहनो,

कल तो मैंने आपलोगोंको थोड़ासा गोसेवाके बारेमें सुनाया था, आज तो उस गोशालामें, जो मैंने कहा था, उस तरहका काम चल रहा होगा या बन्द हो गया होगा। उसमें एक बात छोड़ दी थी क्योंकि समय हो रहा था न, आज कह दूँ तो अच्छा है। हमारे हिंदुस्तानमें बहुत दुग्धालय चलते हैं, मुझे पता नहीं था। परसों राजेन्द्र बाबूने मुझे बताया, मैंने सुना। दुग्धालय क्या था? मिलिटरी थी, अंगरेज सोलजर थे, सब चाहिए तो डेअरियाँ चलती थीं। एक एक डेअरीमें सैकड़ों, सैकड़ों क्या हजारों, हजारोंमें अतिशयोक्ति हो सकती है, सैकड़ों एकड़ जमीन रुकी थी उसकी मुझे परवाह नहीं है। गायें थीं, भैंसें थीं, बैल भी अच्छे थे। खूबसूरत गायें भैंसें थीं। बंगलौरमें तो एक गाय ऐसी थी कि वह सारे एशियामें सबसे ज्यादे दूध देती थी। लोग उसका फोटो लेते थे। मालवीयजीने उसे देखा था। उसे देख कर वे खुश हो गये थे। वह बाँधी नहीं जाती थी, घूम सकती थी सब

जगह। इतना ज्यादा बोझ लेकर तो ज्यादा घूम भी नहीं सकती थी लेकिन घूमती थी। उसके सामनेका चित्र है वह बहुत भयानक है। बछड़ा देती थी लेकिन सबका सब बछड़ा रहे तो क्या करे? संख्या बढ़ जाती थी, बैल बनाना मुश्किल बन जाता था, उसको तो दूध चाहिये तो बछड़ेको मार डालते थे। भैंस है तो उसके बछड़ेको तो मारना ही है। चलता था। इसको कोई जानते नहीं थे ऐसी बात नहीं थी। दबी जबानसें कहते थे, दबी कलमसे लिख सकते थे। ऐसा चलता था। इतनी जमीन भी लगी थी। करोड़ों रुपये बरबाद होते थे। आज जितने सोलजर हैं वे हमारे हैं। उनके लिये इतना खर्च नहीं होना चाहिये। इतना बरबाद होना नहीं चाहिये। इस तरहसे कितने ही बछड़े बच सकते हैं। इस तरह हम कितनी ही हत्यायें बचा सकते हैं। यह हुकूमतका काम है, लेकिन सारे हिंदुस्तानमें कानून हो तो बुरा होगा। तो कहूँगा कि पहले शास्त्र पढ़ो। हिंदू आज कमजोर हैं क्योंकि शास्त्रका अध्ययन नहीं करते हैं। मैंने कल भी कहा था कि इसके बारेमें सतीश चन्द्र दासगुप्तने सबसे अच्छी पुस्तक लिखी है। वे मेरे साथी हैं इसलिये नहीं कहता हूँ, मैंने उस पुस्तकको पढ़ा है। उसमें यह सब बताया है कि सारी दुनियामें गाय भैंसकी कितनी कीमत है। गाय भैंसके मुकाबला क्या है? कितना काम देती है, बैल कितने कामके हैं? गायसे बैल पैदा होते हैं। उसका बहुत काम लगता है। भैंसका बच्चा काम नहीं आता है। हाँ एक जगह वह भी काममें आता है, लेकिन जब बैल जैसे उससे काम लेते हैं तो बुरी हालत होती है। कोंकणमें भैंसके बछड़ेको काममें लाते हैं, लेकिन वहाँ शक्ल दूसरी है। वहाँ जमीन ऐसी है कि बैल काम नहीं कर सकता है। उसका पैर जमीनमें घुस जाता है। कोंकण छोटा सा मुल्क है। लेकिन बैल सारे हिन्दुस्तानमें काममें आता है। जब ख्याल करते हैं तो मालूम होता है कि बैलके बिना काम चल ही नहीं सकता। बैल गाड़ीके भी काम आता है। देहातमें सब मोटर, हवाई जहाजसे तो चलते नहीं हैं, हाँ, कभी कभी रेलमें जाते हैं, लेकिन तो भी बैलसे ज्यादा आते जाते हैं। यह सब सतीश बाबूने अपनी पुस्तकमें खूब बताया है। आप लोग यह पुस्तक पैदा करें। हिन्दुस्तानीमें तर्जुमा हो चुका है। मुझको तो नोआखालीमें सुनाया था कि उसकी प्रतियाँ अभी खत्म हो गई हैं और दूसरी आवृत्तियाँ निकालनेकी चेष्टा की जा रही है। तो मैंने सोचा कि कह तो दूँ।

---

जेलकी गोशालामें ही मैं आहार-गठनका शास्त्रीय प्रयोग कर सका। धानके पुआलकी त्रुटि सुधार उसके आहार पर गायको सुस्थ रखनेका सर्वोत्तम उपाय मुझे मिला। कमसे कम दूध पर भी बछरुओंकी वृद्धिके लिये जिन चीजोंकी जरूरत है वह देनेका गुर तैयार करनेमें मुझे यहीं सफलता मिली। मैंने हरियानाके बच्चेको पूरी ब्यांतमें ३५० रत्तल दूध देकर पाला और पाया कि उसका मांस हफ्तेमें ८ रत्तलकी दरसे बढ़ रहा है। उचित पौष्टिक चारा और खनिजके मिश्रणके साथ जितना दूध बछरुओंको देनेसे मुझे ऐसा सन्तोषप्रद परिणाम मिला वह देहातीभी बछरुओंकी जन्मतौलके अनुपातसे दे सकते हैं।

जिस समय मैंने यह पोथी लिखनी शुरू की उस समय देशमें गोवध होता था। पर उतना नहीं जितना बादमें होने लगा। मुझे सरकारके इस प्रचारका सामना करना था कि वधके बिना भारतकी गायकी हालत सुधारनेकी कुछ आशा नहीं। मैंने यह दिखाया है कि, यह सिद्धान्त गलत है और इसका आधार भी गलत है। पर आज गो-उन्नतिके लिये गोवधके विरुद्ध किसी तर्ककी जरूरत नहीं। वधकी माँग इतनी जादे है जितने बच्चे पैदा भी नहीं होते। आज बहुत जादे बध हो रहा है। कौन कह सकता है कि इस वधसे ढोरकी हालत सुधरी है? इसके बदले विचारशील पुरुष, भारतीय ढोरके बारेमें चिन्तित हो गये हैं। वधसे हमारे ढोर बहुत कम हो रहे हैं। यदि अर्थशास्त्रियोंका सिद्धान्त सही है तो, जैसा होना चाहिये, इस वधसे बची गायोंका सुधार नहीं हुआ है। लड़ाईके पहले गायें केवल चमड़ेके लिये काटी जाती थीं। बिसुकी गायकी कीमत उतनी ही होती थी जितनी उसके चमड़ेकी। भारतीय और विदेशी चर्मालयोंके कारण ही वध हुआ करते थे। मुख्य वस्तु चमड़ा थी, मांस उपजात था। जहाँ चमड़ेकी हाटके लिये वध होता था वहाँ प्रायः उपयोगके अभावमें मांस फेंक दिया जाता था। अब वह सब बदल गया है। अब मांस की तौलसे गायका दाम है। यह मांसके लिये मारी जाती है। मांसके दामके अनुसार गायका दाम आँका जाता है। आज जिस गायका दाम १५० रुपये है, यदि वह काटी जाती है तो उसके चमड़ेका दाम १२ रुपये या पशुकी कीमतका ८ सैकड़ा ही मिलता है, जो पहले सौ सैकड़ा मिलता था।

मैंने "विषय परिचय" भागमें गोवध सम्बन्धी अर्थशास्त्रियोंके प्रिय सिद्धान्त और हिंसाकी हिमायतके बारेमें लिखा है।

भैंसकी होड़के बारेमें मैंने "गाय बनाम भैंस" अध्याय लिखा है। मैंने इस अध्यायमें साधारण ढंगसे विचार किया है। गायकी आजकी गिरी हालतसे उसको उबारनेकी राह इस पोथीमें निकालनेकी कोशिश मैंने की। पर मेरे सब प्रयास निष्फल हुए। इसका कारण भैंसके साथकी होड़ है। मैंने जिधर आँख उठाई उधर ही गाय और उसकी उन्नतिके बीच भैंसको खड़ी पाया। हर दिशामें भैंसकी बाधा है। इसलिये जब मैंने "गाय बनाम भैंस" अध्याय समाप्त किया तब नयी समस्याएँ सामने आयीं। भैंसकी बाधाका हवाला पूरी किताबमें है। "गाय बनाम भैंस" अध्यायके अन्तमें हवालेके लिये पैराओंकी एक शृंखला लगा दी गयी है। इसमें भैंसकी होड़की समस्याका विचार नये दृष्टिकोणसे किया गया है। सबसे अचरजकी बात जिसने मुझे चकरा दिया वह यह कि, यदि हम गाय और भैंसके स्नेहके भिटामिन-मूल्यको देखें तो पता चलता है कि, भैंसका घी, घी ही नहीं, चर्बी की किस्मका है। भैंसके घीका कैरोटीन-भिटामिन-मूल्य २ इकाईसे कम है। इसकी तुलनामें गायके घीमें यह २१ इकाई है। वह दो इकाई भी क्षणभंगुर सी है। इस दृष्टिसे भैंसका घी बहुत हीन है। यद्यपि भैंसके घीमें भिटामिन "ए" का अंश उतना ही है जितना गायके घीमें, फिर भी भैंसके घीके भिटामिन "ए" में कैरोटीन नहीं है और इसीसे रसोई करनेके समय भैंसके घीके "ए" भिटामिनका अधिकांश तापसे नष्ट हो जाता है।

गान्धीजीने भैंस पालनेके विरुद्ध बहुत जोरसे कहा है। पर जो युक्तियाँ मुझे गायके लिये अच्छी तरह जीनेका रास्ता निकालनेमें मिली हैं वह सभी उन्होंने नहीं रखी हैं। जब कि इन नये तथ्योंपर विचार किया जायगा तो गान्धीजीकी चेतावनी और जोरदार मालूम होगी।

यह किताब गायको खिलाने और उससे अधिकसे अधिक दूध पानेके गुरके संग्रह-मात्रकी किताब नहीं है। गोपालन यज्ञ है। मैंने यह दिखानेका प्रयास किया है कि यह क्यों और कैसे है। इसके लिये मुझे तार्किक बनना पड़ा है। गो-सुधारकी वर्तमान विचारधाराके विरुद्ध मैं लिख रहा था। सिर्फ कहनेसे कुछ नहीं बनता। "शाही कमीशन" मैदानमें आया और उसने जैसा चाहा वैसा मत सरकारी और पढ़े लिखे भारतीय लोगोंका बनाया। उसने गलत राह दिखायी और शास्त्रवेत्ता तथा अर्थशास्त्रियोंने कमीशनकी तजबीज मंजूर कर ली। मुझे चालू मतसे लड़ना पड़ा इसलिये मुझे शाही कमीशन और डा० राइट तथा डा० भोयेलकरकी

रिपोर्टोंसे इस विषयके बहुत उद्धरण देने पड़े। मुझे इनके तथा और बहुतोंके लिये जगह निकालनी पड़ी। अपनी तजबीजके समर्थनके लिये मुझे विशेषज्ञोंकी राय उद्धृत करनी पड़ी है।

पोषणके मामलेमें नयी खोज बहुत करनी पड़ी। इन बातोंको शास्त्रीय ढंगसे इस तरह लिखना पड़ा कि, साधारण आदमी भी चारोंके विश्लेषण अच्छी तरह समझ सकें। और जो सामग्री उन्हें प्राप्त है उससे युक्ताहार तैयार कर सकें। इन्हीं कारणोंसे यह पोथी इतनी मोटी हो गई है।

मेरा विश्वास है कि, आज भी गायका पददलित दशासे उद्धार संभव है। मेरा विश्वास है कि, यदि लोग अकलके साथ काम करें तो गायका औसत दूध ६० सैकड़ा तुरत बढ़ सकता है। लड़ाईके पहले गव्य-पदार्थ और गायकी मजूरीका मूल्य १,००० करोड़ रुपये था और सिर्फ दूधका मूल्य ३०० करोड़। यह अंक बेहद बढ़ाया जा सकता है और उसी अनुपातमें राष्ट्रीय धन भी। यह गाँवके रचनात्मक कार्यकर्ताओंका काम है कि, इस किताबके ज्ञानसे फायदा उठावें और आज गायका जो उपयोग है उससे अच्छा उपयोग उसका करें और उसे ऊपर उठावें। इसका अर्थ राष्ट्रका उठाना होगा।

यह पोथी जिस तरह मैंने लिखी वह कुछ राजनैतिक और अन्य बंदी मित्रोंकी कृपासे संभव हुआ। इन लोगोंने मेरे आदेश श्रद्धाके साथ माने और जेलकी गोशालामें आहार, रोग और चिकित्साके बारेमें उत्साहके साथ उनका पालन किया। उन्होंने जेलमें गोशालाका काम पसन्द किया और सफाई तथा खिलाईसे लेकर कुट्टी करने तक गोशालाके सारे छोटे और श्रमके काम किये।

जेलसे निकलनेके बाद मेरे पुराने मित्र, सेवाग्राम गो-सेवा संघके श्री यशवंत महादेव पारनेरकरने प्रेमसे पांडुलिपि पढ़ी और इसे प्रेसके लिये तैयार करनेमें मदद करनेको तैयार हुए। उन्होंने इसमें बहुत समय लगाया और सारी पांडुलिपि पढ़ गये। इसमें कुछ बहुमूल्य सुझाव भी बताये। जब पोथी (अंग्रेजीमें) छप रही थी उस समय एक भी प्रूफ पढ़ना या छपाईमें समय लगाना मेरे लिये संभव नहीं था। छपाईका काम हमारे मित्र श्री सुरेशचन्द्र देवके जिम्मे था। उन्होंने अपने सुन्दर और परिश्रमी स्वभावके अनुसार कष्ट सहकर इसे पूरा किया। सरदार बहादुर सर दातार सिंह तथा अन्य मित्रोंने पोथियाँ उधार देकर मेरी सहायता की।

कागज पानेमें बड़ी कठिनाई थी। जब वह मिल गया तब सरकारी प्रेस-नियंत्रणकी रुकावट आयी। कुछ दिनोंके बाद छपनेकी स्वीकृति मिली। इनके कारण कुछ महीनोंकी देर हुई।

चित्रोंमें कुछ "एग्रीकल्चर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इन्डिया", "दी इन्डियन फार्मिंग" और "इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी" तथा कुछ अन्य पुस्तकोंसे लिये गये हैं। यथास्थान इसे स्वीकार किया गया है।

इस किताबके पैरामें नंबर लगा दिये गये हैं। किसी पैराका हवाला देनेके लिये मोटे टाइपमें उसका नंबर पैराके अन्त या बीचमें छाप दिया गया है। विस्तृत सूचीमें पैराका हवाला दिया गया है पर अनुक्रमणिकामें पृष्ठोंका।

खादी प्रतिष्ठान,
१० अप्रैल, १९४५

सतीशचन्द्र दास गुप्त

---

*　　*　　*　　*

गाय और भैंसके बारेमें सबसे ज्यादा प्रामाणिक और शायद पूर्ण साहित्य खादी प्रतिष्ठानके श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त द्वारा लिखे हुए एक बड़े भारी ग्रन्थमें पाया जा सकता है। जहाँ-तहाँके साहित्यके अवतरणोंसे इस ग्रन्थको नहीं भरा गया है, बल्कि उसे अनुभवके आधारपर, जब वे एक बार जेलमें थे तब लिखा गया है।···हिन्दुस्तानीमें उसका अनुवाद हो चुका है। पुस्तकको ध्यानसे पढ़नेवाले लोग इसे हिन्दुस्तानके पशुधनको अच्छा बनाने और दूधकी पैदावार बढ़ानेके काममें बहुत उपयोगी पायेंगे। इस किताबमें गाय और भैंसकी तुलना भी की गयी है।

*　　*　　*　　*

—महात्मा गान्धी

(नई दिल्लीमें २१-११-१९४७ की प्रार्थना सभामें दिये गये भाषणसे)

# भारतमें गाय

पहला खंड

## नस्ल-संवर्धन—गव्य-धन्धा

[ चार भागों और तीस अध्यायोंमें ]

---

विषय परिचय

पहला भाग

अध्याय १—७. नस्लें, नस्ल-संवर्धन और उनका अर्थशास्त्र

दूसरा भाग

अध्याय ८—१५. गायकी रक्षा कैसे की जाय

तीसरा भाग

अध्याय १६—२१. गायका पोषण

चौथा भाग

अध्याय २२—३०. गव्य-धन्धा

---

# अध्यायोंकी सूची

## विषय परिचय — १-३६.

### भाग १. नस्लें, नस्ल-संवर्धन और उनका अर्थशास्त्र।



### भाग २. गायकी रक्षा कैसे की जाय।



### भाग ३. गायका पोषण।

---

* * * *

इसका (गोपालनका) सबसे ज्यादा जाननेवाला तो सतीशचन्द्र दास गुप्त हैं। मेरे तो दोस्त हैं। वे अपनेको सेवक मानते हैं। मेरे ख्यालमें उनकी किताबका हिन्दुस्तानीमें तर्जुमा भी हो गया है। बड़ी भारी पुस्तक है। इसके बारेमें दुनिया भरकी किताबोंका उसमें निचोड़ है। मैं समझता हूँ कि वह इस शास्त्रकी अच्छी किताब है। उन्होंने सब किताबोंको देखकर ही यह किताब लिखी है, ऐसी बात नहीं है। वह खुद गोशाला चलाते हैं। हम गौ की कैसी सेवा कर सकते हैं—उसमें शास्त्रीय ढंगसे बताया गया है।

* * * *

—महात्मा गान्धी

(नई दिल्लीमें २०-११-१९४७ को प्रार्थना सभामें दिये गये भाषणसे)

# विस्तृत सूची

[विषय-परिचयके बादसे पैरोंके हवाले दिये गये हैं]

## विषय परिचय : (पृष्ठ १—३६)



## भाग १. नस्लें, नस्ल-संवर्धन और उनका अर्थशास्त्र : (पैरा १—३६५)



१

## भारतीय गाय : (पैरा १—३४)

## २

## भारतमें गायकी कुछ मुख्य नस्लें : (पैरा ३५—८४)



## ३

## द्वि-प्रयोजन गाय : (पैरा ८५—१०८)



## ४

## गाय बनाम भैंस : (पैरा १०९—१२७)



## ५

## संवर्धन और प्रजनन-शास्त्र : (पैरा १२८—१७३)

## ६

## भारतके प्रांतोंमें संवर्धन : (पैरा १७४—३५२)

### मदरासमें संवर्धन (विशेषतायें)



### अङ्गोल अञ्चल और नस्ल

कंगायम अंचल और नस्ल



मैसूरमें संवर्धन



पंजाबमें संवर्धन



युक्तप्रान्तमें संवर्धन

## बम्बईमें संवर्धन



## सिन्धमें संवर्धन



## सीमाप्रान्तमें संवर्धन



## मध्यप्रान्तमें संवर्धन



## बिहारमें संवर्धन

बंगाल, उड़ीसा, आसाम आदिमें संवर्धन

अंचलके अज्ञात-कुल ढोर ३४७, बंगालमें गायका आयात ३४८, बंगालकी कठिनाई ३४९, सरकारकी साँढ़-नीति ३५०, उड़ीसा और आसामकी एकही बुरी स्थिति है ३५१, देशी राज्य : प्रसिद्ध गीर नस्लका चलान—नस्लकी उन्नतिके लिये देशी राज्योंमें जागरण ३५२.

७

## भारतमें ढोरोंसे आर्थिक लाभ : (पैरा ३५३—३६६)

ढोरसे धन ३५३, ऑलवर और राइटकी कुताई ३५४, ऑल्वरकी कुताई के आँकड़े और उसका आधार ३५५-५९, राइटकी कुताई ३६०-६५, सौ सकड़ा वृद्धिकी कल्पना ३६६.

## भाग २. गायकी रक्षा कैसे की जाय : (पैरा ३६७—५८३)



## पहली समस्या—खिलाना : (पैरा ३६७—३८५)

गायकी अवनतिके कारण पर पुनः विचार ३६७, ढोरोंकी संख्या नहीं बढ़ी है ३६८, भूतकालके संवर्धक अपना काम जानते थे ३६९-७१, गायकी आधुनिक उपेक्षा ३७२, —और स्त्रियोंकी उपेक्षा ३७३, दूधमें पुरुष और स्त्रीका हिस्सा आँकड़ा ३७४, स्त्री और गायकी उपेक्षाका परिणाम ३७५, भैंसकी अच्छी सँभाल ३७६, —यद्यपि भैंससे

## ९

## चारेकी कमी पूरी करना : (पैरा ३८६—४१३)



## १०

## चारा उपजाना और सेंतना—चराई : (पैरा ४१४—४६१)

## ११
## खादकी रक्षा : (पैरा ४६२—४७९)



## १२
## साँढ़से उन्नति—दूधका लेखा रखना और ठट्ठकी रजिस्टरी : (पैरा ४८०—५१७)

## १३
## खरीद बिक्री — मेला हाट और प्रदर्शनी : (पैरा ५१८—५४०)



## १४
## मिश्रित खेती और ग्रामोद्योग गोरक्षाके उपाय हैं : (पैरा ५४१—५५२)



## १५
## गोरक्षाके लिये सरकारी संघठन : (पैरा ५५३—५८३)

अपर्याप्त ५६९, पशुचिकित्सा-शिक्षाका झुकाव ५७०-७२, प्रस्तावित केन्द्रीय पशु-चिकित्सा कॉलेज ५७३, —जहाँपर प्रति विद्यार्थीके लिये २०,००० रुपये खर्च होंगे ५७४, रोग निवारणका अपर्याप्त प्रबंध ५७५, सरकारी संघठनमें परिवर्तन आवश्यक ५७६, जलावन और चारेके रखौतोंकी सृष्टि ५७७, महामारियोंका प्रभावकारी निवारण ५७८, पशु-शक्तिका उपयोग, एक सरकारी काम ५७९, बधियाका सफल उपाय ५८०, पुनःसंघठनकी योजना ५८१, गोरक्षाकी व्यक्तिगत संस्थायें ५८२-८३.

## भाग ३. गायका पोषण : (पैरा ५८४—६३४)



### १६
### आहारका महत्व : (पैरा ५८४—५९९)

गाय—पालतू पशु ५८४, उसके जिम्मे काम ५८५, उसको रूखा और पौष्टिक चारा चाहिये ५८६-८७, इन्तजामके लिये पोषणके ज्ञानकी आवश्यकता ५८८, अभी गोपालनसे लाभ नहीं हो रहा है ५८९, पोषणका ज्ञान अवस्था सुधारेगा ५९०-९५, घास और चराईका महत्व ५९६, छात्र भूमि और पशुओंके सम्पर्कमें आवें ५९७, —और भारतीय चारेके बारेमें जानें ५९८, थोड़े सुधारसे भी बड़ी भलाई होती है ५९९.

### १७
### पौधे और पशु : (पैरा ६००—६३६)

पौधेका जीवन पशु-जीवनका आधार है ६००, भूमि और हवासे पौधेकी रचना ६०१, पौधोंको भूमिका दान ६०२-३, पौधोंको हवाका दान ६०४-६, पौधेमें प्रोटीन ६०७-८, पौधोंमें खनिज ६०९-११, पौधोंमें भिटामिन ६१२, बीज—एक भंडार

## १८
## आहारका रूपान्तर : (पैरा ६३७—६८०)

१६

## पोषण सम्बन्धी आवश्यकतायें : (पैरा ६८१—७७१)

## २०

## पोषणतत्वकी कमी और उसकी पूर्ति : (पैरा ७७२—७९१)



## २१

## कुछ चारे और आहारके सामान तथा उनकी बनावट : (पैरा ७९२—९३४)

## धानका पुआल



## गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मड़ुआ, मकई और जईका पुआल

## फलियाँ और फलियोंका पुआल



## घास



## गाछका चारा

## पुष्टई



पोषकमूल्य : हिसाबका आँकड़ा



## भाग ४. गव्य-धन्धा : (पैरा ९३५—१२४१)

## २२
## गायकी व्यवस्था : (पैरा ९३५—९६९)

नये रूपमें गोपालनके उद्देश्य ९३५-३६, स्थानका चुनाव ९३७, ठट्ठका चुनाव ९३८, साँढ़का वरण ९३९, छँटाई ९४०, घटिया गायोंको बाँझ कर योग्यताकी वृद्धि ९४१, घटिया गायोंको अलग करना ९४२, ठट्ठके बूढ़े पशुओंको हटाना ९४३-४४, गाय, उसका स्वभाव ९४५, भारतने गायको क्यों चुना, घोड़ा क्यों नहीं ? ९४६, मनुष्यकी तरह व्यवहार ९४७-४९, ठट्ठका घर ९५०-५२, खुलेमें ढोर ९५३, मच्छड़-मक्खी, विष और चोटसे बचाव ९५४-५६, कुब्बका घाव, उसकी चिकित्सा ९५७, किलनी और फुहारा ९५८, पशु-अवगाहन ९५९, सफाई ९६०, छँटाई ९६१, गच और रास्ते ९६२-६३ साँढ़को काबूमें रक्खो ९६४, कसरत ९६५, बाँधनेकी चिकनी रस्सी ९६६, नियमित समय ९६७, स्वास्थ्य ९६८, गोदना—दागना ९६९.

## २३
## खिलाना और पालना : (पैरा ९७०—१०६७)

### खिलाना और फलाना

मुख्य चारे ९७०, निर्वाहके लिये खिलाना, एक सहज गुर ९७१, साधारण निर्वाहके-आहार ९७२, दुधार गायका अतिरिक्त आहार ९७३, दुधार गायके आहारका सहज गुर ९७४, खिलानेके बारेमें मैक्गूकिन ९७५, मैक्गूकिनके आँकड़ेकी परीक्षा ९७६, आहारका उनका वर्गीकरण ९७७, मैक्गूकिनका आहारका आँकड़ा ९७८, मैक्गूकिनकी पुष्टईका मूल्य ९७९, हरा चारा : मैक्गूकिन और सेन ९८०, चराई, उसके कारण पुष्टईमें कटौती ९८१-८२, खिलानेके साधारण सिद्धान्त ९८३, दूधके लिये खिलाना ९८४, कम खिलानेमें घाटा है ९८५, अलग अलग खिलाना ९८६, स्वादिष्ट चारे ९८७-८८, खाना तैयार करना ९८९, आहारोंकी संख्या ९९०, आहारकी रेचकता

## पूसाका विशेष प्रयोग



## गर्भकाल



## बछरू, साँढ़ और बैल पालना

### दुधार गायकी सँभाल



### पूसामें साहीवाल : सायरकी परीक्षाएँ



## २४
## दुग्ध-स्राव और दूध : (पैरा १०६८—११२४)

### दूध



### शहर और गाँवके लिये दूध

दूध—इसके उपादान और इसके लक्षण



दूधसे वृद्धि और दीर्घजीवन प्राप्त होते हैं



## २५
## गव्य-पदार्थ : (पैरा ११२५—११७४)

घी

### दूसरे गव्य-पदार्थ



## २६
## बाजारू दूध और उसकी मिलावट : (पैरा ११७५—११८१)



## २७
## दूध-परीक्षा : (पैरा ११८२—११९८)



## २८
## शहरोंमें दूधका प्रबन्ध : (पैरा ११९९—१२१४)

किया हुआ मानका दूध १२१०, तेलनखेड़ीकी तरह असल ग्वाले तैयार करनेसे समस्या मिट सकती है १२११, शहरके लिये देहातोंसे दूध बाहर भेजना गलत है १२१२, उत्पादक गाँवोंकी रक्षा की आवश्यकता है १२१३, दूधके लिये नया मान स्थिर करना होगा १२१४,

२९

## गव्यधन्धेकी अच्छी योजना : (पैरा १२१५—१२२३)

उत्तम गोशाला १२१५, ग्राहकोंसे कुछ बातें १२१६, गोवधके कारण दूधका सस्ता होना १२१७, सस्ता दूध भिटामिनहीन दूध है १२१८, —और बछरू मारनेवाला दूध है १२१९, शहरके गायके दूधका असली रूप १२२०, चतुर्विध यज्ञ पर प्रतिष्ठित गव्यधन्धा १२२१, अच्छे गव्यधन्धेमें लागतका हिसाब लगाना १२२२, गाँवमें गोसुधारक १२२३.

३०

## गव्यक्षेत्रका हिसाब-किताब : (पैरा १२२४—१२४१)

प्रबन्धके खातापत्रका विवरण १२२४, नियंत्रण बही : दुधार-गाय-रजिस्टर १२२५,—बछिया-रजिस्टर १२२६,—बछड़ा-रजिस्टर १२२७,—गाभिन-गाय-रजिस्टर १२२८,—खालो-गाय-रजिस्टर १२२९,—ब्यान-रजिस्टर १२३०,—साँढ़-रजिस्टर १२३१, —बैल-रजिस्टर १२३२,—बड़ी सूची १२३३, ठट्ठ बही : गाय, बछिया, बछड़ा और साँढ़के लिये १२३४, दैनिक दूध-बही १२३५, चारा बही १२३६, चारेको आमद-खर्च बही १२३७, घटना बही १२३८, दैनिक घटना, दूधकी उपज और चारेकी खपतको बही १२३९, मासिक रिपोर्ट फारम १२४०, मजदूरोंकी हाजिरी बही १२४१.

अनुक्रमणिका—पुस्तकके अन्तमें

# आँकड़ोंकी सूची

---

# चित्रोंकी सूची

चित्र । पृष्ठ ।

---

*   *   *   *

पशुपालन-ज्ञानके विस्तार करनेमें यह पुस्तक बड़ी सहायक होगी।
...... भारतीय गायके बारेमें प्राप्त ज्ञानके सारसंग्रहके रूपमें यह किताब अद्वितीय है और इस विषयमें रस लेनेवाले प्रत्येक आदमीको इसे रखना चाहिये ...

*   *   *   *

— मेजर जी० वीलियमसन, भारत सरकारके भूतपूर्व एनिमल हस्बैंडरी कमिशनर।

# वेदमें दूधका गुणगान

**वसाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये**
**ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयोअस्या उपासते ।**

अथर्ववेद—काण्ड १०, अ० ५, सू० १०।३१

वसायाः = गायका, कामधेनुका। दुग्धम् = दूध। पीत्वा = पीकर। साध्याः = साध्य नामक देवगण। वसवः = वसुनामक देवगण। च = और। ये = जोलोग। ते = वे। वै = यथार्थमें। ब्रध्नस्य = हिरण्यगर्भ, ब्रह्माका। विष्टपि = भुवनमंडलमें। पयः। अस्याः। उपासते।

गायका दूध पीकर साध्य नामक और वसुनामक जो देवगण हैं ब्रह्माके रचे हुए भुवनमंडलमें गायके दूधकी उपासना करते हैं।

**पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।**
**शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्तेनोमुञ्चन्त्वंहसः ॥**

अथर्ववेद—काण्ड ४, अ० ६, सू० २७।३

हे मरुतः। ये यूयं, कवयः = क्रान्तदर्शनाः सन्तः। धेनूनाम् = गवाम्। पयः = क्षीरम्। इन्वथ = सर्वाङ्गेषु व्यापयथ। शग्माः = शक्माः = शक्ताः = सर्वकार्यसमर्थाः। ते मरुतः। नः = अस्माकम्। स्योनाः = सुखकराः, भवन्तु। ते, नः = अस्माकम्। अंहसः = पापात्, मुञ्चन्तु। कवि = कान्तदर्शी = भूतकालके सब घटनाओं के ज्ञाता।

हे मरुत्-गण, आपलोग जो भूतकालज्ञ हैं (सो) गायोंके सब अंगोंमें दूध व्याप्त करावें। और औषधियोंके सब अंगोंमें याने सब भागोंमें रस व्याप्त करावें। और घोड़ोंके सब अंगोंमे वेग (तीव्रगति) व्याप्त करावें। हे सर्व कार्योंमें समर्थ मरुत्-देवगण, आप हम सबके लिये सुखकर होवें और हमलोगोंको पापोंसे मुक्त करें।

**संसिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।**
**संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ।**

अथर्ववेद—काण्ड २, अ० ४, सू० २६।४

सम्। सिञ्चामि। गवाम्=गृष्टीनाम् (वह गाय जिसे अभी पहलेही पहल बच्चा पैदा हुआहै=पहिलौंठी गाय)। क्षीरम्। सम्। आज्येन=घृतेन (घीसे)। बलम्। रसम्। गृष्टीनां क्षीरम्=अभिनवं पयः। आज्येन संसिञ्चामि=गवां क्षीरं सम् आज्येन संपातयामि। तथा आज्येन=घृतेन। बलं=बलकरम्। अन्नं रसं उदकं च बलकरं रसमेव वा। संसिञ्चामीति सम्बन्धः। अस्माकं वीराः=पुत्राद्याः, संसिक्ताः=घृतादिनासंसिक्तशरीराः=दृढगात्राः। भवन्तु। तदर्थं गोपतौ=गोस्वामिनि मयि। गावः। ध्रुवाः=स्थिरा भवन्तु।

मैं घृतसे पहिलौंठी गायके दूधको सिक्त करता हूँ। तथा घृतसे अन्नको और रसको भी सिक्त करता हूँ। और मेरी सन्तान घृत सेवन कर खूब बलिष्ठ शरीरवाली बनें इसलिये गायोंका मालिक जो मैं उसमें (मुझमें) गायें सब स्थिर होवें, अर्थात् मेरे लड़के बच्चे सब गायका घी खाकर खूब बलवान् बनें, इसलिये मेरे पास बहुत सी गायें बराबर बनी रहें, गायोंकी कमी मुझे कभी न हो। (१०८१)

# भारतमें गाय

## विषय परिचय

### भूमि पौधे और पशुपालन ( घोष विद्या ) की योजनामें गायका स्थान

भारतमें चालीस करोड़से कुछही कम आदमी और बीस करोड़से कुछ जादे गाय और भैंसें हैं। मोटे हिसाबसे प्रति दो मनुष्यपर एक पशु आता है। दुनियाँकी मवेशियोंकी संख्या साठ करोड़ कूती गयी है। इसका एक तिहाई भाग भारतमें ही है। दुनियामें कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ भारतके ढोरों ( मवेशी ) के एक तिहाई भागसे भी कुछ अधिक ढोर हों। भारत इस विषयमें धन्य है कि उसे इतने जादा ढोर हैं। भारतीय पशुओंसे प्राप्त श्रम और गव्य इत्यादिका मूल्य दस अरब होता है। ऐसा धंधा कहीं नहीं है जिसकी आय दस अरब हो।

डा० राइट (Dr. Wright) ने बताया है कि भारतके दूध और दूसरे गव्योंका मूल्य तीन अरब रुपये तक है। लड़ाईके पहलेके तीन अरब रुपयोंका महत्व, लड़ाईके पहलेके सारे भारतीय आयात निर्यातके मूल्यके और चावलकी कुल उपजके बराबर है तथा गेहूँकी कुल उपजके मूल्यसे तीनसे चार गुना तक है।

फिर भी इतनी बड़ी संख्याओंके लिये किसीको प्रसन्नता नहीं हो सकती। क्योंकि बीस करोड़के लगभग ढोरोंको पूरा चारा नहीं मिल पाता, इसलिये उन्हें जितना काम करना चाहिये या दूध देना चाहिये, नहीं देते। काम करनेवाले ढोर कमजोर होते हैं इसलिये उचितसे अधिक संख्यामें उन्हें पालना होता है। खेतीके काममें जितने पशुओंकी जरूरत है उनसे जादे, पाले गये ढोर जितना चारा खाजाते हैं वह अगर जरूरतके कम से कम ढोरोंको खिलाया जाता तो उन्हें पूरा भोजन मिलता, उनके बच्चे जादा अच्छे होते और वह जादे दूध भी देते। ढोरोंकी बहुसंख्याके बारेमें यही विचारधारा हैं। और इन सबका दोष बिचारे किसानके सिर मढ़ा जाता है। ये किसान मूर्खताकी मूर्त्ति माने गये हैं।

गोवधकी बात इन्हें स्वीकार नहीं। कमसे कम इसीलिये ये झूठी धर्मान्धतामें जकड़े चित्रित किये जाते हैं। आजकलके अर्थशास्त्री इस सवालका रचनात्मक दृष्टिसे विचार करने और उसका उपाय सोचनेके बदले किसानोंकी मूर्खता और उनकी धर्म-भावनाको कारण मान इस समस्याको ही न सुलझनेवाली मान लेते हैं। भारत-सुधारकी योजना बनानेवाले आधुनिक अर्थशास्त्रियोंकी दृष्टिका यही नमूना है। अधिकांश लेखक यही लिखते हैं और नौसिखुए उनकी बात सिद्धान्त मानकर बिचारे किसान पर गुर्राते हैं।

पर मैं यह नहीं मानता। मैं एकदम दूसरी बात मानता हूँ। मैं मानता हूँ कि ढोरोंकी भुखमरी कुव्यवस्थाके कारण है और इसका दोष किसानोंके मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। किसान अच्छे हैं। जिस कुव्यवस्थामें उनकी कुछ नहीं चलती वह उसीके शिकार हैं। ये तो इतना भी नहीं जानते कि इसका विरोध भी कैसे करें? उनपर लगाये गये अभियोग काल्पनिक हैं और वह इन्हें जानते भी नहीं। पर यदि उन्हें यह अभियोग बता भी दिया जाय तो वह केवल काम करने और अपने गूँगे ढोरोंके साथ खुद भी बिना कुछ बोले कष्ट सहनेके सिवा इसका और कोई जवाब नहीं दे सकते।

डा० राधाकमल मुकर्जी अर्थशास्त्रियों में प्रामाणिक हैं। उनके वचनोंका आदर भारतमें ही नहीं विदेशोंमें भी है। ऐसे व्यक्ति किसी बातकी निन्दा स्तुतिमें यदि कुछ कहें तो उसको यों ही टाला नहीं जा सकता। अभी हालकी छपी (१९३८ में) अपनी "४० करोड़की आहार योजना" (Food Planning for 400 Millions) पुस्तकमें उन्होंने पशुपालन धंधेपर भी विचार किया है। इसमें उन्होंने किसानोंपर वही पुराने अभियोग लगाये हैं। डा० राधाकमलका मत "शाही कृषि कमीशनको रिपोर्ट" (Report of the Royal Commission on Agriculture) और अर्थशास्त्रियों, समाज सुधारकों तथा भारतकी योजना बनानेवालोंके लेखोंके जैसा ही हूबहू है।

## हीन ढोरोंकी वृद्धि "आर्थिक मूर्खता" है

"पशुधनकी संख्या केवल बंगालके ही बहुतसे जिलोंमें नहीं वरन् उड़ीसा और मदरासके घनी आबादीवाले भागोंमें तथा युक्तप्रान्तके पूर्वी जिलों और उत्तर तथा दक्षिण बिहारमें भी जिस तेजीसे अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है

उनकी हालत उसी तरह बिगड़ती जाती है। इससे जादे आर्थिक बुद्धिहीनता नहीं हो सकती। पर यह बुद्धिहीनता छोटे छोटे किसान फिर फिर करते जा रहे हैं। इन्हींके पास सबसे जादे बेकार ढोर हैं जो इनका स्वल्प साधन हड़पते जा रहे हैं।"

—(पृ० १४१)

## किसान यह सवाल कैसे हल करता है

बेकारीके दिनोंमें जब न तो खेतीका कोई काम होता है और न चारा ही पासमें होता है, पालनेमें असमर्थ हो छोटे किसान अपने ढोर बेच देते हैं। इस मूर्खताके लिये डा० मुकर्जी इन बुद्धुओंपर यों दोषारोपण करते हैं :

"छोटे किसानका चारेकी कमी दूर करनेका अपना तरीका है। गरमीके शुरूमें जैसे ही उसे खेतीके कामसे फुरसत मिलती है, वह ढोरोंको बेच देता है और खेतीका काम शुरू होनेके समय फिर नये खरीद लेता है। इस तरह जब गोचर और चारेकी कमी रहती है वह अपना खर्च बचा लेता है।"

—(पृ० १४२)

कोई ऐसा भी मान ले सकता है कि किसानकी सुन्दर सूझ और रुपयेकी कीमतकी साफ जानकारीके लिये अर्थशास्त्री उसकी तारीफ ही करेगा। ढोरोंके पालनेमें जितना रुपया खर्च होता है उसे बचानेके लिये किसान अपने उन ढोरोंको बेच देता है और इसमें उसकी भावना बाधक नहीं होती। दूसरी तमाम बातोंसे रुपयेकी कीमत अधिक आँकनेके लिये ऐसे चतुर किसानकी अर्थशास्त्री शायद प्रशंसा करें।

"पर कभी कभी इससे किसानको बहुत हानि होती है। और फेरीवाले पशु व्यवसायीको जो वर्षा शुरू होतेही देहातोंमें छा जाते हैं, बहुत लाभ होता है।"

—(पृ० १४२)

## मनुष्यों और पशुओंका ह्रास

पर अभियोगका सबसे बड़ा आरोप तो अब आता है।

"अच्छे ढोरोंके लिये कठिनतासे जितना चारा पूरा पड़ता, उतनेमें निकम्मे पशुओंको आधा पेट खिलाकर पाला जाता है, क्योंकि चारा और चरागाह की कमी है। अधिक चराईके कारण घासके मैदान उजड़ते हैं। इससे बरसातमें उनके सतहकी मिट्टी बहती है जिसके कारण चारेके पोषक गुणमें कमी आती है। इसके कारण चारेमें फौस्फोरस (Phosphorus) और औक्सीमोन (Auximones) की

कमी हो जाती है और वह कभी कभी हानिकारक हो जाता है। और दूसरी तरफ कमजोर ढोरके कारण गहरी जुताई नहीं हो पाती और पूरी खाद भी नहीं पड़ती, इससे खेतीके लायक जमीनभी खराब हो जाती हैं। दुष्पोषणके कारण होनेवाली हानिका शैतानी चक्कर बड़ा होता जाता है। प्रायः किसान भी रोगोंका शिकार होता है। पोषक आहारकी कमीका यह फल है। स्पष्ट है कि ढोरोंको जितना ही हीन आहार दिया जायगा उतनाही हीन गुणवाला आहार वह पैदा करेंगे।"—(पृ० १४३)

## हिन्दुओंकी भावना कठिनाई बढ़ाती है

"भारतवर्षमें पशुओंकी संख्या जितनी बढ़ गयी है, उनकी शक्ति उतनीही कम हो गयी है। यह क्रम अब इतना बढ़ गया है कि इसको रोकनेके लिये निकम्मे पशुओंका कम करना बहुत कठिन काम है। अति प्राचीन कालकी सामाजिक और धार्मिक भावनायें जिनके रहनेसे आजकल गड़बड़ी होती है, इस दिक्कतको और भी बढ़ाती हैं।"

"गाय या बैलको मारना हिन्दू धर्ममें घोर पाप है। बहुत कठिन समयमें भी कट्टर हिन्दू प्रायः गोवंशको बेचनेमें हिचकिचाता है। क्योंकि खरीददार प्रायः कसाई होते हैं और खरीदा माल कसाईखानेमें पहुँचाया जाता है।"
—(पृ० १४४)

इसके बाद लेखकने (डा० मुकर्जी) डारलिंग (Darling) के लेखका हवाला देते हुए कहा है कि पंजाबमें झेलमके उत्तर हिन्दू अधिक नहीं हैं। इस भागमें पशु पालन उतना ही सुन्दर है जितना दूसरी जगह कठिन।

"जबतक हिन्दू अपनी भावनासे पूरी तरह तोबा नहीं करते, भारतीय खेतिहर पशुपालनको व्यवहारिक दृष्टिसे नहीं देख सकते। और ऐसे ढोरोंकी हिफाजत वह करते जायेंगे जो जन्मसे लेकर मरने तक किसी कामके नहीं। जो छोटे किसान असमर्थ हैं उन्हींके पास ऐसे पशु जाते हैं।"—(पृ० १४५)

## अहिंसा भी

भारतमें बसनेवाले आदमियों और पशुओंकी दुर्दशाके लिये अंतमें अहिंसा सबसे बड़ी गुनहगार मानी गयी है और उसकी भरपूर निन्दाभी की गयी है।

"भारतपर ३७ करोड़ ७० लाख आदमियोंका भार है। यहां औसतन ४ करोड़ ८० लाख आदमी निराहार रहते हैं। ऐसे देशको अपने २१ करोड़ ४० लाख मवेशियोंकी हर दशवें वर्ष २० सैकड़ाकी बढ़ती नहीं पुसा सकती और उसे मनुष्यके उत्तम आहारको अहिंसाकी भेंटभी नहीं करना चाहिये।"

—(पृ० १५३)

## मुसलमान और गाय

भावुक हिन्दू कठिन समयमेंभी अपने बैल नहीं बेचता क्योंकि बेचनेका अर्थ उन्हें कसाईखाने भेजना होता है। उसपर किया गया यह आक्षेप एक तरफा ही है। बेचनेमें आपत्ति करना सचमुच बड़ा अपराध है। पर क्या सभी छोटे खेतिहर हिन्दू ही हैं? डा० मुकर्जी जानते हैं कि, ऐसे कितने ही जिले हैं जहां मुसलमान सैकड़े ९० हैं; जैसे उत्तरी बंगाल और पूर्वी बंगालके कुछ हिस्से। जहां सिर्फ मुसलमान ही बसते हैं ऐसे भी ग्राम समूह हैं। इन मुसलमानोंको गोवधमें धर्मकी बाधा नहीं हैं और वह गोवध करते भी हैं। ठाले और सूखे समयमें छोटे किसान ढोर बेच देते हैं, इसका हवाला डा० मुकर्जीने स्वयं दिया है। इनलोगोंके बारेमें क्या कहना है? आधे बंगालमें अधिकांश मुसलमान हैं, इनके बारेमें क्या कहते हैं? क्या उनकी हालत दूसरोंसे अच्छी है? बंगालकी आबाद जमीनके हर १०० एकड़ पर १०८ ढोर हैं। क्या यह बात इनके लिये भी लागू है? हां है। हिन्दुओंके लिये जो धर्मबन्धन माना गया है उसकी बाधा मुसलमानोंको तो नहीं है; फिर भी पशुओंको उत्तम चारा देने और अधिक संख्यामें ढोर पालनेके मामलेमें वह हिन्दुओंसे कुछ अच्छे नहीं हैं। असल बाततो यह है कि, हिन्दू अपनी गाय बेचते हैं और उनकी गाय कसाईके हाथ जा रही है। इसे वह अनदेखी करदेते हैं। यह मैं अपनी जानकारीकी बात लिखता हूँ। इसलिये धर्मभावनाके विरुद्ध हायतोबा मचाना झूठी बात है। ढोर बिगड़ रहे हैं; वह हिन्दू धर्मभावनाके कारण नहीं और न इसीलिये कि वह निकम्मे पशु नहीं बेचते। कारण तो कुछ जरूर है, और वह चाहे जो हो, पर शाही कमीशनसे लेकर अर्थशास्त्र और पशुपालनके हाल तकके लेखकोंने जो कहा और हमारी स्कूली किताबोंमें भी जो बताया जाता है वह दोष अहिंसाका नहीं हो सकता।

## हिंसा और अहिंसा यहाँ अप्रासंगिक हैं

ढोर जबह करनेके लिये ही बेचे जाते हैं। उनकी बिक्री चमड़ेके दामके लिये और चमड़ेके लिये होती है। चमड़ेकी माँग है इसलिये हिन्दू और मुसलमान दोनों एक समान पशुओंकी बिक्री कर रहे हैं। चमड़ेके बाजारकी चढ़ा उतरीके अनुसार पशुवध ज्यादा या कम होता है। कलकत्तेका एक कसाईखाना रोज ३०० गायें काटता है। आगरेके पास एक जगह रोज २,००० गायोंको ठिकाने लगा दिया जाता है। यहाँ सिर्फ चमड़ेके लिए ही गायें काटी जाती हैं। क्योंकि, इस जगह मांसका कम क्या, कुछ भी मूल्य नहीं। अर्थशास्त्री इन बातोंको तो जानते ही होंगे। देशमें काफी हिंसा है। इसके लिये अर्थशास्त्रीको फिकर नहीं करनी चाहिये। पशु और मनुष्य दोनों अहिंसाके सबब क्षीण नहीं हैं। उनकी क्षीणता अज्ञान और गलत नेतृत्वके रूपमें हुई हिंसाके कारण है। धर्मान्धता पशुओंकी उन्नतिमें बाधक है यह गलत और झूठा बयान इतनी बार कहा जाता है कि मन ऊब गया है। डा० मुकर्जी की "आहार योजना" का प्रारम्भ ही निन्दासे है।

## कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं दिया

"यदि किसानोंका निकम्मे और अलाभकर प्रायः १२॥० करोड़ ढोरोंको बनाये रखनेका रुख बना रहा तो चारेकी फसलकी खेती या उसका सुधार नुकसानका हो न हो पर बेकार जरूर होगा।"—(विषय परिचय, पृ० ११)

शाही कमीशनने बहुत दिन पहले यह कहा है। उसने आशंका की है कि अगर चारेकी हालतमें सुधार होगा तो ढोरोंकी उत्पत्ति बढ़ेगी। पूरंपूर पशुवध जारी कर उसे चलाते रहनेतक कुछ नहीं करनेकी नीतिमें शाही कमीशन और अर्थशास्त्रियोंकी राय एक है। क्योंकि, अगर तुम अधिक चारा देते हो तो भूखे पशुओंकी अधिक उत्पत्ति होगी और फिर दुष्पोषण तथा अधिक संख्याका कोई हल नहीं मिलेगा। इसीको हमने कुछ नहीं करनेकी स्थिति कहा है। अर्थशास्त्रियोंने यह बात सिर्फ जरूरतसे जादे ढोरोंके लिये ही नहीं वरन् मनुष्योंकी अति वृद्धिके विषयमें भी कही है। अगर अधिक मात्रामें खाद्य पैदा होगा तो अबाध प्रजोत्पादनके कारण अधिक ही मरभूखे पैदा हो जायेंगे। इसलिये जबतक भारतवासी कृत्रिम संतति-निग्रहके दैनिक और सार्वत्रिक प्रयोग सीख नहीं लेते तबतक हाथ पर हाथ रख चुप बैठे रहिये।

मनुष्य और पशुधनके कष्ट निवारणकी खातिर अर्थशास्त्रियोंकी रचनाओं और शाही कमीशनकी तजवीज़ोंसे कोई राह निकालना व्यर्थ ही है। उनके प्यारे किन्तु भूलसे भरे सिद्धान्तने उन्हें सिर्फ निन्दक ही बनाया है, मार्गदर्शक नहीं।

## निरामिष और आमिष आहार

आधुनिक अर्थशास्त्री और शास्त्रियोंके प्रतिरूप डा० मुकर्जीने अपनी इसी पुस्तकमें "मानव-भूमि-पशुत्रिकोण युद्ध" पर एक अध्याय लिखा है। लेखक पृथ्वीपर मनुष्य और ढोरोंके बीच अपने अपने निर्वाहके लिये होता एक युद्ध पाते हैं। पृथ्वीका विस्तार सीमित ही है और उतनी ही दूरीमें मनुष्य और पशु दोनोंही अपने अपने जीवनके लिये गुथे हुए हैं। लेखकके मतसे निरामिष आहारका उद्भव इसी बखेड़ेसे है। आहार विशेषज्ञोंने साबित किया है, उतनी ही जमीनसे प्राप्त आमिष भोजनसे वनस्पतियोंमें पोषकताप ( Calori ) अधिक है।

## आँकड़ा—१

### समान मात्रामें आमिष और निरामिष आहारसे पोषकतापकी प्राप्तिमें जमीनका अनुपात

#### एकड़का परिमाण

| | फसल | गोचर | कुल |
|---|---|---|---|
| आलू | ०.७६ | — | ०.७६ |
| मक्का | ०.७९ | — | ०.७९ |
| गेहूँका आटा | १.४५ | — | १.४५ |
| दूध | २.३५ | १.६० | ३.९५ |
| सूअरका मांस और चर्बी | ३.७० | ०.७० | ४.४० |
| गोमांस | ११.३० | २.५० | १३.८० |

—( पृ० १२४ )

इस आँकड़ेसे लेखक डा० मुकर्जीने निष्कर्ष निकाला है कि आमिषकी अपेक्षा वनस्पतियोंसे पोषकताप लेना सस्ता है। वह साबित करते हैं :

"पूर्वी देशोंके लोग आमिष आहार नहीं चाहते और उसे ग्रहण करनेमें असमर्थ भी हैं, उसका कारण सिर्फ धर्म ही नहीं, यह भी है। निरामिष आहारका कारण जनवृद्धिका बोझ है।"—( पृ० १२५ )

## सदियोंसे भारतकी जनसंख्या

लेखकने एक आँकड़ेमें दिखाया है कि सन् १६०० ई० में भारतकी आबादी १० करोड़ थी ; १७५० में १३ करोड़ ; १८५० में १५ करोड़ ; फिर १८५० से १९३५ तककी एक सदीसे भी कम समयमें यह आबादी २॥ गुना बढ़कर ३७ करोड़ ७० लाख हो गयी।

# आँकड़ा—२

## विभिन्न शताब्दियोंमें भारतकी जनसंख्या

| वर्ष | | जनसंख्या | |
|---|---|---|---|
| १६०० (मोरलैंड) | ... | १० करोड़ | |
| १७५० (शिरास) | ... | १३ ,, | |
| १८५० | ... | १५ ,, | |
| १८७२ | ... | २० ,, | ६० लाख |
| १८८१ | ... | २५ ,, | ४० ,, |
| १८९१ | ... | २८ ,, | ७० ,, |
| १९०१ | ... | २९ ,, | ४० ,, |
| १९११ | ... | ३१ ,, | ५० ,, |
| १९२१ | ... | ३१ ,, | ९० ,, |
| १९३१ | ... | ३५ ,, | ३० ,, |
| १९३५ (अंदाजसे) | ... | ३७ ,, | ७० ,,—(पृ० ३) |

## निरामिष आहारका सिद्धान्त और भूतकाल

अगर भारतभूमिमें १६०० ई० में १० करोड़ मनुष्य थे और १९३५ में ३७ करोड़ ७० लाख, तो इन शताब्दियोंमें जनवृद्धि ३·७३ गुनी हुई और ३·७३ गुना भार भी बढ़ा। अगर जनवृद्धिके सबब आजकल भारतमें लोग निरामिष भोजी हैं तो ४०० वर्ष पहले तो निरामिष भोजी नहीं होंगे। पर क्या उस समय लोग कम निरामिष भोजी थे? अशोकके समयके खृष्ट पूर्व ईसवी सन्में जनसंख्या क्या होगी? अगर १६०० ई० में जनसंख्या १० करोड़ थी, तो १६०० वर्ष पहले या खृष्ट पूर्व ३०० से ६०० सन्में वह १ करोड़से अधिक नहीं हो सकती। डा० राधाकमलके सिद्धान्तानुसार तो बुद्ध या अशोकके बादके भारतीय महामाँस खूबही भकोसते होंगे। भारतकी आहार योजना ऐसे ही तथ्योंके बल बनी है। पर इस सस्ती निरामिषतासे जो मुद्दा पेश किया जा रहा है, वह है भूमि और भोजनके लिये आदमी और ढोरोंकी होड़ का प्रारम्भ।

## द्वन्द और विरोधाभास

"यह कहनेकी जरूरत नहीं कि युक्तप्रान्त, बिहार, उड़ीसा और बंगालके ढोर अपनी जरूरतका कमसे कम आहार भी बिलकुल नहीं पाते। जमीनके छोटे टुकड़ेसे भोजन और चारा दोनोंही उगाना होता है और उसीके लिये दोनोंमें द्वन्द रहती है। इसका नतीजा यह हुआ है कि चारेकी कमी पड़ती गयी। इससे ढोरोंकी नसल और योग्यता बिगड़ी है।" —(पृ० १३०)

एक ही छोटे जमीनके टुकड़ेसे अपने अपने गुजारेकी खातिर मनुष्य और पशुका द्वन्द बताकर विरोधाभास दिखाता है कि भूमिपर मनुष्यका जितना ही भार बढ़ता है उतनी ही पशुओंकी गिनती भी बढ़ती है। लेखकने सिर्फ विरोधाभास ही दिखाकर बस किया है, उसका हल कुछ नहीं निकाला।

"कोई ऐसी उम्मीद कर सकता है कि जनसंख्या बढ़नेसे और घनी होनेसे गोवंश छीजेगा। लेकिन भारतका यह एक ज्वलन्त आर्थिक विरोधाभास है कि जिस प्रान्तमें प्रति मनुष्य कमसेकम खेतीकी जमीन है वहाँ ढोर सबसे जादे हैं। असलमें खेतीके लायक जमीनके प्रति टुकड़ेपर गोवंशकी सघनता प्रत्यक्ष रूपसे आदमीकी आबादीकी सघनताके अनुसार होती है। एक आदमीके

लिये जितनी आबाद जमीन है उसके बिपरीत अनुपातसे गोसंख्या अधिक होती है।" (—पृ० १३०)

भूमि, मनुष्य और पशुके त्रिकोण द्वन्दका अनुमान यदि सही है तो इसमें विरोधाभास मौजूद है। लेकिन मनुष्य, भूमि और पशुका द्वन्द ही सही नहीं है। इसलिये कोई विरोधाभास भी नहीं है।

## द्वन्दके बदले अन्योन्याश्रयत्व

अगर खूब गौरसे देखा जाय तो जिसे विरोधाभास कहा गया है वह कोई विरोधाभास नहीं है। भूमि और पौधे, पशु और मनुष्य सभी अन्योन्याश्रित हैं। पृथ्वी माता हैं और बाकी सब उसकी सन्तान। हमारी पृथ्वी माता सबकी धाय है। अपनी उत्पत्तिके लिये उसे झगड़ा नहीं है। वह पैदा करती, पालती, बढ़ाती, छिजाती, समाप्त करती और उस शरीरको अपनेमें मिला लेती है। यह चक्र बराबर चल रहा है। इस चक्रका भेद जाननेवाले मनुष्य उसकी और उसकी उत्पत्तिके सुरमें सुर मिला प्रकृतके सुरीलेपनका मजा लूटते हैं।

बहुत दिनोंके हेलमेलसे मनुष्य और गाय कमसे कम भारतवर्षमें संग्रथित प्राणी हो गये हैं। एक दूसरेके बिना रह नहीं सकते। इसमें कोई अचम्भा नहीं कि अधिक मनुष्यके लिये अधिक मवेशीकी जरूरत होगी। यदि किसी प्रांतमें दूसरे प्रांतके औसतसे अधिक मवेशी हैं तो इसका कारण है, इन घनी आवादीवाले भागके आदमियोंका ढोरोंपर अधिक अवलम्ब। अगर किसी स्थानमें आदमी अधिक हैं तो विशेष अवसरोंपर अपने निर्वाहके लिये उन्हें ढोरोंपर अपेक्षाकृत अधिक भरोसा करना पड़ता है। इस सामञ्जस्यका पता जब चलेगा तब अगर कहीं कुव्यवस्था है तो उसका उपाय भी मिल जायगा।

अस्तित्वके लिये युद्धका (Struggle for existence) अनुमान असिद्ध हो चुका है। यह त्रिकोण युद्धका अनुमान इसीसे निकलता है। सारी बातें इसी कारण उल्टी मालूम होती हैं और कुव्यवस्था सुधारनेके लिये भ्रामक सिद्धान्त स्थिर किये जाते हैं। "चालीस करोड़की आहार योजना"में डा० मुकर्जीकी सारी योजना उत्पादन और व्यवस्थाकी नहीं, विनाशकी है। क्योंकि मनुष्य, भूमि और पशुका द्वन्द उनका मूल सिद्धान्त है।

डा० मुकर्जीके अनुसार भारतमें मनुष्य और पशुकी आवादी उचितसे अधिक है। पौधोंका [illegible] अनुचित रूपमें अधिक हैं या नहीं इस बड़े प्रश्नका उत्तर [illegible] पशुओंकी दिखावटी अधिक वृद्धिसे दोनोंके आहारकी कमी हो गयी है। डा० मुकर्जीने अपनी पुस्तकमें दोनोंके लिये आहार प्राप्तिकी योजना गढ़ी है। भूमि मनुष्य और पशुकी लड़ाईके उनके सिद्धान्तने उन्हें इस द्वन्दकी शान्तिके लिये "लोप पद्धति" खोज दी है। पशुओंको निठुरताके साथ खा खा कर उनकी गिनती घटाते जाओ, यह उनका नुस्खा ढोरोंके बारेमें है। उनकी रायमें गोवधके विरुद्ध धार्मिक अन्ध विश्वास सबसे बड़ा अन्याय है। उनकी राय है कि यह विश्वास मिटही जाय, नहीं तो सभी उन्नति अटक जाती है। पशुओंकी अतिवृद्धिकी समस्याका समाधान करके डा० मुकर्जी इसी तरह जनवृद्धिके बारेमेंभी विचार करते हैं। जनवृद्धि बहुत जादे है। इससे फालतू लोग कहीं दूसरी जगह जा बसें। पर यह सुकर नहीं है। इसलिये कृत्रिम उपायसे प्रजोत्पादनका नियमन बड़े पैमानेपर होना चाहिये।

## " संतति निग्रहके देशव्यापी प्रचारकी आवश्यकता "

" रासायनिक खाद, अच्छे औजार और माल बेचनेकी नयी रीतिका प्रचार या रैयती कानूनोंका सुधारभी भारतमें बेकार हो जाता है। इसके सबब हैं खेतोंका टुकड़े टुकड़े होना और गाँवके सस्ते तथा अयोग्य मजूर, और यह सब जनवृद्धिके परोक्ष फल हैं। दूसरे, आजकी परिस्थितिमें जो सवाल है, जैसे कि रहन सहनका बहुत नीचा मान, फसलकी उपजके ( जिसे अधिक होना चाहिये ) औसतसे बहुत ऊँची मजूरी, इनका हल सिर्फ पैदावार बढ़ाने से ही नहीं होगा। जबतक जनवृद्धिपर रोक नहीं लगेगी, कोई और उपाय क्षणिकही रहेंगे। .........क्योंकि जमीन जितनेका भरण पोषण कर सकती है उतनी तक जन संख्या जल्द ही बढ़ जायगी। निरक्षरताके विरुद्ध किया गया आक्रमण भी व्यर्थ हो जायगा क्योंकि शिक्षादानकी सामर्थसे अधिक जनसंख्या हो जायगी।"—(पृ० २१६)

अर्थशास्त्रीका आदर्श दुनियाँकी सारी नियामतोंका भोग करनेवाला छोटा परिवार है। परिवारको सीमित रखना होगा। परिवारके आकारकी सीमा निर्धारित नहीं हुई है। पर इसका अनुमान किया जा सकता है। इस सीमामें पति पत्नी हैं, और दूसरा कोई बोझ नहीं।

[redacted] जवाबदेही से बचा रहे। इससे आदमी अपने केवल इसी सीमित भोगसे ही संतुष्ट रहेगा, यह संभव नहीं। रेल और हवाई जहाजकी और अधिक सुविधा, सबके लिये सिनेमा, यह सब एकके बाद एक आगे आवेंगे, और फिर परिवार और ढोरोंको और भी कम करना आवश्यक होगा। खेतीके लिये मवेशी मसीनोंके आगे गौण हो जायेंगे और गाड़ी, हल आदि खीचनेके लिये इन्हें नहीं रखनेकी माँग होगी।

## बढ़ती प्रतिफलका नियम

भारतके अन्ध विश्वासी, अविचारी, अपढ़ और थोड़ी जमीनवाले किसानोंमें "घटता प्रतिफल"का मालथुजी नियय चल रहा है। पर यदि संतति निग्रहके उपाय सफल हुए तो यह उपाय उल्टा काम करेगा। तब बढ़ते प्रतिफलका नियम चालू होगा। पर लोग यह भूलजाते हैं कि निजी जमीन जितनी बढ़ायी जायगी, उतनी माँग और बढ़ी, और जादे जमीनके लिये होगी।

## केनेडाका उदाहरण

"केनेडामें हर हजार एकड़ खेतपर काम करनेवालोंकी गिनती १९११ में २६थी। वह १९२६ में घटकर १६ ही रह गयी। इस आँकड़ेके प्रकाशित होनेके बाद तो काम करनेवालोंकी गिनती और भी कमी है। मजूरोंकी कमी और मँहगीके कारण यह हालत हुई है। इसके कारण श्रम घटानेके उपाय ढूढ़नेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हुई।"—(होवार्ड लिखित "एग्रीकलचरल टेस्टामेंट"—पृ० १७)

डा० मुकर्जी मजूरोंके सस्तेपन और बाहुल्यसे दुखी हैं पर उनकी गिनती घटानेसे केनेडामें जो हुआ वही होगा। प्रति वर्ग मील पर कुछ थोड़ेसे आदमी गुलामोंकी जगह मशीनके सहारे पृथ्वीकी नियामतोंका आनन्द उपभोग तबतक करेंगे जबतक शायद कोई जातिगत युद्ध या आधिपत्यके लिये आजकलका उन्नत युद्ध और अधिक भोगका लोभ, लोभी आदमीको दुनियाँसे मिटा न दे या अर्थशास्त्र, आचारिक (Hygiene), समाज और नीति शास्त्रके अशुद्ध उपयोग से कोई महामारी ही इन्हें मिटा दे।

## त्रिकोण बनाम चतुष्कोण सिद्धान्त

अगर त्रिकोण द्वन्द्वके सिद्धान्तको मानकर उसका निराकरण तज्जन्य उपायोंसे किया गया तो यह सभी संभव है। स्वाभाविक व्यवस्थामें पौधोंका जो स्थान है उसे मनुष्य-भूमि-पशुके द्वन्द सिद्धान्तने यों ही छोड़ दिया है। जहाँ सामञ्जस्य था इस छूटके कारण द्वन्दसा मालूम होता है और विनाशका पथ बतलाता है। पर यदि पौधोंको प्रकृतिके नियमके अनुसार उचित स्थान दिया जाय तो सभी बातें शान्तिप्रद मालूम हों। एकही जमीनके आसरे बहुत जादे मनुष्य और ढोर हैं। पर क्या पौधे भी बहुत जादे हैं? जितनी चाहिये क्या पूरंपूर उतनी फसल हमें जमीनसे मिल रही है? उत्तर निश्चयही नकारात्मक है। क्योंकि डा० मुकर्जी खुदभी बताते हैं कि भारत के मुकावले चीनमें दूनी उपज है और जापानमें तिगुनी। अगर अच्छी खेती की जाय तो चीन जापानकी तरह हमारे देशकी भूमिभी अधिक उपजा सकती है। अगर यह किया जाय तो द्वन्द मिट जायगा। भूमि, पौधे, पशु और मनुष्य चतुष्कोणकी चार भुजायें हैं और ये सभी फूलते फलते रहेंगे। पर हर चीजकी एक सीमा होती है। अन्तमें जमीनभी और अधिक फसल नहीं दे सकेगी। जैसा आज भी है, एक दिन वह समय आवेगा जब मनुष्य निम्न पाशविक भोगके लिये नहीं वरन् आनेवाली पीढ़ीकी भलाईके लिये त्याग और उदार भावनासे संतति निग्रह करेंगे। आत्मनिग्रही मनुष्यही प्रजोत्पत्तिका भी ठीक नियमन करेगा। पर ये बातें शक्ति से पैदा होंगी। उदात्तभाव मनुष्यकी नैतिकता पुष्ट करेंगे और उसे ऊँचेसे ऊँचे जीवनके लायक बनावेंगे।

## सृष्टिमें सामञ्जस्य और एकता

पुराने ऋषियोंने भूमि, मनुष्य, पशु और पौधेकी एकताही देखी और अपना भगवद्गीतादि पवित्र ग्रन्थोंमें भी यही दिखाया है। मनुष्योंको सेवाभावसे इसी एकत्वकी अपनी सामाजिक परिकल्पनाका आधार बनानेका निर्देश किया है। इसीको त्याग या यज्ञ भी कहते हैं।

भारतकी सभ्यताने इस यज्ञ धर्मका ही उपदेश अपनी सन्तानको किया है। और इसीसे भारत पनपा तथा राष्ट्रोंका सितारा बना। इस सभ्यताका आधार जीवोंकी एकताकी धारणा हैं। भूमि, पौधे, मनुष्य और पशु सबमें जीवनकी धारा

एक ही है। भगवद्गीताने जो सिद्धान्त ठहराया है या जो ईश्वर या प्रकृतिका नियम है उसे समझ लेनेपर सिर्फ सामञ्जस्य स्थापित करने का सवाल रह जाता है। ऐसे सत्य सिद्धान्त किसी विशेष जाति या देशकी मीरास नहीं होते। यह तो सर्वमान्य सत्य होते हैं जो सभी राष्ट्र, सभी देश और सर्वकालके लिये हैं। जब यह सिद्धान्त समझमें आजाता है और जीवन उसीके अनुरूप बन जाता है तब द्वन्द मिट जाते हैं और प्राणिओं व समाजमें मेल मिलापका उदय होता है। मैंने भूमि, पौधे, पशु और मनुष्यकी चतुष्कोण प्रीतिका वर्णन किया है। पर यह सकोन तो है नहीं। आप इसमें चाहे जितनी भुजायें जोड़ सकते हैं। जबतक कोण लुप्त होकर ऐसा समन्वयी वृत्त न बन जाय जिसकी व्यापक सार्वभौमिक परिधिमें सब समा जाय, तबतक यह पंच कोण, षट् कोण, सप्त कोण और अष्ट कोण भी हो सकता है।

## यूरपका उदाहरण

आजकल दूसरे देशोंमें जीवनके एकत्व और समन्वयके नियमकी कैसी अनुभूति हो रही है और उसका प्रयोग कैसा चल रहा है इस बारेमें यूरपका एक उदाहरण देखने लायक है। समस्याको समझना होगा। इसे समझनेके लिये जर्मनीके एक पशु क्षेत्रका उदाहरण सहायक होगा। डा० मुकर्जीने उसे एकही तरफसे समझा है, उसपर अपना हल अजमाया है। उनका नाम मैं एक लेखक विशेषके तौरपर नहीं लेता बल्कि आजकलके वैज्ञानिक अर्थशास्त्रियोंका प्रतिनिधि मानकर। क्योंकि आपका स्थान उनलोगोंमें विशिष्ट और महत्वका है। इस विचारके वैज्ञानिक और अर्थशास्त्रियोंसे मेरा मत एकदम दूसरा है। यह मौलिक मतभेद है। इसलिये अपने मतसे भिन्न मत और उसके कारणोंको बाचकोंके आगे उनके निर्णयके लिये लाना जरूरी है। शास्त्री योजनाके कार्यमें गान्धीजीके मत और इस विषयमें उन्हींकी तरहके दूसरे विचारकोंके होते भी मुकर्जी मत के भारतीय अर्थशास्त्री और वैज्ञानिकोंका बोलबाला अबतक रहा है। डा० मुकर्जीने ढोरोंकी और उसके साथ मनुष्योंकी भी समस्यापर एक तरहसे विचार किया है। मैं उसपर दूसरी तरह विचार करूँगा। अब बाचक दोनों पहलूको जाने और भविष्यकी योजनामें अपने क्षेत्रमें गायका अच्छेसे अच्छा उपयोग करे। डा० मुकर्जीने कोई व्यवहारिक उपाय नहीं बताया है। क्योंकि दूसरे अर्थशास्त्रियों और वैज्ञानिकोंकी तरह उनकी भी राय है कि भारतके

जनसाधारणको गोवध और कृतिम संतति निरोधके लिये राजी करना संभव नहीं है। इसके बिना निकट भविष्यमें किसी गंभीर और व्यवहार्य परिवर्त्तनकी कोई उम्मीद नहीं है। भविष्य योजनामें ढोर अभी जहां है वस्तुतः वहीं रहेंगे। शाही कमीशनके निर्णयका यही निचोड़ है। इस अध्यायमें जो कहा जायगा वह ढोर संबंधी और उसके साथ मानव संबंधी अर्थशास्त्रके लिहाजसे अपनी सही हालतका अन्दाज होगा।

## जर्मनीमें डा० बार्स (Bartschs) के कामका हाल

डा० जी० टी० रेंचने (Dr. G. T. Wrench, M.D., London) अच्छी स्वास्थ्यप्रद जमीनमें उपजे स्वास्थ्यप्रद आहार देकर मनुष्यके स्वास्थ्य सुधारनेका काम अपने हाथमें लिया। जमीन, भोजन और उसे खानेवाले मनुष्यका स्वास्थ्य उनकी दृष्टिमें एकहीमें जुड़े हैं। इस काममें वह प्रसिद्ध हो गये हैं। "वह इसी कामसे प्रचारक डाक्टरकी हैसियतसे भारत" आये। १९४० के दिसम्बरकी "इंडियन फार्मिंग"में उनका एक लेख इस विषयका छपा; और १९४१ की मईकी संख्यामें डा० रेमरके (Dr. N. Remer) लेखका संक्षिप्त अनुवाद। डा० रेंचके दोनों लेख जानकारीकी बातोंसे भरे हैं। दूसरे लेखमें डा० अरहर्ट बार्सके चमत्कारी कामका वर्णन है। डा० बार्सने एक ऊसर जमीनको स्वास्थ्यप्रद क्षेत्र बना दिया। इस कामके साधनमें ढोर आधार रूप थे। उस लेखका सिरनामा है "क्षेत्रके मुख्य अंगके रूपमें पशुपालन"।

## मैरियन-होहेका वर्णन

डा० बार्सने यह प्रयोग जर्मनीके मैरियन-होहेमें किया था। यह स्थान बाल्टिक समुद्रसे सौ मील दक्खिन एक बड़ी झीलके किनारे है। जमीन बलुही थी और खेतीके लायक नहीं थी। यहां बहुत तेज आन्धी चलती है जिसकी वजह मिट्टीमें की सड़ी वनस्पति खाद "ह्यूमस" (Humus) सूखकर उड़ जाती। वर्षा थोड़ी ही, १३ से १४ इंच होती है। हवाका झोंका इतना तेज होता था कि उड़ी हुई बालूसे पौधे ढक जाते और छोटे अंकुर उखड़कर उड़ जाते। उद्योगी लोग इस जमीनको लेते पर इस जमीनसे कुछ उपजा नहीं पाते। इस तरह उन्हें सिर्फ

बाटा ही होता था और मैरियन-हीहे एकके हाथसे दूसरेके हाथ आती गयी। १९१८ में डा० बार्सने यह क्षेत्र लिया, इसमें १५० एकड़ जमीन खेतीके लायक थी और उसकी चौथाई घासके लायक। इसमें एक बनभी था। पहलेके मालिक खाद और दूसरे जरूरी सामान बाहरसे लाते थे। नये मालिकने एकदम नये और पहलेसे भिन्न तरीकेसे प्रयोग करना तय किया। डा० बार्सने ढोरोंको ही क्षेत्रका मुख्य अंग बनाना तय किया। उनके पास अनेक रोगोंकी छूतवाले कमजोर रोगीसे १३ पशु थे। उनमें कईको तपेदिक और छूतवाली गर्भपातकी बीमारी थी। नये ढोर खरीदने और पुराने को बेचनेके बदले उचित क्रिया द्वारा जमीनके स्वास्थ्य-प्रद तत्वोंपर भरोसाकर उन्होंने पुरानों को ही रक्खा, जो उस समय ५० सैकड़े निकम्मे थे।

१३ पशुओंमें यद्यपि ७० प्रतिशत रोगी थे फिर भी प्रयोगकर्ताने उन्हें यह देखनेको रखा कि इन गायों, मिट्टी और पौधों पर नये उपचार करने का क्या नतीजा होता है। इस तरह प्रारम्भ में सिर्फ बेकार गायें थीं और यह निश्चय था कि बाहरसे कुछ न लाया जाय और इसे स्वावलम्बी स्थान ही बनाया जाय।

## पहला कदम—चारा उपजाना

पहला काम गायोंको खिलाने और चारा उपजानेके सिवा और कुछ नहीं था। गायोंका गोबर होगा जिसका "कंपोस्ट" (Compost) बनाकर जमीनकी उपज बढ़ायी जाय जिससे और अधिक चारा पैदा हो। प्रारम्भका मुद्दा यही था। अन्न पुआलके लिये बोये जाते थे जिसके साथ फलियाँ और हरा चाराभी बोया जाता था। पासही में एक बेकार जमीन थी जहाँ छोटे बछरू चरते थे। चारेके लिये कन्द मूलोंके चुनाव पर पूरा विचार होता था। आलू, मिट्टीकी सड़ी वनस्पति चटकर जानेमें नामी है। उस जमीनमें इस वस्तुकी कमी थी, इससे शुरू में आलू नहीं लगाया जाता था।

फलियाँ पशुओंका स्वास्थ्य बनानेमें आदर्श चारा हैं। खाद बराबर देनेसे बढ़िया चारा होता था। उसके बाद अनाजकी फसलभी अच्छी होने लगी। यद्यपि कभी कभी सूखा पड़ने से फसलकी वृद्धि रुक जाती थी। इसलिये हवाकी तेजी मिटानेके लिये झाड़ियाँ और पेड़ लगाये गये।

धीरे धीरे मटर, मसूर, क्लोभर और लूसर्न जो वहाँ पहले कभी नहीं उपजते थे उस जमीनकी फसल हो गये। डा० बार्सके अनुसार यह सब उनके शब्दोंमें

जीवगति सिद्धान्त (Bio-dynamic) की शक्ति से सम्पन्न हुआ। जीवगतिक खाद "कंपोस्ट" के साथ औक्सिनका (auxine) गहरा प्रयोग होता था।

## जीवगतिक प्रयोग की रीति

जीवगतिकका अभिप्राय है जीवित शक्तियोंका उपयोग, जैसे पौधे, पशु, पक्षी, और कीड़ोंकी जिस संतुलित व्यवस्थाके कारण प्राकृतिक जंगल हमेशा उगते रहते हैं। यहाँ प्रकृतिकी नकल की जाती है और किसी चीजकी अवहेलना नहीं होती। जीवगतिक प्रयोगमें होशियारीके साथ कंपोस्ट करना और साथ साथ सड़ी वनस्पति जिसमें "औक्सिन" या "हरमोन" (Hormones) का होना माना जाता है, खास तौरपर डालना भी शामिल है। किसी आशु (जल्दी होनेवाली) फसलमें कभी कभी वनस्पति हरमोनका घोल छिड़क दिया जाता था।

लूसर्न उपजाकर गोचर तैयार किये गये। गायोंकी तन्दुरस्तीके लिये गोचर जरूरी थे। १९२८ में कुछ अति रोगग्रस्त पशु नष्ट कर दिये गये। बाकीपर क्षेत्रके पौधे और पशुओंके जीवगतिक प्रयोग अर्थात् स्वास्थ्य और कायाकल्पकी नैसर्गिक शक्तियोंके मेलका अच्छा असर दिखायी दिया। गायोंको उसी जमीनमें उपजे तरह तरहके चारे खिलाये जाते थे। जल्दी ही उल्लेखनीय सफलता मिलने लगी और क्षीण गायेंभी पनपने और ब्याने लगीं। दूधकी पैदावार इतनी बढ़ी कि अचम्भा होता था और थोड़े दिनके बाद तो क्षेत्रकी सारी रंगत ही बदल गयी।

चारेकी किस्म सूखेसे बदलकर महीन और मुलायम हो गयी। यह नतीजा गोबरके प्रयोगसे नहीं, वरन् तैयार की हुई कंपोस्ट खाद की बदौलत हुआ। यह कंपोस्ट मिट्टीकी पुरानी ताकतको जगाने और उसके जरिये पौधे तथा पशुमें जान फूँकनेके लिये अच्छी चीज थी।

वह जगह सिर्फ गो और गोपालका ही सच्चा घर नहीं बनी, पौधे, पखेरू, कीड़े सबका निवास बनी और इनमेंसे सब जीवनको निखारनेका उद्देश्य पूरा करनेमें लगे। गायोंको खिलाये जानेवाले कुछ पुष्टिकर पदार्थ भी वहाँ उपजाये गये। इसके सिवा ४० से ८० तक सूअर भी वहाँ थे। उन्हें भी उसी जमीन की पैदावार खिलायी जाती।

"एक तंत्रमें ठीक तरहसे किये कामसे बहुत तरहके प्रतिदान कैसे मिलते हैं यह आश्चर्यका कारण है। नैसर्गिक गतिओंपर ध्यान रख और भिन्न भिन्न प्राकृतिक

उदना-चक्रोंके सजीव मेलसे यदि क्षेत्र तैयार किया जाय तो एक शक्तिशाली एकत्व पैदा होगा।" —(दिसम्बर १९४० के "इंडियन फार्मिंग" में डा० रैच)

इस ज्ञानका प्रयोग, गायोंकी व्यवस्था और खिलानेमें कियागया। नई ओसरें (Heifers) अपनी मांसे ज्यादे दूध देने लगीं। उन्हें ज्यादे और प्रोटीनवाले चारे खिलानेसे यह नतीजा नहीं निकला था। चारेकी तरह तरह की अच्छाई इसका कारण थी।

अब वहाँ स्वास्थ्य फूट पड़ा था और उसीके साथ दूधकी धार भी। इस दूधको आसपास भेजा जाता था। बछरुओंकी तारीफ दर्शक और राहचलते भी करते थे।

## "पशु, पौधे और भूमिका मेल"

"यह बात हमारे आगे जादूके खेलकी तरह है। इस बलुही जमीनसे ढोरोंके स्वास्थ्यका सोता फूट पड़ा। कभीकी बीमार गायें फिर सुस्थ हो गयीं"

इस बलुही जमीनमें गुण छिपे पड़े थे। जो शास्त्रीय खेतिहर जीवोंकी एकताका विश्वासी है, जो प्रकृतिका अनुकरण करता है और जो स्वास्थ्यपूर्ण अबाध वृद्धिके लिये प्रकृतिको अपने ढंगसे काम करने देता है; उसके चमत्कारी प्रयोगसे जमीनके गुण सजग हो गये।

"जीवन शक्तिपर आस्थावाला पुरुष पौधा उपजानेमें लग गया और पौधोंनेभी गठनात्मक नई और स्थायी शक्ति ग्रहणकी।"

"शास्त्रीय सिद्धान्त है कि बलुही मिट्टीमें अम्ल और कैलसियम फौसफेटकी कमी रहती है जिसकी जरूरत पशु संवर्धनमें होती है। यह उन व्यवसायी क्षेत्रोंके लिये सही हो सकता है जहाँ पशु पौधे और मिट्टीके एकत्वका उपयोग नहीं किया जाता। इस कृषि क्षेत्रके आरम्भके सूखे चार वर्षोंमें घटिया पुआल होता था और उसके कारण घटिया गोबर होता था—यह बात खास तौर पर ध्यानमें रखनेकी चीज है। उसपर भी मैरियन-होहेकी जमीन और आबहवाकी दिक्कतके रहते सौभाग्यसे हमलोगोंने प्रकृतिके मोटे और महीन कामसे वह मेल साध लिया है। सबसे आश्चर्यकी बाततो यह है कि बाहरकी कोई मदद हमने नहीं ली और न मैदानमें खड़ियाँ छींटीं। फिरभी हमारे ढोर ऐसे मजबूत हड्डियोंवाले हुए। यह

देखकर चकित होना होता है कि उनके कंकड़ियोंमें पहलेसेही कामके आदर्श गुण लिये थे।"—( उसी लेखसे )

## पुष्टिके लिये विश्व-शक्तियोंका उपयोग

इस गुणको मैरियन-होहेमें बढ़ाया और काममें लाया गया। गुण पौधोंमें गया, उससे उन पशुओं और मनुष्योंमें जो उन पौधोंके कन्द, मूल, अन्न और गायके दूधभी खाते थे। मैरियन-होहेकी कहानी मिट्टी, पौधे, पशु और मनुष्यके पोषणके लिये विश्व-शक्तिके उपयोगका उदाहरण है।

मैरियन-होहेकी कहानी कितना उत्साह-वर्धक दृश्य दिखाती है! क्या किसी भारतीय डा० बार्स और उनको उभाड़नेवाले एडोल्फ स्टीनरके मातहत भारत भी मैरियन-होहेका चमत्कार नहीं दिखा सकता?

डा० रैंचने "इंडियन फार्मिंग" के अपने लेख "स्वास्थ्यके किसान और डाक्टर" में प्रसिद्ध किसान सर बरनर्ड ग्रीनवेलके किसी लेखसे उद्धरण दिया है: "उपजाऊ मिट्टीका अर्थ है सुस्थ फसल, सुस्थ पशु और अन्तमें सुस्थ मनुष्य।"

"स्वास्थ्य अखन्ड वस्तु है। मनुष्यका स्वास्थ्य, पशु-पौधेका स्वास्थ्य और मिट्टीका स्वास्थ्य अलग अलग नहीं है। और इस अखंडताकी प्राप्ति और संरक्षणके लिये जमीनपरकी हर एक जीवित वस्तुको उसकी मौतके बाद बेकार न समझ मिट्टीहीमें लौटा देना चाहिये। अगर सम्पूर्ण या सुस्थ जीवनकी रक्षा करनी है तो सभी मरे जानवर और वनस्पतिको फिर जमीनमें लौटाही देना चाहिये, जिससे वह फिर सजीव हो जायँ। जीवनका यह पहला नियम है। यही उसे पूर्णता, पूतता और सुस्थता देती है।"—( "इंन्डियन फार्मिंग", मई, १९४१ )

इन लेखोंको पढ़नेसे मन हरा होता है। क्योंकि उपनिषदोंकी शाश्वत ज्ञानवाटिकामें खिली हुई श्रद्धा जिसे पाश्चात्य प्रभावमें भारत भूलसा गया है वह पुनः प्राप्त करता है।

## भारतीय प्रयोग

इन्दौर कंपोस्टसे जिनकी प्रसिद्धि है उन सर अल्बर्ट हौवर्डका काम डा० बार्सकी तरहका है। उन्होंने रेगिस्तान जैसी जमीनको कुछही गायोंके सहारे उपजाऊ बाग नहीं बनाया है, पर उसी तरहका काम वह भी कर रहे थे। भूमि, पौधे और प्राणीमें एकत्व है और जमीनकी अपनी उपज अगर फिर जमीनमें नहीं

लौटा दी जाय तो वहभी सत्वहीन हो जाय। इस भावने उन्हें प्रेरणा दी। मिट्टीमें जिससे प्राण संचार होता है वह कमपोस्ट या सेन्द्रिय ( organic ) खाद है। यह सेन्द्रिय खाद, गोबर और गोमूत्रकी सहायतासे वनस्पति द्रव्यके संयोगसे वायुजीवी ( aerobic ) और निर्वायुजीवी ( anaerobic ) जीवाणु बनाते हैं।

हमारे देशके पूसा और इन्दौरमें किये गये सर अलबर्ट होवर्डके काम मैरियन-होहेके डा० बार्सके कामसे कम चमत्कारी नहीं हैं। दोनोंके मूलभूत विचार एकही हैं। होवर्डने अपनी पुस्तक "एन एग्रीकलचरल टेस्टामेंट" (१९४०) में अपने प्रयोग और पद्धति लिखी है। उनकी इन्दौर पद्धति भारतमें बहुत दिनोंकी है और वह बहुत जगह काममें भी लायी जाती है। उनकी पद्धतिका अधिकार रक्षित नही है। उन्होंने बड़े विस्तारसे "कंपोस्ट" की प्रयोगविधि बतायी है। कंपोस्टकी विधिके अलावे होवर्डने कैसे यह सब किया यहभी पढ़ना उन सबके लिये रोचक और प्रेरक है जो जमीनकी पैदावार बढ़ाना और आहार-गुण सुधारना चाहते हैं।

## पूसाके किसानोंसे सीखना

सर अलबर्ट होवर्ड सन् १९०५ में भारत सरकारके इकनौमिक बोटेनिस्ट होकर भारत आये और पूसाके कृषि गवेषण परिषदमें काम करने लगे। अपनी किताब "एन एग्रीकलचरल टेस्टामेंट" में उन्होंने सत्यकी अपनी खोजका यह वर्णन किया है:

"उस समय एक गवेषकको जिन कागजी योग्यताओं और अनुभवोंकी जरूरत होती थी उन्हें पाकर युनिवर्सिटी छोड़ने के ६ वर्ष बाद कृषिकी मेरी असली शिक्षा शुरू हुई।

"अपनी इस दूसरी और गहन शिक्षाके शुरूमें मैंने एक नये विचारको अजमाने का तय किया। यह विचार मुझे पहले पहल वेस्ट इंडीजमें आया कि देखना चाहिये कि कीड़े और छत्राक (Fungus) की बीमारियोंको बेरोक बढ़नेके लिये छोड़ दिया जाय तो क्या होगा? और देखा जाय कि जहाँ इनके आक्रमण रोकनेके लिये सुधरी खेती और अच्छी किस्मोंका लगाना इस तरहके अप्रत्यक्ष उपायोंको किया जाता है वहाँ क्या फल होता है? भारतीय खेतीके प्राथमिक अध्ययनसे यह विचार और उत्तेजित हुआ। पूसाके आसपास किसानोंकी फसलमें हर तरहके रोगोंका अभाव

उल्लेखनीय है। खेतीकी इस पुरानी पद्धतिमें कीटनाशक या रोगनाशक दवाओंका कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तय किया है कि कुछ और करनेसे अच्छा यह होगा कि इन किसानोंकी सारी क्रियायें देखूँ और जहाँतक जल्दी हो सके उनके परम्परीण ज्ञान सीख लूँ। कुछ दिनोंके लिये मैंने उन्हें अपना कृषि अध्यापक मान लिया। शिक्षकोंका दूसरा दल स्वयं फंगस और कीड़ोंका था। अगर किसानोंकी पद्धतिसे काम किया जाय तो फसल एक तरह नीरोग रहती है ; और ये कीड़े और फंगस उस इलाकेकी अनुपयुक्त किस्म और तरीके बता देते हैं।"

"परोपजीवी जीव हमारी फसलमें लग जाय इसकी पूर्ण सुविधा देने के लिये मैंने न तो कोई निवारक प्रयोग किया और न कीट और फंगस नाशकोंका ही प्रयोग किया। कोई बीमार पौधेभी नष्ट नहीं किये। ज्यों ज्यों मेरी भारतीय खेतीकी जानकारी बढ़नेलगी और मेरा अभ्यास प्रौढ़ होने लगा बीमारियाँ घटने लगीं। अपने नये अध्यापक किसान और कीड़ोंसे शिक्षा लेनेके ५ साल बाद उस जमीनके अनुकूल जड़वाली फसलोंपर कीड़े और फंगसका आक्रमण नगण्य हो गया। सन् १९१० तक मैं जान गया कि छत्राक-शास्त्री, कीट-शास्त्री, कीटाणू-शास्त्री और कृषि-रासायनिक, आंकड़ेबाज, जानकारीके कबाड़खानों, कृत्रिम खादों, फुहारेकी मशीनों, कीटघ्नों, फंगसघ्नों, रोगघ्नों तथा दूसरे आजकलके प्रयोगशालाओंके खर्चीले लावाजमातोंके बिना अच्छी फसल कैसे उगायी जाय।"

—(पृ० १६०-'६१)

होवर्डने इस तरह जाना कि पौधोंके रोगका कारण अनुपयुक्त प्रकार और अपूर्ण फसल बोना है। उसने कीड़ोंको प्रकृतिकी ओरसे गड़बड़ीकी सूचना देनेवाला माना। उन्होंने पता लगाया कि जमीनके रोगके कारणही फसलमें रोग, जीवाणु और कीड़े आदि लगते हैं ; और जीवनप्रद सुस्थ जमीनकी फसल पर इनका आक्रमण नहीं होता। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि, पौधोंकी बीमारी जमीनकी बीमारीका कारण है। उन्होंने बताया जमीन की बीमारी क्या है।

प्राणी और पौधोंके कचरे और उनकी मृतदेह जमीनकी चीज है। वह यदि जमीनको वापस नही दी जाती तो इससे उसका उर्वरापन नष्ट होता है। उसी उर्वरा-शक्तिके नष्ट होनेका नाम जमीनकी बीमारी है। मिट्टीहीसे पौधे और प्राणी बने हैं। मरे हुए पौधे सीधेही मिट्टीमें मिला दिये जायँ या पौधे और उनकी अन्य उपज खानेवाले ढोरों और मनुष्योंके मलमूत्रके रूपमें जमीनको लौटा दिये जायँ जिससे

धरतीकी तन्दुरुस्ती बनी रहे। इसके लिये पशुओंकी मृत देह भी जमीनको लौटा देना होगा। जमीनकी यह तन्दुरुस्ती ट्रैक्टरों और मशीनोंकी खेती से खराब होती है।

## ट्रैक्टर मवेशियोंकी तरह जमीनको गोबर और मूत्र नहीं देते

"घोड़े और बैलके बदले बिजलीके मोटर और तेलवाले इंजिनसे खेती करनेमें एक हानि तो जरूर है। इन मशीनोंको गोबर और मूत नहीं होता है इसलिये ये मिट्टीकी उर्वरता बनाये रखनेमें किसी कामके नही हैं।"—(उसी पुस्तकसे, पृ० १८)

ट्रैक्टर और उसके तरहके दूसरे औजार जमीनकी उर्वरता छीनते हैं। उसका रोग बढ़ाते हैं। फलस्वरूप पौधोंको बीमारी होती है।

## बनावटी खाद जमीनको व्याधिग्रस्त करती है

"बनावटी खादका व्यापक उपयोग होता है। पच्छिममें बनावटी खादही बर्ती जाती है। पिछली लड़ाईमें जो कारखाने बारूदके लिये हवासे नाइट्रोजन इकट्ठा करते थे उन्हें दूसरे बाजारकी तालाश करनी पड़ी। इससे नाइट्रोजनकी खादका खेतीमें उपयोग आजतक बढ़ा है। अधिकांश किसान और बागवान खादके लिये सस्ते से सस्ता बाजारू नाइट्रोजन (N) फौसफोरस (P) और पोटासियम (K) पर निर्भर हैं। यह मजेमें कहा जा सकता है कि कृषि-प्रयोग-क्षेत्रों और गाँवोंके दिमागमें यही तीन चीजें (NPK) रहती हैं। राष्ट्रीय दुर्दिनमें पूँजीपतियोंने अपनेको सुरक्षित किया, अब वह दम घोटनेवाले बन गये हैं। बनावटी खादमें गोबर की खादसे कम मिहनत और परीशानी है। ट्रैक्टर ताकत और तेजीमें घोड़ेसे बढ़ा चढ़ा है। बेकारीके लम्बे अर्सेमें उसके लिये चारा और खर्चीले सँभारकी जरूरत नहीं। इन दोनों उपकरणोंने कृषि-क्षेत्र चलाना आसान कर दिया है। हानि लाभका सन्तोषप्रद हिसाब मिल गया है। आजके लिये तो खेती फायदेकी कर ली गयी है। पर तस्वीरका दूसरा रुख भी है। यह रसायनिक पदार्थ और मशीनें धरतीको सन्तुष्ट नहीं रख सकते। इनके उपयोगसे वृद्धि और क्षयका संतुलन कभी नहीं हो सकेगा। ये सब सिर्फ इतना ही कर सकते हैं कि जमीनकी पूंजी ( उर्वरता ) को चलते खातेमें डालदें। यह बात तब और स्पष्ट हो जायगी जब बिना किसी पशुके खेती करनेकी आजकी कोशिशका अंत अवश्यम्भावी असफलतामें होगा।

"रोग बढ़ रहे हैं। बनावटी खादके प्रचार और हर उपजाऊ जमीनमें विद्यमान सड़े सेन्द्रिय पदार्थ 'ह्यूमस' के चुकने से साथ ही साथ फसलकी बीमारियाँ बढ़ी हैं। और उन फसलोंको खानेवाले पशुओंमें भी रोग बढ़ा है। यूरोपके मवेशियोंमें फैले 'मुंहपका' रोगकी तुलनामें पूर्वी देशके अच्छी तरह खिलाये मवेशियोंमें वह रोग नहीं के बराबर ठहरेगा। या यूरोपके ही कुछ भागोंकी तुलना की जाय तो यह निष्कर्ष निकलेगा ही कि मवेशियोंके रोग और गलत तरीकोंकी खेतीमें कुछ गहरा सरोकार जरूर है।

"खेतीके बारेमें ये निकम्मी धारणायें विफल हो रही हैं। धरती-माँका खादका अधिकार छीन लेनेसे वह विद्रोही हो गयी; जमीनने हड़ताल कर रखी है। खेतकी उपज कम हो रही है। जिस इलाकेसे ग्रेट ब्रिटेन जैसे देशकी प्रजाको खिलाया और वहाँकी मशीनोंको कच्चा माल दिया जाता है उसकी जाँच निस्सन्देह बताती है कि वहाँकी जमीन अब यह भार और नहीं सँभाल सकती। जमीनकी उपज खासकर संयुक्त राष्ट्र, कैनाडा, अफ्रिका, अस्ट्रेलिया और न्यूजीलैन्डमें बहुत तेजीसे घट रही है। ग्रेट ब्रिटेनमेंभी कुछ वहुत अच्छी जमीनोंको छोड़ असली खेती छोड़ ही दी गयी है। मिट्टीके बहनेके (erosion) बढ़ते उपद्रवसे सारी दुनियाँकी उर्वरताकी कमीका पता चलता है। परिस्थिति की गंभीरता इसीसे साबित होती है कि अखबार और विभिन्न सरकारें इस मामले पर गौर कर रही हैं। संयुक्त राष्ट्रकाही उदाहरण है कि वहाँ सारी सरकारी शक्ति इस भली धरतीमें जो बचा है उसे बचानेमें लगायी गयी है।"—(पृ० २०)

## भारत और शास्त्रीय खेती

यह अचम्भेकी बात है कि जहाँ हमारे देशके अर्थशास्त्री और शास्त्री पच्छिमकी नकल करनेके लिये मशीनों और रसायनिक खादका व्यवहार करनेके लिये, और खादके लिये नाइट्रोजनके कारखाने खोलनेके लिये अपने देशवालोंको डाँट रहे हैं, वहाँ पच्छिमके लोग इस मामलेमें दिवालिये साबित हुए; और इसके सुधारके लिये उनके बड़े दिमागवाले अब पूरबके देशोंकी अतीत कालसे होती खेतीकी क्रियाकी नकल कर रहे हैं। पूरबमें खादके लिये जो किया जाता है, सब सन्तोषप्रद ही हो यह बात नहीं, पर सही सुधार करनेका बीज इसमें है। यूरोपके पण्डितोंने वह राह पा ली है। अब समय आगया है कि भारत खेती और पशु-पालनकी अपनी मौलिक क्रियाओंमें श्रद्धाकरे और पच्छिमकी भूलोंसे सबक लेकर

अपना सुधार करे। यह काम भारतके करनेका है कि पुरानी पद्धतिसे वह धरती और पशुका स्वास्थ्य सुधारे। इसके लि कंपोस्टिंग और जीवगतिकके नये शास्त्रीय ज्ञानका सहारा ले। भारतकी भूमि, पौधे और पशुपालनका आधार ये चीजें पहले सेही थीं, यद्यपि इसका शास्त्र किसान जानते नहीं थे।

होवर्डने भूमि, पौधे और प्राणीमें एकही जीवन-चक्र चलते देखा। भूमि पौधे पैदा करती है। मनुष्य और पशु पौधे खाते हैं। पौधे और पशुकी खाद अपनी सहज संजीवनी शक्तिके साथ फिर मिट्टी में मिलती है। जमीनको नई स्फूर्ति मिलती है और उससे पौधेमें अधिक पत्ते और फल निकलते हैं। फिर लौटकर दूसरे चक्करमें यह और बढते हैं। इस तरह जीवन क्रम चलता है। अगर आदमी इसीके सुर में सुर मिलावेतो सफल हो। यदि वह यह नहीं करता और नकली खादोंके पीछे दौड़ता है तो ये उसे नहीं बचा सकतीं। यह जीवनचक्र समझना, सराहना और व्यवहार में लाना होगा। होवर्डकी राय है कि पूरबमें इस "सत्य" का ज्ञान बहुत व्यापक था और व्यवहारमें था पर पच्छिम अभीतक उसे सराह नहीं सका था। पूरबमें जमीनकी उपज बनी हुई है और फसल रोगरहित है।

"जीवन-चक्रकी सभी अवस्थाओंमें गहरा संबंध है। सभी प्रकृतिके कार्यकलापके अभिन्न अंग हैं। सबका महत्व बराबर है। कोई भी छोड़ा नहीं जा सकता। इसलिये हमें प्रकृतिकी कार्य-पद्धतिके हिसाबसे भूमिकी उर्वरताका अध्ययन करना होगा। इस विषयके अनुसार जाँचकी विधि रखनी होगी।"—(पृ०२२)

## पूरबकी पद्धतिकी जाँच समय कर चुका

"जीवन-चक्रमें ये सब जरूरी चीजें हैं। एक तरफ वृद्धि और दूसरी तरफ क्षय। प्रकृतिकी खेतीमें इन दोनों पूरक विधिओंमें संतुलन रहता है। प्रकृतिकी ठीक नकल पर की हुई पूरबके आदमीकी कृषि-पद्धति समयकी जाँचमें सही निकली है।"—(पृ० २५)

## यूरोपको एशियासे बहुत सीखना है

"पूरबमें खेती उल्लेखनीय ढंगसे जीवन-चक्रके अनुसार ही होती है। खेतीको जीवनचक्रका अंगभूत साधन होना चाहिये; पच्छिममें यह न कर इसके बदले कृषिको ही ध्येय बना दिया गया है। यूरोपको एशियासे बहुत कुछ सीखना है।"—(पृ० ३५)

## पच्छिमी सभ्यतामें बनावटी चीजें

"पच्छिमी खेतीमें पौधों और पशुके प्रायः सभी कचरे एक दम नष्ट कर दिये जाते हैं या उनका अपूर्ण उपयोग होता है। फसल की पैदावारमें जितने ह्यूमस खतम होते हैं और खादके रूपमें फिर जितने जमीनमें डाले जाते हैं, इनका अंतर बढ़ गया है। यह अंतर रसायनिक खादसे पूरा किया गया है। जमीनकी बनावटमें जो कमी हो उसे उपयुक्त रसायन डालकर पूरा करो,……यही सिद्धांत बर्ता गया है। पौधोंके पोषणकी पूरी भ्रांत धारणा इसका आधार है। यह ऊपरी उपचार मूलसे ही निस्सार है। यह जमीनके जीवनकी बात नहीं सोचता। बनावटी खाद तो बनावटी पोषण, बनावटी भोजन, बनावटी पशु और अन्तमें बनावटी नर और नारीकी ओर अवश्य प्रेरित करेगी।"—(पृ० ३७)

"भविष्यमें रसायनिक खाद उद्योग युगकी सबसे बड़ी असफलता मानी जायगी। इस युगके कृषीय वनस्पति शास्त्रियोंकी सीख अगंभीर साबित होगी और नामंजूर कर दी जायगी।"—(पृ०३८)

## हिन्दुस्थानमें खादका प्रकृतिका कारखाना

भारतमें हम सबको नकली खादके जरासेभी लोभका कोई कारण नहीं। हम जानते हैं कि पत्ते, डाँट और सभी नरम वनस्पति और पशु-पदार्थसे बनावटी खादके मुकाबले श्रेष्ठ खाद बन सकती है। भारतके बड़े भागमें, आबाद या पड़ती जमीनमें, घरके कोनेमें, राह और नालियोंके किनारे, झाड़ियोंके भीतर, पेड़ोंके झुरमुटमें, नदीके किनारे, बाँधोंपर, खेतोंकी आल (मेंड़) पर, हर जगह ही धूप और गहरी वर्षाके कारण घासपात उग आते हैं। पत्ते सूरजकी शक्ति जमा करते और प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट तैयार करते हैं। हर किसानकी हुकूमतमें वह जीते जागते खादके कारखाने हैं। फसल काटनेके बाद जो खूँटी रह जाती है वह भी प्रकृतिके खादके कारखानेमें कंमपोस्ट बनने लायक सामान है। किसानको इतनाही करना होगा कि इन चीजोंको इकट्ठा करे और कंपोस्ट बनानेके लिये गोबर और गोमूत उसमें मिलावे, जिससे प्रकृतिके खादके कारखानेका बना माल मिट्टीमें डालने पर ह्यूमस बन जाय। सूरज, वर्षा और हवासे चलनेवाले ऐसे मुफ्तके अगणित खादके कारखानोंके रहते भारत हवाकी नाइट्रोजन खींचनेवाली बेजान मशीनोंसे चलनेवाले बड़े बड़े कारखानोंके

पीछे क्यों पागल बने ? नकली खाद बनानेवाले कारखानों से जितनी उम्मीद हो उससे कहीं ज्यादे, अच्छी, सस्ती और जरूरतोंको पूरा करनेवाली सब खाद सूर्यके संरक्षणमें चलनेवाली जीवित मशीनें दे सकती हैं।

सभी पौधे वास्तवमें नाइट्रोजनकी खादसे संपन्न हैं। इंधनके रूपमें जब पौधे और झाड़ जलाये जाते हैं तो जो नाइट्रोजन जमीनके कायाकल्पके लिये पत्तों और छालमें जमा था वह फिर हवामें उड़ जाता है। इस बर्बादीको रोकना होगा। गोबर और मूत्रमें पौधेके सब कुछको कंमपोस्ट करके फिर जमीनमें डालना होगा।

मशीनके हल ट्रैक्टरों और नकली खादके सहारे जानवरोंके बिना की गयी खेती कुछही दिनोंतक मुनाफेकी हो सकती है। पर यदि समग्र दृष्टिसे विचार हो और यदि जमीनकी उपजकी हानि और उसे फिर पूरा करनेके खर्चका हिसाब किया जाय तो वह मुनाफा गायब हो जायगा। खेती राष्ट्र निर्माणका कार्य है। पर जब तुरतके लाभके लिये खेती की जाती है तब खेतिहर डाकूका काम करता है।

## खेतीके अर्थशास्त्रका दूषित उपयोग

"गलत आँकड़े तैयार करके अर्थशास्त्रने खेतीके हकमें बुरा किया है। खेतीको कारखानेकी तरह माना जाने लगा है। खेती व्यापारकी चीज मानी जाती है; और मुनाफे पर बहुत जोर दिया जाता है। पर कारखानेसे खेतीका प्रयोजन बिलकुल जुदा है। जातिको पुष्ट करने और जीवित रखनेके लिये यह आहारका उपाय करती है।"

"......नये किस्मकी फसल, सस्ती और अधिक उत्तेजक खाद, गहरी जोतनेवाली मशीनोंके जरिये जमीनसे, अधिक अंडे देकर अपनी मौत बुलानेवाली मुर्गियों से और दूधके समुद्रमें डूब जानेवाली गायोंसे बूंद बूंद दुहलेनेमें शास्त्रके प्रयोगमें विचार-हीनतासे भी कुछ अधिक ( गयी गुजरी वस्तु ) है। खेतीकी खोजसे किसान अच्छा आहार पैदा करनेवाला न होकर होशियार डाकू बन गया है। उसे सिखाया गया है कि अगली पीढ़ीकी हानि कर तुम कैसे मुनाफा करो।"

—(पृ० १९८-'९९)

जो भारतीय अर्थशास्त्री और शास्त्रीय सलाहकार रसायन और भौतिक शास्त्रके सिर्फ सिद्धान्त भागके हमारे प्राध्यापक खेतीके तरीके के बारेमें, बनावटी खाद बनानेके कारखाने खोलने और बनावटी खाद इस्तेमाल करनेकी देशको सलाह दे रहे हैं वह इस ब्रिटिश शास्त्रीकी चेतावनी पर ध्यान दें। यहां भारतमें बहुत

सिखा रहा है। और अब इंग्लैन्ड, अमेरिका और शास्त्रीय संसारको आधुनिक खेती, पौधे और पशुपालनका खतरा बता रहा है।

भारतमें हम भी मूक सन्तोष धारण कर बैठे नहीं रह सकते। अपने बेकार ढोरोंको कामका बनाने के लिये और अपनी जमीनको फिरसे उपजाऊ बनाने और कंकड़ियोंकोभी सजीव करनेके लिये हमें बहुत कुछ करना है। हम मनुष्यके मलमूत्रसे कोई काम नहीं ले रहे हैं। हम गोबर जला रहे हैं और गोमूत्रसे काम न ले उसे सचमुच योंही बहाकर बरबाद कर रहे हैं। हमें ये चीजें बचानी होंगी। जबतक किसानोंको दूसरा उपाय नहीं बताया जायगा वह गोबर जलातेही जायेंगे। पर आदमीकी विष्ठा और ढोरोंके पेशाबके लिये तो कोई बहाना नहीं हो सकता। इनकी बरबादी बहुत कम की जा सकती है।

## कंपोस्टिंगका महत्व

कंपोस्टका महत्व हम जान गये हैं। ढोरोंके मलमूत्रकी एक मात्रा, पौधोंके कचरेकी ५ से १० मात्रा तक को कंपोस्टमें परिणत कर सकती है। और यह कंपोस्ट खादके लिये गोबरसे अच्छा है। हम जान चुके हैं कि गोमूत्रभी उतने ही महत्वका है जितनेका गोबर। ५० वर्ष पहले डा० भोयेलकरने यह बात हमें बतायी थी। अब अमेरिकाकाभी इस ज्ञानका अनुभव उसकी पुष्टि करता और उसे अमलमें लाता है।

इकल्स (Eckles) अपनी "दुधार ढोर और गव्य" (Dairy Cattles & milk Production) में दिखाता है कि १,००० रत्तल वजनकी गाय सालमें ८,००० रत्तल पेशाब और १८,००० रत्तल गोबर करती है। ८,००० रत्तल पेशाब की खादका मूल्य १३·६० डालर और १८,००० रत्तल गोबरकी खादका १३·१० डालर है। वह लिखता है :

"यह सही है कि व्यवहारमें प्रायः इसका ध्यान नहीं रखा जाता कि, पशुओंके मलमूत्रमें उपजाऊ गुणवाले पदार्थ पेशाबहीमें जाते हैं। ऊपरके आँकड़ेमें ८,००० रत्तल पेशाबमें जितनी नाइट्रोजन है लगभग उतनी ही १८,००० रत्तल गोबरमें है दिखाकर यह मुद्दा स्पष्ट किया गया है। एक टन गोमूत्रकी खादका मूल्य ३·६५ डालर है या एक टन गोबरकी खादसे १·४५ डालर अधिक। ये आंकड़े मलमूत्रके बहुमूल्य अंशकी हानि रोकनेपर जोर देने वाले हैं।"—(पृ० ४८१)

किसान अगर अपरिहार्य कारणोंसे कम या सबही गोबरका इंधन कर लेनेको मजबूर है तब भी पेशाबकी वह आजभी हिफाजत कर काममें ला सकता है। फिर अब तो हम जान गये हैं कि खेतमें गोबर डालनेसे कंपोस्ट डालना कहीं अच्छा है। और वह कंपोस्ट जमीनमें उगनेवाली किसी चीज़ या कचरेसे बनायी जा सकती है। यदि हम मनुष्यके मलमूत्रका पूरा उपयोग करें और ढोरकी पेशाब कंपोस्ट बनानेके काममें लावें तो खेतमें बहुत खाद पड़ सकेगी। कंपोस्ट डाली हुई जमीनकी पैदावार बढ़ जायगी और उसमें उत्पन्न आहार अधिक पुष्टिकारी होगा। बढ़ी पैदावारसे हमारे पशुओंके लिये अधिक चारा मिलेगा। उन्हें जब खानेको अधिक मिलेगा तब उनकी हीनता मिटेगी और खाकर और अधिक मलमूत्र करेंगे। इससे और अधिक तथा पुष्ट पौधे पैदा होंगे। नतीजा होगा कि जहाँ आजकल चारेकी खेती होती ही नहीं वहाँ भी कुछ होने लगेगी। एकबार जहाँ ये घटनायें घटीं कि फिर हर चक्करमें अच्छे से अच्छा फल मिलेगा।

पौधे नीरोग होंगे और अधिक फलेंगे। अच्छा आहार पाकर मनुष्य और पशु जादा तन्दुरुस्त बनेंगे। और जादे जादे कंपोस्ट मिलनेसे जमीन और हरी व तन्दुरुस्त होगी। जिसके बारेमें पहले और बादके सभी अर्थशास्त्रियों और लेखकोंने लिखा है उस शाही कमीशनके चलाये हुए शैतानी चक्करके बदले स्वास्थ्य और सुखके जादूका चक्कर चलने लगेगा। गायें अधिक दूध देंगी जिससे मनुष्य जाति अधिक सुखी, पुष्ट और रोग निरोधक बनेगी। हमपर चारों तरफसे कल्याणकी फुहार बरसेगी। जब हम अपने उन तथाकथित बेकार ढोरोंको अच्छा खिलाना शुरू करेंगे तब प्रारम्भमें भी इनमेंसे कुछको अपने यहाँके ऊसरोंपर भेज वहाँभी मैरियनहोहे बनाने लगेंगे। यह सब या इससेभी जादा संभव है। वास्तवमें निराशाकी कोई बात नहीं और बनावटी खाद, बनावटी तरकीबसे संतति निरोध तथा अभ्युदयके सच्चे दाता पशुओंके बधकी बेहूदा और अमांगलिक बातें नहीं होनी चाहिये। गोबर और मूत्रसे कंपोस्ट बनाना जानकर उससे अपने खेतकी उपज बढ़ानेका यदि हम काम लेने लगें तो अभीके ये निकम्मे पशुभी अर्थकर हो जायेंगे। गोबर और मूत्रसे बने अधिक कंपोस्टके द्वारा गाय अपने गुजारेके खर्चको चुकताकर भाररूप नहीं रहेगी और न अर्थशास्त्रियों और शास्त्रियोंकी बाधा ही बनेगी। अर्थशास्त्रियों और शास्त्रियोंकी पशुवधकी बात बिल्कुल अनसुनीकर हम निकम्मे ढोरको कामका बनालेनें और मरणमुखी, भूखी, स्वार्थी और राक्षसी सभ्यताके

पीछे दौड़नेवाले और दूसरोंको भी उसीका उपदेश देनेवाले अपने पंडितोंकी बात न मान यदि हम भारतको जीता रखनेवाले गंभीर सिद्धान्तोंपर अटल रहें तो ये पशु हमें इसका बदला देंगे तथा इससे और बहुतसे मंगलकारी परिणाम होंगे ।

## भूमि, पौधे और पशुपालनके नये ज्ञानका खुलासा

हमने सर अलबर्ट होवर्डको पूसामें जहाँ उनने अपने निरक्षर गुरु किसान और कीड़ोंकी शिक्षाका प्रयोग और परीक्षा की, छोड़ दिया । वह नया ज्ञान काममें लाये । पूसामें आधुनिक खेतीके साथ साथ कायाकल्प कीहुई पौधे और पशुपालनकी पुरानी पद्धतिका प्रयोग उन्होंने चालू किया । उन्होंने शीघ्रही सिद्ध कर दिया कि बनावटी खाद बन्द कर देनेसे जमीनकी तन्दुरुस्ती सुधरती है और उससे कीड़ोंका उपद्रव परीशान नहीं करता । उन्होंने सिद्ध किया कि बनावटी खाद, पौधों और जमीनकी बीमारियाँ सब साथ होनेवाली चीजें हैं ।

मैरियन-होहेवालोंके प्रयोगकी तरह ही पर उनसे बीस वर्ष पहले होवर्ड अपने खेतपर ६ जोड़ी बैल लाये । इन पशुओंको अपने खेतकी उपजही खिलायी जाती थी जो बनावटी खादकी उपजसे अधिक स्वास्थ्यप्रद थी । उनके बैलोंपर नये प्रयोगका कमसे कम इतना असर हुआ कि वह छूतकी बीमारियोंसे बहुत बचे रहे । पूसा क्षेत्रके ढोर एक गोहालमें रहते थे । ये बैल और होवर्डके बैल एक झाड़ीके आरपार रहते थे । क्षेत्रके बैलोंको मुंहपका की बीमारी होगयी थी । होवर्डके बैल सिर्फ झाड़ीके उसपार थे और बीमार बैलोंके थुथनेसे अपने थुथने मिलाते थे । तिस पर भी यह अचरजकी बात थी कि रोगके असर से वह बचे रहे । उनकी रक्षाका कारण स्वास्थ्यप्रद भोजन और उसके कारण उनका सुन्दर स्वास्थ्य था ।

## इन्दौरमें होवर्डका काम

पूसाका प्रयोग पूरा होने पर होवर्डका प्रयोगक्षेत्र इन्दौर होगया । यहाँ केन्द्रीय कपास समितिके आदेशानुसार कपासकी खेतीका प्रयोग होता था । यहाँ उन्होंने रोग निवारण या रोग निरोधक शक्ति बढ़ानेके लिये कंपोस्टका प्रयोग किया । कंपोस्टमें ह्यूमस रहती है । इसके प्रयोगसे फसलकी रोग निरोधक शक्ति ही केवल नहीं बढ़ी, फसलकी उपजभी बढ़ी । इन्दौर से कंपोस्ट बनानेकी विधि और खाद देनेका प्रचार भारत और विदेशमें भी धीरे धीरे होगया ।

सन् १९३१ में "खेतीकी उपजका रद्दी माल" नामके लेखको एक श्रीमती कर्रने (Mrs. Kerr) प्रयोग करनेको विचारा। निजामके राज्यमें एक कुष्ठाश्रममें वह रहती थीं। १ नम्बर क्यारीमें २·५ से १·५ इंच कंपोस्ट डालकर जोत दिया गया। २ नम्बर क्यारीमें कुछ कचरा और ०·५ इंच कंपोस्ट और ३ नम्बर क्यारीमें कुछ नहीं डाला गया। १, २, ३, नम्बर क्यारीका नाप बराबर था अर्थात् ६,३६४ वर्ग फीट। सबमें बराबर मात्रामें ६ रत्तल बीज बोया गया। उपज निम्नप्रकार हुई :

| | धान | पुआल |
|---|---|---|
| क्यारी नं० १ | ४२२ रत्तल | १३८ पुल्ला |
| क्यारी नं० २ | २३६ " | १०६ " |
| क्यारी नं० ३ | ६० " | ४० " |

दूसरे शब्दोंमें ३ नम्बर क्यारीसे १ नम्बर क्यारीमें धान ७ गुना और पुआल ३॥ गुना जादे हुआ। इन्दौरके तरीकेसे कंपोस्ट काममें लानेपर अनेक खेतोंमें सफलता मिली। अबतो यह जाँचका विषय नहीं रहा है।

इंगलैण्डके चेशायर नामक गाँवमें अभी हालमें देहातियोंका स्वास्थ्य सुधारनेका आन्दोलन चलाया गया था। यहाँ स्वास्थ्यप्रद आहार खानेके लिये कहा जाता था। कंपोस्ट डाले हुए खेतका उपजा गेहूँ इस काममें मुख्य अन्न था। आन्दोलन बढ़ रहा है।

## इन्दौरकी विधि

इस विधिकी सबसे पहली जाँच इन्दौरमें हुई थी। इसलिये इसके साथ इन्दौरका नाम जुड़ा है। तरीका बहुत आसान है। इसके लिये खेतीकी सभी बेकार बनस्पतियाँ और कचरेका ढेर इकट्ठा करना होता है। फिर उसके साथ उचित तरी और हवामें गोबर और मूत्र मिलाना होता है। यही बात सब खेल बनाती है। आगे बताये तरीकेसे बनाये कंपोस्टकी खाद गोबरसे कहीं अच्छी है। इस तरीकेके चलनसे मिलनेवाली खादका केवल अनुपात ही नहीं बढ़ा है, आमतौरपर डाले जानेवाले गोबरसे इसकी खादभी बहुत अच्छी होती है।

इस सरल तरीकेसे अन्नों, फलियों और घासोंकी उपज बढ़नेकी संभावना है। कंपोस्टकी खादकी चलनमें खेतकी उपज बढ़ानेकी कितनी बड़ी छिपी शक्ति हमारे सामने प्रकट हो जाती है? इस तरीकेको अपनानेसे जमीनका भार बहुत हल्का होता है।

इससे चारेकी खेतीके लिये और जमीन मिल सकेगी जिसके कारण भूखी और दुर्बल गउओंका स्वास्थ्य बनेगा। डा० राधा कमल मुकर्जीकी गणनाके अनुसार भारतमें औसतसे चार करोड़ आदमीके भोजनका अभाव है। यह अभाव मिट जायगा। जरूरतसे जादे क्या, सभी पशुओंके खिलानेकी नहीं सुलझनेवाली गुत्थीभी सुलझ जायगी।

## सुधारके दूसरे उपाय

इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग जितना चाहते हैं उतना कोई एकही चीज पूरा नहीं कर सकती। इसके लिये मनुष्यके मलमूत्रकी हिफाजत, पशुओंकी बेकाम चीजों और हड्डीकी खादकी हिफाजत, सड़े और सड़नेवाले सभी बनस्पति पदार्थोंकी हिफाजत, उचित खेती, मिट्टीको हवा मिलनेका प्रबंध, फलीदार फसलोंकी अधिक खेती, जरूरतकी हदसे जादे कपास, ऊख या जूट की "पैसेकी फसल" के पीछे कम रहना, तेलहन और खलीकी रफ्तनी बंद करना और उनकी हिफाजत तथा उनका तेल पेरने और फिर उसे मवेशीको खिलाने तथा खादके काममें लाने, पेड़ोंके चारेकी ओर झुकाव, चारेके रूपमें हड्डीके चूरेका इस्तेमाल, इनमेंसे सब और इनसे जादेभी करनेकी जरूरत होगी। और यह सब करनेके लिये जोरदार ग्राम पंचायतोंका संघटन करना होगा।

रचनात्मक कार्यके ये सभी कठिन अंग हैं। ये काम कठिन जरूर हैं पर शाही कमिशन, अर्थशास्त्रियों और शास्त्रियोंके बड़े दलने जो निराशाका दलदल तैयार किया है उससे बचनेकी राह भी दिखाते हैं। गोवध और संतति नियन्त्रणके लिये हल्ला मचाया जाता है; और निकट भविष्यमें दोनोंके होनेकी कोई संभावना नहीं, इसलिये उनके ख्यालसे भारतके मनुष्य और ढोर दोनोंमें किसीकी भलाईकी उम्मीद नहीं।

"गायकी रक्षा कैसे हो" इस दूसरे भाग और "गव्य धंधा" पर चौथे भागमें जो विचार विमर्श किया गया है उससे गोवध और संतति निरोध किये बिना ढोरोंकी तरक्की और आर्थिक उद्धारकी संभावना होती है। भारतके ढोरोंके बचाये जा सकने और गोवंश तथा गव्य व्यवसायकी गुंजाइशमें पक्का विश्वास रख हम आगे बढ़ सकते हैं।

## भारतकी मिश्रित खेती

इस देशमें कुछ शहरोंको छोड़ सिर्फ गव्य धंधा कहीं नहीं है। और यह स्वाभाविक ही है जैसा होना चाहिये वैसा ही। शुद्ध गव्य व्यवसाय या सिर्फ दूधके लिये गायका पालना पच्छिमकी विशेषता है। वहाँ गाय सिर्फ

दूध और मॉंसके लिये पाली जाती है। जबतक इच्छाके अनुरूप गाय दूध देती है तभीतक वह रखी जाती है। फिर खास उमर होनेपर जब दूधकी मात्रा कम होने लगती है, वह मॉंसके लिये मार डाली जाती है। शायदही कभी वह ८ वर्षकी उमर पार करती है। इन ८ वर्षोंमें उसे ४।५ बच्चे होते हैं और फिर उसका दूध स्वाभाविक तौरपर कम होने लगता है। गव्य व्यवसाय मुनाफेका हो इसलिये ज्योंही दूध घटने लगता है, गायको मोटा बनाते हैं और फिर कसाईके हवाले कर देते हैं। गव्य व्यवसायमें जितनी गायोंकी जरूरत होती है उसीके अनुसार बच्चे रक्खे जाते हैं। जरूरतसे फाजिल बच्चे "भील" (Veal वछड़ेका मॉंस) और मॉंसके लिये पशु व्यवसायियोंके हाथ बेचे जाते हैं। इनके हाथसे फिर कसाइयोंके हाथ जाते हैं। सांढ़ बनानेके लिये जितनोंकी जरूरत होती है सिर्फ उतनेही बछड़े पाले जाते हैं। बाकीके सब मोटे किये जाकर मार डाले जाते हैं। गव्य व्यवसाय और कसाईखाने या महामॉंस व्यवसाय सहचारी धंधे हैं। यही कारण है कि पच्छिमी कायदेके जानकार भारतकी चलन देख अधीर हो उठते हैं और तथाकथित मूर्ख किसान इसलिये डॉंटे जाते हैं कि अपने पच्छिमी प्रतिद्वन्दी जिसतरह काटनेके लिये पशु तैयार करते हैं उस तरह ये नहीं करते। दूध तो इस वध व्यवसायका एक उपजात है।

यूरोपमें बैलका कोई उपयोग नहीं है। इसलिये वहॉं जो किया जाता है उससे उनकी तात्कालिक आवश्यकता पूरी होती है। पर यह बहुत बड़े सन्देहकी बात है कि वह लोग काटनेके लिये गोपालनकी अपनी वर्त्तमान चाल अधिक दिनोंतक चालू रख सकेंगे। अब उनके समझदारोंको यह भासित होने लगा है कि बनावटी खाद गोबरकी खादकी जगह नहीं ले सकती। ऐसा समय आ सकता है जब अन्नकी बढ़ती मॉंग पूरी करनेके लिये उन्हें अपने खेतमें गोबरकी खाद देनी होगी। उस समय गायका काम खाद देनेका होगा। इस समयका अबेर या सबेरसे आना अनेक राजनैतिक कारणों, शोषण, लड़ाई, राज्योंके दखल करने आदिपर निर्भर है। इन दिशाओंके परिवर्त्तनसे यूरोपके जनसंकुल स्थानोंमेंभी जितना हम आज सोचते हैं उससेभी पहले गायको खाद देनेवाली बनना पड़ सकता है ।

## दूध और खाद देनेवाली

यूरोपमें कुछभी हो, अभीतो हमें भारतसे काम है। इस बातका विशेष ध्यान रखना होगा कि बैलकी जननी और खाद तैयार करनेवालीके रूपमें गायका

महत्व कम न होने पावे। भैंसको गायसे बढ़कर दुधार घोषित करनेकी भारी क्षति शुरूभी हो गयी है। दूरदर्शिताके बिना सिर्फ मुनाफेकी खातिर गव्य-धंधा चलानेकी नीतिसे भैंस अपहर्ता होकर गायके लिये गढ़ा खोद रही है। इस नीतिसे सच्ची आर्थिक भलाई बिलकुल होनेवाली नहीं है और न गायके दूधके सभी पोषक गुणका इसमें कोई ख्याल किया गया है।

गाय बैलकी जननी है। इसलिये जमीन जोतनेके लिये बैलकी जरूरत पूरी करनेके लिये उसे रखनाही होगा। वह दुधारभी है। दूध मनुष्यके लिये सबसे बढ़कर पोषक आहार है। यूरोपी ढंगका गव्यधंधा कुयोग्य है। भारतमें बैल और दूध इन दोनों चीजोंके लिये गाय रखनी होगी। इसका अर्थ, गायको पशुपालन और गव्य व्यवसायके दुहरे कामके लिये पालना है। इन दो कामोंके सिवा खाद देनेका अपरिहार्य कार्य भी इसेही करना है। और साम्राज्य-हीन यूरोपमें इसी दिशामें यदि बहुत जल्द परिवर्तन हो तो अचरज नहीं। यदि यूरोपको अपने लिये अन्न उपजाना पड़े तो गोवधमें उसे मुनाफा नहीं होगा। इसके बदले खादके लिये गोवध रोकनेको उसे मजबूर होना होगा। पर भारतमें पच्छिमी ढंगकी गव्यशालाकी स्थापनाके लिये कहनेवाले इस देशको जरूरही कुमार्गमें ले जारहे हैं। भारतमें गाय गृहस्थीका पशु है। वह खासकर खेतीके लिये बच्चे पैदा करती रहेगी और उतनेही महत्वका आहार दूधभी देती रहेगी।

## गाय बनाम बकरी !

किसी विषयका असम्बद्ध विचार भविष्यको नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। अनेक मामलोंमें तो यह बुराई शुरूभी हो गयी। अकेले दूधका भी व्यापार हो सकता है यह अब लोग मानने लगे हैं। उद्देश्य यह है कि दूध किसी तरह मिले और वह भी सस्ता। सरकारी मार्केटिंग अफसरकी हालकी विज्ञप्ति इसका उदाहरण है। अपनी पोथी "दूधके बाजार" में यह लेखक दूधके लिये बकरी पालनेकी जोरदार वकालत करता है। क्योंकि कुछ गयी बीती गायोंके बराबरही कुछ बकरियाँ दूध दे सकती हैं। सरकारके इस बिक्री विभागमें बिक्रीही सब कुछ है। भले ही इस विभागके प्रस्ताव राष्ट्रहितके विरुद्ध हों। पर इससे विभागको कुछ मतलब नहीं। इसके अनुसार तो दूधके लिये गायोंसे बकरियोंको उत्तम मानना होगा। दूधके लिये भैंसको आगे करनेका आन्दोलन तो चलही रहा है और सरकार भी इसे बढ़ावा देती है। अब यह मार्केटिंग विभाग दूधके

लिये गायके मुकाबले बकरीको खड़ा कर रहा है। खेती करनेके लिये क्या बकरी भी बैल जनेगी? बकरी अपने घने और आगे निकले दांतोंसे गोचरोंकी घास जड़से काट सकती है। जिस चरागाहपर बकरी चर गयी है वह गायोंके लिये किसी कामका नहीं। जबतक घास गायोंके चरनेके लायक बढ़कर हो उसके पहलेही बकरी चरागाहको ऐसाकर देती है कि वह गायके कामका नहीं रहता। फिरभी दूधके लिये बकरी पालनेकी यह असंभव सिफारिश की जाती है।

"किसी किसी जातिकी बकरियाँ गायके समानही दूध तो देती हैं पर उनका प्रारम्भिक व्यय अपेक्षाकृत कम है। इसलिये प्रान्तोंके पशुपालन विभागोंको बकरीकी नसल सुधारने और उपयुक्त क्षेत्रोंमें चलाने पर जादे ध्यान देना चाहिये।" —("दूध बिक्रीकी रिपोर्ट" १९४२, पृ० २८५)

बकरीपर जोर देनेसे गायको हानि पहुँचेगी इसपर कोई आशंका नहीं प्रगट की गयी है। इस बातका कोई विचार नहीं किया गया है कि अगर गायके साथ बकरीभी पाली जायगी तो इससे गायको हानि होगी, और फलस्वरूप भारतकी मुख्य भारवाही पशु-शक्ति—बैलके मिलनेमें भी कमी पड़ेगी। बकरीके दूधवालेको तुरत फायदा हो सकता है। ऐसे विचार और सुझाव राष्ट्रीय महत्वकी समस्याओंका एकांगी चिन्तन करनेके कारण ही पैदा होते हैं। प्रायः सभी सरकारी विभागोंमें यही भावना घुसी हुई है।

देशको चीरती हुई रेलकी सड़कें निकली हैं। इनके बाँधोंके कारण पानीके स्वाभाविक निकासमें रुकावट हुई है, जिससे देशकी मीलों खेती नष्ट होती है। लेकिन इसकी परवाह किसे है और कौन इसकी चिन्ताही करता है? रेलवे बोर्ड कमसे कम खर्चमें रेलके स्थायी पथ बनाना चाहता है। यदि उनकी योजनासे देशवालों के बड़े हितकी हानि हो तो इससे रेलवे बोर्डको क्या मतलब? यदि तात्कालिक लाभका उनका अभिप्राय सिद्ध होता हो तो और किसी तरहके विचार उनकी राह नहीं रोक सकते। यही बात नहर और सिंचाईके लिये भी लागू है।

## समग्र दृष्टिसे सोचनेकी जरूरत

किसी योजनाकी छानबीन उसकी साधारण उपयोगिताके विचारसे हो इसके लिये [illegible] और [illegible] दृष्टि व्यापक होनी चाहिये। अदूरदर्शिताके कारण

एकांगी चिन्तन तब नहीं हो सकेंगे जब सभी सामाजिक, राजनीतिक और औद्योगिक मामलोंमें एकसी ही दिलचस्पी होगी।

मैंने कुछ विस्तारसे जमीन, पौधे, पशु और मनुष्यकी समस्याकी एकतापर विचार किया है। जब इन चारोंको एकसा समझा जायगा तब सच्ची दृष्टि मिलेगी। यही पशुपालन और गव्य व्यवसायमें भी लागू होती है। इनको एक दूसरे से अलगकर हम असफलताकी ओर बढ़ेंगे और यदि हम इन्हें एक मानेंगे तो सही रास्तेपर रहेंगे। यह सही राह हमें पकड़नी ही होगी। पशुपालन, पशुस्वास्थ्य और भूमि स्वास्थ्यका विचार किये बिना अकेले गव्य व्यवसायके लिये कोई गुंजाइश नहीं।

पशु व्यवसाय, खेती और गव्य व्यवसाय सभी एकही उद्योगके रूप हैं। और गाय सबकी मध्यवर्ती है।

## गो-केन्द्रित भारत

इसलिये गायको हम सिर्फ बैल देनेवाली नहीं मानते और न दूध देनेवाली या खाद देनेवाली ही। बल्कि हम इसे इन सभी बातोंका एक समवाय मानते हैं। इसके तीनों कामोंमें किसीको दूसरे दर्जेका नहीं समझना चाहिये। जब हम गायको बैलकी जननी कहें तो गोरसदाता या खाददाता पशुके रूपमें इसका जो महत्व है वह कम नहीं होता। उसी तरह गायको दुधार पशु कहते समय हमें उसके बैल और खाद पैदा करनेके दोनों कामोंको दूसरे दर्जेके महत्वका नहीं मानना चाहिये। खाद देनेवाले जानवरके रूपमें गायका महत्व अब माना जाने लगा है। दूध देने और बैलकी माँ होनेसे गायके कामका जो महत्व है उससे कम महत्व खाद देनेमें नहीं है। हमारे लिये यह महान् पशु है। क्योंकि यह हल और गाड़ीमें जोतनेके लिये बैल, फसल उपजानेके लिये खाद और मनुष्यके पोषणके लिये दूध देती है। इन तीनों बातोंके लिये वह हमें प्यारी है। मनुष्यका सारे पशु जगत्से सम्बन्धकी प्रतीक-स्वरूप हम उसे पूजते हैं। उसके शुद्ध आर्थिक दिशासे यह दिशाभी कम महत्वकी नहीं है। वह हमारे लिये केवल पशु नहीं, बड़ी चीज है। सभी जीवनधारियोंमें हमारे समत्वकी ऊँची भावनाका यह मूर्तिमान् उद्गार है। इसको प्यार करना ही होगा। इसका पालन और हिफाजतभी करनी होगी। भारत तो बड़ा कृषिक्षेत्र है, जिसमें भारतीय किसान रहते हैं। इस बड़ी कृषिशालाके केन्द्रमें गाय है। खेतीके साथ गोपालन भारतका बड़ा धन्धा है।

कोई दूसरा धंधा इसकी जगह नहीं ले सकता। अगर गोवंश की पुष्टि और विस्तार होगी तो मनुष्यकी भी होगी। यदि गायकी उपेक्षा की गयी और वह काटी गयी तो जैसा अभी हो रहा है भारतमें सर्वनाशका दृश्यही दिखायी देगा। गायको अगर उचित स्थान मिला, उसकी हिफाजत और प्रीति की गयी तो भारत अपना स्थान पायगा। उसके खोये मानको पुनः प्रतिष्ठित करने और उसकी भलाई करनेसे सभी जीवोंकी प्रतिष्ठा और भलाई होगी। सुस्थ सामाजिक वातावरण बनेगा। आजके भारतकी विशेषता दैन्य और दासता है। गो-केन्द्रित भारतमें यह वस्तु नहीं रहेगी।

---

# भारतमें गाय

## पहला खंड

## पहला भाग

नसलें, नसल-संवर्धन और उनका अर्थशास्त्र

# पहला भाग

## नसलें, नसल-संवर्धन और उनका अर्थशास्त्र

---

अध्यायोंकी सूची



---

# अध्याय १

## भारतीय गाय

१. **पशु-चिकित्सा-शास्त्रका पुराना ज्ञान :** प्राचीन कालसे ही भारतमें लोग गायकी खास हिफाजत और उसका प्यार करते आये हैं। सारे प्राणियोंकी प्रतिनिधिके रूपमें गायके लिये जो हमारी भावना है उसीने भारतीय सभ्यताका ढाँचा तैयार किया है। बहुत सदियों पहले गाय भारतके धनियोंका धन थी। इतना सब होते हुए भी गायका शारीर, उसका पालन और उसके रोग तथा निदान संबंधी साहित्य नहीं मिलते यह अचरज है।

हाल ही में श्रीमती लेसली हेमिल्टन शिरलोंने पशुचिकित्सा संबंधी हमारे पुराने ग्रन्थोंकी सूची परिश्रमसे बनायी है। उनकी सूचीमें घोड़ा पालनेकी अच्छी और महत्वकी पोथियोंका नाम है। पर गोपालनके बारेमें गहरे महत्वके साहित्यका पता नहीं सा लगा है। लेकिन जो भी मिला है वह गोपालनके प्राचीन साहित्यकी खोजमें मार्ग प्रदर्शन कराता है।

२. **मंदिर और वेदी:** पशुओंके शारीरका ज्ञान पहले लोगोंको निःसंदेह था। पहलेके पशुचिकित्सकोंके लिये मंदिर "शारीर प्रयोगशाला थे और वेदी शव परीक्षाकी मेज" ( post-mortem table—जिस मेज पर डाक्टर मुर्दोंकी चीरफाड़ करते हैं )। लेकिन सब कुछ इतनाही नहीं था। बुद्धके पहले पशुबलिके समय शिक्षक अपने छात्रोंसे तुलनात्मक शारीरकी व्याख्या करते थे। छात्रगण मरे पशुके मूत्राशयपर पेशाब निकालनेका, उनके चमड़े पर पाछ लगानेका, उनके नसोंपर नस काट कर औषधि देनेका (venisection) और उनके दाँतोपर दाँत उखाड़नेका अभ्यास करते थे। इस तरह शल्य-तंत्रका मूल ज्ञान पाना संभव था। *

---

* A Short History of Ayurvedic Veterinary Literature, by Leslie Hamilton Shirlaw. Journal of the Veterinary Science and Animal Husbandry, Vol. X. Part I.

**३. पशु-चिकित्सा और सामरिक वाहन विभाग :** वैदिक कालके बादके संस्कृत साहित्यमें पशुचिकित्साका वर्णन भरा पड़ा है। सेनाकी जरूरतोंके कारण घोड़े, हाथी और बैलकी ओर लोगोंका ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। ये सब सेनाकी लड़ने और ढोनेवाली दो भुजायें थीं। उस समयकी आयुर्वेदकी पाठशालाओंके पाठ्यक्रममें पशुचिकित्साभी थी। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें सुसंघटित पशुधन विभागका वर्णन है। चन्द्रगुप्त मौर्यने अपना पशुचिकित्सा विभाग जैसा बनाया था भारतकी वर्तमान सरकार अभी वैसा करनेकी कोशिश ही कर रही है। असल बात तो यह है कि आजके सर्वोत्तम गव्यशाला (dairies) और अश्वशाला (remount) विभाग भारत सरकारके सेना विभागके हैं। सम्राट अशोकने सारे साम्राज्यमें नर और पशु दोनोंके लिये अस्पताल बनवाकर और भी प्रगति की थी।

नवीं शताब्दी की बनी "शुक्रनीति" में हर जातिके पालतू जानवरोंके सरकारी विभागाध्यक्षका वर्णन है। और हरेक अध्यक्षके नीचे उस विषयके एक एक पशु-चिकित्सा विशेषज्ञ रहते थे।

**४. शालिहोत्र और उसके कार्य :** पशु-चिकित्साके जितने लेखक हुए हैं उनमें शालिहोत्रका नाम अभी भी उजागर है। यूनानी लोग उसे सैल्यूटर (Saluter) कहते थे और उसके नामपर ही पशु-चिकित्सा-शास्त्र प्रसिद्ध हो गया और यूनानीभी उसे सैल्यूटरी कहने लगे। अनुमान है कि शालिहोत्र तक्षशिलाके पासके एक गाँवका नाम था। उसी नामको इस प्रसिद्ध लेखकने अपना लिया।

शालिहोत्रने घोड़ेका इतिहास, हारी करना, खिलाना, रखना और साईसी भी बताई है। यहभी बताया है कि घोड़ा जब नीरोग रहे या बीमार हो तब उसकी सेवा कैसे करनी चाहिये। शालिहोत्रकी सबसे प्रसिद्ध हस्त-लिखित प्रति इंडिया औफिसके पुस्तकालयमें है।

अर्ल्स (Earles) नामके एक अंगरेजने सन् १७८८ में घोड़ोंपर एक पोथी प्रकाशित की थी। उसका नाम है "Saloter or a complete system of Indian Farriery, in two parts". इस उत्थाकी हस्त-लिखित प्रति ब्रिटिश म्यूजियममें सुरक्षित है।

शालिहोत्रके औरभी संस्करण हैं। उनमें सबसे हालका निधिराम मुखर्जीका बंगला ग्रन्थ "शालिहोत्र सार-संग्रह" है। मालूम होता है इस लेखकने शालिहोत्र तथा दूसरी किताबोंसे मसाला लिया है। पशु-चिकित्सकोंमें इसके बाद जयदत्त सूरीकी

प्रसिद्धि है। उन्होंने भी घोड़ोंपर ही लिखा है। इस पोथीका नाम "अश्ववैद्यकम्" है। यह पोथी ईसाके बादकी १४ या १५ वीं शताब्दीमें लिखी गयी होगी।

इसी तरह हाथीपर भी कई किताबें और उनके लेखकोंका भी पता चलता है। पर गोपालन पर लिखा हुआ पुराना शास्त्र बहुत कम मिलता है। यह हो सकता है कि इस ज्ञान और कलाका विकाश जिन लोगोंने किया उन्होंने सिर्फ अपनी ही जातके लोगोंमें प्रचार किया हो। और उस समयके इस विषयके ज्ञान और कौशलको किसी यशस्वी पुरुषने न भी लिखा हो। यह नहीं हो सकता कि घोड़े और हाथीके पालनका शास्त्र तो इतना समुन्नत हो पर गाय जैसे महत्वके प्राणीकी उपेक्षा की जाय। इस विषयकी लिखी सामग्री आज संस्कृत साहित्य, पुराण और संहिताओंमें ढोरोंकी दवाके हवालेमें ही जो कुछ मिलती है।

**५. पुराण और संहितामें पशु-चिकित्सा :** अग्नि पुराणमें ढोरोंके रोगपर कई अध्याय हैं। "कृषि संग्रह" में गोशालाके निर्माण और आचारिक (सफाई या स्वास्थ्यविधान), ढोरोंका पालन और उनके कामके बारेमें विशिष्ट नियम बताये गये हैं। उसमें ढोरोंकी बीमारी और चिकित्साका भी वर्णन है।

"पराशर" और "अत्रि संहिताओं" में ढोरोंके उचित उपयोगका विस्तृत वर्णन है। "शुक्रनीति" में बैलके दाँतसे उसकी उमर पहचाननेका तरीका बताया गया है। पितरोंके लिये किये "वृषोत्सर्ग" श्राद्धमें कैसे बैल चाहिये इसका वर्णन मत्स्य पुराणमें है।

**६. आईने अकबरीमें पशु-चिकित्सा :** दिल्लीके मुसलमान बादशाहोंके समय गायकी क्या हालत थी यह "आईने अकबरी" के नीचे लिखे अंशसे मालूम होगा:

"सारे सुखमय हिन्दुस्थानमें गाय शुभ मानी जाती है और उसको बहुत प्रतिष्ठा दी जाती है। क्योंकि इसी जानवरके बदौलत खेती होती है और शरीरके पुष्टिकारक पदार्थ मिल सकते हैं। यहाँके निवासियोंका घर इसकी बदौलत दूध, छाछ और माखनसे भरा रहता है। यह लादी भी लाद सकता है और गाड़ीभी खींच सकता है। इस तरह राज्यके तीन विभागोंमें यह बहुत सुन्दर मददगार है।

"यद्यपि साम्राज्यके हर हिस्सेमें कई तरहके ढोर होते हैं पर गुजरातके सबसे अच्छे हैं। कभी कभी उनकी जोड़ी सौ सौ मुहरोंमें बिकती है। यह २४ घंटेमें ८० कोस (१२० मील) चल सकते हैं और तेज घोड़ोंसे भी आगे बढ़ जाते हैं। दौड़नेके समय ये गोबरभी नहीं करते। इनका साधारण दाम २० या १० मुहर है।

बंगाल और दक्खिनमें भी अच्छे ढोर होते हैं। लादनेके समय ये घुटनेके बल बैठ जाते हैं। गाय आध मनसे ऊँचा दूध देती है।

"सूबा दिल्ली में गायोंका मूल्य १०) रु० से अधिक नहीं होता। बादशाह सलामतने एकबार दो लाख दाम (५००० रु०) में एक जोड़ी गाय खरीदी थी।

"तिब्बत और काश्मीरके आसपास अजीब सूरतका जानवर 'कुटास' या तिब्बती 'याक' होता है।

"गायकी उमर २५ वर्ष होती है।

"बादशाह सलामतकी निगाह हरेक कामकी चीजोंपर रहती है। वह गायके चमत्कारी गुण जानते हैं। इसलिये उसकी उन्नतिका बहुत ध्यान रखते हैं। उन्होंने इनको कई श्रेणियोंमें बाँट दिया है और हरेकको रहमदिल पालकोंको सौंपा है। पसंदके लायक १०० ढोर 'खासा' छाँट लिये गये। इन्हें 'कोतल' कहते हैं। इन्हें किसीभी कामके लिये तैयार रखा जाता है। शिकारके कामसे इनमेंसे ४० बिना लादे हुए ले जाये जाते हैं, ......। उतनेही अच्छे ५१ आधा 'कोतल' कहाते हैं। दूसरे ५१ चौथाई 'कोतल'। पहले दर्जेकी कमी दूसरेसे पूरी की जाती है और बिचलेकी तीसरेसे। बादशाह सलामतके निजी कामकी गोशालामें यही तीन श्रेणी हैं।

"इसके सिवा ढोरोंके दल बना दिये गये हैं। हर दलमें ५० से १०० ढोर रहते हैं जोकि अलग अलग रखवालोंके जिम्मे हैं।

"जानवरोंका दर्जा आम दरबारमें तै होता है। इस समय बराबरके दर्जेके दलोंमें हरेकको उसका उचित स्थान दिया जाता है। छकड़े और रथमें जोतने या पानी भरनेवाले जानवरोंका चुनाव भी इसी तरह होता है। (देखो "आईने अकबरी", पृ० २२)

"बैलोंकी एक जाति औरभी है। इसे 'गैनी' कहते हैं। ये 'गुट' घोड़ेकी तरह छोटे होते हैं। पर हैं बहुत सुन्दर।

"दुधार गाय और भैंसेंभी दलोंमें बाँटकर होशियार अमलोंके जिम्मे की गयी हैं।"

"**दैनिक आहारका भत्ता:** पहले 'खासा' दर्जेके हर जानवरको रोज ५।० सेर दाना * और १॥० दा० घास देनेकी मंजूरी है। पूरी गोशालामें रोज १ मन १९ सेर गुड़ दिया जाता है। इसे दारोगा बाँटता है। दारोगा वही हो सकता है जो ऐसे

* दाना, चना, देखो पृ० १४२ नोट पृ० १ —आईने अकबरी।

काम और पदके योग्य हो। बाकीके 'खासा' दर्जेके जानवरोंको ६ सेर दाना और पहलेकी जितनी घास मिलती है। पर गुड़ * नहीं दिया जाता है।

"दूसरी गोशालाओंमें दैनिक भत्ता इस तरह है। पहली श्रेणीको ६ सेर दाना, घास दरबारमें १॥ दा० अन्यथा १ दा०। दूसरी श्रेणी को ५ सेर दाना और घास पहली की तरह दी जाती है। सवारीकी गाड़ीके बैलोंको ६ सेर दाना और घास दस्तूरकी तरह दी जाती है। पहली श्रेणीकी गैनी ३ सेर दाना और घास दरबारमें १ दा० नहीं तो पौन दा० पाते हैं। दूसरी श्रेणीके २॥ सेर दाना और घास दरबारमें पौन नहीं तो सिर्फ आधा दा० ही पाते हैं।"

"दुधार गायें और भैंसें जब दरबारमें रहतीं तब उन्हें दूधके अनुपातसे दाना दिया जाता है। भैंसों और गायोंके झुन्डको ठट्ठ कहते हैं। गाय रोज १ सेरसे १५ सेर तक दूध देती है। भैंस २ सेर से ३० सेर तक। इस मामलेमें पंजाबकी भैंसें सबसे अच्छी हैं। हर गायके दूधकी मात्रा ठीक जान लेनेपर प्रति सेर दूधपर २ दाम तौलके हिसाबसे घी लिया जाता है।"

गायोंकी हिफाजत और प्रबन्ध, उनका चारा, उनका रोग और इलाज, उनका जाति-वर्द्धन और इसके सुन्दर प्रदेश तथा प्रकारका (अंगरेजोंके समयसे पहलेका) पूरा हाल बतानेवाली आज न तो हाथकी लिखी और न छपी कोई चीज है। पर इसका ज्ञान मौजूद है। भारतमें इस धंधेके जानकार पशु-उत्पादकोंकी कई जातियाँ अभी हैं। बीते समयसे इन लोगोंने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसे आधुनिक पशु-शास्त्रीकी भेंट वह कर सकते हैं। भारतमें पशु-शास्त्र-विभागको आधुनिक रूप देनेकी बहुत कोशिश हो रही है। पशुओंकी बीमारीकी जड़ उखाड़ने और भारतीय घासोंके पोषक गुणोंका पता लगानेकी महत्वकी गवेषणा की जारही है। भारतके ढोरकी अभी मौजूद खास किस्मोंकी रक्षा करनेकी कोशिश हो रही है। यह सब बहुत जरूरी और महत्वके काम तो हो रहे हैं। पर साथही इसकीभी जरूरत है कि पशु-उत्पादकोंमें से योग्य और अनुभवी व्यक्ति खोज निकाले जायँ। और युग युगके अध्ययन और अनुभवसे उनके ज्ञानका जो स्वाभाविक विकाश हुआ है उसका प्रचार किया जाय। यह भीतरकी ओरसे हुई उन्नति होगी।

* खाँड़े सियाह, देखो पृ० १४२, नोट पृ० ३, संभवतः गुड़। —आईने अकबरी।

**७. गाय और भारतकी खेती :** भारतमें खेती से गायका गहरा और अटूट संबंध है। किसानोंके सबसे बड़े और जोतनेके कामके एक मात्र पशु बैलकी वह जननी है। बैलके बिना खेती हो नहीं सकती। उनके बिना जमीनकी एक मात्र सवारी बैलगाड़ीसे देहातकी सड़कें सूनी रहेंगी। धर्मके नामसे भारतमें गायकी मान्यता तो है ही। पर इसी पशुपर भारतकी भलाई और उसका साधारण जीवन निर्भर है, यहभी मानना होगा। इस तरह गाय और खेती परस्पर मिलेजुले हैं। जहाँ खेती अच्छी है, गायभी अच्छी है। क्योंकि योग्य गाय अर्थात् योग्य बैलके बिना योग्य खेती असंभव है।

पच्छिमी विचार और शिक्षाने हमारे शिक्षकोंके दिमागपर ऐसी छाप डाली है कि अपनी असली शक्तिको हमलोग तुच्छ मानते हैं। हमने ऐसी सैकड़ों बातें स्वतः प्रमाण मान ली हैं कि भारतकी गायें औरोंसे घटिया हैं, भारतकी खेती आदिम बर्बर समयकी है, भारतके किसान अज्ञानी और आलसी तथा अनुत्साही हैं। गव्य धंधा और पशु-पालन विद्याके अनेक भारतीय लेखकोंकी रचना पढ़ कष्ट होता है। इन लोगोंने बिना विचारे भारतीय पद्धतियोंकी निन्दा की है और भारतके किसानोंको भरपेट कोसा है। इनकी अपमानकारी रुखाईके समानही इनका अज्ञानभी उल्लेखनीय है।

**८. डा० भोयेलकरकी (Voelcker) खेतीकी रिपोर्ट १८९० :** भारतीय खेती और उसके साथ जुड़ा हुआ भारतीय पशुपालन-शास्त्र ऐसा नहीं है जिसे हँसकर टाला जाय। राजनैतिक पराधीनताके कारण दुर्भाग्यसे इसे खेती या गव्य धंधेके लिये ब्रिटिश विशेषज्ञोंकी ओर ताकना पड़ता है। भारतमें आनेवाले शास्त्री अपनी धारणा पहलेसेही बनाकर और साम्राज्यवादी मतलबसे आते हैं। कुछ जान, समझ और सराह कर भारतके गहरे हितोंपर अपनी राय दें, ऐसे बिरलेही आते हैं।

अंगरेजी सरकारकी देखरेखमें खेतीके विषयका जो साहित्य तैयार हुआ है उसमें दोके ही नाम सबसे बढ़े चढ़े मिलते हैं। उनमें एक हैं जोन अगस्टस भोयेलकर (John Augustus Voelcker, Ph.D., B.A. B.Sc., F.I.C. etc.), इंगलैन्डके शाही खेती समितिके सलाह देनेवाले रासायनिक। सन् १८९० में वह एक एग्रीकलचरल मीशन ले भारतमें आये थे। और दूसरे हैं नौरमन सी० राइट ( Norman C. Wright, M. A., D. Sc., Ph. D., ), आयरशायर (स्कौटलैन्ड) के हन्ना डेयरी रिसर्च इंस्टिट्यूटके डाइरेक्टर। यह भी

भारतके पशु और गव्य धंधेके विकाशकी जाँच करने आये थे। राइटने खासकर गव्य धन्धेपर लिखा है।

डा० भोयेलकरके जिम्मे भारतीय खेतीकी उन्नतिकी जाँचका काम था। वह कृषि रासायनिक थे। किसी कृषि रासायनिककी माँग खासकर की गयी थी कि वह बार बार पड़नेवाले अकालको रोकनेके लिये खेतीकी उन्नतिमें सहायता दे। सन् १८८७ के अकाल कमीशनकी तजवीजोंको काममें लानेके लिये ही उनका कमीशन था।

डा० भोयेलकर जिज्ञासु शास्त्री बनकर आये थे। उनकी राय थी कि "विचित्र परिस्थितियोंसे भरे देशमें आनेवालेको उपदेशक या आलोचक न बन जिज्ञासु बनना चाहिये। अपने विषयकी विशेष परिस्थितियोंको जान सुन कर ही उसे कोई सुझाव देना चाहिये। और यदि वह समझदार है तो यह भी वह सतर्क होकर करेगा। वह पहले जान लेगा कि उसे और कितना जानना बाकी है और कितनी बातें वह जानभी नहीं सकेगा।"—(पृ० १२)। डा० भोयेलकरने १३ महीनों तक भारतमें रह दौरा किया तब उन्होंने अपनी रिपोर्ट लिखी। यह रिपोर्ट शास्त्री भावना और ज्ञानसे भरी है और आजकलकी भारतीय खेती और पशुपालनकी जानकारी बतानेवाली है।

भारतकी खेती और गाय दोनोंको समझनेके लिये हम डा० भोयेलकरकी आँखसे देखें। भारतकी खेतीके बारेमें डा० भोयेलकरने अपनी रिपोर्टमें लिखा है कि :

"काममें लाने लायक कृषि सुधारके कीमती सुझाव भारतीय खेतीकी अपेक्षा अंगरेजी खेतीके लिये करना आसान है। किसानोंकी हालत, जिस विचित्र स्थितिमें खेती होती है, राज्य और रैयतका संबंध, तथा और अनेक कारणोंपर सावधानी से विचार कर कोई राय दे सकता है और वह भी नपे तुले शब्दोंमें। भारतमें एक ही तरहके लोग नहीं हैं। अलग अलग तरहके हैं। उसी तरह उनकी खेतीका तरीका भी अलग अलग प्रांतोंमें अलग अलग है। मैं मानता हूँ कि ध्यानसे इसका गहरा अध्ययन करना सिर्फ जरूरी ही नहीं, लाभकारी भी है। जबतक धीरजके साथ देख और जानकर कायदेकी जाँच नहीं की जायगी कोई सच्ची बात नहीं मालूम होगी और न बुद्धि पूर्वक कोई बड़ा सुधारही किया जा सकेगा। पर अपने कामकी जरूरतसे मुझे जैसे जल्दबाजीमें जाँच करनी पड़ी उस तरह नहीं करना होगा।"—(पृ० १०)

**६. भारतीय खेती आदिम अवस्थाकी और पिछड़ी नहीं है :** "इंगलैन्डमें माना जाता है कि भारतीय खेती आदिम अवस्थाकी और पिछड़ी हुई है तथा इसके सुधारकी कोशिश नहीं की गयी है। ऐसा मानना भूल है। इसपर कोई सवाल नहीं उठ सकता। जैसा ऊपर बताया गया है कि एक जगहकी खेती देख जो अनुमान होता है दूसरी जगहकी खेती देख उसका खंडन हो जाता है। फिरभी मुझे मानना पड़ा है कि जिस हालतमें भारतमें खेती होती है वह बहुत अच्छी है। भारतका रैयत औसत अंगरेजी किसान जैसा ही अच्छा है और कुछ बातोंमें उससे बढ़ चढ़ कर है। उसका दोष यही कहा जा सकता है कि उसकी यह अवस्था उन्नतिकी सुविधाके अभावमें हुई है। शायद और किसी देशमें ऐसा नहीं है। बिना रोये धोये वह धीरजके साथ कठिनाइयोंमें भी इस तरह काम करता है कि, और कोई कर नहीं सकता।"

—(पृ० १०-११)

"मैं जो कहता हूँ उसपर हमारे अंगरेजी किसान चकित न हों। क्योंकि हम इंगलैंडवालोंने जब खेती शुरू की उसके सदियों पहले भारतके किसान खेती करते थे। इसलिये उनके तरीकेमें अधिक सुधारकी गुंजाइश नहीं है। खाद और पानीकी कमीके कारण ही वह कम फसल पैदा करते हैं।—(पृ० ११)

**एक स्पष्ट चित्र :** घासोंसे खेत साफ रखना, पानी भरनेके साधनोंके बनानेकी निपुणता, जमीन और उसके सामर्थ्यका ज्ञान, बोने और काटनेके ठीक समय का ज्ञान आदि गृहस्थीके साधारण कामोंमें भारतसे बढ़िया उदाहरण किसीको कहीं नहीं मिलेगा। यह बात सबसे अच्छे उदाहरणकी नहीं पर साधारण उदाहरणके लिये है। यहभी अचरजकी बात है कि फसलकी फेर (rotations), 'मिलवाँ फसल' (mixed-crops) का तरीका और चौमास (fallowing) रखनेकी कितनी बड़ी जानकारी है। अपने दौरेमें कई जगह जहाँ मैं ठहरा वहाँ कठिन परिश्रम, धीरज, सफल साधन और चतुराईके साथ की गयी खेतीके जैसे स्पष्ट चित्र दिखाई दिये वैसे चित्र कमसे कम मैंने सचमुच कहीं नहीं देखे। जैसे कि 'मही'के बाग, नड़ियाद (गुजरातकी बागवानीका केन्द्र) के खेत और बहुतसे दूसरे।"—(उसी पन्नेसे)

डाः भोयेलकरने किसान और उसकी खेतीका गुण बखान कर ही बस नहीं किया है। नीचे लिखे अंशोंसे पता चलेगा कि खादके तरीके, खेतीके औजार और सिंचाईके साधनोंकी भी उन्होंने उसी तरह प्रशंसा की है।

**१०. मशीनें और किसानोंके औजार :** "मशीनोंके बारेमें साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि भारतमें वेग (speed) की जरूरत नहीं रहनेपर पशुजनित शक्ति भापकी शक्तिको सदा पछाड़ेगी।"—(पृ० २२४)

"जिसने देशी किसानोंके खेत कोड़ने, समतल करने, बोने, पानी भरने आदिके औजार बनानेकी चतुराई देखी है वह कहेगा कि चालू औजारोंकी जगह वही औजार ले सकते हैं जो सीधे सादे, सस्ते और कामके हैं। सचमुच कामकी कोई चीज जारी करना निःसन्देह चतुर आदमीका काम है। खोद खोद कर रोपे लगानेकी छोटीसी खुरपीकी करामात देख मैं तो भौंचक हो गया। कामका दूसरा औजार कुदाली है। नीलहोंको मैंने यह कहते सुना है कि अगर इससे खेत कोड़वाना उन्हें पुसाये तो वह किसी दूसरे हल आदिके बदले इसेही पसंद करेंगे। देशी किसान कुदाली अपने सिर से ऊँची उठाकर वेगसे जमीन पर मारता है। यह मिट्टीमें चार इंच धँस बड़ेसे मिट्टीके खंडको खोद लाती है जो पीछे सूखता रहता है। इस तरहसे दूब निर्मूल की जा सकती है।"—(पृ० २२४-'२५)

"जो काममें आता है और जिसे काममें लानेकी सलाह दी जाती है उन्हें स्वयं देखकर मैं यह माननेको मजबूर हो गया हूँ कि आजकी हालतमें सुधरे औजारोंकी ज्यादा गुंजाइश नहीं है।"—(पृ० २१७)

भारतीय हलकी हँसी उड़ाई जाती है। पर डा० भोयेलकरने इसे उपयोगी औजार माना है। उनकी राय है कि भारतीय हलोंके तथाकथित खुरचनेके बदले गहरी जुताईसे जमीनको नुकसान होता है। क्योंकि इससे मिट्टीकी नमी (हाल) उड़ जाती है। पर देशी हल मिट्टीकी नमी बचाता है।

डा० भोयेलकरके कथनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि भारतीय कृषि पद्धतिमेंभी समझदारी और सामर्थ्य है। यह सही है कि इन तरीकोंमेंभी सुधारकी गुंजाइश है। डा० भोयेलकरने जो सुझाव दिये हैं उन्हें यदि भारत सरकार सचमुच काममें लावे तो इससे भारतके खेतीका नकशाही बिलकुल बदल जायगा। और इससे जनताकी बहुत बड़ी उन्नति होगी। डा० भोयेलकरने जिन बहुतसी जरूरी बातोंपर जोर दिया था उसके बदले सरकारने अपने तरीकेके अनुसार एक पीढ़ीके बाद दूसरा शाही कमीशन (१९२७) नियुक्त किया। कुछ खेती और गवेषणाकी शाही नौकरीका प्रबन्ध करनेके सिवा यह कमीशन "नास्तिक" (नकारात्मक) ही है।

उस समयकी खेतीकी सुन्दर दशाका वर्णन डा० भोयेलकरने किया है। हालके खेती कमीशनने भी पता पाया है कि भारतमें पशुवर्धनका कितना सुन्दर तरीका था जिससे इस अज्ञान और लापरवाहीके दिनोंमें भी ढोरोंकी कुछ किस्में बची हुई हैं।

११. **भारतकी फलप्रद पशुवर्धन पद्धति :** शाही खेती कमीशनने अपनी रिपोर्टमें इस विषयका जिक्र किया है :

"हमलोगोंका विश्वास है कि अगर युक्तप्रांतकी पोंवार नसल, पंजाबकी हरियाना और साईवाल, सिन्धकी थारपारकर और सिन्धी (करांची), मध्य भारत की मालवी, गुजरातकी कांकरेज, काठियावाड़ की गिर, मध्यप्रांतकी गाओलाओ और मदरासकी ओंगोल नसलोंके इतिहासकी जाँच की जाय तो पता चलेगा कि उनकी अच्छाईका कारण पेशेवर पशु संवर्द्धकोंकी सावधानी है। यह लोग साधारण तौरपर घुमक्कड़ होते हैं। ये पहले भारतमें बहुत थे। पर अब ये लोग ढोर चराना छोड़ते जाते हैं क्योंकि खेतीका विस्तार हो रहा है। गेजेटियरोंमें इनके अनेक वर्णन मिलेंगे जिनसे पता चलेगा कि भारतमें पहले इनकी क्या दशा थी और किसानोंको ढोर मुहैया करनेमें इनका कितना हाथ होता था। कई इलाकोंमें इनके खतम होने से लोग खुश हैं क्योंकि वहाँ यह लोग पशुपालनके सिवा फसलभी लूटा करते थे। पर जिन जिलोंमें यह अपना कानून संगत पेशा ही किया करते थे वहाँ इनके न होनेका दुःख है। देहातियोंमें इनकीही जमात पशु वर्धन पर ध्यान देती और ढोरोंका प्रबन्ध करना जानती थी। इन्हें अकसर विपरीत अवस्थाओंमें काम करना होता था पर तब भी पशुओंके चुनाव और पालनेमें ये इतने चतुर थे कि इनके पशु अच्छे होते थे।"—(पृ० १९९)

जब लाट लिनलिथगो वायसराय हुए तब भारतकी गायोंकी नामी नसलोंको बचानेके लिये और खासकर गोधनकी उन्नति करनेके लिये विशेष प्रेरणा की गयी। खेती कमीशन (जिसके सभापति लाट लिनलिथगो थे) के समय यह तखमीना किया गयाथा कि उपेक्षित नसलोंकी असरदार तरक्की और वर्गीकरणके लिये सारे भारतमें २ लाख साँढ़ोंकी हर साल जरूरत है। लेकिन ये २ लाख साँढ़ हर साल कहाँसे आते? इनका अस्तित्व ही नहीं था। जिस देशमें १५ करोड़ से २० करोड़ तक ढोर हों वहाँ मौजूद ५० लाख हीन साँढ़ोंके बदले एक ही समयमें दश लाख अच्छे साँढ़ोंकी जरूरत है। जब ये दश लाख साँढ़ तैयार कर लिये जायेंगे उसके बाद हर साल २ लाख नये साँढ़ देनेका प्रबंध बनाये रखना होगा। जिन सरकारी पशुक्षेत्रोंमें पशुवर्धनका काम होता है वहां साँढ़ देनेका प्रयत्न किया गया और सन् १९२३ से २६ तक ३ सालोंमें कुल

५१९ साँढ़ ही दिये जा सके। पंजाबमें सबसे जादे ३२० साँढ़ भेजे गये। वहाँ हर साल १,०००० साँढ़ोंकी जरूरत कूती गयी थी।

यह हालत क्यों और कैसे हुई? इसका पूरा विवरण कहीं नहीं मिलता। फिरभी, इसको जाननेके लिये काफी मसाला है। (१४४, १७५, १८७, ३६६-'७१)

**१२. पिछले जमानेमें उन्नतिके लिये सरकारी सहायता:** भारतमें खेतीका तरीका उन्नत प्रकारका है। खेतीके औजारभी जो जिस कामके लिये बनाये गये उसके लिये उपयुक्त हैं। खेतीके तरीके और औजार खेतिहरकी सामर्थ्य और इच्छाके अधीन हैं। व्यक्ति विशेषके प्रयत्नका महत्व जो खेतीमें है वह पशुपालन आदि जैसे मामलोंमें नहीं है। यह काम सरकारको करना होता है। पिछले जमानेमें सरकारके करने लायक कामोंको सरकारें करती भी थीं। सिंचाईके बड़े बड़े प्रबन्ध इसके उदाहरण हैं। पानीके बिना अच्छे ढंगकी खेती नहीं हो सकती। खेतीकी जरूरत पूरी करनेके लिये हर कालमें सिंचाईका बड़ा बड़ा प्रबन्ध किया गया है। भारतमें अनेक आक्रमणकारी आये और चले गये। कभी कभी उनलोगोंने नादिरशाही अत्याचार किया और सिंचाईके प्रबन्धोंको बिगाड़ डाला। तिसपर भी सरकारने सिंचाईका प्रबन्ध जारीही रखा। सारे भारतमें पाये जानेवाली सिचाईकी नहरें, बाँध और जलाशय यह साबित करते हैं कि शासकवर्गोंने इस मामलेमें अपना कर्तव्य कितना पूरा किया था। भारतमें सब जगह काममें आने लायक सिंचाईका कोई एक तरीका नहीं है। जो तरीका जिस स्थानके लिये सबसे अच्छा हो सकता है उसीके अनुसार वहाँ चौकस काम किया गया। आर्य शासनके प्रारम्भिक दिनोंकी बात मैं नहीं कर रहा हूँ। मुगल कालमें जब शासन सुव्यवस्थित होता जा रहा था उस अन्य कालमें भी सिंचाईकी उत्कृष्ट योजनायें बनाकर पूरी की गयीं। अंगरेजोंकी बनायी वर्त्तमान यमुना नहर पहले शासकोंकी कृति का ही विस्तार है।

जैसे जैसे आबादी बढ़ती गयी जादेसे जादे खेत भी बढ़ाने पड़े। इसलिये पानीका प्रबन्धभी पहलेसे जादे करना पड़ा। सिंचाईके लिये भारतभरमें सब जगह बड़े बड़े जलाशय बनते ही गये।

अगरेजी शासकोंमें अपनेको बड़ा समझनेकी भावना भरी हुई थी। अपनेको तुच्छ समझनेकी भावना इनलोगोंने भारतीयोंमें सफलताके साथ भर दी। इसके बाद हमारे निजी और सामाजिक जीवनमें चौतरफा ह्रास होने लगा। अंगरेज जिसे समझ नहीं

पाते उसे किसी कामका नहीं मानते थे। नये शासकोंने जिन भारतियोंको ऊँचा पद दिया था वह भी यही मानते और कहते थे।

**१३. आधुनिक शिक्षा ग्राम्य जीवनसे मनुष्यको अलग कर देती है :** प्रारम्भिक अंगरेजी शासकोंको खेती, सिंचाई, नहरें बनाने और पशुवर्धनमें कोई फायदा नहीं दिखाई दिया। वह राजभक्ति चाहते थे और चाहते थे शान्ति पूर्वक शोषण करना। यह मतलब पूरा करनेके लिये सभी ढंग किये जाते थे। और आखरी चोटमें इसी मतलबकी सिद्धिके लिये उन्होंने शिक्षाका ढंगभी वही बनाया। अंगरेजी शिक्षाके चटकीलेपनमें आकर्षण था। यह मान लिया गया था कि अंगरेजी स्कूलों और कालेजोंमें जो सिखाया जाता है वही जानने और चाहने लायक है। शिक्षा तात्विक (theoretical) बन गयी। उसका नित्य जीवनमें कोई उपयोग न रहा। यह जीवनके तत्वोंसे ध्यान हटाकर सरकारी नौकर तैयार करने लगी। सारा शिक्षा-तंत्र ऐसा बनाया गया कि सैकड़े दो आदमी नये शासनकी नौकरीके लिये तैयार हो सकें। नये शिक्षितोंके लिये खेती और गोसंवर्धनके विषय जरूरतसे जादे लौकिक या नगण्य थे। यही लोग सामाजिक जीवन और आचारके आदर्श बने। कई पीढ़ी तक यही सिलसिला रहा। यही कारण है कि भारत जैसे पुराने, ऊँची सभ्यतावाले, जनसंकुल और उद्योगी व कृषिप्रधान देशमें जीवन और जीवननिर्वाहका आवश्यक ज्ञान अंगरेजोंकी प्रचारित तथाकथित सभ्यताके सुरसे बेसुरा माना जाता है।

देहात और देहाती अपने भाग्यके भरोसे छोड़ दिये गये हैं। खेतिहरोंमें से एक नया मध्यम वर्ग तैयार हुआ है। भारतके अंगरेज गुरुओंने जो चाहा और सिखाया उसे यह वर्ग सीख समझकर कार्यरूपमें परिणत करने लगा। इनलोगोंकी नकल गाँववालोंने की। किसानभी अपने बच्चोंको अंगरेजी पढ़ाना चाहने लगे। भारतकी प्रकृतिके विरुद्ध, अनुपयुक्त और उसकी भलाईमें उदासीन शिक्षापद्धति जारी हुई। शाही कमीशनकी उद्धृत रिपोर्टके अनुसार (११) गो-संवर्धकगण नष्ट हो गये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इसमें भी आश्चर्य नहीं कि ढोरोंका ह्रास हो रहा है। असली आश्चर्य इसमें है कि अभी जो हालत है उससे भी अधिक पतन नहीं हुआ है। क्योंकि अंगरेजी पढ़े भारतमें गोसंवर्धनके लिये स्थान ही कहाँ है?

उस समयके बड़े लाटकी कार्य समितिके शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभागके अधिकारी सदस्य कुँवर सर जगदीश प्रसाद, के० सी० एस० आई०, सी० आई० ई०, ओ० बी० ई०, ने नई दिल्लीमें सन् १९३९ में भारतके खेती और पशु-पालन बोर्डके

पशु-पालन पक्षकी तीसरी बैठक खोलते समय अपने भाषणमें पशुपालनकी उन्नतिके बाधक कारण बताये थे। उन्होंने कहा था :

"हमारी शिक्षापद्धतिमें अभीतक शहरीपनेका भाव रहा है यह तीसरा कारण है। इसलिये शिक्षित भारत वह नहीं है जिसे मैं 'पशुप्रेमी' (animal minded) कह सकूं। पशुओंमें उसे काफी दिलचस्पी नहीं है। पशुवर्द्धन और उन्नतिके विचारमें उदासीनता और कभी कभी घृणा दिखाना उसकी वृत्ति हो गयी है। सूक्ष्म अध्यात्म और विदग्ध (सुन्दर) साहित्यालोचनके सामने उसे ऐसे विषय अशिष्ट मालूम पड़ते हैं और उनको वह गंभीर चिन्तनके लायक नहीं मानता।"

फिरभी कुंवर सर जगदीश प्रसाद, जिनके हाथों उन दिनों शिक्षाविभाग था, संतुष्ट थे। उन्होंने यह नहीं बताया कि शिक्षाकी पद्धतिको 'पशुप्रेमी' या 'ग्रामप्रेमी' बनानेके लिये वह क्या करना चाहते हैं। वह इतनेसे ही संतुष्ट थे कि बड़े लाटको इस बारेमें दिलचस्पी है। आगे उन्होंने कहा है :

"पर मुझे यह जानकर खुशी है कि लोगोंका विचार बदलता हुआ दिखाई पड़ता है। इस परिवर्तनके लिये बड़े लाटका ज्ञान, उत्साह और उदाहरणने बड़ा काम किया है। पशुपालनकी समस्याकी व्यापकता और महत्वकी हममें प्रतिष्ठा कर उन्होंने बड़ा उपकार किया है। बहुतसे प्रांतोंमें प्रांतीय और जिला पशुधन समितियाँ हैं। मुझे विश्वास है बड़े लाटने ढोरोंकी उन्नतिको जो बढ़ावा दिया है वह कायम रहेगा।"

इस तरहका भ्रम रहना नहीं चाहिये। इस बैठकके समय तक बड़े लाटका बढ़ावा खतम भी हो चुका था। जब तक भारतकी शिक्षापद्धतिमें परिवर्तन कर सारा दृष्टिकोण ही बदला नहीं जाता तब तक बड़े लाट कुछ कर नहीं सकते। भारतकी निष्फल और निश्चयरूपसे हानिकर शिक्षा कोई नया विषय नहीं है। खेती और पशुपालनके सुधारके विषयमें भी ५० वर्ष पहले डा० भोयेलकरने साफ बताया है कि इस बारेमें शिक्षामें क्या करना जरूरी है। इन ५० वर्षोंमें क्या नहीं किया जा सकता था? ग्रामप्रेमी भारतीयोंकी नयी पीढ़ी तैयार की जा सकती थी। लेकिन इससे मतलब नहीं सधता। इससे तो वह शोषण ही बन्द हो जाता जिसके बल पर पूंजीवादी साम्राज्यशाही जिन्दा है।

**१४. शिक्षा और ग्राम्य जीवनपर डा० भोयेलकर :** डा० भोयेलकर (१८९०) ने कहा है :

"यहाँकी भाषाओंके ज्ञानके अभावमें और देशवालोंकी कुछ थोड़ीसी जानकारीके बल मेरे लिये अपनी आँखों देखी खेती की रीति और प्रयोगके बारेमें कुछ राय कायम करने से शिक्षा और वह भी रैयतकी ज़रूरत पूरी करनेवाली शिक्षाके बारेमें निर्णय करना कठिनतर काम है। साधारण शिक्षासे खेतीकी शिक्षाको अलग कर विचार नहीं हो सकता। भारतके विभिन्न भागोंमें जिस तरह शिक्षा दी जारही है उसे जाननेका न तो मुझे समय था न शक्ति। इसलिये स्कूलकी कई कक्षाओंमें खेतीकी शिक्षाभी शामिल करनेका मेरा कथन उचित नहीं समझा जा सकता है। या वह सारे भारतमें नहीं, कहीं कहीं लागू हो सकता है।"—(पृ० ३७८-'७९)

"इसमें जराभी संदेह नहीं कि पिछले कालमें शिक्षाकी रुचि शुद्ध साहित्यकी ओर अति अधिक थी। देशके मुख्य धंधों जैसे खेतीकी ओर झुकाने के बदले इसे उधरसे हटाया गयाहै। खेती ही सबसे बड़ा रोजगार है और इसीसे अधिकांश राजकर मिलता है। सन् १८८१ की मर्दुमसुमारीकी रिपोर्टमें लिखा है कि सारे कामकाजी पुरुषोंमें ७२ सैकड़ेका सीधा आधार खेती है। अकालके कमीशनवालोंका अन्दाज है कि ९० सैकड़ा देहाती जनता खेतीके बल ही जीती है। फिरभी देखा जाता है कि शिक्षाका आजकलका झुकाव नई पीढ़ीको खेतीसे अलग करने और शुद्ध साहित्यिक शिक्षा देनेका है। इसका नतीजा यह होता है कि सरकारी नौकरी पाना या वकालत करनाही युवकोंका उद्देश्य होता है। खेती जीविका नहीं मानी जाती पर अकसर जमीन से कुछ आमदनी करनेका जरिया मानी जाती है। जिन्हें जमीन है वह उसे कारपरदाजोंके जिम्मे सौंप खेतीके बदले शहरमें तिजारतसे रुपया बनाना पसंद करते हैं। इसका नतीजा होता है कि लाख रुपयेकी जायदाद २५) रुपयेके नौकरकी देखरेखमें छोड़ दी जाती है। न तो चतुर खेतिहर वर्ग है और न चतुर इन्तजामकारी ही। नवयुवक शिक्षा समाप्तकर सरकारी नौकरीमें चले जाते हैं। खेती-कालेजका विद्यार्थी अपनी खेती करने या किसी दूसरेकी खेतीका प्रबन्ध करनेके बदले ५०) रुपयेकी सरकारी नौकरी कर लेंगे। साधारण विश्वास यह है कि खेतीको छोड़ और सभी बातें प्रतिष्ठावाली और आमदनीकी हैं।—(पृ० ३७९)

"मुख्यरूपसे कृषिप्रधान किसी देशमें खेतीकी रुचि पैदा करना और उसे निभाना चाहिये। पर आधुनिक शिक्षा इस कामके लिये पर्याप्त नहीं है। इसकी सिद्धिके लिये एकही उपाय यह है कि आधुनिक शिक्षाके कुछ भाग हटाकर उसके बदले खेतीकी शिक्षा रखी जाय। इस उपायका फायदा तुरत दिखाई देगा। क्योंकि पढ़ाके

जानेवाले अधिकांश देहातके होते हैं। उन्हें अपने देशसे एकदम भिन्न विदेशी इतिहास और साहित्य पढ़ानेके बदले उनके नित्य जीवनके परिचित विषय पढ़ाना अधिक सरल है। शिक्षामें अधिकतर उद्योगी कार्यक्रम रखनेका लाभ यह है कि लड़केको जो सिखाया जाता है उसका संबन्ध उसकी होनेवाली जीविकासे होता है। भारतमें इसका महत्व खेती से बढ़कर और किसी विषयमें नहीं है। शास्त्रकी प्राथमिक बातोंकी पढ़ाईसे भी अवलोकनके अभ्यास और जिज्ञासा पैदा होनेकी जितनी संभावना है उतनी शुद्ध साहित्यशिक्षासे नहीं। अति सरल ढंगकी शिक्षामेंभी साधारण वस्तुओंके उदाहरण और खेतीकी क्रियाओं द्वारा सिखाना सहज साध्य है। छात्रकी रुचि बढ़ानेके लिये और उसे अच्छी तरह पाठ समझानेकेलिये इससे बढ़कर दूसरी कोई बात नहीं हो सकती। वस्तु-पाठके लिये इससे उपयुक्त उदाहरण और कहीं नहीं मिलेगा। और ऊँची शिक्षा पानेपर छात्रकी परिचित कल्पनामें वही विषय विकसित होता है। इसलिये इस बड़े धंधेमें उसकी रुचि बढ़ानेका उद्योग करना चाहिये। इस उद्योगके सिद्धान्तका ज्ञान उसे कराना चाहिये कि वह भविष्यमें उसके काम आ सके। लड़केकी पढ़ने लिखने आदिकी साधारण शिक्षामें इससे बाधा नहीं पड़नी चाहिये। परिचित वस्तुयें दिखाकर उसकी धारणाशक्ति बढ़ायी जाती है। इससे अपने बचपनमें सीखे उन प्रारम्भिक सिद्धान्तोंको काममें लानेका अवसर उसे आगे चलकर आता। मैंने सिद्ध किया है कि खेतीकी उन्नतिकी समस्या कितनी बड़ी है। इसलिये यह जरूरी है कि बचपनमें ही खेतीकी गंभीर शिक्षा दी जाय। क्योंकि जो लोग खास तौरपर यही धंधा करेंगे उन्हें आरंभसेही इसके उद्देश्य और कामके सिद्धान्त मालूम हो जाँय।"

—(पृ० ३८०)

*इस कृषि रासायनिकके बेलौस और निश्छल अभिमतका कारण इसका खेतीका प्रेम है। इसने खेतीको जीवनचर्या (career) कहा है; लेकिन अंगरेजी विचार और आचरणके प्रभावसे बदले हुए भारतमें अब खेती करोड़ोंके लिये जीवनचर्या नहीं रह गयी है।*

भारतीयोंकेलिये भारतीय साधनोंका विकाश करना अंगरेजी राज्यका अभिप्राय नहीं रहा है। इसलिये इस राज्यके आरम्भसे ही शिक्षाकी नीव गलत और मूर्खतासे भरी डाली गयी है। लड़के इसलिये स्कूल नहीं भेजे जाते कि वह अपने बाप दादोंके धंधोंको करें, बल्कि इसलिये कि उन्हें सरकारी नौकरी करनेका पासपोर्ट मिल जाय, अथवा अदालतके वकीलसे लेकर चपरासी तकके नये चले पद उन्हें मिलें।

डा० भोयेलकरके समयमें (१८९०) किसानकी आमदनी इतनी ही थी कि वह प्राण धारण कर सके। लेकिन अब गाँवके स्कूलने अपने छात्रोंको नई राह बतायी है जिससे अपने पड़ोसीके सहायक न हो वह शोषकोंके समकक्ष (समर्थक) हो सकते हैं। इसमें शक नहीं कि खेतिहर अपने लड़कोंको इसलिये गाँवके स्कूलमें नहीं भेजते कि उनका लड़का बड़ा होने पर खेती करेगा या उनके काममें मदद करेगा, उसी खेतमें अधिक फसल उपजा सकेगा और उन्हीं गायोंको अधिक दुधार बना सकेगा। किसी स्वाधीन देशमें यही बात हुई होती। पर अंगरेज-शासित भारतमें यह बात नहीं है।

१५. **शोषणमें शिक्षा साधन है:** स्कूलमें जानेवाला हरेक लड़का भावी शोषक है। जाने अनजाने वह इसीलिये वहाँ भेजा जाता है। उसका लड़का पढ़ लिखकर किसान बने यह चाहनेवाला किसान पिता दुर्लभ है। यह स्वाभाविक ही है। किसानकी कुल आमदनी १५) रुपये महीनेकी हो सकती है पर उसके मैट्रिक पास लड़केकी, शहरकी नौकरी कर, २५) रुपये महीनेकी। यह नौजवान सारी आमदनी अपने ऊपर खर्च कर ले सकता है या १०) रुपये महीना बचाकर अपने माँ-बापको तबतक भेजेगा जबतक किसी छोटे या बड़े शहरमें अपनी बीबी बच्चोंको अपने पास ही रखने न लगे। इससे बापकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। वह युवक अब किसान न रहा। यह कलंक अब मिट गया। अब वह मध्यम वर्गका बाबू साहब जेन्टिलमैन है। इस तरह यह मध्यम वर्ग बना है। शोषकोंका यह दल हर वर्ष बढ़ताही गया और अब उस शान्तिपूर्ण शोषणपद्धतिका भंयकर दुष्परिणाम मध्यम वर्गकी बेकारी, यह समस्या उठ खड़ी हुई है।

मैंने किसानके बेटेकी कमाईकी योग्यता २५) रुपये महीने की रखी है। पर संयोगसे उसे अच्छा पद मिल सकता है। वह २२५) रुपये मासिक भी कमा सकता है। अगर १० हजारमें एक ऐसा निकल जाता है तो बाकीके ९,९९९ उसीके अभिलाषी होते हैं और उसी राह चलनेकी जीतोड़ मिहनत करते हैं। भारतकी शिक्षा-पद्धतिकी जड़में ही शोषण है। लड़के स्कूलमें ज्ञानार्जन या समाजके भले और उपयोगी अंग बननेके लिये नहीं भेजे जाते। ये उद्देश्य हैं ही नहीं। (५६८–'७४, ५६७)

१६. **खेतीकी भलाईके लायक शिक्षा:** स्वाधीन देशोंमें खेतीकी भलाई राष्ट्रकी भलाई मानी जाती है। वहाँ बातें दूसरी तरह सँवारी जाती हैं। अमेरिकामें इन बातोंका विकाश कैसे होता है यह गव्य धंधेकी एक किताबके कुछ चित्रोंसे मालूम होता है।

"ये कुछ चित्र व्यवसायिक शिक्षाके संघ मंडल (Federal Board for Vocational Education) ने तैयार कराये हैं। ये बताते हैं कि खेतीकी व्यवसायिक शिक्षा क्या करती है। एक व्यवसायिक छात्र मुर्गीके कामकी आमदनी से शुद्ध नसलकी गरनसी (Gurnsey) गायकी बछिया खरीद कर अपना गव्य धंधा शुरू करता है। उसने अध्ययन कर अनुभव प्राप्त किया और अपने पिताको शुद्ध नसलकी दुधार गायें इकट्ठी करनेमें सहायता दी। उस बड़े गव्य धंधेका प्रबंध करने ओर आर्थिक उत्तरदायित्वमें भी हाथ बँटाया।"—("डेयरी एन्टरप्राइज"—मैकडावेल और फिल्ड, पृ० ११)

जैसा होना चाहिये यह बात वैसीही है। क्योंकि उस देशमें शिक्षा शोषण जारी रखनेके लिये नहीं है। आजकी तरह १८९० ई० के भारतमें भी खेतीका धंधा सबसे कम आमदनीका था। खेतिहर चाहे जितना चतुर और मेहनती हो अपनी जरूरतें पूरी नहीं कर सकता। कर्ज में वह गहरे से गहरा डूबताही जाता है। कर्जके दारुण भारसे किसानको उबारनेके कानून पर कानून बनते गये लेकिन जबतक मूल कारण बना हुआ है, जबतक राज्य व्यवस्था जैसी है वैसी ही बनी हुई है, तबतक न तो शिक्षाका ढंग बदलनेकी कोई संभावना है और न खेती तथा पशुपालनके धंधे ही आकर्षक हो सकते हैं।

१७. **सैदपेठ कृषि-कालेज, मद्रास :** डा० भोयेलकरकी रिपोर्टमें सैदपेठ, मद्रासके एक कालेजका जिक्र है।

"मद्रास एग्रीकलचरल कमीटी (कृषि कमीटी १८९०) की रिपोर्ट है कि सैदपेठ कालेजकी कृषि शिक्षाके नतीजे हताश करनेवाले हैं। अधिकांश विद्यार्थियोंका इस कालेजमें भरती होनेका एक ही उद्देश्य होता है कि उन्हें सरकारी नौकरी मिले या उसमें तरक्की हो। उनमेंसे कुछ ही खेतीका धंधा करते हैं।"—(पृ० ३८२)

कारण स्पष्ट है। किसानोंको जैसी हालतमें खेती करनी होती है उसमें मुनाफा नहीं होता। सन् १८९० में सैदपेठ कालेजका जो हाल था वही आज भारतके सभी कृषिकालेजोंका है। खेतीके शाही कमीशन (१९२७) की रिपोर्ट में इसका वर्णन है:

"कृषिकालेजोंमें पढ़नेवालोंका बहुत बड़ा भाग सरकारी खेती विभागकी नौकरी कर लेता है। अपेक्षाकृत बहुत कम विद्यार्थी अपनी खेती या किसी बड़े कृषिक्षेत्रमें काम करनेके लिये कालेजोंमें भरती होते हैं।"

इससे साबित होता है कि वह हालत अभीतक बदली नहीं।

**१८. सरकार और प्रजाके बीचकी खाई :** सरकार और प्रजा दो भिन्न इकाइयाँ हैं। इधर प्रजामें उदासीनता है और उधर सरकार प्रयोगशाला और नौकरोंकी तरक्की और निपुणता बढानेकी कोशिश कर रही है। सरकारने एक साधनसम्पन्न गवेषक संस्था (Research Institute) स्थापित की है। पशु-चिकित्सा, रोगक्षमता (immunisation), आहार, पशुवर्धन और रोगचर्याकी ठोस गवेषणायें हो रही हैं। यह सबसे सरल काम है। सरकार रुपया खरचती है। जरूरतके कामके लिये नयी नौकरी कायम कर भारतके निपुणतम व्यक्तियोंको नियुक्त करती और कितनोंको विलायतसे बुला लाती है। योग्य और विश्वासी आदमी अपना काम मनोयोगसे कर रहे हैं। इसके कारण बहुतसा अति मूल्यवान साहित्य तैयार हुआ है। पर यह ज्ञानराशि अधिकांश शास्त्रीय पत्रकों (bulletins) और फाइलोंमें ही दर्ज है जो आलमारियोंमें भरी पड़ी है। किसानोंको फायदा पँहुचानेके लिये इनका जैसा उपयोग होना चाहिये नहीं हो रहा है। क्योंकि सरकारका किसानसे सरोकार नहीं है। एक कारण यह भी है कि बुनियादी मामलोंमें दोंनोका हित परस्पर विरोधी है। प्रयोगशालाओंमें पशुचिकित्सा और पालनके प्रयोगका निर्णय किसान तक नहीं पँहुचता या कम से कम उचित से बहुत कम पँहुचता है। सरकारको यह कठिनाई है। मध्यवर्ग सहित सरकारकी किसानोंसे पृथकता ही इसका कारण है।

युक्तप्रांतके गवर्नर सर एम० हैलेट ( Sir M. Hallet ) ने बोर्ड ऑफ एग्रीकलचर एन्ड एनिमल हसबैन्डरीके पशुपालन विभागकी नवम्बर १९४० में हुई ४थी बैठक खोलते समय यह विषय भी लिया था। उन्होंने स्वीकार किया है कि रैयत सरकारका विश्वास नहीं करती। सरकारसे जो नहीं हो सकता लोगोंकी मार्फत होना संभव है।

कार्यक्रम का पहला विषय था "विभिन्न प्रकारके पशुधनकी व्यवस्था और उन्नतिके सुझावके बारेमें नये नये ज्ञानका देहातोंमें प्रचार करनेके वर्तमान तरीके पर विचार।" इसके बारेमें लाट साहबने फर्माया :

"आपका पहला विषय है विभिन्न प्रकारके पशुधनकी व्यवस्था और उन्नतिके सुझावके बारेमें नये नये ज्ञानका देहातोंमें प्रचार करनेके वर्तमान तरीके पर विचार करना। सुधरे तरीकेसे खेती और पशुपालन करने के लिये किसानकी रुचि बढानेमें सिर्फ प्रदर्शनसे सफलता मिल सकती है। सुधरे तरीकेकी उपज सदियोंके पुराने तरीकेकी उपज से बढ़चढ़ कर है यह सिद्ध करनेकी

जरूरत है। यह काम कठिन जरूर है। इसके लिये व्यापक संघटनकी जरूरत है। अगर इस संघटनका खर्च सरकारसे दिया जाय तो बहुत रुपये लगेंगे। पर हमारे पास रुपये नहीं हैं। यदि कोई योजना सिर्फ आँसू पोछनेवाली न हो कर सचमुचमें चलाने लायक हो तो मेरा अर्थविभाग धनका अभाव बताता है। सिर्फ इसीलिये मैं उसे छोड़ने को कभी तैयार नहीं हूं। कुछ सफलता पानेके लिये कभी कभी दूसरे उपाय भी होते हैं। हमलोगोंको यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि इस देशके अपढ़ और रुढ़िग्रस्त किसान सरकारके सीधे प्रचारपर शंकित रहते हैं। उसे कभी कभी यह डर भी होता है कि, बताये हुए सुधार काममें लानेसे उसका लगान या मालगुजारी बढायी जायगी (१६) इसलिये हमलोगोंको अपने पढ़े लिखे जमींदारों और दूसरे लोगोंसे अपने विचारोंका प्रचार कराना होगा।"

सर मॉरिसने शब्दाडम्बर फैलाया है। उत्सवके अवसरों पर शायद यह अपरिहार्य हो। नहीं तो युक्त प्रांत का गवर्नर किसानोंकी निरक्षरता और शंकाशीलताकी बात नहीं कहता। युक्त प्रांतके किसानोंने कोरकसरके बिना यह बात दिखायी है कि जब कभी सरकार सुधरे तरीकोंसे उसकी भलाई सचमुच करना चाहती है तो वह उन्हें अपनानेको तैयार रहते हैं। युक्त प्रांत में तीन चार वर्षके भीतर ही ऊखकी खेतीका सारा ढंग बदल गया। ऊखकी हरेक नये किस्मोंका बीज ज्योंही उन्हें दिया गया उन्होंने तुरतही उसे लिया। समय बीतने पर यदि पुराने किस्मके बदले और अच्छे किस्मका बीज उन्हें दिया गया तो उसे भी उन्होंने उतनेही उत्साहसे लगाया। किसानोंको कोसना बेवजह है। असल बात तो यह है कि कितने मामलोंमें दी जानेवाली चीजका लाभ सरकार खुद ही 'नहीं जानती। उसे यह भी नहीं मालूम रहता कि यह किसानकी सामर्थ्य या उसके काम की भी है। (२६४-'६५, ३९८)

**१६. खेतीकी उन्नति और लगानकी बढ़ती :** इस बारे में जो बहस हुई उससे यह पूरी तरह सिद्ध होता है कि, कमी सरकारमें है किसानमें नहीं। उसी मिटिंगमें बम्बईके मानकरने कहा था :

"अच्छे साँढ़ और गायें ही असली चीज हैं, इस तरहके प्रचारका असर होता है। पर माँग पूरी करनेके लिये अभी तक कोई खास साधन नहीं है। इस उन्नतिका कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया जा सकता। अतः प्रचार सिर्फ क्षणिक हलचलके

और किसी कामका नहीं होता । ......... अतः प्रचारके साथ उन्नतिके साधनका विवरणभी होना चाहिये ।"

बम्बई सरकारके पशुधन-विशेषज्ञ श्री ब्रुएन (Mr. Bruen) बोले: "गाँवोंमें प्रचारकी जड़ जमनेमें असफलताका दूसरा कारण यह है कि जब कोई उन्नति होती दिखाई देती है उसी दम मालगुजारी बढ़ा दी जाती है ।"

सर मौरिस हैलेटने मालगुजारीकी बढ़तीके बारेमें जिसे किसानकी अकारण शंका कहा था उसे श्री ब्रुएन कठोर सत्य साबित करते हैं । यह बात उस बम्बईमें होती है जहाँ सरकार ही मालगुजारी बढ़ानेवाली सत्ता है ।

किसान खेती की उन्नति करनेमें असमर्थ होगया है इसका कारण वह परिस्थितियाँ हैं जिनपर उसका कोई जोर नहीं । निरक्षरता, धर्मभावना और रूढ़िवादिताके लिये उसकी निन्दा करनेसे कुछ लाभ नहीं । अगर वह निरक्षर हैं तो उसके लिये सरकार दोषी है, वह नहीं ।

**२०. क्या गायकी समस्या असाध्य है ?** : गाँवकी खेती और देहातकी परिचारिका गायकी अवनति कैसे हुई इसका कुछ पता हमें मिला है । हमारा विश्वास है कि गायकी पुष्टिसे हमारे देहात और खेती फिर पनपेगी । लेकिन सरकारी मत यह है कि गायकी समस्या असाध्य है । पिछले शाही खेती कमीशनने इन शब्दोंमें परिस्थिति दिखायी है :

"हमारा मत है कि मनुष्यगणनाके आँकड़ोंसे बुराईके एक अनन्त चक्कर (vicious circle) का पता चलता है । गायोंकी संख्या किसी जिलेमें बैलोंकी जरूरतके अनुपातमें होती है । अच्छे ढोरोंके पालनेमें जितनी कठिनाई बढ़ती है, पालतू जानवरोंकी संख्या उससे भी अधिक बढ़ती है । गायें कम दूध देती हैं और उनके बच्चे छोटे कदके हो रहे हैं । किसानोंको इनके कामोंसे संतोष नहीं होता । वह लोग अच्छे बैलोंके लिये जादे से जादे ढोर पैदा कराते जा रहे हैं । (बैलोंकी) गिनती बढ़ने या अच्छे गोचरोंको आबाद करने से चारेकी कमी होती है और गायें और भी निकम्मी हो जाती हैं । अन्तमें यह नौबत आजाती है कि दूसरे प्रांतोंसे बैल या भैंसे खेती के लिये मँगाये जाते हैं । यह नौबत बंगालकी हो गयी है । उचित रीतिसे पाले गये ढोरोंसे जो काम आसानीसे हो सकता हो उसका मुकाबला बंगालकी गायें नहीं कर सकतीं । पर भैंसे या तो मिलते नहीं या खेतीके कामके लायक नहीं होते इसलिये स्थानीय बैलोंकी कमी पूरी

करनेके लिये बाहरसे बैल मँगाये जाते हैं। गायोंका कद छोटा और संख्या बढ़ी होती जा रही है। इसलिये अच्छे मवेशी पैदा करनेकी कठिनाई बढ़ती जाती है। क्योंकि यह कभी नहीं समझना चाहिये कि छोटे कदके १०० मवेशी जितना खाते हैं उतनाही इनसे दूने कदके ५० खाते हैं। ढोर ज्यों ज्यों छोटे होते जाते हैं उनके कदके अनुपातमें उनकी खुराक बढ़ती जाती है। उदाहरणके लिये १० हन्डर वजनके १०० ढोरोंके लिये वजनमें जितना चारा एक वर्ष चलेगा उतनेही वजनका चारा ५ हन्डर वजनके २०० ढोरोंके लिये सिर्फ ८ महीने भरको ही होगा। इसलिये भारत जैसे देशमें जहाँ कुछ मौसिमोंमें चारेका मिलना इतना कठिन हो जाता हो, छोटे कदके अधिक ढोर खर्चीले हैं।

"भारतमें ढोरोंकी गिनती इतनी जादे बढ़ गयी है और बहुत से इलाकोंमें उनका क़द इतना छोटा होता है कि अब यह हालत होगयी है कि, पशुधनकी उन्नति करना भीषण काम है। पर ढोरोंकी उन्नतिपर ही बहुत कुछ खेतीकी उन्नति निर्भर है। यह बात लोग समझ नहीं रहे हैं। यह काम करना ही होगा।—(पृ० १९१)

और इसलिये "... ... खेतिहरकी निगाहसे पशुधनकी तरक्कीका विचार करना कामका होगा। कई अनुभवी गवाहोंने हमलोगोंके आगे जो बयान दिया था उसका मतलब यह है कि भारतके ढोरोंकी अवनतिका कारण अगर पूरे तौर पर नहीं तो कुछ हद्तक किसानकी हाथकी बात नहीं है। अगर किसानकी हालत बिगड़ने नहीं देना है तो यह क्रम अब रोक देना होगा।"—(पृ० १९९)

कमीशनकी राय है कि यह हालत बदलने के लिये किसानों का रुख बदलना होगा और अपने ढोर अच्छी तरह रखनेमें उन्हें अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। वह अगर अपने ढोर पाल नहीं सकता तो उसे बेच ही देना होगा। अपनी गायको अच्छी तरह खिलानेकी असमर्थताका उसके दिमाग से क्या सरोकार है यह समझमें नहीं आया। रिपोर्टकी सलाहके अनुसार ढोरका बेच देना कोई उपाय नहीं है। खरीददार भी कोई अधिक सुधार नहीं कर सकेगा। जिस किसानको असमर्थताके कारण अपने ढोरको अच्छी तरह पालना नहीं पुसाता उसे ढोर बेचने के बाद जमीन परती रखना और भी नहीं पुसायगा। इसलिये यह कोई उपाय नहीं। कमीशनकी रायमें इस समस्याके दूसरे कारण भी हैं।

"पशुधनकी उन्नतिमें किसानके प्रयत्नको चारेकी कमीके अलावा छूतकी बीमारीभी व्यर्थ कर देती है। रोगसे मरनेके कारण ही असलमें लोग

जरूरतसे जादे ढोर पालते हैं इससे पूरे तौरपर खिलानेकी कठिनाई औरभी बढ़ जाती है।"—(पृ० २००)

रिपोर्ट इस कठिनाईको दूर करनेका कोई उपाय नहीं बताती। सरकार सत्यानाशी रोगोंका निराकरण करनेका प्रयत्न कर रही है। लेकिन अभी रोगक्षमताका काम आम तरीके से चलाने के लिये जो उपाय बताये गये हैं वह अभी प्रयोगावस्थामें ही हैं। काममें लायेजानेवाले उपाय और उनकी उपादेयताके बारेमें परस्पर विरोधी मत हैं। इसलिये ढोर कम करनेके मामलेमें भी किसान असमर्थ ही है।

रिपोर्टका निष्कर्ष है कि पशुवर्धन चारेपर निर्भर है। कमसे कम चारा जरूरतकी पहली चीज है। पूरे चारेके बिना पशुवर्धन या पशुकी उन्नति नहीं हो सकती। इस तरह सारा सवाल चारेका अर्थात् मुख्यतः चराई और गौण रूपसे चारेकी फसल तैयार करनेका ही है।

इसके बाद रिपोर्टमें चरागाहके बढ़ाने पर विचार करके निर्णय किया है कि सब प्रयत्नोंके बाद सैकड़े ५ या इससे कुछ जादे जमीन, जंगल और परती जमीनोंमेंसे इस कामके लिये मिल सकती है। इस मामलेमें भी ढोरोंकी उन्नतिके शोधकको अभाव ही नजर आया।

हरेक गाँवमें रद्दी और भूखे ढोर जरूरतसे जादे हैं और ये निकम्मे ढोर सारा चारा खाये जारहे हैं। इसी बुराईके चक्करकी बात रिपोर्टमें जोर देकर कही गयी है। इसका दोष किसानके मत्थे मढ़ा गया है। क्योंकि वह हत्या करनेको तैयार नहीं। हत्यासे कुछ फायदा नहीं होगा यह बात रिपोर्टमें ही लिखे प्रमाणोंसे सिद्ध होती है।

**२१. चारेकी कमीकी भयंकरता :** गो और गोपालनकी दयनीय दशाका विशद वर्णन रिपोर्टमें है :

"अब हमलोग ढोरोंके प्रबंधकी स्थितिको संक्षेपमें रख सकते हैं। साधारण किसान अपने बैल और भैंसोंके लिये जो कर सकता है, करता है। प्रायः वह उनकी सँभाल अच्छी तरह करता है। पर दुर्दिनमें अच्छे से अच्छे किसान और उनके अच्छे से अच्छे ढोरको भी कठिनाई होती है। गाय कम बड़भागी है। खूंटेपर उसे कम ही खिलाया जाता है। अधिकांश चारा तो उसे जहाँ मिले वहाँसे खाना होता है। तरुण ढोर और उसकी प्रतिद्वन्दी भैंसके पाड़े

उसका हिस्सा बंटा लेते हैं और साधारण गोचरपर ही चरते या फसल चर जाते हैं। इन साधारण गोचरोंका हाल जिसे मालूम है वह फसल चरनेवाले को दोष कैसे दे सकता है। भारतमें ढोरोंके कुप्रबन्धके कारण फसलकी चराई सब जगह हुआ करती है। पर यह किसानोंके हितमें भयंकर है। इसकी वजहसे या तो उसे गहरी हानि होती है या तो रातोंको जागना होता है।"—(पृ० १९७)

यह बड़े ताज्जुबकी बात है कि ऐसे चित्रोंके प्रकाशित होनेके बाद भी सरकारकी नींद नहीं टूटती और उसका काम जैसाका तैसा चलता रहता है मानो यह असाधारण स्थिति साधारण ही हो।

चारेकी कमी मानी हुई बात है। रिपोर्टका मत है "अभी जितना चारा मिल सकता है उसका पूरा उपयोग करने पर भी भारतके कई भागोंमें उसकी कमी पड़नेकी संभावना है। किसानके खेतमें चारेकी फसल पैदा की जाय यही एकमात्र उपाय है।" (पृ० २५२)। पर यह उपाय कहनेका ही है। क्योंकि यद्यपि रिपोर्टको छपे आज १० साल बीत गये फिर भी यह हो नहीं सका और आजकी हालतमें इस या उस कारणसे व्यवहार्य भी नहीं है। पशुपालन-विशेषज्ञोंकी बहससे पता चलता है कि सरकारके प्रयत्न करनेके बाद आज पहलेसे भी भीषण हालत हो गयी है। (विषय २४, दिसम्बर १९३६ में हुई बोर्ड ऑफ एग्रीकलचर ऐन्ड एनिमल हसबैन्डरी पक्षकी मीटिंग)

पर भविष्य जितना बुरा दिखाया गया है सचमुच उतना बुरा नहीं है। बात यह नहीं है कि हालत सुधारनेका कोई उपाय ही नहीं, पर आजकी सरकार ऐसे उपायसे गोरक्षा करना नहीं चाहती जिसमें रुपयेका खर्च अधिक हो, और सरकार फिर उन्हीं उपायोंको कामका मानती है।

जिन गवाहोंने इंगलैन्ड और भारतमें गायकी हालतकी तुलना की है उनकी रिपोर्टमें तीखी आलोचना है।

"भारतके प्रमुखतम शास्त्रीने बंगालमें हमलोगोंके सामने अपनी गवाहीमें ब्रिटेनका उदाहरण दिया था। इस बारेमे यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि अधिकांश ब्रिटिश ढोरोंको जाड़ेमें आधा पेटही खाना मिलता था। १८ वीं शताब्दीमें कन्दवाली फसलें लगाकर उनकी रक्षा की गयी। बाड़ेमें रखकर ब्रिटेनके किसान अपने ढोरोंका जैसा तैसा जोड़ा लगना रोक सके और जिस नसलके लिये वह देश आज विख्यात है वह बन सकी।"—(पृ० २००) (३८६-'३१, ५३१)

**२२. खिलानेसे ढोर सुधर सकते हैं :** इस तरह इंगलैन्डमें सिर्फ सौ या दो सौ वर्ष पहले पशु सुधार शुरू किया गया। हमारे लिये अब भी आशा है। यह जानी हुई बात है कि उचित पुष्टिकर भोजन देनेसे ढोरोंमें सुधार जादूकी तरह होता है। भूखों मरनेवाले आदमी और पशुओंके इस देशमें अनेकोंने यह देखा होगा कि जरासाभी पौष्टिक खिलानेसे कितना फायदा होता है। चारा-कृषिक्षेत्र हिसारके असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री रीडने ( Mr. Read ) चारा और उसके साधनके बारेमें लिखा है :

"जो लोग पशुधन की उन्नति करना चाहते हैं और जिन्हें साँढ बनानेके लिये प्रथम श्रेणीका जानवर नहीं मिल सका है उन्हें चारेकी समस्याके कुछ काम सुझाये जा सकते हैं। चारा और चराईपर जो रुपया, समय और मेहनत लगायी जाती हैं वह व्यर्थ नहीं होतीं। बिलकुल मामूली पशुधनको भी अच्छा खिलानेसे फायदा होता है। अच्छे पौष्टिक भोजन खानेवाली गाय अपनी कमनसीब बहनों से उत्तम सन्तान पैदा करेगी।"

कई साल पहले मैं एक गाँवमें गया था। वहाँ मैंने एक कार्यकर्ताके घर एक छीण गाय देखी। मैंने जानना चाहा कि यह ऐसी क्यों है। गायको सिर्फ हाड़ चाम रह गया था और वह मुश्किल से चल पातीथी। पता चला कि दो तीन बर्षोंसे वह बिआयी नहीं है। इसलिये वह बाकी ढोरोंके लिये जो थोड़ा पुआल था उसे हड़पनेवाली समझी जाती थी। उसपर मुझे दया आयी। मेरी समझ में आया कि शायद अपोषणके कारण ही वह गाभिन नहीं हो सकी है। वह गाभिन नहीं होती इसलिये उसको पुआल पूरा पूरा नहीं दिया जाता। कमजोरीके सबब दूसरे पशुओंकी तरह वह स्वच्छन्द चर भी नहीं सकती थी, इस तरह जादे से जादे दुर्बल हो रही थी। माँगते ही वह हमें मिल गयी। यहतो उस परिवारका बोझा हलका करना हुआ। हमारा केन्द्र वहाँ से पाँच मीलपर था। उस गायका नाम लक्ष्मी था। वहाँ वह लायी गयी, उचित आहार उसे दिया गया। उसकी देह पर मांस चढ़ा और चिकने पश्मसे वह ढक गयी। तीन ही महीनेमें वह गरमायी, फिर ब्यायी और दूध भी दिया। कितनी ही बार मैंने औरत, मर्द और बच्चोंकी दुर्दशा देख उसे सीधा दुष्पोषणका ही परिणाम पाया है। जरासा पौष्टिक आहार भी सारी रंगत बदल देता है। आदमीके लिये जो बात है वही गायके लिये भी है। मनुष्य और गायके पोषणमें अटूट संबंध है। जहाँ गाय भूखी मरती है

वहाँ आदमी भूखों मरता है। जहाँ गायें पुष्ट हैं वहाँ आदमी भी पुष्ट हैं। इसका उलटा क्रम भी सही है।

मैंने समझा था कि, जहाँसे लक्ष्मी लायी गयी थी और जहाँ पाली गयी थी दोनों जगह इस उदाहरणसे लोगोंको पदार्थपाठ मिलेगा। जब मैंने देखा कि लक्ष्मीके बारेमें मुझे जो सफलता मिली उसका असर किसानोंपर नहीं पड़ा तब मुझे आश्चर्य हुआ। वह लोग यह सब जानते थे। उन्होंने कहा कि "तुमने जैसे खिलाया है उस तरह हम कहाँसे खिला सकते हैं?"

अगर भारतीय स्त्री-पुरुषोंके अच्छे भविष्यमें हमारा विश्वास है तो भारतीय गायोंका भविष्य भी अच्छा है। पर सरसरी तौर पर कही बातोंपर निर्भर रहने को किसी से नहीं कहा जाता। शाही खेती कमीशनकी रिपोर्टमें विचार करनेके लिये मसाला है। प्रश्न उठ सकता है कि इसके सुझावके मुताबिक क्या हालत लाइलाज हो गयी है? रिपोर्टमें ढोरोंके भविष्यके बारेमें कुछ ऐसी टिप्पणियाँ हैं जिनका दिमाग पर भ्रामक प्रभाव पड़ता है कि, कहे हुए सुधारके प्रयत्न करनेके बादभी असली हालत लाइलाज है। जबह करना ही एकमात्र उपाय है। पर दूसरे देशोंकी तरह भारतके किसान न जबह करेंगे न महामाँस खायेंगे। दूसरे देशोंमें लोग दोनों प्रयोजन पूरा करनेवाली (dual-purpose) गाय पैदा करते हैं। उसका दूध जबतक मुनाफा का हो दुहते हैं और फिर माँसके लिये उसे काट देते हैं। यह बात अगर भारतीय किसान मंजूर नहीं करेगा तो रिपोर्ट के अनुसार उसकी भलाईकी कुछ उम्मीद नहीं। किन्तु यह निश्चित है कि, गायको बचानेके खयालसे भी भारतमें महामाँस नहीं खाया जायगा।

पहले से अच्छा खिलानेके बारेमें भी एक छिपा संदेह है। अच्छा खिलाने से भी वही आफत आवेगी। इससे गायें पहलेसे जादे प्रजावती होंगी। बढ़ी हुई संख्याके कारण अतिरिक्त प्रबंधभी जरूरतसे कम रहेगा। कमीशनके शब्दोंमें वह यों है:

"पिछली सदीमें जनवृद्धिके कारण गैरआबाद जमीन कम हो गयी है। आजकलके गाँवके गोचर पर अधिक भार पड़नेका यह सबसे बड़ा प्रकट कारण है। कुछ गवाहोंने गोचरोंके विस्तारकी सिफारिशकी यह आश्चर्यकी बात नहीं है। यह समझा जाता है कि, कुछ हालतमें इस विस्तार से लाभ होगा। अगर ढोरोंकी संख्या और न बढ़े, साधारण दिनोंमें चराईके लिये काफी जमीन मिल सके और तंगीके दिनोंमें

अतिरिक्त पूरक चारेका प्रबंध हो सके, तब चतुर चरवाहेके लिये यह कोई कठिन काम न होगा। सबसे पहले वह चरागाहमें फेरबदलसे चराई करके उसकी उपज बढ़ावेगा और इससे ढोरोंकी उल्लेखनीय उन्नति करेगा"।—(पृ० २०१) (३७६-'८४)

**२३. तरक्कीके लिये शाही कमीशनकी सिफारिशें पूरी नहीं हो सकतीं :** नीचे लिखी शर्तोंके मुताबिक चराईके जरिये पशु उन्नति करनेके कमीशनने तीन लक्षण बताये हैं :

(१) ढोरोंकी संख्या नहीं बढ़े;
(२) गोचरके लिये काफी जमीन मिले ;
(३) तंगीके दिनोंमें पूरक चारेका प्रबन्ध हो।

शाही कमीशनने बहसके बाद निर्णय किया कि इनमेंसे कोई शर्त पूरी नहीं हो सकती।

(१) ढोरोंकी संख्या नहीं बढ़े : जबतक रोग या हत्याके द्वारा संख्या घटायी नहीं जाती यह बात असंभव है। रोगकी बात सोचीभी नहीं जाती। कमीशनने उत्पत्तिके बारेमें अफसोसके साथ कहा है कि भारतके मनुष्य पशुओंकी अपेक्षा अधिक संतान जनते हैं और इंगलैन्डमें पशु मनुष्योंसे अधिक। यह एक अद्भुत वैषम्य है। जल्दी जल्दी नहीं ब्याना बुराई समझी जाती है। अगर हम चाहें कि बच्चे भी जादे हों और गिनती भी नहीं बढ़े तो इसका मतलब है कि उन्हें काट डालना चाहिये। कतलेआम हो नहीं सकता। इसलिये संख्या-परिमिति रखनेकी पहली शर्तका पूरा होना असंभव है।

(२) गोचर भूमिका मिलना : शाही कमीशनने खुद दिखाया है कि गोचरकी जमीन सिर्फ ५ सैकड़ा ही बढ़ सकती है। इसलिये यह शर्तभी पूरी होने लायक नहीं है।

(३) तंगीके दिनोंमें पूरक चारेका प्रबन्ध : शाही कमीशनने सिद्ध किया है कि आजकलकी हालतमें यह भी व्यवहार्य नहीं है।

इन विषयोंका विचार करके उसने जिज्ञासुओंको यह समझानेकी कोशिश की है कि भारतके किसान और गायका भविष्य अंधकारमय है। उनका सर्वनाश होने वाला है।

ढोरकी-उन्नतिकेलिये शाही कमीशनकी बहस और निर्णयमें जिज्ञासुको अभावके सिवा और कुछ नहीं मिलेगा। खेतीका शाही कमीशन भारतकी खेती और

पशु उन्नतिके इतिहासमें युगान्तरकारी है। इसके चलते देशके १३ लाख रुपये खर्च हुए। कमीशनके आगे इस विषयके सभी सरकरी कागज और आँकड़े थे। ऐसे लोग जो कमीशनके निर्णय करनेमें सहायता दे सकें उनकी गवाही लेने का भी सुयोग इसे था। खेती और पशुधनके ज्ञानकी यह खान है। कमीशनकी सिफारिशको भारत सरकार काममें ला रही है। मैं मानता हूं कि शाही कमीशनकी सिफारिशें माननेको सरकार बाध्य है। उसकी सिफारिशके मुताबिक भारत सरकार नौकरियाँ, गवेषण-मन्दिर और शिक्षालय खोल रही है। इसलिये शाही कमीशनकी तजवीजोंको जैसा चाहिये वह महत्व देना ही होगा।

**२४. बर्डउड द्वारा उद्योग। ग्राम-जीवनका चित्र :** ऊपर दिखाया जा चुका है कि किसानकी गायकी उन्नतिके बारेमें कमीशनकी तजवीजें हताश करनेवाली हैं। लेकिन इसके सिवा दूसरी तरहके विचारभी हैं। पर कमीशनने उसका जिक्र नहीं किया है। कमीशनने जो कुछ छानबीन की है उसके सिवा भी भारतीय किसान और गायकी हालत सुधारनेका उपाय है इसमें संदेह नहीं।

गायोंकी संख्या-वृद्धिसे हताश होनेकी क्या ज़रूरत है? इन दिनों उन्हें चारा नहीं दिया जा सकता यह कारण है। लेकिन इसे सामान्य या अच्छी हालत मानना नहीं चाहिये। अगर जमीनके हिस्सेकी चीज जमीनको लौटा दी जाय और अतिरिक्त किसानोंको फिरसे भारतीय गाँवकी पुरानी कारीगरी और धंधोंमें लगा दिया जाय तो जमीन, आदमी और ढोर दोनोंके बड़े भारको सँभाल लेगी।

बर्डउडने किसी भारतीय गाँवका एक चित्र खींचा है। ६३ वर्ष पहलेकी हालतका यह चित्र है :

"मशीन जारी करनेसे सामाजिक और नैतिक बुराइयाँ भारतमें औरभी जादे होंगी। आजकल सारे भारत्में उद्योग धंधे चल रहे हैं। पर हाथ बुनाईका काम मैनचेस्टर और प्रेसिडेन्सी मिलोंके मुकाबलेकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण मन्दा पड़रहा है। लेकिन भारतके हरेक गाँवमें उसकी परंपराकी सभी दस्तकारियाँ अभी भी चल रही हैं।

"गाँवकी एक मात्र राहके प्रवेश-द्वारके बाहर, ऊँची खुली जगहमें, वंशक्रमसे कुम्हार चाकपर तेजीसे घुमते हुए मिट्टीके लौंदेको अपने हाथसे गढ़ता है। घरके पिछुवाड़ेमें नीची घूमती हुई गलीमें दो या तीन करघों पर नीले, लाल और सुनहले सूत बुने जारहे हैं, जिनपर बबूलके पीले फूल झड़ रहे हैं। गलीमें ठठेरे हथौड़ीकी चोटसे बरतन बासन बना रहे हैं, और आगे किसी धनवानके

दरवाजे पर रुपये और मोहरोंसे सुनार सुन्दर गहने सोना चान्दीके झूमके और चन्द्रमाकी तरह गोल टीके (झूमर), बलय ( कंगन ) और ताबीजें, नथुनियाँ और पैरोंके झाँझन बना रहा है। गहनेके नमूनेके लिये प्रकृतिने सुन्दर रंग बिरंगके फल फूल चारों तरफ फैला रखे हैं, सामनेही पोखरेमें कमल खिल रहे हैं जिसके किनारे ऊंचा मन्दिर है जिसमें नाना प्रकारकी सुन्दर आकृतियाँ खुदी हुई चित्रित हैं। उसी मन्दिरके बगलमें सुन्दर अमराई (आमका बगीचा) है और ताड़के पेड़ हैं। इस सुन्दर दृश्य समावेशमेंही उसे काफी नमूने मिलते हैं। तीसरे पहर साढ़े तीन या चार बजे तालाबसे पानी लानेवाली पनिहारिनोंके रंगीन कपड़ोंसे सारी गली जगमगा उठती है। हरेकके सिरपर दो या तीन घड़े रहते हैं। इस तरह एक कतारमें उनके आने जानेका दृश्य विस्तीर्ण गगन-स्पर्शी चित्रपट सा चमकीला होता है। उनका चलना शाहीजुलूसकी तरह लगता है।

इसके बाद सायंकालमें अपनी रंभाती हुई सीधी गायोंको चराकर आदमी लौटते हैं। उस समय करघे भी समेट लिये जाते हैं। ठठेरे भी शान्त हैं। दरवाजे पर बड़े बूढ़े जमा होते हैं। क्रमशः अंधेरा बढ़ता जाता है और दीये टिमटिमाने लगते हैं। चारों तरफ आनन्द गीत सुनाई पड़ते हैं। रामायण या महाभारत गायी जाती है। दूसरे दिन सूरज निकलते ही नहा निबट फिर उसी तरह काम शुरू करते हैं।"—("दि इन्डस्ट्रियल आर्टस् ऑफ इंडिया", (१८८०), पृ० १३५)

किन्तु राष्ट्रके जीवनमें इस ६३ वर्षके थोड़ेसे समयमें आज क्या हो गया कि हम कहते हैं कि आदमी अपना गुजारा नहीं कर सकते और उन्हें निराहार रहना पड़ता है, गाँव नष्ट हो गये हैं और गायकी यह हालत हो गयी है कि उनमेंसे कुछको बचानेके लिये बाकीको मार डालना होगा। ऐसी हालत क्यों हो गयी? (२६, ४१२, ५२८, ५३४, ५७६)

**२५. जरूरतसे जादे होना रोकनेके लिये गोवध :** गायें जरूरतसे जादे हैं इस सिद्धान्तके प्रतिपादक अनेक हैं और गोवधके समर्थक भी अनेक हैं। ये समर्थक शायद स्वयं गोमांस भोजी नहीं हैं। लेकिन गायकी संख्या वृद्धिमें इन्हें हानिकी आशंका है। इसके लिये ये गायोंकी बहुसंख्यासे हानि संबन्धी सरकारी घोष मान लेते हैं।

पंजाब भेटरनरी कौलेजके कैप्टेन अगरवाला अपनी किताब "ए लैबोरेटरी मैन्युअल ऑफ मिल्क इन्सपेक्सन" (१९४०) में अपनी राहसे बहक उस सभ्यताकी निन्दा करते हैं जो गोवधमें राष्ट्रकी हानि देख रही है।

"पच्छिमके अधिक सभ्य लोग इस आर्थिक स्थितिको समझते हैं और उसका फायदा उठाते हैं। दूसरी तरफ भारतमें ढोरोंका धंधा अजीब है। इस देशमें बहुत जादे आदमी गायको पूज्य मानते हैं और सिर्फ भावुकताके कारण उसका प्यार करते हैं। इस कारण निकम्मे जानवरोंका उन्मूलन असंभव हो गया है। इसका नतीजा यह हुआ कि बेमुनाफेके कई करोड़ ढोर हैं जो मनुष्योंके साधनको खा जाते हैं। मोटे हिसाबसे १,५०,००,००० ढोर निकम्मे और बेफायदे हैं। अगर हर ढोरकी उम्र पाँच वर्ष हो और १० रुपये सालके हिसाबसे उसके चारेका दाम जोड़ाजाय तो हर वर्ष ७५,००,००,००० रुपयाका खर्च है जिसका कोई मुनाफा नहीं मिलता।*

"यह एक चलता आया हिसाब है। पर भारतीय जनताकी गरीबीका कारण बतानेके लिये यह काफी है। कामके जानवरोंको चारा चाहिये था सो निकम्मे जानवर खा जाते हैं। यहाँ गायको चाहिये कि वह आदमीका पोषण करे। किन्तु निकम्मी गायोंके चलते आदमी भारी नुकसान उठा कर दिन दिन क्षीण हो रहे हैं।"

डा० राधाकमल मुकर्जीने भी भारतीय अर्थशास्त्र पर लिखते हुए ऐसेही विचार प्रकट किये हैं। और गायको बचानेके लिये ही गायका वध करना चाहिये इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। इसका जिक्र इस पुस्तकके "विषय परिचय" प्रकरणमें किया जा चुका है।

मनुष्य जीवनमें अर्थसंचय ही सर्वोपरि नहीं है। बहुख्यात पच्छिमी सभ्यतामें भी ऐसीबात नहीं है। हमारे बूढ़े माँ-बाप भी बोझ हैं। क्योंकि खाना तो वह खाते हैं पर कमाते हैं कुछ नहीं। देहाती गरीब हैं और दिन दिन जादे गरीब होते जाते हैं। कमाऊ आदमीको जो आहार खाना चाहिये था वह बूढ़े और बेकार आदमी खाये जाते हैं। ऊपर कहे प्रोफेसर साहब और अनेक दूसरे लोगोंके आर्थिक तर्कके अनुसार निठल्ले बूढ़े माँ-बापोंको चुपचाप खतम कर देना चाहिये। निकम्मी गायके वधके सिद्धान्तका समर्थक कोई अर्थशास्त्री यह कैसे कह सकता है कि बुड़े माँ-बाप आर्थिक बोझ नहीं हैं। (१३६-'४०)

* यह हिसाब साफ तौरपर गलत है। प्रो० साहबके मतानुसार १,५०,००,००० बेकार ढोर हैं। इनका सालाना भोजन व्यय १० रुपया सालके हिसाबसे १५ करोड़ रुपया होगा। ७५,००,००,००० नहीं। हरसाल १,५०,००,००० के १/५ (पंचमांश) मरते हैं और उतनेही नये तैयार हो जाते हैं। मेरी राय है कि प्रो० साहबको यही कहना चाहिये था।

**२६. देहाती धंधोंके नष्ट होनेसे गायें अनर्थकरी हो गयी हैं :** ये विद्वान प्रोफेसर और दूसरे लोग क्षणभर भी इसपर विचार नहीं करते कि, ऐसी हालत हो क्यों गयी। गृहस्थके आर्थिक जीवनमें ऐसा क्या हो गया है कि, उसकी गायें अनर्थकरी हो गयी हैं, इसलिये उन्हें काट ही डालना चाहिये ? गायोंकी संख्य-वृद्धिसे खुश होनेके बदले वह घबरावें क्यों ?

उसका स्पष्ट कारण है यथेष्ठ चारेका न होना। खेतीमें अगर बैलकी जरूरत न हो तो वह गाड़ीमें जुत सकताहै। तेल और ऊख पेर सकता है। बैल ये काम किया करते थे। भाफकी शक्ति काममें ला कर तुमने उनका रोजगार छीन लिया और अब उनकी हत्याकी सिफारिश करते हो। उसी तरह अगिनबोटकी चलनसे मलाहोंकी रोजी मारी। चावल और कपड़ेकी मिलोंने औरतोंकी जीविका हर ली। बिजली और भाफकी शक्तियोंके प्रचलनसे ऐसे सैकड़ों दूसरे धंधे मिट गये जिनका नाम यहाँ गिनना मुश्किल है। जुलाहे, कुम्हार, कतवैये, बढ़ई, साईस साबुनसाज, कागदी, चुड़िहारे, ठठेरे आदि बेकार हो गये हैं। बेकार गायकी हत्याके सिद्धान्तके अनुसार तो आर्थिक दृष्टिसे इन अतिरिक्त बेकार मनुष्योंको मारही डालना चाहिये। यह बात साफ तौरपर मान ली गयी है कि जिन देहातियोंके हाथमें अब उटज शिल्प नहीं रहा है वह लोग इसी जमीनपर ही टूट पड़े हैं जहाँ इनकी गुजाइश नहीं है। सालका इनका ५० सैकड़ा समय बेकार जाता है। इन ५० सैकड़ा लोगोंको खतम कर दो और भारतकी उन्नतिका रास्ता साफ करो। पर यह आगे बढ़नेका गलत रास्ता है। अगर रेलवे गायका काम छीनती है तो ऐसा करनेसे उसे रोको। रेलका महसूल बढ़ाकर गाड़ीवानके कामको मुनाफेका कर दो जिससे कि, बर्डउडके चित्रके मुताबिक, पहलेकी तरह गाड़ीवान और बैल सुखसे रह सकें।

बैलका जो काम छीन लिया गया है सो उसे देना और अगर खिलानेके लिये औरभी जानवर हैं तो और काम देना—यह एक पहलू हुआ। (२४, ४१२, ५२८, ५४४, ५७६)

**२७. जमीनकी लूट :** शोषणकी सरल पद्धति से हो रही जमीनकी लूटका रोकना दूसरा पहलू है। अगर हम चाहते हैं कि उसी जमीनसे और जादे गउओंका गुजारा हो तो जमीनकी पैदावार बढ़ानी होगी। जमीनकी उपजाऊ शक्तिकी सीमापर हम अभी नहीं पँहुचे। खाद देनेसे जमीनकी उपज दूनी

तिगुनी हो सकती है। इससे समस्या सुलझ सकती है। यद्यपि गाय खाद देती है तथापि गोबर जमीनमें डालनेके बदले जला दिया जाता है। यह आर्थिक हानि रोकनी होगी। अपनी सोनेकी खादका इंधन बना देनेके लिये किसानको दोष नहीं दिया जा सकता। वह इसके गुण अच्छी तरह जानता है। दूसरा कोई इंधन है नहीं। गरजके मारे उसे खादही जला देनी होती है। (४७६, ५४७-'५२, ५६७)

२८. **भोयेलकरने कहा, इंधन दो, खाद बचाओ :** डा० भोयेलकरने खादके लिये गोबर बचानेको मुफ्त या करीब करीब मुफ्तमें घर कामकी जलावनकी लकड़ी देनेका जबर्दस्त दावा पेश किया था। जलावन और चारेका रक्षित क्षेत्र (reserved) बनानेके बारेमें उसका स्पष्ट प्रस्ताव था। सन् १९२७ के शाही कमीशनने खादके बारेमें भोयेलकरका हवाला दिया है। पर उसने परिस्थितिका मुकाबला करनेके लिये जो महत्वके व्यवहार्य सुझाव रखे हैं उन्हें छोड़ दिया है। सरकार आगे बढ़कर गोबर और खलीको खाद और चारेके लिये बचानेका काम करे यह डा० भोयेलकरके दौरे और अनुसंधानका सबसे महत्वका फल था। उसका प्रस्ताव था कि इन चीजोंके वितरणका भार सरकार पर रहे। भारतकी तीसी (अलसी) इंगलैन्डके ढोरोंको खिलाना वह पसन्द करता था, फिरभी उसने स्वीकार किया है कि इसका निर्यात भारतको कंगाल बनाता है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि भारतकी गायकी रक्षाके लिये वह इंगलैन्डके तात्कालिक हितकी कुरबानी करनेके पक्षमें था। डा० भोयेलकरकी इस मामले पर राय विस्तारसे उद्धृत करने लायक है, क्योंकि तबसे इतने वर्ष बीतते हालत और भी बिगड़ी है। इस बारेमें उसकी राय रचनात्मक गोरक्षककी है और इसलिये भारतीय खेतिहरको सर्वनाशसे बचानेवाली है।

डा० भोयेलकरकी एक पुकार थी कि जो भूमिका अंश है वह उसे दिया जाय, जिससे उसपर निर्भर मनुष्य तथा गायका वह गुजारा कर सके। सरकारका यह कर्तव्य है कि इसकी पूर्तिके लिये जरूरी इन्तजामका खर्च वह करे। (४११, ४४४, ४६२, ४७६, ५४७-'५१, ५७७)

२९. **तेलहनकी रफ्तनी या जमीनकी उर्वरताको देशनिकाला :** तेलहनोंकी रफ्तनीको डा० भोयेलकरने जमीनकी उपजका देशनिकाला कहा है। इसे रोकनेके बारेमें उनका उद्गार है कि :

"यह साफ है कि तेलहनका * अधिकांश रफ्तनी होती है। इस रफ्तनीका माने मिट्टीके तत्वोंको बहुत बड़ी मात्राका हटाना होगा। अगर इन्हें (रेड़ीको छोड़कर) तेल निकालनेके बाद ढोरोंको खिलाया जाय तो उनका खादका अंश जिस मिट्टीसे बना था फिर उसीमें लौट जायगा और उपजका संतुलन कायम रह सकेगा। तेलमें कोई खादवाली चीज नहीं है क्योंकि उसके तत्व हवासे लिये गये हैं, मिट्टीसे नहीं। इसलिये वह रफ्तनीके लायक चीज है। पर तेलहन या खलीकी रफ्तनी मिट्टीसेही लिये गये तेलहनके खादवाले कीमती अंशकी ही रफ्तनी है। संक्षेपमें यह कि तेलहनकी रफ्तनी जमीनकी उर्वरताकी रफ्तनी है। इसका उत्तर निःसन्देह यही दिया जायगा कि इसके बदले नगद रुपये मिलते हैं। पर ऐसी फालतू चीजोंको ढोरको खिलाकर प्रकारान्तरसे खादके काममें लाना चाहिये या सीधे ही जमीनमें डालना चाहिये। कृषि विभाग और खासकर प्रयोग क्षेत्रोंका यह कर्तव्य है कि लोगोंको यह फायदा दिखाकर बतावें। भारतमें किसी तरहकी खाद बहुत कम मिलती है। इस लिये खादकी चीजोंको गुणकारी समझने और इसी देशमें उसे रखनेकी कोशिश करनेके बदले सात समुद्र पार जाने देना गलत मालूम होता है। इंगलैन्डमें हमलोग इस निर्यातसे फायदा उठानेमें पिछड़ते नहीं हैं। भारत आनेके पहले वोबर्न प्रयोग क्षेत्रमें (Woburn Experimental Farm) मैं बैलोंको तीसीकी खली खिलाता था और लाल सरसों (rape) की खलीकी खादसे फसलें पैदा करता था। बहुत संभव है कि ये दोनों चीजें भारतकी मिट्टीकी ही उपज हैं और उसकी निर्वासित उर्वरताकी प्रतिनिधि हैं।"—(पृ० १०६) (४६२, ४७६, ५४७, ५५१)

**३०. सबसे उत्तम खाद गोबर : उसका गुण :** खादके कामके लिये गोबरके बारेमें डा० भोयेलकरने कहा है :

"भारतकी तरह इंगलैन्डमें भी गोबरकी खादही आम तौरपर सबसे जादे काममें आती है। इंगलैन्डमें उससे बनाई खादको 'फार्म यार्ड मैन्योर' (farm yard manure) कहते हैं। इंगलैन्डमें इसके साथ बनावटी खादभी देनी होती है और थोड़ा बहुत बनावटी खाद गोबरके बदले भी दी जाती है। पर भारतमें यह नहीं

* तिल, मूंगफली, तीसी, बिनौला, महुआ-बीज आदि ये सब निर्यातकी फसलें हैं।

होता। गोबर ही सर्वव्यापी खाद है। और अकसर सिर्फ यही उपलब्ध भी है। इसलिये जब हम देखते हैं कि गोबरका इंधन देहातोंमें आम तौरपर जलाया जाता है......तब हमारे मनमें यह सवाल होता है कि गोयठे (उपले) जलानेका अर्थ खेतीकी बहुत बड़ी हानि करना है।"—(पृ० ९६)

डा० भोयेलकरने भारतीय गोबरका विश्लेषण किया और पाया कि, एक टन सूखा गोबर १५५ रत्तल सलफेट ऑफ अमोनियाकी (Sulphate of Ammonia) खादके बराबर है। अगर एक पशुका एक दिनमें औसत ४ रत्तल सूखा गोबर हो तो सारे गोवंशका एक दिनका गोबर एक करोड़ रुपये से जादेके सलफेट ऑफ अमोनियाके बराबर होगा। एक वर्षमें ३६० करोड़ रुपयोंकी खादके बराबर यह होगा। अगर ३६० करोड़का यह अमोनिया मिट्टीमें डाला जाय तो खेतकी उपज इतनी बढ़ जायगी कि उसकी कीमत अकूत होगी। इसकी हिफाजत करनी होगी। डा० भोयेलकरने लिखा है:

"मैंने कहा है कि गोबर जलानेकी चाल आम है। दुर्भाग्यसे बात ऐसीही है। पर खेतिहरोंमें यह आम रिवाज नहीं है। मैं तो यहाँ तक कहूंगा कि श्रेष्ठ किसान बड़ी जरूरतके बिना गोबर नहीं जलाते हैं, क्योंकि इसके सिवा दूसरा जलावन उन्हें नहीं मिलता। दूसरे दर्जेके किसान भी जहाँतक बनता है कभी गोबर नहीं जलाते। इसके बारे में मैंने बहुतसे परस्पर विरोधी मत सुने और पढ़े हैं। इसलिये अपनी सारी जाँचमें इतना ध्यान शायद मैंने और किसी बात पर नहीं दिया है। इसलिये मैं जहाँ कहीं गया इस बारेमें जाननेका पूरा यत्न किया। फलस्वरूप मुझे यह कहनेमें किसी तरहकी हिचक नहीं होती कि लकड़ीके अभावमें ही किसान गोबर जलाते हैं। अगर लकड़ी सस्ती हो और उन्हें आसानीसे मिल सके तो खेतोंके लिये बहुत अधिक मात्रामें खाद मिल सकती है। जहाँ जहाँ मैं घूमा हूं ऐसे अनेक स्थानोंका नाम पेश कर सकता हूँ, जहाँ कोई किसान गोबर नहीं जलाता या साधारण तौरपर सिर्फ दूध उबालनेके लियेही कमसे कम मात्रा में जलाया जाता है।"—(पृ० १००-'०१)

औरभी, "अपनी जाँचकी बदौलत मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं जोरसे कह सकता हूं कि गोबरका इंधन जलानेवाले १० में से ८ किसान जलावनकी लकड़ीकी कमीके कारण ऐसा करते हैं।"—(पृ० १०३) (३५८, ४६२, ४७०)

**३१. भोयेलकरकी एक खास सिफारिश, मुफ्त जलावनका प्रबंध :** "पिछले अध्यायमें खादके प्रबन्धका विचार करनेके बाद हमने पाया कि उनकी संख्या बहुत परिमित है और खादके लिये मिलनेवाली एकमात्र वस्तु मामूली गोबर ही है। फिर हमने यह भी पाया कि जहाँ कहीं लकड़ी काफी पायी जाती है वहाँ गोबर कभी नहीं जलाया जाता, खेतहीमें डाला जाता है। पर जहाँ लकड़ी कम मिलती है वहाँ दूसरे जलावनके अभावमें खाद ही जलाया जाता है और तब जमीन उससे वंचित रहती है। यह भी दिखाया गया है कि जमीनकी उपज पानीके इन्तजाम और खादपर निर्भर है। इससे यह नतीजा निकला कि जमीनकी उपज बढ़ाये रखने या दूसरे शब्दोंमें खेतीकी उन्नतिके लिये जलावनकी लकड़ीका इन्तजाम करना महत्वके बड़े साधनोंमें एक है। इस पर मैं जितना जोर दूं वह थोड़ाही है। क्योंकि यही एक मात्र व्यवहारिक उपाय है जिसे मैं सबसे अधिक महत्व देता हूँ। यही एक चीज है जिसपर ध्यानदेना सबसे जरूरी है और जिससे सबसे अधिक फायदेकी उम्मीद की जा सकती है। यह सच है कि मैंने अपनी रिपोर्टमें और कई सिफारिशें तथा सुझाव भी दिये हैं, पर इसके मुकाबले मैं उन्हें हलका मानता हूं। एक बार हम परिस्थितिका विचार फिर करें। यही एक देश है जो खाद और फसल दोनो विदेश चलान करता है तथा पाखानेका उपयोग भी नहीं करता और फिर जलावनके अभावमें गोबर जला देता है, और फिरभी यह आबादी सदा बढ़ रही है। यहाँ जमीनसे अधिकतर फसल उपजानेकी मांग है और यह अधिकतर खाद मिलनेपर निर्भर है। किन्तु जमीनके वास्ते खादको बचानेके लिये जलावनकी लकड़ी लोगोंको मुफ्त देनेकी योजना से बढ़कर और कौनसी योजना होगी। हड्डी या पाखानेके इस्तेमालमें जाति बंधनका जैसा सवाल है गोबरके बदले लकड़ी जलानेमें वैसा कुछ नहीं है। यह एक ऐसा उपाय है जिसे लोग काममें लावेंगे। और जहाँ संभव है वहाँ लाये भी हैं। इस तरह जो सुधार होगा वह सही कायदे से हुआ होगा। यानी भारतकी खेतीका बाहरके बदले भीतरकी ओर से हुआ यह सुधार होगा।—(पृ० १३६-'३७) (४४४, ४५३, ४६२, ५७७)

**३२. जिस तरह पानीका प्रबंध राष्ट्र करता है उसी तरह जलावनका भी करना चाहिये :** "इसलिये मुझे यह कहनेमें हिचक नहीं होती कि अपने लिये पानीका प्रबंध करनेकी रैयतोंकी कठिनाई देख सरकारने उसका प्रबन्ध जैसे किया उसी तरह उनकी जलावनकी कठिनाई पर भी उसको गौर करनाही

चाहिये। क्योंकि उनके लिये इसका स्वयं प्रबंध करना असंभव है। सरकारको उनके लिये यह भी जरूर करना चाहिये। इस पर जोर मैं इसलिये नहीं दे रहा हूँ कि इसमें सिर्फ रैयतकी ही भलाई है, इसमें राष्ट्रकी भी उतनी ही भलाई है। अधिक खादका प्रबंध करने और सभी उपायोंका पूरा विचार करनेसे यह स्पष्ट हुआ कि खादके लिये यही एक राह है कि जलावन मुफ्त दिया जाय। और अगर यह उपाय काममें नहीं लाया गया तो जमीनका उपजाऊपन जरूरही घट जायगा। और इससे सरकारी आमदनी भी घटेगी। इसलिये मैं इंधनका प्रबंध करना सिर्फ प्रजाकी ही नहीं सरकारकी उन्नतिका साधन मानता हूँ। इस उपायका अवलम्बन सरकारको स्वयं अपने हितके लिये तुरत करना चाहिये। अगर गोबरके बदले लकड़ी जलावनकी जगह काममें लायी जा सके तो यह बात समझमें आ जायगी कि अधिक लकड़ीका अर्थ है अधिक खाद। अधिक खादका अर्थ है अधिक फसल और अधिक फसलका अर्थ है सरकारकी मालगुजारीका बढ़ना। किसानके लिये इसका अर्थ है अधिक चारा, अच्छे ढोर और उससे भविष्यके लिये भी जमीनकी उपज कायम रखनेके लिये और अधिक खाद।"—(पृ० १३७)

"दूसरे लोग पहले ही इस बारेमें बता गये हैं। इस लिये सिर्फ इसपर जोर देना मेरा काम है। अबतो इसे काममे जरूर लाना चाहिये। १७ वर्ष पहले मिस्टर आर० एच० इलियटने (Mr. R. H. Elliot) टाइम्समें लेख लिख भारतके लिये इंधनकी 'रखाँत' पर जोर दिया था। उसने तब जो कुछ कहा था अब सही साबित हुआ है। दूसरोंने भी यही राय दी है। पर अभी इस बातकी माँग है कि पहले जो कुछ हुआ हो उससे बढ़कर निश्चित काम हो।"—(पृ० १३७-'३८)

उस समयकी भारत सरकारने इंधनकी रखाँत का प्रबंध करनेकी जरूरत समझी। और अगर १० वर्ग मीलकी कीमत २०,००० रुपये तक हो तो जमीन खरीदनेकी सिफारिश की। इस रखाँतका वास्तविक प्रबंध जंगल विभागके जिम्मे करनेकी बात सोची गयी थी। सरकारने छानबीन करायी थी कि नहरों और रेलकी लाईनोंके किनारे "जलावन और चारेकी रखाँत" है या नहीं। पर ऐसा मालूम होता है कि इसके अनुसार काम हुआ नहीं और सन् १९२७ के शाही कमीशनके समय तक तो यह सुझाव तमादी हो चुका था। इस तरह भारत खादसे वंचित ही रहा। (४६२)

**३३. चारेकी फसलके लिये गोबरकी हिफाजत करो और गायको**

बचाओ : जिस देशमें आदमी पीछे कम से कम दूध मिलता है वहाँ गायोंकी वृद्धिसे डरने की क्या बात है ? कुचक्रका जवाब है कि यथेष्ट चारेका अभाव है। पर ढोरोंके ही गोबरसे खेतकी उपज बढ़ाइये। तेलहन और खलीका चलान रोक कर खेतकी उपज कायम रखिये। मरे पशुके हाड़ माँसकी खाद चलान करनेके बदले काममें लाइये। पाखाना और कंपोस्टका उपयोग जानिये तब आपको पता चलेगा कि खेतसे उपज कैसे फूट पड़ती है। जिस खेतसे १० पशुओंका गुजारा चलता था उसीसे २० का चलेगा। दूसरे शब्दोंमें यह कि जिन खेतोंमें आज अन्न उपजाया जाता है केवल उनके अधिकांशमें ही इतना अन्न उपजाया जायगा और उसका कुछ अंश चारेकी खेती के लिये होगा। तब भारतके मनुष्य स्वास्थ्यसंपन्न होंगे। और उस हालतमें वहलोग प्रतिजन सिर्फ ७ आउन्स दूध पीनेवाले नहीं होंगे। इंगलैन्डकी तरह ४० आउन्स दूध पीयेंगे।

लकड़ी देकर गोबर बचानेका डा० भोयेलकरका अभिप्राय साफ है। उनका मतलब यही था कि, घरू कामकी सारी लकड़ी नाम मात्रका वार्षिक मूल्य लेकर किसानको दी जाय। उसका हिसाब था कि अगर हर किसान परिवारसे सालमें एक रुपया लेकर इंधन और चारेकी रखाँतसे उसे जलावन लेने दिया जाय तो सरकारको घाटा नहीं होगा और अगर घाटा हो भी तो उसे जंगल विभागकी साधारण आमदनीसे पूरा किया जाय।

**३४. दो रिपोर्टें :** इस अध्यायमें मैंने सन् १८९० की डा० भोयेलकरकी और सन् १९२७ की शाही खेती कमीशनकी रिपोर्टोंपर विचार किया है। क्योंकि विचारणीय विषयकी जानकारीके लिये दोनों मुख्यतम साधन हैं।

डा० भोयेलकरकी रिपोर्ट रचनात्मक है। खाद खेतको लौटाकर दे दी जाय या यों कहिये कि जमीनकी चीज जमीनको लौटा दी जाय और खेतके उपजाऊपनका जलाना या विदेश चलान करना रोक दिया जाय। इसी एक मुद्देपर उन्होंने जोर दिया है। वह कृषि रासायनिक थे। इसलिये उनकी सहज रासायनिक बुद्धिने तेल और खलीका भेद बताया। तेलहनका तेल पौधेकी जीवनी क्रियाके द्वारा हवाके औक्सीजन (Oxygen) हाइड्रोजन (Hydrogen) और कारबन (Carbon) से बनता है। इसलिये तेल हवासे बना है। और तेलहनका खलीवाला अंश खेतके खनिज तत्वों और नाइट्रोजन आदिसे बना है। जो जमीनका है उसे जमीनको लौटा देनेका आग्रह उसने किया है। यह किया जाना चाहिये था और अब करना चाहिये।

सन् १९२७ के शाही कमीशनकी दूसरी रिपोर्ट इस मामलेमें निष्फल है। उसका मुख्य विषय पशु चिकित्सा (Veterinary) की असरदार नौकरियाँ कायम करना है। इस विषयकी सिफारिशोंको भारत सरकार काममें ला रही है। गवेषणालय और शिक्षणालय खुलते जा रहे हैं। ये सब जरूरी हैं पर पहली जरूरत है गायका पेट भरना। पर इस मुद्दे पर रिपोर्टसे निराशाके सिवा और कुछ नहीं मिलता।

# अध्याय २

## भारतमें गायकी कुछ मुख्य नसलें

**३५. यूरोपीय नसलोंसे संकर करना :** यूरोपकी गाय और भारतकी गाय प्राणी-शास्त्रके अनुसार अलग अलग तरह की हैं। भारतकी गायको कुब्ब (ककुद) होता है। साँढ़का यह औरभी ऊँचा होता है। पर यूरोपवालियोंको कुब्ब नहीं होता। दोनों नसलें भिन्न हैं। भारतीय ढोर (प्राणीशास्त्रमें) बोस इन्डिकस (Bos Indicus) या जेबू (Zebu) कुब्बवाला पशु है। चीन, भारत और पूर्वी अफ्रिकामें ये पालतू बना लिये गये। इसके विपरीत यूरोप तथा उत्तरी एशियाके ढोर एकदम दूसरी नसल बोस टॉरस (Bos Taurus) के हैं जिन्हें कुब्ब नहीं होता। शास्त्रियोंने बार बार यह सिद्ध किया है कि गरम (tropics) देशोंमें केवल जेबू रक्तके ढोर ही पनप सकते हैं। (१३०-'३५, १६८-'६६)

**३६. भारतीय ढोरोंका मूल :** भारतीय ढोरोंके मूलका पता लगाना गवेषणका काम है। एक मत यह है कि उत्तरी भारतकी दुधार नसलें आर्यगण अपने साथ लाये थे। ये पच्छिमोत्तर भारतसे मध्य और दक्खिन भारतमें तथा पूरब और पच्छिममें भी धीरे धीरे फैल गयीं। दूसरा मत है कि भारतकी दुधार गायोंकी मुख्य नसलें इसी देश की हैं।

यह मानी हुई बात है कि ईसाके ३,००० वर्षके बहुत पहले भारतमें गाय, भैंस, हाथी आदि पाले जाते थे। आर्योंके पहले भारतमें दो प्रकारकी गाये थीं।

एक लम्बे सींग और कुब्बवाली विशाल आकारकी और दूसरी छोटे आकार और सींगवाली। इसे शायद कुब्बभी हो। दूसरे प्रकारवाली मोहेनजोदरो (Mohenjodaro) के ऊपरी स्तरमें मिली है। पर हर स्तरमें कुब्ब वाले साढ़ोंके अनेक अवशेष पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि "उस समय सिन्धुके काँठे या किनारेमें इस सुन्दर जातिके प्रचुर ढोर थे। सिन्ध, उत्तर गुजरात और राजपुतानामें आजकलभी पाये जाने वाले बलिष्ठ, सफेद और भूरे ढोर यदि एक ही जातिके न भी हों तब भी इनके निकटवर्ती तो जरूर हैं। पर मध्य भारतके छोटे कुब्ब वाले ढोरोंसे बिलकुल भिन्न हैं। (शिरलो द्वारा सर जॉन मार्शलका उद्धरण)

मोहेनजोदरोमें मिले नमूनेसे जाँच करनेपर सर अर्थर ऑलवर (Sir Arthur Olver) का यह कहना नहीं जँचता कि उत्तर भारत, सिन्ध, बम्बई, मदरासके भूरे रंगके ढोर ऋग्वैदिक आक्रामक यहाँ लाये। असलमें बात यह हो सकती है कि आर्यगण जिस ढोरको अपने साथ लाये उसे भारत माफिक नहीं हुआ। जिस उत्तर एशियासे वह लोग यहाँ आये वहाँसे बोस टॉरस जातिके ढोर अपने साथ लाये हों पर पीछे देशी जातियोंको श्रेष्ठतर पा उन्हें ही पालने लगे हों।

"ऋग्वेदमें सिन्धुकी सहायक गोमल नदीके किनारे गायोंका होना लिखा है। कृष्ण और उनकी गोपियोंका मथुरा किसी समय अपनी दुधार गायोंके लिये विख्यात था। वानचाँग (Huient'sang) ने परायात्रा (Parayatra) या बैराट (Bairat) में अनेक गउओंका होना लिखा है। वह कहता है कि 'सिन्धी लोग पशु पालनसे अपना निर्वाह करते' थे। उसके बहुत बाद मार्कोपोलो (Marco Polo) फारसकी खाड़ीके पूर्वीतट पर आया। वहाँ उसने एक अदृष्टपूर्व प्रकारका ढोर देखा। इसके बारेमें वह यों लिखता है '...विशाल और सफेद गायकी एक जाति जिसके पश्म चिकने हैं,...सींग पुष्ट तथा स्थूल और कन्धेके बीचमें उठा हुआ कूबड़ या कुब्ब। ...ये पशु सुन्दर और मजबूत हैं।' महान् सिकन्दर जिन गायोंको अपने साथ लेकर भारतसे घर रवाना हुआ था, संभवतः उन्हें उन भारतीय जातियोंकी सन्तान होनेका युक्तियुक्त अनुमान कोई कर सकता है। उसी लेखकने लिखा है कि मसुलीपत्तनमें 'लोगोंको काफी ढोर हैं।' निकोलो कोन्टीने (Nicolo Conti) १५ वीं सदीमें वर्णन किया है कि, कालीकटके आसपास अयाल (केसर) और लम्बे सींग वाले जंगली पशु अबभी बहुत जादे पाये जाते हैं। ...अबुल फजलने लिखा है :

“साम्राज्यके हर हिस्सेमें अच्छी गायें होती हैं। पर गुजरातकी सबसे अच्छी मानी जाती हैं। बंगाल * और दक्खिनमेंभी अच्छी गायें भरपूर हैं। दिल्लीकी बहुतसी गायें रोज २० पाट (quarts) दूध देती हैं। …कश्मीरके आसपास कटार (katars) होते हैं जिनकी सूरत अजीब तरहकी होती है। …छोटे कदकी भी एक प्रकारकी गाय है जिसे गैनी कहते हैं। ये सुडौल और सुन्दर हैं।” †

सन् १८०८ के लगभग भारत सरकारके आदेशसे भारतकी कला, धंधे और खेतीकी जाँच (survey) कराई गयी थी। (मंटगुमरी मार्टिन—इस्टर्न इंडिया) इस किताबमें भारतके दक्खिनसे उत्तर तक के अच्छे ढोरोंके सुन्दर चित्र हैं। इन सब साहित्यके रहते हुए भी यह अचरजकी बात थी कि भारत सरकारने भारतके ढोरोंके साथ गड़बड़ी कर और यूरपके कुब्बहीन ढोरोंसे संकर करके उनका सुधार करनेका निष्फल प्रयास कर इतने वर्ष गँवाये।

**३७. नस्लोंके वर्ग या प्रकार :** सर अर्थर ऑलवरने भारतके ढोरोंको कई बड़े वर्गों या प्रकारोंमें बाँटा है। भारतीय ढोरोंके मूल और उनके परस्पर मिश्रणके सिद्धान्तोंसे सहमत होना यद्यपि कठिन है फिरभी उनने आजकलकी नसलोंका जो विस्तृत वर्गीकरण किया है उसमें बहुत कुछ सकारने लायक है।

सर अर्थर ऑलवरका विस्तृत वर्गीकरण नीचे लिखा जाताहै :

(१) **अमृतमहाल प्रकारके लम्बे सींगवाले मैसूरके ढोर।** ये मैसूर, मदरास और दक्खिनी बंबईमें पाये जाते हैं। विशेष बनावटके इनके सर और सींग होते हैं।

(२) **काठियावाड़के गिर प्रकारके ढोर** और उनके तरह तरहके प्रकारान्तर जो पच्छिमी भारतके बहुत विस्तृत भूभागमें कच्छ से लेकर दक्खिनमें निजाम राज्य और राजपूतानाके राज्योंमें युक्तप्रान्तकी सीमातक पाये जाते हैं।

इनका सर उन्नत और सींग विशेष तरहके होते हैं। मैसूर प्रकारके मुकाबले ये मोटे होते हैं। लेकिन दूध देने और धीरे धीरे भारी भार खींचनेके काममें ये उपयोगी पशु हैं। इनके लम्बे लोलक कान असाधारण होते हैं। पर संकर करनेसे ये असाधारणतायें कम मालूम होती हैं।

* उस समयके बंगालका माने सारे उत्तर भारतसे है।

† ‘इंडियन जर्नल अफ भेटरीनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्ड्री’ मार्च १९४० में प्रकाशित श्रीमती शिरलोके लेखसे।

(३) **विशाल सफेद प्रकारका उत्तरी ढोर।** इसकेभी दो उपभेद हो सकते हैं। इन उत्तरी ढोरोंका प्रभाव सारे भारतमें देखा जा सकता है। क्योंकि पंजाब, युक्तप्रान्त, मदरास, अरवलीकी पहाड़ीके किनारे राजपुताना होकर सिन्ध, गुजरात और वंबई तकके इतने बड़े फैलावमें इस वर्गके अनेक प्रकार हैं। एक प्रकार (क) का मुँह चौड़ा है। दूसरे प्रकार (ख) का मुँह सँकरा। यह पंजाव, युक्तप्रान्त और सिन्धतक फैला हुआ है।

३८. (३क) **उत्तरका चौड़े मुँहवाला सफेद भूरा प्रकार।** सर अर्थर ऑलवरका मत है कि उत्तरका चौड़े मुँह और 'लायर' (lyre) की तरह सींगवाले प्रकारके ढोरने ऋग्वेदके आर्योंका रास्ता पकड़ा था ऐसा मालूम होता है। ये लोग भारतमें उत्तरके दर्रेसे घुसे। फिर अरवलीके उत्तर पच्छिमकी तरफ मुड़ गये और सिन्ध, गुजरात तथा दक्खिनी राजपुताना पँहुचे। वह मोहेनजोदरोकी मुहरमें अंकित साँढ़से इस प्रकारका मिलान करते हैं। पर मुझे तो मोहेनजोदरोकी मुहरका साँढ़ मैसूर प्रकार, खासकर मदरासमें पाये जाने वाले कंगायम् साँढ़से जादा मिलता जुलता मालूम देता है।

जो कुछ भी हो, मोहेनजोदरोकी मुहरके साँढ़को और चौड़े मुँह तथा लायरकी तरह सींगवाले काँकरेज नसलको एक तरहका बताना कठिन काम है।

(३ख) **उत्तरका छोटे मुँहवाला दूसरा प्रकार।** सर अर्थर ऑलवरके अनुसार इस प्रकारमें छोटे सींगवाली नसलें शामिल हैं। "हरियाना, राठ, गावलाव और अंगोल नसलें इसीमें आजाती हैं। ये सभी उत्तरके दर्रेसे आनेवाले ऋग्वैदिक आर्योंके मध्यभारत होकर उत्तरसे दक्खिन जानेवाली राह पर पड़ते हैं।" इनके अलावे भगनारी ढोर भी इसी प्रकारके हैं।

(४) **मंटगुमरी या साहीवाल प्रकारका** पंजाबका लाल और सफेद मिश्रित ढोर : सर अर्थर ऑलवरके अनुसार ये ढोर अफगानी गायके वंशज हैं ये बहुत दुधार हैं।

(५) **धन्नी प्रकार :** यह उत्तर-पच्छिम सीमाप्रान्तका एक अलग प्रकार है। इसकी अपनी ही नसल है।

(६) **पहाड़ी प्रकारके** छोटे कदके और अनुपातसे छोटे सिरवाले ढोर सारे भारतमें पाये जाते हैं।

इम्पिरियल कौंसिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्च (शाही कृषि गवेषणा समिति)

ढोरोंकी मुख्य नसलों की पड़ताल करवा रही है। अबतक अपनी विशेषताओंके साथ अनेक नसलें सूचीमें लिखी जा चुकी हैं।

**३६. नसलोंके छ प्रकार :** ऊपर कहे हुए प्रकारोंके अनुसार आजकलकी मानी हुई नसलोंका वर्गीकरण करनेकी कोशिश की जाती है। नसलोंकी जानकारी का आधार सरकारके प्रकाशित विभिन्न साहित्य, खासकर कृषि गवेषणा समितिकी बुलेटिन नम्बर १७, ४६, ४७, ५४ हैं। इन सरकारी कागजोंसे नस्लोंका वर्णन मुख्य रूपसे नीचे दिया जाता है।

# आँकड़ा—३

## नसलोंके छः प्रकार

### १. लम्बे सींगवाला मैसूर प्रकार

| | | बुलेटिन नम्बर | पृष्ठ नम्बर |
|---|---|---|---|
| १. | **अमृतमहाल नसल,** मैसूर राज्यकी। | १७ | ९ |
| २. | **हल्लीकर नसल,** मैसूरकी (तमकर, हसन और मैसूर जिले) ... ... | १७ | १७ |
| ३. | **कंगायम् नसल,** कोयम्बतूर (मदरास) की। इसकी शुद्धताकी रक्षा पल्लियाकोट्टाइके पट्टिगार करते हैं। (३क) का मिश्रित रक्त। | १७ | १९ |
| ४. | **खिल्लारी नसल,** शोलापुर और सतारा जिला (बंबई) की। ... | १७ | २९ |
| ५. | **कृष्णा उपत्यका नसल,** बंबईके कृष्णाके काँठे (Valley) में। | १७ | २१ |
| ६. | **बरगूर नसल,** कोयम्बतूरकी। | ५४ | ५ |
| ७. | **आलमबादी नसल,** सेलम, कोयम्बतूर और हैदराबादकी। ... ... | ५४ | ३ |

## २. काठियावाड़के जंगलोंका लम्बे कानवाला गीर प्रकार।

| | | बुलेटिन नम्बर | पृष्ठ नम्बर |
|---|---|---|---|
| १. | **गीर नसल**, लम्बे कानवाली (गीर, पच्छिमी राजपुताना, बड़ौदा, उत्तर बंबई) ... | १७ | ९ |
| २. | **देवनी नसल**, निजाम राज्यका उत्तर-पच्छिम और पच्छिम भाग। गीर मिश्रित रक्त। | १७ | १२ |
| ३. | **डांगी नसल**, (देवनीकी तरह) बंबईकी। | ५४ | ६ |
| ४. | **मेवाती (कोसी) नसल**, अलवर, राजपुताना और भरतपुर। (गीर मिश्रित रक्त) | १७ | २४ |
| ५. | **निमाड़ी नसल**, नर्मदा उपत्यकाकी (गीर और खिल्लारीका संकर) ... ... | १७ | २६ |

## ३. (क). चौड़े मुँहका लायर सींगवाला उत्तर भारतका विशाल सफेद भूरा प्रकार।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | **काँकरेज नसल**। थार्पारकर जिला (दक्खिन पच्छिम कोना) से अहमदाबाद और दीसा (पूरब) राधनपुर (पच्छिम) तक फैली हुई। सबसे अधिक पुरस्कृत नसलोंमें एक। | १७ | २० |
| २. | **मालवी नसल**, मालवाकी मध्य भारत, उत्तरी मध्यप्रान्त और निजाम राज्यके उत्तर-पूर्व। | १७ | २३ |
| ३. | **नागौरी नसल**। जोधपुर राज्यकी दौड़नेवाली प्रसिद्ध नसल। ... ... | १७ | २५ |
| ४. | **थार्पारकर नसल**, दक्खिन-पच्छिम सिन्धके कुछ कुछ रेगीस्तानी इलाकेका मझोले कद्का पशु। भारतकी श्रेष्ठ दुधार और गाड़ी खींचनेवाली नसलोंमें से एक। जिनमें गीरका खून मिल गया है वह अच्छे नहीं हैं। | १७ | ३२ |

| | बुलेटिन नम्बर | पृष्ठ नम्बर |
|---|---|---|
| ५. **बछौर नसल,** (मधुबनी, बिहार) | ५४ | ४ |
| ६. **पँवार नसल,** युक्त प्रान्तकी। ... | ५४ | ११ |

**३. (ख) उत्तर और मध्यभारतका छोटे मुँहवाला सफेद और छोटे सींगवाला**

| | | |
|---|---|---|
| १. **भगनारी नसल,** बलूचिस्तानके जेकोबाबादमें भगसे सिन्धकी नारी नदी तक फैला हुआ सुन्दर ढोर। ... | १७ | १० |
| २. **गावलाव नसल,** वर्धा मध्यप्रान्तकी | १७ | १४ |
| ३. **हरियाना नसल।** रोहतक, करनाल, हिसार, गुरगाँवा (पंजाब) और दिल्ली, युक्तप्रान्त, अलवर और भरतपुरतक विस्तृत | १७ | १८ |
| ४. **हाँसी-हिसार नसल,** (पंजाब) ... | ५४ | ७ |
| ५. **अंगोल नसल,** नेल्लूरकी। ... | १७ | २७ |
| ६. **राठ नसल,** अलवर राज्य और राजपुताने | १७ | २९ |

**३. (क) और (ख) का संकर प्रकार**

| | | |
|---|---|---|
| १. **केंवारी नसल,** युक्त प्रान्तकी। | ५४ | ८ |
| २. **खेरीगढ़ नसल,** युक्तप्रान्तकी। | ५४ | ९ |

**४. साहीवाल—अफगान और उत्तर भारतका संकर रक्त**

| | | |
|---|---|---|
| १. **साहीवाल नसल,** मंटगुमरीकी। | १७ | ३१ |
| २. **लाल सिन्धी नसल,** (साहीवाल और गीरका संकर) | १७ | ३० |

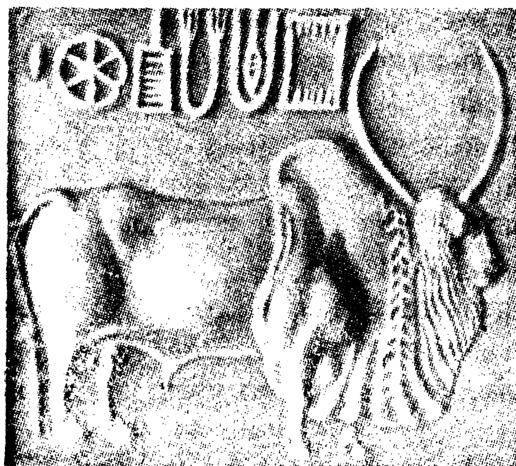
**५. सीमाप्रान्तकी धन्नी नसल**

**६. प्राचीन भारतका पहाड़ी प्रकार**

| | | |
|---|---|---|
| १. **सीरी नसल,** (दार्जिलिंग) ... | ५४ | १२ |
| २. **लोहानी नसल,** (सिन्ध और बलुचिस्तान) | ५४ | १० |

४०. लम्बे सींगवाला मैसूर प्रकार : मैसूर प्रकारके ढोर तेज काम और गाड़ी या हलमें जोतनेके लायक खास तौर पर हैं। ये बहुत मजबूत होतेहैं और भयंकर हो सकते हैं। गायें साधारण तौर पर कम दुधार होती हैं।

इन ढोरोंकी सबसे उल्लेखनीय विशेषता इनके सर और सींगकी बनावट है। सर हर हालतमें अपेक्षाकृत लम्बा और मुँह और नाक संकरे होते हैं। ललाट आँखके ऊपर तक उठा (उभड़ा) होता है।



चित्र २. लायर-सींगवाला मालवी सांढ़ ईसाके ३००० वर्ष पहले
(इंडियन ज० भेट० सा० एन्ड ऐनिमल हस्बै०, खंड १२, भाग १)

ये बड़े आकारवाले नहीं होते। इनकी पीठ छोटी, छाती धँसी और पिछला भाग मजबूत होता है।

भारतके वाहक जानवरोंमें सबसे अधिक फुर्ती और सहनशक्तिकी इनकी ख्याति है।

४१. (१) अमृतमहाल नसल : भारवाही प्रयोजनकी प्रख्यात नसलोंमें यह सबसे प्रख्यात है। इसका घर मैसूर राज्य है। मैसूर सरकार आजतक इस जातिके चुनिन्दे ढोरोंका एक ठट्ठ पाल रही है। सन् १९२३ तक यह ठट्ठ राजके एक खास महकमेके मातहत था और सामरिक वाहनके कामके लिये पाला जाता

था। सन् १९२३ के बाद ९,००० पशुओंका ठट्ठ कृषि विभागके हवाले किया गया। ड्यूक ऑफ वेलिंग्टनकी चढ़ाईयोंमें उसके मातहतकी अंग्रेजी फौजमें अमृतमहाल काममें लाये जाते थे। इनका रंग भूरा होता है। सिर, गर्दन और कुब्बका रंग गहरा होता है। चेहरे और झालर पर फीकी स्पष्ट रेखाएँ होती हैं हैं। (२३१-'३६)



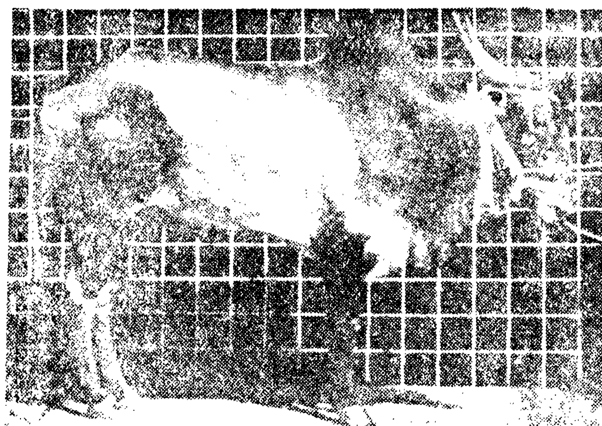
चित्र-३. अमृतमहाल बैल
(दक्षिण भारतका पशुधन)

४२. (२) **हल्लीकर नसल :** यह ढोर मैसूर राज्यके तुमसुर, हसन और मैसूर जिलोंमें मुख्यरूपसे होते हैं। मैसूरके राज्य भर में ये पाये जाते हैं और यह एक जाहिर नसल है। इस नसलका सिर इसकी विशेषता है। ललाट उभड़ा हुआ और बीचोबीच धँसा हुआ है। दोनों सींग चाँदीपर पास पासही निकलते हैं।

अमृतमहालसे हल्लीकर गायें जादे दुधार हैं। लम्बा, पतला सिर, उभड़ा ललाट, छोटे नुकीले कान और खास तरहके लम्बे नुकीले सींग इसके विशेष लक्षण हैं। रंग गहरा भूरा होता है। अक्सर काला रंग और झालर तथा पेट पर भूरे निशान भी होते हैं। झालर और कुब्ब साधारण विकाशके होते हैं। (२३७)

४३. (३) **कंगायम् नसल :** कोयम्बतूरके दक्खिन और दक्खिन-पूरब ताल्लुकोंमें यह होती है। पल्लायाकोट्टाइके पट्टिगारके पास इस जातिके ढोरका महत्वपूर्ण ठट्ठ है। भारतके किसीभी नसलके ठट्ठोंसे इस ठट्ठका महत्व बहुत है।

कंगायम् नसल मैसूरके जोतने वाले प्रकारका है। इसमें उत्तरके सफेद भूरे रंगके ढोरका संकर है। दक्खिन भारत और सिंहलमें इन मजबूत पशुओंकी खपत बहुत है। गायें आमतौर पर कम दुधार होती हैं। कहते हैं कि १० से १२ वर्षतक यह काम कर सकते हैं।



चित्र ४. हल्लीकर साँढ़
(इन्डियन ज० भे० सा० एन्ड एनि० हस्बै, खंड १२, भाग १)

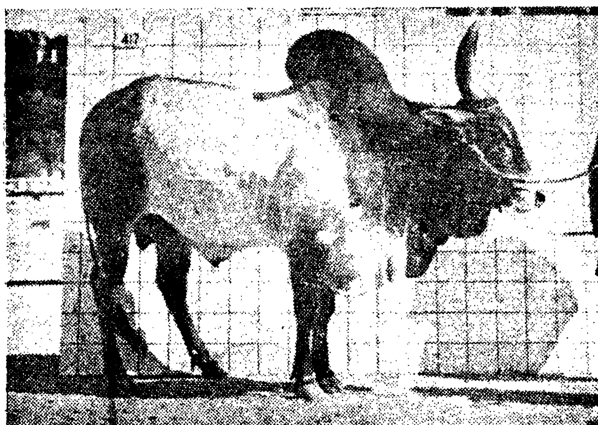
इनका कपाल थोड़ा उभड़ा होता है और सिरभी साधारण आकारका होता है। कान छोटे और नुकीले, गर्दन छोटी, झालर छोटा, मुतान बहुत छोटा, जमीनतक पँहुची हुई लम्बी पूंछ होती है। मोहेनजोदरोकी मुहरवाले साँढसे इनकी बहुत कुछ समानता है। (२१२, २२६–'३०)

४४. (४) **खिल्लारी नसल :** शोलापुर, ताप्ती उपत्यका, खानदेश और सतारा जिलोंमें मुख्यतः होनेवाली यह नसल भारबाही प्रयोजनमें प्रसिद्ध है। यह अमृत-महालका वंशज है। पर उसकी तरह गठीला और सुन्दर नहीं हैं। उत्तरके भूरे सफेद रंगवाले ढोरका यह संकर मालूम होता है।

इनका रंग भूरा सफेद होता है। सिर विशाल होते हैं। सींग लम्बे फैले विशिष्ट होते है। पूंछ अपेक्षाकृत छोटी और झालर विशाल होती है।

४५. (५) **कृष्णा-उपत्यका नसल :** बंबई प्रान्तके दक्खिनी भागमें कृष्णा नदीके किनारे और हैदराबादकी रियासतमें यह होते हैं।

ये पशु कपासवाली काली जमीनके लायक ही हैं। खासतौरपर उपजाये चारे पर ये पाले जाते हैं। गायें साधारण अच्छी दुधार होती हैं। इसकी नसल शुद्ध नहीं है। क्योंकि इसमें कई प्रकारोंका संकर है। यद्यपि इसके रंग और सूरतसे उत्तरकी भूरे सफेद नसलका संकर स्पष्ट है, फिरभी इसके भी काफी प्रमाण हैं कि इसका मूल मैसूरकी जुताईवाली नसल है।



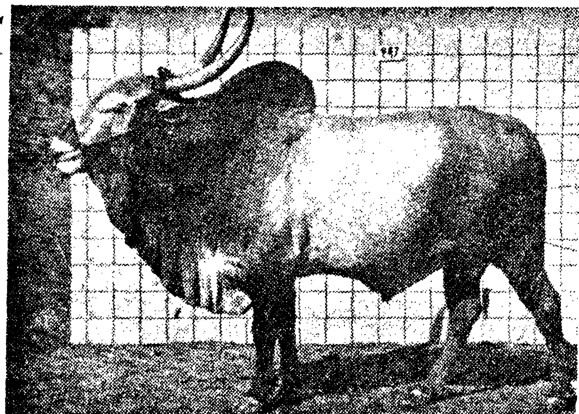
चित्र ५. कंगायम् साँढ़
(इन्डियन ज० मे० सा० एन्ड एनि० हस्बै, खंड १२, भाग १)

कुब्ब पूर्ण विकशित और पुट्ठेके आगे होता है। सींग छोटा और वक्र या सरल होता है। मुतान साधारण और झुलता हुआ होता है। झालर पूर्ण विकशित होती है और पूंछ छोटी।

४६. (६) **बरगूर नसल :** मदरासके कोयम्बतूर जिलेके बरगूर पहाड़ोंमें ये ढोर बहुत होते हैं। ये मैसूर प्रकारके हैं। पर उनसे छोटे और जादे गठीलें, ललाट उतना उभड़ा नहीं होता। ये बहुत क्रोधी और चंचल हैं। इनकी हारी करना कठिन होता है। फुर्ती, सहनशक्ति और वेगमें इनसे बढ़कर कोई नहीं।

मुख्य रंग है, सफेद या लाल जमीन पर लाल या सफेद चित्ती। कभी कभी हलका भूरा रंग भी पाया जाता है। गायें कम दूध देती हैं।

इनकी विशेषताके ये लक्षण हैं : लम्बा सिर मुंहकी ओर शंक्वाकार होता है। ललाट कुछ उभड़ा। सींग पीछे दबकर ऊपर उठे हुए, सुन्दर झालर, हल्का मुतान और पूंछ छोटी। (२३६)



चित्र ६. खिल्लारी साँढ़
(इन्डियन ज० भे० सा० एन्ड एनि० हस्बै०, खंड १२, भाग १)

**४७. (७) आलमबादी नसल :** मैसूर रियासतकी सीमापर मदरासके सेलम और कोयम्बतूर जिलेके उत्तरी भागके पहाड़ी इलाकेमें होती है। जंगलमें चराकर ही अधिकतर इन्हें पाला जाता है। इसे मैसूरकी हल्लीकर नसलकी शाखा माना जा सकता है। बैल बहुत मेहनती और मजबूत होते और थोड़े चारे परही रह सकते हैं। गायें कम दूध देती हैं।

इनके ये विशिष्ट लक्षण हैं : बैलका रंग गहरा भूरा या काला और गायका भूरा। ललाट उभड़ा और निकला हुआ। मुंह लम्बा और अप्रशस्त। सींग लम्बा और पीछेकी ओर फैला हुआ। बैल ढीले ढाले और बड़ी झालर मुतान तक बढ़ी हुई। उत्तरी ढोरकी बनावट और झालर हल्लीकरकी तरह होती है। (२३८, २३९)

**४८. काठियावाड़के जंगलोंका लम्बेकानवाला गीर प्रकार :** इन ढोरोंका घर दक्खिनी काठियावाड़का गीर जंगल है। ये ढोर कुछ कम शुद्ध रूपमें उत्तरमें पच्छिम भारतके कच्छसे दक्खिनमें निजामकी रियासत तक फैले हुए हैं। यह भी राजपुतानाकी पच्छिमी रियासतोंमें जादा पाले जाते हैं। इसकाभी प्रमाण है कि बहुत दूर युक्तप्रान्तकी सीमा तक के ढोरोंपर इनका असर है।

इनका खास लक्षण बहुत उभड़ा और प्रशस्त ललाट है। ललाटकी हड्डी सिरके ऊपरी भाग और गर्दनको ढालकी तरह छाये रहती है। मुंह खूब नुकीला और उभरे हुए ललाटसे नीचे मुड़ा हुआ होता है।



चित्र ७., कृष्णा-उपत्यका साँढ़
(इन्डि० फार्मिंग, खंड २, न० ८)

इनका एक बड़ा लक्षण इनका लम्बा झूलता कान है जो मुड़े हुए पत्तेकी तरह होता है, भीतरी भागका रुख आगेकी ओर होता है। कानका घुमाव चक्करदार होता है, जिसके छोरपर अजीब तरहकी कर्णपालिका (lobe) होती है।

बैलके सिरका ऊपरी हिस्सा अधिक उभड़ा होता है। पर चेहरा गायके जितना सुन्दर नहीं होता। सींग छोटा होता है और नीचे तथा पीछे झुका रहता है।

गीर ढोरोंका रंगभी बहुत स्पष्ट होता है। चमड़ेका रंग सफेद होता है, पर रंगीन बालोंकी चित्तियाँ सारी देहमें बहुतोंके रहती हैं। इनका रंग हलका लालसे करीब करीब काला तक होता है। किसी की चित्ती बड़ी और किसीकी इतनी छोटी होती है कि वह दूरसे चितकबरा मालूम होता है। भूरे सफेद ढोरसे संकर करनेपर यह विचित्र रंग आम तौर पर गायब हो जाता है। पर कभी मेवाती नसलकी तरहका होता है।

गीरका असर, चौड़े निकले हुए ललाट, लम्बे झुके कान, उठे हुए सिर, झुलते हुए मुतान, खास तरहके सींग और उसकी साधारण बनावटसे जाना जा सकता है। ये लक्षण उत्तरमें पंजाबसे लेकर दक्खिनमें मदरासतक और पूरबमें युक्तप्रान्त तक के ढोरोंमें पाये जा सकते हैं।

हर गीर ढोरमें एक दूसरी विचित्रता भी मिल सकती है। उसी पशुमें दूसरे रंगकी चित्तियोंसे स्पष्ट भिन्न एक दूसरे रगकी भी चित्ती हो सकती है। जिस संकरित पशुका गीर रंग अप्रकट है उसमेंभी ये चित्तियाँ पायी जा सकती हैं।

ललाटकी हड्डीके कारण आखें उनींदी मलूम होती हैं। मैसूर प्रकारसे ये बड़े होते हैं पर उनसे ढीली देह और लटकते मुतान और ढीले चमड़े वाले हैं। यह बात भारवाही ढोर-संवर्धक बहुत नापसंद करते हैं। (७१, ३१८)

**४६. (१) गीर नसल :** असली गीरके कान ऐंठे हुए पत्तेकी तरह होते हैं जिनमें छोरपर एक खाँच बनी रहती है। पीठ मजबूत, सीधी और समतल होती है। कमरकी हड्डी साधारण तौर पर जादा उभड़ी होती है। पूँछ लम्बी चाबुककी तरह होती है। इसमें लगभग जमीन छूनेवाला काला गुच्छा होता है। शुद्ध नसलकी गीर शायद ही एक रंगकी होती है। लाल रंगसे लेकर काले रंगकी चितकबरी चित्तियाँ होती हैं। पर एकदम लाल रंगकी भी पायी जाती हैं। सभी अंग सीधे और अलग अलग होते हैं। गायके थनसे आगेको लटका हुआ चमड़ा रहता है।

गीर गायें खूब दुधार हैं। दौड़नेवाले मैसूर प्रकारकी तुलनामें गीर बैल धीमे और आलसी हैं पर हैं मजबूत। गीर नियमित ब्यानेवाली है। एक ब्यानसे दूसरे ब्यानका समय १४ से १६ महीना होता है। अच्छी तरह पाली गायोंका दूधका पड़ता ३,५०० से ४,००० रत्तल तक है। (२री और ३री दिल्ली प्रदर्शनीकी रिपोर्ट)

गीर गायमें उल्लिखित सर्वश्रेष्ठ "रामन, ३४" है। यह गोरक्षा मंडली, खान्डीवल, बंबईकी है । इसने ५॥ से ७ वर्षकी उम्र तक एक ब्यानके ५५५ दिनोंमें ६,००० रत्तल दूध दिया । इसी मंडलीकी दूसरी गाय "प्राग कबीर, १९६" ने अपने पहले ब्यानके ३९९ दिनोंमें ५,२८९ रत्तल दूध दिया था। इसका दैनिक औसत १४·२ रत्तल था। बंगलूर इंस्टिट्यूट की "गीर गाय नं० २८" ने पहले ब्यानके २४० दिनोंमें ४,१३२ रत्तल दूध दिया था। इसका १७.२ रत्तल प्रति दिन था। शाही गव्य विशेषज्ञ श्री कोठावालाने सन् १९३३ में गीर गायकी आलोचना यों की थी :



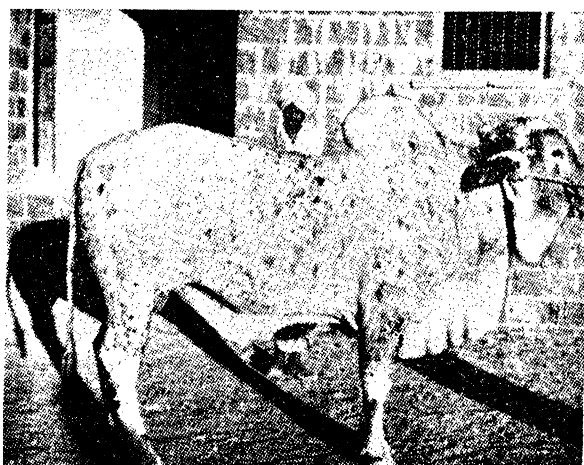
चित्र ८. गीर साँढ़
(इन्डियन ज० भे० सा० एन्ड एनि० हस्बै०, खंड १२, भाग १)

"शायद यह भारतकी सबसे पुरानी नसल है जिसने आजकल पायी जानेवाली भारतके मुख्य नसलोंपर प्रभाव डाला है। किसी समय सारे देशमें इस आदर्श दोनों प्रयोजन पूरा करनेवाली (dual purpose) नसलकी बहुत माँग थी। पर अब नियंत्रित संवर्धनके अभावमें यह करीब करीब खतम हो चुकी है।" (३१८, ३५२)

**५०. रियासतोंमें गीर :** पहली पशु प्रदर्शनी दिल्लीमें सन् १९३८ में हुई थी। इसमें जूनागढ़ और भावनगरकी रियासतोंसे गीर ढोर भेजे गये थे।

"बड़ौदा रियासतमें लगभग सन् १८९० में चुने हुए गीर ढोरका एक ठट्ठ था। पर दुर्भाग्यवश शुरूवाला ठट्ठ तोड़ दिया गया। हाल ही में (सन् १९२६ में) नया ठट्ठ बनाया गया है। इस बीचमें इस कीमती दुधार ढोरकी नसल प्रायः नष्ट हो गयी थी। आदर्श बानगी (नमूना) पाने में बहुत कठिनाई आयी। पर यह सौभाग्य है कि नसल बिलकुल नष्ट नहीं हुई है।"—("शाही खेती कमीशनकी रिपोर्ट", पृ० २२२)

५१. (२) **देवनी नसल :** यह नसल मुख्य रूपसे निजामकी रियासतके उत्तर-पच्छिम और पच्छिमी हिस्सेमें ही है। यह बंबई प्रान्तके डांगी ढोरके रिश्तेदार



चित्र ९. देवनी डोंगरी साँढ़
(इन्डियन फार्मिंग, खंड २, न० ८)

मालूम होती है। देवनी कुछ हद तक गीर जैसी दीखती है। पर इसमें सन्देह नहीं कि, इसमें दूसरे रक्तकाभी संकर है, और स्थानके प्रभावसे भी इसका विकाश गीरसे भिन्न हुआ है। ललाट और सींग गीरके लक्षणके हैं। रंगमें बहुत परिवर्तन होता है। पर काला और उजला तथा लाल और उजला ये रंग बहुत होते हैं। झुके कानके कारण इसे गीर प्रकारका माननेमें आसानी होती है, पर कुछ पशुओंमें कान इस प्रकारके लक्षणवाले उतने नहीं होते। कुछ कान झूलते हुए हैं। [illegible]

जुताईके लिये अच्छे हैं। निजाम राज्यकी दूसरी नसलोंकी तुलनामें गायें खूब दुधार हैं।

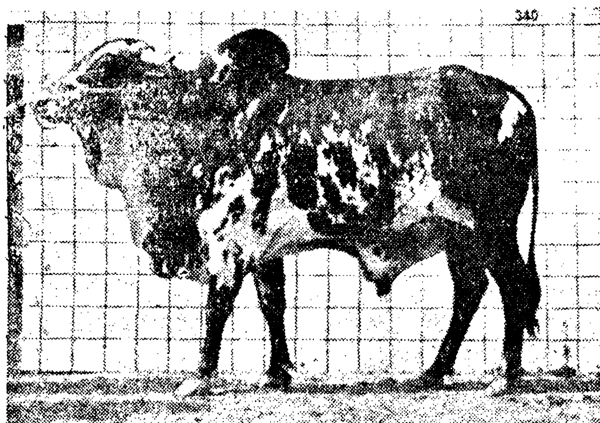
दिल्लीकी पहली पशु प्रदर्शनीमें देवनी ढोर निजामकी रियासत और हिंगौलके सरकारी क्षेत्रसे (Farm) भेजे गये थे। दूधकी अधिकतम उत्पत्ति ३,००० रत्तल लिखी गयी। हैदराबाद राज्य इसकी दूध देनेकी शक्तिका विकाश कर रहा है। (३५२)

५२. (३) **डांगी नसल :** बंबईके नासिक और अहमदनगर जिले और बाँसदा, धरमपुर, जौहर और डांगकी रियासतोंके छोटे भूभाग पर इसका घर है। पच्छिमी भारतके अधिक वर्षावाले प्रदेशमें यह रहती है। यह ढोर बेहद मजबूत है। सह्याद्रि (पच्छिमी घाट) की घनघोर वर्षा अच्छी तरह झेल लेता है। धानकी खेतीकी लगातार मेहनतका असर इसपर नहीं होता।

डांगी मझोले कदका, धीमा जुताईका जानवर है। इसकी ऊँचाई ४५" से ३०" इंच तक और घेरा ५८" से ६०" इंच तक होता है। गाय छोटी और बहुत कम दूध देनेवाली होती है। इसका रंग लाल और काला या काला और उजला होता है। इसके चमड़ेमें अत्यधिक मात्रामें तेल होता है जो इसे वर्षासे बचाता है। खुर बेहद मजबूत, काले और पत्थरकी तरह होते हैं।

५३. (४) **मेवाती नसल :** ये ढोर अलवर और भरतपुर राज्यके पच्छिमी हिस्सेके हैं। यह ढोर सीधा होता है। भारी हल और गाड़ीके कामका है। गायें अच्छी दुधार हैं। इनमें गीरका लक्षण दिखायी देता है पर कुछ लक्षण हरियानाकी तरहके भी हैं जिससे संकरताका बोध होता है। इनका रंग उजला और सिर काला होता है। एकाधमें गीरका सा रंग भी देखा जाता है। इसकी टाँगें कुछ लम्बी होती हैं। कान, ललाट और पतला होता हुआ मुंह इन्हें गीर प्रकारका बताता है।

५४. (५) **निमाड़ी नसल :** इस ढोरका संवर्धन नर्मदा उपत्यकामें जादे होता है। मेहनती होनेकी इनकी बहुत ख्याति है। इनमें गीरका सा रंग, मुंहकी विचित्र बनावट और झूलते मुतान देखे जाते हैं। ये गीर और खिल्लारी ढोरके संकर मालूम होते हैं। कानोंकी लम्बाई चौड़ाई साधारण है पर उनमें गीरका खास लक्षण नहीं रहा। साधारण तौर पर इनका रंग लाल है जिसपर सफेद रंगके छींटे देहके भिन्न भिन्न अंशोंपर होते हैं। यह खूब दुधार है। (३५२)

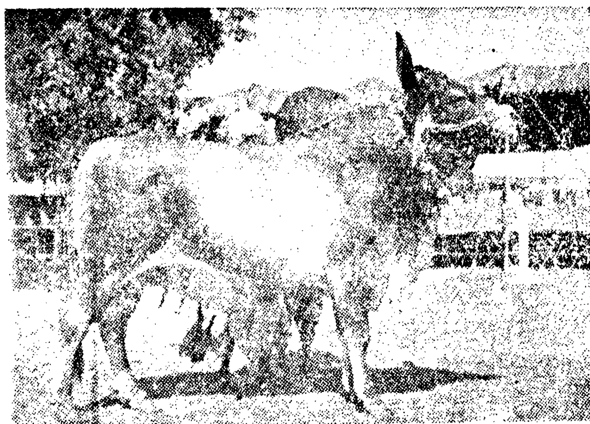


चित्र १०. निमाड़ी सांड
(इन्डियन ज० भे० सा० एन्ड एनि० हस्बै०, खंड १२, भाग १)

५५. **चौड़े मुंहका लायर-सींगवाला उत्तर भारतका विशाल सफेद भूरा प्रकार :** गुजरातकी कॉंकरेज इस प्रकारकी मुख्य प्रतिनिधि है। सर अर्थर ऑलवरके अनुसार मालूम होता है कि इस प्रकारने ऋग्वैदिक आर्यगणकी वह राह पकड़ी, जिससे वह लोग भारतमें उत्तरके दर्रोंसे घुसनेके बाद पच्छिमकी ओर घूमे और अर्वलीकी पहाड़ियोंके उत्तर हो सिंध, गुजरात और दक्खिनी राजपुताना पँहुचे थे।

इस भूरे लायर सींगवाले प्रकारके साधारण लक्षण ये हैं : छोटा चौड़ा मुंह दोनों आंखोंके बीच गड़हा, लायरकी शकलके मजबूत सींग जो चाँदी पर निकलते और बाहर तथा ऊपरकी ओर फैले रहते हैं, जिनके मूल पर दूसरे प्रकारोंसे जादा चमड़ा चढ़ा रहता है। इनका चमड़ा ढीला और भारी होता है। गढ़न ठोस और भारी है। लटकते मुतान और कान हैं। राजपुतानेकी बड़ी-मालवी नसल कॉंकरेजसे कई मामलोंमें मिलती है। पर मालवीके सींग आगेकी ओर कॉंकरेज से जादे झुके रहते हैं।

५६. (१) **काँकरेज नसल :** इस(३क)प्रकारमें काँकरेज सबके आगे है। यह भारतकी सबसे अधिक प्रशंसित नसलोंमें एक है। इसका घर कच्छके रनमें दक्खिन-पूरबके देश और सिंधके थार्परकर जिलेके दक्खिन-पच्छिम कोने से लेकर पूरबमें अहमदाबाद, पच्छिममें राधनपुर रियासत और खासकर बनास और सरस्वती नदियोंके किनारे तक फैला हुआ है। राधनपुर रियासतमें यह 'वधिआर' नसलके नामसे मशहूर है। ये पशु अपने देशसे काठियावाड़ और बड़ौदा तथा सूरतमें भी फैल गये हैं, जहाँ ये भारबाही काममें आते हैं। वेग और शक्तिशाली जुताईके



चित्र ११. काँकरेज साँढ
(इन्डियन फार्मिंग, खंड २, न० ४)

जानवर होनेकी इनकी ख्याति है। ये अमेरिका और दूसरे देशोंमें बहुत भेजे जाते थे। वहाँ उस देशके ढोरोंको इनसे संगम कराकर गरमदेशके लिये माँसके उपयुक्त ढोर बनानेका काम लिया जाता है।

काँकरेजकी छाती चौड़ी, देह मजबूत, चौड़ा ललाट और लायरकी शकलका सींग होता है। संवर्धक लोग सींगोंके विकाशके समय उसे मोटा बनाने और जड़से कुछ ऊपर तक चमड़ा चढ़ानेके उपाय करते हैं। कान लम्बा और गिरा हुआ होता है। चमड़ा भारी और झालर साधारण, मुतान झुलता होता है।

पूँछ अपेक्षाकृत छोटी होती है। घुमक्कड़ ठठ्ठ-मालिकोंने कई पीढ़ियोंसे इसे शुद्ध प्रकारका रक्खा है।

काँकरेज नसलकी दर्ज की हुई दूधकी उत्पत्ति इस तरह है: छरोदी फार्म बंबईकी "मेघोन" नामकी गाय जब ६-८ वर्षकी थी उसने अपने तीसरे ब्यानके ३६२ दिनोंमें ७,२५९ रत्तल दूध दिया था। प्रति दिनका औसत २०·० रत्तल था। उसी फार्मकी "राठी,२०" ने ३६५ दिनोंमें ६,४२३ रत्तल दूध प्रति दिन १९·० रत्तलके औसतसे दिया। इस देश या यूरोपमें किसी नसलके लिये यह बहुत अच्छा लेखा (record) है। शुद्ध काँकरेजका छरोदी फार्म (उत्तर गुजरात) में संवर्धन होता है। यहाँ करीब २०० गायें, २,३०० एकड़में पाली जाती हैं।

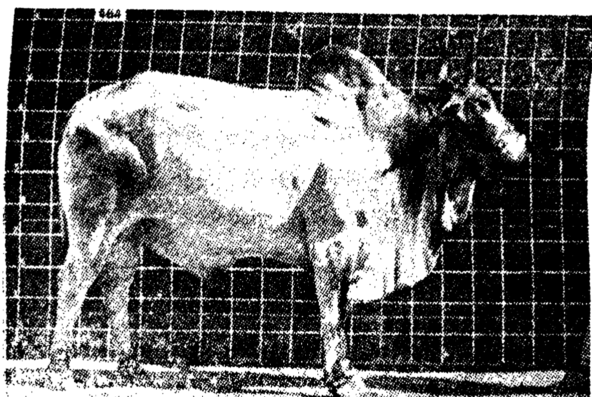
दिल्लीकी पशु प्रदर्शनीमें बड़ौदा राज्यके काँकरेज बैल नं० २२८ ने उस वर्गका पहला इनाम पाया था। नॉर्थकोट कैटल फार्म, छरोदीका काँकरेज साँढ़ और काँकरेज गायने अपने वर्गका पहला इनाम पाया था। साँढ़ उस प्रदर्शनीके सब साँढ़ोंमें अच्छा माना गया था।

शाही गव्य विशेषज्ञ श्री कोठावालाने सन् १९३८ में काँकरेजकी तारीफमें कहा था: "दोनों प्रयोजन पूरा करनेवाली बहुत महत्वपूर्ण नसलोंके शुद्धतम रूपमें एक है। इसका हालके बर्षोंमें दूधके लिये संवर्धन किया गया।" (३०२-'०३)

५७. (२) **मालवी नसल:** मध्य भारतके अपेक्षाकृत सूखे मालवा इलाकेमें यह ढोर पाया जाता है। ये प्राकृतिक मैदानोंमें चराकर पाले जाते हैं। कुछ पैदा किया हुआ चारा, चुन्नी, चोकड़ भी पाते हैं। यह मध्यप्रांतके उत्तर अंचल और निजामके उत्तर-पूरब भागमें भी पाले जाते हैं। सड़कों पर हल्का बोझ ढोने और खेतीके काममें ये बहुत लोकप्रिय हैं। ये विशाल गठीले जानवर हैं। इनका रंग भूरा होता है। गर्दन और बैलके कुब्बका रंग गहरा भूरा होता हुआ कालाभी हो जाता है। गाय और बैल उमर होने पर शुद्ध सफेद होजाते हैं। इनके मुख्य लक्षण ये हैं: छोटी गहरी गठीली देह, सीधी पीठ, पिछला हिस्सा झुकता हुआ, मजबूत छोटे पैर, कुछ झूलते मुतान और पूर्ण विकशित् कुब्ब। सींग चाँदीके बगलसे निकलते हैं।

मालवी नसलके दो स्पष्ट भेद हैं: ग्वालियर राज्यके दक्खिन-पच्छिमकी बड़ी-मालवी नसल और इससे भी दक्खिन-पच्छिमकी छोटी-मालवी नसल।

गायें कम दूध देती हैं।



चित्र १२. मालवी साँढ़
(इन्डियन ज० भे० सा० एन्ड एनि० हस्बै०, खंड १२, भाग १)

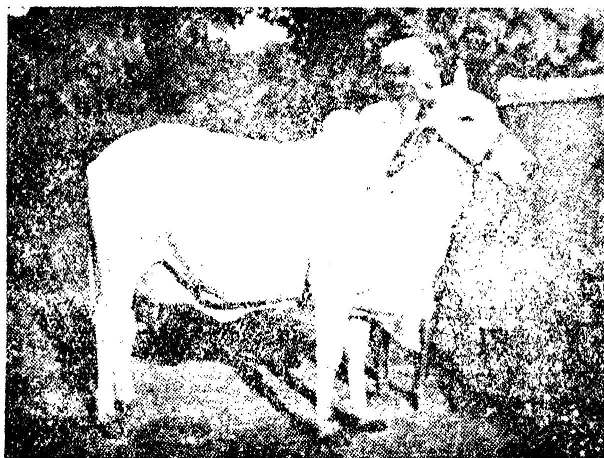
५८. (३) **नागौरी नसल :** दौड़नेवाली भारवाही बहुत प्रसिद्ध नसलोंमें एक यह है। इसका घर जोधपुर राज्यके उत्तर पूरबमें है। वहाँ इसकी सँभाल होशियारीसे होती है। बैल बड़े कदके होते हैं और सड़क पर तेज दौड़नेके कामके लिये विख्यात और मजबूत हैं। इनकी हाट पर्वतसरका मेला है। जहाँ इनकी कीमत बहुत ऊँची है। इनका मुँह अपेक्षाकृत लम्बा और पतला है। ललाट चपटा। इनके सींग चाँदीकी बगलसे निकलते हैं। कान बड़े पर सीधे होते हैं इनका चमड़ा पतला, झालर और सुतान छोटे और पूँछ छोटी होती है।

गायें कम दुधार हैं।

५९ (४) **थार्परकर नसल :** दक्खिन-पच्छिम सिंधके मरुप्राय सूखे इलाके-के ये पशु हैं। पासके कच्छ, जोधपुर और जयसलमेरकी रियासतोंमें ये बहुत बड़ी संख्यामें पाले जाते हैं। इस अंचलमें बालूके टीले भरे हुए हैं। वर्षा कम होती है। सूखी झाड़ियोंमें इन्हें चराया जाता है। साथ साथ भूसा और पुआल भी दिया जाता है। इनकी नसल गठीली, मेहनती और भूरे सफेद रंगकी होती है। साँढ़ बचपनमें बिलकुल भूरा होता है। गाय और बैलका रंग हलका

भूरा है पर उमर बढ़ने पर सफेद हो जाता है। बछड़ोंकी पीठपर (रीढ़पर) एक हलकी भूरी रेखा होती है।

आदर्श थार्परकर मझोले कदका होता है। इनका ढाँचा गहन है और सभी अंग मजबूत और सीधे होते हैं। यह भारतकी श्रेष्ठ दुधार नसलोंमें एक मानी जाने लगी है। इसके बैल मध्यम तौलके गाड़ी या हलके काममें उपयोगी हैं। इनके कई श्रेष्ठ गुण हैं जिसकी वजह यह लोकप्रिय हो रहे हैं। इनकी दूध देनेकी सामर्थ्य बहुत है और कामकी सामर्थ्य भी अच्छी तरह विकशित हुई है। कम चारेपर भी ये



चित्र १३. थार्परकर गाय
(इन्डियन फार्मिंग, खंड ४, नं० ७)

पनप सकते हैं। भारतके अनेक भागोंमें सरकारी गव्यशालाओंमें ये पाले जाते हैं।

इनके लक्षण ये हैं: गठीला गहन ढाँचा, कुछ कुछ झुका पिछला भाग (quarters), साधारण लम्बा मुँह, चौड़ी चाँदी (मस्तक), कुछ उभड़ा हुआ ललाट, पुट्ठोंके आगे मझोले आकारका कुब्ब। गायोंके मुतानकी जगह लटकता चमड़ा होता है।

सन् १९४० की प्रदर्शनीमें पहला इनाम लेनेवाली गाय और साँढको सिंधके पशुधन विभागके अफसरने सकरन्दसे भेजा था।

शाही गव्यप्रवीण श्री कोठावालाने सन् १९३८ में थार्परकरके बारेमें कहा था कि, "मझोले कदकी इस नसलमें दोनों प्रयोजन साधनेवाले लक्षण हैं। पर इसका रुझान (प्रवृत्ति) अधिक दूध देनेकी ओर है। भविष्यमें इसे महत्वकी दुधार नसल बनाया जा सकता है।"

थार्परकर गायका अधिक दूध देनेका लेखा है। आई. ए. आर इन्स्टिट्यूट, (भा० कृ० ग० समिति) करनाल, पंजाबकी "कुमार, ३६" ने ३१३ दिनमें ८,७३४ रत्तल दूध दिया। दैनिक औसत २७.९ रत्तल था। दूसरी गभर्नमेंट एक्सपेरिमेन्टल फार्म, कांके, रांची (बिहार) की गाय "माधुरी के. के. ३९७" ने हर दिन २३·४ रत्तलके औसतसे ३०४ दिनोंमें ७,११९ रत्तल दूध दिया। (३२१)

६०. (५) **बछौर नसल :** बिहारके मधुबनी सबडिवीजनके बछौर और कोइलपुर परगनेमें इसका घर है। बैल काममें बहुत अच्छे हैं। गाय कम दूध, सिर्फ २ से ४ रत्तल प्रति दिन देती है।

इनका रंग भूरा है। यह गठीला और सीधी पीठ वाला है। ललाट चौड़ा और आँखे उभड़ी हुई हैं। झूलते हुए बड़े कान होते हैं।

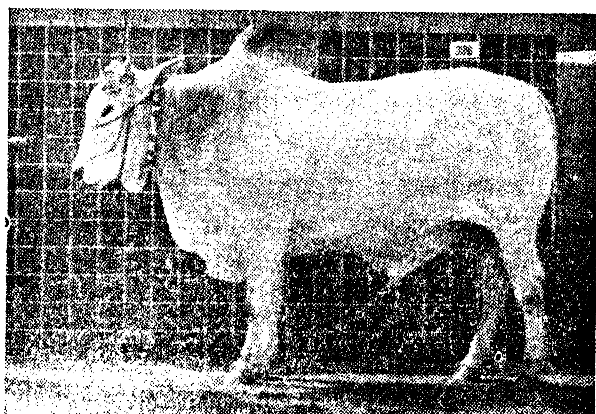
६१. (६) **पँवार नसल :** यह ढोर युक्तप्रान्तके पीलीभीत जिलेके परानपुर तहसील और खीरी जिलेके उत्तर-पच्छिम भागमें पाया जाता है। शुद्ध नसलके पशुका मुँह पतला और १२" से १८" इंच तक लम्बा और खड़ा सींग होता है। यह साधारण तौर पर चितकबरे होते हैं। पूँछ लम्बी होती है जिसके छोरपर शंखाकार सफेद बालोंका गुच्छा होता है। गायकी औसत तौल ६५० रत्तल, साँढकी ७०० से ८०० रत्तल तक होती है। यह बहुत फुर्तीला और हमेशा क्रोधी होता है। इन्हें छुट्टा चरना भाता है। भारबाही प्रयोजनमें बैल अच्छे हैं। गायें कम दूध देती हैं।

६२. ३ (ख) **उत्तर और मध्यभारत का पतले मुंह, सफेद छोटे सींगवाला प्रकार :** इस प्रकारमें ६ नसलें हैं :

६३. (१) **भगनारी नसल :** इस नसलका घर बलूचिस्तानसे सटा सिंधका इलाका है। जिस प्रदेशके नामसे इसे पुकारा जाता है वह भग है जिसमें होकर नारी नदी बहती है। उपजाये चारे, फसलोंके भूसे, पुआल और नारी नदीके किनारेको पुष्टिकर घासभी अधिकांश खिलाकर इसे पाला जाता है।

भगनारी नसलके दो विभिन्न प्रकार बन गये हैं। एक नारीकी निचली उपत्यका का छोटे कद वाला और दूसरा नारीकी ऊपरी उपत्यका का बड़े कदवाला। इनका रंग सफेद तथा भूरा होता है। जवान बैलकी गरदनके पास, कंधे और कुब्ब पर करीब करीब काला रंग होता है। ये पशु लम्बे और अच्छी बनावटके होते हैं। इनकी हड्डी और पेशियाँ पुष्ट होती हैं। खूब दूध देनेमें गायोंकी ख्याति है। चुनी हुई गायोंने काफी जादे दूध दिया है।

सिन्धकी रिपोर्टमें लिखा है कि यह नसल नारीके दहने तटके अनुकूल है। दोनों प्रकारोंसे मझोला दूध और भारवहनमें श्रेष्ठ है। प्रतिदिनकी दूधकी उपज (बछड़ेको पिलाकर) ७ से ८ रत्तल है। शहदाकोट क्षेत्रमें ७२ के ठट्ठमें २५ गायें रक्खी गयी हैं। इस नस्लसे एक ब्यानमें २,०३४ रत्तल दूध मिला।



चित्र १४. भगनारी साँढ़
(इन्डियन ज० भे० सा एन्ड एनि० हस्बै०, खंड १२, भा १)

**दज्जल रक्त :** पंजाबके डेरागाजीखाँ जिलेमें बहुत पाली जानेवाली यह नसल भगनारीका ही दूसरा नाम है। इसका पता लगाया जा सकता है कि सौ वर्ष पहले भगनारी साँढ़ संवर्धनके लिये खास तौर पर इस जिलेमें लाये गये थे। उसीका यह फल है कि डेरागाजीखाँमें अच्छी तरह प्रतिष्ठित भगनारी रक्त मिल सकता है। यहाँ से यह पंजाबके बहुतसे हिस्सोंमें भेजा जाता है।

६४. (२) **गावलाव नसल :** यह मध्यप्रान्तकी बहुत महत्वकी नसल है। वर्धा, सतपुराकी तलहटीके जिला, संसार तहसील, कुंडाइ परगना, सिउनी तहसीलके दक्खिनी भाग, नागपुर जिलेके कुछ हिस्से और बैहर तहसीलमें यह नसल सबसे अच्छी होती है।

इनका कद मझोला है, और साधारण तौर पर ये हलके और पतले होते हैं। इसका कारण संभव है बचपनमें पौष्टिक आहारकी कमीहो। गायें अक्सर शुद्ध उजली होती हैं। बैलके सिरका रंग भूरा होता है। सिर खास तौर पर लम्बा पतला होता है। और मुँहकी ओर बगलकी तरफसे गावदुम होता जाता है, पर सींगकी जड़ोंके



चित्र-१५. गावलाव गाय

पास चौड़ा होता है। ललाट आगे निकला रहता है तथा आँखके चारों तरफ चमड़ेमें बल पड़ा रहता है। इस वजह आँखे उनींदीसी दिखाई देती हैं। खूँटीकी तरह छोटे सींग होते हैं। गलेकी झालर बड़ी होती है। अच्छी तरह विकसित बैल बहुत काम करनेवाले होते हैं और हलकी गाड़ीमें खूब दौड़ते हैं। खिल्लाड़ी बैलोंकी तरह ये वेगके साथ बहुत दूरतक दौड़ सकते हैं। गावलाव नसलकी गायें अच्छी दुधार मानी जाती हैं, पर वर्धाके पास अनेक गाँवोंमें गावलाव गायोंको बहुत कम दूध होता है। अच्छी तरह खिलाने और ध्यान देनेसे इनका दूध बढ़ सकनेकी पूरी संभावना है। **(३४०)**

६५. (३) **हरियाना नसल :** हरियाना ढोर खासकर पंजाबके रोहतक, हिसार, करनाल और गुरगाँव जिले, दिल्ली प्रान्त और मथुरा जिलेमें भी होता है। कलकत्ते और दूसरे शहरोंमें दूधके लिये हर साल बहुत बड़ी संख्यामें इनका चलान होता है। यह नसल बहुत विस्तृत स्थानोंमें पायी जाती है जिनमें युक्तप्रान्त, अलवर और भरतपुर शामिल हैं। हरियाना बैल गाड़ीमें तेज चलते हैं और खेतीके काममें भी बहुत अच्छे हैं। ये ढोर भूरे या सफेद-भूरे होते हैं। कलकत्तेमें बरसातके पहले इनका भूरा रग साधारणतः उजला हो जाता है। बैलकी गरदन और कुब्ब गहरे रंगके होते हैं। गाय और साँढ़के सींग छोटे और खुँटिया (ठूँठसे) होते हैं। पर बैलके सींग करीब करीब धतूरेके फूलकी शक्लके (lyre-horned) होते हैं। मुतान और झालर छोटे होते हैं। देह गठीली और मजबूत होती है। पूँछ पतली और खुर तक लम्बी होती है जिसमें काले बालोंका गुच्छा होता है।



चित्र-१६, हरियाना साँढ़
(इन्डियन ज० मे० सा० एन्ड एनि० हस्बै०, खड १२, भाग १)

ढोर संवर्धन क्षेत्र (Cattle Breeding Farm) दिल्लीकी गाय नं. १८ को उसके तीसरे ब्यानमें २६.१ रत्तल रोजके औसतसे ३१० दिनोंमें ८,०७९ रत्तल दूध हुआ। हिसारके सरकारी ढोर संवर्धन क्षेत्रकी गाय नं० १९०-२-२२ को २९६ दिनोंमें प्रतिदिन २१.५ रत्तल रोजके औसतसे ७,०६८ रत्तल दूध हुआ।

हरियानाके बारेमें १९३३ में श्रीकाठोवालाने कहा था : "यह पंजाबका प्रमुख ढोर है। मझोले भारी प्रकारकी यह नसल है। यह गव्य व्यवसायके लायक बनाया जा सकता है।" उसके बाद हरियानाने गव्य व्यवसायके पशुका दर्जा पा लिया है। (२५४)

६६. (४) **हाँसी हिसार नसल :** पंजाबके हिसार जिलेमें हाँसी नदीके अगल बगलके अंचलकी यह नसल है। इसीलिये इसका नाम हाँसी हिसार है। यह बहुत कुछ हरियानाके जैसी है, पर उससे मजबूत और भारी डीलकी है। सींगभी अपेक्षाकृत टेढ़े और लम्बे होते हैं। कान बहुत लटकते होते हैं। सफेद और भूरा रंग उनका लाक्षणिक रंग है। बैल तो मेहनती होते हैं पर गायें अभी तक हरियानाके जितना दूध नहीं दे सकी हैं। यह अभीतक दुधारके बदले खास तौरपर भारवाही जानवर माना जाता रहा है।

सन् १९४० की दिल्ली प्रदर्शनीमें सरकारी क्षेत्रके हाँसी हिसार बैलको पहला पुरस्कार मिला था। उसी क्षेत्रके ओसरको भी पहला पुरस्कार मिला था। (२५२)



चित्र-१७. अंगोल साँढ़
(इन्डियन ज० मे० सा० एन्ड एनि० हस्बै, खंड १२, भाग १)

६७. (५) **अंगोल नसल :** मद्रास प्रान्तका अंगोल अंचल अपने ढोरकी नसलके लिये प्रसिद्ध है। गन्टूरके किसान साधारण तौर पर इसका

संवर्धन करते हैं। खास उपजाया चारा और चुनी चोकर इन्हें खिलाया जाता है। ये ढोर सीधे हुआ करते हैं। बैल खूब शक्तिशाली और भारी हल तथा गाड़ीके उपयुक्त होते हैं। पर अपनी स्थूलताके कारण तेज दौड़नेमें उपयुक्त नहीं माने जाते।

अमेरिकाके गरम भागके ढोरोंका सुधार करनेके लिये अंगोल ढोर बहुत जादे चलान होता था। थोड़ेसे सूखे चारेपर भी ये पनप सकते हैं। कुछ अंगोल ढोरकी देहपर की रंगीन चित्तियाँ उनमें दूसरे रक्तोंका संकर बताती हैं। ये भारी भरकम जानवर कमजोर जमीनके लायक नहीं हैं।

इनकी देह अपेक्षाकृत लम्बी और गरदन छोटी होती है। इनकी मांसलता और बड़ा आकार इनकी खूबी है। (२००, २०२, २०५, २१४–'१५, २२५, २६१)

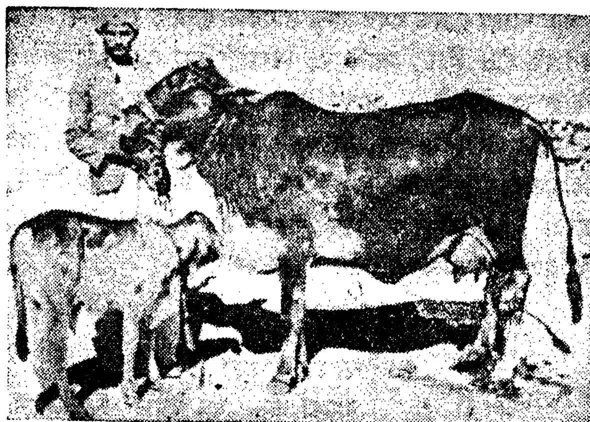
६८. (६) **राठ नसल :** अलवर और राजपुतानेके पासकी रियासतोंसे आनेवाला यह जानवर मझोले कदका है। अलवरके बाहर इनमें हरियाना, नागौरी और मेवाती नसलके मिश्रणकी संभावना रहती है। यह बहुत गठीला और फुर्तीला है। मध्यम हल और गाड़ीके कामके उपयुक्त है। गायें भी दुधार हैं। मझोला कद, मध्यम हल और गाड़ीके काममें उपयुक्तता और दूध देने की अच्छी सामर्थ्य इन तीन कारणोंसे यह गरीबोंका ढोर माना जाता है और नागौरी धनियोंका।

**३ (क) और ३ (ख) के संकर प्रकार :** इस प्रकारमें नीचे लिखी दो नसलें हैं :

६९. (१) **केंवारिया नसल :** यहबुन्देलखन्डकी प्रसिद्ध नसल है और युक्तप्रान्तके बांदा जिलेमें केन नदीके तटवर्ती भागमें पायी जाती है। हलके हल और गाड़ीके काममें यह ढोर बहुत लोकप्रिय है। गायें कम दूध देती हैं। इनका रंग भूरा होता है। इनका सर छोटा और चौड़ा होता है। ललाट धँसा हुआ। मजबूत नुकीला सींग होता है। सींग और साधारण ढाँचेसे प्रकार ३ के ३ (क) और ३ (ख) के संकरका अनुमान होता है। सींग ३ (क) प्रकारके कांकरेजकी तरह है, पर दूसरे लक्षण ३ (ख) प्रकारकी तरहके हैं।

७०. (२) **खेरीगढ़ नसल:** यह नसल युक्तप्रांतके खेरी जिलेके खेरीगढ़ परगनेमें पायी जाती है। यह ढोर उजला हुआ करता है और इसका मुँह छोटा और पतला होता है। सींग बड़ा और नापमें १२ इंचसे १८ इंच केंवारिया

नसलकी तरहका होता है। यह क्रोधी और फुर्तीला है। यह छुट्टा चाराईकर पनपता है। गायोंको दूध कम होता है। यह तराई अंचलके बहुत उपयुक्त है।



चित्र-१८. अफगान गाय

(इन्डियन ज० भे० सा० एन्ड एनि० हस्बै०, खंड-१२, भाग १)

**७१. साहीवाल प्रकार—अफगान और उत्तर भारतके रक्तका संकर :** पंजाबके मंटगुमरी जिलेमें एक विशेष प्रकारका ढोर है। इसे साहीवाल कहा जाता है। यह अफगानिस्तानके ढोरका बहुत नजदीकी मालूम होता है। इस ढोरका रंग बादामी, मटमैला या कबरा होता है। यह भारतकी श्रेष्ठ दुधार नसलोंमें है। यह प्रसिद्ध है कि राजपुतानेसे कभी बहुतसे लोग मंटगुमरी आये थे। वहलोग अपने साथ दक्खिनके ढोर लाये थे। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि इनलोंगोंकी वजहसे मंटगुमरीमें गीरका बहुत रक्त मिल गया है। रंगसे अफगान और गीर दोनों प्रकार मालूम होते हैं।

यह भी अन्दाज किया जाता है कि, लाल सिन्धी भी अफगान और गीर इन दो प्रकारोंके संकरसे पैदा हुई है। लालसिन्धीमें बलूचिस्तानके लास बेलाके अंचलके ढोरसे तीसरे मिश्रणकाभी पता चलता है। यहाँ इस प्रकारका नाम अफगान-गीर प्रकार है। (४८)

७२. (१) **साहीवाल नसल :** यह प्रधान तरहसे दुधार पशु है। पिछले जमानेमें पंजाबके मध्य और दक्खिनी सूखे भागमें बहुत बड़ी तादादमें पाले जाते थे। यह ढोर भगनारी, हरियाना, नागौरी और धन्नी आदिसे साफ साफ अलग मालूम होते हैं। ये ढोर माँसल होनेके बदले लम्बे टाँगवाले होते हैं। कम चलनेवाले और आलसी स्वभावके होते हैं। यद्यपि यह भारवाही पशु नहीं माने जाते फिर भी बैल धीमे कामके लायक होते हैं। अधिक दुधार होनेके कारण साहीवाल शहरोंमें बहुत मँगाये जाते हैं। अपने घरसे दूर दूसरे तरहकी आबहवावाले भारतके विभिन्न शहरोंमें साहीवालकी शुद्ध नसल पैदा की गयी है। इनके दूधके लेखेसे पता चलता है कि उचित देखभालमें ये सब जगह पनपते हैं। नीचे लिखा आँकड़ा विभिन्न स्थानोंमें पैदा हुए साहीवालका परिणाम सूचित करती है :

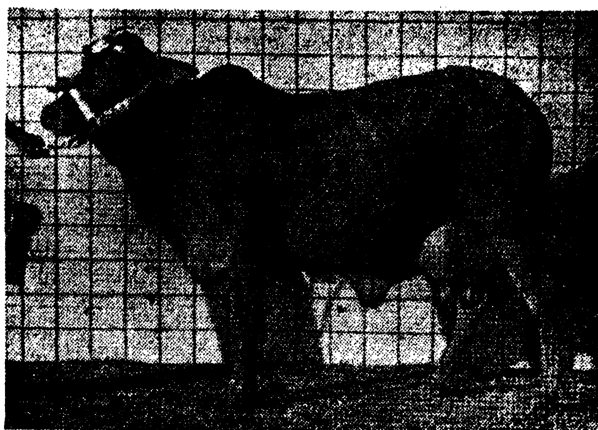
## आँकड़ा—४

### साहीवालके दूधका लेखा

| स्थान | गायका नाम | दूध देनेके दिन | पिछलेब्यान की उपज रत्तलमें | औसत रत्तलमें |
|---|---|---|---|---|
| १. सरकारी फौजी गव्य क्षेत्र, फिरोजपुर, पंजाब | बेल्ली के२४।१०११ | ३३१ | १०,०८७ | ३०.५ |
| २. सी० एल० फार्म, आई० ए० आर० इन्स्टिट्यूट, नयीदिल्ली | चँसुरी ६५३ | २५५ | ८,६११ | ३३.८ |
| ३. सरकारी गव्य क्षेत्र, तेलनखेरी, नागपुर | केतकी ५ | २८९ | ७,२४९ | २५.१ |

श्री कोठावाला (शाहीगव्यप्रवीण) ने साहीवाल गायके बारेमें सन् १९३३ में इस तरह कहा था : "मझोले कदकी गव्य नसल जिसका महत्व इस देशकी आजकलकी खेतीकी जरूरतोंको पूरा नहीं कर सकनेकी वजह खतम हो गया है, क्योंकि इसके बैल बहुत सुस्त हैं, और कामके लायक नहीं हैं।"

सन् १९३३ की उक्तिके होते हुए भी शहरोंकी दूधकी जरूरत पूरी करनेमें साहीवाल पहले दर्जेकी दुधार गाय मानी जा रही है और लोकप्रिय है। गाय और बैल दोनोंका मान बढ़ानेके लिये पूसामें महत्वका काम हुआ है। (२५८-'६३, १०५५-'६१)



चित्र १९. साहीवाल गाय

(इन्डियन ज० भेट० सा० एन्ड एनि० हस्बै०, खंड-१२, भाग १)

७३. (२) **लाल सिन्धी नसल :** इस नसलका घर करांचीके चारों तरफ और उसके उत्तर-पूरब है। बलूचिस्तानके लासबेलामें उल्लेखनीय शुद्धता वाला एक दूसरा प्रकार होता है। करांचीके लाल सिन्धीमें अफगान और गीर रक्तके मिश्रणका दूसरे तरहका लक्षण दिखाई देता है। बलूचिस्तानमें जहां संभवतः यह नसल शुद्ध रूपमें है इसे पहाड़ी प्रकारका ढोर मानना होगा।

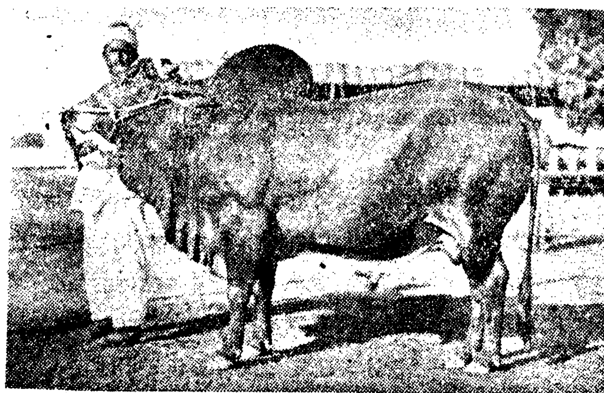
भारतके सर्वश्रेष्ठ दुधार गायोंमें लाल सिन्धी भी है। इसमें खूबी यह है कि छोटे कदकी होकर भी दूध बहुत देती है। यह हर जगह पनप सकती है। इसीलिये बहुतसे इलाकोंमें वहांके ढोरोंकी तरक्कीके लिये यह काममें लायी जाती है। बैल छोटे और कामके होते हैं।

ये छोटे और गठीले होते हैं। इनमें देखने लायक खास बात इनका लाल या मृगशावकसा रंग है। कभी कभी मुँह या झालर सफेद रहती है। कान साधारण आकारके झूलते हुए, थन बड़ा लटकता होता है। सींग मोटा होता है और चांदकी बगलसे सीधे निकल ऊपर उठ आगेकी ओर मुड़ा रहता है।

# आँकड़ा—५

## लाल सिन्धीके दूधका लेखा

| स्थान | गायका नाम | दूधदेनेके दिन | कितना दूध दिया रत्तलमें | औसत रत्तलमें |
|---|---|---|---|---|
| १. सरकारी क्षेत्र, मीरपुरखास, सिन्ध | सोजी-५० | ३७४ | ७,५३३ | २०·१ |
| २. सरकारी दुग्धक्षेत्र, जब्बलपुर | कार्तिक-८६ | २८१ | ६,२९८ | २२·४ |
| ३. फौजी गव्य क्षेत्र, लखनऊ | सैटर्न | ४६१ | ७,८२५ | १७·० |
| ४. सरकारी मोडेल गव्यक्षेत्र, सिकन्दराबाद, दक्खिन | शकुन्तला | ३१९ | ८,५७३ | २६·७ |



चित्र-२०. सिन्धी साँढ़
(इन्डियन फार्मि, खंड-२, नं० ४)

लाल सिन्धी पालनेवाले इसकी बहुत जादे प्रशंसा करते हैं। "छोटे दूध व्यवसायीके लिये सिन्ध गाय श्रेष्ठ गायोंमें है। यह बड़ी नहीं होती। इसलिये अंगोल, साहीवाल आदिसे कम खाती है। यह मिताहारी है और काफी कम चारे पर भी अच्छी रहती है।"

भूतपूर्व शाही गव्यनिपुण श्री स्मिथकी रायमें, "...यह शुद्धतम और विशिष्ठतम भारतीय नस्लोंमें एक है। फिरभी भैंसको छोड़कर गव्य व्यवसायमें

मुनाफा देनेवाली यही केवल मात्र नस्ल हैं जो बड़ी संख्यामें खरीदी जा सकती हैं।"

"मद्रासकी बकिंघम और कर्नाटक मिल्सने सन् १९२२ में अपनी अंगोल गायोंको हटा दिया और सिंधी गायका एक छोटा ठट्ठ अपनी गव्यशालाके लिये खरीदा। आजकल उसको शुद्ध सिंधी नस्लकी दुधार गायोंका बहुत सुन्दर ठट्ठ है।"

होसुर फार्म, मदरासमें एक सिंधी ठट्ठ है उसका लेखा निम्नलिखित है :

दूध देनेके दिन लगभग ३१०, हर सोलहवें महीनेमें ब्याती हैं। प्रायः ५ महीना बिशुखती हैं। दूधकी उपज ५,००० से ६,००० रत्तल तक है। हर दिनका औसत १६ रत्तल। एक दिनमें सबसे जादे दूध ३४ रत्तल। (आर० डबल्यू० लिटिलउड, डिप्टी डाइरेक्टर ऑफ एग्रीकलचर, होसुर कैटल फार्मके लेखसे)

शाहीं गव्यनिपुण श्री कोठावाला, बंगलूरने, लालसिंधीके बारेमें सन् १९३३ में कहा था :

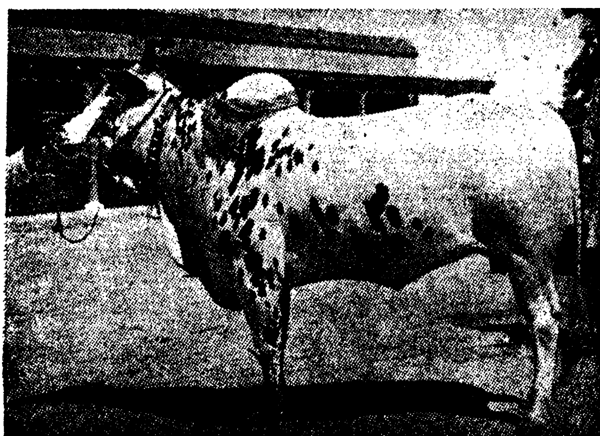
"संभवतः यह नस्ल आजकल इस देशमें शुद्धतम रूपमें पायी जाती है और पायी जानेवाली दुधार नसलोंमें हर जगह सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।" इसी लिये सारे देशमें इसका प्रचार है। (३५१-'२७)

७४. **धन्नी नस्ल :** सर अर्थर ऑलवरके मतानुसार पंजाबके धन्नी ढोरको एक अलगही प्रकार मानना चाहिये। उनका ख्याल है कि शायद यह नस्ल उत्तरके दर्रेसे आनेवाली किसी दूसरे प्रवासी दलके साथ आयी। यह मामूली कदकी गठीली फुर्तीली और कामवाली नसल है। इसका रंग खास तरहका होता है। यह पंजाबके अटक, रावलपिंडी और झेलमके इलाकों तथा पच्छिमोत्तर सीमाप्रान्त में होता है। इस ढोर का रंग सफेद होता है और उस पर लाल या काले धब्बे होते हैं। समान रूप से फैले ये धब्बे कभी कभी सारी देह पर छाये रहते हैं जिससे चमड़ाका अधिकांश काला दिखाई देता है। बीच बीचमें धब्बे दिखाई देते हैं। हलमें तेज चलनेवाले जानवरोंमें इनकी बहुत ख्याति है। गायोंको दूध विशेष नहीं होता है। गायों पर कम ध्यान दिया जाना इसका कारण हो सकता है। बहुत बार तो गायको हलमें खूबही जोतते हैं और भर पेट नहीं खिलाते। इसलिये उनके दुधारपनके विकशित होनेका मौका मुश्किलसे मिलता है। अविकशित गायके दूधका औसत प्रति दिन ३ से ६ रत्तल है। ७ महीने से अधिक दूध देती है।

जमीन समतल करनेके लिये 'कड़ाह' में जोतने के लिये बैलोंकी माँग खास तौरपर होती है। इस प्रकारके साँड़ और बैल हलके पर तेज चालसे चलते हैं। यह इनका विशिष्ठ लक्षण है। इस जातिके बैल की कीमत (सन् १९४१ में) लग भग १०० या १५० रुपये होती थी। गायका दाम बैलके दामका एक तिहाई होता है। 'कड़ाह' वाले कुछ अच्छे बैलोंका दाम बहुत अधिक होता है। औसत गायकी तौल ७०० से ९०० रत्तल और बैलकी ८०० से १,००० रत्तल होती है।

इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च बुलेटिन नं ४७: "धन्नी और खिल्लारी ढोरकी व्याख्या और लक्षण" में धन्नी नस्लका वर्णन विस्तारसे है।

श्री वेयर (Mr Ware) ने दिल्ली की तीसरी ढोर प्रदर्शनी (सन् १९३०) की रिपोर्टमें इस नस्लके बारेमें लिखा है:



चित्र-२१. धन्नी साँढ़

(इन्डियन फार्मिं, खंड-१, नं० ९)

"मझोले कदकी भारवाही जानवरोंकी बहुत अच्छी नस्ल, जिसकी शुद्धताकी रक्षा करनी चाहिये। इस नस्लमें संकर नहीं करना चाहिये। जितने नमूने दिखाये गये उनमें आश्चर्यजनक मान और ऊंचे गुण की समानता थी।"

**७५. प्राचीन भारतका पहाड़ी प्रकार:** सारे भारत और खासकर हिमालय और बलूचिस्तानकी पहाड़ियोंमें छोटे प्रकारका एक ढोर होता है। इनका

रंग रूप और साधारण लक्षण इतने निश्चित हैं कि, यह प्रकार भारतमें प्राग् इतिहास कालमें भी था। इस प्रकारके पशु बहुत छोटे कद और काले या किसी तरहके लाल या बादामी रंगके होते हैं। बहुतोंका रंग कबरा भी होता है। अधिकांशके ललाट और झालरपर कुछ सफेदी रहती है। पूँछका छोर और पैरका निचला हिस्सा भी सफेद होता है। जहाँ जादे कीमती ढोर जी नहीं सकते वहाँ भी ये पनपते हैं। दूध देने, पहाड़में काम करने और हलके भार वहन करनेमें यह बहुत उपयुक्त हैं। उत्तरमें लंडी-कोटलसे दक्षिणमें कुमारी अन्तरीप तक, पच्छिममें बलूचिस्तानसे पूरब में आसाम तक भारतके विभिन्न भागोंके बन पर्वतोंमें यह देखे जाते हैं। पूरब और पच्छिमके समुद्र तट पर कुर्ग और नीलगिरिमें तथा मध्य भारत और राजपुतानेकी जंगली जगहों में यह अच्छे नहीं होते। तराईके इलाकोंमें इनके अच्छे और कामके नमूने पाये जाते हैं। इन्हें अगर अच्छी तरह खिलाया जाय तो वास्तवमें यह बहुत उपयोगी, मेहनती और फुर्तीले साबित होते हैं, और अपने कदके हिसाबसे दूधभी अच्छा ही देते हैं। इनकी पहचान की शरीर-रचना संबंधी कोई विशेषता नहीं है। हाँ, देह के अनुपातमें सिर छोटा होता है। हिमालयकी ऊँचाई पर पाये जानेवाले कम बढ़े ढोर का सींग अकसर छोटा होता है। पर कम ऊंचाईके प्रदेशमें जहाँ ऊपरसे अच्छा आहार मिल जाता है वह बड़ी होतीहै। देहकी खाल हलकी होती है आँख और पैर छोटे पर अच्छे किस्मके होते हैं। इस प्रकारकी गायोंको जहाँ उचित आहर दिया जाता है, वहाँ वह अपने कदके हिसाबसे काफी दूध देती हैं।

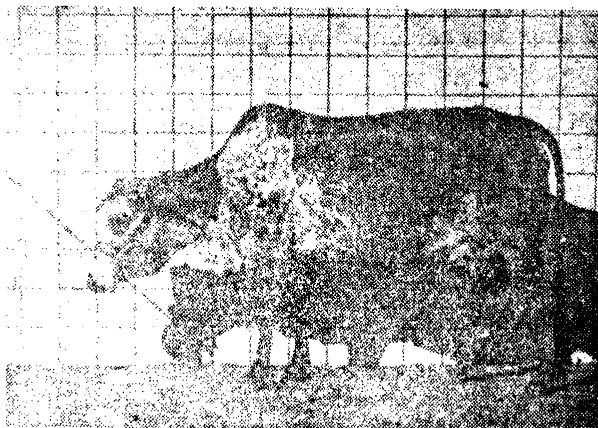
७६. (१) **सीरी नस्ल :** यह पशु दार्जिलिंगके पहाड़ी प्रदेश, सिक्किम और भूटानमें पाया जाता है। भूटान इसका असली घर माना जाता है। भूटानसे ही इनके सबसे अच्छे नमूने दार्जिलिंग लाये जाते हैं। रंग साधारण तौर पर सफेद और काला या लाल और काला पाया जाता है। यह बारहों महीना घने बालोंसे ढकी रहती है, जिससे वहाँकी तीखी ठंढ और घनी वर्षासे इसकी रक्षा होती है।

सीरीका साधारण डील विशाल होता है। इसका सिर चौकोर छोटा और सुडौल होता है। ललाट चौड़ा और चिपटा होता है। कुब्ब जरा आगेकी ओर रहता है। कान प्रायः छोटे होते हैं। मुतान हलके होते हैं। दृढ़ जाँघ और पैर इस नस्लके लक्षण हैं। बैल बहुत अच्छे होते हैं। बुरी पहाड़ी सड़कों पर १० से १२ मनका बोझ वह आसानीसे खींच सकते हैं।

अच्छी तरह खिलायी गाय १२ रत्तल तक दूध दे सकती है। दूधमें ५ से ६ सैकड़ा मक्खन होता है। साधारण गायें २ से ४ रत्तल तक दूध देती हैं।

**७७. (२) लोहानी नस्ल :** इस नस्लके ढोरका घर बलूचिस्तानकी लोहानी एजेंसी है। यह कबीलोंके इलाकेमें भी खूब फैला हुआ है। वहाँ यह अछइ (Achhai) ढोर कहा जाता है। इस नस्लमें दूध देने और काम करनेकी भी शक्ति है।

लोहानी छोटे कदका होता है। जवान जानवर ४०" से ४४" इंच ऊँचा होता है। इनका लक्षणिक रंग है लाल और उसपर सफेद चित्तियाँ। पर



चित्र-२२, लोहानी गाय

(इन्डियन ज० भेट० सा० एन्ड एनि० हस्बै० खंड-१२, भाग-१)

बिलकुल लाल रंग भी पाया जाता है। खासकर पहाड़ी देशमें बैल हल और लादीके काम बहुत अच्छा करता है। यह कड़ी से कड़ी सर्दी गर्मी सह सकता है। कहा जाता है कि गायें एक दिनमें १० रत्तल तक दूध देती हैं।

**७८. नस्लोंके वर्गीकरण का आधार :** जितनी नस्लोंकी सूची इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चने अभीतक तैयार की है, वह पिछले पन्नोंमें लिख चुके हैं। और काम होने पर और भी नसलोंका वर्गीकरण जरूर होगा। संवर्धनके प्रयोगसे हुए परिवर्त्तन और सावधानीसे अवलोकन

करनेके कारण भी निदर्शक तत्वोंमेंभी परिवर्तनकी संभावना है। फिरभी होने वाले परिवर्तनोंके रहते भी इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चके अबतक जमा किये मसालेसे हमें कुछ बिचारणीय तथ्य मिल गये हैं।

ऊपरका वर्गीकरण सर अर्थर ऑलवरके आलेखके आधारपर है। नस्लका मूल स्थान उसका आधार है। ऐसा हुआ है कि कोई नस्ल असलमें जिस जगहकी थी वहाँ लुप्त हो गयी। मूल शुद्धतामें किसी परिवर्तनके बिना बहुत दूर जाकर प्रतिष्ठित हुई है या अधिकतर उनमें बहुत कुछ परिवर्तन भी हो गया है। ऐसा होने पर उस नस्लके मूल स्थानका महत्व नहीं रहता। उदाहरणके लिये हमलोग ३(क) चौड़े मुँह धतूरेके फूलकी तरह सींगवाले (lyre-horned) भूरे सफेद उत्तरी भारतके मूलवाले प्रकारको लें। इसमें पहला नाम कच्छके काँकरेजका है। यह जगह उत्तरी भारतसे बहुत दूर है। दूसरा नाम मध्य भारतकी मालवी नस्लका है। तीसरा जोधपुर राज्यकी नागौरी नस्लका, चौथा सिंधकी थार्परकर नस्लका है। इस गणनामें एक भी ऐसा नाम नहीं मालूम होता जो आजकल उत्तरी भारतमें पाया जाता हो। आज नस्लकी खोज करनेवालेके लिये महत्वका सवाल यह है कि कौन नस्ल आज कहाँ पायी जाती है और उनका क्या उपयोग है।

**७९. वर्तमान निवास और उपयोगिताके अनुसार वर्गीकरण :** अगर नस्लोंका वर्गीकरण उनके पाये जानेवाले स्थानके आधारपर हो तो विभिन्न नस्लों और उनके परस्पर प्रभावके बारेमें बहुतसा उपयोगी ज्ञान हाथ लगेगा।

नस्लोंके वर्गीकरणका दूसरा तरीका उनकी उपयोगिताके आधार पर है। गायोंकी उपयोगिता हमारे लिये दो तरहसे है। एकतो भारवाहनके लिये, दूसरे दूधके लिये। इस देशमें "द्वि-प्रयोजन"का अर्थ है वह नस्ल जो भारवाही और दूध दोनों कामकी हो। आज वर्गीकरण इस तरह हो सकता है :

(१) भारवाही ढोरकी नस्ल ;
(२) दूधके ढोरकी नस्ल ;
(३) द्वि-प्रयोजन ढोरकी नस्ल।

**८०. भारवाही नसलोंका उपभेद :** भारवाही नस्लोंका उपभेद यों किया जा सकता है :

(क) तेज़ दौड़नेवाली नसलें ;

(ख) बड़ी सहनशक्ति वाली नसलें ;

(ग) ऐसी नसलें जो धीमी और भारी जुताईके लायक हैं। इसी तरह और।

इस सूचीमें उपभेदके अनुसार असंख्य प्रकारकी उपयोगिता जोड़ी जा सकती है। जुताईके ढोरोंकी ऐसी नसलें हैं जो अल्पाहार पर भी पनप सकती हैं, जैसे सेलम, उत्तरी सेलम, कोयम्बतूरकी आलमबादी नसल या महाराष्ट्रमें सोलापुर और सताराकी खिल्लाड़ी नस्ल। वहीं जोधपुरकी दौड़नेवाली प्रसिद्ध नागौरी नसल है। यह अमीरोंका ढोर माना जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि, इन्हें आराम से तर माल खिलाकर रखना होता है।

**८१. दूधके आधार पर वर्गीकरण :** इसी तरह दुधार नसलोंके बारेमें भी। बहुत, साधारण और कम दुधार जानवर हो सकते हैं। पशुके आकार और इन गुणोंमें परस्पर संबन्ध होता है। १००० रत्तल तौलकी गायका ५ या ६ रत्तल दैनिक दूध कम माना जायगा। पर ५०० रत्तल वजनकी गायका दैनिक दूध ५ या ६ रत्तल हो तो मध्यम माना जायगा। इस तरह भी असंख्य उपभेद होते जायेंगे।

द्वि-प्रयोजन गायोंमें—मझोले जानवरोंमें औरोंसे भारी और छोटी गायोंके भिन्न भिन्न वर्ग बनेंगे। इनमें भी कुछका झुकाव अधिक दूध देनेकी ओर और कुछका भारवहनकी ओर अधिक होगा। इसलिये इनका वर्गीकरण दूसरा ही होगा।

**८२. अभी प्रकार स्थायी नहीं रह सकते :** इन सबसे बढ़कर यह बात है कि चतुर संवर्धकों द्वारा प्रकारोंका परिवर्तन जल्दी जल्दी होनेकी संभावना है। अब तक संवर्धनपर पूरा ध्यान नहीं दिया गया था इसलिये एक स्थायी परिभाषा या वर्गीकरणसे चल सकता था। पर अब तो ढोरोंकी उन्नतिकी सरकारी योजनामें संवर्धन समस्याको बहुत स्थान दिया गया है। इसलिये प्रकारोंके लक्षणोंका जल्दी परिवर्तन होना निश्चित है। इसलिये आजके उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर हुआ वर्गीकरण कुछ वर्षोंमें पुराना पड़ जायगा।

**८३. स्थानके हिसाबसे वर्गीकरण :** जिन स्थानोंमें भिन्न भिन्न नसलोंके ढोरोंका संवर्धन होता है उनके नामसे भी वर्गीकरण हो सकता है। ऐसा वर्गीकरण बहुत वजनी होगा और अनेक वर्षोंतक स्थिर रहेगा। पर भौगोलिक

विचारके अलावा पूर्व अध्यायमें कहे हुए मूल स्थानके आधारपर हुए वर्गीकरणकी तरह ही बहुत कामका नहीं होगा।

८४. **ऑलवरके वर्गीकरणसे प्रयोजनकी सिद्धि :** सर अर्थरके निर्देशानुसार अगर किसी तरह नसलोंके आजके लक्षण और संवर्धनके स्थान तथा सामर्थ्यका अध्ययन किया जायतो, किसी नसलसे क्या उम्मीद रखनी चाहिये और उसके पनपनेके लिये उचित स्थानका स्पष्ट पता लगेगा। इन बातोंकी जानकारीसे विद्यार्थियोंका मतलब भी सधेगा।

# अध्याय ३

## द्वि-प्रयोजन गाय

८५. **भारतीय गौ परम्परासे द्वि-प्रयोजन पशु है :** भारतमें गाय भारवहन और दूध ये दो प्रयोजन साधती है। भारतमें गायकी कल्पनामें भारवहन और दूध देना अविच्छिन्न रूपसे सन्नद्ध है। ऋग्वैदिक काल और उसके पहलेसे भी यही कल्पना रही है। शिव बैल पर सवारी करते हैं और कृष्ण गोप या ग्वालेके बेटे हैं।

ऐसे देशमें भी आजकलके तत्वविद् (theorists) और कर्मकुशल (technicians) लोग गायको मुख्य रूपसे भारवाही और भैंसको दुधार पशु सिद्ध करनेकी कोशिश कर रहे हैं। यह घातक विचार है। इसका प्रभाव व्यापक और मार्मिक स्थानोंपर पड़ता है। इसका विचार विस्तारसे करना चाहिये कि दोनोंमें दूध देनेके लिये किसका विकाश किया जाय। बहुत बड़ी हानि तो की जा चुकी है। तुरतके लाभके लिये अदूरदृष्टिवाले लगनने लोगोंका ध्यान गायसे हँटा भैंसपर लगा दिया है। बहुत दिनोंसे गायकी अवहेला और भैंसकी रक्षाकी पद्धति सरकारी मंजूरी और मेहरबानीसे जारी है। बंगालमें

जैसे पाट "रुपयेकी फ़सल" (money crop) है, ठीक वैसे ही बहुतसी जगहोंमें भैंस "रुपयेका पशु" (money animal) है। नगद रुपये मिलनेके कारण किसान पाटकी ओर झुकता है; पर कठिन राजनैतिक परिवर्तन या विदेशी व्यापारकी गड़बड़ीके समय पाट किसानका सर्वनाश उपस्थित करता है। इसी तरह अपने वकीलों और आश्रितोंको कठिन समयमें भैंस जरूरही धोखा देगी। इन पन्नोंमें जो कुछ कहा गया है वह चर्चाकी भूमिकाके रूपमें है। छठे अध्यायमें अलग अलग प्रान्तोंमें संवर्धनका विचार करते समय अधिक प्रासंगिक बातें लिखी जायेंगी।

मैसूरकी अमृतमहाल और हल्लीकर नसलोंका बहुत गीत गाया गया है। इनकी गायें बहुत कम दुही जाती हैं। जिनके लिये सामरिक वाहनका महत्व और बातोंसे बढ़कर होता है ऐसे टीपू सुल्तान जैसे समरकुशलोंकी विकृत बुद्धिका यह एक उदाहरण है। फिरभी जब टीपू सुल्तानके समयमें इस नसल को शायद सिर्फ सामरिक प्रयोजनका बनाया जा रहा था उस समय भी अमृतमहाल द्वि-प्रयोजनका पशु था। यह इसके नाम अमृत अर्थात् दूध, और महाल अर्थात् विभागसे लक्षित होता है। मालूम होता है यह ढोर महलोंमें दूध मुहय्या करनेके विभागमें पाला जाता था। बादको सिर्फ भारवाही प्रयोजनोंके लिये तैयार किया गया। सर्वश्रेष्ठ भारवाही प्रयोजनोंका पशु पहले दुधार था यह इसीसे आसानी से समझा जा सकता है कि परम्परासे ही सभी भारतीय गायें द्वि-प्रयोजन पशु हैं।

दूसरे देशोंमें हल घोड़े या मशीनोंसे जोता जाता है। गाय (१) दूध और (२) मांस देनेके दो प्रयोजन साधती है। भारतमें प्रयोजन दूसरा ही है। हमारे द्वि-प्रयोजनका अर्थ दूध और भारवहन है। जबतक शाही कमीशनने केन्द्रीय और सरकारी नेतृत्व नहीं दिया था सरकारका ओरसे पशु संवर्धनका नियंत्रण करनेवाले ढोरोंकी उन्नतिका प्रयत्न तरह तरह से कर रहे थे।

शाही कमीशनकी रिपोर्टकी निष्फलताका जिक्र किया जा चुका है। भारतमें "द्वि-प्रयोजन" गायकी जरूरतपर जोर देनेके लिये उसका जिक्र फिर करता हूँ। इसे बताना जरूरी है कि शाही कमीशनने इस मामलेमें जो किया वह गलत है और कुछ नहीं करनेके बराबर है।

"पशु व्यवसायकी दृष्टिसे ढोर संवर्धनकी नीति और द्वि-प्रयोजन नस्लें" इस विषय पर रिपोर्टसे उक्त व्यर्थताका एक उदाहरण दिया जाता है :

**८६. ढोर संवर्धन नीति :** "पिछले पैरोंमें कहा जा चुका है कि इस बातका प्रमाण है कि भारतके बहुत से हिस्सोंमें किसानोंकी गायको इतना दूध नहीं होता जितना उन्हें अपनी जरूरतके लिये चाहिये। ऐसी हालतमें गायकी दूध देनेकी शक्ति बढ़ानेका उपाय करना चाहिये। किसानके लाभके लिये ऐसे प्रकारकी गाय होनी चाहिये जो अपने बछड़े को पिलाकर घरू कामके लिये एक व्यानमें १,००० से १,५०० रत्तल तक दूध दे। इसमें सन्देह नहीं कि इस तरहकी गायकी भारत भरमें बड़ी जरूरत है। कुछ जिले ऐसे हैं जहां ऐसी गायें पहलेसे हैं। कुछ ऐसे भी जिले हैं जहाँ वर्तमान नसँलसे चुनाव के द्वारा ऐसी गायें बनायी जा सकती हैं। और अगर बनाई जा सकीं तो बराबर कायम भी रहेंगी। पर ऐसे भी बहुतसे जिले हैं जहाँ की गायें कठिनतासे अपने बछडोंको ही पाल पाती हैं, जहाँके बैल अति निम्न कोटिके हैं, और जहाँ चारेकी इतनी कमी है कि अच्छे बछड़ोंको पालकर उल्लेखनीय अतिरिक्त दूध दे सकनेवाली गायोंके पनपने की उम्मीद नहीं की जा सकती। ऐसी हालतमें ढोरका सुधार बहुत कठिन है। इस हालतमें हमलोगोंको मालूम होता है कि यद्यपि किसानके लिये अतिरिक्त दूधका होना वाञ्छनीय है फिरभी पहला कदम ऐसी गायोंका बनाना होना चाहिये जो कामके भारवाही बैल बननेके लिये अपने बछड़ोंको पाल सकें।"—( पृ० २२४-२५ )

ऊपरके वक्तव्यके विश्लेषणसे यह स्पष्ट हो जायगा कि जहाँ दूध और भारवाही दोनों प्रयोजनके लिये गायकी उन्नति करनेकी जरूरत है, जहाँ चारेकी कमीसे गाय मुश्किलसे अपने बछड़े पाल सकती है, शाही कमीशनके मतानुसार वहाँ कुछ करनेकी जरूरत नहीं या कुछ किया नहीं जा सकता। और अगर कुछ करनाही है तो दुधारके बदले भारवाही पशु बनानेपर ही सारा ध्यान लगाना चाहिये।

शाही कमीशनने चारेके मामलेमें विशेष तरहकी मनोवृत्ति ग्रहण की है। कमीशनकी रायमें मिलने वाले चारेपर वर्त्तमान ढोरका पालन नहीं हो सकता और निकट भविष्यमें चारेका और अधिक प्रबन्ध होनेका कोई योग नहीं है। कमीशनका सुनिश्चित मत यही है। इसलिये वह निराशा और विनाशके सिवा और कोई राह नहीं दिखा सका।

**८७. चारा बढ़ाना चाहिये, साथ दूधभी :** यह दिखाया जा चुका है कि चारा बढ़ाया जा सकता है। इस आधारपर काम करनेसे यह नतीजा

निकलता है कि खासकर उन गये बीते इलाकोंमें जहाँ चारेके अभावमें गाय मुश्किलसे अपना बछड़ा पाल सकती है, उसे पहले से अच्छा चारा देकर उसकी उन्नतिकी कोशिश होनी चाहिये। और इस तरह उसे अपना बछड़ा पालने लायक और अपने पालनेवालेकोभी कुछ देने लायक बनाना चाहिये।

अगर शाही कमीशनवालोंने उस इलाकेके आदमियोंका चित्र दिया होता जहाँ गायें कठिनाईसे अपना बछड़ा पाल पाती हैं तो इससे साफहो जाता कि अगर अच्छे बैल और अधिक दूध, इन दिशाओंमें स्थितिका सुधार नहीं हुआ तो आदमीका तन्दुरुस्त बना रहना मुश्किल होगा।

**८८. शाही कमीशन द्वि-प्रयोजन गायके विकाशमें बढ़ावा नहीं देता :** शाही कमीशन बछड़ेको अच्छी तरह पालनेवाली और अधिक दूध देनेवाली गायकी जरूरत देख सिर्फ रुक नहीं जाता वरन द्वि-प्रयोजन गायके विकाशके उद्योगमें उत्साह भंग करता है। वह अधिक दूध और अच्छे बैलमें एकको बरण करने कहता है और अच्छे बैलके पक्षमें अपना मत देता है मानो दोनों गुणोंकी सह-उन्नति असंभव है। स्थितिको जैसेकी तैसी छोड़ कमीशनने एक सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि "गायों से बैल लो और भैंसोंसे दूध"। इस सुझावका निष्कर्ष निकलता है कि गायोंकी मादा और भैंसोंके नरको नष्ट कर देना अधिक लाभका है। शाही कमीशनने जहाँ यह निर्णय किया है वहाँसे एक उद्धरण नीचे दिया जाता है :

"...इसलिये हमलोगोंकी राय है कि एक समान भारवाही और दूध तथा घी देनेवाले द्वि-प्रयोजन ढोरके लिये सिर्फ उन्हीं जिलोंमें प्रयत्न होना चाहिये जहाँ दूधकी उत्पत्तिका भविष्य आजसे अच्छा हो। इन जिलोंमें भी गायकी दूध देनेकी सामर्थ्य जल्दी बढ़ सकती है या भैंसकी शरण लेनी होगी यह सवाल अच्छी तरह विचार लेना चाहिये। जैसा हमलोगोंने बताया है देशमें बहुत जगह ढोरोंकी हालत बहुत शोचनीय है। संवर्धकोंको जिन कठिनाइयोंका सामना करना होता है उनसे हम प्रभावित हुए हैं। हमें इस बातकी चिन्ता है कि कहीं द्वि-लक्ष्य उनके कामको जटिल न बना दें।

"अबतक जो काम हुए हैं हम उनकी त्रुटियोंकी समालोचना नहीं करें। अनेक बातोंमें प्रान्तीय पशुधन प्रवीणोंने समस्याका अध्ययन पिछले कुछ वर्षोंसे शुरू किया है। इन प्रवीणोंको हर जगह अधिक दूध उपजानेकी ओरबार माँगका सामना करना

पड़ा है। भारतीय गायके दूधके स्वभाविक गुणकी बहुत अवहेला की गयी है। इस देशमें दूध देनेवाली श्रेष्ठ गायोंका दुरुपयोग किया गया है। गाय रखनेवालोंने उनके चुनावपर बहुत कम ध्यान दिया है। अच्छीसे अच्छी गायें शहरके दूध व्यवसायके लिये बहुत जादे खरीदी गयी हैं और विसुकनेपर वह काट डाली गयीं। ऐसी हालतमें यह सही था कि सारा ध्यान दूध बढ़ानेके ऊपर केन्द्रित किया जाय पर जो लोग भारतीय ढोरकी उन्नतिका उद्योग कर रहे हैं वह अपने कामके इलाकेका विचार किये बिना द्वि-प्रयोजन संवर्धनही अपना एकमात्र उद्देश्य रखते जाँय यह मत हमलोग नहीं मानते। सभी भारतीय नगरोंमें और अधिक दूधकी माँग है। पर भारतकी सबसे बड़ी जरूरत किसानोंका बैल है। भारतमें बहुत जगह अबभी पाये जाने वाले अच्छे प्रकारके भारवाही ढोरसे अधिक दूध लेनेकी कोशिशमें असली खतरा यह है कि उनके जिन गुणोंके कारण पिछले जमानेमें किसानोंने उन्हें पसन्द किया था कहीं वह नष्ट न हो जायँ......"—(पृ० २२५)

"ढोरके संवर्धनमें इसे कभी भूलना नहीं चाहिये कि अधिक दुधार जानवरोंके विकाशसे शहरोंके लिये दूधके प्रबन्धकी समस्या नहीं सुलझती। गव्य व्यवसायके लिये सस्ता दूध, जहाँ चारा सस्ता उपजाया जा सकता हो वहीं गायें पालनेपर मुख्यत: निर्भर है। सस्ते कच्चे मालका यह संयोग और चारेका ठीक तरहसे दूधमें परिणत होना सफल गव्य धन्धावाले जिलोंमें जरूर कायम रहे।"—(पृ० २२६)

**८६. द्वि-प्रयोजन सम्बन्धी तर्कका शाही कमीशनके द्वारा विरोध :** "दोनों प्रयोजन पूरा करनेवाले पशुके समर्थनमें हमारे आगे एक तर्क रखा गया कि, अगर किसी किसानको अच्छी गाय दी जाय तो वह उसे अच्छी तरह खिलावेगा। हम मंजूर करते हैं कि अगर इससे मुनाफा होगा तो वह जरूर ऐसा करेगा। पर इसका कोई प्रमाण नहीं कि सारे भारतका एक संग विचार करनेपर इसमें कोई मुनाफा होगा। अगर किसान अपनी अच्छी गायों और उनकी बछियोंको अच्छी तरह रखना चाहता है तो यह पूछा जा सकता है कि, जिन जिलोंमें अब अच्छी गायें खरीदना मुश्किल है वहाँ पहले आजसे जादे आसानीसे अच्छी गायें क्यों मिलती थीं? इस विषयपर बोलनेमें समर्थ सुयोग्य गवाहोंने हमें जो सूचना दी है वह यही है। इसलिये हम फिरभी कहते हैं कि जहाँ चारेकी कमी है वहाँ दूधकी उत्पत्ति बढ़ानेको व्यापक करनेके पहले चारेकी समस्याका मुकाबला करना होगा। यही व्यवहारिक सिद्धान्त है।"—(पृ० २२६)

६०. **किसान और दूध बेचनेवाले भिन्न व्यक्ति माने गये हैं :** "हम मंजूर करते हैं कि देशके ऐसे भाग, जैसे—उत्तरी गुजरात, दक्खिन-पूरब पंजाब और युक्तप्रान्तके कुछ भाग हैं जहाँ दोनों प्रयोजन पूरा करने वाले ढोर उस जगहकी जरूरत पूरी कर सकते हैं और पच्छिमी पंजाब और सिन्ध के ऐसे अंचलभी हैं जहाँ सिंचाईका प्रबन्ध है और जहाँ चारेकी बहुतायतसे किसान अधिक दुधार नस्ल भी सफलताके साथ पाल सकते हैं। पर साधारण तौर पर हमारा विश्वास है कि अगर साधारण किसान और दूध बेचनेवालेकी जरूरतोंको अलग अलग विचारा जाय तो पशुधनकी अधिक उन्नति हो सकती है। मजबूत और फुर्तीला, खुद चरकर पेट भर सकता हो और मौसमकी न टलनेवाली कठिनाई सह सकता हो, किसान ऐसे बैल सभी चीजोंसे बढ़कर चाहता है। अच्छे बछड़ेको पिलाकर अपने कामके लिये यथेष्ठ अतिरिक्त दूध देनेवाली गायभी वह चाहता है। पर जहाँ चारेकी कमी है वहाँ अपने छोटे बछड़ोंके हितकी दृष्टिसे किसानको दूध बेचना नहीं चाहिये। गुजरातके पाड़ोंकी तरह सुधरी नस्लके बछड़े 'भूखके मारे मरें' यह हम नहीं देखना चाहते। यद्यपि गायकी संतानकी मौत उतनी तेजीसे नहीं होगी जितनी तेजीसे भैंसकी संतानकी होती है, पर जिस जिलेमें ताजे दूधके बाजार मौजूद हैं और चारेकी कमी है वहाँ बछड़ेकी मौत उतनी जल्द न भी हो पर उसे भूखकी पीड़ा जरूर सतावेगी···"—(पृ०२२६)

६१. **शाही कमीशन की दृष्टि जादूघरके दर्शककी है :** शाही कमीशन-वालोंकी दृष्टि जादूघरके दर्शकोंकी अनासक्त दृष्टि है। भारतमें कुछ विख्यात भारवाही नस्लके ढोर हैं। चाहे यह किसानोंके अभी या पीछे होने वाले हितके विरुद्ध हो पर भारवाही गुण किसी हालतमें कम न हो यह देखनेके लिये शाही कमीशनवाले जरूरतसे जादा परीशान हैं।

उदाहरणके लिये हल्लीकर नस्ल लीजिये। यह भारवाही ढोरोंकी प्रसिद्ध नस्ल है। अगर उस नस्लकी गायको जादे अच्छा खिलाया जाय और उससे किसानको अपने लिये कुछ दूध मिल सके इसमें घबरानेकी कौन बात है? शाही कमीशनने इस बातको वज्रलेख मान लिया है कि खास तौर पर जिनका नाम लिया गया है उन्हें छोड़ बाकी सभी जगहोंमें दूध बढ़ानेका रुझान होने से भारवाही गुण छीजेगा। रिपोर्टके पिछले उद्धरणमें शाही कमीशनने यहाँतक कहा है

कि जहाँ चारेकी कमी हो वहाँ संवर्धकोंको दूध पानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये।

९२. **भारवाही प्रकारका अधिक दूध बढ़ानेके विरुद्ध शाही कमीशन :** इसपर एक सवाल उठता है कि अगर चारा दिया जा सके तब भी क्या हल्लीकर गायकी उपेक्षा की जायगी या उसका दूध बढ़ाने की कोशिश होगी? शाही कृषि अनुसंधान परिषद्के पशु-पालन निपुण सर अर्थर का स्पष्ट उत्तर है "नहीं"। सर अर्थर ऑलवर पर शाही कमीशनकी पशुपालन पर की हुई सिफारिशें काममें लानेका भार था। उनके दृष्टिकोणका विचार करता हूँ। शाही कमीशनवालों की दृष्टिको पहले भी जादूघर देखनेवालोंकी अनासक्त दृष्टि कहा जा चुका है। इस तरह देखनेवाला सामने रखे सर्वोत्तम प्रकार में किसी परिवर्तनकी बात नहीं सोचता और संवर्धक की भलाई के लिये भी किसी परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं समझता। किसान बछड़ा पालने भर गायको खिलावे, अपने वास्ते अतिरिक्त दूधके लिये जादे नहीं, ऐसे उपायकी चर्चा कोरी कल्पना और अव्यवहारिक है। फिर अपने लिये थोड़ा दूध चाहने वाले और दूध बेचदेनेवाले किसानमें जो भेद किया गयाहै वह एकदम काल्पनिक और क्षणिक है। असली मुद्दातो दूधकी खोजके कारण बहु प्रशंसित भारवाही नस्लोंके बिगड़नेका डर है। (३१७)

९३. **प्रत्येक गायको द्वि-प्रयोजन (सर्वांगी) गाय होना चाहिये :** यह मानना होगा कि दोनों प्रयोजन पूरा करनेवाली गायही भारतके लिये एक मात्र गाय है। भारवहन भी उतनाही जरूरी है जितना दूध। इसलिये सभी नस्लोंको उचित मर्यादाके भीतर दोनों प्रयोजन पूरा करनेवाली बनानेके लिये सब उपाय करना चाहिये। सर अर्थर ऑलवरने कहा है कि दूधके लिये जोर देना भारवहनकी उत्कृष्टताको बिदा करना है। प्रसिद्ध भारवाही नसलें कहीं अपना "गुण न हिरावें" इसकी फिकर "गुण-ग्राहकों" को है। पर ऐसी विपत्ति पड़नेको नहीं है। जो आदमी संवर्धनकी उन्नतिकी नीति निर्धारित करता है उसे अगर किसानकी भलाईकी सच्ची लगन हो तो नस्लोंके लोग-दिखाऊ बाहरी गुणोंका बहुत कुछ महत्व कम हो जायगा।

९४. **अधिक दूधसे किसानकी भलाई होती है :** अगर यह सिद्धान्त मान लिया जाय कि जिससे किसानोंकी भलाई हो ऐसी संवर्धन नीति ग्रहण करनी चाहिये तब भारवाही ढोरके बेग-गुणकी थोड़ी हानिसे अगर किसानका फायदा होता है तो उसे होने देना चाहिये। यह भी पूरी तरह सैद्धान्तिक ही है। क्योंकि मेरा

विश्वास है कि सब नस्लोंकी सभी गायोंके दूधकी सामर्थ्य पर जोर देनेसे उनके भार वहनके गुणपर कोई बुरा असर नहीं होता। उलटे दूधकी बढ़ी उत्पत्तिसे बछड़ेको अधिक दूध मिलनेसे उसका भारवाही गुण और भी बढ़ सकता है।

किसानोंमें दूध बेचने और पैदा करनेवाली श्रेणीका भेद करना एकदम सही नहीं है। अगर दूध जादे पैदा हुआ तो किसान चाहे बेचे या अपने काममें लावे उससे उसका फायदा ही होगा।

शाही कमीशनने दूसरी जगह कहा है : "...यह आशंका है कि भारतके अनेक भागोंमें अबभी पाये जाने वाले सुन्दर प्रकारके भारवाही ढोरोंसे अधिक दूध पानेकी कोशिशसे ढोरोंके वह गुण नष्ट हो सकते हैं जिनके कारण किसान उनकी तारीफ करता आया है।"—(पृ० २२५)

सर अर्थर ऑलवरने एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इन्डिया (सन् १९३६ जुलाई) में द्वि-प्रयोजन पशुकी सामर्थ्यहीनता" नामके लेखमें यही विचार लिखा था।

**९५. द्वि-प्रयोजन गायपर ऑलवर :** उन्होंने यह प्रतिपादन किया है कि, एकही जानवरसे ऊँची विशिष्ट कार्यकारिता और अधिक दूधका उत्पादन होना "शरीरक्रियाशास्त्र" के अनुसार असंभव है। "द्वि-प्रयोजन" से उनका मतलब था बैलका ऊँचासे ऊँचा वेग और सहन शक्ति तथा उसकी माँ गायकी अधिकसे अधिक दूधकी उत्पत्ति। यह शरीरक्रिया-शास्त्रसे असंभव हो सकता है। पर यह सोचना कि भारतीय किसान ढोर पसंद करनेके समय ऊँचे से ऊँचा वेग चाहता है, गलत-बयानी होगी। "वह पुरुषार्थी फुर्तीले ऐसे प्रकारके ढोर चाहते हैं जो समान वेगके साथ देरतक काम कर सकें और सड़क पर बोझ भरी गाड़ी भी खींच सकें।" मैं नहीं समझता कि भारतीय किसान और सारे गुणोंको वेग और ( देरतक कामकरनेकी ) सहन शक्तिपर न्यौछावर करना पसंद करेगा। सर अर्थरने जब बोझके साथ ऊँचे वेगकी बात कही तब उनके दिमागमें भारतीय किसानके बदले सामरिक वाहन-विभाग था। उनके लेखका सिरनामा भी भ्रामक था। द्वि-प्रयोजनसे उनका मतलब १०० सैकड़ा दूध-उत्पत्ति थी। साधारण तौरपर द्वि-प्रयोजनका अर्थ वह पशु होगा जिस पशुका नर अच्छा भारवाही है और स्त्री अच्छी दुधार।

**९६. द्वि-प्रयोजनकी ऑलवरकी व्याख्या :** ऐसे पशुके लिये सर अर्थर ऑलवरका नामकरण "साधारण उपयोग" (general utility) का

पशु है। जैसे कि गीर, जिसे दूधभी होता है और अच्छा भारवाही भी है। वह कहता है, यह संभव है। इसलिये उनके लेखके भ्रामक सिरनामे और भारतीय बैल खरीदवालकी दूधकी सामर्थ्यको न्यौछावर कर सौ सैकड़ा भारवहनकी माँगकी भ्रामक धारणाको छोड़ जो कुछ उन्होंने लिखा है वह प्रशंसनीय और ग्रहणीय है।

द्वि-प्रयोजन शब्दके प्रयोगके लिये झगड़ा करनेकी जरूरत नहीं। सर अर्थर ऑलवर उसका अपने विशेष अर्थमें प्रयोग करते हैं। पर इसके साथ शाही कमीशनकी शुरू की हुई यह आशंका है कि "भारतके अनेक भागोंमें अबभी पाये जानेवाले सुन्दर प्रकारके भारवाही ढोरोंसे अधिक दूध पानेकी कोशिशसे उनके वह गुण नष्ट हो सकते हैं जिनकी तारीफ किसान करते आये हैं।" यह भ्रामक धारणा है। वह अपने लेखमें इस वक्तव्यका समर्थन करतेसे मालूम होते हैं। वह लिखते हैं, "युगोंके अनुभवसे भारतभरमें यह माना जाता है कि, दूधकी अधिक उत्पत्ति और वेगके कामकी सामर्थ्यका मेल नहीं है।" लेकिन शब्दोंपर गौर करनेसे पता चलता है कि, जहाँ शाही कमीशन भारवाही पशुसे अधिक दूध लेना वर्जित किया है, वहाँ सर अर्थर कहते हैं कि दूधकी अधिक उत्पत्ति और वेगके कामकी सामर्थ्यका मेल नहीं है। इससे ऊँची भारवाही सामर्थ्य और दूधकी साधारण उत्पत्तिकी संभावनाका द्वार बन्द नहीं होता।

**६७. दूधकी अधिक या साधारण उत्पत्ति:** सर अर्थर ऑलवरने साधारण दूधके साथ ऊँचे वेगकी नस्ल या साधारण वेगके साथ अधिक दूध देनेवाली नस्लको "साधारण उपयोगिता" का पशु कहा है, द्वि-प्रयोजन नहीं। हमें परिभाषाके लिये झगड़ना नहीं है। जिसे वह "साधारण उपयोगिता" का पशु कहते हैं वह साधारण तौर पर द्वि-प्रयोजन पशु माना जाता है। पर उनका उद्देश्य दोनों प्रकारोंको अलग करना है—वेग या दूध किसी एक चीजके लिये संवर्धन करो। अगर तुम दोनों मिला देते हो तो असली प्रकारका संवर्धन नही करते।

**६८. साधारण उपयोगिता और द्वि-प्रयोजन:** ऊँचे दर्जेके ठीक ठीक ढोर पैदा करने और पालनेके लिये यह जरूरी है कि किसी विशेष प्रकारके सर्वोत्तम पशुको सदा खिलाया जाय और संवर्धित किया जाय, पर मध्यम श्रेणीके साधारण उपयोगी जानवरका संवर्धन बहुत आसान है। वह किसी दिशामें भी बहुत ऊँची श्रेणीका नहीं होगा और उसपर यह भरोसा नहीं किया जा सकता कि उसकी संतानमें कोई भी गुण ठीक ठीक होगा। ऐसा होता

है कि, जब किसी खास प्रकारके लिये संवर्धन किया जाता है तब भी कितने ही प्रकार पैदा हो जाते हैं। यदि पूर्ण विकशित दोनों प्रकारके सांढ़ मिल सकें तो एक साथ दूध और कामवाले पशु तैयार किये जा सकते हैं।

"साधारण उपयोगिताकी बहुत कामकी नस्लें मौजूद हैं। उदाहरणके लिये काठियावाड़ और पच्छिमी भारतकी गीर नस्ल है। इस नस्ल की गायें काफी अधिक दूध दे सकती हैं। दूध देनेकी इस सामर्थ्यका विकाश निस्सन्देह किया जा सकता है। बैल सुस्त होते हैं पर होते हैं मजबूत। और संयोगसे किसी दूसरी भारतीय नस्लकी अपेक्षा इनमें अच्छी नस्ल पैदा करनेकी अधिक सामर्थ्य है।"

"ऐसी नस्लोंका एक महत्व प्रत्यक्ष है और तेज भागनेवाले बैलोंकी जगह मोटर हो जानेसे यह भी संभव है कि ये और भी लोकप्रिय हो जाँय ..."
—("एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया," जुलाई १९३६ )

यहाँतक तो सर अर्थरने अकलकी बात कही है। अगर भारतके सभी ढोर गीर, साहीवाल और हरियानाकी तरह हो जायँतो इसका पश्चात्ताप किसे होगा? सर अर्थर खुद मंजूर करते हैं कि गीर खूब दुधार और अच्छा भारवाही पशु है। कुछ श्रेष्ठ गायें ७,००० रत्तलसे ८,००० रत्तल तक दूध ३०० दिनोंमें दे सकतीं हैं, और सड़क पर तेज सवारी तथा हलके लिये बैल भी अच्छे माने जाते हैं। भारतके सबसे दुधार प्रकार साहीवालको ही लें। हम पाते हैं कि अच्छे प्रबंधमें इसकी गायोंने ९,००० रत्तल हर ब्यानमें दिया है और बैल भी निन्दाके लायक नहीं है। धीमे भारी कामके लिये यह बैल अच्छा होता है।

**६६. वेगकी कमी शक्तिसे पूरी होती है :** उसकी वेगकी कमी भारवहनकी शक्तिसे पूरी हो जाती है। धीमी चालवाले भारवाही साहीवालके हलसे धरती अधिक गहरी जुतती है। इस तरह तेज भारवाहीकी बराबरी वह कर लेता है। सावधानीसे चुनकर संवर्धन करनेसे क्या हो सकता है यह हमने अभीतक नहीं देखा है। वंशावली (pedigree) वाले साहीवाल ठट्ठ पर पूसामें श्री वाइन सायरने (Mr. Wynne Sayer) प्रयोग करके दिखाया था कि साहीवालके सांढ़के ढाँचेमें वह परिवर्त्तन कर सके थे। इससे उसका पुरुषार्थ जादे होगया था और गायका थनभी पहलेसे अच्छा अधिक सामर्थ्यका होगया था। थोड़ा भारवाही गुण और बढ़ानेके विचारसे उसी तरह वरण (selection) की पद्धतिसे संवर्धन किया जाय तो बैलोंमें इच्छित परिवर्तन

घटित हो सकते हैं। उससे साहीवाल दूध देने और भारवहन करनेमें समान रूपसे अच्छा हो जायगा, यद्यपि इस गुणको सिद्धान्ततः सर अर्थर ऑलवरने शरीरक्रिया-शास्त्रसे असंभव माना है।

**१००. ऑलवरके तर्कका आधार गलत है :** सर अर्थर ऑलवरने भारतीय किसानके स्वभावका जिक्र किया है और इसी तर्कके आधार पर निष्कर्ष निकाला है। तेज वाहनका काम मोटरके जिम्मे होनेसे अब ताकत वाले धीमे बैलोंके अधिक लोकप्रिय होनेकी उम्मीद की जाती है। यह निष्कर्ष निकालनेके बाद उन्होंने राय जाहिर की है कि :

"...पर साधारण भारतीय किसानको बरसात शुरू होनेपर जितनी जल्दी हो सके अपना खेत जोत लेना होता है, और उसे अपनी उपज दूरके बाजारमें बेचनेके लिये गाड़ी (बैलोंकी) पर ले जानी होती है। (इसलिये) अभी कुछ दिनोंतक उसे शायद जल्दी काम करनेवाले बैलोंकी जरूरत रहेगी। इसके सिवा आजकी तरह जबतक वह उनका (बैलों) दाम अपेक्षासे अधिक देते रहेंगे, प्राकृतिक गोचरके संवर्धक इस बाजारकी चीजको पैदा करते ही जायेंगे।"

**१०१. किसानका वेगका शौक :** अज्ञानके कारण बहुत बातें हो सकती हैं। पर कुछ अधिक दूधके लिये वेगकी थोड़ी सी हानि यदि किसानके हितमें हो तो ऐसा परिवर्तन करना ज़रूरी है। पर असलमें पथभ्रष्टताका कारण भारतीय किसान नहीं है। सिपाही सर अर्थरकी सामरिक मनोवृत्ति और वेगका पक्षपात ही इसका कारण है। गीरकी तरह हरियानासे भी वह सन्तुष्ट नहीं थे। अपनी मनोवृत्तिके अनुसार वह भारतमें जबतक सिर्फ सर्वश्रेष्ठ दुधार या भारवाही केवल ये ही दो वर्ग नहीं देख लेते, सन्तुष्ट नहीं हो सकते हैं। आधा आधा दोनों गुणवाले प्रकार अथवा उनके शब्दोंमें ५०:५० वालेको वह अच्छा नहीं मानते।

गीरके साहीवाल नहीं बन सकने पर उन्होंने अफसोस किया है :

"इस नस्ल (गीर) में निस्सन्देह दूध देनेकी बड़ी सामर्थ्य है। सिर्फ दूधके लिये खूब अच्छी तरह संवर्धन करनेसे चुनीहुई गाय जल्दी ही साहीवालकी तरह खूब दुधार नस्ल बन जायगी। पर जबतक इसका संवर्धन दोनो प्रयोजनोंके लिये होगा तबतक मालूम होता है यह सिर्फ किसानोंके कामकी ही नस्ल रहेगी

पर होड़वाले दूध व्यवसायमें या ऊँचे दर्जेके भारवाही ढोरके बाजारमें इसको जगह नहीं मिल सकेगी।"

हरियानाके लिये भी इसी कारण अफसोस किया गया है :

"दिल्ली, रोहतक, गुड़गाँवा इलाकेकी हरियाना उस नस्ल का दूसरा उदाहरण है जिसके निर्माणमें दूधकी उपज पर खासा ध्यान शायद मुगल बादशाहोंके समयसे ही दिया गया है। उस समय इस इलाकेमें दूधकी खपत निस्सन्देह अधिक मात्रामें होगी। बहुत हालके समयमें भी इस नस्लने संवर्धकोंका ध्यान अपनी ओर विशेष खींचा है। क्योंकि कलकत्ता और बम्बईके नजदीक पासमें अच्छी गाय मिलनेमें कठिनाई बढ़ रही है। इसलिये दुधार गायोंकी कीमत वहाँ बहुत मिलती है। इस दुधार प्रकारके बैल खेतीके काममें उपयोगी हैं पर उनकी तुलना दिल्लीकी सड़कोंपर सदा देखे जानेवाले हिसार प्रकारसे नहीं हो सकती।..."

**१०२. बैलका वेग—फौजी जरूरत है :** इस बारेमें भी अफसोस फौजी आदमीने ही किया है, जिसके हाथमें हुकूमत आगयी है और जो वेगकी ओर ही देखता है, किसानके हितकी ओर नहीं। पर शास्त्रीकी हैसियतसे सर अर्थरने स्वीकार किया कि दुधार प्रकारके भारवाही पशुओंमें वेगकी कमीसे जो त्रुटि होती है वह उतनेही समयमें किये कामकी मात्रासे पूरी हो जाती है। उन्होंने यह कहा भी है :

"...यद्यपि साहीवाल और लाल करांची जैसी धीमी नसलें हैं जिनका विशेष संवर्धन दूधके लिये हुआ है, जो सचमुच बलवान् बैल जनती हैं, जिनके वेगका अभाव कुछ हद तक बड़े औजारोंको काममें लानेसे पूरा हो जाता है।"

अगर ऐसी बात है तो सर अर्थर ऑलवरकी कही "साधारण उपयोगिता"के पशुकी बात से हम शर्मिन्दा न हों। इसमें सन्देह नहीं कि शाही कमीशनके कहे "द्वि-प्रयोजन" शब्दका अर्थ उनका कहा हुआ "साधारण उपयोगिता" का पशु है।

**१०३. प्रवीणोंमें मतभेद :** डा० नॉरमैन सी० राइट, जो "भारतके ढोर और गव्यव्यवसायके विकाश" (सन् १९३७) की रिपोर्ट लिखनेके कमीशनमें आये थे, "द्वि-प्रयोजन" गायके बारेमें शाही कमीशनका मत पूरी तरह नहीं मानते।

"...इससे भारतीय ढोरके वरण और देशी दुधार प्रकारके सुधारकी सुविधा बढ़ानेके लिये तुरत कार्रवाई करनेकी बेहद जरूरत जानी जाती है ..."

"मुझे शायद इतना और जोड़ देना चाहिये कि यह प्रयत्न सिर्फ मुख्यरूपसे दुधार प्रकार तक ही सीमित रहे, मैं यह नहीं मानता। ३१ वाँ आँकड़ा बताता है कि सिर्फ अमृतमहाल और हिसार जैसे शुद्ध भारवाही प्रकारोंको छोड़ दूसरी अनेक नसलोंमें दूधकी सामर्थ्य बढ़ायी जा सकती है। इस दूसरी नसल (हिसार) में भी दुग्धप्रभविष्णुताके प्रकार पाये जाते हैं ..."—(पृ० ६९)

सर अर्थर ऑल्वरके गलत नेतृत्वके मुकाबिलेके लिये इन सब पर विचार करना होगा। उनके मतका आदर है और कुछ दिनोंतक उनके शब्दही भारत सरकारकी पशुपालन-नीति निर्धारण करते थे। सारे भारतमें साधारण तौरपर दूधकी उपज बढ़ानेके सिद्धान्तसे इसका व्यावहारिक संबंध बहुत है। दूधकी यह बढ़ती वाञ्छनीय और व्यावहारिक है।

**१०४. द्वि-प्रयोजन और साधारण उपयोगिता एक चीज है:** जो लोग किसी नसलकी उन्नतिका काम करते हैं इन्हें अपने ठड्डके लिये पौष्टिक युक्ताहार देनेका उपाय खोजना चाहिये। यह मामला तय हो जाय तो दूसरा काम गायकी सेवा करके उसका दूध बढ़ाना है। भारवाही ढोरोंकी प्रसिद्ध नसलोंकी प्रसिद्धि किसानको भूखा न मारे। इस नसलकी गायका दूध बढ़ानेकी भी कोशिश होनी चाहिये। गायोंके दूध बढ़ानेका अर्थ है बछड़ोंका उत्तमतर पोषण और स्वास्थ्य। इसके कारण एक ओर साँढ़ और बैल उत्तमतर होंगे और दूसरी ओर गायें। इससे किसानोंको चौमुखी लाभ होगा और उनकी भलाई सुनिश्चित हो जायगी।

**१०५. दूधके लिये द्वि-प्रयोजनकी जरूरत:** यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि भारतमें ढोर सबसे जादे हैं, पर प्रति मनुष्य सबसे कम दूध पैदा होता है। प्रति दिन प्रति मनुष्य लग भग ६ आउन्स दूधकी उत्पत्ति कूती गयी है। यह औसत सारे भारतका है। समुद्रके पूर्वी तट, मध्य भारत और उसके आसपासके इलाकोंमें सारे भारतकी औसत दूधकी खपतसे प्रति मनुष्य बहुत कम खपत है। और भी स्पष्ट कहें तो प्रति मनुष्य दूधकी प्राप्तिमें सिन्ध, पंजाब और युक्तप्रान्त अधिक भाग्यवान् हैं। बिहार उसके पीछे सटा हुआ चल रहा है। बंगाल, बंबई, उड़ीसा और आसाम प्रान्तोंमें दूधकी कमी है। इसका आँकड़ा नीचे लिखा है:

# आँकड़ा—६

## १०६. प्रान्तोंमें दूधकी खपतका आँकड़ा

| | | प्रति दिन प्रति मनुष्य दूध (आउन्समें) |
|---|---|---|
| सिंध | ... | २२·० |
| पंजाब | ... | १९·७ |
| युक्तप्रान्त | ... | ७·८ |
| बिहार | ... | ६·१ |
| मदरास | ... | ३·६ |
| हैदराबाद | ... | ३·६ |
| मैसूर | ... | ३·६ |
| बंबई | ... | ३·३ |
| बंगाल | ... | २·९ |
| उड़ीसा | ... | २·५ |
| मध्यप्रान्त | ... | १·८ |
| आसाम | ... | १·२ |

१०७. **आगेका काम :** अगर सभी प्रान्तोंमें पंजाब या सिंधकी तरह दूध उत्पत्ति और खपत करनी है तो उसके लिये कितना जादे काम करना होगा! और इसमें कोई संदेह नहीं कि संघटित राष्ट्रीय प्रयत्नसे दूधको उत्पत्ति जितनी होनी चाहिये उतनी बढ़ सकनेकी पूरी संभावना है।

जरूरतके चारेका प्रबंध हो सकता है। नसलें मौजूद ही हैं। बुरीसे बुरी अनुल्लेखनीय गायभी अच्छी सेवासे हर ब्यानमें पहले से बहुत जादा दूध देगी; और आजके गये बीते पशुके बदले "साधारण उपयोगिता" या "द्वि-प्रयोजन" प्रकारकी हो जायगी।

शाही कमीशन, सर आर्थर ऑलवर और सर नॉरमैन सी० राइटने प्रसिद्ध भारवाही प्रकारोंके लिये मोह दिखाया है, फिर भी यह देख आनन्द होता है कि ढोरोंके संवर्धनको नयी उत्तेजना देनेके आन्दोलनके फलस्वरूप अधिक दूधकी स्वाभाविक

तौरपर बात बन गयी है। लॉर्ड अर्सकाइन (Lord Erskine) खेती और पशु-पालन परिषदकी पशु-पालन शाखाके मद्रास अधिवेशन (दिसम्बर, १९३६) का उद्घाटन करते समय बोले :

"इसलिये खेतीकी जरूरतके साधारण काम करनेवाले ढोरका प्रबंध करते समय साथही साथ अधिक दूध उत्पादन करने और आज जिन अलाभकर ढोरोंको पाला जा रहा है उनकी संख्या घटाने की जरूरतकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। मद्रासमें अंगोल नसलका बहुत सुन्दर उदाहरण है। बथानमें आधा खिलाकर (और आधा चराकर) उचित प्रबन्ध और खिलाईसे ये जरूरतें बहुत हदतक पूरी हो सकती हैं। कंगायम् और अमृतमहाल जैसे मुख्य काम करनेवाले प्रकारके ढोरके संवर्धक पहले इनके संवर्धनमें लगभग कामकी सामर्थ्यपर ही कुल ध्यान देते थे और अब उनका दूध बढ़ानेकी ओर अधिक ध्यान देते हैं ; यह मजेदार बात है।"

हम देखते हैं कि प्रायः पवित्रसी अमृतमहाल गायका भी दूध बढ़ानेपर ध्यान दिया जाता है, और अज्जमपुर संवर्धन क्षेत्रमें ३४२ दिनोंमें उसके २,१०० रत्तलसे ऊपर दूध देनेका लेखा है। इसलिये हम अपनी यह राय कायम रखें कि, गलत नेतृत्व देनेपर भी गायकी पहलेसे अच्छी हिफाजतसे अधिक दूध उत्पत्तिकी बात स्वाभाविक तौरपर बन रही है। हम यह भी देखते हैं कि कंगायम् और काँकरेज जैसी आदर्श भारवाही नसलेंभी मद्रास और सूरतके सरकारी क्षेत्रोंमें ४,००० से ५,००० रत्तल तक दूध हर ब्यानमें दे रही हैं। भरोसेकी खास बात कप्तान मैक् गूकिनका (Captain Macguckin) नयी दिल्लीमें पशुपालन शाखाकी पहली मिटिंगमें (सन् १९३३) दिया बयान है। वह समझते हैं कि, "बचपनसे ही अच्छी तरह खिलाने और प्रबंध करनेसे ढोरकी दूधकी उत्पत्ति दूनीके लगभग हो सकती है।"

"द्वि-प्रयोजन" गायके विषयमें सर अर्थर ऑलवरके पहलेके लेखकी चर्चा हो चुकी है। पर अवसर ग्रहण करनेके पहले उन्होंने "एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया" (सितम्बर, १९३८) में "भारतमें पशुधनकी व्यवस्थापूर्ण उन्नति" शीर्षक लेख लिखा था। भारतमें अनुभव सिद्ध होनेपर उनके विचारमें पूरा परिवर्तन हुआ है, इस लेखसे इसका पता चलता है।

"मानी हुई काम करने वाली नसलमें संवर्धन द्वारा काफी दूध बढ़ानेका सिद्धान्त यह पद्धति प्रतिपादित करती है। अपने और भारतीय ढोरोंके अनुभवी संवर्धकोंके

अनुशीलनसे मुझे यह भरोसा है कि काम करनेवाले ढोरोंकी शक्तिको कुछ भी हानि पँहुचाये बिना जितने दूधकी जरूरत होगी उससे काफी जादे बढ़ाया जा सकता है।"

**१०८. सरकारी नीतिमें परिवर्तन : सात अंचलोंकी सिफारिशें :** लार्ड लिनलिथगोके आदेशसे भारत सरकारकी पशु संवर्धनकी भविष्य नीति निर्धारित करनेके लिये भारतके आदर्श संवर्धन-अंचलोंमें दूधकी उत्पत्ति और खपतकी हालत जाननेके लिये सन् १९३७ में जाँच की गयी थी। काउन्सिलकी पशु संवर्धनकी स्थायी समिति और परामर्श समितिने इस रिपोर्टपर विचार किया था। इस सरकारी संस्थाने और दूसरी सिफारिशोंके अलावा यह लिखा है : "संवर्धनकी नीति यह होनी चाहिये कि भारवाही नसलोंकी गायोंके दूध देनेकी सामर्थ्य इस तरह बढ़ायी और स्थिर रक्खी जाय कि उस प्रकारकी बिशेषता नष्ट न हो।"

और अगर भारतकी भारवाही नसलोंके शिरोमणि मैसूर प्रकारकी अमृतमहालसे एक ब्यानमें १,५०० रत्तल या उससे भी जादे लिया जा सकता है तो "द्वि-प्रयोजन" गायकी समस्या हल हो जाती है। फिर अबतो यह मानना होगा कि सरकार की नीति सारे भारतमें "द्वि-प्रयोजन" गायोंकी उत्पत्तिके पक्षमें है।

मालूम होता है कि शाही कमीशनने भारवाही गायका दूध बढ़ानेमें जो सरकारी रोक लगानेकी कोशिश की थी वह उठा ली गयी। इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चकी सन् १९४२ की रिपोर्टसे यह पता चला कि काउन्सिलने कंगायम् ढोरके दूधका विकाश करनेका भार लिया है।

होसूरके सरकारी क्षेत्रमें कंगायम् गायोंको अच्छा दूध हो रहा है। १०२ गायोंके ठट्ठमें ६१ के दूधकी औसत ४.८ रत्तल रही है। दो गायोंको ४,००० रत्तल ,चार गायोंको ३,००० रत्तल और ६ को २,५०० रत्तलके हिसाबसे दूध हुआ। (२२६, २४६, २५२)

# अध्याय ४

## गाय बनाम भैंस ❀

१०६. **शाही कमीशन और भैंस :** शाही कमीशनने "द्वि-प्रयोजन" गायोंके विकाश और उनके दूधकी उत्पत्ति बढ़ानेके प्रयासको दबाया है। क्योंकि कमीशनरोंने धारणा बना ली थी कि भैंस जादे दुधार होती है। पर आज हम जान गये हैं कि बात ऐसी नहीं है। इस खामख्यालीके कारण वह गायसे सिर्फ भारवहनका और दूधका काम भैंससे लेना चाहते थे। कमीशनने यह गलत राह दिखायी थी। यद्यपि भैंसका जादे दुधारपनका दावा गलत निकला फिरभी यह कुचक्र चलही रहा है, और सरकार अब भी भारतकी दूधकी जरूरत भैंससे पूरी करना चाहती है।

शाही कमीशनने कहा था :

"...इसलिये हमारी राय है कि भारवहन और दूध घी की उत्पत्तिमें एक समान उपयोगी द्वि-प्रयोजन ढोरका प्रबंध केवल उन्हीं जिलोंमें करना चाहिये जहां सफल दुग्ध उत्पादनकी बिक्री आजकलकी औसत बिक्रीसे अच्छी हो, और ऐसे जिलोंमें भी गायका दूध अधिक बढ़ाना कामका होगा या भैंसकी शरण ही लेनी होगी इसपर सदा सावधानीसे विचार करना चाहिये..."—(पृ०२२५)

इसके बाद कमीशनने इस मुद्देको विस्तारसे यों रक्खा है :

"...यह विचार प्रकट किया गया है कि भैंस गायकी प्रतिद्वन्दी है ; इसलिये पशु संवर्धकोंके लिये सबसे बढ़िया नीति यह होगी कि वे साधारण ढोर (गाय) की उन्नतिके लिये सारा प्रयत्नकरें, क्योंकि जब एकही जातिके पशु दूध और भारवहन दोनों काम दे सकें तब दो जातिके पशु पालना खर्चकी बरबादी होगी। हम पहले ही कह चुके हैं कि हमारी समझमें वह दिन दूर है जब गाय भैंसको बैठा दे। केवल ब्रिटिश भारतमें ही १ करोड़ ४० लाख भैंसें हैं। यह जरूरी है कि दुगुनी द्वि-प्रयोजन गायोंका प्रबंध हो तब कहीं भैंसोंको हटाया जा सकता है।

---

❀ इस अध्यायके पूरे विवरणके लिये अध्यायके शेषमें दिये गये पैरा नम्बरोंको देखिये।

इससे साफ है कि साधारण गाँव और गव्य व्यवसायवालोंके यहाँ दोनों जातियोंके पशुओंकी गुंजाइशका उपाय ढूढ़ना चाहिये। हमारा विचार है कि भैंसकी उन्नतिमें कमी नहीं होनी चाहिये…"—(पृ २२७)

**११०. दो जातिके ढोर पालना हानिकर है :** शाही कमीशनके सामने रक्खा गया तर्क "जब एकही जातिका पशु दूध और भारवहन दोनों काम दे सके तब दो जातिके पशु पालना खर्चकी बरबादी होगी" अकाट्य है। शाही कमीशनने इस तर्कको अपने ढंगसे तोड़ मरोड़ कर रखा है, जिससे कि वह अपना बहुत चाहा निष्कर्ष निकाल सकें। "साधारण ढोरकी उन्नतिके लिये सारा प्रयत्न करना" विचारणीय सिद्धान्त था। शाही कमीशनने इसे इस तरह तोड़ा कि इसका अर्थ हो "भैंसों को हटाना"। और फिर कमीशनने बताया कि यह हटाना संभव नहीं है इसलिये भैंसकी उन्नति पर ध्यान देना चाहिये।

यह तर्क अद्‌भुत है। कमीशनने दूसरे शब्दोंमें सिफारिश की है कि गायके नर और भैंसकी मादाका संवर्धन किया जाय। पर लोग पशु हत्या नहीं करेंगे इसलिये कमीशनने भैंसेको भूखसे "स्वाभाविक मौतसे मरना होगा" और अपनी प्रतिद्वन्दी भैंसके मुकाबिले गायकी बछियाको भूखकी पीड़ासे जीना होगा इस सिद्धान्तपर स्वीकृति दी है। कमीशनकी समझमें किसान भैंस पर जादे ध्यान देते और सेवा करते हैं।

**१११. गायकी उन्नतिपर ज़ोर :** पहलेही निकाले निष्कर्षके समर्थनमें यह सब संकीर्ण विचार है। अगर भारवहन और दूध इन दोनों कामके लिये एकही पशु पालनेमें किसानका आर्थिक हित हो तो भैंसको छोड़ गायके विकासपर जोर देनकी नीति होनी चाहिये। भैंसको हटानेका कोई सवाल नहीं। अगर दूध और भारवहनके द्वि-प्रयोजनके लिये किसी पशुपर भरोसा किया जा सकता है तो वह भैंस नहीं, गाय ही है। इसलिये आर्थिक दृष्टिसे भी गायका विकास दूध और भारवहन इन दोनों बातोंके लिये करना चाहिये। गायको उचित महत्व दिया जाय तो भैंसका आजका पद धीरे धीरे छूट जायगा। उसे लोग धीरे धीरे कम चाहने लगेंगे; और यह भी हो सकता है कि थोड़े दिनोंमें जिस जंगलसे वह आयी थी फिर वहीं लौट जाय। अब भी जंगलोंमें जंगली भैंसोंकी कमी नहीं है। दूसरे शब्दोंमें भैंस संवर्धनका काम रुक जायगा।

शाही कमीशनने लिखा है कि, भैंसमें उन्नति करनेकी कम सामर्थ्य है, फिरभी उसने गलत राह दिखायी है।

**११२. भैंस पर उन्नतिका असर कम होता है :** शाही कमीशनने लिखा है कि "कृषि विभागके थोड़े से अनुभवसे मालूम होता है कि गायकी अपेक्षा वरण-पद्धति (selective methods) का असर भैंसपर कम होता है।" सन् १९१३ से १९२५ के बीच इन दोनों पशुओंकी उन्नतिकी जो कोशिश हुई उसका इन पर क्या असर हुआ इसका आँकड़ा यहाँ लिखा जाता है।

**११३. सरकारी क्षेत्रोंमें गाय बनाम भैंसके दूधकी उत्पत्ति :** नीचे लिखा आँकड़ा सरकारी सामरिक क्षेत्रोंमें गाय और भैंसके दूधकी उत्पत्ति बताता है :

# आँकड़ा—७

## गाय और भैंसके दूध उत्पत्तिका तुलनात्मक आँकड़ा

| दूध देनेवाले पशु | गायें | | भैंसें | |
|---|---|---|---|---|
| | १९१२-१३ | १९२४-२५ | १९१२-१३ | १९२४-२५ |
| | संख्या | संख्या | संख्या | संख्या |
| १०,००० रत्तल और उससे जादे दूध | — | १ | — | — |
| ८,००० से १०,००० रत्तल | — | ३४ | १ | — |
| ६,००० से ८,००० रत्तल | ९ | ११६ | १२ | २५ |
| ४,००० से ६,००० रत्तल | ८४ | ४३८ | ११७ | ३५४ |
| २,००० से ४,००० रत्तल | ८३४ | ६८५ | ७७८ | ६०५ |
| २,००० से कम रत्तल | १,२५७ | २३३ | ८५९ | १२४ |
| | २,१८४ | १,५०७ | १,७६७ | १,१०८ |

२,००० रत्तलसे अधिक दूध देनेवाली गायोंकी संख्या १२ वर्षके थोड़े समयमें १.३ से बढ़कर २०.५ प्रतिशत हो गयी और भैंसोंकी संख्या १.६ से बढ़कर १०.८ प्रतिशत।

**११४. भैंसकी तुलनात्मक अयोग्यता :** इन आँकड़ोंसे यह बात तुरत मालूम हो जानी चाहिये कि वरण संवर्धनके मामलेमें इन दोनों पशुओंका परस्पर तुलनात्मक स्थान क्या है। शाही कमीशनने भैंसकी तुलनात्मक अयोग्यता पर ध्यान नहीं दिया और इन्हीं बातोंसे संतोष किया कि साधारण किसान अपना हित भी नहीं जानते तथा "अनेक जिलोंके किसान भैंस पालनेमें बहुत खुशीसे तत्पर रहते हैं।"

पर सरकारी विभाग क्या करे ? किसान नासमझ हैं इसलिये क्या वह उन्हें भैंस पालते रहने दे या किसानोंको उससे अच्छा उपाय बतावे और गायकी ओर जादा ध्यान देने कहे, क्योंकि गाय अधिक अनुकूल पशु है, इसलिये आर्थिक मामलोंमें वह भैंससे जरूर ही आगे बढ़ जायगी ?

बहुत दिनोंसे भ्रान्त मार्गदर्शन कराया गया है। इससे बड़ी हानि हुई है। डा० राइट जैसे स्वतंत्र और सूक्ष्म विवेचक भी भैंसके मामलेमें शाही कमीशनके ढर्रे पर ही चले हैं।

**११५. राइट और शाही कमीशन भैंसके बारेमें एक हैं :** उन्होंने (सन् १९३७में) लिखा है : "भैंस भारतकी प्रधान दुधार पशु है। इस बारेमें शाही कमीशनने उसके महत्वपर ठीक जोर दिया है। उन लोगोंने लिखा है 'किसी प्रान्तकी दूधकी उत्पत्तिकी सूची बनानेके लिये गायके बदले भैंसकी गिनतीका हिसाब करना होगा। ··· घीकी बड़ी मंडियोंमें भैंसका ही घी मुख्य रूपसे आता है···।' भैंसकी लोकप्रियताका कारण बताना सचमुच कठिन नहीं है। गाँवकी साधारण गायसे उसे खास तौर पर अधिक दूध होता है। उसके दूधमें गायके दूधसे मक्खन भी जादे होता है। साथ ही उसमें रूखे सूखे चारेसे दूध बनालेनेकी उल्लेखनीय योग्यता मालूम होती है। गाँवमें साधारण तौर पर जैसा घटिया चारा मिलता है और जैसी कठिनाइयोंमें ढोरोंका रहना पड़ता है उसमें भैंसकी सहन शक्ति किसानोंके लिये बहुत सुभीतेकी है।"—(पृ० ७१)

**११६. भैंसकी लोकप्रियताकी आँकड़ोंसे व्याख्या** "भैंसकी लोकप्रियता जनगणनाके आँकड़ोंमें दिखाई देती है।··· दिखाई देगा कि जहाँ गायकी गिनती मुश्किलसे बदली है वहाँ भैंसकी गिनती १२ सैकड़ा बढ़ गयी। गाय और भैंसकी गिनती बतानेवाला ३३ वें आँकड़ेसे भैंसका महत्व मालूम हो जायगा। इस आँकड़ेसे इन दोनोंका तुलनात्मक दूध उत्पादन और कुल दूधकी उत्पत्तिमें कौन कितना देती है यह मालूम होता है। गिनतीमें पंजाब छोड़ सब जगह भैंससे गाय जादे हैं। अपनी गिनतीकी कमी भैंस अधिक दूध देकर पूरा करती है इस कारण १० में से ५ प्रान्तोंमें कुल दूधका आधेसे अधिक भैंस ही देती है। यह बात महत्वकी है कि घीके उत्पत्तिवाले प्रधान अंचल इन्हीं प्रान्तोंमें हैं। ब्रिटिश भारतमें भैंसका दूध कुल दूधका ४७.५ सैकड़ा होता है और सम्पूर्ण भारतमें (यद्यपि हिसाब अधूरा है) उसका दूध लगभग ४५ सैकड़ा है।"—(पृ० ७१)

# आँकड़ा—८

## ११७. दूध देनेके मामलेमें गाय और भैंसका तुलनात्मक महत्व

| | दूध या संवर्धनके लिये पाली ३ वर्षसे अधिक उम्रकी | | ब्यानकी औसत उत्पत्ति | | दूधकी कुल उत्पत्ति हजार मन में | | भैंसके दूधका अनुपात |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | गाय | भैंस | गाय | भैंस | गाय | भैंस | |
| आसाम | १,३०५,१८८ | ११२,७८१ | १७० | ४३० | २,७७१ | ६२८ | १८·४ |
| बंगाल | ७,६७३,०६७ | २५६,६६९ | ४२० | ९६० | ४०,२८३ | ३,०८० | ७·६ |
| बिहार-उड़ीसा | ५,७९२,५२८ | १,६२५,७९२ | ४४० | १,७७० | ३१,९१३ | ३७,१६६ | ५३·९ |
| बंबई | १,७९६,८९६ | १,१५३,८६९ | ५०० | ८८५ | ११,१३५ | १२,०३५ | ५१·९ |
| मध्यप्रान्त | ३,२१६,८९३ | ८३०,०८४ | ५०० | ७०० | १९,७४५ | ७,२२२ | २६·८ |
| मद्रास | ४,२८०,६६१ | २,३९५,८७० | ४३० | ७७५ | २३,११२ | २३,१७५ | ५०·१ |
| सीमाप्रान्त | २०६,९९४ | १३७,६४८ | ८०० | १,२०० | २,०६९ | २,१६४ | ५१·२ |
| पंजाब | २,५४९,७७८ | २,८७३,६९२ | १,४०० | २,१६० | ४४,७४५ | ७८,०४० | ६३·६ |
| सिन्ध | ७६१,१०७ | ३३९,५७३ | १,००० | १,५०० | ९,५१३ | ६,३५० | ४०·० |
| युक्तप्रान्त | ५,७२६,२४९ | ४,०६०,८७७ | ८०० | १,००० | ५७,२६२ | ५०,७६० | ४६·९ |

**११८. भैंसकी हिफाजत जादे होती है :** "किसान अपनी भैंसको कितना महत्व देता है यह गाँवकी भैंसके खाये पीये चेहरे से भी मालूम होता है। गाँवमें भी गायकी अपेक्षा वह अत्यधिक दूध देती है। यह पूछा जा सकता है कि क्या आजकी खिलाई और प्रबंन्धमें दुधार गाय भैंसकी जगह ले सकती है। कहा जा चुका है कि 'जब चारा सस्ता रहेगा तब भैंस मक्खन पैदा करनेमें किसी नस्लसे मुकाबिला कर सकती है और भारतकी दूध और मक्खन दोनोंकी उत्पत्तिमें मामूली गायसे आगे बढ़ जा सकती है। गाँव वाले जादे कामका विचार किये बिना गायकी अपेक्षा भैंसही क्यों पसन्द करते हैं इसका मुख्य कारण यही है।' अगर अच्छे किस्मके चारेकी विस्तारसे खेती हो तो यही तर्क लागू होगा, इसमें सन्देह है। सामरिक गव्य क्षेत्रोंने देखा है कि अच्छी तरह खिलाने और रखनेसे मामूली साहीवाल गायेंभी भैंसके बराबर दूध देती हैं, और इसी नसूलकी अच्छी गायें तो इसका ड्योढ़ा देती हैं। दूसरी तरफ यहभी बता देना चाहिये कि भैंसका अधिक दूध देनेवाले प्रकारोंसे वरण और संवर्द्धन करके दूध बढ़ानेका कोई जोरदार प्रयत्न नहीं हुआ है। यह विषय विस्तारसे अध्ययन करने लायक है। इस बीच बहुत दिनोंतक भारतके प्रधान दुधार पशुकी प्रतियोगितामें भैंस गायसे आगे रहेगी यह निश्चित है।"—(पृ० ७१-'२)

**११९. अघायी भैंस और भूखी गायकी तुलना :** भैंसके संवर्धनको बढ़ावा देनेके लिये जो कहा जा सकता था कहा जा चुका। भैंसके महत्वपर लम्बे चौड़े विचारके विभिन्न मुद्दोंकी जाँच सावधानीसे करनी चाहिये। डा० राइट कहते हैं कि, किसान भैंसको कितना महत्व देता है यह उसके खाये पीये चेहरेसे ही झलकता है। भैंसकी हिफाजत गायसे अधिक होती है इस बातका यह लिखित प्रमाण है। भूखी और उपेक्षित तथा खायी पीयी और हिफाजतसे पाली भैंसका दूधकी उत्पत्तिमें मुकाबिला कैसे हो सकता है? अभीतक किसानने गायकी हिफाजत कम और भैंसकी जादे की है। अब शास्त्रीय संवर्धक बताते हैं कि भैंसकी अपेक्षा गायकी उन्नति अधिक हो सकती है।

**१२०. गायको ही दुधार पशु होना चाहिये :** किसानको बताना चाहिये कि भैंसकी तरह गायकी सेवा करनेसे उतनाही दूध मिलेगा जितना भैंससे और इससे भी बड़ा लाभ उसके बछड़े से होगा, पर भैंसा तो उसके लिये फालतू ही होगा। यह सही राह बताना है। किसानोंके अज्ञान या केवल तत्परताका

आधार लेना और भविष्यकी अच्छी हालतोंसे उसे वंचित रखना उचित नहीं। आज कहा जाता है कि देशमें दूधकी आधी उत्पत्ति भैंससे होती है। लेकिन हम कल क्या चाहते हैं? अगर यह गलत और अनर्थकरी नीति है तो हमें उससे अच्छी नीति सोचनी और किसानको बतानी चाहिये।

अपनी जाँच पूरी कर २५ मार्च सन् १९३७ में डा० राइट बंबईसे रवाना हो गये। जुलाई १९६७ के "एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया" में कर्नल सर अर्थर ऑलवरका "भारतमें पशुधनकी उन्नति" शीर्षक लेख निकला जिसमें उन्होंने साफ तौर पर बतला दिया है कि भैंसके दूधमें पानी मिलाकर उसे गायके दूधके समान हलका बनाने की रीति बुरी है।

"...जहाँ मोटे चारेका बाहुल्य है और घीकी उत्पत्ति ही मुख्य उद्देश्य है या अविचारी और अनियंत्रित फेरीवाले सिर्फ बेचनेके लियेही दूध पैदा करते हैं वहाँ आज आम तौर पर भैंस ही पसन्द की जाती है। पर खोजने पर यह साबित हुआ है कि, यदि उचित खिलाई और हिफाजत हो तो कई भारतीय नसलोंकी शुद्ध गायें इतनी उन्नति कर सकती हैं कि दूध और मक्खन की उत्पत्तिमें वह भैंसका मुकाबिला करें। भैंसके मुकाबिले अच्छे काम करनेवाले पशु और साथ ही दूधभी गाय पैदा कर सकती है। यह महत्वकी बात है कि गायके दूधके बराबर ही मक्खन रहे इतना पानी मिलाये हुए भैंसके दूधसे गायका दूध बच्चोंके लिये अधिक अच्छा आहार है। इसलिये साधारण उपयोगिताकी पशु भैंसके मुकाबिले गाय जादा है। इस विचारसे, क्या भैंसकी तरह गायका संवर्धन नहीं होना चाहिये और उसे अच्छी तरह खिलाना तथा पालना चाहिये, इस सवालका सावधानीसे अनुशीलन करना होगा।"

अविचारी और अनियंत्रित फेरीवालोंको यदि भैंसके दूधको गायका कहकर बेचना होता है और इसके लिये उसमें इतना पानी मिलाया जाता है कि उसमें गायके दूधके बराबर मक्खन रहे तो भैंसको गायसे श्रेष्ठ दुधार पशु नहीं माना जा सकता। यह कोई श्रेष्ठता नहीं है।

**१२१. दूधके गुणके बारेमें भूलसे भरे हुए विचारको ऑलवर साफ करते हैं:** सर अर्थर ऑलवर अपने लेख "द्वि-प्रयोजन पशुकी अयुक्तता" में ("एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया," जुलाई, १९३६) में लिखते हैं:

"यह सही है कि भारतके बहुतसे भागोंमें भैंस दुधार पशु है, पर अधिकतर यह इसलिये होता है कि दूध बेचनेवालोंको भैंसके दूधमें पानी मिलानेमें आसानी है। लोगोंको इसका पता नहीं लग सकता। और शहरके वास्ते दूध पैदा करनेके लिये जिस अनुपयुक्त हालतमें भैंस रह सकती है गाय उसमें नहीं रह सकती। दूधके बिभिन्न उपादानोंके आहार-गुणके बारेमें दूध पीनेवाली जनताकी धारणा भ्रान्त है। इसलिये जिसमें मक्खन अधिक हो ऐसे तथाकथित गुणयुक्त दूधकी उसकी माँग रहती है। दूधमें मनुष्यको पुष्ट करनेवाले वास्तवमें अधिक मूल्यवाले तत्व प्रोटीनों (proteins) और खनिज नमकों (mineral salts) की ओर वह ध्यान नहीं देती। जिस दूधमें ३·६ सैकड़ा मक्खन हो, गायके ऐसे आदर्श दूधका आहार-गुण वास्तवमें उतनी ही मात्राके दुग्धसार (cream) से अधिक है। यदि खनिज नमकों और प्रोटीनोंपर मक्खनसे अधिक ध्यान दिया जाय तो यह बात भारतीयोंके लिये बहुत फायदे की होगी। ये तत्व पूर्ण-दूध (जिसमेंसे मक्खन नहीं निकाला गया है) में रहते हैं और दुधी या मक्खन निकाले दूधमें भी बहुत रह जाते हैं। ऐसा भोजन जिसमें अधिकतर स्टार्च (starch-श्वेतसार) तथा चीनी रहती है और जो अनेक भारतीयोंका आहार है, उसमें मक्खनकी बहुत जरूरत नहीं।"

इसलिये यह स्पष्ट है कि भैंसकी श्रेष्ठता जिस तराजूपर तौली गयी है उसमें पसँगा लगा है। उसके दूधको गायका दूध कहकर बेचनेवाले धोखेवाज व्यवसायियोंकी सहायताके बिना, प्रोटीन और खनिज नमकोंको कोई महत्व नहीं देनेवाले अज्ञानकी सहायता बिना और पाड़ेको भूखों मारकर अधिक दूध दुह लेनेकी निठुरताकी सहायताके बिना सिर्फ अपने बलपर भैंस गायके मुकाबिले समान हालतोंमें नहीं ठहर सकती। इसके सिवा यह सिद्ध हो चुका है कि संवर्धन द्वारा उन्नति करनेमें भैंस गायसे पिछड़ जाती है।

**१२२. गाय और भैंसके दूध और मक्खनका दाम :** सस्तेपन और दूसरी बातोंके लिये दूध बिक्रीकी सन् १९४० की रिपोर्ट से नीचे लिखा आँकड़ा दिया जाता है।

# आँकड़ा—६

## कुछ सरकारी क्षेत्रोंमें दूध उत्पत्तिका खर्च

| | सिन्धी गायें | साधारण साहीवाल गायें | फिरोजपुर साहीवाल गायें | दोगली गायें | मुर्रा-भैंस |
|---|---|---|---|---|---|
| **(क) प्रति रत्तल दूधका खर्च** | पाई | पाई | पाई | पाई | पाई |
| दूधके दिनोंमें चारेका खर्च | ४.४८ | ४.४५ | ३.८८ | ३.५५ | ५.६८ |
| विसुके दिनोंमें चारेका खर्च | १.४२ | १.६१ | १.०१ | ०.६९ | १.९५ |
| पशुके मूल्यकी कमी | २.०१ | १.८३ | १.३३ | १.४२ | २.२० |
| मजदूरी (देखभालका खर्च छोड़कर) | १.५१ | १.२९ | ०.९४ | ०.८३ | १.२९ |
| कुल | ९.४२ | ९.१८ | ७.१६ | ६.४९ | ११.१२ |
| **(ख) प्रति रत्तल मक्खनका खर्च :** (आना पाईमें) | १५-८.४ | १५-२.६ | १२-११.६ | १३-६.२ | १३-३.१ |
| अध्ययन किये जानेवाले पशुओं की संख्या | ८४ | १७९ | ५१ | २१३ | २९४ |
| एक ब्यानमें औसत दूध (रत्तलमें) | ३,०५० | ३,८०० | ६,००० | ६,००० | ३,१०० |

यह देखा जा सकता है कि जहाँ फिरोजपुर साहीवालका दूध ७.१६ पाई प्रति रत्तल है वहाँ भैंसका दूध प्रति रत्तल ११.१२ पाई है। उसी तरह फिरोजपुर साहीवालका मक्खन १२ आना ११.६ पाई है और भैंसका १३ आना ३.१ पाई। दोनों तरहसे फिरोजपुर साहीवालकी उत्पत्ति भैंसकी उत्पत्तिसे सस्ती है। इस बारेमें सर अर्थर ऑलवरने देखा है कि :

"यह बता देना चाहिये कि इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चके रुपयेसे सरकारी सामरिक गव्य क्षेत्रमें शाही गव्य निपुण की देखभालमें हुई खोजके आधार पर यह टिप्पणी लिखी गयी है। सिन्धी और मामूली साहीवाल वैसे भारतीय

ढोर हैं जिनका काफी दिनोंतक कायदेसे संवर्धन नहीं हुआ था। फिरोजपुरका यह ढोर खास तौर पर तैयार किया गया है और २० वर्षसे जादेसे उसका वरण और संवर्धन तरीकेसे हो रहा है। भैंसें मुर्रा नसूलकी हैं।"

फिरोजपुर साहीवाल नसूलकी दूध और मक्खन पैदा करनेकी आर्थिक योग्यता इस आंकड़ेसे प्रत्यक्ष है। यह आँकड़ा सन् १९३२ में जब खोज हुई थी तब का है। तबसे साहीवाल और दूसरी नसूलोंका दूध बहुत बढ़ा है। दूसरे क्षेत्रोंमें ज्वलन्त उदाहरण मिले हैं। जैसे कि पूसाके इम्पीरियल एग्रीकलचरल इन्स्टिट्यूट और लायलपुरके कृषि-कालेजकी गव्यशालामें जहाँ तरीकेसे साहीवालका संवर्धन शुरू किया गया है।

जब गाय बनाम भैंसका सवाल अच्छी तरह विचारा जायगा तब यह बात देखनेमें आवेगी कि, गाय पर ही केन्द्रित होना नैतिक और आर्थिक दृष्टिसे सही है। जब तक गाय भैंसको स्वाभाविक ढंगसे हटा नहीं देती तब तक भैंस रहे।

**१२३. भैंससे स्त्रियोंको निजी आमदनी होती है :** मदरासके डिप्टी डाइरेक्टर ऑफ एग्रीकलचर, लाइभ-स्टॉक, कप्तान आर० डबल्यू. लिटिलउडकी लिखी और मदरास सरकार द्वारा प्रकाशित "दक्खिन भारतका पशुधन" (Live-stock of Southern India) (सन् १९३६) के कुछ वाक्यसे मालूम होता है कि बहुतसी जगहों में किसानके सच्चे हितके विरुद्ध भी भैंसें पाली जाती हैं। अंगोल नसूलका गोचर और चारेकी कमीसे जो ह्रास आजकल हो रहा है उसके बारेमें लेखक कहते हैं :

अंगोल गाय "…तीसरे वर्षके बदले साधारण तौरपर ४थे से ५वें वर्षमें पहली बार फलती है (गाभिन होती है) और इसके बाद करीब हर दो वर्ष पर ब्याया करती है। वह २५० दिनके ब्यानसे करीब ७ से ८ रत्तल दूध दिया करती है और आम तौर पर ४।५ ब्यानके बाद ठाँठ हो जाती है। यह सब अधिक तो चारेकी कमीसे होता है। इस दोषको रैयत जानते हैं और कहते हैं कि गायको लाचारीसे वह नहीं खिला सकते। तोभी भैंसको वह अच्छी तरह खिलाते हैं। घरकी औरतें भैंसकी सँभाल करती हैं और उसका घी और दही बेचकर थोड़ी सी आमदनी कर लेती हैं। जो चारा भैंस खा जाती है अगर रैयत उसे गायको खिलावे तो भैंस अनावश्यक हो जाती है। इससे गायकी हालत सुधर जायगी, वह नियमित रूपसे ब्यायेगी और बछुतोंका दूध बढ़ जायगा। रैयतके घरू कामके लिये और बछरूके लिये भी गाय काफी दूध देगी।"—(पृ० ३०)

**१२४. गाय बनाम भैंसपर गान्धीजी :** गान्धीजीने सन् १९४० के ३० सितम्बरको वर्धामें अखिल भारत गो-सेवा-संघकी स्थापना की। उसके मुख्य उद्देश्योंमें भैंसके बदले गोपालन बढ़ाना भी है। उद्घाटन भाषणमें गान्धीजीने कहा था :

"हमारी एक कमज़ोरी है। एक तरहसे यह मनुष्योंकी साधारण बात है। भारतीय स्वभावकी यह विशेषता है कि हमलोग जो चीज आसान होती है उसे तुरत ग्रहण कर लेते हैं, जिसमें कठिनाई होती है उसे छोड़ देते हैं। खादी, ग्रामोद्योग और सभी जगह लोग आसानी, सस्तापन और सुभीता खोजते हैं! लोगोंको भैंसका दूध अच्छा लगता है क्योंकि वह मीठा और सस्ता होता है।"

"वैदिक कालसे ही हमलोग भैंसकी नहीं, गायकी स्तुति गाते आ रहे हैं। अगर गायको यह पद नहीं दिया गया होता तो वह और उसके साथ भैंस भी बहुत दिन पहले विलुप्त हो गयी होती। मैंने भारतके दोनों पशुओंके तुलनात्मक आँकड़े देखे हैं। दोनों ही संख्यामें बहुत जादे हैं, पर उन्नति किसीकी नहीं हो रही है। ग्वाले गाय और भैंसको जब तक उनसे आमदनी होती है तभी तक रखते हैं। जैसे ही आमदनी बन्द होती है वैसे ही उन्हें कसाईके हाथ बेच देते हैं। उनकी जान बचानेके लिये उपकारी लोग उन्हें खरीद लेते हैं। पर इस तरह मिले रुपयोंसे कसाई दूसरी गाय भैंस खरीदते हैं। इस तरह कुछ गायें बचाई जा सकती हैं, पर गो सन्तानकी हानि होती ही रहती है। इसलिये सही उपाय यह है कि जो गाय बिक गयी उसे भुल जांय और अपने रुपये गायकी नसल सुधारने, उसकी कीमत बढ़ाने और गोपालकोंको उनका कर्त्तव्य सिखानेमें लगावें।"

**१२५. गायकी रक्षासे भैंसकी रक्षा हो जाती है :** "इस बातसे कोई डरे नहीं कि जब सबलोग भैंसका घी दूध छोड़ देंगे तो वह नष्ट हो जायगी। मैंने पहले कहा है कि यह शायद ही हो सकता है। पर यदि यह संभव भी हो तो इससे कोई हानि नहीं। भैंसें पालतू पशु न रह जंगली हो जायेंगी। असल बात यह है कि यदि कोई पशु ऐसा है जो जीवित रह सके तो वह केवल गाय ही है। गायके साथ भैंस अपने आप बच जायगी, क्योंकि दोनोंका दूध हमारे कामका है। पर यदि लोग इसी तरह विना विचारे शास्त्रीय विधिके बिलकुल विपरीत जैसे अबतक करते आये हैं उसी तरह करते जायेंगे तो गाय और भैंसभी उसी तरह नष्ट हो जायगी जैसे हमारे देशकी और भी अनेक चीजें नष्ट हो गयी

हैं। हमारा अज्ञान इस दिशाके लिये सबसे बड़ा कारण है। गो-पालन शास्त्रका बुद्धिपूर्वक अध्ययन करके ही हम पशुओंके प्रति अपना कर्तव्य जान और पाल सकते हैं। गायकी रक्षा करके हम सभी जीवित प्राणियोंके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। पर गो-सेवा को तमाशा बनाकर हमने अपना सच्चा धर्म भुला दिया है।"

"भारतके पास दुनियाँके ढोरोंकी चौथाई है। पर भारतके ढोरोंकी हालत यहाँके नर नारियोंसे भी गयी बीती है।

"गो-सेवक गायका ही दूध और उसीसे बनी चीजें ही खावे। वह बकरीका दूध नहीं पीवे। मैं उसे मजबूरीके कारण पीता हूँ। पर गो-सेवा-संघके सदस्यको सिर्फ गायका ही दूध और उसीसे बनी चीजें खानी चाहिये और मरी गाय भैंसके चमड़ेकाही उपयोग करना चाहिये। मारी हुईका नहीं।"

१२६. **भैंसका दूध घटिया है :** हालकी खोजों से पता चला है कि आहारकी दृष्टिसे भैंसके दूधके घटियापनकी गायके दूधसे तुलना नहीं हो सकती। मक्खनका आहारगुण उसके विटामिन 'ए' (A) के कारण है। गायके मक्खनमें विटामिन 'ए' भैंसके मक्खनसे १० गुण जादे है। इसके बारेमें ५२० पैरामें अधिक विस्तारसे लिखा गया है। गाय और भैंसके तुलनात्मक गुणोंका विवेचन पैरा १३३, २७५-'७८, ३३५, ३३८-'३६, ३७२ में भी किया गया है।

१२७. **ब्रिटिश भारतमें गाय, भैंस और मनुष्योंकी आबादीकी सघनता :**

## आँकड़ा—१०

### गाय, भैंस और मनुष्योंकी संख्या

| | | प्रति वर्ग मील | | |
|---|---|---|---|---|
| प्रान्त | | गायोंकी संख्या | भैंसोंकी संख्या | मनुष्योंकी संख्या |
| युक्तप्रान्त | ... | ६०·१ | ४२·६ | ५०८·२ |
| पंजाब | ... | २६·३ | २९·७ | २४३·७ |
| बिहार-उड़ीसा | ... | ५९·९ | १८·७ | ४५३·६ |

| प्रान्त | | प्रति वर्ग मील गायोंकी संख्या | भैंसोंकी संख्या | मनुष्योंकी संख्या |
|---|---|---|---|---|
| मद्रास | ... | ३०·० | १६·८ | ३२८·५ |
| बंबई | ... | २३·२ | १४·९ | २३२·९ |
| सीमाप्रान्त | ... | १५·३ | १०·१ | १७९·३ |
| मध्यप्रान्त-बरार | ... | ३२·१ | ८·३ | १५५·२ |
| सिंध | | १६·४ | ७·३ | ८३·८ |
| बंगाल | | ९१·५ | ३·४ | ६४६·४ |
| आसाम | ... | २३·७ | २·० | १५६·७ |

—(२६१-'६२, २७४-'७६, ३०३, ३०६-'११, ३१५-'१७, ३४६, ३७६-'७६, ५१६-'२४, १०६०, ११३६)

# अध्याय ६

## संवर्धन और प्रजनन-शास्त्र

**१२८. ढोर-संवर्धनकी समस्या :** शाही कमीशन और खासकर लार्ड लिनलिथगोके वायसराय होनेके बाद ढोर-संवर्धनको सरकारी महत्व बहुत दिया गया। स्थानीय नस्लोंको ठीक करनेके लिये विभिन्न प्रान्तोंमें साँढ़ देनेकी योजना वायसरायने चालू की।

अलग अलग प्रान्तोंके प्रान्तीय कृषि और पशु-चिकित्सा विभागोंने हर दृष्टिसे ढोरोंकी उन्नतिकी समस्याका समाधान करनेके लिये अनेक जाँचकी, जैसे कि :

(१) चारेकी फसलका प्रबंध और चराई;

(२) छूत और दूसरी फैलनेवाली बीमारियोंका निवारण;

(३) अच्छे साँढ़ोंका प्रबंध ;

(४) चुने हुए इलाकोंसे हीन और अवाञ्छनीय साँढ़ोंका उन्मूलन ;

(५) ऊपरकी बातोंके बारेमें शिक्षात्मक प्रचार;

(६) रोग-निवारण तथा घास और चारोंके पौष्टिक तत्व और उनके खनिज द्रव्योंकी खोजके लिये गवेषणा करना ;

(७) ठट्ठबही और दूधबहीके रूपमें प्रामाणिक लेखा रखना ;

(८) गाँवोंके लिये पशुचिकित्साके कर्मचारी बढ़ाना और पशुपालकोंका प्रबंध करना ;

(९) नस्लके लक्षणोंका स्थिरी-करण, आदि ।

**१२६. ढोरोंके प्रेमी—सर अर्थर ऑलवर :** शाही कमीशनके बाद बहुमुखी उत्तेजना मिली। इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चकी स्थापनाही ढोर संवर्धनकी बहुतसी समस्याओं और आवश्यकताओंके लिये उपाय-स्वरूप थी। पशु-पालन-निपुणके पद पर सन् १९३०में सर अर्थर ऑलवरकी नियुक्ति महत्वकी घटना है। शाही सामरिक पशु-चिकित्सा दल (Royal Army Veterinary Corps) में सर अर्थरकी बहु-ख्यात और बहु-मुखी कर्म-प्रवृत्ति थी। दक्खिन अफ्रिकामें सर आरनोल्ड थीलर (Sir Arnold Theiler) के नीचे उन्होंने काम किया था। मिश्रकी सेनामें भी यह मुख्य पशु-चिकित्सा अफसरके रूपमें थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें भी उन्होंने नौकरी की थी। इस तरह उनको तरह तरह का अनुभव था। खासकर मिश्र, अफ्रिका और मध्य अमेरिका के गरम देशवाले ढोरोंका उनका अनुभव था। सिर्फ ८ वर्ष भारतमें नौकरी करनेके बाद उन्होंने सन् १९३८ में अवकाश ग्रहण किया। इन आठ वर्षोंमें उन्होंने भारतके ढोरोंकी उन्नति के लिये बहुत कुछ किया। वह सफल व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उन्होंने अपने लक्ष्यको कभी आँखसे नहीं हटाया। उनका विश्वास था कि, भारतके ढोरमें सर्वोत्तम प्रकारके दुधार और भारवाही पशु हैं। भारतीय किसानोंकी निन्दा, उनकी गरीबी, अज्ञान, नये काममें उत्साहकी कमी, शंकाशीलता, अन्ध विश्वास आदि बातें अनेक देशी और युरोपीय पशु-वैद्योंकी चर्चाके विषय रहे हैं। पर सर अर्थर इस प्रकारके नहीं थे। इस समस्याका अध्ययन उन्होंने पूर्वकल्पित धारणासे रहित शास्त्रीय बुद्धिसे किया। उनका कहना था कि पशु-पालन-कानून बनानेमें इंग्लैन्ड भी पिछड़ा

रहा है। उनका तर्क था कि ढोरकी उन्नतिमें इंगलैन्डके पढ़े लिखे धनी जमीन्दारोंने २०० वर्षोंमें जो किया, हॉलैन्डकी उदार सरकारने १०० वर्षमें जो किया और अमेरिकाके राज्य अपनी सारी निपुणता और धन लगाकर जो कर रहे हैं; वह भारतमें व्यवस्थित प्रयत्नके बिना नहीं हो सकता। भारतके ढोरोंकी उन्नतिके लिये केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंके सम्मिलित प्रयत्न और सहायताकी जरूरत है। वह अपना काम समझते थे, और शास्त्रीय व्यावहारिक व्यक्तिको जैसा चाहिये वह निश्चित बातें कह सकते थे, जिनके पूरी होनेसे किसानके पशु-धनकी उन्नति होना ध्रुव था। भारतीय चरित्रकी योंही निन्दा करनेमें ऐसे व्यक्तिको कभी खुशी नहीं हो सकती। भारतीय किसानोंको जिन दारुण कठिनाइयोंमें काम करना होता है उसे वह जानते थे। इसलिये उन्होंने पशुधनकी हालत सुधारनेमें उनकी राह सुगम करनेके लिये सरकार पर दबाव डाला।

इज्जतनगरके भेटरनरी इन्सटिट्यूटमें पौष्टिक आहार गवेषणा विभाग खोलनेके लिये सरकारको वह राजी कर सके। उन्होंने प्रान्तोंमें रोगोंका पता लगाने वाले अफसरोंकी नियुक्ति करवायी। यह लोग केन्द्रके सम्पर्कसे प्रान्तोंमें रोग नियंत्रण करनेका बहुत उपयोगी काम कर सकते हैं।

पशुचिकित्सा विभागकी और अधिक आर्थिक सहायताके लिये उन्होंने जी तोड़ कोशिश की। उन्होंने बताया कि, कृषि-विभाग-कोषसे इस विभागको अनुपातसे कम हिस्सा मिलता है। पशुचिकित्सा विभाग इसी विभागका एक अंग है। पशुओंके सच्चे हितरक्षकको जैसा चाहिये वह अपने साथियोंसे लड़े कि फसल और पशुधन, कृषिकी इन दोनों भुजाओंके लिये, अनुपातके अनुकूलही खर्च दिया जाय। पशुपालनके लिये उचित धन देनेकी माँगसे उनके साथी प्रायः अप्रसन्न रहते थे। जब तक वह भारतमें पशुपालन कार्यके अध्यक्ष रहे साथियोंके इस रुखका विरोधही करते रहे। दिल्लीकी ढोर-प्रदर्शनी उन्होंने चलवायी और उसे सफल भी किया। मौलिक खोजके बाद उन्होंने अनेक भारतीय नसलोंके नसल-लक्षण स्थिर किये। सर अर्थर ऑलवरके संक्षिप्त पर उज्ज्वल कार्यकालके दिखाई देनेवाले कुछ मुद्दे ये हैं। पर "एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक" के सम्पादकके शब्दोंमें "उनके आठ वर्षके कामके अदृश्य परिणाम अधिक महत्वपूर्ण हैं।"

**१३०. ढोरकी समस्या महत्वकी हो जाती है:** यद्यपि ढोर संवर्धनका शास्त्रीय कार्य सरकारने हालहीसे हाथमें लिया है फिरभी वह बहुत तेजीसे बढ़

रहा है। पहले भिन्न भिन्न सामरिक गव्य क्षेत्रों या संस्थाओंमें अलग अलग गवेषणायें होती थीं। इतना भर ही ढोर-उन्नतिका काम होता था। कोई व्यापक नीति नहीं थी। इससे सारा काम गड़बड़ाता था। व्यवस्थित कामने ढोर-संवर्धन व्यवसायकी वास्तविक आवश्यकताकी ओर ध्यान खींचा है। सर अर्थरके उद्योगने भारतकी ढोर-स्थिति और शास्त्रीय ढोर-संवर्धनके सवाल पर बहुत प्रकाश डाला है।

यूरोपीय साँढोंके संकरसे उन्नति करनेका भ्रान्त विश्वास यद्यपि तोड़ दिया गया है फिर भी अब तक मिटा नहीं है। इसे गायके प्रजननशास्त्रकी बहुत बड़ी समस्याकी ओर ले जानेवाला मानना होगा। ब्रिटिश गायोंमें कुछ बहुत दुधार हैं। ब्रिटेनसे साँढ मँगाकर भारतीय गायको उन्नति करनेका प्रयास बहुत सरल काम था। (३५)

**१३१. संकर संवर्धनके प्रयोग :** भारतके जेबू रक्तमें यूरोपीय रक्तके मिश्रणका यह सद्यः फल दिखाई पड़ा कि, संकरकी पहली पीढ़ीमें दूध बढ़ा। पर इस तरहके दोगली नसलके ढोरका ह्रास वेगसे होने लगा। दूध उत्पत्तिमें ह्रासके अलावे दोगलेमें माता (Rinderpest) जैसी बीमारी होनेकी आशंका बढ़ गयी। ब्रिटेनसे आयी गायों और साँढ़ोंको गरम देशोंकी छुतही बीमारी सहजही हो जाती है और वह मर जाते हैं। बहुत दूध उत्पत्ति चाहनेवालेको पहला संकर लाभकर हो सकता है। दूधकी उत्पत्तिके लिये ही भारतीय रक्तमें युरोपीय रक्तका मिश्रण किया जाता था और खासकर सरकारी सामरिक गव्य क्षेत्रोंमें अबभी किया जाता है। पर इससे बहुत बुराई होती है। क्योंकि मिश्र रक्तके संकर पीछे जाकर पहले से ही छीन भारतीय ढोरके लिये और बाधक हो जाते हैं।

गरम देशोंमें दूधकी उत्पत्तिपर एक लेखमें श्री जे० एडवर्ड्स (Mr. J. Edwards) लिखते हैं :

"साधारण संवर्धन नीतिमें गरम देशोंमें यूरपकी नसलें संतोषप्रद नहीं, असफल रहीं। लाये हुए पशुकी पहली पीढ़ी संतोषप्रद भलेही हो पर उसके बादकी पीढ़ियाँ साधारण रूपसे गरम देशकी आबहवामें पनपने लायक नहीं रहतीं।" (३५, १६८-'६६)

**१३२. यूरपकी नसल—गरम देशोंमें असफल :** "भारत जैसे गरम देशोंमें मामूली खिलाई और हिफाजतकी हालतमें दुधार गायके प्रबंधकी समस्याका

हल देशी ढोरकी उन्नति करनेमें है। यह सही है कि भारतके ढोर भिन्न मूलके हैं और उनकी उन्नतिमें समय बहुत लगेगा। पर उन्नत प्रकार बनानेमें सदा समय लगता है। उदाहरणके लिये यूरपको नसलोंको आजके मानमें दूध देनेमें २०० वर्ष लगे।"—("एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया" जनवरी, १९३५, पृ० ६४) (३५)

१३३. **विदेशी नसलें निष्प्रयोजन हैं :** सर अर्थर ऑलवरने अवकाश ग्रहणके पहले "भारतमें पशुधनकी व्यवस्थित उन्नति" नामका लेख लिखा। इस विषयके बारेमें "विदेशी नसलें निष्प्रयोजन हैं" शीर्षक में उन्होंने निम्न प्रकार लिखा :

"भारतमें पशुधन और खासकर ढोरकी उन्नति सचमुच सामाजिक और आर्थिक महत्वका जरूरी विषय है। इस बातपर जोर देना जरूरी है कि यह बात यथेष्ठ सिद्ध की जा चुकी है कि भारतमें यूरोपीय नसलोंके ढोर मिलानेके प्रयासकी साधारण नीति अनावश्यक और हानिकर है। इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चके एनिमल हसबैंड्री बूरोने व्यवस्थित खोज की है और सिद्ध किया है कि सावधानीसे वरण, उचित खिलाई और हिफाजत करनेसे दूध और मक्खनमें भारतीय दुधार गायोंके शुद्ध ठट्ठ २५ वर्षके भीतरही यूरपकी गाय और अच्छी से अच्छी भारतीय भैंसोंकी बराबरी कर सकते हैं और बढ़ भी सकते हैं। (करथा, १९३४)। यूरप और अमेरिकाके व्यापारिक दुधार ठट्ठसे औसत दूध उत्पत्तिमें वह अभी ही बढ़ी है और इसके लिये सभी प्रमाण हैं कि वर्षोंतक उनकी बराबर ऐसी ही प्रगति रहेगी। यह दिखाया जा चुका है कि अच्छी हिफाजत और स्थितिमें भी यूरपके ढोर भारतमें बिगड़ जाते हैं।

"यह भी नहीं भूलना चाहिये कि यदि बाहरसे ढोर लानेकी नीति ग्रहण की गयी तो हर साल बहुत बड़ी संख्यामें कुलीन (वंशावलीवाले = pedigree) साँढोंको विदेशोंसे अत्यधिक दाम देकर लाना होगा। और यह व्यय साधारण तौर पर असंभव होगा। निपुण व्यक्ति के द्वारा खूब सावधानीसे संवर्धन नियंत्रित न हो तो विदेशी साँढका उपयोग भयंकरभी है। वास्तवमें इस अशास्त्रीय समागमसे बेहिसाब हानि हो चुकी है और शुद्ध रक्तके अनमोल भारतीय ढोरोंके ठट्ठ नष्ट होगये हैं।" (एग्रीकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इन्डिया" सितम्बर, १९३८) (३५)

**१३४. विदेशी संकर संतान पैदा नहीं करें:** सन् १९२० से १९३० तक के दशक मेंही विदेशी साँढ़का आयात बहुत हुआ। पंजाब उत्तर-पच्छिम सीमा प्रान्त और बलूचिस्तान इस उत्तरी मंडलके सरकारी सामरिक गव्य क्षेत्रोंमें संकर संवर्धनके प्रयोग विस्तारसे किये गये। सभी विदेशी साँढ़ फ्रीसियन (Friesian) नसलके थे। पशुपालन पक्षकी पहली बैठकमें इन दोगलोंकी उपादेयता पर विचार हुआ था। सर्वश्री कर (बंगाल), दातार सिंह (पंजाब), ब्रूएन (बंबई) और दूसरोंका मत था कि दोगली अनचाही गायोंने देशी नस्लोंको बिगाड़ा। एक प्रस्तावमें फौजवालोंसे आग्रह किया गया है कि वह अपने दोगले पशुओंको बाँझ (बंध्या) किये बिना किसीको न दें।

तबसे यह मत निश्चित है कि दोगले बछड़े तो भारवाही प्रयोजनके लिये एकदम अनुपयुक्त हैं, इसलिये किसानके किसी कामके नहीं। यद्यपि बिदेशी साँढ़से उत्पन्न दोगली गायें पहली पीढ़ीमें अधिक दूध देती हैं पर जल्दी बिगड़ जाती हैं। (३५)

**१३५. संवर्धनके लिये प्रजनन शास्त्रका ज्ञान चाहिये:** अनाड़ी आदमीके लिये अच्छी नसलके पशुसे संकर करनेसे बढ़कर दूसरा सरल उपाय नहीं। बहुतोंकी भ्रान्त धारणा होती है कि, संकर-संवर्धन गणितकी तरह दो गुणोंका मिलान है। अगर **क** और **ख** का समागम होतो उनकी संतानमें आधा गुण **क** का और आधा **ख** का होगा। इससे अधिक भूलभरी कोई दूसरी बात नहीं होगी। प्रजनन-शास्त्र गणितकी बस्तु नहीं है। पशुपालनका विदार्थी इस प्रचलित भूलमें न फँसे इसलिये ढोरकी उन्नतिके काममें आनेवाले प्रजनन-शास्त्रके मूल सिद्धान्तका बिचार जरूरी है। इस विषयके बारेमें आगे कहा जाता है। (३५, १६६)

**१३६. गो-उन्नति के लिये गोवध एक उपाय:** यूरपमें ढोरकी उन्नति काफी हुई है। नसलकी उन्नतिकी कोशिशमें घटिया, अनर्थकरी और बूढ़ी गायोंको मार डालने में गोमांस भक्षणने निस्सन्देह समस्याको सरल कर दिया है। भारतमें हमें आँखें मूँद वही करने कहा जाता है। भारतमें ढोरकी हालत उन्नत करनेकी चर्चा जब होती है तब गोवधसे घृणा करनेके कारण हिन्दू और उनके धर्म की निन्दा की जाती है। एक बार भी यह नहीं पूछा जाता है कि, हिन्दू गोजाति के प्रति इतनी श्रद्धा क्यों पोषण करते हैं। (२५)

**१३७. हिन्दूके लिये गोवध क्यों महापाप है:** गायकी 'पूजा और उसे पवित्र मानना हिन्दू धर्मका सिद्धान्त बन गया है। भूतमें हिन्दू भी

गोवध माँसके लिये करते थे। पर पीछे हिन्दू धर्म गोबधको घृणा की दृष्टिसे देखने लगा और उसे महा पाप मानने लगा। मनुष्य, पशु और वनस्पति आदि सभी जीवों के एकत्वमें हिन्दू विश्वास करने लगे। काम करने और सेवामें सभी प्राणियोंमें गाय मनुष्यके निकटतम रही है। गायकी रक्षा और प्रतिष्ठा कर हिन्दू सभी जीवोंसे प्रेम करनेकी अपनी इच्छा तृप्त करते हैं। उनके लिये गाय सभी पशुओंकी प्रतीक है। इसी भावनासे हिन्दुओंने गायके लिये अपनी श्रद्धालु मनोवृत्ति बनायी है। यूरोपीय मानसे उनका मूल्य आँकना गलत है। यद्यपि वहाँ ऐसी भावना किसी किसी व्यक्तियोंमें काफी होती है, पर भारतवर्ष के समाज का मूल जिस तरह इस भावनाके ऊपर प्रतिष्ठित है यूरोपीय समाजतो उस तरह इस पर प्रतिष्ठित नहीं है। (२५)

१३८. **हिन्दू भावना पुष्ट करने लायक है :** हिन्दू भावना निन्दनीय नहीं है। उलटे वह तो पुष्ट करने लायक है। असलमें तो इस नई पीढ़ीके हिन्दुओंके गायके प्रति व्यवहारकी भावनाकी निन्दा होनी चाहिये। हिन्दुओंको खूब तीव्रताके साथ महसूस करना चाहिये कि, गायें भूखों मरती हैं और उपेक्षित हैं यह दुर्भाग्यकी बात है। उन्हें गायको भूखों मरने और उपेक्षासे बचानेका उपाय खोजना चाहिये। भूखे आदमीको धर्मका उपदेश व्यर्थ है। हिन्दू भूखों मर रहे हैं और गायेंभी। हितैषियोंको इस दुहरी भुखमरी रोकने की राह बतानी चाहिये। बिदेशी शासनने भारतीय जीवनकी प्रायः सभी श्रेष्ठ बातें उलट दीं। इसके पहले भारतीय भूखों नहीं मरते थे और न उनकी गायें आज जैसी थीं। निस्संदेह वह उपेक्षित भी नहीं थीं। नहीं तो जो सुन्दर नसलें आजभी वर्तमान हैं उनका विकाश नहीं हो पाता। (२५)

१३९. **वधसे गतिरोध दूर नहीं होगा :** अर्थशास्त्री भारतीय किसानोंसे अतिरिक्त बेकाम और बूढ़े पशुओंको मार उनसे छुटकारा पाने कहता है। पर इससे आर्थिक गतिरोध दूर नहीं होगा। मान लीजिये कि आजके अतिरिक्त पशु बेचकर, बधकर या रोगसे हटा दिये जाते हैं तो फिर दूसरी पीढ़ी जल्दी ही उस कमीको पूरा करेगी और देशमें बेकार पशु भर देगी। इसलिये आजके अतिरिक्त पशुओंको हटा देना उपाय नहीं है। उपाय है मांसके लिये नियमित रूपसे गोवधकी आदत डालना। हमारे अर्थशास्त्रियोंको सन्तोष देनेके लिये हिन्दुओंको गोमांस-भोजी होना ही होगा। (२५)

१४०. **गोमांस-भक्षण सर्वोत्तम उपाय नहीं है :** पर गोमांस भक्षण सर्वोत्तम उपाय नहीं है। गायको भरपेट खिलानेसे वह टुटपुंजिया किसानोंकी उन्नतिमें बाधक नहीं रहेगी। यदि गोबर और गोमूत्रका भी खादके रूपमें उचित मूल्य आँका जाय तो बेकाम बूढ़े और जर्जर पशु उपयोगी खाद-उत्पादक पशु साबित हों। जमीनसे और जादे उपज लेनेके लिये इनकी बड़ी जरूरत है।

आज अमेरिकामें भी ठट्ठके बेकाम और अलाभकर पशुओंका वध पहली पसंद नहीं मानी जाती। उन्नति पहली चीज है।

"कहा जाता है कि, अमेरिकाके क्षेत्रोंमें एक तिहाई दुधार गायें घाटेसे पाली जाती हैं और एक तिहाईसे इतनी ही उत्पत्ति होती है जितनीसे उनका खर्च निकल जाता है। कुल मुनाफा असलमें बाकी की एक तिहाईसे मिलता है। अगर यह सही हो—इसमें सन्देह नहीं कि सही है भी—तो कम उपजाऊ गायोंके चारे और देखभालकी मजूरीमें बहुत नुकसान है। फिरभी दो तिहाई दुधार गायोंको मिटा देना व्यावहारिक नहीं होगा, क्योंकि, इससे इस देशमें (अमेरिका) गव्य वस्तुओंकी बहुत कमी पड़ जायगी। इसलिये ग्राहकोंके हितार्थ क्या हमलोग ८,०००,००० गायें नुकसान देकर पालते जाँय और दूसरी ८,०००,००० गायें थोड़ेसे मुनाफेके साथ? नहीं, इससे बचनेका दूसरा उपाय है और वह है दुधार गायोंकी उन्नति करना।"—(मेकडोवेल और फील्ड लिखित "डेयरी एन्टरप्राइज", पृ० १९०-'९१) (२५)

१४१. **अच्छे संवर्धनसे उन्नति :** समाजके हितके विचारसे ढोरकी उन्नति करनेके लिये हिन्दुओंमें श्राद्धके साथ ब्राह्मणी वृष (साँढ) उत्सर्ग करनेकी प्रथा चली। प्रथा अच्छी है पर आजकल इसका दुरुपयोग होता है। लोग चुने हुएके बदले घटिया बछड़े छोड़ते हैं। आजकी प्रथा किसी समयके सराहनीय उदार कामका निकृष्ट चिह्न मात्र है। कैप्टन लिट्लउडने अपनी किताब "लाइभ स्टॉक ऑफ सदर्न इंडिया" में शायद कुछ ही वर्ष पहले दक्खिन भारतमें साँढका उत्सर्ग कैसे होता था इसका वर्णन किया है। (१९५–'९८, २७१, २८२, २८६, २८८, २९३-'९८, ३०६, ३५०, ४८६)

१४२. **नसलकी उन्नतिके लिये ब्राह्मणी साँढ़ थे :** "मंदिरोंको चढ़ाये गये साँढ़ ब्राह्मणी साँढ़ हैं। गाँवका कोई धनी मानी व्यक्ति जब मरता है तब उसके संबंधी उसकी स्मृति कायम रखना चाहते हैं। इसलिये वह उसके स्मारक

रूप साँढ़ उत्सर्ग करते हैं। पहले समयमें साँढ़ चुननेमें बहुत सावधानी रक्खी जाती थी। नामी पशु-संवर्धकों और रैयतोंकी समिति बनायी जाती थी। अच्छे संवर्धक साँढ़में जिन ३२ गुणोंका होना वह लोग आवश्यक मानते थे उनमें प्रत्येकका अच्छी तरह विचार होता था। उस व्यक्तिकी मृत्युके बादही कुछ अच्छे और होनहार बछड़े गाँवमें लाये जाते थे। तब कमीटी हरेक बछड़ेके अच्छे और बुरे मुद्दोंपर विचार कर अन्तमें सबसे अच्छे एकको चुन लेती थी। चुनाव बहुत कठिन होते थे। एक बार चुनाव हो जानेपर कोई आपत्ति नहीं कर सकता था। उसका दामभी कमीटी तय कर देती थी। और इस मूल्यको स्वीकार करना पड़ता था। छोटे साँढ़को श्राद्धके समय पुरोहित दागते थे। इसके बाद चाहे जिधर घुमनेके लिये उसे छोड़ दिया जाता था। फसल लगे किसी खेतमें उसे जाने दिया जाता था। उसे भगाना पाप माना जाता था। जो कहीं वह किसीके मवेशी-घरमें पहुँच गया तो किसान तबतक खिलाता था जबतक वह वहाँसे चला नहीं जाता। आजकल साँढ़का चुनाव सिर्फ प्रथा पालन रह गया है और इसके कारण अनेक झगड़े हुआ करते हैं। चुनावको कोई महत्व नहीं दिया जाता। इस कारण और बछड़ा-साँढ़के ऊँचे दामके कारण मृत व्यक्तिके संबंधी उस मृत व्यक्तिके ही ठट्ठसे कोई बछड़ा चुन लेते हैं या सस्तासा खरीद लेते हैं। फिर उसेही उत्सर्ग कर देते हैं। यह प्रथा बढ़ रही है यह प्रत्यक्ष है। बहुतसी जगहोंमें रैयत इन संवर्धक साँढ़ोंको अपनी फसलसे भगा देते हैं और उसे नुकसान करनेवाला और आफत मानते हैं। अन्नकी मँहगी के कारण ऐसे साँढ़ोंके दाताओंकी स्तुतिके बदले निन्दा होती है। और उनलोगोंको फ़सलके दिनोंमें इन्हें (साँढ़ोंको) बाँधकर खूँटेपर खिलाना पड़ता है।" (पृ० १६-१७)

इससे मालूम होता है कि दक्खिणी लोग, छोड़े साँढ़की कुछ जिम्मेदारी आजभी मानते हैं। दक्खिन भारतको छोड़ बहुतसी जगहोंमें दाताका कुछ पता नहीं रहता और साँढ़ इस खेतसे उस खेतमें भटकता और भगाया जाता है या कोई निठुर आदमी फसलके दिनोंमें उसे बुरी चोट पहुँचाता है। कहीं कहीं तो म्युनिस्पल्टियाँ खुले तौर पर कूड़ा गाड़ीमें उसे जोतती हैं। चुने हुए साँढ़-बछड़ोंका समाजके उपयोगके लिये छोड़ा जाना उदात्त प्रथा थी इसमें सन्देह नहीं। इसकी निन्दा करनेके बदले यह करना चाहिये कि बेकाम ब्राह्मणी साँढ़ोंको बधिया कर दिया जाय और अबसे दान करनेवालोंको समाजके प्रति उनके कर्त्तव्यका बोध

कराना चाहिये जिससे कि वह उस स्थानके सबसे अच्छे बछड़ेका उत्सर्ग करें। (२८२-'८३, ३०५-'०६, ३५०, ४८३)

**१४३. वृषोत्सर्गके लिये सहयोग-वृत्तिकी पुष्टि करनी चाहिये :** जितना प्रगट है वृषोत्सर्गकी प्रथामें उससे भी अधिक अच्छाई है। कमसे कम पशु-संवर्धनके मामलेमें यह प्रथा गाँववालोंको समाजिक विचारका बनाती है। "साँढ़के लिये इस सहयोग वृत्तिको और भी बढ़ावा दिया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि इससे आजकी पशुधनकी अवनतिकी धारा बदलकर उन्नतिकी ओर हो जायगी।"—(युक्तप्रान्तके डिप्टी डाइरेक्टर ऑफ एग्रीकल्चर, श्री पार (Mr. parr) के पशु पालन पक्षकी तीसरी बैठकके लिखित नोट से)

अगर भारतीय किसानको जीता रहना है तो भारतके साँढ़, बैल और गायकी उन्नति करनी होगी। आजकलके ढोर भारतमें उन्नतिके अवरोधक हैं। इसके बदले बदली हालतमें वह भारतकी सम्पत्तिके सबसे बड़े साधक हो सकते हैं। हॉलैन्डमें वह जितने बड़े साधन हैं उससे कम यहाँ नहीं रहेंगे। ढोरोंकी नसूलकी उन्नतिका सवाल बहुत मार्मिक है। भारतके सरकारी मंडलमें ढोरकी उन्नति का एक आन्दोलन चल रहा है। भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें ढोरकी उन्नतिकी जो चर्चा चल रही है वह इस विषयसे दिलचस्पी रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके करने लायक है। पर इस विषयको हाथमें लेनेके पहले संवर्धनकी उन्नति कैसे हो और इससे संबन्धित प्रजनन-शास्त्रकी कुछ समस्याओंका ज्ञान होना जरूरी है। (४८०-'८६)

**१४४. प्राचीन कालमें भारतका संवर्धन कार्य :** भारतमें सभी कालमें ढोर संवर्धकोंने दूध और भारवहनका गुण-विकाश, चुनाव द्वारा किया है। आज हम गायको जैसी देखते हैं वैसी वह प्राग् इतिहासकालमें नहीं थी। गाय कभी जंगली पशु थी। मनुष्यने उसे पालतू बनाया और अनवरत प्रयास और निपुण उपायसे उसे सभ्य जीवनका अपरिहार्य अंग बना लिया है। युगोंसे मनुष्य और गाय अनेक बन्धनोंसे एक साथ बंधे हैं। गायसे मनुष्यका उपकार हुआ है और उसे मनुष्यके लिये जादेसे जादे उपयोगी बनानेका प्रयास सदा किया गया है। भारतीयोंने कृतज्ञताके लिये भी उसपर सदाही दया रखी है। (११, १८७, ३६६-'७१)

**१४५. मैंडलका नियम :** पशुओंका संगम करानेमें हर बार उत्तमतर प्रकार चुनने और अनुकूल गुणोंपर जोर देनेसे स्थानके अनुसार नसल भिन्न होनेपर भी देखा गया है कि अलग और उच्चतर प्रकारकी सृष्टि संभव है। यह मुख्य रूपसे कार्योंकी

आनुवंशिकताके नियमों (laws of inheritance of functions) के व्यवस्थित प्रयोगसे पूरा हुआ है। बुद्धिमान् संवर्धकोंने युगोंके अनुशीलन और अनुभवसे जो कुछ किया है, देखा गया कि बहुत बादके आविष्कृत आनुवंशिकताके कुछ नियम व्यवहारिक रूपमें उसके आधार हैं। आनुवंशिकताके नियमोंको मेंडलके नियम कहा जाता है। इसके आविष्कारके लिये अस्ट्रियाके एक महंत जोन ग्रेगर मेंडल ( Johann Gregor Mendel ) के हम लोग ऋणी हैं।

**१४६. पीले और हरे मटरोंपर प्रथम प्रयोग :** मेंडलने मटरोंपर प्रथम प्रयोग किया और सरल लक्षण, जैसे रंग और आकारके अनुप्रेरणाकी विधिका सूक्ष्म अनुशीलन कर इस नियमके सिद्धान्तोंका आविष्कार किया। यह नियम उसीके नामसे मशहूर है। उसने पौधोंके संवर्धनके प्रयोग किये थे पर उसके नियम पशुओंके लिये भी ठीक वैसे ही हैं।

पीले और हरे मटरोंका संकर करके उसने दोगला पीला रंग पैदा किया। रंगभी पौधोंके उसी तरह लक्षण हैं जैसे कि आकृति और स्वाद आदि हैं। आनुवंशिकताके नियम किसी एकके भिन्न भिन्न लक्षणों (जिनमें रंगभी एक है) के लिये भी एक ही हैं। मेंडलने पहले पीले और हरे मटरोंका संकर किया उससे दोगले पीले मटर पैदा हुए। जब यह दोगले पीले मटर बोए गये तब उनसे १ और ३ के अनुपातमें हरे और पीले मटर पैदा हुए। तीसरी पीढ़ीमें इन हरे मटरोंसे सबके सब हरे ही पैदा हुए पर उसी दूसरी पीढ़ीके दो तिहाई पीलेसे पहले दोगले पीलेकी तरह ही १ और ३ के अनुपातमें हरे और पीले मटर पैदा हुए। पर पीले की बची हुई तिहाईसे सब पीले हुए।

इन देखी गयी बातोंसे आनुवंशिकताके नियमका पता लगा। आनुवंशिकताके नियमकी गतिविधि समझनेके लिये जीवोंकी बनावटका ज्ञान जरूरी है।

**१४७. पौधे और पशुके कोष (cell) की गढ़त :** पौधे या पशुके सभी अंग कोषोंसे बने हुए हैं। ये मकान की बनावटमें ईंटकी तरह हैं। बहुतसे कोषोंमें एक छोटोसी रचना होती है जिसे मूलकण (nucleus) कहते हैं। कोषके जीवन और क्रियाशीलताका यह मूलकण केन्द्र होता है। वृद्धिके लिये कोष विभक्त होकर दूसरे कोष पैदा करते हैं। इस विभाजमें मूलकण भी विभक्त होते हैं।

कोषका मूलकरण जब विभाजित होता है तब उसमें अति सूक्ष्म (जो अणुवीक्षण यंत्रसे देखा जा सके) वस्तु देखी जाती है। इसे अब क्रोमोसोम (chromosomes) कहा जाता है। प्राणीके शरीर-कोष और उत्पादन-कोषमें भेद होता है। शरीर-कोषोंमें क्रोमोसोम हमेशा जोड़ेसे होते हैं। हर वंश (species) के जीवधारीमें क्रोमोसोम की अपनी अपनी निर्धारित संख्या होती है।

१४८. **क्रोमोमर** (Chromomeres) **और क्रोमोसोम** (Chromo somes) : क्रोमोसोम रंग-शोषक (dye-absorbing) दाने (granules) या क्रोमैटिन (Chromatin) से बनते हैं। इन क्रोमैटिनके दानोंकी अलग अलग इकाईको क्रोमोमर कहते हैं। एक कोषमें कई हजार क्रोमोमर होते हैं। हरेक क्रोमोसोम क्रोमोमरके निश्चित समुदायसे बनता है। ये क्रोमोमर आनुवंशिक लक्षणोंके वाहन हैं। आनुवंशिकताकी इकाई 'जिन' (gene) कही जाती है। कोषोंके रसायनिक पदार्थोंके पारस्परिक कार्यसे 'जिन' लक्षणोंके विकाशका नियंत्रण करती है।

१४९. **उत्पत्ति-कोषोंमें क्रोमोसोम** : यह बताया जा चुका है कि शरीर-कोष और उत्पत्ति-कोष अलग अलग हैं। आनुवंशिक तंत्रमें उत्पत्तिकोष या बीजकोषका काम रहता है। माता पिताके एक एक बीज मिल जाते हैं जिनसे एक अलग जीव बनता है। पूर्ण विकशित बीजकोषकी रचनामें क्रोमोसोमकी संख्या घटकर आधी रह जाती है। माँ-बाप दोनोंका आधा आधा बीज (जिस आधे बीज में प्रत्येक के शरीरकोष का आधा क्रोमसोम रहता है) मिलकर जिस कोषकी रचना करते हैं उसमें माँ-बापके मूल शरीर-कोषोंमें जितने क्रोमोसोम होते हैं उतने हो जाते हैं। इसलिये नये प्राणीमें आधे आधे लाक्षणिक क्रोमोसोम माँ-बाप दोनोंसे आते हैं। अर्थात् वह माँ-बाप दोनोंका आधा आधा लक्षण पाकर मिश्रित लक्षणवाला बनता है। लक्षणवाले क्रोमोसोम इतने विभिन्न हैं कि, यह संयोगपर ही छोड़ना होता है कि माँ-बापके कौन कौनसे लक्षण संतानमें होंगे।

१५०. **शुद्ध पीले, दोगले पीले और शुद्ध हरे मटर** : मटरके रंगको एक लक्षण मान लिया। अब अलग अलग मटरको पैदा करनेमें हरा मटर मिलाने से क्या होता है यह आगे के नक्शोंमें दिखाया गया है। इसमें शुद्ध पीला और हरा मटर मिलानेसे एक दोगला पीला किस्म बनता है।

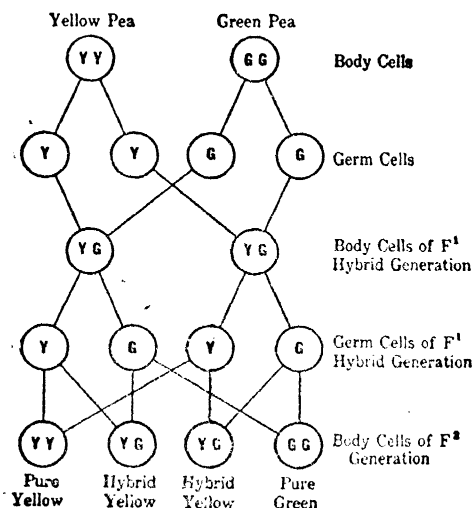
दूसरी पीढ़ीमें इस दोगले पीले मटर से

(क) एक शुद्ध पीली संतान

(ख) एक शुद्ध हरी संतान

(ग) दो दोगली पीली संतान पैदा होती हैं।

इससे यह उल्लेखनीय बात मालूम हुई कि, एक तरहका दोगला पीला मटर बोनेसे ३ अलग पौधोंमें ३ तरहका मटर पैदा होता है। वह है शुद्ध पीला, शुद्ध हरा, और दोगला पीला। यह भी पता चला कि [redacted] एक शुद्ध पीले मटर पर दो दोगले पीले और एक शुद्ध हरे मटरके पौधे होते हैं।




YY पीला मटर, GG हरा मटर, (शरीर-कोष)।

Y पीलेका, G हरेका उत्पादन-कोष।

YG पहले दोगलेके शरीर-कोष।

Y,G पहले दोगलेके उत्पादन-कोष।

YY शुद्ध पीले, YG दोगले पीले GG शुद्ध हरेके शरीरकोष

चित्र—२३. मेन्डलके नियमका नक्शा
("डेयरी कैटल एन्ड मिल्क प्रोडक्सन" से)

१५१. **मेंडलके नियमको समझानेके लिये नक्शा :** मेंडलने अपना काम मटरोंसे किया। पर उनके प्रतिपादित सिद्धान्त पशु और पौधे दोनोंपर एकसा लागू हैं। जहाँ माँ-बापके शरीर-कोषमें सिर्फ एक एक जोड़ा क्रोमोसोम जैसे पीला और हरा होतो हमें तीन अलग अलग तरहके लक्षण मिलते हैं। पर जहाँ कोषमें बहुतसे क्रोमोसोम हों वहाँ दो व्यक्तियोंके मिलनसे उत्पन्न हुई अगली पीढ़ीमें अनेक

भिन्न लक्षण होंगे। और अनेक क्रोमोसोमवाले दो व्यक्तियोंके मिलनसे उत्पन्न प्राणी-विशेषमें उनके सैकड़ों लक्षणोंमें कोई हो जा सकते हैं।

**१५२. एक कोषमें क्रोमोसोमकी संख्या :** किसी विशेष वंशके जीवके कोषमें क्रोमोसोमकी खास निर्धारित संख्या होती है। मकईमें २०, गेहूँमें १६, मनुष्यमें ४८, गायमें ४६ हैं। बहुतसे कीड़ोंमें ८से १८के बीच होती है। घोड़ोंकी कृमिके एक वंशमें २ही होती है।

क्रोमोसोम साधारण तौरपर जोड़ोंमे रहते हैं। कुछ जोड़े लम्बे, कुछ मझोले और कुछ छोटे होते हैं। खास लम्बाईके शरीरकोषके दो क्रोमोसोममें एक बापके शुक्रसे और दूसरा डिम्ब अर्थात् मांसे आया हुआ है।

**१५३. जाइगोट अर्थात् उत्पादक कोष :** अब हम यह समझनेकी कोशिश करें कि क्रोमोसोम कोष विभाजित होकर जाइगोट (Zygote) अर्थात् उत्पादक कोष बनते और उतनीही संख्यामें दूसरे लिंगके मेलसे एक नये जीवकी सृष्टि करते हैं और इस क्रियाके फल स्वरूप लाखों विभिन्न सृष्टियां कैसे बन जाती हैं।

प्रयोगसे यह देखा गया कि ५ जोड़े (१० क्रोमोसोम) वाला व्यक्ति विशेष, ५ क्रोमोसोम एक उत्पादक कोषमें और ५ दूसरे उत्पादक कोषमें पैदा करता है। इन्हें जाइगोट कहते हैं। यौन उत्पत्तिमें स्त्रीके आधे ५ जोड़े क्रोमोसोम पुरुषके आधे ५ जोड़ेसे मिलते और नये व्यक्तिमें ५ जोड़े क्रोमोसोम उत्पन्न करते हैं। इनमें एक मांसे दूसरा बापसे जाता है।

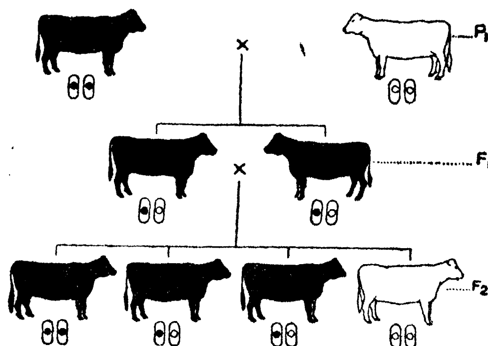
**१५४. पाँच जाइगोटसे १,०२४ मेल बनते हैं :** घटतीकी विभाजन विधिमें आधे पाँच जोड़े जाइगोटसे ३२ मेल हो सकते हैं। और इन ३२ मेलोंमें से कोई दूसरे लिंगके ३२ मेलोंसे संयोग कर सकता है और इस तरह १,०२४ भिन्न प्रकारके व्यक्ति बन सकते हैं। गायके मामलेमें यह और कई गुणा अधिक हो सकता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि एक ही माँ-बापके दो बच्चे (यमज को छोड़) बिलकुल एकसे क्यों नहीं होते।

जो लक्षण क्रोमोसोमकी मार्फत संतानमें आते हैं उनमें कुछ उसी जोड़ेमें दबते हैं और कुछ दबाते हैं। दबनेवाला 'गौण' (recessive) और दबानेवाला 'मुख्य' (dominant) कहा जाता है। ऊपरके नक्शेके क्रोमोसोम जोड़े पीले (Y) और हरे (G) के मामलेमें देखा जा सकता है कि उत्पन्न रंग में पीलेका आभास है। क्योंकि पीला 'मुख्य' और हरा 'गौण' रंग है। इसलिये ऊपरके

नक्शेके मुताबिक दोगले पीले फलों या पशुओंके समागमसे उत्पन्न संतानों के लक्षण नीचे लिखे होंगे :

YY YG YG GG

१५५. **YG और YG से :** चार प्रकार निकलते हैं। जिनमेंसे दो दोगले पीले, एक शुद्ध पीला और दूसरा शुद्ध हरा है। YG के मेलमें Y गौण होता और G मुख्य तो उनसे दोगला हरा रंग निकलता पर वास्तवमें हरा गौण है। इसलिये प्रतिफल दोगला पीला होता है। ऊपरके शरीर-कोषके जोड़ेमें YY होमो-जाइगौस (homo-zygous) उसी तरह GG भी होमो-जाइगौस कहलाता है। पर YG को हेटरो-जाइगौस (Hetero-Zygous) अर्थात् एकही कोषमें विभिन्न क्रोमोसोम रखनेवाला कहा जाता है। काले और लाल रंगके मेलमें, होमो-जाइगौस कालेका, होमो-जाइगौस कालेसे समागम होतो केवल कालीही संतान होगी। होमो-जाइगौस कालेसे हेटरो-जाइगौस कालेके समागमसे सब संतान काली ही होगी;




चित्र-२४. होमो और हटरो-जाइगौस लक्षण
काला×लाल
(लाल इस चित्रमें सादाकेरूपमे दिखाया गया है)
(ब्लैककी भेटेरिनरी डिक्शनरी)

क्योंकि काला मुख्य रंग है। पर संतानमें ५० सैकड़ा होमोजाइगौस और ५० सैकड़ा हेटरो-जाइगौस होगी।

१५६. **होमो और हेटरो-जाइगौस लक्षण :** हेटरो-जाइगौस कालेका हेटरो-जाइगौस लालसे समागम होनेपर ५० सैकड़ा हेटरो-जाइगौस काला और ५०

*सैकड़ा हेटरो-जाइगौस लाल पैदा होंगे। लाल का लालसे समागम होनेपर सब लाल ही होंगे। पर जब दो कालोंका समागम हो और दोनों हेटरो-जाइगौस काले हों तो उनसे लाल बछड़ा हो सकता है।*

दूसरे शब्दोंमें दो काले माँ-बापके तीन काली और एक लाल संतान होंगी। जहाँ लाल रंग नापसंद किया जाता है और काला शौकका रंग है, यह एक आफत ही है।

१५७. **नसलकी शुद्धता :** जब हम नसलकी शुद्धताकी बात कहते हैं तब हमारा अभिप्राय होता है कि उसमें अपने शुद्ध प्रकारके उत्पादनकी सामर्थ्य है। ऊपरके मामलेमें वह शुद्ध नहीं है। इसलिये शुद्धताका अर्थ स्पष्ट ही है। पशुओंकी आनुवंशिकताके लक्षणोंको पूर्ण विकाशके लिये कई इकाइयोंका आधार लेना होता है। गायके दूध देनेकी सामर्थ्य और उसके दूधमें मक्खनकी मात्राके लिये भी यह सही है।

हरेक व्यक्तिको अपनी जातिका साधारण लक्षण होता है। लक्षण प्रत्यक्ष हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। ऊँची जातियोंमें इतने जादे लक्षण होते हैं कि उनमेंसे सब एक ही व्यक्तिमें नहीं हो सकते। किसी व्यक्तिकी देहमें जो बातें प्रत्यक्ष नहीं हैं वह उन्हें भी अपनी संतानमें प्रेरित करता है। उदाहरणके लिये दूध देना गायका काम है, पर इसे साँढ़ और गाय दोनों प्रेरित करते हैं।

१५८. **प्रकारका पलटना :** मुख्य लक्षणोंके कारण गौण लक्षण कई पीढ़ीयों तक प्रगट हुए बिना चले जाते हैं। एकही प्रकारके गौण बीजवाले व्यक्तियोंके समागमसे गौण लक्षण प्रगट हो सकते हैं। इसे प्रकारोंका पलटना (reversion) कहते हैं। सफेद या भूरे रंगके मेवाती ढोरमें क्यों गौण लाल रंग प्रगट होता और उसमें गीरका मिश्रण बताता है, इस बातकी यह उपयुक्त व्याख्या है। (पैरा ५३ में "मेवाती नसल" देखो)

जिस तरह क्रोमोसोममें "मुख्य" होते हैं उसी तरह अपनी संतानमें व्यक्ति जिस लक्षणका प्रभाव दे सकता है उसे 'प्रबल-बीर्य' (prepotent) कहते हैं। जिस गाय या साँढ़में दुधारपनकी प्रबल-वीर्यता है उनका समागम चाहे जैसे हो अपनी संतान पर ऊँचे दुधारपन का प्रभाव छोड़ते हैं। पर उनकी संतानकी प्रबल-वीर्यता नष्ट हो सकती है और फिर वह मामूलीके मामूली बन सकती है।

१५९. **संवर्धनमें वरण :** पशु-संवर्धनमें पूर्ण तुल्य गुणोंका समागम कराना असम्भव है। इसलिये देखाजाता है कि भेद हो जाता है। संवर्धकोंको पशुधनकी

*उन्नतिके लिये विचार पूर्वक किये गये वरणसे सबसे बढ़िया मदद मिली है। प्रजोत्पादनके लिये वरण द्वारा नर और मादामें सबसे बढ़िया रखा और अनचाहेको छांट दिया जाता है। किसी विशेषत्ववाली दुधार नसलमें दूधकी साधारण बढ़तीका कारण वरणकी क्रिया* हो सकती है। वातावरण, खिलाई और हिफाजतकाभी स्थान है। स्थायी प्रगतिके लिये निरंतर वरण होना चाहिये और उन्हींका समागम कराना चाहिये जिनमें वांछित बीजगुण (germinal factor) देखे गये हैं। इसमें भी सिर्फ माँ-बाप ही नहीं, उनके पुरखोंका भी व्यक्ति पर प्रभाव होता है। यह जान लेना होगा कि पुरखे जितने दूर के होंगे उनके लक्षणका असर उतना ही कम होगा।

१६०. **पुरखों का सापेक्ष महत्व :** व्यक्ति के लक्षण पर पुरखोंका प्रभाव एक नियमसे होता है। यह पाया गया है कि पहली पीढ़ीमें पुरखाविशेषका २५ प्रतिशत लक्षण मिलता है; दूसरी पीढ़ीमें ६.२५ प्रतिशत; तीसरी पीढ़ीमें १·५६ प्रतिशत और चौथी पीढ़ीमें ०.३९ प्रतिशत।

वंशावली अर्थात् आनुवंशिकताके क्रमका महत्व इस दृष्टिसे विचारना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसी बहुत उन्नत और वांछित पुरखेकी तीसरी पीढ़ीमें हो तो मानना होगा कि उस पुरखेका १·५६ प्रतिशत लक्षण इसमें है। सबसे नजदीकी पितरोंका असर सबसे जादा है।

१६१. **मां-बापमेंसे एकका लक्षण मुख्य होजा सकता है :** आनुवंशिकताके बारेमें यह सही है कि कुल उत्तराधिकारमें स्त्री और पुरुष दोनोंका दान बराबर है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि मां-बाप दोनों बराबर हैं अथवा एकका प्रभाव दूसरेके प्रभावको दबा नहीं सकता। इसके विरुद्ध माँ-बापमें जो अधिक प्रबल-वीर्य होगा वह कम प्रबल-वीर्यको दबा मुख्य हो जायगा। यह भी याद रखना चाहिये कि, जिस संतानमें अधिक प्रबल-वीर्य पितर (माँ या बाप) का लक्षण आता है, वह उस लक्षणको दूसरी पीढ़ीमें जितनाका तितना नहीं भी दे सकती है उत्पादक कोषोंकी रचनामिश्रित अर्थात् हेटरो-जाइगौस हो सकती है। इससे बहुतसे वाञ्छित गुण दूसरी पीढ़ीमें नहीं भी हो सकते हैं।

१६२. **ठट्ठमें जनक और जननीका स्थान :** ठट्ठमें जनक और जननीका स्थान दूसरी दृष्टिसे देखना होता है। हर ठट्ठमें प्रत्येक संतानमें अपनी जननीका लक्षण आता है। पर साँढ़ सबके लिये एक ही है। इसलिये उसका लक्षण ठट्ठकी सभी संतानमें होता है। इसीलिये उस ठट्ठमें उस साँढ़का इतना बड़ा महत्व है।

१६३. **सपिंड संवर्धन** (In-breeding) : यह घनिष्ठ संबंधी, जैसे भाई बहन, बाप बेटी या माँ बेटेका समागम है। जब ऐसे घनिष्ठ संबंधियोंका समागम होता है तब उनका पहला असर आनुवंशिक गुणोंको घना या स्थिर करना होता है। इससे कुछ लक्षणोंमें प्रबलवीर्यता आ जाती है। किसी नसलकी आदि स्थापनामें उस नस्ल को शुद्ध रखनेकेलिये सपिंड संवर्धनका बहुत महत्व है। सपिंड संवर्धनसे जैसे जैसे पीढ़ी बढ़ती है बीजकी बनावट अपेक्षाकृत शुद्ध हो जाती है। तब संतानमें पितरोंका लक्षण आना प्रायः निश्चित रहता है। इसी उपायसे यूरपके ढोरकी श्रेष्ठ नसलोंका विकाश हुआ है। पर इसमें खतरा भी है। जिस विधिसे अच्छे गुण स्थिर होते हैं उसीसे बुरे गुण भी स्थिर हो जायेंगे। यह बात अनर्थकरी होगी। इसके सिवा निकट सपिड संवर्धनसे प्रजनन शक्ति, तेज और आयुष्य कम हो सकते हैं। अगर प्रजनन शक्ति घटती है तो नसलका मूल्य कुछ नहीं रहता। निपुण संवर्धकों के हाथमें सपिंड संवर्धन मूल्यवान् उपाय है। पर इसका अंधाधुंध प्रयोग घातक है। वरणके साथ सपिंड संवर्धनसे बहुत लाभ है पर यह बात निश्चित है कि निपुण संवर्धकोंको छोड़ किसी दूसरेके हाथों सपिंड संवर्धन घातक है। (५०१-'०२)

१६४. **सगोत्र संवर्धन** (Line-breeding) : सपिंड संवर्धनमें वर्णित संबंधसे दूर संबंधवाले पशुओंका समागम सगोत्र संवर्धन कहाता है। जब समान पुरखे २५ से ५० सैकड़ा हों तो उसे सगोत्र संवर्धन कहा जाता है। इसमें सपिंड संवर्धनके बहुतसे फायदे हैं पर उसके साथ बुराइयाँ बहुत कम हैं।

१६५. **विगोत्र समागम** (Out-crossing) : उसी नसलके असंबंधित पशुओंका समागम विगोत्र समागम कहा जाता है। विगोत्र साँढ़के समागमसे बहुत अच्छा फल मिलता है। पर कोई संवर्धक लगातार विगोत्र समागम नहीं करावेगा। एक बार जहाँ ललचानेवाला फल मिला कि संवर्धक उस गुणको सगोत्र संवर्धनसे ठट्ठमें स्थायी रखनेको कोशिश करेगा। बहुतसे प्रसिद्ध संवर्धक वही करते हैं।

१६६. **संकर संवर्धन** (Cross-breeding) : भारतके प्रसिद्ध दुधार ढोर जैसे अमृतमहाल, गीर, सिन्धी, हरियाना और साहीवालका विकाश संवर्धकोंके इच्छित लक्षणोंवाले पशुओंके लगातार वरणका फल है। इस विधिसे अभीष्ट लक्षण स्थायी हो जाता है और इसका नतीजा यह होता है कि बीज (germ-plasm)

शुद्ध होता है। इससे जब समान नस्लवालोंका समागम होता है तब अभीष्ट गुणोंके संप्रेरणका बहुत कुछ भरोसा रहता है। स्पष्ट भिन्न नसलोंके संकरसे इन गुणोंका संप्रेरण ठीक नहीं होता। इसका फल दोनोंके लक्षणोंका मिश्रण नहीं होता। ऐसा हो भी नहीं सकता यह हम देख चुके हैं। नयी संतानमें एक दम नये गुणों और विशिष्टताओंका समावेश दीख पड़ेगा। इसका फल यह हो सकताहै कि माँ-बापके अनेक मूल्यवान् गुण संतान में न आयें। परन्तु दोगली संतान बहुत पसंदकी चीज भी हो सकती है। पर संकर करनेमें कोई सीमा निश्चित नहीं रहती। यह भी हो सकता है कि, पहले संकरका उत्साह बढ़ानेवाला फलहो जैसे भारतमें प्रसिद्ध भारतीय दुधार नसलोंका होल्स्टीन फ्रीशियन साँढ़से संकर करनेसे हुआ। पहले संकरमें एक गुण होता है जिसे प्रजनन शास्त्रमें "संकर तेज" (hybrid vigour) कहते हैं।

**१६७. संकर तेज :** आकार वृद्धि और तरुण अवस्थाकी शीघ्रतर प्राप्तिके रूपमें संकर तेज दिखाई देता है। दो असमान जातिके शुद्ध वर्ण पितरोंके समागमसे उत्पन्न वर्णसंकरकी पहली पीढ़ीमें यह देख पड़ता है। यह हेटरो-जाइगौसिसका उदाहरण है। इस हेटरो-जाइगौसिसकी संतानमें माँ-बापके अनेक वांछित गुण आ सकते हैं। यह गुण सपिंड और सगोत्र समागमसे बादमें स्थायी किया जा सकता है, पर ऐसा फल होगाही इसका कोई निश्चय नहीं है। भारतमें शुद्ध वर्ण भारतीय और शुद्ध वर्ण यूरोपीय संकरसे पहली दोगली संतानमें दूधकी उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। पर सपिंड समागम या माँ-बापमेंसे किसीका रक्त बढ़ाने और सब तरहके मेलसे भी यह गुण स्थायी नहीं किया जा सका। जैसा बताया जा चुका है नतीजा असफल और महँगा हुआ। भारतमें गरम देशके जेबू और यूरपके टॉरस गोवंशका संकर बहुत आशाके साथ शुरू किया गया था। पर यह संकर असफल सिद्ध हुआ।

**१६८. होसूरमें भारत और इंगलैंडकी नसलके संकरका प्रयोग :** कैप्टन आर० डब्ल्यू० लिटिलउडकी किताब "दक्खिन भारतका पशुधन" (Live Stock Of Southern India) (१९३६) की भूमिकामें सर अर्थर ऑलवर लिखते हैं :

"होसूर क्षेत्रका वह विभाग जिसमें आंगल-भारतीय (Anglo-Indian) ढोरकी नसल बनानेका व्यवस्थित प्रयास हो रहा है वह खास दिलचस्पीकी चीज है।

क्योंकि अनुकूल स्थितिमें वर्षोंतक मनोयोग पूर्वक काम करने पर भी ऐसे संकर-संवर्धनका फल अन्तमें निराशा जनक ही हुआ।" (३५, १३५)

**१६९. संकर-संवर्धनपर ऑलवरका मत :** "भूमंडलके गरम देशोंमें यूरपके ढोरके बारेमें विश्वव्यापी अनुभवके अनुसार ही ऐसा हुआ है। इस भूभागमें जैसा दक्खिन अमेरिकामें हुआ, पहले जिनके कारण रुकावट होती उन रोगोंपर काबू कर लेने पर भी शुद्ध यूरोपीय ढोर अपनी खूबी बनाये नहीं रह सके। इसके अलावे भारतमें इस बातका काफी प्रमाण है कि अनिपुण संवर्धकोंके द्वारा शुद्ध वर्ण पशुओंके साथ विदेशी नसलोंके अशास्त्रीय संयोगसे ऐसी बुराई हो सकती है जिसका इलाज नहीं। दूसरी तरफ सामरिक गव्य क्षेत्रोंके प्राप्त फलसे मालूम होता है कि, काफी थोड़े समयमें शास्त्रीय संवर्धन के नियंत्रण और प्रबन्धसे भारतीय दुधार गायको यूरोपीय या संकर गायके मुकाबिलेमें दूध देनेवाली बना लेना संभव है। यह बिलकुल साफ है कि आजकी हालतमें काम करनेके लिये यही उपयुक्त नीति है।"

(३५, १३१, १३५)

**१७०. कोटि निर्माण** (Grading up) : संकर-संवर्धनके बाद दूसरी विधि कोटि निर्माणकी है। संकर-संवर्धन दो भिन्न शुद्ध नसलके समागमसे होता है। यदि अच्छी तरह अजमायी नसलके शुद्ध वर्ण नरका अज्ञात कुलकी मादासे समागम होतो इस पद्धतिको कोटि निर्माण करते हैं। अज्ञात कुलके साथ शुद्ध वर्णके समागमसे उत्पन्न संतानमें संकर तेज होता है। इसे बहुत कुछ बनाये रख सकते हैं। भारतमें कोटि निर्माण प्रारम्भ हो गया है। जहाँ समागमके लिये शुद्ध वर्णके साँढ़के चुनाव में विचारसे काम लिया गया है वहाँ अबतक संतोषप्रद फल मिला है। इसमें भी अन्धाधुन्धी और अदूर दृष्टिसे खतरा है। जैसे, अगर बंगालकी अज्ञात कुल गायसे साहीवाल साँढ़का समागम हो तो पितासे मिली भारी गढ़तके कारण संतान चिकनी मुलायम मिट्टी वाले बंगालके धानके खेतके उपयुक्त नहीं होगी। जहाँतक पता है ऐसी शिकायत कई स्थानोंमें हुई है। विचार बुद्धिसे उचित नसलके साँढ़से भारत भरमें फैले हुए अज्ञात कुल ढोरोंका कोटि-निर्माण कर बहुत कुछ किया जा सकता है।

**१७१. आनुवंशिकता और दूधकी उत्पत्ति :** किसी गायके हर ब्यानके दूध उत्पत्तिके मानका स्थायित्व बहुत कुछ आनुवंशिकता पर निर्भर है। दूध उत्पत्तिमें आकारका भी कुछ मोल है। और आकार आनुवंशिक होता है। जनक

और जननी दोनोंकाही प्रभाव संतानके लक्षणोंपर होता है। दूधकी उत्पत्तिके लिये भी यही बात है। अगर किसी ढोरके दूधकी कम उत्पत्तिके गुण पर किसी दूसरे ढोरके अधिक उत्पत्तिके गुणकी प्रधानता होती तो दुधारपनकी उन्नति सरल होती। असल बात यह है कि दूधकी अधिक उत्पत्तिके गुणका आंशिक या अपूर्ण रूपमें कम दूध-उत्पत्ति पर प्रधानता है। अधिक दूध उत्पत्तिका गुण किसी तरह नर प्रेरित करता है। इसलिये जिस सांढ़में अधिक दूधका रक्त है और इसे संतानमें प्रेरित करनेमें जो प्रवलवीर्य है उसकी मांग किसी भी गव्यशालामें बहुत है। जिस तरह काले या सफेद रंगकी भविष्य-वाणी की जा सकती है उस तरह पुरखोंसे दूध उत्पत्तिके उत्तराधिकारकी सही भविष्यवाणी नहीं हो सकती। क्योंकि दूध उत्पत्तिका गुण बहुत पेचीदा है। दूध उत्पत्तिके मामलेमें किसी गायसे ऐसी संतान हो सकती है कि उसे उसकी संतान बिलकुल नहीं कहा जा सके। वातावरण और व्यवहारका भी दूधकी उत्पत्तिपर प्रभाव है। यदि प्रबन्ध ठीक नहीं है तो श्रेष्ठ नसल अच्छा फल नहीं भी दिखा सकती है।

**१७२. वंशावली और दूधकी उत्पत्ति :** किसी पशुसे वांछित कामको पहलेही विचार सकें इसलिये वंशावली रखने और रजिष्ट्रीकी विधि चलाई गयी है। कुछ काम कर दिखानेवाले सांढ़ और गायें राजिष्ट्रीके लायक हैं। उनकी वंशावली लिखी जाती है। उनकी संतान और ब्याने पर उनकी दूध देनकी सामर्थ्यभी लिखी जाती है। इसलिये पितरोंकी संतानका गुण पहले ही मालूम हो जाता है। अच्छी संतानके लिये बाजार मिलनेमें यह विधि कामकी है इसलिये काममें लायी जाती है। पर सिर्फ वंशावलीवाला पशु अपने निकटतम पुरखोंके जैसा नहीं भी हो सकता है।

**१७३. वंशावलीवाला अजमाया सांढ़ :** इस कारण संतान-परीक्षा (progeny-test) पर अधिकसे अधिक ध्यान दिया गया है। यदि कोई वंशावली देखकर सांढ़ खरीदता है तो वह अनजान पशु लेता है। यह उस प्रकार या नसलके श्रेष्ठ काममें अच्छा, बुरा या मामूली निकल सकता है। इसलिये चाहिये कि अजमाया सांढ़ अर्थात् संतान-परीक्षित सांढ़ लिया जाय।

संतान-परीक्षित या अजमाये सांढ़का माने यह है कि उसकी लड़कियोंके दूधकी उत्पत्ति संतोषप्रद पायी गयी। उस प्रकारकी प्रगति और कोटि निर्माण दोनों काममें ऐसा सांढ़ सन्तोषप्रद हो सकता है। पर ऐसा सांढ़ पानेमें खासकर भारतमें

कठिनाई है। यहाँ अच्छे साँढ़ोंकी बहुत कमी है। अजमाये साँढ़ोंका आमतौरपर मिलना संभव नहीं। दूसरी कठिनाई यहाँ पशुओंके विलम्बसे जवान होनेके कारण संतान-परीक्षाके लिये ठहरने की है। अगर कोई साँढ़ पहले पहल तीन वर्षकी उमरमें काममें लाया गया तो उसकी संतान उसके ४॥ वर्ष बाद ब्यायेगी। इस तरह जब उसकी बेटी दूध देने लगेगी उस समयतक यह साँढ़ ७॥ वर्षका हो जायगा। फिर ऐसा माना जाता है कि सांढ १२ वर्ष या उससे भी कुछ कम उम्रतक काम करता है। इस तरह जिस समय साँढ़ संतान-परीक्षामें उत्तीर्ण होता उस समय काम करनेके लिये उसे कुछही वर्ष रह जाते हैं। इस कारण जबतक साँढ़ और बछियाको जल्दी जवान नहीं बनाया जा सके तबतक संतान-परीक्षित या अजमाये साँढ़का पाना बिनसुलझी समस्या रहेगी। संवर्धकको साँढ़से वांछित काम होनेके बारेमें निर्णय करनेके लिये वंशावली और अपने अनुभव पर निर्भर होना होगा।

संवर्धनमें वातावरणका प्रभाव भी ध्यानमें रखना चाहिये। बुरे वातावरणमें श्रेष्ठ सांढ़ भी उच्चतर संतान पैदा करनेमें असफल हो सकता है। यह गायके लिये भी लागू है।

---

# अध्याय ६

## भारतके प्रान्तोंमें संवर्धन

१७४. **प्रान्तोंमें संवर्धन :** भारतमें गोपालनकी आजकी स्थिति समझना जरूरी है। इसलिये नसूलों और संवर्धकों की संवर्धन तथा खिलाने की विधि और व्यवहारका संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है। दुर्भाग्यसे इस विषयका बहुतसा मसाला नहीं मिलता। पर जो कुछभी मिलता है वह बहुत रोचक है। सभी प्रान्तोंमें पंजाब पशु-पालनमें बहुत आगे है। उसका भेटेरिनरी विभाग सबसे ज्यादे सुसंघटित मालूम होता है। यह प्रान्त साहीवाल, हरियाना और धन्नी नसलोंका घर है। और यह जानने लायक है कि, उस प्रान्तमें क्या हो रहा है और वहाँ ढोर उन्नति तथा रोग-नियंत्रणके लिये सरकारी प्रबन्ध क्या है।

मदरास और बम्बई आगे बढ़े हुए दूसरे प्रान्त हैं। मदरास प्रसिद्ध भारवाही नसलोंका जैसे अमृतमहाल और उसकी साथी हल्लीकर, कंगायम् तथा बरगूरका घर है। यह प्रसिद्ध दुधार नसल अंगोलका भी घर है। मदरासमें ढोर संवर्धनकी पुरानी परम्परा अभी है। वहाँ पेशेवर संवर्धकोंकी जातें अभी बची हुई हैं। यह लोग अपना पुराना संवर्धन व्यवसाय एकदम भूल नहीं गये हैं। इस कारण दक्खिनकी भारवाही और दुधार नसलोंका भारत भरमें नाम है। बम्बई प्रान्त कुछ श्रेष्ट दुधार नसलोंका घर है और अपनी धनी राजधानीके कारण बहुत महत्वपूर्ण है। युक्तप्रान्तकी सरकार आज अपने किसानोंके पशुधनकी उन्नतिके लिये पूरी तरह सजग है। यहाँ भारतकी बहुत रोचक और उपयोगी कुछ संस्थायें हैं। इस प्रान्तमें विस्तृत भूमिमें हरियानाका सरकारी संवर्धन-क्षेत्र है। कमसे कम सरकारी खर्चसे किसानको अच्छे साँढ़ देनेकी रीति इस प्रान्तमें है। और सबसे बड़ी बात इज्जतनगरमें केन्द्रीय गवेषण-संस्था होनेका गौरव भी इसे है। नया बना सिन्ध प्रान्त अपनी बहुत दुधार और शक्तिशाली भारवाही नसलोंकी वजहसे बड़ा है। भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें लालसिन्धीके लिये इज्जतका स्थान है। इसकी भारवाही भगनारी नसलका पंजाब तक में मान है। उत्तर पच्छिम सीमाप्रान्तकी सरकार पशु पालनमें पंजाबकी नकल कर बढ़ जानेका कठिन श्रम कर रही है। मध्यप्रान्त अपनी गावलाव नस्लसे बहुत अधिक संख्यामें अज्ञातकुल ढोरोंकी हालत सुधारनेका प्रयास कर रहा है। ये अज्ञातकुल ढोर वहाँके विस्तृत जंगलोंमें और उजाड़ोंमें दुर्दशाका जीवन बिता रहे हैं। बंगाल, बिहार, उड़ीसा और आसाम इन पूर्वी प्रान्तोंमें क्षीण-काय, भूखे और अज्ञात-कुल ढोर भरे हैं। पर बिहारके कुछ हिस्सोंमें अच्छे ढोर हैं। इन पूर्वी प्रान्तोंको पशुपालनका विषय बहुत सीखना है। अपने बहुत बड़ी संख्यावाले बेसँभाल दुर्बल ढोरोंके लिये चारेकी फसल उपजानेकी आदत डालनेका इन्हें कड़ा परिश्रम करना होगा।

बहुतसे अनुभवी लेखकोंने लिखा है कि जिन स्थानोंमें चराईकी कमी है और सूखापन है वहीं दूध और भारवहनके ढोर सब जगहसे श्रेष्ठ होते हैं। इसके उलटे, नीची धानवाली जमीनके स्थानोंमें जहाँ खास मौसमोंमें चराईकी बहुतायत होती है, ढोर होते हैं तो, पर हैं घटिया। प्रान्तोंकी जाँचसे इस बयानकी सचाई मालूम होगी। और हम जान सकेंगे कि यह क्यों है। आगेके पन्नोंमें मदरासके

गोपालनका विस्तारसे वर्णन होगा। यह प्रान्त बड़ा है और संवर्धनके तरीकोंमें काफी विभिन्नता है। मदरासकी संवर्धन, खिलाई और नसलोंकी हालतका अध्ययन करनेसे सारे भारतकी बात हम जान सकेंगे। और तब सभी प्रान्तोंका इतने विस्तारसे विचार करनेकी जरूरत नहीं रहेगी। यदि यहाँकी आजकलकी महत्व की बात जान ली जाय तो दूसरे प्रान्तोंके लिये यही यथेष्ठ होगा।

# मदरास

**१७५. घुमक्कड़ संवर्धक मदरासमें बस जाते हैं:** ढोर पालनेमें प्रकृति मदरासके अनुकूल है। जलवायु सम और स्वास्थ्यप्रद है। गाँवके बहुत निकटही चराईके लायक विस्तृत गोचर, जंगल और पहाड़ियाँ हैं। इसका उल्टा घनी आबादी की जगहें भी मदरासमें हैं जहाँ न काफी चरागाह है और न काफी वर्षा ही होती है, जिससे फसलोंके बारेमें लोग निश्चिन्त रहें। (११, १८७, ३६६-'७१)

**१७६. बाहरसे लाये बछड़े पालनेका व्यवहार:** सुदूर भूतकालमें श्रेष्ठ ढोरवाली निपुण संवर्धक जातियोंको अनुकूल परिस्थितियोंने आकर्षित किया। उनलोगोंने अपनी घुमक्कड़ वृत्ति छोड़ दी और उस देशमें बस गये, क्योंकि वहाँकी परिस्थिति उनके ढोर संवर्धन व्यवसायके उपयुक्त है। जिस अंचलमें वह बसे वहाँकी ढोरोंकी हालत अपने उद्योग और उपायोंसे उन लोगोंने सुधारी। बहुतसे स्थान इनके यहाँसे दूर थे। पर वहाँसे इनका व्यापारिक सरोकार था। इसलिये इनके संपर्कसे वहाँके ढोरोंका कोटि निर्माण हुआ।

अंतरवर्ती संवर्धकोंद्वारा बछड़ा पालनेकी इस प्रान्तकी एक प्रचलित प्रथा है। यहलोग बछड़ोंको दो या तीन वर्ष पालते हैं। फिर विभिन्न हाटोंमें बेच देते हैं। ये बछड़े भिन्न भिन्न स्थानोंमें पाले और काममें लाये जाते हैं। ढोरके पालन और कार्यके स्थानभेदसे उनके लक्षण, सामर्थ्य और आयुष्यमें भेद होता है। अगर दूसरे तरहकी आबहवामें ले जाकर बछड़ेका पालन किया जाय तो वह जल्दीही नयी हालतके अनुकूल बन जाता है। पर बड़े पशु ऐसा नहीं कर सकते। इस कारण और जलवायु तथा वर्षाकी परिवर्तित परिस्थितिके कारण मदरासके कुछ स्थानोंमें श्रेष्ठ नसलोंके अंचलसे बछड़े लाकर

लोग पाला करते हैं। अलग अलग स्थान अपनी जरूरतोंके मुताबिक किसी खास नसलके भारवाही पशु पसंद करते हैं।

१७७. **खास नसलोंके अनुकूल प्रदेश** : कहा जाता है कि कोयम्बतूरमें उत्तरका आलमबादी ढोर ६ से ७ वर्ष तक कमाता है। पर कोयम्बतूरका स्थानीय ढोर १० से १२ वर्ष तक कमाता है। और भी दक्खिणमें प्रौढ़ आलमबादी २ से ३ वर्षही अच्छा कमा सकते हैं; इसलिये उधर कम देखे जाते हैं। पर उत्तरी अंचलमें आलमबादी १० से १८ वर्ष कमाते हैं।

बछड़ोंके किसी जलवायु और देशके अनुरूप हो जानेका फायदा कई जगह उठाया जाता है। जैसे कि नेल्लूर, और गंटूरके पासके बरारके कपास वाली काली मिट्टीके जिलोंमें अंगोल नसूल जैसे भारी ढोरोंकी जरूरत है। अगर इन जिलोंमें गंटूर या नेल्लूरसे प्रौढ़ अंगोल ढोर लाये जाँय तो तुरत थक कर मर जाँय। पर अंगोल नसलके इन जिलोंमें पाले गये बछड़े १०से १२ वर्ष या जादे भी टिकते हैं। इस प्रान्तमें एक जिलेसे दूसरे जिलोंमें बछड़ोंकी रवानगीका कारण इस बातसे मालूम हो जाता है। इसके कारण अनेक फेरी वाले पशु-व्यवसायी और पालकोंको रोजी मिलती है। रैयत बछड़े सीधे नहीं खरीदते हैं। अन्तरवर्ती (आढ़तिया) उन्हें पालने और बेचनेके लिये खरीदते हैं।

१७८. **ढोरकी केन्द्रीय हाट—कोयम्बतूर** : मालाबारके व्यापारी कोयम्बतूरकी हाटमें इकट्ठे होते हैं और उत्तर तथा दक्खिनसे लाये बछड़े खरीदते हैं। क्योंकि कोयम्बतूर, प्रान्तके संवर्धन-स्थानोंके केन्द्रमें हैं। मलाबार ले जाये गये ढोर वहाँकी जलवायुके अनुरूप होकर वहाँके खेत जोतते हैं। जैसा धानके इलाकेमें हुआ करता है, मालाबारका ढोर घटिया होता है।

१७९. **सूखी और नम जगहोंके ढोर** : यह उल्लेखनीय बात है कि अच्छे मौसमी चरागाह और सरस घासवाली नम जगहोंकी अपेक्षा चारेकी कमीवाली सूखी जगहोंके ढोर हर तरह अच्छे होते हैं। पच्छिमी समुद्र तटपर बरसातमें सरस घास काफी होती है जो दूसरे मौसमोंमें सूख जाती है। पर बरसातका अतिरिक्त चारा सूखे महीनोंके लिये आजकी हालतमें, या शायद कभी नहीं बचाया जा सकता। पच्छिमी तट (मालाबार) के ढोर देखनेमें छीन और लक्षणहीन हैं। यह सही है कि मालाबारके ढोरभी अच्छे बनाये जा सकते हैं। इस दिशामें प्रयत्न भी हो रहे हैं। पर यहाँके ढोर साधारणत: छीन ही होते हैं। (१८४)

१८०. **ऐसे भाग जहाँ ढोर आमदनीकी सूरत माने जाते हैं :** दूसरी तरफ कंगायम्, उत्तरी सेलम और अंगोलके ढोर सूखी और अभावके जगहोंके हैं। शुष्कता, गोचरकी कमी अभाव आदिके लिये रैयत सारा ध्यान जमीनपर न लगा आमदनीके लिये ढोरोंकी ओर झुकता है। इसलिये वह लोग अपने पशुधनकी परवाह जादे करते हैं। अभावके दिनोंके लिये चारेकी हिफाजत करना वह जानते हैं और सूखी हवाके कारण इसमें उन्हें सुगमता होती है। वह अपने पशुओंकी हिफाजत पर पूरा ध्यान देते हैं। अन्तमें वह अपने पाले पशुओंसे रोजीभी पाते हैं। ढोरकी हिफाजत उनका स्वभाव बन गया है। नम जगहोंमें मौसमी बहुतायतके कारण और चारेकी हिफाजतमें आबहवाकी प्रतिकूलताके कारण ठीक उल्टा नतीजा होता है। (२५५)

१८१. **मिट्टीकी बनावटका प्रभाव : काली मिट्टी :** पशुओंके प्रकार और नसलपर मिट्टीका प्रभाव पड़ताहै। कितनेही प्रकारकी मिट्टी होती है। कपास वाली काली, लाल या हलकी, कुएँसे सींची, नम आदि मिट्टी होती है। कपास वाली काली मिट्टीके लिये भारी, धीमा और गहरा जोतने वाला ढोर चाहिये। यहाँ हर साल किसानको अपनी जमीनसे अच्छी उपज हाथ लगती है। यह लोग सुखी और भरे पूरे हैं। इनका ध्यान रहता है कि जमीन जोतनेके लिये काफी मजबूत ढोर लावें और पालें। यह लोग अपने ढोरसे जादे से जादे फायदा उठानेके लिये उन्हें अच्छी तरह खिलाते हैं। (२८६)

१८२. **हलकी लाल मिट्टी :** हल्की लाल मिट्टीमें किसानको खतरा रहता है। क्योंकि उसे अपनी खेतीकी सफलताके लिये अनिश्चित वर्षा पर ही भरोसा करना होता है। वर्षा कभी कभी धोखा देती है। बीज बोनेके दिन थोड़ेही होते हैं। इसलिये तेज चलनेवाले जानवरोंकी जरूरत होती है जिससे जल्दीसे जल्दी बोवाई पूरी हो जाय। भारी मिट्टीमें रहनेवाले ढोरसे इसके ढोर स्वाभाविक रूपसे घटिया और छोटे होते हैं। किसान अपने ढोरको पूरा चारा नहीं दे पाते, इसलिये बेचनेके लियेही बछड़ेके पालनेका मध्यम मार्ग पकड़ते हैं। बछड़े पालनेके दिनोंमें वह उनसे अपनी हल्की मिट्टी जोतनेका काम लेते है और इस तरह उनकी बढ़तीमें सहारा देते हैं। वह हिफाजतसे पाले जाते और १ या २ साल काम लेने पर जब पूरी बाढ़ पर आ जाते हैं तब बेच दिये जाते हैं। कभी कभी दुर्दिनके कारण पहलेभी बेच दिये जाते हैं।

**१८३. कुएँ से सींची जानेवाली जगहें :** कुएँ से सिंचाई वाली जगहोंमें कुएँसे पानी भरनेके लिये भारी प्रकारके ढोरकी जरूरत होती है। कितनी शक्ति चाहिये यह कुएँकी गहराई और उस इलाकेमें काममें लाये जानेवाले डोलोंके आकार पर निर्भर है। काली मिट्टी जोतनेवाले बैल जब जुताईमें असमर्थ हो जाते हैं तब पानी भरनेके मोट खींचनेके काममें लाये जाते हैं। ऐसी जगहोंमें उम्रके बढ़नेपर ढोर एक आदमीसे दूसरे आदमीके पास चले जाते हैं।

**१८४. नम जगहोंके लिये हलका ढोर :** धानके खेत या नदीके पंखों (deltas) जैसी नम मिट्टीकी जुताईके लिये हलके पशु चाहिये। नहीं तो मुलायम मिट्टीमें पशुओंके पैर धँस जाँय और काम नहीं कर सकें।

इसलिये हाटके छँटे हुए बुरेसे बुरे ढोर ऐसे अंचलोंमें आते हैं। वहाँ खेतकी तैयारीके लिये जरूरी कीचड़ करनेकी अस्वास्थ्यकर हालत और कठिन परिश्रमसे वह जल्दी ही मर जाते हैं। उनकी जगह फिर भरी जाती है। (१७१)

**१८५. गोचर और चारा : जंगलकी चराई :** मिट्टीके लक्षण और उसके खनिज अंशकी भिन्नतासे उस मिट्टीपर उगी वनस्पतियोंके प्रकारभी भिन्न भिन्न होते हैं। उन स्थानोंमें पाले ढोर पर भी इसका असर होता है। उदाहरणके लिये मालाबार की जमीनमें उगी वनस्पति चरने और खानेवाले ढोरमें खनिज तत्वकी कमी रहती है। क्योंकि वहाँ की मिट्टीमें इसकी कमी है। मिट्टी और चारेमें चूनेकी कमीके कारण वहाँ के ढोर तब तक बड़े आकार और मोटी हड्डीवाले नहीं हो सकते जब तक उन्हें खूँटेपर पौष्टिक और खनिज चारा नहीं खिलाया जाय। इसके विरुद्ध मदरासकी दो बहुख्यात नसलें पैदा करनेवाले कंगायम् और अंगोलके ढोर ऐसी मिट्टीपर पाले जाते हैं जो चूनेसे पूरी है।

**१८६. आबहवा और वर्षाका प्रभाव :** किसी अंचलमें पाये जानेवाले ढोरकी प्रकृति पर मिट्टीकी बनावटके अलावे आबहवा और वर्षाका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसके सिवा एक ही आबहवा और मिट्टीपर एक ही तरहके चारेसे पाले जानेवाले ढोरोंमें बहुत बड़ा भेद प्रबन्धके कारण होता है। उदाहरणके लिये मदरास के कई जंगल हैं, जिनमें ढोरोंको खिलाकर पालनेकी शक्ति है। कई वर्गके लोग इससे कितने तरहका फायदा उठाते हैं। इसके फलस्वरूप एकही जंगल उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनों तरहके ढोरोंके काममें आता है। प्रबन्धमें पूँजी लगानेकी शक्ति और ढोरकी देखभाल भी शामिल हैं।

**१८७. जंगलमें संवर्धनके पक्षमें पेशेवर संवर्धक :** ढोर संवर्धन जिनका पेशा है और जो इससे अच्छी आमदनी करते हैं तथा जिनके पास बढ़ा संवर्धक ठठ्ठ रखनेके लिये काफी पूँजी है, ऐसे नियमित संवर्धक अपने और अपनी नस्लके ढोरके जादेसे जादे फायदेके लिये जंगलसे काम लेते हैं। कोल्लेगलके आसपासके उत्तर भवानी, धरमपुर और होसुरके जंगलोंसे व्यापारी संवर्धक जितना हो सकता है फायदा उठाते हैं। यह संवर्धक इन जंगलोंमें अपने ढोर भेज देते हैं जहाँ वह बाड़ोंमें रहते और चरते हैं। ये चतुर संवर्धक सिर्फ मादा और छोटे बछड़ोंकोही ठट्ठके वरण किये हुए साँढ़के साथ भेजते हैं। ठट्ठमें कोई दूसरा नर नहीं दिखाई देगा। १ और २ बर्षके बीचके सभी बछड़े बेच दिये जाते हैं। इस कारण सिर्फ वरण किये साँढ़के सिवा गरमायी गायको दूसरा कोई नहीं फला सकता। एक और दो वर्षके बीचके बछड़े दूसरे वर्गके व्यापारियोंके हाथ बेचे जाते हैं। यह लोग इन्हें पालकर फिर बेच देते हैं। इससे संवर्धकोंको पैसे मिलते हैं। विचार बुद्धिसे प्रबंध करनेके कारण ठट्ठ शुद्ध और दुरूस्त रहता है। ऐसे बछड़ोंका बहुत दाम होता है। सारे उत्तरी कोयम्बतूर, उत्तरी सेलम्, पच्छिमी चित्तूर और मैसूर राज्यसे लगे हिस्सेमें जंगलके जन्मे इन बछड़ोंका पालना बहुत महत्वका धन्धा है। इस प्रबन्धसे ये भारी भारवाही ढोर बहुत बड़े इलाकेको मिला करते हैं। वह कोयम्बतूर, चित्तूर, उत्तरी और दक्खिनी आरकट तथा दूसरे जिलोंमें जाते हैं। पर इनके चुनिन्दे बैल तो भारी रथों (सवारी की गाड़ियों)में जोतनेके लिये और भी दक्खिन, तंजूर, त्रिचनापल्ली, मदुरा, तिनावली तक जाते हैं।

ये समझदार संवर्धक साँढ़के लिये बहुत आग्रही होते हैं। इन्हें मालूम है कि अगर सतर्क नहीं रहें और कोई अँड़िया बैल गायके लगावमें आ गया तो ठट्ठ भ्रष्ट हो जायगा। सूखे मौसमोंमें जंगलकी चराई संतोषप्रद नहीं होती। ढोर दुबले हो जाते हैं पर किसी तरह जीते रहते हैं। बरसात शुरू होनेपर उनकी देहपर माँस चढ़ जाता है। (११, १४४, १७५, ३६९-'७१)

**१८८ : भद्राचलम्के गोचरमें संवर्धन :** गोदावरी जिलेके भद्राचलम् जंगलमें भेदभावके बिना एक साथ चराईकी प्रथा है। यहाँ गये बीते पशु पैदा होते हैं। यहाँ एकसे दो वर्षके बछड़े नहीं बेचे जाते। कोई इन्हें पालनेके लिये लेना नहीं चाहेगा। बछड़े ठट्ठके साथही पलते हैं और जब तक पूरे जवान नहीं होते, रखे जाते हैं। फिर कम दाममें बेचे जाते हैं।

१८९. **जंगलके पासके गाँवके ढोर :** इन वर्गके ढोरोंके अलावा जंगलमें चरनेवाले ढोरका एक दूसरा वर्ग है। यह जंगलके किनारेके गाँवोंसे आते हैं। ऐसे मामलोंमें आम तरीका शामिल चराईका होता है। यहाँ गाय बैल और हर तरहके ढोर एक साथ मिलकर चरते हैं। और मनमाना समागम करते हैं। फलस्वरूप ढोर भ्रष्ट हो जाते हैं। यह देखा गया है कि जंगलके जितनाही पास गाँव होता है उतने निम्न कोटिके ढोर होते हैं।

१९०. **पेशेवर चरवाहों द्वारा चराई :** जंगलकी चराईकी एक विधि और है। इसमें एक वर्गके लोग गाँवके ढोर इकट्ठा करके जंगलमें चरानेके लिये ले जाते हैं और फी 'मूड़' (पशु) मामूली चरवाई लेते हैं। खेतीके मौसममें यह समय पर लौट आते हैं। रैयत अपने ढोरकी संभाल ठाले समयमें कम खर्चमें कर लेता है। अगर जंगल सरकारी है तो चरवाहे पर कोई बंधन नहीं। वह अपने जिम्मेके ढोरको चाहे जो कर सकता है। चाहे जैसे गये बीते अविकशित साँड़से मनमाना समागम हुआ करता है। पर सिर्फ यही एक बात नहीं है। चरवाहा अपने साथ लाये पशुओंकी जानका जवाबदेह नहीं और अक्सर चमड़ेके लिये वह कुछको मार अपना झंझट कम कर लेता है। मालिकको खबर कर देना कि, उसके इतने पशु मर गये, काफी होता है। जब चमड़ेका बाजार दर चढ़ता है तब मौतभी जादे होती है।

मदरासमें लोगोंके पास निजी गोचर भी हैं, जैसेकि नेल्लूर जिलेमें। यहाँ व्यक्तिगत मालिकोंके गोचरोंकी अच्छी रखवाली होती है और चरवाहे यद्यपि अधिक चरवाई लेते हैं पर ढोर पर ध्यान भी अधिक देते हैं। ऐसे गोचरोंपर ढोरकी हालत अच्छी रहती है और मौत भी कम होती है।

१९१. **गाँवके मैदानमें चराई :** मदरासमें भी दूसरे प्रान्तोंकी तरह गाँवके मैदान (गैरमजरुआ आम) हैं जहाँ गाँवके ढोर चरनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं। ऐसे मैदानोंमें इतनी भीड़ होती है कि और कुछके बदले उसे कसरतका मैदान माना जा सकता है।

१९२. **चारा उपजाना :** कुल इलाकों, खासकर कोयम्बतूर, सेलम, उत्तरी आरकट और त्रिचनापली में गोचरोंकी निरंतर घटती और कुएँकी सिंचाईकी बढ़तीके कारण से चारा पैदा करनेकी परिपाटी बढ़ रही है। जहाँ कहीं यह परिपाटी फैल गयी है वहाँ पहलेसे अच्छी खिलाई और फलस्वरूप अच्छे प्रबन्धके कारण ढोरोंकी

तरक्की हुई है। ऐसे ढोरकी कीमत अच्छी मिलती है और वह रैयतोंकी आमदनी की सूरत हो गयी है। सच पूछो तो चरागाहको जोत लेना अभिशापके बदले वरदान हो गया है। कोयम्बतूरमें खेतमें बाड़ा (fencing) लगानेकी उत्कृष्ट प्रथा है। वहाँ चारा उपजानेका फल देखा जा सकता है। वहाँ गड़बड़ और मनमानी समागमका कोई संयोग नहीं और खिलाईका नियंत्रण बाड़ेदार गोचरोंमें बारीसे चराकर हो सकता है।

**१६३. अन्नका पुआल चारेका काम देते हैं :** रामनाद, मदुरा और तिनेवली जिलोंमें कम्बोडिया कपासके प्रचारसे चारे की कमी थी। किसानोंने देखा कि अगर वह खेत सींचकर फेरेसे कपास और अन्न बोयें तो कपासकी उपज जादे हो सकती है। इसकी वजहसे उन्हें चारा, अपने लिये अधिक अन्न और कपास जैसी फसलसे नगद रुपया पाना निश्चित हो गया है। हरे चारे या ढोरको खिलानेकी गरजसे उपजाये, बिना दाना निकाले चारेमें जितना गुण है उतना सूखे पुआलमें नहीं है। फिरभी उसमें कुछ आहार तत्व रहता ही है और वह ढोरको कुछ नहींके बदले कुछ तो देता है। धानके नम प्रदेशोंमें धानके पुआलका पोषक गुण कितना ही कम क्यों न हो, उसके पुआलसे वहाँके ढोरकी बहुत भलाई होती है। पर इस मामलेमें भी जगह जगहका भेद है। दक्खिन कन्नड़ नम स्थान है। पर यहाँ पुआल अच्छा होता है। खेतीकी स्थिति भी उन्नत है। पर मालाबारमें खेती मामूली है। विरल उपजे धानको आधी ऊंचाईसे काटते हैं, जिससे आधा पुआल खेतहीमें रह जाता है। इस भूलका बुरा असर ढोरोंके स्वास्थ्य पर होता है।

**१६४. उपजाया चारा :** प्रान्तके दो छोरों—उत्तरी (नदीके) पंखों और एक दम दक्खिनमें कपासकी काली जमीनमें—चारेकी फसल उपजायी जाती है। उत्तरी भागमें धान काटनेके बाद चारेके लिये सनई उपजायी जाती है इस भागमें धान बोनेके पहले मुख्य फसलके रूपमें चारेके लिये ज्वार उपजाते हैं। उत्तरके अंगोल नसलके गंटूर इलाकेमें 'भैरीगा' (Panicum Maleiacum) खास चारा है। यह अल्पकालिक और निश्चित फसल है। एकदम दक्खिनकी कपासकी काली जगहमें ज्वार खासकर चारेके लिये उपजाया जाता है।

**१६५. मदरासमें संवर्धन और पालन :** सारे मदरास प्रान्तमें अगल बगल दो तरहके ढोर पाये जाते हैं एकका संवर्धन सावधानीसे होता है। गायोंको

खूँटे पर खिलाया जाता है अथवा कुछ मौसमोंमें खूँटे पर खिलाते हैं और कुछमें चराते हैं। पर तौभी गायोंको साँढ़ोंसे अलग रखा जाता है जिससे मनमाना समागम न हो सके। दूसरे तरहके गाय बैल एक साथ चराये जाते हैं। इसमें समागम पर कोई नियंत्रण नहीं रहता और न साँढ़का चुनाव ही हो सकता है। साधारण तौर पर रद्दी साँढ़ समागम कर भ्रष्ट संतान पैदा करते हैं। जहाँ संवर्धनके लिये वरण किये साँढ़ होते हैं और गायोंकी खास हिफाजत की जाती है, ढोरोंका आकार और बल बढ़ जाता है। पर बेहिफाजतकी गायोंका किसी साँढ़से मनमाना समागम होनेसे सिर्फ रद्दी और भ्रष्ट पशु ही बढ़ते जाते हैं। (१४१)

१६६. **डोड्डादाना और नाडूदाना :** मैसूर और पच्छिमी तटके दो प्रसिद्ध संवर्धक अंचलोंमें भी ये दोनों प्रकार साथ साथ होते हैं। एक डोड्डादाना या बड़ा ढोर कहा जाता है। यह सब बड़े कदके सुडौल ढोर हैं। इनके आकार और रंग एक तरहके होते हैं। दूसरा नाडूदाना या देशी ढोर है। इनका आकार छोटा और रंग भिन्न भिन्न होता है।

डोड्डादानाके संवर्धनके लिये अच्छे पसंद किये साँढ़से ठट्ठका समागम कराया जाता है। यह साँढ़ गाँवमें ही रखे और घर पर खिलाये जाते हैं। चरनेके लिये जब ठट्ठ जंगल जाते हैं तब साँढ़ उनके साथ भेजे जाते हैं। इन साँढ़ोंमें अधिकांश मन्दिरोंमें चढ़ाये हुए होते हैं और पवित्र माने जाते हैं। कभी कभी जरूरी होनेसे ऊँची कोटिके साँढ़के बछड़ेसे समागमका काम ले लिया जाता है। एक खास वर्गके लोग डोड्डादानाके छोटे बछड़ोंको खरीदकर गाँवमें पालते हैं। बेचनेके लिये उन्हें पाला जाता है। बेचनेके पहले उन्हें बधिया करके हलमें हारी कर लेते हैं। जबतक उन्हें बधिया नहीं किया जाता, उन्हें समागम करने देते हैं। कहा जाता है कि प्रौढ़ साँढ़के बच्चेकी तरह इनके बच्चे अच्छे नहीं होते। प्रजनन-शास्त्रके अनुसार यदि महीनेमें कुछही समागम कराया जाय तो पोगंड (अप्रौढ़) साँढ़से भी समागम करानेसे कोई हानि नहीं हो सकती।

दूसरे निम्नकोटिके ढोर भरे पड़े हैं। यह किसी तरहके भी रद्दी साँढ़के समागमसे पैदा होते हैं। इस वजह ढोर बराबर विकृत ही होते जाते हैं। (१४१)

१६७. **डोड्डादाना संवर्धनके लिये अच्छे साँढ़ :** अमृत-महाल, हल्लीकर, कंगायम्, आलमबादी और अंगोल डोड्डादाना यानी श्रेष्ठ नसलें हैं। अगर चढ़ाये या ब्राह्मणी उपयुक्त साँढ़ यथेष्ठ नहीं मिल रहे हैं तो कहीं कहीं गाँववाले मिलकर

चन्देसे साँढ़ पालते हैं। आपसी सलाहसे ऐसे साँढ़ पाले जाते हैं। उन्हें फसलोंमें बेरोक चरने दिया जाता है। साधारण तौर पर वह ठट्ठके साथ ही चरने चले जाते हैं और उनके साथ लौट आते हैं। रातको या चरने जानेके पहले सबेरे सानी खाते हैं। इसलिये ऐसे साँढ़ जब ठट्ठोंके साथ चरने जाते हैं तो वहाँकी मामूली चराईकी परवाह नहीं करते।

अच्छी नस्लों की गायें अक्सर खूँटेपर ही खिलायी जाती हैं और सबसे अच्छे साँढ़ उनके लिये ढूंढ़कर लाये जाते हैं।

अंगोलके संवर्धन-अंचलोंमें अधिकांश साँढ़ ब्राह्मणी हैं। विजगापट्टम् की तरह कुछ संवर्धक वरण किये साँढ़ पालते हैं। इसका प्रत्यक्ष फल यह है कि वहाँ ऊँचे दामके ढोर हैं। इस इलाकेके साँढ़ अंगोल नस्लके हैं।

कंगायमके संवर्धन भागमें ब्राह्मणी साँढ़ एक भी नहीं है। वहाँके संवर्धक धनी हैं और केवल प्रथम श्रेणीके साँढ़ पालते हैं। बादमें जब इस नस्लका वर्णन होगा तभी इसका संवर्धन विस्तार से बताया जायगा। इस तरफके गरीब लोग अपनी गाय फलानेके लिये नामी संवर्धकोंके यहाँ ले जाते हैं। ऐसी हालतमें आम तौर पर यह शर्त रहती है कि अगर बछड़ा पैदा हुआ तो उसे साँढ़वालेके हाथ बेच देना होगा। (१४१)

१६८. **अच्छे साँढ़ कई तरहसे प्राप्त किये जाते हैं :** कोयम्बतूर और उत्तर सेलमकी तरफ जिला-बोर्ड साँढ़का प्रबंध करने लगे हैं। इसे "प्रीमियम सिस्टम" (premium System) कहा जाता है। सहयोग समितियाँ, कृषि समितियाँ और ग्राम पंचायतें भी अपने सदस्योंकी भलाईके लिये साँढ़ खरीदने लगी हैं। मदरास सरकारकी साँढ़ प्रीमियम योजना में साँढ़ पालनेवालोंको तीन वर्षतक ९० रु० प्रति वर्ष प्रीमियम देनेकी मंजूरी है। शर्त यही है कि साँढ़के लिये घर हो, उसे पाला जाय और सालमें कम से कम ४० गायें जरूर फलायी जायें।

दक्खिनी जिलोंमें ब्राह्मणी या मंदिरोंमें चढ़ाये साँढ़ नहीं होते। किसानोंको केवल संवर्धन के लिये साँढ़ पालनेमें कठिनाई मालूम होती है। इसलिये उन्हें ऊँची श्रेणीके अँड़िया अप्रौढ़ साँढ़ पर ही भरोसा करना होता है। इन्हें पीछे बधियाकर बेच देते और नये बछड़े खरीदते हैं। मदुरामें कुछ ब्राह्मणी साँढ़ भी हैं। साथही बहुत अच्छे प्रकारके भी कुछ साँढ़ पाले जाते हैं। यह एक प्रकारके बदा बदीके खेलके लिये होते हैं जिसे देखने झुंडके झुंड लोग उत्साहसे

आते हैं। इस तरफ भी सरकारी प्रीमियम योजना जारी है पर प्रगति धीमी है।

पहले ही कहा जा चुका है कि पच्छिमी तट ढोर संवर्धनमें उदासीन है। ढोर ठिंगने या नाटे होते और गायें अक्सर बछड़ोंको तन्दुरुस्त रखने लायक भी दूध नहीं देतीं। यह बात पच्छिमी तटकी ही विशेषता नहीं है। धान वाले अनेक नम भागोंकी यह विशेषता है। फिर भी पच्छिमी तटवालोंमें परिवर्तन हो रहा है। लोग ऊँचे दर्जेके साँढ़ स्थानीय पशुओंके संवर्धन और कोटि निर्माणके लिये खरीद रहे हैं। सिंधी साँढ़ यहाँ पसन्द किया जाता है। अनेकोंका उपयोग यहाँ किया जा रहा है। इसका व्यवहार बढ़ रहा है।

तंजूरके कुछ जमींदार बिलकुल ही दूसरे मतलबसे अच्छे साँढ़ पालते हैं। ढोरवालोंको उकसाया जाता है कि धनहर खेतोंमें चरनेके लिये अपने ढोर भेजें। जमींदारोंके पाले ऊँचे दर्जेके साँढ़से मुफ्तमें इनकी गायका समागम हो जाता है। चराईका न्योता खेतको गोबरानेके उद्देश्यसे दिया जाता है। अच्छे साँढ़वालेके यहाँ सबसे जादे ढोर जमा होकर उसके खेत गोबराते हैं। (१४१)

१६६. **ढोरका व्यवसाय :** नेल्लूर, गंटूर और सारे उत्तरी जिलेका ढोर-व्यवसाय नेल्लूरके रेड्डियोंके हाथमें है। उनके व्यवसायकी चार मुख्य दिशायें हैं :

(१) भद्राचलम्का व्यवसाय। यहाँ पंखेके (नदीके) हिस्सोंके लिये नम जमीनवाले ढोर बाहरसे मँगाये जाते हैं। यह सब पूर्वी गोदावरी जिलेके गोदावरीके किनारे भद्राचलम्के वन-पालित अर्ध जंगली बिना हारी किये ढोर हैं।

(२) कड़प्पा और कुरनूल जिलेका व्यवसाय : पूर्वी तटके जिलों और मैसूर राज्यके बीचका यह छोटा प्रदेश है। दक्खिनके ढोर कड़प्पा और उत्तरसे कुरनूल लाये जाते हैं।

(३) मैसूर राज्यके उत्तरके अनन्तपुर और बेलारी जिलेमें मैसूरसे ढोरकी आमदनी होती है।

(४) मध्यप्रान्त और हैदराबाद से वन-पालित पूरी बाढ़के ढोर निजाम-मुल्क जिलों और धरवाड़के आगे तक ले जाये जाते हैं।

उत्तरी जिलोंमें यह व्यापार कुलका कुल रेड्डियोंके हाथमें है। वहाँको विशेषता यह है कि रेड्डी लोग रैयतोंको ३ वर्षकी मुद्दतपर बछड़े उधार देते हैं। उधारके तरीके में कई सुभीते हैं, साथ हो जानी हुई कई दिक्कतें भी हैं। इस तरीके के

कारण उस तरफ़ ढोरोंकी कोई हाट नहीं बन सकी है। इसलिये खरीदनेवालोंको पसंद करनेकी कम गुँजाइश रहती है। (२५१, २५५, ३०४)

**२००. मदरास नगरके लिये अंगोल गायें :** मदरास नगरमें दूध देनेके लिये नेल्लूरके व्यवसायी अंगोल गायोंका भी व्यवसाय करते हैं। रेड्डी व्यवसायियोंके दलाल घर घर जाकर गायें पसन्द करते हैं। यह सब गाँवके छायादार पेड़ोंके नीचे लायी जाती हैं। वहाँ व्यापारी रेड्डी आखरी पसंद कर सौदा पटाकर खरीद लेता है। गंटूर जिलेके गाँव गाँवमें जाकर वह लोग यह सब करते हैं। गायें रेलसे मदरासके पास तिरुवल्लूयारमें इकट्ठी की जाती हैं। शहरके व्यवसायी आकर इन्हें थोक खरीदते हैं और शहरके ग्वालोंको देते हैं। शहरके ग्वालों या दूध बेचनेवालोंको व्यापारी लोग गायें उधार देते हैं। गरीब ग्वाले अपने कर्जेसे शायद ही कभी उबरते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अपने लोभ और कायमी कर्जदारीके सबब वह दूधमें पानी मिलाते ही रहते हैं। व्यापारी ग्वालोंको चूस रहे हैं और उन्हींको बदौलत मोटारहे हैं। गाय जब बिसुक जाती है तब कुछ रुपये लेकर उसे बदल देनेके लिये ग्वाले व्यापारियोंका मुंह जोहते हैं। अंगोल जैसी श्रेष्ठ नस्लकी ये गायें जिनके लिये सब ललचाते हैं, बिसुकनेपर कसाइयोंके हाथ मदरासके कसाईखानोंमें पँहुच जाती हैं। लगभग २,५०० गायें हर साल नगरमें लायी जाती हैं। बहुमूल्य गायोंकी यह मूर्खतापूर्ण और चकित करनेवाली हानि सालोंसे होती आ रही है। बिसुकी गायोंको चरनेकी जगहोंमें कम किये हुए रेल भाड़ेसे वापस भेजनेका अब प्रबन्ध हुआ है। पर इस तरह बचायी गायोंकी संख्या मामूली है। क्योंकि ऐसे काम हो रहे हैं जिनसे गाय फिर गाभिन होने लायक नहीं रहती। बछड़े तो नियमित रूपसे खतम ही होते हैं। बहुतसे बछड़े भूखों मर जाते हैं। और जो बचते हैं अपने ठेठ पनपनेके समय भूखों रहनेसे बेकाम हो जाते हैं। इस तरह सिर्फ मदरास ही नहीं, कलकत्ते और बम्बई आदिमें राष्ट्रकी अपरमित हानि हो रही है। इस बारेमें काफी दिनोंसे बहुत चर्चा चल रही है पर कोई उपाय नहीं सूझा। (६७)

**२०१. दक्खिनमें ढोर व्यवसाय :** दक्खिनके जिलोंमें ढोर व्यवसाय उत्तरसे भिन्न है। दक्खिनमें ढोरोंके मेले और हाट महत्वके दृश्य हैं। इन बजारोंमें काफी खुदरा काम होता है। इस व्यवसायमें उत्तर आरकट और सेलमके चेट्टी (सेठी) सबसे मुख्य हैं। यह लोग पालनेवाले जगहोंमें खरीदते और दक्खिनीमेलों

और हाटोंमें बेचते हैं। कुछ धनी 'बल्लाल' व्यापारी नगदी खरीद करते और चुनेहुए ढोर ले लेते हैं। कुछ मुसलमान व्यापारी घटिया ढोरकी तिजारत करते हैं। पुल्लाचीके कुछ तेलगु चेट्टी और कोयम्बतूरके कुछ मधुवंदी भी मुख्य व्यापारी हैं।

कोयम्बतूर एक तरहकी केन्द्रीय विनिमय हाट है। यहाँ पर चढ़ती उमरमें काली मिट्टीकी खेतीमें खटनेवाले दक्खिनके अधवयसू ढोर मोट खींचनेके लिये फिरसे बेचे जाते हैं। लौटकर कोयम्बतूर आनेपर यह मोटमें अच्छा चलते हैं।

दक्खिनके मेलोंमें मैसूर राज्य, उत्तरी सेलम और कंगायम्के ढोर मुख्य आकर्षक हैं।

एक मेलेसे दूसरेमें और एक दिशासे दूसरी दिशामें ढोर लेजानेके व्यापारी-लोगोंकी नियमित राह है।

२०२. **अंगोल अंचलकी जाँच** : भारतके ७ प्रसिद्ध नस्लोंके दुधार ढोरोंके इलाकोंमें भारत सरकारके आदेशसे गायोंकी हालत, उनकी दूधकी उत्पत्ति और खपतकी जाँच की गयी। जो सात इलाके चुने गये वह मन्टगुमरी और हरियाना का पंजाबमें, कोसी का युक्तप्रान्तमें, कांकरेजका बंबईमें, अंगोलका मदरासमें और उसी तरहके दो बिहार और मध्यप्रान्तमें हैं। जाँच सन् १९३६की सितम्बरमें शुरू की गयी और सन् १९३७ की जनवरीमें पूरी हुई।

अंगोल इलाकेकी बातोंपर यहाँ विचार किया जायगा। अंगोल इलाकेके बारेमें जितनी बातें अब तक मालूम थीं, जाँचकी रिपोर्टने उन्हें ही और विस्तारसे प्रकाशित किया है। उन्हें दूसरे इलाकोंकी बातों और आँकड़ोंकी तुलनामें साथ साथ रखा है।

अंगोलका हिस्सा दक्खिन भारतकी सर्वश्रेष्ठ दुधार नसूलका घर है। इसलिये वह जाँचके लिये चुना गया था। यह भाग कृष्णा, गन्टूर और नेल्लूर तक फैला हुआ है। समुद्रतटसे शुरू होकर यह १०० मीलतक फैला हुआ है। इसकी उत्तरी सीमा पर कृष्णा और मन्नेरू नदियाँ हैं।

इस भागमें काली दुमट (heavy) जमीन है, जिसमें चूना काफी है। औसत वर्षा ३० इंच है। यहाँ की स्थिति पशु संवर्धनके अनुकूल मानी जाती है। इस भागके ५० गावोंकी जाँच की गयी। और हरेक गाँवमें बिना सोचे २० चक (holding) चुने गये। जितने इलाकोंकी जाँच हुई उनमें केवल अंगोलके ही सब चकों में किसानोंके पास गायें थी। पर इसेही सारे मदरास प्रान्तकी दूध उत्पत्तिका साधारण चित्र मान लेना भ्रमात्मक होगा।

पर प्रसिद्ध अंगोल नसूलको पालनेवाला यह इलाका निराला है और इसकी अपनी भी कुछ विशेषताएँ हैं। दूध देनेके कुछ मामलेमें यह भारतमें किसीसे कम नहीं है। आलोचनाके समय ये बातें भी आगे आयेंगी। (६७, २५८, २६६, २८७, ३०२, ३३६, ३४४)

**२०३. अंगोल इलाकेके चक** (holdings) **और ढोर :** इस इलाकेका साधारण चक २३ एकड़का होता है। यह ऐसी बात है जिसे बिहार और बंगालकी घनी आबादीके किसान सपनेमें भी नहीं सोच सकते। हर चक पर ६.९ आदमी हैं जिनमें ३.७ पुरुष और ३.२ स्त्रियाँ हैं।

६.९ आदमीके परिवारके २३ एकड़को जोतनेके लिये अंगोलके लोग २.६४ बैल रखते हैं। इसका माने यह है कि यहाँ एक जोड़ा बैल १८ एकड़ जमीन जोतते हैं। यह भी ऊँचा आँकड़ा है जो बम्बईके काँकरेज इलाकेसे दूसरे नम्बर पर है। वहाँ एक जोड़ा बैल २५ एकड़ जोतते हैं।

इस इलाकेमें ६.९ आदमीवाला प्रत्येक चक २.२ मूड़ गाय और १.९ मूड़ भैंस या ४.१ मूड़ दुधार ढोर पालता है। यहभी बड़ा आँकड़ा है और केवल काँकरेजसे दूसरे नम्बर पर है। इस इलाकेमें प्रति मनुष्य दूधकी उत्पत्ति सबसे अधिक है, यानी ३५.३३ आउन्स है। दूध और दूसरे गव्योंकी खपत ८.७३ आउन्स है। अतिरिक्तका घी बेचा जाता है।

## आँकड़ा—११

२०४. सातों संवर्धक इलाकोंमें खेती और दूधकी उत्पत्तिके सिलसिलेमें ढोरकी स्थितिका विवरण :

| इलाका | प्रति चकपर औसत आदमी पु० | स्त्री० | कुल | आबाद एकड़ प्रतिचक एकड़ | प्रतिबैल एकड़ | संख्या प्रतिचक गाय | भैंस | कुल | दूधका प्रतिशत गाय | भैंस | प्रति पशु दूधकी उत्पत्ति आउन्समें | प्रति मनुष्य गव्योंकी खपत आउन्समें |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मन्टगुमरी | ३·८ | ३·१ | ६·९ | २२·६ | ६·१ | १·० | २·१ | ३·१ | ४० | ५० | २६·११ | १५·५३ |
| हरियाना | ३·७ | ३·१ | ६·८ | १२·८ | ७·० | ०·९ | १·१ | २·० | ३१ | ८३ | ३१·०३ | १२·३९ |
| कोसी (यू.पी) | ३·३ | २·८ | ६·१ | ११·७ | ७·० | ०·९ | १·४ | २·३ | ३३ | ६४ | २१·३२ | ९·७१ |
| बिहार (दियारा इलाका) | ४·७ | ४·३ | ९·० | ६·९ | ३·६ | १·४ | ०·५ | १·९ | ५५ | ५६ | ७·८५ | ५·५१ |
| मध्यप्रान्त | ३·२ | ३·३ | ६·५ | २१·९ | ६·६ | २·१ | १·१ | ३·२ | २२ | ५७ | १३·३८ | ६·७३ |
| कांकरेज (बंबई) | ३·१ | ३·० | ६·१ | २१·४ | १२·६ | २·६ | १·६ | ४·२ | २२ | ५७ | २९·८८ | १२·०७ |
| अंगोल (मदरास) | ३·७ | ३·२ | ६·९ | २३·२ | ९·० | २·२ | १·९ | ४·१ | ५५ | ५५ | ३५·३३ | ८·७३ |

**२०५. अंगोल इलाकेमें दूधकी उत्पत्ति और खपत :** जाँचसे कुछ बड़े महत्वके निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। लोगोंकी गरीबी साफ झलक गयी। अंगोल इलाकेमें एकभी चक दुधार पशुके बिना नहीं है। प्रति मनुष्य दूधकी उत्पत्ति अधिक से अधिक ३५·३३ आउन्स है। इसलिये ६·९ व्यक्तिके परिवारकी कुल उत्पत्ति एक दिनमें प्रायः १५ रत्तल हुई। फिरभी जिस स्थानमें हर चक पर इतना दूध होता है, वहां कुछ चकका दूध सबका सब बेच दिया जाता है। बच्चों के लिये भी कुछ नहीं रखा जाता। ऐसे बिना खपतवाले दूध पैदा करनेवाले चककी संख्या सैकड़े १० है। (६७)

**२०६. मद्रासमें पशु संवर्धनकी आजकी स्थिति :** मद्रासके ढोरका साधारण वर्णन बन्द करनेके पहले यह कह देना जरूरी है कि दूसरी जगहोंकी तरह मद्रासमें भी मनुष्योंकी बढ़ती गरीबीके साथ गायोंकी उपेक्षा बढ़ रही है। पददलित और लाचार किसानको मजबूर होकर पहले कामवाले पशुओंकी फिकर करनी होती है और उसके बाद बछड़ोंकी। आधापेट खानेवाली माँके बच्चे साँढ़ और बैल जैसा होना चाहिये नहीं हो सकते इसके बाद गये गुजरे साँढ़से औरभी गये गुजरे बच्चे पैदा होंगे।

**२०७. अन्न और रुपयेकी फसल :** रैयत चाहता है कि उसकी ब्याने वाली गाय, गोचरोंमें, गाँवकी गलियोंके किनारे, पासकी परती जमीनों या मैदानोंमें जितना चर सके चरले। सबेरे भटकनेके लिये जब वह निकली थी, उस समय जैसी भूखी थी वैसी ही भूखी वह लौटती है। रातके लिये कुछ पुआल रैयत उसके आगे फेंक सकता है। आजकल अपने पशुओंको खिलानेकी उसे सामर्थ्य नहीं है। हर जगह गायकी उपेक्षा होती है और यही साधारण दृश्य है। रैयत अपने ढोरके लिये चारा नहीं उपजा सकता। जिस अन्नका पुआल ढोरको खिलानेके काममें आता है अब वह धीरे धीरे कम उपजाया जाने लगा है। रुपये की फसल उपजानेका जोर जादे है। यद्यपि रैयत रुपयों की चिन्तामें रहता है, पर वह (रुपया) अधिकाधिक उड़ता जा रहा है।

**२०८. मद्रासकी नस्लोंके लिये संभावनायें :** ढोरोंकी असंख्य दयनीय और जीती ठठरियाँ भूखी और उपेक्षित देखी जा सकती हैं। इनमेंसे अनेक किसी कामकी नहीं और हल्कीसे हल्की जुताईमेंभी असमर्थ हैं। आजभी वर्तमान प्रसिद्ध अंगोल, अमृतमहाल, हल्लीकर और कंगायम् नस्लोंका यह देश है। मद्रासके हरेक

गायको अंगोल गाय होनेमें रुकावट नहीं थी। सावधानीसे अंगोल गायें इतनी बहु-प्रसवा हो सकती हैं कि सारे मद्रासको पाट दें। आजभी उनमेंसे करीब २५०० की हर वर्ष मद्रासमें अकाल मृत्यु होती है। अन्दाज कीजिये कि अगर यह वार्षिक हत्या रुक सकती तो क्या हुआ होता। हर तीसरे वर्ष वह दूनी हुई रहतीं और सारे प्रान्तको अपने बच्चोंसे भर सकतीं। इसी तरह अमृतमहाल और हल्लीकरका भी हाल है। मद्रासही क्यों, वहांके ऊँचे दर्जेके ढोर उचित प्रबंधमें सारे भारतको अपनी सन्ततिसे भर दिये रहते जो दुनियाँमें श्रेष्ठतामें किसीसे कम नहीं होते। यह होने लायक है। स्वतंत्र देशोमें ऐसे काम पूरे होते हैं। मद्रासमें रैयत पशु संवर्धन करना जानता है। उसे उत्तम साँढ़का गुण मालूम है। सपिंड और सगोत्र संवर्धनसे विशेष प्रकार, आकार और रंगवाला पशु पैदा करना प्रायः पूर्ण रूपसे जानता है। पर इतना होते हुए भी वह जो है वही रहता है। अगर उसकी बाधाएँ दूर की जा सकें तो आजसे अच्छे भारतके आर्थिक जीवनमें वह उचित स्थान ले सकता है।

२०९. **उन्नतिके लिये प्रेरणा :** सन् १९३६ से ढोर उन्नतिके लिये भारतमें जो साधारण प्रेरणा दी गयी है, उससे मद्रास आगे बढ़ रहा है। वायसरायकी साँढ़-दान-योजनाका मद्रासपर बहुत असर नहीं हुआ। क्योंकि प्रीमियम साँढ़-योजनाके कारण मद्रास कुछ दिन पहले से ही मैदानमें उतर चुका था। इसके द्वारा पालन व्ययका एक अंश सरकार देती थी। इसका श्रेय मद्रास सरकारको है।

चारेका प्रबन्ध ठीक करनेके लिये मद्रासमें एक स्थायी चारा और चराई समिति बनायी गयी। मैसूरमें अमृतमहाल गोचर व्यक्तियोंके ढोरोंके लिये भी खोल दिया गया। अगर चारा उपजाया जाय तो सिंचाईवाली जमीनके कुछ सैकड़े भागका सिंचाई-कर माफ कर देनेकी मद्रास सरकारकी एक योजना है। इसमें यह भी चाहा गया है कि, भविष्यकी सभी सिंचाई योजनामें चारेके लिये कुछ जमीन निश्चित कर दी जाय।

सरकार और जिलाबोर्ड दोनोंही रैयतको वरण किये साँढ़ देनेके लिये जादेसे जादे कोशिश कर रहे हैं।

**२१०. मद्रास सरकारकी नसूल उन्नतिकी योजना :** सन् १९४२ में मद्रास सरकारने भारत सरकारके ग्राम सुधार कोषसे ५० हजार रुपए पशुधनकी उन्नतिमें लगाये।

योजना इस तरह थी :

(१) नीचे लिखे साँढ़ खरीदना और बाँटना :

| | | |
|---|---|---|
| सिन्धी साँढ़ | ... | २५ |
| कंगायम् ,, | ... | २० |
| हल्लीकर ,, | ... | २० |
| अंगोल ,, | ... | २० |
| बीकानेरी भेड़ें | ... | १०० |

(२) १½ वर्षके बछड़े खरीदकर पालनेके लिये बाँटना जो प्रौढ़ होनेपर साँढ़का काम करें। पालनेके लिये दो वर्षोंतक ५०) रुपयेके हिसाबसे दिये जायेंगे।

| | | |
|---|---|---|
| कंगायम् बछड़े | ... | २० |
| अंगोल ,, | ... | १५ |
| मुर्रा पाड़े | ... | ५० |

शर्त यह थी कि सयाने साँढ़ उचित तरहसे घरोंमें रखे और पाले जाँय और दो वर्षमें कमसेकम १२० गायें फलायें। इसके बाद साँढ़ रखनेवालोंकी सम्पत्ति हो जायेंगे। छोटे साँढ़ दो वर्षके बाद योजनाके अनुसार सयाने साँढ़के दर्जेमें आ जानेको थे। सयाने साँढ़ पालनेका खर्च प्रान्तीय कोषसे प्रीमियम साँढ़ योजनाकी तरह दिया जानेको था।

यह अवनति रोकनेका कुछ प्रयास है। वास्तविक उन्नति नहीं है। कैप्टन लिट्लउडने कहा है कि मदरासके ढोर जैसे २० वर्ष पहले थे, आज नहीं हैं। अवनति वेगसे हुई और अभी हो रही है। इसके साथ इसका विचार भी करना होगा कि मदरासके ऊँचे दर्जेके ढोरोंका विकाश और पालन सैकड़ों वर्षोंमें हुआ है। अंगोल इलाकेकी जाँचपर सुपरभाइजर (supervisor) की टिप्पणी, कैप्टन लिट्लउडके जनसख्याकी वृद्धिके साथ चारा और चरागाहकी कमीके बारेमें कथनकी पुष्टि करती है। अवनतिके साधारण कारण अच्छी तरह जाने हुए ही निकले।

२११. **रैयतोंको गायके लिये लगन नहीं रही :** गो-सेवा किसानों की उपजीविका है पर "कई कारणोंसे गो-सेवा के धन्धेको धक्का पँहुचा है। अनेक पशु और खासकर गायको पूरा खाना नहीं मिलता। इसका स्वाभाविक परिणाम उनकी बहुत दुर्दशा और अवनति प्रत्यक्ष है। रैयतोंको गायके लिये लगन नहीं रही। वह अपनी इतनी कम जमीनमें अन्न उपजाते हैं कि सिर्फ उनकी अपनी जरूरतके लायक अन्न और उनके काम करने वाले (भारवाही या हल जोतने वाले) पशुओंके लायक ही पुआल होता है।

पशुधनकी अवनतिका मुख्य कारण संवर्धनकी त्रुटि है, वह खिलाई की त्रुटि से किसी तरह कम नहीं है।…”—(“सात संवर्धन इलाकोंकी जाँच” पृ० ९७)

रिपोर्ट कहती है कि रैयतोंको गायके लिये उत्साह नहीं है, इसका अर्थ है कि उन्हें अपने जीवनमें भी उत्साह नहीं है। पर हर संवर्धक इलाकोंके लिये यह सही नहीं है। जहाँ रैयतको अपने परिश्रमका कुछ भी फल मिलता है वहाँ वह उस काममें चिपटता है। कंगायम् इलाके की स्थिति उदाहरण हो सकती है। (५८६)

**२१२. कंगायम् संवर्धक की ढोरके लिये लगन :** “…कोयम्बतूर जिलेके कंगायम् इलाके में बहुत सुन्दर भारवाही पशु होते हैं। यहाँकी मिट्टी हल्की है और वर्षा धोखा देने वाली। यहाँ फसल पैदा होना अनिश्चित रहता है। पर ढोर से आमदनी निश्चित है। रैयतको अन्नकी फसलके लिये कुएँका आश्रय लेना होता है। पर यहाँ जैसी कम वर्षा होती है उसीसे उसके गोचर काफी अच्छे रहते हैं। इस इलाके में सार्वजनिक गोचर नहीं है। बाड़ेदार निजी गोचर यहाँ की नियमित चीज है। यहाँ उमर और वर्गके हिसाबसे पशु अलग अलग चरते हैं। इसलिये मिश्रित संवर्धन नहीं होता। २ से ३ वर्षके वछड़े बधिया और हारी करने के बाद ढोरोंके मेले और हाटमें बेचे जाते हैं।”—(“सात संवर्धन इलाकोंकी जाँच” पृ० ९८) (४३)

**२१३. बाड़े और कुएँ की सिंचाईसे ढोरकी उन्नति :** खेतमें बाड़ा लगाना और कुएँकी सिचाई कंगायम् के लिये वरदान हो गयी है। गायमें उत्साहकी कमी के लिये रैयतको दोष देनेके बदले सरकारका यह काम है कि कारणका पता लगाकर कठिनाइयाँ दूर करे। क्योंकि रैयतकी लगनकी कमी सिर्फ दिखाऊ है। उसमें लगन गहरी है, पर कठिनाइयाँ किसीको विरक्त कर सकती हैं और उनने उसेभी किया है। उसकी कठिनाई उसके किसी दोषके सबब नहीं है। उसका कारण है देशकी राजनैतिक परिस्थिति जिसमें उसका कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं है।

**२१४. अंगोल इलाका और नस्ल :** अंगोलमें पशु-संवर्धन बहुत दिनोंसे एक धंधा रहा है। लोगोंने देखा कि पशु-संवर्धनसे वह मालगुजारीके हाकिमोंकी जबरदस्तीसे बच सकते हैं। इसके साथही अपने बहुत ऊँचे दर्जेके ढोरका संवर्धन कर जीविका चलाते हैं। सबसे अच्छे अंगोल ढोर दूरके देहातों और उत्तरी भागोंमें पाये जाते हैं। अंगोल ताल्लुकाके गाँव करुमांची, सिदामनूर, पोंडूर, जयवरुम, तंगलूर, करावडी और नेल्लूर जिलेके कंडुकुर ताल्लुकामें मुसी नदीके

किनारेके पुरवे (छोटे गाँव) विशेष वर्णनीय हैं। नेल्लूर जिलेका दक्खिनी भाग नम प्रदेश है। इसलिये वहाँके ढोर अपेक्षाकृत बहुत घटिया हैं।

चराईके सुभीतेपर खिलाईकी विधि निर्भर है। चराईकी कमीके कारण बिसुकी गायें दूरके जंगलोंमें चरनेके लिये भेज दी जाती हैं। भरावट (नदीकी मिट्टीसे) वाले अंगोल ताल्लुकामें कोई बड़ा संवर्धक नहीं है। पर कन्डुकुरके आसपासकी छिछली काली मिट्टीके इलाकेमें ५० मूड़ ढोर रखनेवाले बड़े संवर्धक भी हैं। खिलाईपर बड़े संवर्धकोंसे छोटे अधिक ध्यान देते हैं। एक बार अंगोल ताल्लुकामें जमीनके उपजाऊपनके भेदसे पट्टा जमीनोंके $\frac{1}{६}$ भाग गोचरके लिये परती रखे गये थे।

चराईकी पुरौनी (पूर्ति) खूँटेपर घास खिलाकर की जाती है। जब ढोर घर पर रहते हैं तब उन्हें ज्वारकी "करबी" या डंठल और दलहनके भूसे भी दिये जाते हैं। अगोल ताल्लुकामें चराई मुख्यरूपसे नदीके किनारे और पासकी परती डूबा जमीनमें होती है। (६७)

२१५. **अंगोलके रैयत निपुण संवर्धक हैं** : अनेक कालके अनुभवसे इस इलाकेके रैयत कुशल संवर्धक हैं। पशुओंको खिलानेका और अच्छे साँड़का मूल्य जानते हैं। वह संवर्धनमें निपुण कहे जा सकते हैं। समय बदल गया है। उनके निपुणत्वके रहतेभी अनेक ठट्ठोंके कद छोटे होते जा रहे हैं। किसी समय हर गाँवमें एक या दो अति श्रेष्ठ साँढ़ हुआ करते थे। (६७)

२१६. **अंगोल अंचल : अच्छे साँढ़की कमी** : हरेक बड़े रैयतको अच्छा निजी साँढ़ होता था। अब यह सब बदल गया। गाँव वालोंको चाहे जैसे ब्राह्मणी साँढ़ोंपर भरोसा करना होता है। गरमीमें पूरे आहारकी कमीसे इनकी दशा बिगड़ जाती है। इससेभी बढ़कर छोटे साँढ़ोंसे बैलका काम लिया जाता है। ये जबतक ३ या ४ वर्षके नहीं होते, बधिया नहीं किये जाते और ये भी समागम करते हैं। अधिक समागमसे इनकी हालत बिगड़ जाती है। कभीके प्रसिद्ध इस इलाकेमें वास्तविक अच्छे साँढ़का मिलना कठिन है।

२१७. **अंगोल अंचल : गायोंके साथ दुहरी बुराई** : अधिकांश गायोंको पूरी खुराक नहीं मिलती। केवल धनी रैयत ही उन्हें उचित ढंगसे पाल सकते हैं। मद्रासकी हाटके लिये पालनेका जिन 'मालाओं' का पेशा है वह लोग तो इन बछड़ों और बछियोंकी अच्छी हिफाजत करते हैं। पर साधारण तौरपर कमाऊ बैलकी नादका जूठा पुआल गाय पाती है। अब रैयतोंकी पत्नियाँ अतिरिक्त आयके लिये भैंसकी

सेवा करती हैं। गाय बैलतो परिवारके होते हैं, पर भैंसें उनकी होती हैं। वह उन भैंसोंकी अच्छी संभाल करती हैं और घी बेचकर कुछ आमदनी कर लेती हैं। यह बुरा अर्थप्रबन्ध है। गायको भूखी रखना, बैलको खिला जूठा उसे देना और फिरभी उससे या उसके बच्चोंसे पूरा दूध पानेकी उम्मीद करना गलत है। फिर उसे दुधार पशु न मान दूधके लिये भैंसका स्वीकार दुहरा दोष है।

२१८. **अंगोल गाय : दूध उत्पत्तिका आँकड़ा :** अंगोल गायकी उपेक्षा करनेका यह फल हुआ है कि वह देर देरसे ब्याती है और ४।५ ब्यानके बाद ठाँठ हो जाती है। गाँवकी जाँचकी रिपोर्ट (सन् १९३७) और श्री कर्था (Mr. Kartha) की रिपोर्टके अनुसार अंगोल गायकी दैनिक दूध-उत्पत्ति, बिसुके रहनेके दिन, ब्यानोंके बीचका समय और एक ब्यानके दूधकी कुल उत्पत्ति नीचे लिखी भाँति हैं :

## आँकड़ा—१२

### अंगोल गायकी दूध-उत्पत्ति

| | | |
|---|---|---|
| प्रति दिनका दूधका औसत | ... | ४.६४ रत्तल |
| दूधदेनेके दिनोंका औसत | ... | ९.५४ महीने |
| बिसुके दिनोंका औसत | ... | ९.४७ महीने |
| दो ब्यानोंके बीचका औसत | ... | १९.०३ महीने |
| एक ब्यानमें दूधका औसत | ... | १,२३६.४ रत्तल |

अगर गाय घरपर गरमाती है तो मालिक अच्छेसे अच्छा साँड़से फलानेका प्रयत्न करता है। पर गोचरोंपर गायके गरमानेसे बेठिकाना समागम हो जाता है। जिनका पेशा बछड़े पालना है वह माँका सारा दूध बछड़ेको पीने देते हैं। शहरोंके पास जहाँ गायके दूधकी माँग रहती है बछियावाली गाय दुही जाती है। जो गायें दूधके लिये शहरहीमें रखी जाती हैं उनका सारा दूध मालिकका होता है और बछड़े तथा बछिया भूखे मरती हैं। गाँवोंमें बछड़ोंकी बछियोंसे अधिक खिलाई और सँभाल होती है। बछड़ेको कुछ पुष्टिकरभी दिया जाता है। पर बछिया बैलोंके जूठे चारेमें से जो खा सके खा सकती है। रैयत बछड़ेको अच्छा

काम करनेवाला जानवर बनाना चाहता है जिसकी कीमत खासी मिलेगी। इसलिये यह भेद होता है।

**२१९. अंगोल : माला औरतें दुधार बछियोंकी संभाल करती हैं :** सँभाल और खिलाईका क्रम इस भाँति है : सबसे जादे ध्यान कामकरनेवाले पशुपर दिया जाता है। उसके बाद बछड़ोंपर, उसके बाद बछड़ोंवाली गायोंपर और सबके बाद सभी गाय और बछियोंपर। इस परिस्थितिमें गोधनकी उन्नतिकी कोई उम्मीद नहीं हो सकती। जैसा अभी देखा जा रहा है, इसमें अवनति बड़े वेगसे होनी निश्चित है। तोभी दुधार बछियोंकी वैसीही सँभाल होती है जैसी बछड़ोंकी। माला लोग दुधार बछियोंके पालने पर ध्यान देते हैं। वह खेत-मजूरके अलावा बुनकरभी हैं। माला औरतें खाली समयमें बछियोंको खिलानेके लिये घास छीलती हैं या किसानोंसे मजूरीके कुछ भागमें घास पाती हैं। रैयतोंकी फसलें काटनेमें मदद देकर माला औरतें काफी चारा बटोर और जमा कर रखती हैं। इस सूखे चारेके साथ रोजकी छीली घास भी बछियोंको खिलाई जाती है। ये बछियाँ प्रायः ३० महीनेमें गरमाती हैं। माला ब्यायी गायोंको बेचकर उस रुपयेसे दूसरी बछियाँ खरीदते हैं। अगर मदराससे कोई बिसुकी गाय चरनेके लिये वापस आती है तो माला उसकी चराई ६$\frac{3}{4}$ रुपये महीने (१९३६) लेता है और गाय तथा बछड़ा लौटानेके समय कुछ कपड़ा या पगड़ी इनाममें पाता है। (२३६, २५७, २७८, ३०३ ३७२-'७६)

**२२०. अंगोलका चारा : सनई** (sunn hemp) **और धानका पुआल :** मुख्य चारे जोन्ना (andropogon sorghum), सनई और कुछ दलहन बोये जाते हैं। साधारण तौरपर जोन्ना और दलहन अन्नके लिये बोये जाते हैं। पुआल मवेशियोंको खिलाया जाता है।

सनई पंखोंके इलाकेमें उपजायी जाती है। सनई और धानके पुआलका चारा होता है। और उसका बहुतसा अतिरिक्त अंश सूखे अंचलोंमें भेजा जाता है। अनावृष्टि या सूखेके वर्षोंमें हजारों गाड़ियाँ पुआल पंखोंसे सूखे इलाकोंमें भेजा जाता है।

जंगलकी चराईका सुभीता लिया जाता है और अधिकांश ढोर वहाँ जूनके शुरूमें चरनेके लिये भेजे जाते हैं।

**२२१. सन् १९३७ की मदरासकी ढोरकी जाँच :** सन् १९३७-३८ में इस इलाकेके ढोरकी जाँच की गयी। ८४४ गाँवोंमें लोग गये। उनमें अंगोल नसलकी ९३,००० गायें थीं, ७८९ साँढ़ थे जिनमें ७१९ बूढ़े और बेकाम थे। साँढ़ोंकी संख्या अपर्याप्त थी। उस समय जिलेमें ३०० से जादे साँढ़ोंकी कमी थी। ३१६ गाँवोंमें साँढ़ बिलकुल नहीं थे।

इस इलाकेमें हर साल ४२ हजार बछरू पैदा हुए थे। इनमें आधी बछियाँ थीं। जवान बछियोंमें से २,५०० मदरास चली गईं। बछड़ोंमें से आधे दूसरे इलाकोंमें बेच दिये गये।

**२२२. दूसरे देशोंमें अंगोल ढोर :** सन् १९४१ के अगस्तके "इन्डियन फार्मिंग" में दक्खिन अमेरिकाके अंगोल ढोरके कई चित्र छपे थे। विदेशोंमें भारतीय नसलोंके बारेमें टिप्पणी लिखकर सम्पादकोंने भारतीय नसलोंकी उन्नतिकी समस्या और ढोरोंके चलान पर आकर्षक प्रकाश डाला है।

"...ब्राजिलके कृषि विभागके भेजे अंगोल गायोंके जो चित्र मिले हैं उनसे पता चलता है कि अमेरिकामें भारतीय ढोर कितनी अच्छी तरह पनपते हैं। सालों पहले मदराससे भेजे गये अंगोल ढोरकी यह संतान हैं। और अभी भारतमें पाये जानेवाले ढोरसे कितना मिलते हैं यह देखा जा सकता है। गीर, काँकरेज और साहीवालके जैसी नस्लके बारेमें भी उत्साह बढ़ाने वाली रिपोर्ट मिली है।"

"...विदेशोंमें मांग बढ़नेसे भारतके कुलीन पशुओंकी उत्पत्ति और पालनपर बहुत गहरा असर पड़ेगा ही। पर यदि माँगके मुताबिक उत्पत्ति नहीं होगी या बिक्रीका नियंत्रण नहीं हुआ तो संवर्धित किये जानेवाले ऊँचे दर्जेके पशुओंकी संख्या घट जायगी और अन्तमें वह नसलभी मिट जायगी। अंगोलके मामलेमें यह दिखाया गया है। एक समय गाय सहित अनेक ढोरोंका चलान विदेशोंमें होता था। जिस जमीनपर इन पशुओंका पालन होता था उसे दूसरे कामोंमें लगा दिया गया, इसलिये इनकी उत्पत्ति क्षीण हो गयी। इसके कारण एक तरहसे इस नसलका लोप ही होगया। यद्यपि अंगोलके चलानकी मनाही हो गयी, फिरभी नुकसान तो होही चुका था। इस मनाहीसे इस नसलके पुनरुद्धारमें मदद नहीं मिली..."

सम्पादक मंडलने उपायके रूपमें नियंत्रणका सुझाव रखा है। पर सम्पादककी उक्ति गंभीर मालूम नहीं होती। रफ्तनीसे कभी हानि हुई हो, पर साधारण अंगोल गायसे जो काम अभी होता है वह प्रसिद्ध साहीवालसे आजभी बहुत कम नहीं है।

**२२३. अंगोल और साहीवाल :** सन् १९३७ के रिपोर्टसे पता चला कि साहीवालका रोजका औसत दूध ४.७२ रत्तल होता है। इसके मुकाबिलेमें अंगोलके दैनिक दूधका औसत ४.६४ रत्तल है। अंगोल साहीवालके बाद दूसरी रही। अंगोल जैसी आज है, पहले उससे अच्छी थी। पर यह तो आज हर नस्ल के मामले में सही है। जो सबूत मिलते हैं उनके आधार पर इसमें दो मत नहीं हो सकते कि निर्यातके कारण यह अवनति नहीं हुई है। इसके अनेक कारण अब भी हैं। (२५८-'६३)

**२२४. अवनतिका असली कारण :** सर अर्थर ऑल्वरने भारतीय पशुपालनकी समस्या ठीक ठीक समझी थी। ढोरोंकी अवनतिमें रैयतोंके दोषके बारे में उनका मत था कि "आजकी हालतका कारण पशुपालनके लिये प्रभावशाली सरकारी संघटनका अभाव है।"

"पशु धनका बहुतसा काम गलत ढंगसे शुरू किया मालूम होता है। अपने पशुधनकी उन्नतिसे सन्तोषदायक लाभ देखे बिना रैयत उसके लिये खर्च करेगा यह उम्मीद विदेशोंके किसानोंसे भी करना व्यर्थ है।"

# आँकड़ा—१३

२२५. सात इलाकोंके ढोरोंका तुलनात्मक विवरण :

| | भारतके सात संवर्धक इलाके | मंटगुमरी | हरियाना | कोसी | बिहार | मध्यप्रान्त | काँकरेज | अंगोल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| दूधकी औसत उत्पत्ति (रत्तलमें) | ३·७४ | ४·७२ | ४·४६ | ३·८९ | २·७४ | १·६७ | ३·९० | ४·६४ |
| दूध देनेका औसत समय (महीनोंमें) | ८·८१ | १०·४३ | ७·६२ | ८·२५ | ८·१४ | ८·९४ | ७·९० | ९·५४ |
| बिसुकनेका औसत समय (महीनोंमें) | ९·२१ | ७·२४ | ७·६२ | ८·३१ | ८·४८ | ११·८० | १०·२१ | ९·४७ |
| ब्यानेके बीचका औसत समय (महीनोंमें) | १८·२० | १७·६८ | १५·२४ | १६·६१ | १७·०३ | २०·७४ | १८·२४ | १९·०३ |
| एक ब्यानमें दूधकी औसत उत्पत्ति (रत्तलमें) | ९४३·० | १२४३·८ | ९८६·० | ८६५·० | ६५१·३ | ४११·३ | ९११·८ | १२३६·४ |

—(६७)

**२२६. कंगायम् इलाका और नसल :** कोयम्बतूर जिलेमें कंगायम् एक ताल्लुका है। नस्लका नाम ताल्लुके के ऊपर है। दक्खिनी जिलोमें जैसे सुन्दर पशु मिलते हैं वैसे कंगायम् इलाकेमें सरसरी तौर पर देखनेवालेको मुश्कल से मिलेंगे। कारण सीधा है। श्रेष्ठ ढोर बाहर भेज दिये जाते हैं और रैयतों की जरूरत मध्यम कोटिके स्थानीय ढोरोंसे पूरी होती है। दूसरा कारण कंगायमूका मँहगापन और उत्तरके आलमबादी ढोरोंका सस्तापन है। इस जगहके लोग अपने अच्छे कंगायम् बैल बेच देते और अपनी खेतीके लिये आलमबादी खरीदते हैं।

संवर्धक इलाकेमें धरमपुर ताल्लुका और पासके पाल्लनदाम, इरोद, करूर, पालनी तथा डिंडीगल शामिल हैं। फिर भी संवर्धन जादेतर धरमपुर ताल्लुकेको केन्द्र करके ही होता है। इस अंचल की मिट्टी लाल चिकनी है जिसमें कंकड़ भरे हैं। इस तरहकी मिट्टी अनिश्चित होती है और अक्सर इसकी फसल बिगड़ जाती है। पर वर्षा चाहे जितनी हो गोचर भूमि पशुओंको पाल लेती है। इसलिये रैयतोंने दो निश्चित पथ चुन लिये हैं। सूखी मिट्टीवाली जमीनमें वह कुएँसे सींचकर फसल उपजाते हैं। इसमें प्रकृतिपर निर्भर नहीं होना होता। लाल चिकनी कंकड़ीली मिट्टीवाली जमीन गोचर और पशु संवर्धनके लिये होती है। इसमें खेतीसे अधिक आमदनी है। (४३, १०८, २५२)

**२२७. चरागाह और चारा :** यद्यपि कंगायमूमें सालभर वर्षा होती है, फिरभी उसमें धोखा रहता है। यह सदा अनिश्चित है। ढोरोंकी आमदनी अधिक निश्चित है। रैयत दूसरे मामलों में भी संयोग और जोखिम से बचते ही रहे हैं। वह अपनी जमीनमें बाड़े लगाते हैं, इसलिये चराई पर नियंत्रण कर सकते हैं और जब जरूरत हुई तो उसे जोतकर फसल भी पैदा कर लेते हैं। बाड़ा कंगायमूकी खास चीज है। इसके बिना जिस गोचरकी बदौलत वह अपने पशुओंको खिलाते हैं वह नष्ट हो जाय। चाराके मामलेमें भी प्रकृति उनके अनुकूल है। (४३)

**२२८. कंगायम् में होनेवाली कोलुकूकटाई घास :** कोलुकूकटाई या 'अंजन'घास (Pennisetum cenchroides) जो घासोंमें सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है, यहाँ खूब होती है। यह गोचर ढोरके मुख्य आधार हैं। अन्नकी जरूरत पूरी करनेके व्यापक विचारसे घास उपजानेमें कोई आर्थिक हानि नहीं है। फसल पैदा करनेके लिये बीच बीचमें गोचर जोते जाते हैं। गोबर खेतहीमें रहने दिया जाता है, इसलिये फसलकी उपज खूब होती

है। यों जितनी होती उससे कहीं जादा होती है। कोलुकूकटाई घासकी जड़में कन्द होता है और वह नमीको बचाकर रखती है। इसलिये कठिन सूखा पड़नेपरभी वह जीती रह सकती है। इसमें बहुत बीज होते हैं जो आसानीसे झड़ जाते हैं। इससे एक पानीके बाद ही नये पौधे घने निकल आते और कुछ सप्ताहोंमें एक फुट भर हो जाते हैं।

धरमपुरमें बिना सिंचाईकी फसल कम्बु (बाजरा) है। छोलम (ज्वार) कुएँसे सींचकर होता है। गरीब किसान छोलम द्वि-प्रयोजनके लिये पैदा करते हैं। अन्न अपने लिये और डाँट गायके लिये। उन्हें धानका पुआल मिल सकता है पर छोलम उससे अच्छा होता है। धानके लम्बे पुआलकी बड़ी बड़ी टालें और छोलमकी टालें इस तरफकी खास चीजें हैं। (४३)

२२९. **कंगायम् इलाकेमें पशुपालन :** पशुओंका पालन बैलको बिक्रीके लिये होता है। इसलिये बछड़ा बहुत दामी होता है। पहले ६ दिनोंतक बछड़ेको माँका सब दूध पिला दिया जाता है। वह जब खाना सीख लेता है तब उसे चराया जाता है और धीरे धीरे दूधकी मात्रा कम की जाती है। छोटे संवर्धक अलग अलग बछड़ोंपर अधिक ध्यान देते हैं। होनहार बछड़ेको माँका सारा दूध पिला देते हैं, और जब माँका दूध पूरा नहीं माना जाता तब अतिरिक्त दूध लाकर हाथसे पिलाते हैं।

गाय और बछड़े चराकर पाले जाते हैं। पर जब चराई नहीं मिल पाती तो उन्हें चारे के साथ दलहनकी भूसी या भूसा, चोकर, पीसी हुई सफेद बबूलकी फली या चूरा हुआ बिनौला माँड़में सानकर पौष्टिक आहारके रूपमें दिया जाता है।

दुदन्त होनेपर बछड़ेको बधिया कर देते हैं, फिर उसे बेचनेके पहले हारी कर लेते हैं। (४३)

२३०. **कंगायमका श्रेष्ठ संवर्धन :** कंगायम्के दो प्रकार हैं। एक बड़ा और दूसरा छोटा। छोटे प्रकारकी गिनती जादे है। प्रसिद्ध कंगायम् ढोर कंगायम्के साधारण ढोर नहीं हैं। प्रसिद्ध नसूलका यह ढोर बड़े बड़े संवर्धकोंकी उत्पत्ति और सम्पत्ति है। इनमें सबसे मुख्य पलायाकोट्टइके पट्टागार और उनके परिवारके लोग हैं। कोडियार, मुन्सिफ, मोनिगर जैसे बड़े संवर्धक और भी हैं। कुछ मध्यम स्थितिके रैयत १० से १२ मूड़ ढोरोंका संवर्धन करते हैं। पर बड़े संवर्धकोंका ठट्ठ १,००० ढोरोंका होता है। पट्टागारकी संवर्धन-विधि शास्त्रीय और विशेष वर्णनीय भी है। कप्तान लिटिलउडने उसके बारेमें लिखा है। अपने

मवेशीपर इतना ध्यान देने वाला या इतने अच्छे ढंगसे विधिवत् पशु संवर्धन करने वाला पट्टागारके ऐसा कोई दूसरा जमीन्दार होनेमें सन्देह है ।

पट्टागारके पास १४,००० एकड़ जमीन है । जनक जननीका यथोचित वरण (चुनाव) होता है । घटिया माँ संवर्धनके काममें नहीं लायी जाती । ऐसी बेकाम माँओंको हटानेका एक तरीका है । गरीब रैयत यह जान लेते हैं कि कोई गाय गरमायेगी नहीं, तब उसे हल जोतने या पानी भरने या किसी दूसरे काममें लाते हैं । पर गाड़ीमें नहीं जोतते । इसलिये बड़े सवर्धकोंके यहाँ बेकार गायें नहीं होतीं; और न छोटे रैयतोंके पास । पर यह सही है कि छोटी गायें गरीब और छोटे रैयतोंको मिलती हैं । जब गाय गरम होती है तब वह उसे गाभिन होने देता है । इस तरह उससे घटिया ढोर पैदा होते हैं । गायोंसे खेतीका काम लेनेवाले छोटे रैयत अगर अपनी गायोंको बच्चे पैदा न करने दें तो यह प्रशंसनीय काम हो । इससे घटिया पशुओंका लोप हो जायगा ।

पट्टागारने अपनी ठट्ठकी चराईके लिये काफी जमीन रखी है । उसने ठट्ठोंको उमर और लिंगके हिसाबसे अलग अलग बाड़ेदार गोचरोंमें रखा है । इसलिये उनमें फेंट फाँट नहीं हो सकती ।

उनके ढोरका रंग सफेद है । उनके कुब्ब और पिछले भागपर भूरे निशान होते हैं । बहुतसे पीला-मिश्रित बादामी, सफेद बादामी और हल्के लाल रंगके भी हैं । इस बातसे खूनकी मिलावट जाहिर होती है । अनुमान होता है कि यह मिलावट अंगोलकी है जो पट्टागारके यहाँ कुछ हैं । रंगीन ढोर सुडौल होते हैं फिरभी उनकी कीमत उतनी नहीं होती और यह ठीक भी है ।

साँढ़ गहरे भूरे रंगके होते हैं । सिर, कुब्ब और पिछले भागका रंग लगभग काला होता है । २ से ३ वर्षकी बछिया और ३ बर्ष या उससे भी बड़ी उमरके बड़े बड़े बाधिया बैलोंके अलग अलग बिकाऊ ठट्ठ देखनेकी चीज हैं । पट्टागार भारवाही पशुओंके अलावे गाय और संवर्धन-प्रयोजनके लिये साँढ़भी बेचते हैं । कंगायम् बैलोंका औसत दाम ३००) से ४००) जोड़ी तक है । पर पट्टागार जैसे सवर्धकोंके यहाँ उसका दाम ४००) से ६००) है (सन् १९३६) । अच्छी गायका दाम १००) है पर पट्टागारके यहाँ १५०) से २५०) तक देना पड़ता है ।

इंपीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्चने सन् १९४१-४२ में

पलायाकोट्टइके पट्टागारके ठट्ठकी गायोंपर ६ वर्षतक प्रयोग करनेकी योजनाके लिये मंजूरी दी। कंगायम् गायोंके भारवाही गुणोंको कम किये विना उनमें दूध देनेकी शक्ति बढ़ानेकी यह योजना थी। (४३)

# मैसूर

**२३१. मैसूरकी भारवाही नसल अमृतमहाल :** अमृत दूध है। अमृत-महाल मैसूर सरकारका दूध महाल (विभाग) है। पर इस महाल या नसूलका महत्व दूधके कारण नहीं है। इस नसूलके भारवाही गुणके कारण यह महाल बनाया गया और चलाया जाता है। थोड़े दिन पहले जब बृटिश राज भारतमें धीमी, पर निश्चित गतिसे राज्य विस्तार कर रहा था उस समयके सिलसिलेमें अमृतमहालका एक इतिहास है। हैदरअली, टीपू सुल्तान या अंग्रेजोंके भाग्य परिवर्तन की कोशिशोंमें अमृतमहाल जिसके हाथ जिस समय रहा उसने उसके भारवहनका सारा काम किया।

चिक्का देवराज वाड़ियारने (सन् १६७२—१७०४) इस नस्लके पशुओंको पालनेके लिये राजकीय विभाग स्थापित किया और उसका नाम "बेन्ने चवाड़ी" अर्थात् दूध भंडार रखा। उसने ठट्ठकी गायोंको अपनी मुहरसे दाग दिया। उसके बाद हैदरअलीने उसका देश दखल किया। उसने इस नस्लके ढोरोंको बहुत बढ़ाया। जीतके साथ ही वह श्रेष्ठ ढोरोंको उनके मालिकोंसे लेकर सरकारी ठट्ठमें मिलाता गया। कहा जाता है कि राज्यके विभिन्न भागोंमें उसने ६०,००० बैल पाले थे। उसके बाद उसके लड़के टीपूने ठट्ठका प्रबन्ध करनेमें छोटीसे छोटी बातकाभी ध्यान रखा। जिसका महान् फल हुआ। उसने विभागका नाम बदलकर अमृत महाल कर दिया। इस विभागके प्रबन्धके नियम उसने बनाये जिन्हें मैसूर दखल करनेपर अंगरेज अफसरभी मानते थे। (४१,३१८)

**२३२. हैदरके हाथमें अमृतमहाल :** चेलम्बरम्के उद्धारमें हैदर अली अमृतमहाल बैलोंके कारण २½ दिनमें १०० मील कूच कर सका। ऐसी नस्लकी उत्तमता अंग्रेजोंने जानी। इनके कारण हैदर अली हर बार दुश्मनोंके हटने पर तोपें उनके मुकाबिलेपर ला सका। हैदरके बाद टीपू सुल्तानने अमृतमहालका उपयोग चमत्कारके साथ किया। बेदनारके उद्धारके लिये दक्षिण प्रायद्वीपको वह

अमृतमहालोंकी सहायतासे महीनेभरमें पार कर गया और दो दिनोंमें ६३ मील तय किया। उसके बाद ड्यूक ऑफ वेलिंगटनने अमृतमहालोंकी मददसे आश्चर्य कर दिखाया। (४१)

**२३३. अंगरेजोंके अधिकारमें अमृतमहाल:** टीपू सुल्तानके पतन और महाराजको मैसूर सुपुर्द कर देनेके बाद अमृतमहाल अंगरेजोंकी सम्पत्ति रही। प्रबन्ध महाराजाके हाथों रहा। इस प्रबन्धमें इनकी अवनति होने लगी। तब सन् १८१३ में मदरास कमसरियटने (Madras Commissariat) इन्हें अपने हाथमें ले लिया। सन् १८६४ में किफायतके ख्यालसे इस ठट्ठको बेच देनेका हुकुम हुआ। पर ६ ही वर्षोंमें सरकारको अपनी भूल मालूम हो गयी और उसने उस समय जितने पशु मिल सकते थे उन्हें खरीद कर फिरसे ठट्ठ जोड़ना चाहा, पर बहुत कम मिल सके। क्योंकि मिश्रके (Egypt) पाशाने उनमेंसे अनेक श्रेष्ठोंको ले लिया था। पर महाराजभी बड़े खरीददार थे। इससे ४,००० गायों और १०० बैलोंसे सन् १८७० में सरकार नया ठट्ठ खड़ा कर सकी। सन् १८८३ में सारा ठट्ठ महाराजाने फिर खरीद लिया। उन्होंने ठट्ठका सुधार करनेके लिये जहाँतक संभव था कोशिशकी। आगे चलकर मोटरोंके चलनसे मैसूर सरकारने पशुओंकी गिनती १२,००० से ६,००० कर दी और इन्हें सामरिक विभागसे बदलकर मैसूर कृषि विभागके हवाले कर दिया। (४१)

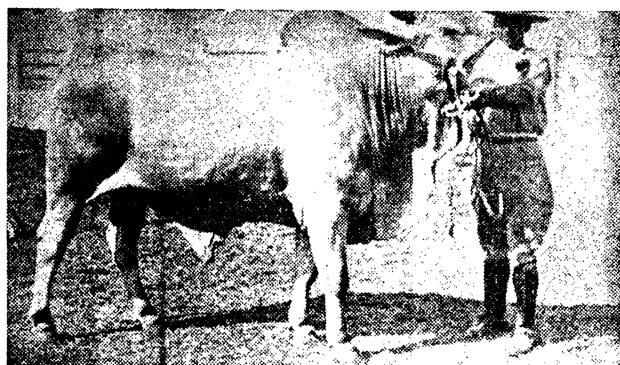
**२३४. प्रबन्ध परिवर्तन कालमें अमृतमहाल:** सरकारके बेच देनेके बाद ठट्ठकी बहुत अवनति हुई। उसके बादकी नस्लके लिये उन्नतिकी सब कोशिश होने परभी सन् १८०० में जितनी शुद्ध वह थी उतनी नहीं कही जा सकती। कहा जाता है कि पुनर्रचनाके समय बहुतसी घटिया गायें तथा महदेश्वरबेट्टा नस्लकी बहुतसी गायें अमृतमहाल कह कर चलादी गयीं।

अमृतमहाल गोचरोंपर रखे जाते हैं। किस मौसममें कहाँके ढोर काममें लाये जायँगे इस हिसाबसे उनका वर्गीकरण कर दिया गया है। वह गोचरोंपर भेज दिये जाते हैं और सितम्बरके शुरूमें जब घास खूब होती है अपने घरके मैदानमें वापस आ जाते हैं। (४१)

**२३५. अमृतमहालका स्वभाव:** इस ढोरका स्वभाव गरम, उद्धत और अपरिचितोंको देख अस्थिर हो जाने वाला है। धीरजके साथ मीठे बर्तावसे उनकी हारी करनी होती है। जूआ लेनेमें उनकी हारी धीरे धीरे करनी होती है। कुछ

बर्ताव उन्हें जिद्दी बना देता है। १८ महीनेके उमरमेंही जाड़ेमें बछड़ोंको बधिया कर दिया जाता है। ३ या ४ वर्षकी उमरमें बैल बेचे जाते हैं। ५ वें वर्षमें पूरी तेजी इनमें आती है जो १२ वर्षतक रहती है। १४ से १५ वर्षकी उमर तक यह कमाते हैं। फिर वेगसे शिथिल होने लगते और १८ वें वर्षके लगभग मर जाते हैं।

संभालके मुताबिक बछिया ४, ५ या ६ वर्षोंमें ब्याती है। ४ वर्षोंकी उमर होनेपर साँड़से काम लिया जाता है। ९ से १० वर्षकी उमरतक उससे काम लिया जाता है। इस उमरके बाद उसे बधिया कर ठट्ठसे हटा देते हैं। (४१)

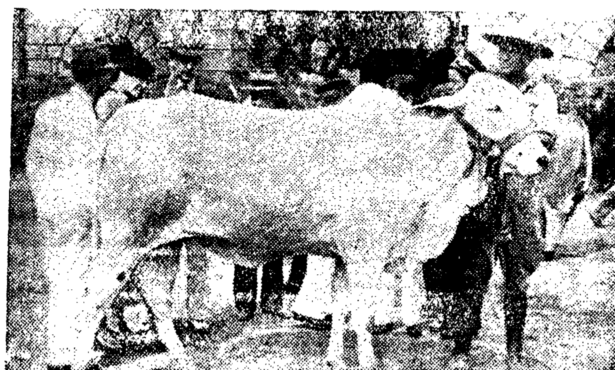


चित्र २५. सोबेराने—३२ महीने उम्रका बैल
नस्ल—नेल्लूर (अंगोल) ; (२२२ पैरा देखिये)
अपनी श्रेणीमें इसे प्रथम पुरस्कार मिला।
पेड्रो मार्क्विस नून्स, फैजेन्डा इन्डियाना द्वारा संवर्धित
(इन्डियन फार्मिंग, खंड २, नं० ८)

**२३६. अमृतमहाल गाय :** जो मौसम बछड़े पालनेके उपयुक्त होते हैं उन्हींमें गाय गरम होती और ब्याती है। संवर्धनके लिये सबसे अनुकूल समय जनवरी, फरवरी और फिर अगस्तसे दिसम्बर तक है। बछरू दिनमें अपनी माँके साथ रहते और रातको गोहालमें रखे जाते हैं। ठट्ठके साथ खुलेमें रहनेसे बछड़ा बड़ा होनेपर उद्धत हो जाता है। कहा जा चुका है कि इस नसलकी अवनति हुई थी। उसेही सुधारनेके लिये अंगरेजी सरकारने अजमपुरमें सन् १९३९

में एक क्षेत्र खोला है। यहाँ ५०० गायें शास्त्रीय ढंगसे पाली जाती हैं। यहाँसे उपयुक्त पालतू साँढ़ गाँववालोंको दिये जाते हैं।

अज्जमपुर क्षेत्रमें अमृतमहाल गायोंका दूधके लिये भी संवर्धन किया जाता है। उनके बैलोंके भारवाही गुणोंमें कुछ फर्क डाले बिना गायोंकी दूध देनेकी शक्ति विकशित करनेमें काफी सफलता भी मिली है। (५१, २१६, २५७, २७८, ३०३, ३७२-'७६)



चित्र २६. एलेग्रिया—२½ वर्ष उम्रका बछड़ा
नस्ल—नेल्लूर (अंगोल); (२२२ पैरा देखिये)
अपनी श्रेणीमें इसे प्रथम पुरस्कार मिला।
पेड्रो मार्क्विस नून्स, फैजेन्डा इन्डियाना द्वारा संवर्धित
(इन्डियन फार्मिंग, खंड २, नं० ८)

**२३७. हल्लीकर नस्ल :** हल्लीकर अमृतमहालका सबसे महत्वका और मूल्यवान् सदस्य है। यह सरकारी अमृतमहाल ठट्ठमें, और तुमकुर, हसन और मैसूर जिलोंमें भी पाया जाता है। हल्लीकर साधारण तौर पर घर पर ही पाले जाते हैं, क्योंकि वहाँ विस्तृत गोचर नहीं हैं जहाँ ये रखे जा सकें। अकसर छोटे रैयत इन्हें पालते हैं। उनके पास थोड़ी सी गायें होती हैं। फलाने पर पूरा ध्यान दिया जाता है। बछड़े सँभालके साथ पाले जाते हैं।

"गजमारू" हल्लीकरका सबसे मूल्यवान् प्रकार है। इसकी कीमत बहुत मिलती है। अपने घर नागमंगल ताल्लुकासे यह ढोर दूरके जंगलोंमें भेजे जाते हैं। (४२)

**२३८. आलमबादी नस्ल :** कोयम्बतूर जिलेमें दो मेले लगते हैं। वहीं उन बैलोंकी मुख्य हाट है। जिस स्थानमें बेचनेके लिये ये बांधे जाते हैं उसीके नामसे पुकारे जाते हैं। बंगलूर जिलेका कनकनहल्लि ताल्लुका और मैसूरकी सीमापर कावेरीके किनारे कोयम्बतूर तथा सेलम जिलेके उत्तरी भागमें इनका घर है। यह बहुत बड़ा जंगली इलाका है। इसमें ढोर भरे हैं। कावेरीके किनारे चरनेके लिये बहुत काफी चारा मिलता है। इन जंगलोंके किनारेके गाँवोंमें बड़े बड़े ठट्ठ पाले जाते हैं। इस नसलका देश उनकी हड्डियोंके विकाशके अनुकूल है। कोल्लेगलके जंगल, कोयम्बतूर जिलेका उत्तर भवानी ताल्लुका तथा सेलम जिलेके होसूर तथा धरमपुर ताल्लुके इसके ठेठ संवर्धक स्थान हैं। (४७)

**२३९. बरगूर नस्ल :** बरगूर पहाड़ीके ढोरोंको यद्यपि आलमबादी भी कहते हैं, फिरभी उनकी नस्ल भिन्न मानी जाती है। फर्क केवल यह है कि बरगूर पहाड़ीमें ढोरोंका पालन वैसी सावधानीसे नहीं होता।

नियमित संवर्धन-अंचलके आलमबादी बछड़े एक वर्षके कम उमरमें ही, उत्तरी सेलम, पच्छिमी चित्तूर और मैसूर राज्यके उन अंचलोंमें बेच दिये जाते हैं जो पशु-पालनके लिये प्रसिद्ध हैं। धरमपुरके मेलेसे पालनेके लिये पच्छिमी तट पर अनेक बछड़े ले जाये जाते हैं।

एक तरहसे सभी बछड़े बेच दिये जाते हैं। इससे यहाँ बैल थोड़े ही हैं। इसलिये सारी खेती गायोंसे की जाती है। ब्याने वाले ठट्ठ सालमें अधिकतर जंगलोंमें रहते हैं। फसल कटनेके समय उन्हें गाँवमें लाते हैं। कटे खेतमें उन्हें चरनेको मिलता है। इसके बदलेमें ढोर अगली फसलके लिये खेत गोबरा देते हैं। चराई खतम होनेपर ढोर फिर जंगलमें लौटा दिये जाते हैं। (४६)

**२४०. तंजूर नसूल :** तंजूरमें एक नस्ल है। संवर्धक इनके नरोंके सींगका उगना रोक और २ या ३ इंच काट कर इनकी सूरत विचित्र बनादेते हैं। विशृंगीकरणसे बैल अधिक पालतू हो जाते हैं। गायोंका विशृंगीकरण नहीं होता। वह कम दूध देती हैं।

# पंजाब

**२४१. पंजाबमें संवर्धन :** थोड़े दिनोंसे पंजाबमें पशुपालनका बहुत विकाश किया गया है। शाही कमीशनकी रिपोर्ट (सन् १९२७) में पंजाबके पशु पालन कार्यकी चर्चामें हिसार ढोरका व्यापक विचार किया गया है। मंटगुमरी और धन्नी नसलोंकी चर्चा कुछही हुई है।

ऐसा होना स्वाभाविक था। शाही कमीशनके दिमागमें यह बात बैठी हुई थी कि गायका पालन भारवाही ढोरके लिये है। और भैंसका दूधके लिये। सड़क और खेतमें हिसार सबसे मुख्य भारवाहो ढोर था। यहाँ भी कमीशनने भारवाही प्रकारमें अधिक दूधका संवर्धन करनेके प्रयाससे संवर्धकोंको रोका है। और ऐसा करनेवालोंको भारवाही गुणकी कमी होनेकी आशंकाके लिये चेतावनी दी है। पंजाबमें ढोर उन्नतिके कामसे हिसार ढोर-क्षेत्रका गहरा सरोकार है। शाही कमीशनने इसके बारेमें किस तरह लिखा है वह जानने लायक है।

**२४२. हिसार ढोर-क्षेत्र :** पंजाब सरकारके हिसार ढोर-संवर्धन-क्षेत्रका क्षेत्रफल ४२,००० एकड़ है। यह भारतका सबसे बड़ा और पुराना पशु-संवर्धन-क्षेत्र था। यह सन् १८०९ में अश्व-संवर्धनके लिये खोला गया था। सन् १८१५ में इसीमें ढोर-संवर्धन भी जोड़ा गया। कुछ समयके बाद अश्व-संवर्धन नगण्य हो गया। सन् १८५० से हिसार तोपखाना और सामरिक विभागके लिये बैल तैयार करनेका क्षेत्र हो गया। इस क्षेत्रके बारेमें एक बहुत उल्लेखनीय और सौभाग्यकी बात यह है कि २० वर्षोंतक इसका नियंत्रण दो आदमी करते रहे। फिर श्री किरकी (Mr. Quirke) उनके उत्तराधिकारी हुए। इसके बाद उन्होंने १८ वर्ष, सन् १९३८ में अपनी मृत्यु पर्यन्त, यहाँकी नीतिका संचालन किया। इस तरह हिसार-क्षेत्रकी नीति बहुत वर्षोंतक एकसी रही है। सरकारके नियंत्रणमें इस क्षेत्रमें अनेक पशु संकर किये गये। यह पीछे अवांछित सिद्ध हुए। आगे चलकर धीरे धीरे अवांछितोंका लोप कर दिया गया। हिसार हरियाना नसलकी एक खास किस्म है। पिछले १० वर्षोंमें इस क्षेत्रमें लगभग ६,००० ढोर थे। जिनमें गायेंभी थीं। उन दिनों क्षेत्र हर साल ३०० से ४०० जवान साँढ़ नीलाम करता था। क्षेत्रका काम बहुत बढ़ गया है। आजकल सालमें १,००० साँढ़की उत्पत्तिका

अनुमान है। गुड़गाँवाकी ख्याति उसके डिप्टी कमिशनर श्री ब्रायन (Mr. Brayne) के प्रयाससे ग्राम-उत्थान कार्यके कारण बहुत है। उस जिलेके भारवाही ढोरके कोटिनिर्माणके लिये यहाँसे साँढ़ लिये गये हैं।

शाही कमीशनके समय हरियाना नसलके पशु हिसार-क्षेत्रमें मुख्यरूपसे भारवाही प्रकारके माने जाते थे। यद्यपि उस समय भी ३,००० से ४,००० रत्तल दूध देने वाले पशु कम नहीं थे। उस समय खूब दुधारको अलग कर दिया जाता था। क्योंकि उनकी अलग सँभाल की जरूरत अर्थात् दूध देनेके दिनोंमें अच्छी खिलाईकी ज़रूरत थी।

हिसार-क्षेत्रमें ढोरको विस्तृत गोचरमें सिर्फ चरनेके लिये छोड़ दिया जाता है। चारेकी कमीके वर्षोंमें कुछ सूखी घास उन्हें दी जाती है। बहुतायतके दिनोंमें दिनभरकी चराईके लिये गायको १०।१५ मील चलना होता है। ११०० रत्तल वजनवाली गायको ४० रत्तल हरी घासके बराबर आहार चाहिये। शाही कमीशनको बताया गया था कि दूध देनेके कालमें ऐसी गायको हर दो रत्तल दूधके लिये ९ सैकड़ा अतिरिक्त आहार चाहिये। इसलिये कमीशनने सोचा कि जितना वह चर सकती है उससे जादा दूध निकालनेसे गायें भूखी रह सकती हैं। पर उस समय भी इन गायोंको चरकर अपनी जरूरत पूरी नहीं करनी पड़ती थी। उनकी जरूरतके अनुसार उन्हें पौष्टिक दिये जाते थे।

हिसार क्षेत्रके दिये साँढ़ोंके पालन के लिये जमीनोंका इजारा अनुकूल शर्तोंपर कुछ क्षेत्रोंको दिया गया। ये ग्रत्तिग्राही क्षेत्रभी दूधकी उत्पत्ति और साँढ़ तैयार करनेका अच्छा काम दिखा रहे हैं। (६६)

**२४३. पंजाबकी नस्लें :** शाही कमीशनके भारतसे जानेके बाद बातें बदल गयी हैं। पंजाबकी दूसरी नसलेंभी महत्वकी बन रही हैं। मंटगुमरी गाय जो अब साहीवाल कही जाती है भारतकी सबसे श्रेष्ठ दुधार नसल मानी जाने लगी है। मालूम होता है उसकी दूधदेनेकी शक्तिसे पूरा फायदा नहीं उठाया गया है। यद्यपि लगभग ३०० दिनों के दूध देनेकी साधारण अवधिमें उसके दूधका लेखा १४,००० रत्तल रहा है।

शानदार चिकने बालवाली धन्नी अपनी गति और भारी भारवाही गुणों के लिये अधिकाधिक पसंद की जा रही है। भगनारीका महत्त्वभी कम नहीं है। भगनारी की बहन रोझनभी अपने भारवाही गुण, रद्दी से रद्दी किस्म के चारेसे संतोष और

छोटे कदके कारण अपनेको मनवाने की कोशिश कर रही है। छोटे कदके कारण थोड़े चारे से ही इसका काम चल जाता है यह भी एक गुण है।

२४४. **पंजाबमें पशु चिकित्सा कार्य :** पंजाबमें पशु चिकित्सा कार्यकी विशेष चर्चा करनेकी जरूरत है।

सन् १९२० की हालतसे १९३७ की तुलना करनेसे कुछ अंदाज हो सकता है। इस बीच श्री किरकीका कार्यकाल रहा है। वह सन् १९२१ में पशु चिकित्सा विभागके चीफ सुपरिन्टेन्डेन्ट हुए। खेती और पशु चिकित्सा विभाग अलग होनेपर वह पशु चिकित्सा विभागके पंजाबमें डाइरेक्टर हुए। सन् १९६८ में मरनेतक वह इस पदपर बने रहे।

## आँकड़ा—१४

२४५. **सन् १९३८ तक पंजाबमें पशुपालनकी प्रगति :**

| | | १९१९-२० | १९३७-३८ |
|---|---|---|---|
| पंजाबमें पशु अस्पतालोंकी संख्या | ... | १३७ | ३०४ |
| डिस्पेंसरियोंकी संख्या | ... | ... | १,२०० |
| साढ़ोंकी संख्या | ... | १३५२ | ५,३७० |
| पशुमेले और प्रदर्शनियोंकी संख्या | ... | ३५ | २५२ |
| जिला कार्यके लिये विना गजट-वाले नौकरोंकी संख्या | ... | १९२ | ३९३ |
| गजटवाले अफसरोंकी संख्या | ... | १५ | ३६ |

—("एग्रीकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया" जुलाई सन् १९३८)

२४६. **पशु-चिकित्सा विभाग खेतीसे अलग कर दिया गया :** सर अर्थर ऑल्वरके अनुसार खेती और पशु-चिकित्सा विभागके अलग होनेसे पंजाबमें बहुत काम हुआ। अपने कार्यकालमें उन्होंने केन्द्रीय सरकारसे दोनों विभाग अलग करनेके लिये जोरसे सिफारिशकी। क्योंकि उनकी राय थी कि खेतीके साथ बँधा पशु-चिकित्सा विभाग पशु-चिकित्सा और पशु-पालनपर जैसी जरूरत है वैसा पूरा ध्यान नहीं दे सका है। पंजाबमें पशु-चिकित्साके मामलेमें सरकारी प्रगति उदाहरणके लायक हुई है। (१०८)

**२४७. भारतीय गायें और उनकी संभावनायें :** साहीवाल गायकी प्रधानता बढ़नेसे संसार-प्रसिद्ध श्रेष्ठ दुधार एयरशायर और फ्रीशियन होल्सटीन गायोंका मुकाबिला करनेमें भारतीय गायोंकी संभावनायें बढ़ गयी हैं। उत्साही शास्त्रविदोंने यह काम लगनके साथ हाथमें लिया। उनके प्रयत्नोंका लेखा सुन्दर है। साहीवालसे उत्साह और प्रेरणा मिली है, इसलिये साहीवालपर पंजाबसे बाहरभी किये गये प्रयोगके काम देखने योग्य हैं।

गो-शास्त्री साहीवालको शुद्धतम दुधार नसल मानते थे। मैटसनने (Matson) अधिक पाससे शास्त्रीय दृष्टिसे देखा और पाया कि, शुद्ध प्रकारके पितरोंसे उत्पन्न चार साहीवाल बछड़ोंमें सिर्फ तीनही ठीक प्रकारके अनुरूप हुए। बहुतसी खूब दूध देनेवाली गायें अनुरूप बच्चे पैदा नहीं कर सकतीं। अनुरूप बच्चे जनना नस्लकी शुद्धतासे होता है। शुद्ध करनेका उपाय है अवाञ्छितों का लोप करना और सपिंड-संवर्धन करना। इसके बाद सगोत्र-संवर्धन करना। साहीवालके साथ ऐसी क्रिया हो रही है।

**२४८. पंजाबमें संघटित कार्य :** संघटित कार्यसे पंजाब और वहांकी गायें पशुपालनमें सबके आगे आ गयी हैं। इसकी परीक्षाकी जरूरत है।

पशुधनकी उन्नतिके लिये पशुपालनमें जो साधारण नीति स्वीकार की गयी है, वह है उन्नत साड़ोंका वितरण, घटिया जानवरोंका बधिया करना, रोग निवारण और निराकरण आदि। इन दिशाओंमें जोरसे काम हो रहा है। सन् १९३३ तक कामकी प्रगति काफी हो चुकी है।

सन् १९३३ में २९ जिलोंमें ३७ हजार गाँवोंके २ करोड़ ३० लाख पशुधनके लिये २८८ पशु अस्पताल थे। १२८ गाँवोंके लिये एक अस्पतालका औसत था। भेटेरीनरी असिस्टेन्ट (सहायक पशु-चिकित्सक) निरीक्षण करने वाले अफसरोंके अधीन थे। अपने अस्पतालोंको केन्द्र मान उसके चारों तरफ ५ मीलतकके गाँववालों और उनके पशुधनकी पूरी जानकारी रखना इन लोगोंका कर्तव्य था। उन लोगोंका काम पैमाइश करना और इन्सपेक्टरोंकी जानकारीके लिये रिपोर्ट रखना था। अस्पतालके सहायक पशुचिकित्सकोंके कर्तव्योंमें जिला बोर्डके साँढ़ोंका रजिस्टर रखना और निजी साँढोंके ब्यौरेका लेखा रखना तथा उस केन्द्रमें हुए बधियाकी गिनती रखना भी था।

**२४९. पंजाबमें साँढ़ वितरण :** पंजाबमें जिलाबोर्ड, सरकारी क्षेत्रसे वितरणके लिये साँढ़ खरीदते थे। साँढ़ ३ वर्षकी उमरका २५२) रु० में खरीदा

जाता था। २९ जिलाबोर्डोंमें २० बोर्ड, सरकारी और सहायता-प्राप्त क्षेत्रोंसे हिसार साँढ़ खरीदा करते थे। इस अंचलके सहायता-प्राप्त क्षेत्रोंसे म्युनिस्पल्टीके भीतर और खास जगहोंमें मंटगुमरी साँढ़ भेजे जाते थे। हिसारी साँढ़ोंका वितरण नहरोंके भागमें केन्द्रित था। यहाँपर पशुधनकी उन्नति सफलतापूर्वक करनेमें कुछ नियंत्रण करना संभव था।

धन्नी साँढ़ उत्तरी पंजाबमें अपने घरके जिले रावलपिंडी, अटक, झेलम और शाहपुरमें दिये जाते थे। दज्जल ढोरके देश डेरागाजीखाँ जिलेमें भी ये दिये जाते थे। यह सिन्धके जेकोबाबाद जिलेके भगनारी देशकाही एक अंचल है। धन्नी इलाकेमें प्रति महीने ८) से १२) तक निर्वाह व्यय दिया जाता था। इस इलाकेमें चारा पाना निश्चित नहीं था। स्थानीय जमींदार (रैयत) अपनी नसलके कोटि-निर्माणमें सफलताके संकल्पके साथ पूरी लगनसे पशु-संवर्धन करते हैं। इस इलाकेके लोगोंका बड़ी आर्थिक कठिनाइयोंका सामना करना होता है।

डेरागाजीखाँके दज्जल इलाकेमें भी सहायता (subsidy) की योजना जारी थी। जमींदार पशु संवर्धक हैं। वह कठिनाईसे पशु संवर्धनके द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं। उत्तर-पच्छिम सीमाप्रान्तकी सारी माँग धन्नी इलाका पूरी करता है, और दक्खिण-पच्छिमके जिले मुलतान, मुजफ्फरगढ़, झंग और डेरागाजीखाँकी माँग दज्जल इलाका। भेटेरीनरी विभागके देखभालमें ३,४०० हिसार साँढ़ सन् १९३३ में थे। और अनेक साँढ़ोंकी जरूरत थी, पर खर्चके लिये जितने रुपये मिले थे, उनसे संख्या नहीं बढ़ायी जा सकती थी। कभी कभी नये साँढ़के अभावमें जिन बूढ़े साँढ़ोंको हटा देना चाहिये नहीं हटाये जाते।

हिसारी साँढ़ गाँवके मुखियाके हवाले पालनेके लिये कर दिये जाते हैं। कुछ दिनोंके बाद वह छुट्टा चरनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं और वह गाँवके ठट्ठके साथ सम्मिलित धनकी तरह रहते हैं। गाँववाले साँढ़को बहुमूल्य धन मानते हैं। पर जब साँढ़ बेहाथ हो जाता है और फसलकी जादे हानि करता है तब प्रतिक्रिया होती है। साँढ़ोंकी उद्धतता और रात दिन उन्हें छुट्टा रखनेके व्यवहारसे उनकी लोकप्रियता बहुत कुछ घट रही है। इधर न तो जिला बोर्ड और न भेटेरिनरी विभागके पास इतने पैसे हैं कि कुछ साँढ़ोंके लिये भी पक्का घर बना सकें। रुपये स्वल्प थे, और पशुपालनके लिये जितनी रकम दी गयी थी वह कामके लिहाजसे अपर्याप्त थी।

**२५०. जिलाबोर्डके बँटवारेका विषम अनुपात :** जिलाबोर्डने सन् १९३०-३१ में भिन्न भिन्न मदोंमें जो रकम निर्धारित की थी वह उदाहरणके लिये नीचे दी जाती है। रकम लाख रुपयेमें है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| शिक्षा | ... | ११८ | |
| जिलेके काम | ... | २६.५ | |
| पशु चिकित्सा | ... | ४.०७ | ७.१ |
| पशु संवर्धन | ... | ३.०३ | |
| सार्वजनिक स्वास्थ्य | ... | ५.५ | |
| औषधि | ... | २५.३ | |

शायद पशु संवर्धन और इसी तरहके विषयोंसे काटकर शिक्षापर व्यय किया जाता था। यदि खर्चकी यह असमानता सुधारी जा सकती तो पंजाब और भी प्रगति किया होता।

**२५१. गायका व्यापार :** पंजाबकी हरियाना गायका कलकत्ते और बंम्बईमें व्यापार होता है। रोहतक, बंबई और कलकत्तेके बीच व्यापार-समाचार वितरणका प्रबन्ध है, जिससे कि दोनों ओरके व्यापारी अंतर्प्रान्तीय बाजारका समाचार जान सकें। जिलाबोर्ड और म्युनिसिपल कमीटियोंकी ओर से ३३९ पशु-मेले किये गये। इसके सिवा अनेक संवर्धन केन्द्रोंमें एक दिनकी प्रदर्शनियाँ भी हुईं। यहाँ संवर्धकोंमें भली प्रतियोगिता बढ़ानेके लिये पुरस्कार और पदक दिये जाते थे। (१६६, ३०४)

**२५२. भारवाही और दुधार नस्लोंमें दूध बढ़ाना :** भारवाहो नस्लोंकी गायोंका दुधारपन उनके भारवाही गुणोंको कम किये बिना, बढ़ाने के लिये धन्नी नसूलके लिये ठट्ठ-बही (Herd Book) रखनेको योजना सन् १९३८ में शुरू हुई। इलाकेके ५ चुनी हुई जगहोंमें काम शुरू हुआ। हरेक केन्द्र एक भेटेरिनरी असिस्टेन्ट सर्जनके मातहत था। इनकी सहायता के लिये एकएक पशुपाल सहायक (stock assistant) थे। मार्च १९४० तक १५३ गायोंका नाम लिखा गया। साहीवाल नसूलको ठट्ठ-बही तीन चुनी जगहोंमें रखनेकी योजना सन् १९३९ में प्रारम्भ हुई। (१०८, २२६, ३२०)

**२५३. शाही कृषि-अनुसन्धान परिषद् (I.C.A.R) द्वारा दूधका लेखा लेना :** शाही कृषि अनुसन्धान परिषद्के मातहत उसीके खर्चसे दूधका

लेखा लेने वाले तीन योग्य व्यक्ति नियुक्त हुए। साहीवाल और हरियाना नसलोंके घर मंटगुमरी और रोहतक जिलोंमें दुधार प्रकारका विकाश करनेके लिये दूधका ठीक लेखा रखना इनका काम था।

८०० श्रेष्ठ हरियाना गायोंको १२,०००) रुपए की सहायक वृत्ति दी जाती थी, जिससे कि उन्हें अच्छीतरह खिलाया और उन्नत साँढ़से समागम कराया जा सके। हरियाना इलाकेमें सन् १९४० में ५६ दूध लेखा केन्द्र स्थापित किये गये।

इस समय तक जिला बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियोंने घटिया साँढ़ छुट्टा छोड़ना रोकनेके लिये नियम बना लिये थे। पशुसंबर्धन समितियाँ और पशुसंबर्धन सहयोग समितियाँ खोलनेका विचार किया गया था। केवल एक अम्बाला डिवीजनमें ही सिभिल भेटेरीनरी विभागकी १२१७ अनियमित समितियाँ थीं, जिसके १५०,६० सदस्य थे। इन्हें २६,३०३ गायें थीं। इसके अलावे इस डिवीजन में ५३ पशु-संवर्धन सहयोग समितियाँ थीं। इनके सदस्य १०९२ थे और १५६३ गायें थीं।

सन् १९४२ तक पंजाब में शाही कृषि अनुसन्धान परिषद् के मातहत तीन दूध लेखा योजनाएँ चल रही थीं। दो हरियाना के लिये और एक मुर्रा भैंसके लिये। हिसार जिलेके भवानीखेड़ा की हरियाना दुधारपन में रोहतक जिलेके बेरीकी हरियाना से घटिया थी। यह दूधके लेखेके नीचे लिखे आँकड़े से मालूम होगा। (४८८)

## २५४. गाँवोंमें हरियाना :

## आँकड़ा—१५

### गाँवोंमें हरियानाके दूधकी उत्पत्ति

| | लेखा रखे गये ब्यानकी संख्या | ब्यानमें दूधकी औसत (रत्तलमें) | सबसे कम दूधवाला ब्यान (रत्तलमें) | सबसे अधिक दूधवाला ब्यान (रत्तलमें) |
|---|---|---|---|---|
| भवानी खेड़ा (हिसार जिला) | २१ | १,६५० | ७९१ | २,९७० |
| बेरी (रोहतक जिला) | २८ | ३,१९० | २,०६३ | ५,२९५ |

ऐसे नतीजे स्वाभाविक थे। क्योंकि हिसार जिलेमें जादा जोर भारवाही गुणोंपर दिया गया था और दूध पर कुछ नहीं। अब शायद हिसारमें भी बातें सुधरकर अच्छी हो जाँय।

शाही कृषि अनुसन्धान परिषद्के धनसे चलनेवाली योजनाओंके सिवा पजाबमें प्रान्तीय योजनायें भी चालू थीं। साहीवालकी तीन योजनायें उल्लेखनीय हैं। दूधका लेखा लेना साइन्सके ग्रेजुएट, साधारण तौरपर डेयरी डिप्लोमावालेके जिम्मे होता था। अगर बहीमें अधिक गायें होतीं तो उसकी सहायताके लिये पशुपाल (stocksmen) दिये जाते थे। एक बही रखी जाती थी। इसमें गायोंकी गिनती और उनके मालिकोंके नाम और पता लिखे जाते थे। पखवाड़ेमें एकबार मालिकोंके घर जाया जाता और चौबीस घंटेमें हरेक गायकी कुल उत्पत्ति उस गायके नियमित फारममें लिखी जाती थी। उसमें गायका ब्यौरा जैसे माँ-बापका नाम, संवर्धन और दूध उत्पत्ति संबंधीय बातें भरी जातीं। जब गाय बिसुक जाती तब शाही कृषि अनुसन्धान परिषद्के बताये एक समान तरीकेसे एक ब्यानके दूधकी उत्पत्ति जोड़ी जाती।

दूधका लेखा रखनेवाला अफसर खिलाई, संवर्धन, प्रबन्ध, कुलीन साँड़के उपयोगकी जरूरत और इसी तरहके मामलोंका सलाहकार भी था। दर असल वह भेटेरिनरी विभागका प्रचारक भी था। (६५, ३२१)

**२५५. भारतकी १०,००० रत्तल दूध गोष्ठी** (Club) : यह गोष्ठी भी पंजाबमें चालू थी। जहाँगीराबाद सहायता प्राप्त पशु-क्षेत्रके कुल साहीवाल गायोंकी रिपोर्ट नीचे दी जाती है।

## आँकड़ा—१६

### दस हजार रत्तल दूध देनेवाली भारतीय गायें

| गायकानाम और नम्बर | ब्यानेकी तारीख | दूध उत्पत्ति रत्तलमें | टिप्पणी |
|---|---|---|---|
| जलाली जे ७३/२९ | १४-४-३३ | ७,१७६ | बछड़ेने दूध पिया |
| | २७-४-३४ | ७,३३५ | ,, |
| | १६-५-३५ | ११,७२१ | ,, |

| गायका नाम और नम्बर | ब्यानेकी तारीख | दूध रत्तलमें | टिप्पणी |
|---|---|---|---|
| | २१-१२-३६ | ११,५६८ | बछड़ेने दूध पिया |
| | २१-५-३८ | १०,१४४ | ,, |
| | २८-७-३९ | ९,४७० | ,, |
| | ३-११-४० | ६,२३६ | ,, |
| नेगस जे ५६/२·० | ४-२-३४ | ९,६०२ | ,, |
| | १३-६-३५ | ५,०८५ | ,, |
| | ८-७-३६ | १४,०१० | ,, |
| | ७-१-३८ | ११,६९९ | ,, |
| | १०-३-४० | अभी दूध दे रही है | ,, |
| नागनी जे २८/१·२ | १-११-३५ | ६,६९७ | ,, |
| | २५-१-३७ | ७,६९० | ,, |
| | २७-४-३८ | ६,३८० | ,, |
| | ९-४-३९ | ६,१३५ | ,, |
| | २९-१०-४० | १४,६९२ | ,, |

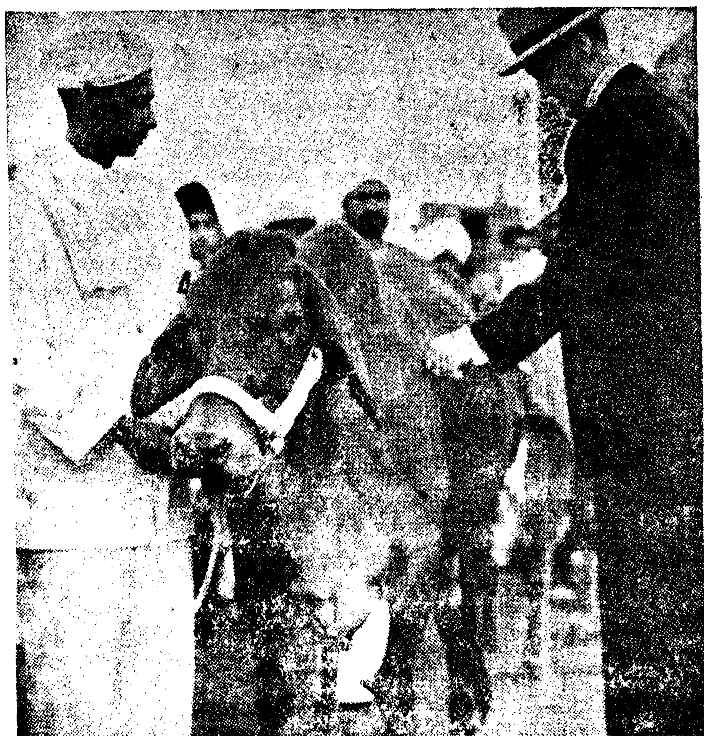
—(इंडियन फार्मिंग ; अक्तूबर १९४२) (१८०, १६६)

**२५६. फिरोजपुर सामरिक गव्य क्षेत्रकी प्रसिद्ध पुरस्कार-विजयिनी —मुदिनी :** अखिल भारत पशु प्रदर्शनी, दिल्लीका गायका सर्वश्रेष्ठ कप मुदिनी लगातार तीन वर्षोंसे जीत रही है। सन् १९४० में ३री अखिल भारत प्रदर्शनीमें उसने सर्वश्रेष्ठ गायका कप जीता। सन् १९४१ की चौथी प्रदर्शनीमें फिर जीता। उसने दूध देनेकी प्रतियोगितामें ५१ रत्तलके औसत दूधसे कप जीता और प्रदर्शनीकी सर्वश्रेष्ठ गाय मानली गयी। दिल्लीकी पाँचवी अखिल भारत पशु प्रदर्शनीमें वह फिर सर्वश्रेष्ठ ठहरायी गयी। इस बार उसने दूध देनेकी प्रतियोगितामें २४ घंटेमें ४७½ रत्तल दूध देकर जीता। और भी चार पुरस्कार उसने पाये।

१० हजार रत्तल गोष्ठी और अखिल भारत प्रदर्शनी तथा क्षेत्रोंमें साहीवालके कामका वर्णन समाप्त करनेके पहले उसके ९ वर्षके अल्प कालमें जो परिवर्तन किये गये उसका वर्णन करने लायक है।

सन् १९३३ में श्री कोठावालाने ६ मुख्य नस्लों (१) लाल सिंधी, (२) हरियाना, (३) थार्परकर, (४) काँकरेज, (५) गीर, (६) साहीवालकी ठट्ठ बही

लिखनेकी सिफारिश की। उन्होंने अपनी सिफारिशके साथ एक छोटी टिप्पणी लिखी थी। साहीवाल पर टिप्पणी इस प्रकार थी :



चित्र २७. प्रदर्शनीकी श्रेष्ठ गाय मुदिनीकी परीक्षा
बड़ेलाट लॉर्ड लिनलिथगो कर रहे हैं।
(इन्डियन फार्मिंग, खंड ३, नं० ४)

"(६) साहीवाल—मझोले कदकी दुधार नस्ल जिसका महत्व खेतीकी वर्तमान आवश्यकताएँ पूरी नहीं करनेके कारण नष्ट होगया है, क्योंकि बैल बहुत धीमे और कामके लायक नहीं होते।"

यह नहीं कह सकते कि साहीवाल गायोंका महत्व आज नहीं रहा, क्योंकि दुधार गायोंमें उसका स्थान पहला है। साहीवाल बैल भी काममें व्यर्थ नहीं माना जाता। अब साहीवाल बैल धीमा पर भारी काम करनेवाला उपयोगी पशु माना जाता है। अपने वेगकी कमी वह कामकी मात्रासे पूरी करता है।

२५७. **पंजाबकी तस्वीरकी दूसरी पीठ**: पाठकोंको पंजाबमें पशु-पालनका जो उत्कृष्ट काम हो रहा है उसकी कुछ झलक मिल गयी होगी। पर यह कामका एक पहलू है जो सरकारी, संस्था-संबंधी और गवेषणात्मक है। सभी दवाखानों और प्रचारके रहतेभी कामका देहाती पहलू शोचनीय दिखलायी देता है। ढोर और दूधकी उपज तथा खपतके संबंधमें सन् १९३६-३७ में भारतके सात संवर्धन अंचलको जांच हुई थी। इसमें मंटगुमरी और हरियाना अंचलभी सम्मिलित थे। इस जांचमें सरकारी और सरकारसे सहायता प्राप्त गव्य क्षेत्रोंकी हरियाना और मंटगुमरी नस्लोंकी अपेक्षा ये ही नस्लें अपने अपने घरोंमें घटिया पायी गयीं। इनके बारेमें आगे कहा जायगा।

गाँवोंमें एक ब्यानका औसत दूध कम पाया गया। गाँवोंमें साहीवालका औसत दूध १,३४३ रत्तल पाया गया और हरियाना का केवल ९८६ रत्तल; पर क्षेत्र-पालित उन्नत साहीवाल का आदर्श औसत ७,००० रत्तल और हरियानाका ३,६३४ रत्तल है।—(राइटकी रिपोर्ट, १९३७, आँकड़ा—३१) (२१६, २३६, २७८, ३०३, ३७२-'७६)

२५८. **मंटगुमरी इलाका**: उल्लिखित जाँच मंटगुमरी जिले तक ही सीमित थी। यह जिला सतलज और रावी नदियोंके बीच है। जाँचके लिये ६० गाँव चुने गये थे। हर गाँवके बीस बीस चक विना सोचे समझे चुन लिये गये थे।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्रति चक पर मनुष्यों की संख्या | ... | ... | ६·९ | |
| प्रति चक पर गायोंकी संख्या | ... | ... | १·० | ३·१ |
| प्रति चक पर भैंसों की संख्या | ... | ... | २·१ | |
| प्रति गाय प्रति दिन दूधका औसत | | ... | ४·७२ रत्तल | |

इस इलाकेको २२·५ फीसदी आबादी दूध नहीं पैदा करती। गाय और भैंसका दूध मिलाकर प्रति मनुष्य दूधकी उपज २६ आउन्स थी।

मंटगुमरी नहर उपनिवेश अंचल है। उपनिवेश होने और नहर-सिंचाईके पहले यहां गोचर भरे पड़े थे और जंगली नामकी जाति बसती थी। अब यहाँ जंगली

(वंशानुक्रमसे चरवाहे) और प्रान्तके दूसरे जिलों से आकर नये बसनेवाले रहते हैं। इनलोगोकी मुख्य जीविका खेती और खेती से चलने वाले धंधे, और व्यापार हैं। उपनिवेशके कारण गोचर कम हो गये हैं। इस जिलेकी दिपालपुर तहसीलमें



चित्र २८. जंगली किसान

(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इन्डिया, खंड ८, भाग १)

५४१ गाँव हैं। साहीवाल-संवर्धनका मुख्य स्थान यहीं है। इस इलाकेमें अधिकांश जंगली रहते हैं। (७२, २०२, २२३, २६६, २८७, ३०२, ३३६, ३४४, १०६१)

२५६. **जंगली :** जंगली नामसे अधनंगे, रूखे बालवाले मनुष्योंका चित्र मनमें आसकता है, पर बात ऐसी नहीं है। मंटगुमरीके जंगली आदिवासी जातिके हैं। हाल तक इनका जीवन घुमक्कड़ रहा है। ढोर संवर्धनमें यह लोग निपुण हैं और यही इनकी मुख्य जीविका रही है। नहर निकलनेसे जंगली लोगोंके जीवनमें गहरे उलट फेर हुए हैं। उन्हें खेती करनी पड़ी है। बाहरसे देखनेमें वे अधिक समृद्ध भलेही दीख पड़े, पर वह अपने छीने गये गोचर, सुन्दर घोड़े और ढोरकी याद नहीं भूल सकते। चरागाहकी कमीके कारण अधिकांश पशु इन्हें हटा देने पड़े। पिछले कुछ दशकोंमें इनकी हालत तेजीसे बदली है। यह अब भी समझते हैं कि इनकी स्वतंत्रता कम की गयी है और इन्हें हल पकड़नेके लिये मजबूर किया गया है। जंगली अपने घर और सामान बहुतही साफ रखते हैं। यही लोग थे जिनकी वजहसे साहीवाल नसल आजतक शुद्ध रही है। (७२, २२३, १०६१)

२६०. **साहीवाल अपने घरमें ही पसन्द नहीं की जाती :** अधिक सँभाल होनेसे और बार बार हमलोगोंको मिले कारणोंसे भैंस अधिक दूध देती है और इसलिये उसकी पूछ भी अधिक है। मंटगुमरी जिलेमें भी हम भैंसकी प्रधानता पाते हैं। इनकी गिनती गायसे दूनी है। साहीवाल सरकारी क्षेत्रमें हर मामलेमें भैंससे सफल मुकाबिला कर सकती है पर अपनेही घरमें उसकी पूछ नहीं होती। उसके रहते भैंस पसन्द की जाय यह एक विडम्बना है। कारण स्पष्ट है। भैंसका पाड़ा जीता रहे या मर जाय, भैंस दूध देती ही रहती है और पाड़ा अधिकांश मारा ही जाता है। पर गायके बछड़ेके साथ गाँवोंमें इसी तरहका सलूक नहीं किया जा सकता। अगर यही सलूक करके बछरू मारा जाय तो गाय दूध देना बन्द कर देगी। गायका बछरू पालनेमें उसे ३०० से ४०० रत्तल दूध पिला देना पड़ता है। भैंसका यह दूध बच जाता है। गाँव वालोंका दूधके लिये गायके बदले भैंस पालनेमें यह बड़ा लोभ है। भैंस पाड़ाके बिना भी दुही जा सकती है। इस कारण उसके अवांछित और अलाभकर पाड़ेको भूखों मारनेकी रीति हो गयी है। यह साधारण रीति है और मंटगुमरी इलाका उससे अछूता नहीं है। (**अध्याय ४ : ७२, २२३, १०६१**)

२६१. **मंटगुमरीमें गाय उपेक्षित और भैंसकी संभाल होती है :** **"गायकी बछियाके साथ बहुत बुरा बर्ताव होता है। उसे किसी तरह जीने भर दिया जाता है। उधर भैंसके पाड़ेको जनमतेही खतम कर दिया**

आता है। भैंसकी पाड़ी और गायके बछड़ेकी सँभाल अच्छी होती है क्योंकि उनका बाजार दर ऊँचा है।

"अलग अलगकी आवश्यकताके अनुसार खिलानेकी व्यवस्थित विधिके अभाव और पशुधनके अतिरेकसे अधिकांश बछरूकी बाढ़ पूरी नहीं होती। ८ से १० महीनेकी उमरमें उसे थन छुड़ाया जाता है। थन छुड़ानेके बाद उनके साथ सयाने बछड़ेसा अच्छा, बुरा या साधारण सलूक मालिकके हित और साधनके अनुसार होता है। प्रायः उन्हें बाकी पशुओंकी तरह खाना कम मिलता है।"—("सात संवर्धन अंचलकी जाँच" पृ० ७५) (७२, १०१-'२७, २२३, १०६१)

२६२. **मंटगुमरीके दूधके लिये भैंस पाली जाती है :** सात संवर्धन अंचलकी जाँचकी रिपोर्टमें मंटगुमरी इलाकेमें जहाँ- गायके लिये ऊपर लिखा विचार है, वहीं भैंसके लिये नीचे लिखा है :

"गव्य प्रयोजनके लिये इस जिलेकी रावी और नीली इन दो नसूलोंकी भैंसोंने मंटगुमरी गायको दबा दिया है। इन्हें जमीन्दार बहुत चाहते और पूरी सावधानीसे पालते हैं। बहुतसे गाँवोंमें अच्छी तरह चुना हुआ भैंसा संवर्धनके लिये रखा जाता है।"

जाँचके साल (सन् १९३७) में श्री वाइन सायर (Mr. Wynne Sayer) निकट भविष्यमेंही साहीवालको पूरी १० हजार रत्तल दूधवाली गाय बनानेकी कल्पना कर रहे थे। उसी समय (१९३७) जहाँगीराबाद ढोर-क्षेत्रमें एक साहीवाल गाय "नेगस" अपने बच्चेको पालनेके अतिरिक्त १४ हजार रत्तल दूध दे रही थी। उस समय भी साहीवालके साथ अपने घरमें यह बर्ताव होता था।

जब "प्रान्तभरके लोग मंटगुमरी नसूलके बारेमें जानने लगे हैं और इस कारण उसकी माँग रोज बढ़ रही है" तब साहीवालका अपने घरमें इतना कम ख्याल किया जाता है। (७२, १०१-' २७, २२३, १०३१)

२६३. **मंटगुमरी संवर्धनके लिये दीपालपुर तहसील :** मंटगुमरी जिलाबोर्डने मंटगुमरी नसूलको बढ़ानेके लिये दीपालपुर तहसील चुनी। यह जिलेका चौथाई भाग है।

"...जिलेके इस हिस्सेमें मंटगुमरी पशु-संवर्धनसे निर्वाह करनेवाले जंगली अधिक हैं। उन्हें बनाये रखनेके लिये संवर्धन-प्रयोजनके लिये दीपालपुर तहसीलको

शुद्ध मंटगुमरी नस्लवाले जिला बोर्डके ६५ सांढ़ हैं।"—("साल संवर्धन अंचलकी जाँच" पृ० ७४)

इसी जिलेमें वितरित १९३ हिसार साँढ़के मुकाबिले यह कम है।

"...जमीन्दारोंका आर्थिक साधन उन्हें शुद्ध मंटगुमरी नस्लमें जितनी चाहिये उतनी दिलचस्पी रखनेमें बढ़ावा नहीं देता है।"—(उसी किताबसे)

मंटगुमरीके देहाती प्रति दिन प्रति मनुष्य २६·११ आउन्स दूध उपजाते हैं और १५·५३ आउन्स दूध या उससे बनी चीजें काममें लाते हैं। इससे हम यह न सोचें कि यह सारा दूध मंटगुमरी या साहीवालका होता है। क्योंकि जहाँ मंटगुमरी नस्लकी गायको प्रति दिन दूध ४·७० रत्तल होता है, वहाँ उसी इलाकेकी भैंसको ८·२४ रत्तल प्रति दिन, और फिर भैंसके दूध देनेका समय ५० प्रतिशत होता है और गायका ४० प्रतिशत। इसके साथ यह भी सोचना है कि गाँववालोंको गाय पीछे दो भैंस पालना होता है। इस आधार पर मंटगुमरी गायका दूध उस इलाकेकी कुल दूध-उत्पत्तिकी चौथाईसे भी कम है। (७२, २२३, १०५४-'०५५, १०६१)

२६४. **पंजाबमें प्रचारका कुल प्रभाव :** रैयत आज अपनेको जितना गरीब समझ रहा है उतना उसने कभी नहीं समझा था। इसलिये वह असंगत स्थितिमें पाया जाता है। उसकी दरिद्रताका असली कारण आर्थिक है। उसे दूर करना होगा, जिससे वह अपनेको दृढ़ आधारपर पावे और गाय भैंस तथा हर छोटी बड़ी चीजोंसे अपना मेल फिरसे बैठा सके। गरीबीके ही कारण साहीवाल अंचलका रैयत गायकी उपेक्षा कर सका है। भेटेरिनरी विभागसे हर तरहके पदार्थ-पाठ मिलते रहनेपर भी रैयतपर कुछ असर नहीं होता है, वह निष्क्रिय रहता है। रैयतके ढोरकी दशा सुधारनेके लिये प्रचारका प्रबन्ध करनेके लिये भारतके सभी प्रान्तीय भेटेरिनरी विभागोंको प्रोत्साहित किया जाता है। पंजाब पशुपालनमें सभी प्रान्तोंका अग्रणी है। उसे सब सामानसे लैस, क्रियाशील और योग्य प्रचार तंत्र प्राप्त है। उदाहरण के लिये जिस मंटगुमरी रैयत और जंगलीको अपनी साहीवालसे एक ब्यानमें कुल १,३०० रत्तल या प्रति दिन कुल दो सेर दूध मिलता है उसके रुखसे पंजाबके प्रचारका विचार करना होगा।

पंजाब सरकारके अच्छेसे अच्छा काम करते रहने परभी रैयतपर असर नहीं होता। वह मादीको अच्छी तरह खिलाता है और बछियाकी उपेक्षा करता है।

उसकी साहीवालमें जो अमूल्य गुण हैं उसका विकाश नहीं करता। रैयतकी अचेतनताका कारण हमलोगोंको खोजना है। हम जानते हैं कि वह सदा अचेत नहीं है। जो सुधरे उपाय उसकी शक्तिके भीतर रहें और जिनके करनेमें उसे कोई जोखिम नहीं उन्हें वह जरूर ग्रहण करता है। आर्थिक बातोंमें वह चतुर पुरुष है। मंटगुमरी रैयत अपनी भैंसकी जैसी संभाल करता है वैसी अपनी गायकी करनेके लिये सरकार उसे क्यों नहीं तैयार कर सकी? (१८, ३६८, ४०३)

२६५. **संवर्धनकी सरकारी विधिका किसानपर असर नहीं होता :** सरकारका विश्वास नहीं किया जाता। उसे वह (रैयत) विदेशी मानते हैं। ढोर संवर्धनकी सरकारी विधि उसकी सामर्थ्यके बाहर हैं। वह अपनी सद्यः आयको सब कुछ मानता है। ढोरकी देर से होनेवाली उन्नति या अवनति ऐसी बातें हैं जिन्हें वह समझता है पर कर नहीं सकता। उसे सहायताकी जरूरत है, पर प्रचार वह सहायता नहीं देता जिसकी उसे सबसे पहले आवश्यकता है। जिस सहायताकी उसे जरूरत है सिर्फ प्रचारसे उसकी पूर्त्ति नहीं हो सकती। गाँवके जिस अर्थशास्त्रपर वह अपने जीवन और समाज-व्यवस्थाका निर्माण करता है उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया है। उसके जीवनके अभ्यास, उसके गृह शिल्प, उसकी शिक्षा और शिक्षाके आधारके साथ छेड़ छाड़ कर सरकारने उसके पैर उखाड़ दिये। मूल कारण यहाँ है। सरकारको दूसरे उपायोंके साथ ही किसानें संवर्धकोंको भी यह भरोसा देना चाहिये कि उनके दूध और ढोरों के उचित दाम उन्हे मिलेंगे। ऊपरके विचारके बिना उन्नतिका प्रयास अधिक कामका नहीं हो सकता। (१८, ३६८, ४०३)

२६६. **हरियाना इलाका :** इस इलाकेमें हिसार, रोहतक, गुड़गाँवा और दिल्ली जिले तथा अम्बाला डिवीजनके कर्नाल जिलेका भी एक हिस्सा शामिल है। वर्षा वर्षमें १८ इंच होती है। जमीनमें चूना काफी है। जमीन उपजाऊ है पर दैव (वर्षाके) आसरे। प्रति चक जमीन १२·८ एकड़ है। यह एक मंटगुमरी चकका आधा है। पर मनुष्य प्रति चक बराबर हैं अर्थात् ६·८। इसलिये यहाँ मंटगुमरीकी तुलनामें दूनी आबादी है।

मंटगुमरीमें जिन कारणोंसे गोचर घटे हैं उन्ही कारणोंसे यहाँ भी घटे हैं। इसका असर हरियाना नसलके ढोरकी गिनती और गुणपर हुआ है। "...जहाँ व्यापारी फसलें, जैसे गेहूँ और कपास सींचकर उपजानेसे जमीन्दारोंको (रैयतों) आदि

नफा है, वहां पशु संवर्धन करनेमें अब कुछ मिलनेवाला नहीं।"* (२०२, २५८, २८७, ३०२, ३२१, ३३६, ३४४)

२६७. **ढोर संवर्धनका कम नफा :** "... ढोर संवर्धनमें नफा बहुत कम है। थोड़ी जमीनवाले अपने जीवन निर्वाहके लिये यह धंधा उठाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ ढोर जमीन्दारका खजाना है और वह अपनी सारी बचत इसीमें लगाता है। फिर भी दुखकी बात है कि संवर्धनसे कुछ नहीं या बहुत कम मिलता है।"

हरियाना इलाकेकी जाँचसे यह दो वाक्य पढ़नेमें विचित्र लगते हैं। इलाकेमें सिंचाईका प्रबन्ध है और कीमती व्यापारी फसलें जैसे गेहूँ और कपास होती हैं। गोचर जोत लिये गये हैं और उनमें अधिक मुनाफेवाली फसलें लगाई जाती हैं। तो भी कहा जाता है कि रैयत इतना गरीब है कि किसी तरह अपने गुजारे भरको कमा पाता है। वह गायको अपना धन मानता है, पर फिर भी पशु-संवर्धन करनेमें उसे कुछ लाभ नहीं होता। अगर सिंचाई और सुधरी खेती आदिसे भी रैयत गरीब हो रहा है, यदि सरकारी प्रचारके रहते भी पशु संवर्धनसे उसे लाभ नहीं होता तो प्रान्त भरमें पशु प्रदर्शनियाँ करनेमें कौनसी खूबी है? अगर उसे अब भी सिर्फ गुजारे भरके लिये जुटा रहना होता है तो सिंचाईकी नहरें और हरियाना नसलके पशु लेकर वह क्या करेगा?

२६८. **इलाकेमें चराई :** "जहांतक हो सकता है ढोर चराईपर ही पाले जाते हैं। फायदा यह है कि जब चराई और कटी फसलकी खूँटियोंसे काम नहीं चलता सिर्फ तभी उन्हें खूँटेपर खिलाया जाता है। जिस वर्ष वर्षा अच्छी होती है उस वर्ष जुलाई, अगस्त और सितम्बर इन तीन महीनोंतक चरनेको काफी मिलता है। इस इलाकेमें होनेवाली कुछ घास दूब (Cynodon Dactylon) दिल्ला (Cyperus tuberosus), मकरा (Eleusine aegyptiaca), भूरित (Cenchrus echinatus), अंजन (Pennisetum cenchroides), स्वांक (Panicum colonum), और पलवान (Andropogon annulatus) हैं। कठिनाई यह है कि सभी आम चरागाह अनियंत्रित हैं...

* हरियाना इलाकेमें भी भैंसकी समस्या दुखदायी है। सात संवर्धन इलाकोंकी जाँचमें गाय और भैंसके साथ किये गये सलूकके भेदका जिक्र है।

और गाँवके चरागाहमें गाँवका हरेक आदमी चाहे जितना ढोर चरा सकता है।"—("सात संवर्धन इलाकों की जाँच" पृ० ७८-७९)

२६९. दूसर नस्लें : पंजाबमें दुधार नस्ल मंटगुमरी और द्वि-प्रयोजन नस्ल हरियानाके सिवा और भी नस्लें हैं। धन्नी, दज्जल और भगनारी भारवाही नस्लें हैं। इनका वर्णन नस्लोंके अध्यायमें हो चुका है। (६३-७४)। दूसरी उल्लेखनीय नस्ल रोभ्नन है। यह भारवाही नस्लका पहाड़ी ढोर है। भगनारी नस्लकी यह नस्ल बहन है।



चित्र २९. रोभ्नन बैल
(इन्डियन फार्मिंग, खंड ३, नं० २)

२७०. रोभ्नन ढोर : इस नस्लकी योग्यता और बुरी खिलाईमें तथा खराब मौसममें भी काम करनेकी शक्तिके कारण सिविल भेटेरिनरी विभागके सुपरिन्टेन्डेन्ट इसपर बहुत ध्यान दे रहे हैं। एकदमसे गरीब रैयत जिसे कमसे कम चारे पर जादे से जादे कामकी जरूरत है, यह नस्ल उसीके लिये है। रोभ्नन ढोरके सिलसिलेमें पंजाबके सिविल भेटेरिनरी विभागके सुपरिन्टेन्डेन्टने "इंडियन फार्मिंग" के फरवरी सन् १९४२ के अंकमें लिखा है :

"पंजाबमें भारवाही प्रकारके ढोरके बारेमें बहुत काम हुआ है। वहाँ प्रसिद्ध हिसार, दज्जल और धन्नी नस्लें आदर्श भारवाही प्रकार बननेके लिये परस्पर होड़ कर

रही हैं। यह सब अच्छे ढंगकी सुन्दर शानदार नस्लें सचमुच किसी खेतकी शोभा बढ़ा सकती हैं। नहरके उपनिवेश और खूब अच्छी खेतीकी जगहोंमें यह बहुत काम करती हैं। पर इस प्रान्तमें ऐसे स्थान बहुत हैं जहां काम उतना कड़ा नहीं, जमीन्दार उतने उन्नतशील नहीं और चाराभी इतना काफो नहीं होता। ऐसे हिस्सोंमें यदि उन्हें (उन नस्लोंको) लाया जाय तो वह लाभके बदले भार बन जायेंगी ...”

२७१. **ढोरकी नस्लकी उन्नतिके बारेमें श्री पीज** (Mr. Pease) **का विचार :** ढोरकी भारतीय नस्लके बारेमें अपनी रिपोर्टमें श्री पीजने ऐसेही मुद्दे को ध्यानमें रख लिखा है : “अगर हम विभिन्न जिलोंमें ढोरकी नस्लकी उन्नति चाहते हैं तो हमें इन बातोंको अपने ध्यानमें रखना होगा : (१) जिस वर्गका पशु किसी जिलेमें होता है उसी वर्गका किन्तु उससे मजबूत और अच्छा उत्पन्न करना और (२) जो चारा मिलता है उसीपर गुजर करनेवाला पशु उत्पन्न करना।”

पंजाबके बहुत बड़े इलाकेकी यह जरूरत रोझनसे पूरी हो सकती है। रोझनका घर डेरागाजीखांमें है। संवर्धक ऐसे इलाकेमें रहते हैं जहाँ पूरबमें सिन्ध नदीकी मनमानी और पच्छिममें सुलेमानकी पहाड़ीके जोरोंके जलप्रवाहोंके कारण खेती अनिश्चित है। इस इलाकेकी घास घटिया और जमीन अधिकतर अनउपजाऊ हैं। इन परिस्थितियोंके कारण इस जिलेमें कुछ वर्गके लोग घुमक्कड़ हो गये हैं। यह लोग चराईके लिये अपने ठट्ठके साथ घूमते रहते हैं।

सक्खर जिलेके (सिन्ध) रोझन इलाकेके नामसे इस नस्लका नाम निकला है। यहीं सिन्धसे मसुआकी धारा निकली है। यहीं रोझनका संवर्धन बराबर होता है। यह बहुत परिश्रमी मजबूत और दृढ़ होते हैं, पर भगनारीसे बहुत छोटे और बेडौल। मुलतान, मुजफ्फरगढ़ और डेराजातमें कुंओंसे पानी भरनेके काममें इनकी बहुत पूछ है। स्यालकोट, गुजरानवाला और अमृतसर तक भी इनसे काम लिया जाता है। यह बेहद मेहनती हैं और किसी तरहके भी चारेपर पनप सकते हैं।

इस नस्लका लाल रंग और झालरपर छोटे सफेद दाग से लेकर सारे बदन पर बड़े बड़े सफेद दाग इसकी पहचान हैं। यह मझोले या छोटे कदका जानवर होता है। इसकी औसत ऊँचाई ४७½ इंच और लम्बाई ५२ इंच

होती है। यह बहुत परिश्रमी, भड़कनेवाले और पानीदार जानवर हैं। (१४१, ५०३, ५०६, ५०८)

## युक्तप्रान्त

२७२. **युक्तप्रान्तमें संवर्धन :** युक्तप्रान्त बहुत बड़ा है। भारतके किसीभी प्रान्तसे उसका क्षेत्रफल जादा है। यह प्रान्त लम्बा है। इसके पूरबमें बिहार और पच्छिममें पंजाब है। उत्तरमें हिमालय और दक्खिनमें अलवर, भरतपुर, ग्वालियर, रीवाँ आदि कई देशी राज्य हैं। इसकी सीमान्त जगहोंके लक्षण पासके प्रान्तों और रजवाड़ोंसे मिलते हैं। हिमालय और नेपालकी तराईके जंगल और गोचर इस प्रान्तकी विशेषता है।

पच्छिमी भागके लोग और ढोर पंजाबकी तरहके ही हैं और यह स्वाभाविक है। पंजाबका हरियाना इलाका युक्तप्रान्तके हरियाना इलाकेके सिलसिलेमें है। युक्तप्रान्तका मथुरा जिला पंजाबके गुड़गाँवा जिलेके बगलमें है। उसी तरह युक्तप्रान्तके मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और देहरादूनमें, पंजाबके अम्बाला डिवीजन जैसे लक्षण हैं; और इन सभी जगहोंके ढोर बहुत कुछ हरियाना नसूलके हैं। युक्तप्रान्त का सबसे बड़ा पशुसंवर्धन क्षेत्र मथुरामें है। यहाँ माधुरीकुंडमें हरियाना ढोरका संवर्धन होता है।

२७३. **युक्तप्रान्त का आबाद हिस्सा :** ३ करोड़ ६० लाख एकड़ जमीन बोयी जाती है। भारतके प्रान्तोंमें बोया जानेवाला सबसे बड़ा क्षेत्रफल यहीं है और यहीं खेतीके कामके और दूध देनेवाले ढोर सबसे जादे हैं। सन् १९३१ की जनगणनाके अनुसार इस प्रान्तमें १ करोड़ साँढ़ और बैल, ६० लाख गायें और ४० लाख भैंसें थीं। यह संख्या महत्वकी है और प्रान्तका लक्षण बताती है।

यह भारतके घी-उत्पादक भागोंमें एक है। दूसरे घी-उत्पादक भाग बंबई, पंजाब और मदरास हैं। इन भागोंकी विचित्रता गायकी तुलनामें भैंसोंकी अधिकता है।

## आँकड़ा—१७

**२७४. प्रान्तोंमें गायों और भैंसोंकी संख्या और अनुपातका आँकड़ा :**

| प्रान्त | गायोंकी संख्या (मिलियनमें) | भैंसोंकी संख्या (मिलियनमें) | १०० गाय पर भैंसका अनुपात |
|---|---|---|---|
| १. पंजाब | २·६ | ३·० | ११५ |
| २. युक्तप्रान्त | ६·० | ४·२ | ७० |
| ३. बम्बई | २·० | १·२ | ६० |
| ४. मदरास | ५·९ | २·८ | ४७ |
| ५. सिन्ध | ०·८ | ०·३ | ३७ |
| ६. बिहार-उड़ीसा | ५·७ | १·६ | २८ |
| ७. मध्यप्रान्त | ३·१ | ०·८ | २६ |
| ८. आसाम | १·७ | ०·१९ | ११.१ |
| ९. बंगाल | ८·२ | ०·२७ | ०.३३ |

[मिलियन १० लाखका होता है]

प्रति सौ गायोंपर पंजाबमें ११५, युक्तप्रान्तमें ७० और मदरासमें ४७ भैंसें हैं, और यही मुख्य घी उत्पादक प्रांत हैं। युक्तप्रान्तमें सबसे जादे भैंसें ४·२ मिलियन हैं। उसके बादही पंजाब है जहाँ ३ मिलियन हैं और मदरासमें २·८ मिलियन। (१२७)

**२७५. गाय और भैंसके दूधका अनुपात :** गाय और भैंसके दूधके अनुपातके इन ऐसेही आँकड़ोंसे सरकारने तय किया है कि भारतका दुधार पशु भैंस है। गाय उसके साथ सुर भरनेवाली जैसी है। सारे भारतका एक साथ विचार करनेपर यह निष्कर्ष गलत नहीं कहा जा सकता। पर भारतकी स्वभाविक दशाके अनुसार विचार किया जाय तो यह बात सही नहीं ठहरेगी।

**२७६. भैंसको लोकप्रिय बनानेमें घीका स्थान :** आजकल जल्द और थोड़े समयमें घी इधर से उधर भेजना संभव हो गया है। इसलिये भैंसके घीका व्यापार हालसालसे चला है। पर यह बात माननी होगी कि इसका आधार दृढ़ नहीं है। आजकी बनावटी हालतमें भैंस वास्तवमें दुधार पशु है पर स्वाभाविक रूपमें वह ऐसी है नहीं। उसे अब और यह न तो होना चाहिये और

न होने देना चाहिये। सद्यः लाभ और घी दूरतक भेजनेके लिये कई प्रान्तोंमें भैंस को अनुचित होड़में आगे किया गया है। दूधमें भैंस ऊँचा पद पानेकी होड़ या प्रतिस्पर्धा करे यह आजकी बात है। भैंसें इस देशमें बराबर से हैं और जब यह अस्वाभाविक अवस्था मिट जायगी तब भी वह रहेंगी। पर साधारण हालतमें भैंस और गायका अत्युक्तिपूर्ण अनुपात नहीं रह सकता। मैं इसे असाधारण इसलिये कहता हूँ क्योंकि पहले कहा जा चुका है कि दूधमें मिलावट करनेके बल भैंस टिकी है। भैंस, बच्चा न रहे तबभी दूध दे सकती है और गृहस्थको भैंसके पाड़े को भूखा मारनेमें कोई हिचक नहीं होती।

यह सब सद्यःलाभके लिये ही है, जो लाभ उस समय तो फायदे का मालूम होता है पर उसके लिये सभ्यताके अनेक ऊँचे गुणोंका बलिदान हो जाता है। कहा जा चुका है कि भैंस गायसे बहुत जादे खाती है और रैयत उसकी बहुत सँभाल करते हैं। इतनी सँभाल और खिलाई होनेपर भी, इतने प्रत्यक्ष लाभके देते रहने पर भी भैंसकी संख्या पिछले २० बर्षोंमें जहाँ थी प्रायः वहीं है। (१२७, २८०, ११२५ ११२६)

**२७७. भारतमें गाय और भैंस (हजारकी संख्यामें) :**

| | १९१८ | १९३८ |
|---|---|---|
| गाय | ३६,०७९ | ३७,०५२ |
| भैंस | १३,२३४ | १४,९६७ |

गायकी संख्या २० वर्षमें ३६० लाखसे ३७० लाख हो गयी और भैंसकी १३२ लाखसे १४९ लाख। (१२७)

**२७८. गायकी तरह व्यवहार पाने पर भैंस शायद निर्मूल होजाती :** प्रकाशित रिपोर्टोंसे पता चलता है कि अभावके दिनोंमें गाय भार मानी जाती है। उसके साथ व्यवहारभी वैसाही होता है पर उस समय भैंसकी सँभाल हमेशा से जादे होती है, क्योंकि उससे आमदनी होती है। इतना होते हुए भी भैंस २० वर्ष पहले जितनी थी उतनी ही है। अब जरा उल्टी बातकी कल्पना कीजिये। भैंसकी जितनी सँभाल होती है उतनी अगर गायकी होती और अभी गायके साथ जैसा सलूक होता है वैसा भैंसके साथ हुआ होता तो मैं हिम्मतके साथ कह सकता हूँ कि उस निठुर सलूकसे भैंस मिट गयी रहती। इस बुरे सलूक पर भी गाय अभी हमारे बीच टिकी है, हमारी रक्षा करती और हमें बैल

देती है। जो व्यवहार भैंसके साथ होता है वही अगर गायके साथ किया जाता तो हर साल वह और कितना दूध देती? गायकी वृद्धि रोक रखनेसे अपार आर्थिक हानिका भी विचार कीजिये। क्षीण वृद्धि गायसे घटिया साँड़ पैदा होगा और घटिया साँड़से पशुधनका क्षय है। यही हो रहा है। (१०६-'२७, २१६, २३६, २५७, ३०३, ३७२-'७६)

**२७६. गायके मुकाबिले भैंसको खड़ा करनेका भयंकर परिणाम :** अगर पंजाब, युक्तप्रान्त और बंबईमें गायके मुकाबिले निष्ठुरतासे भैंसको लानेकी भूल नहीं की गयी होती तो इसमें संदेह नहीं कि गायकी और इसीलिये साँढ़ और बैलकी कम अवनति हुई होती। पंजाब, युक्तप्रान्त और बंबईमें रैयत भैंस पालनेसे कुछ अतिरिक्त पैसे पा जाते हैं, पर इससे वह खेती और देहाती यातायातकी कमरही तोड़ डालते हैं। यह सरकारका काम है कि इस समस्याको दूर दृष्टिसे अपने हाथमें ले और भैंस पालनेसे लोगोंको बरजे जिससे गो पालनमें कमी न आवे।

फिर भी एकदम उल्टा हो रहा है। सारी व्यवस्थाके कर्णधारोंने मान लिया है कि, भारत खेतीके लिये बैलपर और दूधके लिये भैंसपर निर्भर है। शाही कमीशनने यही लिखा है और तबसे सरकारी लोगोंकी चर्चाका यही भाव रहता है। मदरासके कैप्टन लिटिलउड और भूतपूर्व पशुपालन-निपुण सर अर्थर ऑलवर जैसे आदमीके विरोधका भी विचार नहीं किया जाता। जवाबदेह अफसर और सलाह देनेवाले अर्थशास्त्रियोंको इस हालत पर गौर करना चाहिये। ऊपर वर्णित कारणोंसे रैयतोंने आज भैंसको जो पद दिया है उससे भारतकी हितहानि होती है। अदूरदृष्टिसे अनुचित होड़में भैंससे गायकी रक्षा हो यह सरकारी नीति होनी चाहिये। (१०६-'२७)

**२८०. युक्तप्रांतमें व्यापारकी एक बड़ी चीज—घी :** भैंसके कारणही युक्तप्रांतके कुछ शहरोंमें घी व्यवसायके केन्द्र हैं। प्रांतके पच्छिमी सिरेपर अलीगढ़ और मेरठसे पूरबी छोर गोरखपुर और गाजीपुरतक घीका बड़ा व्यवसाय है। वास्तवमें यह सब भैंसका ही है। पूरबी छोरपर गोरखपुर सिर्फ नामके लिये ही गोरख है। वह नहीं जानता कि चोटों या प्रहारोंसे गायकी रक्षा कैसे की जाय। पर एक परिवर्तन आ रहा है। आज गोरखपुरमें गायके बचानेवाले मैदानमें उतरे हैं। वह महसूस करते हैं कि भैंसके कारण गायके साथ निठुर व्यवहार हो रहा है। (२७६, ११२६)

**२८१. युक्तप्रांतका संवर्धन क्षेत्र माधुरीकुन्ड :** प्रांतके संवर्धनकी चर्चापर फिर आवें। शाही कमीशन (१९२७) के समय युक्तप्रांतमें दो पशु संवर्धन क्षेत्र थे। एक मथुराके पास माधुरीकुन्ड और दूसरा खीरी जिलेके मँझरामें। माधुरीकुन्डमें १,४०० एकड़ जमीन थी। वहाँ हिसार और मुर्रा भैंसका संवर्धन होता था। मँझरा क्षेत्रमें ५५० एकड़ जमीन थी और २,००० एकड़ बढ़ानेकी योजना थी। यहाँ तीन तरहके पशु थे—साहीवाल, खेरीगढ़ और मुर्रा भैंस।

अनुभवसे मालूम हुआ कि अगर बहुत बड़े दायरेमें थोड़ेही साँड़से काम किया जाय तो नस्लोंका कोटि-निर्माण सफल नहीं हो सकता। इसलिये थोड़े दायरेमें उत्साहपूर्वक घना काम हाथमें लिया गया और दो स्थान चुने गये। निरीक्षणका उचित प्रबंध किया गया।

उस समय कूता गया था कि ८० से १०० साँढ़ हर साल तैयार करनेके लिये एक क्षेत्रको पूँजीके लिये दो लाख रुपये और जब क्षेत्र पूरी पैदावार करने लगे तब वार्षिक व्ययके लिये २३,०००) रुपयेकी ज़रूरत होगी। इसका माने है कि प्रत्येक साँढ़की लागत २५०) रुपये होगी।

**२८२. सन् १९३३ के लगभग साँढ़-नीति और कोटि-निर्माण कार्य :** आगे चलकर युक्तप्रांतकी सरकारने अपनी नीति बदल दी और साँढ़ मुफ्त बाँटनेका विचार किया। सन् १९३३ तक कोटि-निर्माण कार्य पूरी तेजीपर था। नीचे लिखा आँकड़ा प्रबोधक है।

## आँकड़ा—१८

### युक्तप्रान्तमें साँढ़ोंकी गिनती

| साल | बाँटे गये साँढ़ोंकी संख्या | प्रान्तमें साँढ़ोंकी कुल संख्या |
|---|---|---|
| १९२३ | ४६ | २३९ |
| १९२४ | ७२ | ३०१ |
| १९२५ | ७९ | ३१२ |
| १९२६ | १०० | ३७४ |
| १९२७ | २६२ | ५९७ |

| साल | बाँटे गये साँढ़ोंकी संख्या | प्रान्तमें साँढ़ोंकी कुल संख्या |
|---|---|---|
| १९२८ | ६३५ | १,१८६ |
| १९२९ | ८१५ | १,९४७ |
| १९३० | ५६८ | २,३४१ |
| १९३१ | ६३९ | २,७३१ |
| १९३२ | ५५५ | ३,०१५ |

सन् १९३२ तक दोनों पशु क्षेत्रोंके पास जितनेसे उन्होंने काम शुरू किया सिर्फ वही १,८०० एकड़ जमीन थी। पर उस साल ६,००० एकड़ जमीनपर दो नये संवर्धन क्षेत्र खोले गये। हरियाना, पँवार, खेरीगढ़, साहीवाल और मुर्रा भैंस, ये नस्लें थीं। हरियाना पंजाबसे खरीदी गयी थी पर पँवार और खेरीगढ़ तराईमें पेशेवर संवर्धकोंसे ली गयी थी। यह लोग संवर्धनका काम सावधानीसे बनाये हुए रखते आये हैं। इनकी नस्लोंमें काफी समानता थी।

सरकार साँढ़ देनेके खर्चमें कमी करनेका उपाय खोज रही थी। देशकी परम्पराके अनुकूल एक उपाय सूझा। यह सरकारी साँढ़ोंको ब्राह्मणी साँढ़के जैसा मान लेना था। सरकारने तय किया कि लगभग दो बर्षके बछड़े सस्ते दाममें खरीदे जायँ और रैयतोंको उस समयके चालके अनुसार मुफ्त देनेके बदले और भी सस्ते दाममें दिये जायँ। तय हुआ कि खरीदे साँढ़की कीमत ३०) रुपये ली जाय और विभागीय क्षेत्रोंमें पैदा हुएकी ४०) रुपये।

यह विचार घर कर गया। गाँववालोंने देखा कि नये साँढ़ अधिक सरल हैं। यह लोग बिना हीला हवालेके ब्राह्मणी साँढ़ या उत्सर्गित साँढ़की तरह उसे रखने लगे।

"... साधारण तौरपर थोड़ेही ढोरवाले ऐसे हैं जिन्हें इतनी गायें हैं कि अपने खर्चसे साँढ़ रख सकें। इस कारण निजी खर्चसे उसे पालनेके बदले साँढ़ सार्वजनिक अधिक माना जाता है। उत्सर्ग करनेकी हिन्दुओंकी रीतिने इस विचारको और भी बढ़ाया है। संवर्धकोंके मनमें यह विचार जम गया है कि साँढ़का प्रबन्ध दूसरोंका ही काम है। इसलिये इस प्रबन्धमें उन्हींकी गरज है, इस सुझावसे जादे उनकी समझमें यह आ सकता है कि सरकार यह जवाबदेही ले ले।

"...मेरी रायसे इस देशमें पशु संवर्धनको उन्नत करनेके लिये यही राह लेनी होगी। पशु संवर्धन योजनाओंका ढंग और सीमा राष्ट्रीय या प्रान्तीय हो और इनका सूत्रपात या संचालन संबंधित सरकारोंका ही काम रहे।

"साँढ़ एक प्रकारकी सार्वजनिक संस्था है यह प्रचलित विचार, और इस प्रान्त में साँढ़ देनेके बारे में इस विभाग पर निर्भर रहना यह सूचित करते हैं कि इस पद्धतिसे विकाश करनेमें परिस्थिति पहले से ही बहुत कुछ अनुकूल है।... सरकार पशु संवर्धनका विकाश प्रांतीय आधारपर करने की जवाबदेही स्वयं लेले, परिस्थिति इसके अनुकूल मालूम होती है। जब पशु संवर्धनकी योजनाएँ बनायी जायँ, यह उद्देश्य ध्यानमें रखना चाहिये। ऐसी योजनाओंमें कामकी इस अंतिम सीमाका भी विचार रखना चाहिये। और ऊपरके सुझावके अनुसार उसे ऐसा बनाना चाहिये जिससे कुछ दिनके भीतर वह कुछ हदतक स्वावलंबी हो जाय। योजनाओंके साथ आर्थिक उपायभी बताना चाहिये जिससे कामके लायक जरूरी रुपये मिल सकें और संवर्धन कार्य सदा चलता रह सके। मैं समझता हूँ कि सवालके इस पहलूका महत्व लोगोंने पूरी तरह नहीं समझा है। (१४१, ४२)

२८३. "**घटिया साँढ़का हटाना** : जहाँ सरकारी साँढ़ दिये गये हैं वहाँ से अज्ञातकुल घटिया साँढ़ोंको हटाने में बहुत कठिनाई नहीं हुई है। जब सरकारी साँढ़की संतानकी श्रेष्ठता दिखायी गयी तब अनेक गाँवोंने ऐसे घटिया साँढ़ हटानेका प्रबन्ध स्वयं कर लिया। कभी कभी विभागसे सहायता माँगी जाती है। जब गाँव के मुखियालोगोंके दस्तखतसे किसी साँढ़को हटानेकी दरखास्त दी जाती है, तब वह वहाँसे हँटा लिया जाता है और उसे बधियाकर बेच दिया जाता है। यद्यपि सैकड़ों इस तरह हटाये गये फिरभी कामके लायक कर्मचारियोंकी कमीसे प्रगति थोड़ी हुई है। जहाँ आमतौर पर बधियाकी प्रथा नहीं है वहाँ यह समस्या कुछ कठिन मालूम होती है। पर मैं समझता हूँ कि जबतक श्रेष्ठ वर्गके साँढ़ देनेकी व्यवस्था रहेगी, गाँवके लोग घटिया साँढ़से संवर्धन कम करावेंगे और वह लोग बधिया करने और हटानेकी योजनामें सहयोग देंगे। जहाँ सरकारी साँढ़ रखे गये हैं वहाँ गाँववालोंकी बहुत दरखास्तें आती हैं। इससे मालूम होता है कि इस मामलेमें मददकी माँग है।

"गाँवमें रक्तहीन बधिया करनेवालोंकी ज़रूरत है। मेरा सुझाव है कि भेटेरिनरी विभाग रक्तहीन बधिया करनेका प्रदर्शन गाँवोंमें करे। और ये औजार गाँवोंकी

पंचायतके कोषसे या दूसरे साधनसे सुलभ हों, इसकी व्यवस्था हो।"—(श्री सी०एच० पार की टिप्पणी, "पशु पालन पक्षकी पहली बैठक" पृ० १५६) (१४२)

२८४. **युक्तप्रान्तमें उन्नतिकी प्रगति अच्छी हुई :** ऊपर लिखे हुए दृष्टिकोणके अनुसार यह सरलतासे समझा जा सकता है कि ढोर उन्नति युक्तप्रान्तमें अपेक्षाकृत अच्छी हो रही थी। भेटेरिनरी विभागने जनता और उसकी परम्पराओंके बारेमें सच्ची जानकारी बताई है। सरकार के किसी उपायको लोकप्रिय बनानेमें जनताकी सहानुभूति और उसकी भावनाओंका आदर बहुत कुछ काम करते हैं। युक्तप्रान्तीय सरकारने ऐसा किया है। मेरा विश्वास है कि युक्तप्रान्तीय सरकार जनताके भावका आदर करनेवाले दृष्टिकोणके कारण जितना उनमें काम कर सकी है, उतना केवल प्रचारसे नहीं कर सकती। मैंने इसकी चर्चा की है कि ढोर संवर्धनके काम दो तरहके हैं। एकतो सरकारी क्षेत्रोंमें होनेवाले काम और दूसरा वह लोकप्रिय काम जिसका सरोकार गाँववालोंके दैनिक जीवनसे है। ढोर उन्नति जैसे आवश्यक मामलेमेंभी अधिकतर सरकार गाँववालोंको सम्पर्कमें नहीं ला पाती। पर ऐसा मालूम होता है कि युक्तप्रान्तकी सरकारके पास ऐसा उपाय था जिससे वह जनताको सहानुभूतिके साथ समझा सकती थी। सरकार और जनताके बीच खेती सम्बन्धी खाईको पाटनेके लिये प्रचार तक में सरकारके विभागोंका अभिमान भरा बुजुर्गीका भाव रहता है।

२८५. **युक्तप्रान्तमें भेटेरिनरी कामका प्रबन्ध :** सन् १९३३ के बाद युक्तप्रान्तमें ढोर उन्नति का काम तेजीसे हो रहा है। सन् १९३० में बताया गया था कि सरकारने भेटेरिनरी विभागके साधारण बजटके अतिरिक्त इस कामके लिये ४ लाख रुपये दिये थे। पशुपालन और खेतीके बारेमें सलाह देनेके लिये एक प्रान्तीय समिति बनायी गयी थी। उस साल विभिन्न देहाती दवाखानोंमें भेटेरिनरी असिस्टैन्ट सरजनोंके नीचे काम करनेके लिये २५० पशुपालों (stocks-men) को शिक्षा दी गयी।

२८६. **सन् १९३६ के बादकी साँढ़-नीति :** पहले युक्तप्रान्तकी सरकार साँढ़के लिये ३०) से ४०) रुपये तक लेती थी। सन् १९३९से सरकारने औरभी सस्ते दाममें तरुण साँढ़ देने और बूढ़े बेकार हो जानेपर लौटा लेनेकी योजना चलायी। आरम्भमें रैयतको तरुण साँढ़के लिये २२) रुपये देने पड़ते थे। यह साँढ़ सरकार ही की संपत्ति रहता था जो गाँवकी पंचायतको संवर्धनके लिये सौंप दिया जाता था।

बूढ़ा होनेपर सरकार उसे लौटा लेती और उसकाभी दाम १५) रुपये पा जाती थी। इस तरह साँड़से सरकारको ३७) रुपये मिल जाते थे। नया बछड़ा-साँड़ खरीदनेमें उसे इससे कुछही जादे देना होता था।

सन् १९३५-'३६ तक साँड़ खरीदनेके लिये २५,०००) रुपये मिलते थे। सन् १९३६-'३७ में सरकारने इसे बढ़ाकर ५०,०००) कर दिया। ये साँड़ पंजाबमें अधिक खरीदे जाते थे। सन् १९३९ में १,५०,०००) के संवर्धक पशु खरीदनेकी व्यवस्था थी। अच्छी गायें खरीदनेके लिये ग्रामसुधार कोषसे ३०,०००) रुपये की मंजूरी इसीमें है।

**साँड़ बाँटे गये :** लाट लिनलिथगो के बढ़ावा देनेके पहले सालमें ४५० से ६०० तक साँड़ बाँटे जाते थे। सन् १९३७ में ७०० साँड़ बाँटे गये। सन् १९३८ में ९०० और सन् १९३९ का अनुमान १,२०० साँड़ बाँटने का था। सन् १९३९ में हर साल २,००० से ३,००० साँड़ देनेका लक्ष्य रखा गया था। इस समय तक मथुरा जिले में कुलीन दुधार गायोंकी रजिस्टरी शुरू हो गयी थी। (१४१)

**२८७. सन् १९३७ की कोसी अंचलकी जाँच:** १९३७ में कोसी संवर्धन अंचलकी जाँच हरियाना अंचल अर्थात् प्रान्तके पच्छिमी हिस्सेमें ही हुई। पच्छिमी सूखे अंचलका यह एक भाग है। यहाँके ढोर प्रान्तमें पाये जानेवाले ढोरोंमें श्रेष्ठ हैं। "इस अंचलके बाहर जिलोंमें दूधके लिये लोग भैंस अधिक पसन्द करते हैं।"

तराईके पासके इलाकोंमें खेतीके बैलके लिये ठट्ठकी ठट्ठ गायें पाली जाती हैं। इस नसलोंकी गायें अपने बच्चे भरही दूध देती हैं। युक्तप्रान्तके पूरबी और उत्तर-पूरबी जिलोंके ढोर निम्नकोटिके हैं। (२०२, २५८, २६६, ३०२, ३१५, ३३६, ३४४)

**२८८. युक्तप्रान्तके ढोर-संवर्धक अंचल :** युक्तप्रान्त पाँच पशु संवर्धक भागोंमें बाँटा जा सकता है।

"(१) सूखा पच्छिमी भाग (वर्षा २०"-३०")। इसमें गंगाके पच्छिम कानपुरसे सहारनपुरतकका इलाका है। जिसमें आगरा मेरठ और इलाहाबाद डिवीजन के १४ जिले हैं।

इस भागमें गाय भेड़ और बकरीके अच्छे प्रकार पाये जाते हैं। जमीन और मौसम वर्तमान प्रकारोंके ढोरोंके विकाश करनेमें सहायक हैं। [illegible]

"(२) मध्यवर्ती नम भाग (वर्षा ३०"-४५")। इसमें घनी खेती वाले लखनऊ और फैजाबाद डिवीजन और रुहेलखंडके भाग हैं। इस भागमें सिर्फ साधारण आकारके मामूली दुधार तथा भारवाही पशु पैदा होते हैं। अगर अच्छे पशु लाये जाते हैं तो बिगड़ने लगते हैं।

"(३) तराई अंचल हिमालय की तराई में है। (वर्षा ४५" से ६५")। इस अंचलमें चराईकी बहुतायत है, पर सिर्फ छोटे आकारके भारवाही पशु हो सकते हैं। यहाँ अच्छे दुधार प्रकारकी गायें या भैंसें नहीं हैं। बाहर से लानेपर जल्दी खराब होने लगती हैं।

"(४) बुन्देलखंडमें मिट्टीकी बनावट कई तरहकी है। मिट्टीके किस्मके अनुसार पशुभी कई प्रकारके हैं।

"(५) पहाड़ी भागमें सबसे घटिया प्रकार और छोटे आकारके ढोर होते हैं। यहाँ दूसरे इलाकेके ढोर जल्दी खराब होने लगते हैं।

"ऊपर कहे भागोंमें ऐसेभी स्थान हैं जो हैं तो ऐसे भागोंके बीच जहाँ साधारण तौर पर घटिया ढोर होते हैं फिर भी उपयुक्त मिट्टी और चारे की अनुकूलता वहाँ है। इसलिये साधारण तौरपर उस भागमें होने वाले प्रकारके ढोरसे उस निर्दिष्ट स्थानमें अपेक्षाकृत बहुत अच्छे ढोर होते हैं।" (१४१)

२८६. **मिट्टी और ढोरका संबंध :** "यह अब साधारण तौरपर माना जाता है कि किसी भागकी मिट्टी और वहाँ होनेवाले ढोर तथा दूसरे पालतू जानवरोंमें गहरा संबन्ध है। उस मिट्टीपर होनेवाले चारे और खेतीके उपजात (by-products) पर ही ढोर निर्भर हैं। उस मिट्टीमें होनेवाले चारे आदि के तत्व और परिमाण पर मिट्टीकी कमियों या कमजोरी का असर होता है। उस चारे और खेतीके उपजातके खाने से पशुओंकी देहपर इसका असर जरूर होगा।

... ... ...

"ऊपर यह प्रांत ५ भागोंमें बाँटा गया है। उनमेंसे सिर्फ एक सूखे पश्चिमी भागमें साधारण चारेपर और खास खिलाईके बिनाभी अच्छे प्रकारके ढोर ही हो सकते हैं। पर अनुभवसे पता चला कि इस भागमें भी चारा के अतिरिक्त कुछ खनिज लवणों की खिलाईसे ढोरोंको फायदा होता है। इस भागमें वरण-संवर्धनके साथ अच्छी खिलाई हो तो उन्नति आसानीसे हो सकती है। पर इस भागसे किसी दूसरे

भाग भेजनेसे ढोर खराब हो जाते हैं। परन्तु दूसरे भागके ढोर इस भागमें लानेपर सुधर जाते हैं।"—(डा० बी० के० मुखर्जीकी टिप्पणी "पशुपालन शाखाकी तीसरी बैठक" १९३९, पृ० ३००-३०१) (१८१)

# बंबई

**२६०. बंबईमें पशु-संवर्धन:** शाही कमीशनकी बैठकोंके समय (सन् १९२७ में) वहां दो पशु-संवर्धन क्षेत्र थे। एक उत्तर गुजरातमें छरोदीका और दूसरा दक्खिन महाराष्ट्रमें बाँकापुरका। छरोदी ढोर-संवर्धन-क्षेत्रमें २,३०० एकड़ जमीन और २०० काँकरेज गायें थीं और बाँकापुर क्षेत्रमें ५० अमृतमहाल गायें। उस समय कांकरेज मुख्य रूपसे भारवाही पशु मानी जाती थी। शाही कमीशनको इसकी बहुत चिन्ता थी कि दूध बढ़ानेकी कोशिश कहीं इसके भारवाही गुणके विकाशमें बाधक न हो। यह आशंका निराधार है। आज काँकरेज नसल द्वि-प्रयोजन मानी जा रही है और इसे दूध भी काफी हो रहा है।

**२६१. काँकरेज और हरियाना गायें :** सन् १९३७ की जाँचमें यह पता चला कि हरियाना और काँकरेज काममें एक जैसी हैं। अपने अपने देशमें गाँव-वालोंके यहाँ काँकरेज एक ब्यानमें औसत ९२० रत्तल दूध और हरियाना ९८० रत्तल दूध देती है। सरकारी क्षेत्रोंकी सँभाल और प्रबन्धमें भी काँकरेज और हरियाना बराबर ही दूध दे रही हैं। उत्तर गुजरातके सरकारी छरोदी क्षेत्रमें काँकरेजका दूध २,००० से ४,००० रत्तल होता है। ५,००० से १०,००० भी जबतब हो जाया करता है। पंजाबके विभिन्न सरकारी क्षेत्रोंमें हरियानाका भी २ हजारसे ७ हजार रत्तल तक दूध होता है। अधिक स्पष्ट कहा जाय तो ५४ काँकरेज गायोंका एक ब्यानका औसत दूध ३,१५९ रत्तल था और ८१ हरियानाका औसत ३,४२६ रत्तल। यह सन् १९३७ की स्थिति थी। पर १९२७ में शाही कमीशनके सामने काँकरेजके बारेमें जो बातें रखी गयीं उनपर उनका नीचे लिखा विचार है :

"...बहुतसी भारवाही नसलोंमें ऐसी गायें कुछ भी नहीं हैं जो अपनी नसलके सब लक्षणोंके साथही अच्छी दुधार भी हों। पर कमसे कम एक नसलके बारेमें यह

सही है। यह बात छरोदी क्षेत्रमें मुख्य रूपसे सुन्दर भारवाही पशु काँकरेजसे प्राप्त अनुभवसे सिद्ध होती है। ५ वर्षके वरणका नतीजा यह हुआ कि, १०० गायोंके ठट्ठमें प्रति गायकी औसत उत्पत्ति ४३८ से बढ़कर १,३३० रत्तल हो गयी। बछरुओंको जो दूध पिलाया गया वह अनुमानसे ४५० रत्तल है। उत्पत्तिके दोनों अंक इसके अतिरिक्त हैं।

"...अगर व्यवस्थित वरणसे काँकरेज ढोरका औसत दूध जैसे छरोदीमें बढ़ा है, बढ़े, तो इससे सिर्फ किसानोंकोही बड़ा फायदा नहीं होगा, पर एक ऐसी उन्नति हो सकेगी जिसे लोग शायद बनाये रखें..." —(पृ० २१८) (६७)

**२६२. काँकरेजकी दूध-उत्पत्तिका आँकड़ा (१९३७-३८) :** काँकरेजकी सन् १९२७ में वह हालत थी। गव्यक्षेत्रमें दूधकी उत्पत्ति ४३८ से १,३३० रत्तल हो गयी। बादके १० वर्षोंमें यह औसत और भी बढ़कर ३,१५९ रत्तल हो गयी है।

काँकरेजके सन् १९३७ में मिले अंक आकर्षक हैं। इन्हें कथनि "मिल्क रेकॉर्ड्स ऑफ कैटल इन एप्रूव्ड डेयरी फार्म्स इन इंडिया" (१९३७-३८) में लिखा है। यह १९४१में प्रकाशित हुआ। (I.C.A.R. 5·36)

## आँकड़ा—१६

### काँकरेजके दूधकी उत्पत्ति

| एक ब्यानकी उत्पत्ति | गायोंकी संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| २,०००—३,००० रत्तल | २५ | ४६·३ |
| ३,०००—४,००० ,, | १७ | ३१·५ |
| ४,०००—५,००० ,, | १० | १८·५ |
| ५,०००—६,००० ,, | १ | १·९ |
| ६,०००—७,००० ,, | १ | १·९ |
| कुल ... ... | ५४ | |

औसत उत्पत्ति ३,१५९ रत्तल

**२६३. बंबई सरकारकी पिछली साँढ़-नीति :** बंबई सरकारको सन् १९२३ के लगभग स्पष्ट मालूम हुआ कि थोड़ेसे साँढ़ इधर उधर बाँटनेसे ढोरोंकी विशेष उन्नति नहीं हो सकती। बंबई ढोर-समितिने नय किया कि ढोर-संवर्धनके अति अनुकूल कुछ स्थानोंमें पसन्द किये हुए साँढ़ रखे जायें। इस तरह चुनी हुई जगहोंमें जब पशु यथेष्ट शुद्धता प्राप्त करलें तब उनमेंसे साधारण कामके लिये साँढ़ छाँटे जायँ। बम्बई सरकारने ढोर समितिका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया पर यह और जोड़ दिया कि, चुने हुए स्थानोंमें साँढ़ देनेके लिये अतिरिक्त क्षेत्र, रुपयोंका बन्दोबस्त होने पर धीरे धीरे खुलें। योजना बहुत दिनोंतक बहुत कुछ कागजमें ही रही। (१४१)

**२६४. बम्बईमें सुधारके उपाय :** पर बम्बईके पशुपालन निपुण श्री ब्रूएन आगे बढ़नेकी कोशिश करते रहे। पशुपालन शाखाकी पहली मीटिंग (सन् १९३३) में उन्होंने रिपोर्ट दी कि उन्हें यह जरूरी मालूम होता है कि सरकारी क्षेत्रोंके प्रयास बाहरी लोगोंसे बढ़वाये जायँ। नसलोंके अपने इलाकोंमें ४ या ५ ताल्लुके घने कामके लिये चुने गये। (१४१)

**२६५. बम्बईमें जोरोंसे घना काम :** यह घना काम सफल होनेके लिये कई बातोंमें सावधानी की जरूरत है। वे बातें नीचे लिखे अनुसार रखी गयीं :

( १ ) विशिष्ट स्थानोंको कुलीन साँढ़ भेजना ;

( २ ) कुलीन ठट्ठ का खाना (register) खोलना और निर्दिष्ट मानकी उन सभी गायोंकी रजिस्टरी करना जो देखनेमें उस नसलकी शुद्ध नमूना जँचती हों। ठट्ठ रजिस्टरमें लिखा नम्बर उनके बायें कानमें गोदकर रजिस्टरी का काम पूरा किया जाता था। दाहिने कानमें गाँव का संक्षिप्त नाम (अक्षर) गोदा जाता था। बच्चा होनेपर अगर वह ठीक अपने प्रकारका पाया जाता तो उसकेभी कानकी गुदाई और रजिस्टरी होती थी।

कुलीन ठट्ठके अलग अलग रजिस्टरोंमें ८ भाँतिकी नसलोंकी उस समय रजिस्टरी होती थी।

श्री ब्रूएनने लिखा है कि इस पद्धतिके चलनेमें सरकारका कम खर्च करना होता था या कुछ भी नहीं करना होता था। इसके चालू होनेके बाद वह उस समय गाँवमें पैदा हुए और पले कुलीन साँढ़ खरीद सकती थी। (१४१)

**२६६. बंबईके ढोर-संवर्धकोंकी कठिनाइयाँ :** पर बंबईकी साधारण स्थिति उत्साहवर्धक नहीं थी। बंबई प्रान्तके ढोर-संवर्धक बहुत गरीब वर्गके होते हैं। सिर्फ समागम करानेके लिये साँढ़ पालना एकदमसे नयी बात है। साँढ़ देवताओंको और मंदिरोंमें चढ़ाये जाते थे और संवर्धक अपने प्रयोजनके लिये उनका उपयोग करते थे। धारवाड़ जिलेमें कुछ स्थानोंको छोड़ ऐसे साँढ़ तेजीसे मिट रहे हैं। साँढ़का पालना खर्चीला काम है। उसको खिलाना और सँभाल रखना एक आदमीका पूरे दिनका काम है। साँढ़ सारे गाँवकी भलाईके लिये पाला जाता हैं। इसलिये उसके रखवालेको किसी रूपमें मजूरी देनी ही होगी। (१४१)

**२६७. बंबईकी प्रीमियम साँढ़-योजना :** बंबई प्रान्तमें साँढ़ पालनमें बढ़ावा देनेके लिये सरकारने नीचे लिखे इनाम रखे थे।

(१) $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ तक खरीद दाम और पालनेका खर्च कुछ नहीं ;

(२) अगर एजेन्ट साँढ़का पूरा दाम चुका देता तो ७) रु० प्रति महीना पालन व्यय ;

(३) गाँववालोंके लिये फलाई मुफ्त, पर बाहरवालोंसे फलाई का दाम लेना।

गाँववाले साँढ़ खरीदें और इनामका फायदा उठावें इसमें उनकी मदद करनेके लिये रुपयोंकी जरूरत थी। उस समय सर सेसून डेविड ट्रस्टने (Sir Sasoon David Trust) २) रु. सैकड़ा वार्षिक पर ४,५००) रुपये दिये थे। यह सभी रकम दो महीनेमें दी गयी थी। यह तय हुआ था कि हर वर्ष रकमकी एक तिहाई चुका दी जाया करे। वसूल हुई रकम फिर लगा दी जाने को थी। (१४१)

**२६८. ढोरकी उन्नतिका कानून :** बंबईमें सन् १९३३ में ढोरकी उन्नतिका कानून पास हुआ (The Cattle Improvement Act of 1933) इसमें अवांछित साँढ़ोंको बधिया करनेका विधान है। इस कानूनकी पूर्ति "बंबई पशुधन उन्नति नियम, १९३५" (The Bomby Live-Stock Improvement Rules, 1935) से हुई।

इस कानून और बादके नियमसे सरकार को अधिकार मिला कि जहाँ कानून और नियम काममें लाये जाने को हों वह स्थान घोषित करदे।

इस कानूनमें है कि किसी स्थानके लिये पसन्द किये साँढ़को लाइसेन्स दिया जाय और सभी लोगोंको लाइसेन्सके बिना साँढ़ रखनेकी मनाही कर दी जाय तथा उसे दंडनीय माना जाय।

साँढ़ का निरीक्षण किसी भी समय हो सके और उनकी हालत नोट की जायँ। साँढ़के खराब होनेपर लाइसेन्स रद्द हों। बिना लाइसेन्सके साँढ़ जब्त कर लिये जायँ और बेचकर दाम मालिकको दे दिया जाय। प्रथाके अनुसार धर्मके नामपर चढ़ाये साँढ़पर यह कानून लागू नहीं होगा। बिना बधिया किये बछड़े की उमर २ वर्षतक निर्धारित की गयी। इसके बाद लाइसेन्स लेना जरूरी होगा। लाइसेन्स देनेमें पशुधनके अफसरको देखना होगा कि गाँवोंमें हर ६० गायोंपर एक साँढ़ है।

सन् १९३५ में सिर्फ दो स्थानों में कानून लगाया गया। सन् १९४२ तक इस कानूनमें ७३ गाँव आ गये तथा कुछ और गाँव की जाँच हो रही थी। (१४१)

**२९९. चराई के लिये रक्षित जंगल :** संवर्धनकी उन्नतिके प्रयासके साथ चराईके क्षेत्रफलका भी विस्तार किया गया। प्रायः २,३०० वर्गमील रक्षित जंगल प्रबन्धके लिये मालके महकमेके जिम्मा किया गया। क्योंकि वह लकड़ी (शाल) पैदा करनेकी अपेक्षा घास पैदा करने के अधिक उपयुक्त था।

पूर्व खानदेश जिलेमें उन्नति के लिये खास तरहका फेरा (rotation) चलाया गया। पाँच पाँच वर्ष के लिये जंगल बन्द रहता और चराईके लिये खुलता। आगे चलकर पच्छिमी खानदेशभी इस योजना में मिला लिया गया। इससे काफी उन्नति हुई।

**३००. बंबई ढोर-समिति :** बंबईके गवर्नरके आदेश और श्री ब्रूएनके उद्योगसे १९२९ में "ढोर-उन्नति और गव्यक्षेत्र-समिति" स्थापित हुई। यह विस्तृत योजना थी। ग्राम-समितियाँ भी बनाई गयीं कि वह किसानोंमें उन्नतिका प्रचार करें। ढोर-संवर्धन और उसकी समस्याओंमें सर्वसाधारण की रुचि बढ़ानेके लिये प्रचारमें आकर्षक उपाय काममें लाये गये।

इस कामके लिये प्रचारक लोग मोटरोंपर तमाम भेजे गये। ग्राम-समितियोंका काम था कि वह उन्नत साँढ़ रखें और उनकी यथोचित सँभाल करें। गोशालाओंकी सहानुभूति भी प्राप्त की गयी। पर असली कठिनाई धनकी थी। इन सभी अच्छे काम करनेके लिये धनकी सचमुच जरूरत थी, पर सरकार देहातोंमें ढोर-उन्नतिके

काममें धन देनेमें असमर्थ थी। यह उद्योग सिर्फ प्रचारपर नहीं टिक सकता था। इसलिये सरकारी सहायताके अभावमें यह आन्दोलन शान्त हो गया।

**३०१. गोपालक संघ :** आगे चलकर एक गोपालक संघ बनाया गया। बंबईसे रक्षाके लिये कुछ बिसुकी गायें इकट्ठी की गयीं। इन गउओंकी दूध-उत्पत्ति संतोषदायक थी और बच्चे भी अच्छे किस्मके मालूम हुए। सरकार और जनता किसीसे धन नहीं मिलनेके कारण यह प्रयासभी चल नहीं सका। कठिनाइयाँ और धनका अभाव होते हुएभी ग्रामोंके कामके जरिये बंबईमें ढोर-उन्नति का कार्य मुस्तैदीसे हो रहा था।

श्री ब्रूएननें सन् १९३९ में पशुपालन शाखाकी मीटिंगमें कहा था कि बंबईमें बहुतसे ग्राम-समूह हैं जिनमें केवल शुद्ध नस्लके ढोर ही पाये जा सकते हैं। ये सब नंबर पड़े और रजिस्टरी किये हुए हैं। एक एक ग्राम-समूहों में ९० ग्राम तक हैं।

**३०२. काँकरेज अंचल :** भारतके सात संवर्धन अंचलकी जाँच में बंबईके काँकरेज अंचलकी जांच हुई थी। यह स्थान अहमदाबादके आसपासका है। बंबई प्रान्तका सानन्द महाल काँकरेज ढोरका घर माना जाता है। यद्यपि काठियावाड़ की सीमापर धोलका और वीरमगाँवमें गीर भी काफी होते हैं। इस इलाकेमें पेशेवर संवर्धक और किसान गव्य के लिये भैंस बहुत पालते हैं। (५६, २०२, २५८, २६६, २८७, ३१५, ३३७, ३४४, ३६६)

**३०३. काँकरेज गायोंकी कम सँभाल :** अनेक दूसरे अंचलोंसे यहांके ढोरकी हालत अलग नहीं है। कांकरेज इलाके में भैंसकी तुलनामें गायकी सँभाल अच्छी नहीं होती। कहा जाता है कि इस इलाके के भीतरी हिस्से में गायकी जगह भैंस तेजीसे छीनती जा रही है।

साधारण तौरपर गायोंको कम खिलाते हैं। गरमीमें उन्हें गोचरों ( जिनपर गुंजाइशसे ज्यादे पशु चरते हैं ) और फसल कट जानेके बाद खेतोंमें जो कुछ चर पाती हैं उसीसे गुजारा करनेको छोड़ दिया जाता है। बछड़ेवाली गाय शायद ही दुही जाती है। बछियावाली गायको सानी दी जाती है और दुहा जाता है।

भैंसकी सँभाल जरूर अच्छी होती है। उसे बिनौला, ग्वार, जौका चोकर और खली दी जाती है। (५६, १०९–'२७, २१९, २३६, २५७, २७८, ३७२–'७६)

**३०४. काँकरेजके रबाड़ी और भरवाद संवर्धक :** इस इलाकेके पेशेवर संवर्धक रबाड़ी और भरवाद हैं। बंबई प्रान्तके इस उत्तरी भागका यह भाग्य है कि वह यहां हैं। इनकी जाति बहुत बली है। इनकी देह सुडौल होती है तथा आँखोंमें बुद्धिमानी झलकती है।

बलिष्ठ देह, आकार, दूध देनेकी सामर्थ्य तथा उचित रंग और आकृतिवाले पितरोंके होनहार बछड़ोंको पेशेवर संवर्धक जन्म होनेके बादही पसन्द कर लेते हैं। वह लोग माँका सारा दूध बछड़ेको पीने देते हैं और २ या ३ महीनेकी उमर होनेपर उसको दूसरी गायसे भी पिलवाते हैं, जिससे कि उसे काफी पूर्ण दूध मिले। थन छोड़नेपर साँढ़-बछड़ेको खास चारा दिया जाता है, जिसमें साधारण चारा और पौष्टिकके अलावा घी और हल्दीभी रहती है। दूध छोड़ते ही बछड़ेको बधिया कर किसानोंके हाथ बेच देते हैं। यह लोग इसे पालकर बैल तैयार करते हैं।

यह लोग संवर्धनके अपने तरीकेके बारेमें सावधानी रखते हैं और सपिंड संवर्धन नहीं होने देते। जब किसी साँढ़की संतान जवान हो जाती है तब यह लोग दूसरे संवर्धकोंसे उसे बदल लेते हैं। पशुपालकों की साधारण आदतके अनुसार यह लोगभी गायकी उपेक्षा करते हैं। यह इनके बारेमें महत्वकी बात है। बछिया या गायको जिस सावधानीसे खिलाना चाहिये, यह लोग नहीं खिलाते। बछड़ेकी जैसी सँभाल ये करते हैं उससे स्पष्ट है कि यह पोषणका महत्व जरूर जानते हैं। फिरभी साँढ़की जननी गायकी उपेक्षा उसके बचपनसे ही करते हैं। यह लोग बछियों और गायोंकी आपसमें बदलौअल करलेते हैं, पर उन्हें बेचते नहीं हैं। (१६६, २५१)

**३०५. बंबईमें साँढ़ तैयार करना :** श्री ब्रूएनने पाया कि यथेष्ट सरकारी सहायताके बिना बहुत बड़ी संख्यामें साँढ़ तैयार करना असम्भव है।

"...उन्होंने (श्री ब्रूएन) इनलोगोंको (प्रान्तके व्यवसायी गव्यक्षेत्र) बार बार अच्छे साँढ़ तैयार करनेके लिये राजी करनेकी कोशिश की। पर वह लोग सदा यही चाहते थे कि सरकार इस बातका भरोसा दे कि वह जवान साँढ़ एक निश्चित दाम पर खरीद लिया करेगी।" वह मानते थे कि "जबतक सरकार संवर्धकोंको सहायता-वृत्ति नहीं देगी, अच्छे साँढ़ पानेकी कोई संभावना नहीं है। दूध और भारवहन, तथा भारवहनकी नस्लोंके मामलेमें एक दूसरी कठिनाई है। ३ वर्षकी उमरसे ज्यादेके कोई दो साँढ़ मजेमें एक साथ नहीं रह सकते। इसलिये एकसे

अधिक साँढ़ तैयार करनेमें किसानको अतिरिक्त मजूर रखना होता है। सहायता-वृत्तिके बिना वह लोग यह नहीं कर सकते....।" (१४२)

**३०६. साँढ़ तैयार करना: वृत्ति आवश्यक:** "गुजरातमें हरेक गाँवमें काँकरेज ढोर पैदा किये जाते हैं। पर कोई संवर्धक ६ महीनेकी उमरसे अधिकके साँढ़ और बछड़े नहीं रखेगा। क्योंकि दो साँढ़ साथ रखनेमें कठिनाई होती है। इसलिये इन साँढ़-बच्चोंको बचपनमें ही बधिया कर दिया जाता है और वह संवर्धनके कामके नहीं रहते। अगर इन बच्चा-सांढ़ोंको पालना हो तो उन्हें सरकारी क्षेत्रोंमें रखा जाय या उन्हें पालनेके लिये सरकारी वृति दी जाय। सरकारी क्षेत्रोंमें पालना बहुत खर्चीला होगा···

"···जिन किसानोंके पास अपनी जमीन है वह इन बच्चा-साँढ़ोंको भारवाही ढोर बनाकर बेचनेके विचारसे खरीदते हैं।" उन्होंने सोचा कि "इन पशुओंको हलमें जोतनेसे बचाना होगा और यह करनेका एकही उपाय वृत्ति देना है। इंगलैन्डमें साँढ़ पैदा करना भारतसे एकदम भिन्न है। दुनियांके दूसरे हिस्सों में एक या दो से जादे साँढ़ पालने वाले गव्य क्षेत्रवालों को अच्छे साँढ़ की कीमतमें ३०० से ४०० पाउन्ड मिल जाते हैं। पर भारतमें अच्छा साँढ़ लागत दामपर भी नहीं बिक सकता"—("पशु पालन शाखाकी तीसरी मीटिंग," १९३९, पृ० ९२-९३) (१४१-'४२)

**३०७. बंबईके दक्खिनी भागमें संवर्धन:** परलोकगत श्री ब्रूएनने साँढ़ पालनेके बारेमें ठीक ही कहा है। काँकरेज इलाके के रबाड़ी और भरवाद संवर्धक ढोर-संवर्धन के विशेषज्ञ हैं। अगर सरकार उनके साँढ़ खास दाम में खरीद लेनेका भरोसा दे या उन्हें वृत्ति दे तो वह लोग निश्चय ही सारे प्रान्तको अनेक काँकरेज साँढ़ दे सकते हैं, और इसमें सन्देह नहीं कि इससे सारे प्रान्तका कोटि-निर्माण हो सकता है।

**३०८. उत्तर कन्नड़ भाग:** बंबई प्रान्तका सबसे दक्खिनी हिस्सा उत्तर-कन्नड़ जिला है। यहाँकी जलवायु ढोर संवर्धनके लिये एकदम प्रतिकूल है। १२० दिनमें ८० से १५० इंचतक वर्षा हो सकती है। ३ महीनेकी लगातार वर्षाके बाद ९ महीना सूखा रहता है। फिरभी ढोर पालनाही होता है। कोई यह भी सोच सकता है कि वर्षके अधिकांश भागमें गर्मीके लम्बे महीनों के कारण लोग भैंस के बदले गाय पालना पसन्द करते होंगे। पर नहीं। यहां भी किसान थोड़ेसे

सद्यः लाभके लिये गायके बदले भैंस पसन्द करते हैं। यहाँ खेतीमें भी कुछ बैल काममें लाये जाते हैं।

यहाँ ६३·७ हजार गायें और २४·५ हजार भैंसें हैं। ढोरको मोटा चारा जैसे धानका पुआल और गर्मी में घास, बरसात तथा उसके बाद जूनसे नवम्बर तक पुआल के साथ हरी घास भी दी जाती है। पौष्टिक चारे दुधार गाय और कामवाले पशुओंको दिये जाते हैं।

**३०९. उत्तर कन्नड़की गाय भूखी रक्खी जाती और भैंसको खूब खिलाया जाता है :** गाय कम दूध देती है और यह साफ़ही है क्योंकि यहाँ भैंस पसन्दकी पशु है। किसान गायको भूखी रखता है और भैंस को खूब खिलाता है। मादा के हिसाबसे साँढ़का अनुपात असंतोषप्रद है। १३० गाय पर १ साँढ़-है और १३७ भैंसपर १ साँढ़-भैंसा है। अगर बहुतसी मादायें लम्बे व्यवधानके बाद ब्याती हैं तो इसमें अचरज नहीं है। साधारण तौरपर भैंसकी सँभाल अच्छी होती है।

"उन्हें प्रायः अयुक्ताहार दिया जाता है। किसान ज़ादेसे ज़ादे दूध पानेके लोभमें उसे आवश्यकतासे अधिक पौष्टिक खिलाते हैं। ये पशु अधिक मात्रामें गोबर और पेशाब करते हैं जिससे किसान अधिक मात्रामें खाद तैयार कर सकता है। गायके बदले इसे पालनेमें किसानके अधिक उत्साहका बहुत हदतक यह कारणभी है। उसे उचित आवास दिया जाता है। गरमीके दिनोंमें कठिन मौसम झेलनेके लिये उसे नित्य ठंढे पानीमें नहलाया जाता है। ... उचित व्यायामके अभाव और अतिरिक्त पौष्टिकके रूपमें अयुक्ताहारसे इसमें मेद-वृद्धिकी बुराई आने लगती है।"

—(हेगडेकैट का प्रबन्ध, "एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया" मई, १९३२) (१०१-'२७)

**३१०. उत्तर कन्नड़में भैंस बनाम बैल :** उत्तर कन्नड़के किसान अपनी गायकी उपेक्षा करते हैं और भैंसको इतना खिलाते हैं कि उसमें मेद-वृद्धिकी बुराई पैदा हो जाती है। फिरभी गायको कम दूध देनेके लिये दोष दिया जाता है। गायके खिलाफ कम दूध देनेकी शिकायत सब जगह है। पर गायकी उपेक्षा जितनी ही होगी दूध उतनाही कम होगा और उतनी ही कमजोर उसकी सन्तान होगी। इसलिये बैल कमजोर होता आ रहा है। उसका स्वाभाविक परिणाम वही है जो उत्तर कन्नड़में हो रहा है। वहाँ भारवहनके लिये

हर तीन बैलपर एक भैंसा काममें लाया जाता है। जितने दिनों तक भैंसका यह पक्षपात किया जायगा उसका अनुपात उतनाही बढ़ता रहेगा। संभव है कि अन्तमें किसानको ज्यादे से ज्यादे केवल भैंसका ही सहारा लेना पड़े। इससे वह देखेगा कि इतना चारा खानेवालेसे खेत जोतनेमें उसे लाभ नहीं होता। उत्तर कन्नड़के ढोर-संवर्धनसे यह सबक सीखा जा सकता है।

बंबई प्रान्तमें गुजरातके कई स्थान खेतीके लिये प्रसिद्ध हैं। यहाँभी दूधके लिये गायसे बढ़कर भैंस मानी जाती है। हम इसकी जाँच करें कि गुजरातमें किसानको भैंस ऐसा क्या देती है जो गाय नहीं दे सकती। (१०६-'२७)

**३११. छारोतर (गुजरात) में संवर्धन :** गुजरातके कैरा जिलेके छारोतर इलाकेमें आनन्द, बोरसद और नाडियाद ताल्लुकेका दक्खिनी हिस्सा है। किसान कुनबी लोग हैं। खेतीमें इनकी ख्याति दूर तक है। वास्तवमें खेतीमें जहाँ और लोग असफल होते हैं कुनबी लोग साधारण तौरपर सफल रहते हैं। छारोतर इलाका पच्छिमी भारतका उद्यान माना जाता है। अगर छारोतर उद्यान है तो इसे बनाया है कुनबी किसानने। यह इलाका ५७० वर्ग मील अर्थात् कैरा जिलेका प्रायः एक तिहाई है। (१०६-'२७)

**३१२. कैराका कुनबी किसान :** बहुत दिनोंसे होशियारीके साथ किसानी करनेसे कुनबी लोगोंके खेतकी मिट्टी अच्छी बन गयी है। कैरा जिलेके छारोतर इलाकेमें नाडियाद, बोरसद और आनन्दके पासकी बलुही जमीनको इन चतुर लोगोंने उद्यानभूमि बना दिया है। उसी तरह सूरतकी कड़ी कपासकी मिट्टीको कुनबीके कड़े परिश्रमने उपजाऊ बना दिया है।

"साधारण तौरपर कुनबी अपेक्षाकृत दो तीन महल ऊँचे सुन्दर मकानोंमें रहते हैं। मकान ईंट और खपड़े के बने होते हैं और ३ या ४ की कतारमें रहते हैं।...

"उसकी जमीनकी ऊँचे दर्जे की सफाई, सावधानीसे बार बारकी जुताई, पूरी खाद देने, एकदमसे सीधमें बोने, फसल पैदा करनेके लिये हर छोटी मोटी जगहको काममें ले आने, जमीनको उपजाऊ बनाने और इस गुणको स्थिर रखनेके लिये फसलका फेरा निपुणतासे तय करने और अपने खेतमें दूरके कुँएसे हर तरहकी कठिनाईमें पानी ले जानेमें उसकी खेतीकी निपुणता देखी जा सकती है। कुनबी अपने ढोरको बहुत चाहता है। वह चाहता है कि उन्हें अपने पासही या अपने घरमें

बांधे जिससे वह उन्हें रातको खिला सके। दिनभरके कड़े कामके बाद बैलभी होशियारी से गरम पानीसे नहलाये जाते हैं।"—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, सितम्बर, १९३७ ; पृ० ५६६-'६८)



चित्र ३०. गुजरातका कुनवी किसान

"नाडियादके चारो तरफ लकड़ी खूब होती है। इसलिये छारोतरका कोई कुनवी (श्रेष्ठ खेतिहर जात) रसोई बनानेके लियेभी गोबर नहीं जलाता है। शहरकी खाद किसानोंके हाथ बिक जाती है। वह लोग २० मन (प्रतिमन ४० रत्तल) के लिये १) रुपया देते हैं।"—(डा० भोयेलकरकी रिपोर्ट, १८९३ ; पृ० १०२)

**३१३. एक पच्छिमीकी दृष्टिमें कुनवी :** भोयेलकरने कुनवीके काम और उसके खेतोंका नीचे लिखे शब्दोंमें बखान किया है :

"...कमसे कम मैंने अपने भ्रमणमें ठहरनेकी बहुतसी जगहोंमें कठिन परिश्रम, अध्यवसाय और सफल साधनोंसे सावधानीसे की हुई खेतीका इससे अधिक पूर्ण दृश्य और कभी नहीं देखा यह निश्चत है। यह सब महीके उद्यान, नाडियादके खेत (बंबईमें गुजरातके "उद्यान" का केन्द्र) तथा और दूसरे हैं।"—(पृ० ११)

"...खादकी रक्षाका उपाय बहुत सावधानीसे होता, शायद मैंने नाडियादमें ही देखा। ऐसा भारतमें और कहीं नहीं पाया जाता..."—(पृ० १२८)

यह प्रायः ५० वर्ष पहलेको बात है। ऐसे श्रेष्ठ किसान और ढोरके चाहनेवालोंका मन स्वभाव से ही अपने गाय बैलोंकी ओर रहता है। और इन लोगोंने जैसे अपनी जमीन सँवारी है उसी तरह गउओंका भी पालन किया है।

सस्ते और सद्यः लाभके लिये दूधके वास्ते भैंस पालनेकी आजकलकी सनकसे ऐसे किसानभी अछूते नहीं रहे। समय बदला और किसान भी। यह अपने पेशेमें बहुत बढ़े चढ़े थे। इसलिये इन्होंने समझा कि, बदली हालतमें "केवल खेतीसे उनका गुजारा तबतक नहीं हो सकता जबतक उसके साथ साथ गव्यधन्धेकी तरहका कोई पूरक धन्धा न हो। इससे खेतीके उपजात फायदेके साथ काममें आ जाते हैं और परिवारकी सभी औरतों और मर्दोंको बहुतसा कामभी मिल जाता है।" यह इस इलाकेकी जाँचकी रिपोर्टमें सर्वश्री घाटगे और पटेलने कहा है।

**३१४. कैराके कुछ परिवारोंकी जाँचकी रिपोर्ट :** यह देखा गया है कि, हर किसान एक या अधिक भैंसें पालता है। यह चारेकी प्राप्ति और औरत मर्द कितना समय उनकी देखभालके लिये निकाल सकते हैं उसपर निर्भर है। १९३६-३७ में ३१ किसानोंकी जाँच हुई थी। इनमें से दो किसान भैंस नहीं पाल सके थे। खासकर इसलिये कि उनके परिवारमें ढोरोंकी सँभालके लिये औरतें नहीं थीं।"

घाटगे और पटेलने इस इलाकेके गव्यधन्धेकी विस्तृत जाँचकी और आमद खर्चका हिसाब तैयार किया। दूधकी उत्पत्तिसे किसानोंका क्या फायदा है यह समझानेके लिये उनके आँकड़ेसे कुछ विवरण यहाँ दिया जाता है।

२९ किसान भैंस पाले हुए थे। हरेक के हिस्सेमें औसत १·५ भैंस थी। हर किसानका दूधका हिसाब नीचेकी तरह लिखा जा सकता है :

# आँकड़ा—२०

## कैरामें भैंसपर खर्च और उससे आमदनी

एक परिवार जो १·५ भैंस और उसके बच्चे पालता है

(३१ परिवारका औसत)

| खर्च | रु० आ० पा० | आमद | रु० आ० पा० |
|---|---|---|---|
| पालनमें ... | १००- १- ३ | दूध और घीका दाम | १३२- ०- ८ |
| फुटकर ... | २- ३- ७ | मालकी कीमत बढ़नेसे | ३- १- ७ |
| पशुधन और चारेमें लगी पूँजीका ब्याज | १४-१३- १ | | |
| | ११७- १-११ | | |
| अंतरका नफा | १८- ०- ४ | | |
| | १३५- २- ३ | | १३५- २- ३ |

३१५. **कैरामें भैंस पालनेका नफा :** डेढ़ भैंस पालनेसे रैयत हर महीने अपने परिवारकी मजूरीमें १॥) रुपया मुनाफा पाता है। जिस परिवारमें काम करने लायक औरतें नहीं हैं भैंस नहीं पाल सकते। भैंस पालना फालतू समयके लिये अच्छा काम माना जा सकता है। सारे वर्ष मेहनत करने पर परिवारको १८) नगद मिलते हैं या पीये हुए थोड़े दूध और गोबरकी खादके रूपमें उसे इतनाही मिलता है।

गायकी उपेक्षाकर भैंसको परिवारकी आमदनीका साधन बनानेसे परिवार और देशकी होनेवाली हानिका इस हिसाबमें विचार नहीं है। अगर किसान बुरे उदाहरण देख भटके नहीं होते और काँकरेज गायकी सेवा करते रहते तो उन्हें उसके दूधसे अधिक लाभ हुआ रहता इसमें मुझे जराभी सन्देह नहीं है; और इससे उन्हें भैंससे अधिक दामी बैल मिलते।

पर यह बुरी राह किसने दिखायी ? उन दिनों भैंसको लोकप्रिय बनानेका जो उद्योग हुआ वह भोयेलकरको रिपोर्टके (१८९३) नीचे लिखे अंशसे प्रगट होता है। (१०६-'२७, २८७, ३०२)

**३१६. बुरी राह दिखानेवाली एक घटना :** "१२ एकड़का एक क्षेत्र है। यह सन् १८७८ में खोला गया। इसे कृषि-समिति चलाती है। हाई स्कूलके साथ लगे कृषिकक्षामें इसका उपयोग होता है।..."

"...हलमें भैंस जोते जाते हैं। यह स्थानीय प्रथा नहीं है पर इसे चालू करना चाहते हैं..."—(पृ० ३६८)

ऊपरके वाक्यसे खेतीके काममें भैंसको जुटानेके उद्योगका बखान है। दूधके लिये भैंस पालनेको बढ़ावा दिया गया इसका तो कहना ही क्या ?

बैलके बदले भैंसा चलानेमें सफलता नहीं मिली, क्योंकि सौ बैल पीछे भैंसा एक ही है। पर कैरा घी-उत्पादक स्थान है। भैंसके मुकाबिले गायकी संख्यासे पता चलता है कि गायको किस तरह मिटाया गया। सन् १९३५ में इस जिलेमें गायें २५,९७८ थीं। उनके मुकाबिले भैंसें १,२८,८६८ अर्थात् प्राय: ५ गुनी थीं। १२८ हजार भैंसोंने केवल ११ सौ भैंसे दिये पर २६ हजार गउओंने १ लाख १६ हजार बैल जमीन जोतनेके लिये दिये। असली आँकड़ा नीचे लिखा है।

## आँकड़ा—२१

### गाय और भैंस कितने नर उत्पन्न करती हैं

१९३४-१९३५

| गोवंश | | महिषवंश | |
|---|---|---|---|
| सांढ़ और बैल | ११६,७८३ | भैंसा ... | १,१६६ |
| गायें ... | २५,९७८ | भैंस ... | १२८,८६८ |
| बछड़े ... | २५,४५१ | पाड़े ... | १३६,७४७ |

—(१०६-'२७)

**३१७. द्वि-प्रयोजन गायकी माँग :** शाही कमीशनके आगे दूधके लिये गायका विकाश करने और द्वि-प्रयोजन गायके लिये गुजरातसे आवाज और चेतावनी उठी इसमें कोई अचरज नहीं है।

"…हल और दूधके लिये अच्छे ढोरकी दुहरी माँग गुजारतकी है। यह बात भारवहन और दुधार गुणको एकही नसूलके पशुमें मिला देनेकी बात सुझाती है। भैंसके बदले द्वि-प्रयोजन प्रकारकी अच्छी गायका महत्व हमलोगोंको जोर देकर समझाया गया…"—(खेती पर शाही कमीशनकी रिपोर्ट, पृ० २१७)

यह आवाज और चेतावनी उस समय दबा दी गयी। पर ऐसा मालूम होता है कि सरकारी संवर्धन मंडलमें इससे कुछ परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्त्तन खासकर १९३७ की सात अंचलकी जाँचकी रिपोर्टके बाद हुआ। (६२, १०६-'२७)

**३१८. बंबईके छारोदी और अन्य क्षेत्र :** बंबई सरकारका छारोदी क्षेत्र १९४० में एग्रिकलचरल इंस्टिट्यूटके हवाले किया गया। बाँकापुर और तेगुरमें दो ढोर-संवर्धन-क्षेत्र थे। बाँकापुर सरकारी क्षेत्रमें अमृतमहाल नस्लको जल्दी जवान बनानेका प्रयोग हो रहा था। गीर गाय और साँढ़ोंका छोटासा ठट्ठ इस नस्लकी वृद्धिके लिये था। तेगुरमें कोंकणके लिये एक उपयुक्त नस्लका विकाश करनेकी कोशिश हो रही थी। इस केन्द्रमें डाँगी और निमाड़ी नस्लपर तटवर्ती अंचलके लिये उपयुक्त "द्वि-प्रयोजन" पशु विकशित करनेका प्रयोग चल रहा था।

द्वि-प्रयोजन बहुमूल्य गीर नस्लमें प्रबलवीर्यताका गुण आश्चर्यजनक था। यह नस्ल प्रायः निर्मूल हो चुकी थी। यह अपने घर काठियावाड़में मिलती भी नहीं थी। गोरक्षक मंडली और नत्थूलालजो दातव्य ट्रष्ट-कोष गोशाला, ये दोनों गीर नस्लको रक्षा ओर विकाश कर रहे हैं। इनके दूसरे कामोंके अतिरिक्त यह एक प्रशंसनीय काम है। (४८, ४६, २३१)

# सिन्ध

**३१९. सिन्धमें संवर्धन :** बंबईसे निकलकर हालहीमें सिन्ध एक नया प्रान्त बना है। इस विभाजनके पहले बंबई सरकारको नीतिही सिन्धके ढोर-संवर्धनकाभी नियंत्रण करती थी। सिन्धको भारतकी कई श्रेष्ठ नसूलोंका घर होनेका सौभाग्य है। थार्परकरके जिलेमें थार्परकर नसूल होती है। लाल सिन्धी और भगनारी नसूलभी अपनी अपनी उपयोगिताके लिये प्रख्यात हैं।

**३२०. सिन्धके तीन संवर्धक स्थान :** सिन्धके संवर्धक स्थान नीचे लिखे अनुसार तीन भागोंमें बँट सकते हैं :

(१) सिन्धुके बाँयें तटका प्रदेश ;
(२) सिन्धुके दाहिने तटका प्रदेश ;
(३) दक्खिनी सिंधके पंखेवाले भागका प्रदेश ।

(१) बाँयें तटका क्षेत्रफल बड़ा है । यहाँ बारहों मास सिंचाई होती है । थार्परकर जिला इसीमें है । यह ढोर-संवर्धनके लिये बहुत उपयुक्त है । सरकार यहीं थार्परकर साँढ़ खरीदती है और किसी केन्द्रीय क्षेत्रमें उन्हें वर्ष दो वर्ष पालती है । जवान होनेपर उन्हें ढोर-सुधार समितियोंके पास चुने रैयतोंमें बाँटनेके लिये भेजा जाता है । इस योजनाके अनुसार साँढ़ थार्परकरमेंभी और नवाबशाह तथा हैदराबाद जिलोंमें बाँटे गये हैं । खबर है कि वह सब कामके निकले । क्योंकि उनके बच्चे स्थानीय ढोरसे श्रेष्ठ होते हैं ।

(२) सिन्धुका दाहिना तट बहुत गरम है और भगनारी नस्लका घर होने लायक है । यहाँ छोटे भगनारी साँढ़ मझोला कद होनेतक पाले जाते हैं । उसके बाद रैयतोंमें बाँटे जाते हैं । भगनारीकी ख्याति भारवहनमें है ।

(३) लाल सिन्धी दक्खिनी सिन्धकी गाय है । साहीवालकी * तरह यह बहुत दुधार है और शहरोंमें दूध देनेके उपयुक्त है । लाल सिन्धीका संवर्धन पेशेवर घुमक्कड़ संवर्धक करते हैं । घुमक्कड़ चरानेके लिये एक स्थानसे दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं । बरसातमें ढोरको थानोबुल्लाहखाँकी पहाड़ी पर लेजाते हैं । जब पहाड़की चराई समाप्त हो जाती है तब उन्हें जंगल होकर नदी के किनारे किनारे ले चलते हैं ।

सिन्ध सरकारने मीरपुरखासके बीज क्षेत्रमें कुछ थार्परकर रख छोड़े हैं । करांचीके पास मलीरके विलिंगडन ढोर-क्षेत्रमें लाल सिन्धीका एक ठट्ठ रखा गया है ।

इस प्रान्तमें नदीके किनारे किनारे जंगल और गोचर हैं । सिंचाईके प्रबन्धवाली जगहोंमें रुपयेकी फसल पर जादे जोर लगानेकी आशंका थी । पर सिन्ध सरकार इस बारेमें सतर्क है और वह सिंचाईवाली जमीनके कुछ भागोंको चारा उपजानेके लिये मुकर्रर करना चाहती है । सिंधमें लोग खेतोंमें बबूल उपजाते हैं ।

* साहीवालको पंजाबमें साँईवाल कहते हैं ।

वह लोग जमीनको सींचकर ज्वार या बाजरा बोते हैं और ३० या ४० फूटकी दूरीपर बबूल रोपते हैं। बबूलका पेड़ जाड़ेमें काटा जाता है और पत्तियाँ सुखायी जाती हैं। इन्हें पौष्टिकके रूपमें चावलकी भूसीमें मिलाकर दुधार या बिसुकी गायको पुआलके साथ खिलाते हैं। इसलिये सिन्धमें बबूल बड़े महत्वका पेड़ है।

थार्परकर ठीक हरियानाकी तरह द्वि-प्रयोजन नसल है। हरियाना और थार्परकरका काम अनेक मामलोंमें समान है। (२५२)

**३२१. थार्परकर और हरियानाकी तुलना** : शाही ढोर-संवर्धन क्षेत्र (करनाल) में हरियाना और थार्परकर ठट्ठकी परीक्षा हुई थी। (एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, जनवरी १९३२ में देखें)। पता चला कि ;

(१) ब्यानेके बाद हरियाना गायके समागमका समय औसत ७५ दिनपर है और थार्परकरका ७३ दिनपर।

(२) अधिकांश मामलोंमें (७० सैकड़ा) दोनों नसलें ३ महीनेके भीतरही समागम करती हैं।

(३) हरियाना ३५८ दिनोंमें एक बार ब्याती है और थार्परकर ३५६ दिनोंमें।

(४) अधिकांश हरियाना मार्च से जूनतक चार महीनोंमें समागम करती हैं पर थार्परकर सालभर एक समान।

यह बातें उस समय खास ठट्ठोंके लिये सही थीं और सभी हरियाना तथा थार्परकरोंके लिये सही नहीं भी हो सकती हैं। इन आँकड़ोंसे मालूम होता है कि, एक तरहकी आबहवा और प्रबन्धमें एकही क्षेत्रमें हरियाना और थार्परकर दोनोंहीके ब्यानेका समय एक होता है। समागमकी ऋतुके मामलेमें एक भेद है। उसे यों समझाया जा सकता है। हरियाना अपने घर करनालमें है। पीढ़ियोंसे वहाँ ठट्ठके लिये जलवायु और ऋतु एक तरहकी रही है। उसकी अपनी आबहवामें मार्चसेजून तक समागमके लिये सबसे बढ़िया ऋतु है और दिसम्बर से मार्च तक ब्याने के लिये। जब ढोर अपनी स्वाभाविक स्थितिमें मैदानोंमें रहते हैं तब वह ऐसी ऋतुमें फलते और ब्याते हैं, जो छोटे बच्चोंको पालने में सबसे जादे उपयुक्त होता है। पर जब किसी ठट्ठको स्वाभाविक जलवायुसे हटाकर दूसरी जलवायुमें ले जाते और खूँटेपर खिलाते हैं तब उसके फलने और ब्याने का समय प्रायः ऋतुके आधीन नहीं रहता। इसलिये उसके ब्यानेका समय सिन्धसे पंजाब लायी हुई थार्परकरकी तरह बारहों महीने एकसा रहता है। (५६, ७३, २५४, २६६)

**३२२. थार्परकर और हरियाना—एक ब्यानका दूध और समय :** थार्परकर और हरियानाका एक ब्यानका औसत दूध १९३७-'३८ में नीचे लिखे अनुसार था। (कर्था, आइ० सी० ए० आर० ८·३६ ; पृ० २२ और ३०)

## आँकड़ा—२२

### हरियाना और थार्परकरके दूधकी तुलनात्मक उत्पत्ति

| | | एक ब्यानकी उत्पत्ति | |
|---|---|---|---|
| | | **रत्तलमें** | **दिन** |
| थार्परकर | ··· | ४,७१९ | २८४ |
| हरियाना | ··· | ४,४१७ | २६८ |

एक ब्यानमें थार्परकरके दूधका औसत ४,७१९ है और हरियानाका ४,४१७। थार्परकरके दूध देनेके दिनकी संख्या २८४ है और हरियानाकी २६८। हरियानाके दिनकी संख्या कम है इसलिये दूधकी कुल उत्पत्ति कम है। पर जो हिसाब लगाया गया है उसका औसत कम है। लेकिन आँकड़ोंके आधार पर कहा जा सकता है कि दोनोंका दूध प्रायः समान है। दोनोंही अच्छी भारवाही नसलें हैं, यह सुप्रसिद्ध है। (७३)

**३२३. हरियाना-थार्परकर—मक्खनका प्रतिशत :** प्रतिशत मक्खनका लेखा प्रायः नहीं मिलता। पर करनालके थार्परकर और हरियाना ठट्ठका मिल सकता है। उस समयके शाही गव्य निपुण श्री कोठावालाने १९३२ में अपने मातहत ठट्ठकी हर गायके हर दुहानके दूधके नमूनेकी जाँचका प्रबन्ध किया था। इंपीरियल एग्रिकल्चरल इंस्टीट्यूट, करनालकी थार्परकर और हरियाना गायोंके मक्खनकी जाँचके आधारपर यह अध्ययन है।

५१ थार्परकर और ४५ हरियाना गायोंके मक्खनकी जाँचका अध्ययन था। औसत इस तरह निकाला गया :

थार्परकर ··· ४·५५ प्रतिशत मक्खन

हरियाना ··· ४·५९ ,, ,,

—(एग्रिकल्चर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, मई, १९३९में कोठावाला और कर्था)

मक्खनकी मात्रा अर्थात् न्यूनतम और अधिकतम मक्खन दोनोंमें बराबर हैं। अर्थात् ३·८ प्रतिशत न्यूनतम और ५·२ प्रतिशत अधिकतम। ब्यानका समय बढ़नेपर दोनोंका मक्खन बढ़ा। प्रतिमास प्रतिशत वृद्धिका अनुपात इस तरह है :

थार्परकर ... ·०६२

हरियाना ... ·०७९

ऊपरका तुलनात्मक अध्ययन थार्परकर नसूलका महत्व बताता है। (७३)

३२४. **लाल सिन्धी :** नीचे लिखे सरकारी क्षेत्रोंमें संवर्धनसे मालूम होता है कि लाल सिन्धी भारतमें सभी जलवायुके अनुकूल है :

## आँकड़ा—२३

### लाल सिन्धीके दूधकी उत्पत्ति

| सरकारी क्षेत्रके नाम | एकब्यानमें अधिकतम दूध रतलमें | ब्यानके दिन |
|---|---|---|
| कृषिकॉलेज गव्य-क्षेत्र, कोयम्बतूर | ५,७२१ | ५८९ |
| पशुधन गवेषणा-क्षेत्र, होसूर | ६,६८७ | ३९५ |
| सरकारी कृषि कॉलेज गव्य-क्षेत्र, कानपुर | ३,१४७ | २५९ |
| इंपीरियल डेयरी इंस्टीट्यूट, बंगलूर | ६,५८९ | ३५२ |
| इलाहाबाद एग्रिकलचरल इंस्टीट्यूट, नैनी | ३,९७९ | २८४ |
| सरकारी फौजी गव्य-क्षेत्र, पेशावर | ९,२८३ | ३५१ |
| लखनऊ | ५,२४२ | ३२५ |

—(कर्था ; आई० सी० ए० आर० ८·३६)

ऊपरके वर्णन से यह मालूम होता है कि लाल सिन्धी अलग अलग तरहकी जलवायुमें और अपने घरसे बहुत दूर दक्खिन भारतमें कोयम्बतूर और बंगलूर तथा उत्तर भारतमें पेशावरसे लखनऊ तक एक समान पनप रही है।

भूतपूर्व शाही गव्य निपुण श्री स्मिथने इस नसूलके बारेमें यों लिखा है :

"यह शुद्धतम और विशिष्ट भारतीय नसूलोंमें एक है; सबसे बढ़कर तो यह है कि भैंसके अलावा केवलमात्र इसी नसूलके पशु गव्य-व्यवसायमें लाभप्रद हैं जिन्हें बड़ी संख्यामें खरीदा जा सकता है।"

सन् १९३५ से कितनी बातें बदल गयी हैं। भारतीय गव्य-धन्धेमें साहीवालने बढ़कर अपना स्थान बना लिया है। सभी दृष्टियों से दोनोंमें कौन अच्छी है यह कहना अभी कठिन है। पर दोनों की तुलना न की जाय तो यह सही है कि सिन्धी दक्खिन भारतमें सबसे अधिक दूध देनेवाली रहेगी और साहीवाल उत्तरकी सबसे अधिक दुधार मानी जायगी। ...

श्री लिटिलउडने लाल सिन्धीके बारेमें कुछ आकर्षक ब्यौरे छापे हैं। —(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, मई, १९३५)

"पिछले १२ वर्ष से मदरास सरकार सिन्धी गउओंका एक ठट्ठ पाल रही है। पहले ये पशु कोयम्बतूरके कृषि कॉलेजके गव्य-क्षेत्रमें रखे गये थे। सन् १९२४ में होसूर ढोर-क्षेत्र लेलेने पर अधिकांश गायें और छोटे माल होसूर भेज दिये गये। सिन्धी गायों की आगेकी खरीद शाही गव्य निपुणके द्वारा हुई ··· इस नसलके साँढ़की बहुत माँग है। आजकल जितने मिलते हैं उतनेसे पूर नहीं पड़ती। मालाबार और दक्खिनी कन्नड़ जिलेके पच्छिमी तटके शहरोंमें घटिया मालका कोटि-निर्माण करनेके लिये इस नसलके साँढ़की जरूरत है ··· इस नसलके बैलोंसे कुछ कृषि-क्षेत्रोंमें काम लिया जाता है, जिनमें दो धान-संवर्धन क्षेत्र हैं। इनका काम संतोषजनक हो रहा है"। (७३)

**३२५. लाल सिन्धी होसूरमें पनपती है :** "यह पाया गया कि इस नसल की हालत होसूरमें अच्छी रहती है। यह मितभोजी है। जो माल क्षेत्रमें पैदा हुए और पाले गये उनका कद मूल-ढोरोंसे कुछ बड़ा है। थोड़े दिन पहले कुछ अच्छी तरह विकसित २२ से २४ महीनेके तरुण साँढ़ोंकी जाँच समागमके बारेमें हुई थी। वह सब संतोषप्रद पाये गये। पर २½ वर्षकी उमर होनेतक उन्हें संवर्धनके लिये नहीं भेजा गया।" (७३)

**३२६. छोटे गव्य व्यवसायीके लिये लाल सिन्धी सर्वश्रेष्ठ :** "छोटे गव्य व्यवसायी के लिये सिन्धी गाय श्रेष्ठोंमें एक है। यह बड़ा पशु नहीं है इसलिये अंगोल, साहीवाल आदि बड़ी गायोंसे कम चारा खाती है। यह मितभोजी है और लघु आहार मात्रपर अच्छी हालतमें रहती है ···"

"होसूरके साँढ़ संवर्धनके लिये इम्पीरियल इस्टीट्यूट ऑफ एनिमल हस्बैन्डरी ऐन्ड डेयरिंग, बंगलूर और बंगाल, कोचीन तथा सिलोनकी सरकारोंको बेचे गये।

"आजकल होसूरमें ७० सिन्धी गायोंका ठट्ठ है। हरेक पशुका लेखा रखा जाता है। तारीख तकका नीचे लिखा ब्यौरा तैयार किया गया है। (७३)

**३२७. लाल सिन्धीकी दूध-उत्पत्ति :** "आरम्भमें जो माल खरीदे गये थे उनका औसत दूध ३,५७२ रत्तल था। दैनिकका औसत ११·९ रत्तल हुआ। क्षेत्रमें उत्पन्न गायें और पहिलौंठी ब्यानवालीका औसत ४,१३७ रत्तल हुआ जिसका दैनिक औसत ११·९ रत्तल है।

"आठ गउओंने एक ब्यानमें ६,००० रत्तलसे ज्यादे दूध दिया और ११ने ५,०००से ६,००० रत्तलके बीच। इनकी अधिकतम उत्पत्तिके औसत ये हैं—

| | | |
|---|---|---|
| मूल माल | .... | ४,४१६ रत्तल |
| दैनिक औसत | .... | १२·०६ ,, |
| क्षेत्र-उत्पन्न गायें | .... | ४,४६७ ,, |
| दैनिक औसत | .... | १२·८ ,, |

"पूरे ठट्ठका एक साथ हिसाब करने पर गायोंका औसत दूध ३,२५१ रत्तल ३०९ दिनोंमें हुआ। इसका दैनिक औसत १०·५ रत्तल है। औसत १६ महीने पर ब्यायीं।"

### तौल

"जन्मके बाद बछरूकी औसत तौल है—

| | | |
|---|---|---|
| बछड़ा | .... | ४७ रत्तल |
| बछिया | .... | ४२ ,, |

सयाने मालकी औसत तौल—

| | | |
|---|---|---|
| साँड़ | .... | ९५०से १,००० रत्तल |
| गाय | .... | ६५०से ७५० रत्तल" (७३) |

## उत्तर-पच्छिम सीमान्त प्रदेश

**३२८. पसन्द की जानेवाली नसलें :** उत्तर-पच्छिम सीमान्तके जिले हालमें ही प्रान्त बना दिये गये हैं। पशु पालन कार्यके लिये प्रान्तके दो भाग किये गये हैं। एक पहाड़ी और दूसरा मैदानी। पहाड़में पसन्दकी नस्ल सिन्धी है। मैदान पंजाबके सिलसिलेमें हैं। यहाँ धन्नी पसन्दकी नस्ल है।

बलूचिस्थान की लोहानी नस्लको भी बढ़ावा मिल रहा है। बड़ी संख्यामें इनका संवर्धन करनेकी कोशिशें हो रही है।

**३२६. उन्नतिके लिये प्रयत्न—सुन्दर आरम्भ :** इस प्रान्तकी कुर्रम घाटी अफगानिस्थान की सीमापर है। वायसरायकी इनामी साँढ़-योजनाके लिये कोषकी माँगका यहाँ प्रभाव पड़ा। सारे प्रान्तके ९५,०००) रु० की तुलनामें यहाँ ५,०००) रु० जमा किये गये। कुर्रम घाटी किसी तहसीलसे अधिक बड़ी नहीं है। इस छोटी जगहमें घने कामके लिये ५० साँढ़ बाँटे गये। प्रान्तके ६ जिलोंमें और ६०० साँढ़ बाँटे गये। रूसकी सीमापर सिवात, चित्राल, दीर की एजेन्सोके भाग भी इसीमें हैं। सन् १९३९ तक प्रायः ४५० साँढ़ बाँटे गये। उत्साही सदस्योंके पशुधन-मंडल स्थापित किये गये। सन् १९३९ में साँढ़के भरण पोषणके लिये सरकारने १५,०००) रु० और जिला बोर्डोंने और १५,०००) रु० दिये। यह हर वर्ष मिलनेवाली रकम थी। इस तरह कामका आरंभ बहुत सुन्दर तरीकेसे किया गया।

**३३०. सीमा प्रान्तमें उन्नति :** इस आन्दोलनने सीमाप्रान्तमें पशुपालनकी दिशा बदल दी। यह पंजाबसे पाँच छः लाख रुपये लागतके हलके लिये बैल मँगाया करता था। पर सहायक वृत्तिकी योजना प्रचलित करनेसे यह सब अब बदल जायगा। यह योजना इतनी सफल हुई है कि अब पंजाबसे ढोरकी आमद काफी कम हो गयी है। पंजाबकी सीमापरकी कई ढोर-मंडियाँ या हाटें उठा दी गयीं। इन सीमान्त इलाकेके गाँववालोंको साँढ़के भरण पोषणके लिये एक अलग कोष है। इस कोषसे हर साँढ़के लिये ८) रु० महीना की वृत्ति बाँटी जाती है।

जहाँ ढोर-संवर्धनका सुभीता था केवल उन्हीं स्थानोंमें साँढ़ बाँटे गये। जब गाँववाले साँढ़के लिये दरखास्त करते हैं तब स्थानकी उपयुक्तताकी जाँच की जाती है। जब किसीको साँढ़ दिया जाता है तब उससे प्रति साँढ़ ५०) रु० की रकम ली जाती है। इसे ८) रु० महीना की किस्तमें अदा करना होता है।

जो ४५० साँढ़ बाँटे गये थे उनकी अच्छी रखवाली होती थी। इलाकेका भेटेरिनरी असिस्टेन्ट सरजन महीनेमें एकबार साँढ़की हालत देखता है और सुपरिन्टेन्डेन्ट जबतब देखा करता है। साँढ़ जितने समागम करता है और जितनी गायें ब्याती हैं उनका लेखा रखा जाता है।

पर गाँवोंमें उन्नति करनेके लिये अधिक धनकी जरूरत थी। धन

जोड़नेके लिये हाटोंमें ढोरकी बिक्रीपर थोड़ासा कर लगानेका प्रान्तीय संघका सुझाव सरकारने स्वीकार लिया। यहभी सुझाव था कि अधौरी (कच्चा चमड़ा) चमड़ा, ऊन आदिके चलान पर थोड़ासा कर बैठा दिया जाय। यह चलते खर्चको पूरा करेगा।

**३३१. देहाती प्रदर्शनी और प्रचार :** देहातोंमें जोशके साथ प्रदर्शनी और प्रचार कार्य किये गये। इस प्रयोजनके लिये धन हर साल सरकार और जिला बोर्ड देते थे। सन् १९३९ में दोनों संस्थाओंने इस कामके लिये क्रमशः ३,०००) और ३,५००) रुपये दिये। देहातोंमें प्रदर्शनियाँ की गयीं उनमें ढोरोंके बच्चे दिखाये गये। नस्लकी उन्नति और उचित पोषण आदिके लिये अनेक शिक्षाप्रद पर्चे बाँटे गये। प्रचार-पत्रकोंकी सूची आकर्षक है। पर पत्रक (पर्चे) बाँटना कुछ सीमाप्रान्तकी विशेषता नहीं है। सभी प्रान्तोंमें पत्रक तैयार करने और बाँटने को बढ़ावा दिया गया। पर सीमाप्रान्तकी पर्चेबाजी विधिवत् और सोद्देश्य मालूम होती है।

सूचीमें ३४ पर्चे संवर्धनपर, २८ दूधपर और २० पशुपालनके फुटकर विषयों पर हैं।

सूची बड़ी है। अगर सीमाप्रान्तके किसान इस मुफ्तके साहित्यसे फायदा उठा सकें तो उन्हें पशुपालनके विधि-विधानका काफी ज्ञान हो सकता है। पर इसमें सन्देह है कि जिनके लिये यह पर्चे हैं उन तक यह पँहुचतेभी हैं या वह पढ़तेभी हैं। यदि उनमेंसे थोड़ेभी इन्हे पढ़ें और इस तरह प्राप्त ज्ञान काममें लावें तो बड़ा उपकार हो सकता है। सीमाप्रान्तकी सरकार समझती है कि उसका प्रचार असरदार हुआ है। क्योंकि उसके उद्योगसे धन्नी नसलका पालन प्रान्तमें बड़ी संख्यामें हो रहा है।

## मध्यप्रान्त

**३३२. सन् १९२७ की स्थिति :** १९२७ की ढोर संवर्धनकी स्थिति शाही कमीशनने नीचेके अनुसार लिखी है :

"यद्यपि मध्यप्रान्तमें ९ ढोर-संवर्धन-क्षेत्र हैं जिनमें २ लगभग २० वर्षोंसे हैं। पर कुलीन साढ़ोंकी वास्तविक उत्पत्ति बहुत कम है। चुने हुए स्थानोंमें केन्द्रित

प्रयत्नसे क्षेत्रोंमें तैयार किये मालोंकी संख्या बढ़ानेकी योजनापर अब जाकर विचार शुरू हुआ है। इस प्रान्तकी हालत ढोर संवर्धन कार्यको अजीब तरहसे कठिन बनाती है। स्थानीय नसलमें सिर्फ गावलावमें किसी प्रकारकी विशेषता है। कपास इलाकेके किसान अपने भारवाही ढोरको बहुत मानते हैं पर यह संवर्धक नहीं हैं। स्थानीय स्थिति प्रतिकूल है। उत्तरके घासवाले इलाकेके बैलोंपर यह लोग अधिक निर्भर हैं। गेहूँ उपाजनेवाले स्थानके किसानोंके ढोर इतने कमजोर होते हैं कि बहुत बड़ा भाग परती है और उसमें काँस भरा है। क्योंकि जमीनको साफ रखनेवाले औजारको इतने कमजोर बैल खींच नहीं सकते। जहाँकी मुख्य फसल गेहूँ है वहाँसे धानके इलाकेके ढोर और भी गये बीते हैं। प्रान्तके उत्तर-पच्छिम मध्य भारतके फैले हुए ढोर-संवर्धन इलाकेकी सीमापरही साधारण अच्छे किस्मके ढोर मिल सकते हैं। इनकी उत्पत्ति मालवी और इसी प्रकारके ढोर पालनेवाले पेशेवर पशुपालकोंके कारण है। बहुत जगह पाये जानेवाले अज्ञातकुल-पशुओंके कोटि-निर्माणके द्वारा उन्हें कुछ निश्चित लक्षणसे युक्त करनेकी कोशिश हुई थी। मन्टगुमरी साँढ़से काम लिया गया। स्थानीय नस्लमें दुधार गुण उत्पन्न करनेकी नीति थी। जिस प्रकारके पशु तैयार हुए उन्हें दूध बेचनेवालोंने पसन्द किया। पर मन्टगुमरी किसानोंने पसन्द नहीं किया।"—(पृ० २१९)

**३३३. नागपुर शहरमें दूधका प्रबन्ध :** "नागपुर शहर और आसपासके जिलोंमें दूधके प्रबन्ध पर बहुत ध्यान दिया गया। नागपुरके तेलनखेड़ी क्षेत्रमें शुद्ध साहीवाल (मन्टगुमरी) ढोरका एक ठट्ठ तैयार किया जा रहा है। स्थानीय ग्वालोंकी एक सफल सहयोग समिति उनकी भैंस और गायके संवर्धन और खिलाईकी उन्नति करनेके लिये बनायी गयी है। कृषि-कॉलिजके साथके और अधरतालके गव्य क्षेत्रमें नयी नसल बनानेका महत्वका प्रयत्न हो रहा है।"……—(पृ० २१९-'२०)

"यह सम्भव है, क्योंकि गेहूँ और धानके इलाकेकी तुलनामें बराड़के ढोर अच्छे हैं। आजतक गेहूँ और धानके इलाकेके पशुओंकी उन्नतिपर ही ध्यान केन्द्रित किया गया था। पर यह नीति बुद्धिमत्तापूर्ण है इसमें सन्देह था। क्योंकि जबतक खिलानेपर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता तबतक धान और गेहूँके इलाकोंमें थोड़ेसे इनामी साँढ़ बाँटनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। हम लोगोंको ऐसा मालूम होता है कि मध्यप्रान्तमें ऐसे प्रकारके पशुओंका संवर्धन हाथमें लेना चाहिये जो बराड़में पसन्द किये जायें। और कुलीन साँढ़ तैयार करनेवाले किसी ढोर-क्षेत्रके

साथ एक नियंत्रित इलाका भी रहना चाहिये जहाँ उन्नत प्रकारके पशुओंकी संख्या वितरणके लिये बढ़ायी जा सके।

"इस प्रान्तमें उन्नतिकी बाधायें पंजाब, युक्तप्रान्त और बंबई से बहुत जादे भयंकर हैं। इसलिये यह देख संतोष होता है कि इस विषयपर बहुत ध्यान दिया जा रहा है।"—(पृ० २२०) (१२०५)

**३३४. ढोर-संवर्धनकी स्थिति :** ढोर-संवर्धनकी सन् १९३९ तक यह स्थिति थी कि ५६१ शुद्ध नसलके साँढ़ थे। इनमें से ३३१ "साँढ़ उपहार" योजनाके अनुसार दे दिये गये, और १६३ केन्द्रीय सरकारके दिये रुपयेसे खरीदे गये। बराड़में हरियानाका प्रचार किया जा रहा है और उत्तरी जिलोंमें मालवी का। साहीवाल शहरोंमें दी जारही है। ग्वालोंकी सहयोग समिति नागपुरमें अभी तक काम कर रही है। साहीवालके संकरसे इसे सफलता मिली है। पर उस समयतक मध्यप्रान्तकी गावलाव नसलपर प्रयोग नहीं किये गये थे।

अनेक दूसरे प्रान्तोंकी तरह चारेका सवाल यहाँ भी कठिन था। अन्नकी फसलसे मिले चारेपर ढोर ६ महीने तक ही पाले जा सकते थे। वर्षके बाकी समयमें ढोर जंगलकी चराई पर ही निर्भर थे।

यह प्रान्त बड़ा है। इसका कुल क्षेत्रफल ६ करोड़ ३० लाख एकड़ है। इसमें २ करोड़ ८० लाख एकड़ जमीन आबाद या चौमास रहती है। और खेतीके लायक परती और नालायक परती १ करोड़ ९० लाख एकड़ है। १ करोड़ ६० लाख एकड़ जंगल है। आबाद जमीनसे १ करोड़ ५० लाख लोगोंकी परवरिश होती है।

## आँकड़ा—२४

**३३५. मध्यप्रान्तके ढोरोंकी संख्या (सन् १९३७) :**

| | | हजारमें |
|---|---|---|
| साँढ़ | .... | १०९ |
| बैल | .... | ४,०२८ |
| गाय | .... | ३,१७८ |
| बछड़ा | .... | ३,२८० |
| भैंसा | .... | ५१४ |
| भैंस | .... | ८०१ |
| तरुण पशु | .... | ७०४ |

**३३६. मध्यप्रान्तके चार अंचल :** ढोर-संवर्धनकी दृष्टिसे फसलोंके हिसाबसे प्रान्तके चार भाग हो सकते हैं। इससे पता चलता है कि, वहाँ किस तरहके पशु साधारण तौरपर पाये जाते हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| (१) | सागर और जबलपुर | ... | गेहूँका इलाका। |
| (२) | भंडारा | ... | धानका इलाका। |
| (३) | अमरावती | ... | कपासका इलाका। |
| (४) | नागपुर-वर्धा | ... | मिश्रित खेतीका इलाका। |

धानका इलाका ढोर-संवर्धनके लिये सबसे कम उपयुक्त है। क्योंकि चारेका साधन अच्छा नहीं है। सागर और वर्धाके कुछ भाग तथा बालाघाट ढोर-संवर्धनमें बढ़ावा देने लायक स्थान है। क्योंकि यहाँ चारेके साधन की गुंजाइश है। (२०२, २५८, २६६, २८७, ३४४)

**३३७. ढोरकी नसलें :** गावलाव ढोरका अधिकांश वर्धा, नागपुर और छिंदवाड़ा जिलोंमें संवर्धन होता है। खामगाँव ढोर बुलडाना जिले और अकोलाके उत्तर-पच्छिममें पाले जाते हैं। बराड़में दो स्पष्ट भिन्न नसलें हैं—पच्छिमी बराड़की खामगाँव और बराड़के पूरबी भागकी उमरधा। निमाड़ी और खामगाँव नसलें निमाड़में मिलती हैं। सागर और मंडलाकी स्थानीय नसल मालवी है।

गावलाव, निमाड़ी, मालवी, खामगाँव आदिको छोड़ साधारण ढोर घटिया हैं। गायें बहुत कम दूध देती हैं। भैंसोंको यद्यपि बहुत शानदार सींग और विशाल देह होती हैं, फिरभी तुलनात्मक दृष्टिसे वहभी गायकी तरह कम दुधार हैं। बैल अति उत्तम, वेगवान् और बलिष्ठ हैं। यह दुखकी बात है कि २ करोड़ ८० लाख एकड़के बड़े क्षेत्रफलमें अबतक गायके दुधार गुणकी उपेक्षा की गयी है। अब इस पर ध्यान दिया जा रहा है और उन्नति की कोशिश हो रही है। (३०२)

**३३८. मध्यप्रान्त गरीब प्रान्त है :** मध्यप्रान्त गरीब है। इसमें घटिया जमीन बहुत है। ढोर घटिया हैं। कई जिलोंके देहातके लोग असीम दरिद्र हैं। सन् १९३७ के जाँच के अनुसार गायोंके एक ब्यानकी औसत उत्पत्ति केवल ४११ रत्तल थी और भैंसकी १,५१३ रत्तल। सबसे बढ़कर यह कि जाँचवाले इलाकेमें गव्योंकी खपत प्रति मनुष्य केवल ६·७३ आउन्स थी।

गायें कम दुधार हैं। ११·८ महीने बिसुकी रहती हैं। इससे दूधकी दैनिक उत्पत्ति केवल ·६६ रत्तल होती है। ब्यानका और बिसुके रहनेका समय

मिलाकर दैनिक दूध-उत्पत्ति जाँचके सातों इलाकोंमें सबसे कम है। सातों इलाकोंमें गायकी उत्पत्ति नीचे लिखी है :

मन्टगुमरी—२·५३ ; अंगोल—२·१७ ; हरियाना—२·१६ ; कोसी—१·७४ ; काँकरेज—१·६८ ; बिहार—१·२७ और मध्यप्रान्त—·६६ रत्तल।

भैंसकी सम्पूर्ण उत्पत्ति बिहारमें मध्यप्रान्तकी तरह ही कम होती है। सातों इलाकोंमें भैंसकी सम्पूर्ण दूध-उत्पत्ति नीचे लिखी है।

मन्टगुमरी—४·४३ ; अंगोल—३·५ ; हरियाना—५·८३ ; कोसी—३·५७ ; काँकरेज—३·२९ ; बिहार—२·३३ और मध्यप्रान्त—२·३४ रत्तल। (४७)

**३३९. प्रान्तकी उन्नतिके लिये गायकी उन्नति अनिवार्य है :** गायकी उन्नति जैसे पूरे भारतकी उन्नतिके लिये अनिवार्य है, उसी तरह मध्यप्रान्तकी आर्थिक उन्नतिके लिये भी है। प्रान्तके बहुत बड़े भागमें बहुत कम सिंचाई और घटिया मिट्टीके कारण यह कार्य विकट है। दूधकी उत्पत्ति बहुत कम है। कुछ समझदारी के साथ प्रयास करनेपर इसे जल्दी ही बढ़ाया जा सकता है।

जाँचवाले इलाकेमें बैलकी कीमत ४०) रु० थी, पर हलवाले भैंसकी २०) रु० मात्र। यह बात मध्यप्रान्तकी मिट्टीमें भैंसकी काम करनेकी अयोग्यता बताती है। यद्यपि इस काममें काफी संख्यामें भैंस लगे हुए हैं। बध की जानेवाली गायका कूता दाम ७) रु० था और भैंसका १०) रु०। चमड़ेका तुलनात्मक दाम कम था। क्योंकि चमड़ेकी किस्म घटिया थी और उसपर "अरउआ" के निशान (goad marks) होते थे। इसप्रान्तमें अगल बगलके देशी राज्योंसे, जैसे—हैदराबाद, इन्दौर, ग्वालियर आदिसे बहुत बड़ी संख्यामें कामके बैलोंकी आमदनी होती है।

**३४०. मध्यप्रान्तको ढोर-संवर्धनकी जरूरत है :** प्रान्तके विभिन्न भागोंकी विभिन्न आवश्यकताके लिये ढोरोंकी जरूरत नीचे लिखे अनुसार है :

**बराड़के देहात और पच्छिमी मंडल :**

(१) फुर्तीले जल्दी चलनेवाले बैल जो हल्की मिट्टीवाली अधिक जमीन जोत सकें।

(२) गहरी जुताई करनेके लिये बड़े कद और भारी वजनवाले।

(३) मनुष्य और बछड़ोंके लिये अधिक दूध देनेवाली गाय ऐसी हो कि उसकी सँभाल की जा सके।

**उत्तरी देहात :**

(१) भारी और गहरी जुताईकी शक्ति ; खींचनेका बल और योग्यता वेगकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है ।

(२) अगर मिल सके तो दूध ।

**दक्खिनी देहाती मंडल, नागपुर डिविजन और पठारका कुछ भाग :**

(१) तेज चलनेवाले और अधिक वजनवाले ।

(२) अगर मिल सके तो दूध ।

**छत्तीसगढ़ :**

(१) खास तरहकी आबहवा और चारेके लायक छोटा मेहनती अच्छे पुट्ठोंवाला बैल ।

**प्रान्तके ऊपर कहे भागमें कोईभी नगर और उपनगर :**

(१) खूब दुधार गायें ।

(२) काम करनेवाले बैल उतने महत्वके नहीं हैं, पर अगर अपने इलाकेकी जरूरत पूरी कर सकने लायक अच्छे दामके बिकाऊ बैल दे सकें तो उनका महत्व है ।

प्रान्तके विभिन्न भागोंकी इन सभी जरूरतोंका विचारकर नीचे लिखी नसूलोंके ढोरोंकी शिफारिशकी जाती है ।

बराड़के लिये मध्यम प्रकारके हरियाना ढोरकी परीक्षा हो रही है । क्योंकि यह नसूल अपनी रक्त-शुद्धताके लिये सुप्रसिद्ध है । इसमें दोनों गुण हैं । गायमें अधिक दूध और बैलमें तेजीसे चलनेका ।

अगर खामगाँव नसूलको द्वि-प्रयोजन पशु बनाया जा सके तो इस इलाकेकी जरूरत बहुत कुछ पूरी हो सकती है ।

उत्तरी देहातके लिये पोवारखेड़ा क्षेत्रमें अभी कुछ वर्षोंकी स्थितिकी मालवी नसूल इस इलाकेकी मुख्य जरूरतके लायक है । अर्थात् यह बलिष्ठ और धीमा है । इस पशुको स्थानीय जरूरतके लिये दूध देनेवाला बनाया जा सकता है ।

मन्टगुमरी बैल शहरोंको छोड़ और जगह कामके नहीं हैं । सरकारी विभाग मानता है कि मन्टगुमरी और मालवीका संकर इस इलाकेके लिये आदर्श पशु होगा, अर्थात् भारी भारवाही और दूधका सम्मिलित द्विप्रयोजन ।

दखिनी मंडल, नागपुर डिविजन और पठारके कुछ भागके लियेः

सुप्रसिद्ध देशी नसूल गावलाव इस इलाके की दूध और कामकी जरूरत पूरी करती है।

छत्तीसगढ़की समस्या कठिन है। छत्तीसगढ़ी गायको मालवी या मन्टगुमरी साँढ़से कोटि-निर्माण कर बड़ा जानबर बनानेकी कोशिश करनेसे कोई फायदा नहीं।



चित्र ३१. भंजारी संवर्धक

आबहवा और चारेका अभाव दोनोंही ऐसी नसूलके जीवनके प्रतिकूल हैं। छत्तीसगढ़में सिर्फ वरण द्वारा सम्वर्धनकाही काम हो सकता है।

स्थानीय विभाग प्रान्तभरके शहरोंमें मन्टगुमरी रक्तके पशुओंका प्रचार करके देख रहा है। देहाती मध्यप्रान्त और बराड़में यह करना भूल होगी। पर यदि स्थानीय नसूलमें अधिक दूध उत्पत्ति की उम्मीद तुरत न हो और जब दूध मुनाफेका मुख्य साधन बन जाय तब ऐसी बात नहीं होगी। नागपुरके तेलिनखेड़ी गव्यक्षेत्रमें एक

मन्टगुमरी ठट्ठ तैयार हुआ है। इसे मध्य प्रकारका अधिक दूध देनेवाला और भारवहनके लायक भी बनानेमें सफलता मिली है। (६४)

# बिहार

**३४१. ह्रास पश्चिमसे पूरब चलता है :** यदि कोई एकदम पश्चिम जैसे मथुरा से युक्तप्रान्तके पूरबी छोरकी तरफ जमुनाके किनारे किनारे चले तो पशुओंका ह्रास दिखाई देने लगेगा। गंगाजी बिहारमें जहाँ प्रवेश करती हैं वहाँ युक्तप्रान्तका ह्रास चरम सीमाको पँहुच जाता है।

बिहारकी पूरबी सीमा जहाँ बंगालसे मिलती है वहाँतक बढ़ता हुआ ह्रास दिखाई पड़ता है।

भारतके सात संवर्धन अंचलकी जाँचमें बिहारका वह भाग चुना गया था जो प्रान्तमें घुसते ही गंगाजीके दोनों तटपर पटनेके पास दानापुर तक है। गंगाजीके किनारे यह लम्बा चौड़ा स्थान है। इसमें मुजफ्फरपुर जिलेका हाजीपुर सबडिविजन, पटनेका दानापुर सबडिविजन और शाहाबाद और सारनके सदर सबडिविजन हैं। सन् १९३६-'३७ में जहाँ तहाँ ६० गाँवोंमें जाँच की गयी थी। इस वर्णनसे प्रान्तके दूसरे भाग के ढोर की हालत भी समझी जा सकती है। भैंस दूधके लिये तथा गाय बैलके लिये पाली जाती हैं। साधारण नियम यही है। पर दुष्पोषित भैंसका दूध कभी कभी घटिया गायके बराबर होता है। नीचे उद्धृत रिपोर्ट से बिहार में पशुपालनके आजके ढंगका अंदाज मिल सकता है।

**३४२. ढोरकी हालत :** "बिहारके देशी ढोर हरियाना प्रकारके अवनत ढोरकी तरह कुछ कुछ हैं। अवनति शायद हद दर्जे की हो चुकी है। स्थानीय गायें प्रायः तीन चार फुट ऊँची होती हैं। उनकी हालत दहलानेवाली है। गायें केवल ३ से ६ ब्यानमें ठाँठ हो जाती हैं—इसीसे बुरे स्वास्थ्यका पता चलता है. ऐसा बुरा स्वास्थ्य उचित गोचरके अभाव और यथेष्ट चारा नहीं मिलनेके कारण है। जब खेत बो दिये जाते हैं तब पशुओंको हर समय बाँधकर रखते हैं।"—(पृ० ८२)

**३४३. सात अंचलकी बिहार के बारेमें रिपोर्ट :** "जनताके छोड़े देशी ब्राह्मणी साँड़ोंसे अधिकांश संवर्धन होते हैं। जिस छीजे प्रकारकी गायें होती हैं वे भी अधिकांश उसी प्रकारके होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ लोगों की

ढोर-संवर्धनमें रुचि है और वह लोग अच्छी नस्ल अर्थात् हरियाना और हिसारके बछड़े खरीदकर अच्छे सांढ़ छोड़ते हैं। शाहाबाद दियारे के ढोर की इन सांढ़ोंसे उन्नति हुई है। दरभंगा जिलेके मधुवनी सबडिविजनके कोइरी और अहीर किसान भी अच्छे सांढ़ छोड़ते हैं। इनसे कसे चमड़ेवाले, छोटे पैर और पूँछवाले मझोले कद के पानीदार बैल पैदा होते हैं। दरभंगा जिलेके मधुवनी सबडिविजन और मुजफ्फरपुर के सीतामढ़ी सबडिविजनके ढोर अच्छे बैल पैदा करनेमें बहुत प्रसिद्ध हैं। दरभंगा जिलेके मधुवनी सबडिविजनमें खासकर बछौर परगनेमें अगर रोगी या दवाके लिये जरूरी न हो तो बछड़े-वाली गाय बिलकुल नहीं दूही जाती और सारा दूध बछड़ेको पीने दिया जाता है।"—(पृ ०८२)

**३४४. बछरू पालना :** बिहारमें बछरूका स्वास्थ्य उनकी माँके जैसाही बहुत बुरा है। बछरूको साधारण तौर पर पहले महीनेमें आधा दूध, दूसरे और तीसरेके पूर्वार्ध में चौथाई दूध मिलता है ; २½ महीनेके बाद ८ आउन्स दैनिकसे शायदही कभी जादा इसे मिलता हो।

"गांवोंमें बछरूकी दशा बहुत शोचनीय है। यहाँ दूधको खपत आसान और सुभोतेकी है। बछरुओंको पौष्टिक चारा कभी नियमित रूपसे नहीं दिया जाता।··· जो बछरू सुडौल होते हैं और जो समझे जाते हैं कि अच्छे बैल निकलेंगे वह शुरूसेही अधिक दूध पाते हैं।....उनकी सँभाल बहुत जादे होती है।"—(पृ० ८३)

( २०२, २५८, २६६, २८७, ३०२, ३३६ )

**३४५. गो-माताओंका बुरा स्वास्थ्य :** "बछौर परगनेमें. . . . प्रायः सभी कोइरी और अहीर किसान बैल तैयार करनेके लिये गाय पालते हैं। बछड़े-वाली गाय बिलकुल नहीं दुही जाती। पर बछियावाली पूरी तौर दुहली जाती है। इसका परिणाम गो-माताओंका बुरा स्वास्थ्य और मालका औरभी छीजना है।" —(उसीसे)

**३४६. दूध—गाय और भैंस :** "औसत गाय एक ब्यानमें ५००—८०० रत्तलसे अधिक दूध नहीं देती। एक ब्यानका साधारण समय ६ से ७ महीना रहता है। बहुतसे पशु एक ब्यानमें ५०० रत्तलसेभी कम देते हैं। और ८०० रत्तलसे अधिक देनेवाले कुछही मिले हैं।

"भैंसके दूधमें मक्खन गायसे जादे है इसलिये उससे घी बनाया जाता है और गायका दूध काममें लाया जाता है। भैंसके दूधमें मक्खन ६ से ७ प्रतिशत होता है

और गायके दूधमें ३ से ४। कुछ मामलोंमें जहाँ भैंसका स्वास्थ्य बहुतही बुरा है, जहाँतक घी-उत्पत्ति का सवाल है वह गायसे जरा भी अच्छी नहीं।"—(उसी किताबसे) (१०६-'२७)

# बंगाल, उड़ीसा और आसाम

**३४७. बंगाल, उड़ीसा और आसाममें संवर्धन :** बंगाल प्रान्तकी पच्छिमी सीमा बिहार से मिली है। यह पहलेही कहा जा चुका है कि युक्तप्रान्तसे जितनाही पूरब बढ़िये ढोर छीजतेही जाते हैं। वास्तवमें सारा उत्तर भारत सिन्धु, यमुना, गंगा और ब्रह्मपुत्रका काँठा (उपकूल) होनेके कारण एक इकाई माना जा सकता है। एकदमसे पच्छिमी छोरके प्रदेशमें ढोर सबसे जादे सुखी हैं। पर पंजाबसे ज्यों ज्यों पूरब बढ़ते हैं छीजन स्पष्ट दिखाई देने लगती है। बिहारकी पूरबी सीमासे उन्नत नस्लें अन्तर्धान होती हुई दीखती हैं। बंगाल, उड़ीसा और आसामभरमें इनका अभाव है। सीरी या पहाड़ी प्रकार अपवाद (व्यतिक्रम) है। यह दार्जिलिंगके पास हिमालय पहाड़में पाया जाता है। सारे मैदानी हिस्सेमें ढोर अज्ञातकुलके हैं और पहाड़ी प्रकारके संकर हैं।

बंगालकी पच्छिम सीमाके जिले मालदहकी गायें बहुत कुछ बिहारकी तरह हैं। पर गंगाके किनारे किनारे आगे बढ़नेपर गायें अधिकाधिक छीजीं मिलेंगी। (३७८)

**३४८. बंगालमें दुधार गायें लायी जाती हैं :** यह कहा जा चुका है कि भारतभरमें स्वाभाविक तौरपर सूखे इलाकेमें ढोर अच्छा पनपते हैं पर दियारेवाली जगहके ढोर जहाँ जमीन प्रायः डूबी रहती है छीजते हैं। छीजनेके कारण चाहे जो हों पर बंगालमें यही हो रहा है और साथ ही सचाई यह है कि इतनी अधिक वर्षाके बंगालमेंभी मन्टगुमरी जैसे दुधार और हरियाना जैसे भारवाही पशुओंकी यदि अच्छी सँभाल हो, उचित तरहसे खूँटेपर खिलाया जाय और कड़ी जमीनपर चराया जाय तो वह भी अच्छा पनपते हैं और उनमें कोई छीजनभी नहीं दिखाई देती। यह हालत शहरोंमेंही संभव है। वहीं ऊपर कही पंजाबी नस्लें पनपती हैं। इसलिये बंगालकी आबहवा और वर्षामें अच्छे भारवाही और दुधार पशुओंके प्रतिकूल कुछ नहीं है।

**३४९. पनडुब्बे बंगालकी कठिनाई :** पूर्व बंगालमें अधिकांश जमीन ३ से ५ महीना डूबा रहती है और ढारको मुश्किलसे खड़े होने भरकी भी जगह मिलती है। उस मौसममें चारा पाना बहुतही कठिन है। सच पूछो तो भूखों मरनेको हालत रहती है। वर्षासे धरती मुलायम और धसनी हो जाती है इससे भारी पशुको चलनेमें कठिनाई होती है। धानके खेतमें कीचमें काम करना होता है। यहां भारी पशु कम उपयुक्त हैं। क्योंकि उनके पैर गहरे धसते हैं। इससे उन्हें चलनेमें कठिनाई होती है। धानके खेतकी जुताई केवल हलके पशु कर सकते हैं। बगाल धानका एक बड़ा खेत है। (५०४)

**३५०. साँढ़ बितरणकी सरकारी योजना :** सरकार बंगालके अज्ञात-कुल ढोरके कोटि-निर्माणका प्रयत्न हरियाना साँढ़ बाँटकर कर रही है। बंगालके प्रत्येक जिलेमें १०० साँढ़ बाँटनेकी योजना थी। सन् १९४२ में बंगालमें २,५०३ पसन्द किये साँढ़ थे। दो लाख घटिया साँढ़ बधिया कर दिये गये; और अच्छे साँढ़ोंकी १½ लाख सन्तानको गोदा गया। चारेकी खेतीको बढ़ावा देनेके लिये ५६ मन नेपियर (Napier—हाथीघास) घासकी खूँटी और चारेके बीज मुफ्त बाँटे गये। यह योजना २२ जिलोंमें चल रही है। इन साँढ़ोंके वितरणसे बगालपर किसी तरहका असर पड़ना कठिन है। इसके सिवा अभीतक वह समय नहीं आया है जब बंगालके अज्ञात-कुल पशु और हरियानाके संकरके परिणामपर कोई राय कायम की जा सके।

बंगालमें चारेको समस्या कठिन है। पूर्व बंगालके अनेक भागोंमें बरसातमें कई महीनोंतक ढोरको बाँधकर रखना होता है और जो कुछ आसानीसे मिले खिलाना होता है, क्योंकि सभी चीजें डूब जाती हैं। जलकुंभी (बड़ी) सचमुच एक ईति है। यह पानीके बड़े विस्तारपर छा जाती और धानके खेत चौपट कर डालती है। इसके पत्ते गायोंको खिलाये जाते हैं। इससे अतिसार (diarrhoea) हो जाता है। पर इन कठिन महीनोंमें ढोरको चबानेके लिये कुछ तो मिल जाता है। क्या कोटि-निर्मित ढोर इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकेंगे और खूब दूध देनेवाले और भारवाही पशु बने रहेंगे ?

इस विषयके सरकारी विभागकी आतुरताके रहतेभी ढोर उन्नतिकी समस्या छुई तक नहीं गयी है। (१४१-'४२, ५०६, ५११)

**३५१. उड़ीसा और आसामकी दशा बंगाल जैसीही हैं :** उड़ीसा और आसामकी हालत बहुत कुछ इसी तरह की है। जिन उपायोंसे बंगालके ढोरोंकी उन्नति होगी वही उड़ीसा और आसाममें भी लागू होंगे।

शहरोंमें दूध-व्यवस्थाके लिये हरियाना या मन्टगुमरीके प्रचारका देहाती बंगालपर कुछ असर नहीं होगा। आजके अज्ञात-कुल ढोरकी अधिक दूध देने और भारवहन की शक्ति बढ़ानी होगी। साथही चारेकी समस्या बड़े पैमानेपर सुलझानी होगी। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अभीतक श्रीगणेश नहीं किया गया है।

# देशी राज्य

**३५२. देशी राज्योंमें ढोर-संवर्धन कार्य :** देशी राज्योंमें ढोर-उन्नति कार्यका अधिक लेखा नहीं मिलता। पच्छिमी भारतकी काठियावाड़ी देशी रियासतें गीर नस्लके घर हैं। जूनागढ़, भावनगर, मौरवी रियासतोंमें नस्लको शुद्ध रखनेकी कोशिश हुई है। भावनगर राज्यको एक अच्छा ठट्ठ है। अनिवार्य रूपसे बधिया कराकर और साँड़ वितरणसे स्थानीय संवर्धकोंकी सहायता की जाती है। शहरोंमें दूध व्यवस्थाके लिये और विदेशोंको चलान होने से इस इलाके की ढोरको बड़ी हानि हुई है। स्थानीय रबाड़ी और भरवाद संवर्धक भैंस या भेड़ बकरीका संवर्धन करनेकी ओर झुक रहे हैं। अनेक राज्योंने अपने यहाँसे ढोरका चलान रोक दिया है।

राजपुताना और मध्यभारतकी कुछ रियासतों, जैसे जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, इंदौर और ग्वालियरमें स्थानीय नस्लें, नागौरी, राठ, मालवी और निमाड़ीकी उन्नतिका प्रबन्ध हो रहा है। पर कामका कोई असर नहीं हो रहा है।

दक्खिनी महाराष्ट्र प्रदेशमें निजाम सरकार देवनी ढोरकी उन्नति करनेकी कोशिश कर रही है। हिंगोलीमें इसका एक क्षेत्र है। मालवी और कृष्णावेली (कृष्णा-उपकूल)की गायोंकी दूध-उत्पत्ति बढ़ायी जा रही है। (४६, ५१, ५८)

# अध्याय ७

## भारतमें ढोरसे आर्थिक लाभ

**३५३. भारतीय ढोरका पैदा किया धन :** खेती और गाड़ीके लिये भारतकी गायें बैल देती हैं, दूध देती और राष्ट्रके पोषणकी व्यवस्था करती हैं। वह घास और चारेसे खाद तैयार करती हैं। इसका भी दाम लगाया जा सकता है। जो काट दी जाती हैं वह मासके रूपमें आहार देती हैं। हर पशुके मरनेके बाद चमड़ा मिलता है। इस तरह उसके हाड़ मांससे फिर खाद मिलती है। इन सभी चीजोंकी कीमत लगायी जा सकती है। दाम लगाना कठिन है पर कुछ हिसाब बड़े कारकसरके साथ तैयार हुआ है।

**३५४. ऑलवर और राइटकी कुताई :** सर अर्थर ऑलवरने सन् १९३३ में ऊपर कहे मदोंकी कीमत कूती थी। उन्होंने पाया कि कुल रकम सालाना १,९०० करोड़ रुपयोंसे ऊपर होती है। इसके बाद सन् १९३७ में डा० राइटने अपनी रिपोर्टके लिये निपुणोंकी सहायतासे फिर कूता। सन् १९३३ में जिन श्री वैद्यनाथनने सर ऑलवरके साथ कूता था, इनने भी डा० राइटके प्रयत्नमें सहायता की। डा० राइटका हिसाब सालाना १,००० करोड़ रुपयोंका है। दोनोंही बहुत बड़ी संख्यायें हैं। इनकी बराबरी कोई एक धन्धा अकेले नहीं कर सकता। कहा जाता है कि भारतकी कृषि-उत्पत्तिका कुल मूल्य २,००० करोड़ है। इसलिये पशु पालनका भी उतना ही महत्व है जितना खेती या बागवानी का।

भारतमें पशुपालनके विद्यार्थीके लिये सर अर्थर ऑलवरके आँकड़े और उसका आधार और डा० राइटके जँचे हुए साधार आंकड़े शिक्षाप्रद हैं। आँकड़े यद्यपि सन् १९३३ में तैयार किये गये पर उनका आधार सन् १९२९ का मूल्य था। सन् १९३३ के लगभग मंदी और उसके कारण दाममें उलटफेरकी वजह पहलेके मूल्य आधार माने गये।

**३५५. खेतीमें ढोरके कामका मूल्य—६१२ करोड़ :** प्रति एकड़ कामवाले पशुके पालनकी लागत पर इसका आधार है। लागत प्रांत प्रांतको अलग है। मध्यप्रांत, बराड़, बंबई, बिहार और उड़ीसाके कुछ भागोंमें औसत लागत २५) रुपया प्रति एकड़ तक कही गयी है। बंगाल और मदरासमें यह २६) रुपया थी। पर युक्तप्रांत और पंजाबकी लागत कम ही, १४) से १५) रुपया तक कूती गयी थी। आबाद जमीनका सरदर औसत १७) रुपया प्रति एकड़ माना गया है। भारतकी कुल आबाद जमीन ३६ करोड़ एकड़ थी। इसी आधार पर पशुओंके कामका खर्च ६१२ करोड़ रुपये कूते गये।

यह हिसाब दूसरे दृष्टिकोणसे जाँचा गया। पशुके कामको लागत उपजके मूल्य का ४०% कहा जाता है। उस समय "बैंकिंग इनक्वायरी कमीटी" ने (Banking Enquiry Committee) कुल फसलका मूल्य आँका था। लड़ाईके पहलेके दाममें वह १,३०० करोड़ रुपये कहा गया था। सन् १९२९ में लड़ाईके पहलेके दाममें २०% की बढ़ती हुई थी। इसलिये बैंकिग कमीटीका अंक सन् १९२९ के दामके बराबर माननेसे वह १,५६० करोड़ रुपये होता है। इसका ४०% वार्षिक ६२४ करोड़ रुपये होता है। इसलिये आबाद जमीनके आधारपर ६१२ करोड़ रुपयोंके अंककी पुष्टि उपजके मूल्यके आधारपर जोड़े हिसाबसे हुई, जो उचित थी।

**३५६. यातायातकी आमदनी—१६१ करोड़ :** खेतीके कामके अतिरिक्त बैलोंका एक दूसरा उपयोगभी वाहनके तौरपर होता है। आर्थिक जाँचकी रिपोर्टमें खेतीकी उपज बाजार लेजानेमें बैलगाड़ीका खर्च दिया गया है। उपजके मूल्य पर औसत डेढ़ आना यह कूता जा सकता है। यह जोड़नेपर १४६ करोड़ रुपये होते हैं। दूसरे काममें बैलकी सवारी की लागत ऊपरवालेका $\frac{1}{10}$ अर्थात १५ करोड़ रुपये माना जा सकता है। वाहनके दोनों मदकी जोड़ १६१ करोड़ रुपये हुए।

**३५७. दूधकी आमदनी—८१० करोड़ :** हिसाब लगाया गया था कि प्रति मनुष्य, दूध, घी, खोआ मिठाई आदिके रूपमें १० आउन्स प्रति दिन दूधकी खपत थी। इसका अर्थ हुआ ३ करोड़ ९० लाख टन या प्रायः १०० करोड़ मन दूध। ६ पैसे रत्तलके हिसाबसे इसका दाम ८१० करोड़ रुपये हुए।

**३५८. खादकी आमदनी—२७० करोड़ :** पंजाब सरकारके कृषि-रासायनिक डा० पी० ई० लैंडरने हिसाब लगाया था कि एक प्रौढ़ पशुको प्रायः ४ टन

गोबर और ३,३४७ रत्तल मूत्र होता है। इन्हें खाद या ईंधनके काममें लाते हैं। तत्काल उन्हें चाहे जिस अलाभकर काममें लाया जाय फिरभी उनका कुछ मूल्य है। प्रति वर्ष प्रति पशुके ४ टन गोबरका मूल्य १४) रु० और मूत्रका १२) रु० लगानेसे कुल २६) रु० होते हैं। इससे १९ करोड़ ८० लाख गोवंशका औसत १३) रु० प्रति मूड़ रखा गया। इसका जोड़ २७० करोड़ रुपये हुए। भेड़ और बकरियोंकी भी कुछ खाद होती है। १० बकरी या भेड़को १ ढोरके बराबर माननेसे उनका मूल्य १२ करोड़ रुपये होता है। २७० करोड़के हिसाबमें यह नहीं जोड़ा गया है। (३०)

**३५६. दूसरी उत्पत्तियोंका मूल्य—५५.५ करोड़ :** चर्म-कर जाँच रिपोर्टमें (Hide Cess Enquiry Report) गाय या भैंसकी औसत आयुका अनुमान ५ वर्ष और बकरीका ३.६ वर्ष किया गया है। अधौरी (कच्चा चमड़ा) की तौल और दाम नीचे लिखे अनुसार जोड़ा गया है :

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| भैंस २४ रत्तल | प्रति | पशु | ४०) रु० | प्रति | हन्डरके | हिसाबसे |
| गाय १५ | ,, | ,, | ४०) रु० | ,, | ,, | ,, |
| बकरी २ | ,, | ,, | ६०) रु० | ,, | ,, | ,, |

सब पशुओंका कुल जोड़ ३० करोड़ रुपए हुए। यह मानकर कि कुल अधौरीका ३०% बर्बाद हो जाता और उसका आर्थिक मूल्य कुछ नहीं है, इसे ३० करोड़ रुपयेसे निकाल देना होगा। सब कुछ बाद देकर यह २२.५ करोड़ रुपया हुआ।

**ऊन :** प्रति भेड़ ३ रत्तलके औसत और चार आना प्रति रत्तलके हिसाबसे इसकी कीमत ३ करोड़ रुपये हुई।

**मांस :** मांसके लिये १० प्रतिशत गाय और ७० प्रतिशत भेड़ बकरीकी हत्या मानकर १०) रु० प्रति गाय और ७) रु० प्रति भेड़ बकरीके (विशेष जाँचके आधारपर) हिसाबसे इस मदमें २० करोड़ रुपये होते हैं।

**हड्डी :** हड्डीकी खाद और सींगका विदेशमें चलान होता है। इसकी कीमत १.७ करोड़ रुपये है। यह मानलेनेपर कि इसका ५ गुना इसी देशमें रह जाता है, इस मदमें १० करोड़ रुपये हुए।

प्रति वर्ष ०.३६ करोड़ रुपयेका पशुधन विदेश जाता है। इस हिसाबमें देशी व्यापारका मूल्य नहीं जोड़ा गया है।

इस तरह कई मद नीचे लिखे अनुसार हैं :

| | | | करोड़ रुपये |
|---|---|---|---|
| १. | खेतीमें ढारका मजूरी | ... | ६१२ |
| २. | खेती छोड़ दूसरी मजूरी | ... | १६१ |
| ३. | गव्य उत्पत्ति | ... | ८१० |
| ४. | खाद ... | ... | २७० |
| ५. | दूसरी उत्पत्तियाँ— | | |
| | कच्चा चमड़ा (अधौरी) २२·५ करोड़ | | |
| | ऊन ३·० ” | | |
| | मांस २०·० ” | | |
| | हड्डी आदि . १०·० ” | | |
| | | | ५५·५ |
| ६. | जीवित पशुका निर्यात व्यापार | | ०·३६ |
| | | कुल ... | १९०८·८६ |

मोटे तौरपर जोड़कर इसे १,९०० करोड़ रुपये कह सकते हैं।—(ऑलवर और वैद्यनाथन्)

**३६०. डा० राइटका आमदनीका तखमीना :** सर अर्थर ने निष्कर्ष निकाला था कि, सारे भारतकी प्रति एकड़के हिसाबसे ढोरोंकी औसत मजूरी १७) रु० आँकी जाय।

खेतीकी लागतका २०% ढोरकी मजूरी खर्च है, इस अनुमानके आधारपर उनका वैकल्पिक (alternative) हिसाब था। डा० राइट हमें बताते हैं कि ये आँकड़े पंजाबकी जाँचके परिणाम-स्वरूप हैं। खेतीकी कुल उपजकी कीमत यदि २,००० करोड़ रुपये मानली जाय तो ढोरोंकी मजूरी ३०० करोड़ या ४०० करोड़ रुपयेके बीच होगी। फिन्डले शिरासने (Findlay Shirras) "दि साइन्स ऑफ पबलिक फिनान्स" में १९२२ के लिये खेतीकी उपजका कुल मूल्य १,९८३ करोड़ रुपये कूता था। श्री वैद्यनाथन्के अनुसार यह मूल्य सन् १९२९ में चढ़कर ३,४०० करोड़ रुपये हो गया और सन् १९३६ में गिरकर २,००० करोड़ रुपये रह गया।

डा० राइटने पशु-मजूरीके मूल्य-निर्धारणके लिये भी एक वैकल्पिक मान रखा था। इसका आधार एक जोड़ी बैलके पालनकी लागत थी। यह प्रतिवर्ष १७५) रु० कूती गयी थी। एक जोड़ी बैलसे १० एकड़ की जुताई हो सकती है। इसलिये प्रति एकड़की लागत १७.५ रुपये हुई। इसे ३० करोड़ एकड़ (आबाद खेत) से गुना करने पर सारे भारतका अंक ५२५ करोड़ रुपये निकलता है। अर्थात् ब्रिटिश भारतके लिये ४०० करोड़ रुपये हुए। सर अर्थर ऑल्वरके कूते ६१२ करोड़ रुपये के बदले डा० राइटने यह अंक स्वीकारा था। सर अर्थरने इसमें यातायातका खर्च भी बैठाया था। पर डा० राइट खेतीकी मजूरीके सिवा और दूसरी मजूरीका विचार नहीं करते। इसीलिये सर अर्थरके पशु-मजूरीके लिये ६१२ करोड़ जोड़ १६१ करोड़ रुपयेके बदले डा० राइटके ४०० करोड़ रुपये हैं।

**३६१. गव्य-उत्पत्तिका मूल्य—राइट :** सर अर्थरने गव्य-उत्पत्तिका मूल्य बहुत ऊँचा कूता था। उन्होंने १०० करोड़ मन दूधका हिसाब लगाया था। इसके बदले डा० राइटने ७० करोड़ मनका नया आँकड़ा माना था और उसका मूल्य उन्होंने नीचे लिखे अनुसार ३०० करोड़ रुपये लगाया था।

## आँकड़ा—२५

### भारतमें उत्पन्न दूध और दूधसे बनी चीजोंका कुल मूल्य

| उपज | दूध मन (मिलियनमें) | प्रतिमनका खुदरा दाम | मूल्य (करोड़ रुपये) |
|---|---|---|---|
| दूध | २१५·० | ५ | १०७·५ |
| घी | ३६४·० | २$\frac{3}{4}$ | १००·० |
| खोआ | ५२·२ | ७$\frac{1}{2}$ | ३९·२ |
| दूसरी उपज | १६·७ | १३ | २२·३ |
| दही | २६·२ | ७$\frac{1}{2}$ | १९·७ |
| मक्खन | १०·३ | ३ | ३ |
| क्रीम (मलाई) | २·८ | ३ | १·७ |
| मलाई बर्फ | २·८ | ३ | |
| | ६९०·० | | २९३·४ |

—(राइटकी रिपोर्ट, पृ० १६०)

**३६२. खादका मूल्य—राइट :** खादके बारेमें डा० राइटका और सर अर्थर ऑल्वरका अंक एक था। वह २७० करोड़ रुपये है।

**३६३. पशुकी दूसरी उत्पत्तियोंका दाम—राइट :** यह ४० करोड़ है जो सर अर्थरके आँके मूल्यके बहुत पास है। १,९०८ करोड़ रुपयेके बदले कुल रकम १,००० करोड़ रुपये थी। दोनोंके अंक अगल बगल करोड़ रुपयोंमें नीचे लिखे जाते हैं।

## आँकड़ा—२६

**३६४. ऑलवर और राइटके तखमीनेकी तुलना :**

| | ऑलवर | राइट |
|---|---|---|
| १. खेतीके लिये पशु-मजूरी | ६१२ करोड़ | ४०० करोड़ |
| २. खेती छोड़ दूसरी मजूरी | १६१ ” | — |
| ३. गव्य वस्तुएँ | ८१० ” | ३०० ” |
| ४. खाद | २७० ” | २७० ” |
| ५. दूसरे सामान | ५५ ” | ४० ” |
| कुल— | १,९०८ करोड़. | १,०१० करोड़ |

**३६५. राइटका दूधका मूल्य-निर्धारण :** डा० राइटने दूधका दाम ५) रु० मन लगाया है। शहरोंमें यह दाम बहुत ऊँचा है। पर कुल उपजका अंशमात्रही शहरोंमें खपता है। जिस मौसममें दूधकी बहुतायत होती है देहातोंमें उसका दाम दो पैसे सेर होता है। पर इसपर उत्पादनकी लागत कुछ नहीं है क्योंकि दूध केवल उपजात माना जाता है। सम्पूर्ण भारतमें गाय और भैंस दोनोंके दूधका तखमीना लगाया गया था और दोनों तरहके दूधके दामका औसत निकाला गया। अगर १) रु० प्रतिशत मक्खन के हिसाबसे दूधका दाम लगाया जाय तो गायके दूधका दाम ४) रु० होता है क्योंकि उसमें ४% मक्खन होता है। भैंसके दूधमें ६% मक्खन होता है इस लिये उसका दाम ६) रु० प्रति मन हुआ। दोनोंको मिलाकर डा० राइटने ५) रु० प्रति मन दाम रखा था।

गोबरके तखमीनेके बारेमें यह याद रखना चाहिये कि, यह उसकी गूढ़ शक्तिके मूल्यका तखमीना था। आजकल यह इंधनके रूपमें इतना अधिक जला दिया जाता है

कि उसका मूल्य २७० करोड़ रुपया नहीं भी कूत सकते हैं। पर उसकी खादके गूढ़ गुणका दाम बहुत संकोचके साथ २७० करोड़ रुपया लगाया गया है। डा० भोयेल्कर की रिपोर्टमें इसबारेमें हिसाब है कि ढोरकी दैनिक खाद-उत्पत्तिका मूल्य १ करोड़ और वार्षिक ३६० करोड़ रुपये कूतना चाहिये (३०)

सर अर्थर आॅल्वर और श्री वैद्यनाथन्ने पशुधनसे आर्थिक लाभको खेतीकी उपजके मूल्यके बराबर आँका है। पर डा० राइटने उसे आधा कर दिया है। यह आधा अर्थात् १ हजार करोड़ रुपया भी बड़ी रकम है। इसमें जरासी बुद्धिसे भी पशुपालन और गव्य-धन्धे में लगे मनुष्यकी रहन सुधरेगी।

**३६६. सौ सैकड़ा वृद्धि :** पर एक अंशकी नहीं, सौ सैकड़ा वृद्धि चाहिये। कुछही वर्ष में दूधकी उपज २½ गुनी हो सकती है और अकेले इसी मदसे ४५० करोड़ की वृद्धि हो जायेगी। खाली गोबरके बदले कंपोस्टिंग से खादका मूल्य दुगुना तो जरूर हो जायगा। कंपोस्टिंग से घरका सारा कूड़ा कचरा कीमती खाद बन जायगा। इस तरह २७० करोड़ रुपये आसानी से दुगुने हो जायेंगे। दूध-उत्पतिके बढ़े दाम ४५० करोड़में २७० करोड़ रुपया भी शामिल होंगे।

गोबर और कंपोस्ट खेत में डालने से फसल अधिक उपजेगी। इससे खेती सालमें एकसे अधिक बार हो सकेगी। इसके लिये खेतीमें पशुओंकी जादे जरूरत होगी। इसलिये डा० राइटके तखमीनेके ४०० करोड़ रुपयोंपर इसकी प्रतिक्रिया होगी और खेतीमें लगे पशु-विषयक अंकमें वृद्धि होगी।

डा० राइटने तेल-घानी आदि उद्योग धन्धोंमें लगे पशुओंका उत्पादन नहीं आँका था। आज भी बैलकी घानीसे बहुत जादे तेल पेरा जा रहा है। अगर तेलहनके चलानके बदले उसे पेर लिया जाय तो उसके लिये उतनी ही यांत्रिक शक्तिकी आवश्यकता होगी। सरकारकी उचित देखभाल और सहायतासे तेल पेरनेके लिये शक्तिकी यह बढ़ी जरूरत बैलोंके जिम्मे की जा सकती है।

इस तरह पशुपालनसे और १,००० करोड़ रुपयेका मुनाफा हो सकता है। और कुल जमा २,००० करोड़ तक बढ़ सकता है। आजकल की खेतीकी उपजके मुकाबिले इस अंकको रखनेका इरादा नहीं है। क्योंकि जिन कारणोंसे पशुपालनकी आमदनी दूनी होगी वही खेतीकी उपजको भी बहुत बढ़ावेंगे। अच्छी खादसे अच्छी फसल होगी। उसी जमीन पर अधिक बुवाई होनेसे अधिक जमीनकी उपजके बराबर उसकी उपज होगी। इससे खेतीकी उपजके अंक बढ़ेंगे। (३०२)

**भविष्य की पुकार :** करनेको बहुत है पर किया इतना कम गया है कि आँकड़े पशुपालनकी इच्छावालोंमें आशाका संचार कर सकते हैं और उन्हें इस उपेक्षित कामको संकल्पके साथ करनेकी प्रेरणा दे सकते हैं। भारतमें ऐसा कौनसा धन्धा है जो पशुपालन और खेतीके सम्मिलित अंकोंका मुकाबिला कर सके। इनकी विशालताके आगे दूसरे सभी धन्धे फीके पड़ जाते हैं। इन दो मूल धन्धोंकी उन्नतिकी अत्यावश्यकता है।

भारतमें आजभी जैसी उत्तम नस्लोंके ढोर हैं उनसे पशुपालनके उत्पादनोंका महत्व किसी दूसरे देशसे भारतमें अति अधिक हो सकता है।

# भारतमें गाय

## पहला खंड

## दूसरा भाग

### गायकी रक्षा कैसे की जाय

# दूसरा भाग

## गायकी रक्षा कैसे की जाय

### अध्यायोंकी सूची

# अध्याय ८

## पहली समस्या--खिलाना

**३६७. अवनतिके कारण :** अगरेजी राज होनेके बाद भारतमें पशुओंकी अवनति शुरू हुई। यह बताया जा चुका है कि, ग्राम-केन्द्रित सभ्यता मिट गयी और नयी शिक्षाके प्रचारने नये मूल्य निर्धारित किये तथा पुराना स्वाभाविक रहन-सहन नष्ट कर दिया। (१३—१७)। गायके छीजनेके कारण भी यही हो सकते हैं। छीजन जारी है। कारणोंकी वृद्धि हुई है और वह हैं—जन-वृद्धि और उसके कारण गोचरोंकी कमी, रुपयोंकी फसलका अतिशय बढ़ाया हुआ महत्व, ग्रामोद्योगोंका नाश, सस्ते रेल यातायातके द्वारा भैंसवाले प्रान्तोंके घी की मंडियोंसे चलानकी वृद्धिके कारण भैंसका बनावटी महत्व, शक्ति-चालित गाड़ियोंके कारण बैलोंके काममें कमी। गायके छीजनमें इन सबका हाथ रहा है और है। ग्रामभावनाके अभावने देहाती जीवनकी सबसे अधिक हानि की है। गायका छीजना भारतकी साधारण अस्वास्थ्यकर तथा अस्वाभाविक दशाका सिर्फ एक लक्षण है।

**३६८. जनसंख्या बढ़ी है—पशुसंख्या नहीं :** गायकी रक्षाके लिये उन बुराइयोंका निराकरण करना होगा जो इतने दिनोंसे अपना काम कर रही हैं। गायकी रक्षाका अर्थ राष्ट्रकी रक्षा है। इसके लिये यह महा कठिन और दुःसाध्य काम हाथमें लेनाही होगा।

पिछले २५ वर्षोंमें भारतकी जनवृद्धि तो हुई है पर दुधार और भारवाही ढोर जितनेके तितनेही रहे। यहभी एक दिक करनेवाला चिन्ताका कारण है। गायकी औसत उमर ५ या ६ वर्ष आँकी गयी है। कोई कारण नहीं कि वह १० वर्ष क्यों न हो। गायकी जो विनाशकारी छीजन या अवनति हो रही है उससे उसे बचाना होगा। अगर यह नहीं किया जायगा तो सारे सामाजिक

ढाँचेको खतरा है। यदि गाय मरती है तो सभी भारतवासी मरते हैं। दोनोंका अविच्छिन्न संबन्ध है। पच्छिमके संसर्गसे जीवनके नये मूल्योंकी चकाचौंधमें असली मूल बातोंकी उपेक्षा की गयी और उन्हें तुच्छ बना दिया है। छीजन बहुत दूर तक फैल गया है। ऊपर ऊपर देखनेवालेको भी इसके परिणाम, दुष्पोषण, गन्दगी, रोग और मृत्यु के रूपमें दिखायी देते हैं।

**३६९. भूतकालके संवर्धकोंका प्रजनन-ज्ञान :** इसमें सन्देह नहीं कि, भारतमें ढोर-संवर्धन बहुत विकसित अवस्थामें था। आधुनिक खोजोंसे यह सिद्ध हो चुका है। प्रजनन-शास्त्रका ज्ञान नहीं था। पर भारतमें प्रजनन क्रियायें शास्त्रीय थीं। आजकल प्रजनन-शास्त्र जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन कर रहे हैं उन्हें संवर्धक लोग अपने संचित व्यावहारिक अनुभवसे जानते थे। जिन जातियोंने भारतीय गायोंको श्रेष्ठ बनाया वह वेगसे मिट रही हैं। अनेक स्थानोंमें लोगोंकी मनोवृत्ति गाय और श्रेष्ठ संवर्धनकी ओरसे फिर गयी है। इस कारण वह लोग (संवर्धक) निर्मूल हो गये। पहलेके धनी लोग यत्नसे ऊँचे दर्जेके ढोरोंका संवर्धन ओर पालन करते थे। उन ढोरोंका उन्हें गौरव था और वह लोग विधिवत् पशु-संवर्धनमें सहायता देते थे। पर अब समय बदल गया है।

सर अर्थर ऑलवरने पुराने संवर्धकोंकी प्रशंसा इस तरह की है :

"कांकरेज, कंगायम् और अंगोल जैसी उच्चकोटि की शुद्ध नसलें विशेष सावधानीसे बहुत दिनोंकी अनवरत संवर्धन क्रिया द्वारा बनायी गयी होंगी और यह काम एकके बाद दूसरी पीढ़ीमें चलता रहा होगा यह साफ है।" (११, १५४, १७५, १८७)

**३७०. प्रजनन-शास्त्र केवल प्रयोगसे नहीं सीखा जा सकता :** "ऐसे कामके लिये काफी समय और व्यावहारिक अनुभव चाहिये। प्रयोगसे प्राप्त परिणामोंकी व्याख्या करनेमें ये अध्ययन भलेही बहुत मूल्यवान् और उपयोगी हों, इन्हें छोटे प्राणी और पौधोंपर केवल प्रजनन-शास्त्रके प्रयोगयुक्त अध्ययनके द्वारा नहीं सीखा जा सकता।

"प्रजननके कारणोंका देरसे ब्यानेवाले और कीमती जानवरोंपर प्रयोग करनेमें समय और धनकी जरूरत है। इसलिये बड़े पालतू पशुधन की उन्नतिका आधार सदाके प्रसिद्ध संवर्धकोंकी क्रियायेंही रहेंगी। ये क्रियायें अब परम्परागत हो गयी हैं। इनकी खूबियोंकी प्रशंसा वही कर सकते हैं जिन्हें संवर्धनकी स्वाभाविक परख

है और व्यवहारिक अनुभवसे ढोरके बारेमें गहरा ज्ञान प्राप्त हो चुका है।" (११, १४४, १७५, १८७)

**३७१. भारतीय संवर्धक मूल सिद्धान्त जानते थे :** "ऐसे समान परिणाम पैदा कर सकनेवाले संवर्धक, बड़े पालतू जानवरोंके संवर्धनके मूल सिद्धान्त जानते थे यह तो स्पष्ट है। वह लोग संवर्धनके पशुओंका वरण करनेमें नसूलोंके परम्परागत लक्षणोंका आज भी सावधानीसे जैसा विचार करते हैं इससे यह निःसन्देह साबित होता है कि संवर्धक लोग, खासकर वह पेशेवर संवर्धक जो बड़े गोचरवाले इलाकेमें यथेष्ट ठट्ठ पालते और उन्हें विजातीय रक्त मिश्रणसे बचाते हैं आजभी उस ज्ञानसे अच्छी तरह कायल रहे हैं और उसे खूब अच्छी तरह काममें ला रहे हैं।"—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, जनवरी, १९३१)

ढोर संवर्धकोंकी यह चतुर जातियाँ मिटती जा रही हैं। अर्थर ऑल्वरने ऊपर उद्धृत बात जब लिखी थी तबसे हालत और भी बिगड़ी है।

यह सही है कि ढोर-संवर्धन बहुत विकशित अवस्थामें था। गाँववाले सुप्रसिद्ध और सुपरिचित संवर्धकोंकी क्रिया का आदर्श ग्रहण करते थे। सब जगह उन्नतिकी एक लहर चल रही थी। इस देशमें प्रत्येक किसान पशु-संवर्धक है। यह उसे जरूरतके मारे होना पड़ता है। यद्यपि पेशेवाले लोग इसमें निपुण थे फिरभी संवर्धन कलाका ज्ञान भारतमें सब जगह था। (११, १४४, १७५, १८७, ३७२)

**३७२. गायकी उपेक्षा :** आज वह सारी बातें बीत चुकीं। गायकी उपेक्षाका भाव सारे देशमें फैल गया है। इस संकटको पैदा करने में दूधके लिये भैंस पालनेका हाथ कम नहीं है। गायकी उपेक्षा सब तरफ हो रही है और भैंसको सब तरफ सँभाल। पर जो लोग अच्छा संवर्धन करना चाहते हैं वह अपनी गायकी भरसक सँभाल करते हैं। कंगायमूके संवर्धक इसके प्रमाण हैं। वहाँ साधारण तौरपर गायको हटाते नहीं हैं। नेल्लूरके मालालोग अंगोल बछियोंकी सँभाल करना जानते हैं। क्योंकि अच्छी दुधार बछिया पालना उनकी जीविका है। फिरभी साधारण तौरपर साँढ़ और बैलोंकी जननी गायकी उपेक्षा की जाती है। भारतके सातों अंचलोंमें जहाँ सन् १९३७ में जाँच की गयी थी, गायको काम करनेवाले ढोरका जूठन ही खिलाया जाता है। गाय और बछिया जो कुछ चर सके उसीपर गुजारा करनेके लिये छोड़ दी जाती हैं। कभी कभी उनके आगे अन्नकी डाँटेंभी फेंक दी जाती हैं। पंजाब, युक्तप्रान्त, बंबई, मदरास, मध्यप्रान्त और

सीमाप्रान्त का वही दुखद हाल है। शाही कमीशनने भी गायके साथ अनुचित व्यवहार होते देखा था।

"...पर जब आवश्यक सतर्कतासे गणनाके अंक देखे गये तो उनसेभी वही बात साबित हुई जो हमलोगोंने सारे भारतमें गवाहीमें सुनी थी कि, सभी ढोरोंमें बिसुकी गाय सबसे अधिक उपेक्षित है...।"—(पृ० १८३)

"...गायके साथके सलूकका लम्बा चौड़ा बखान करनेकी जरूरत नहीं। साधारण तौरपर यह कहना सही है कि, भारवाहो ढोरको खिलानेके बाद अगर कुछ चारा रहा तो वह उसे दिया जाता है या उसके साथ छोटे मालका भी बाँटा जाता है। नहीं तो जहाँसे चाहे अपना आहार पानेके लिये उसे छोड़ देते हैं। जहाँ गाय गृहस्थीके लिये कुछ दूध देती और अपने बछड़ेकोभी पिलाती है वहाँ किसान उसेभी दो से तीन रत्तल तक बिनौला और चोकर या खली अथवा दलहन देनेकी कोशिश करते हैं। पर दूध बन्द हो जानेपर उसका यह चारा रोक दिया जाता है। फिर उसे 'चर' कर अपना गुजारा करनेको छोड़देते हैं ..."

"गायसे बढ़कर भैंस भारतमें दुधार जानवर है ...अनेक स्थानों में उसके साथ जो सलूक होता है वह गायसे बहुत भिन्न है। घरकी औरतें उसकी सेवा सँभाल बहुत करती हैं। उसके सवर्धनमें प्रायः वरण पद्धतिसे काम लिया जाता है ..." —(पृ० १९६)

ऐसे सलूकसे गो जातिकी अवनति हो रही है इसमें अचरजकी कोई बात नहीं। (२१६, २३६, २५७, २७८, ३०३, ३७१-'७६)

**३७३. स्त्रियोंकी उपेक्षा :** सात संवर्धन अञ्चलकी जाँचकी रिपोर्टमें मनुष्य और गाय दोनोंकी स्त्रियोंकी उपेक्षाकी एक और दुखदायी बात बतायी गयी है। इसबार मनुष्यकी स्त्रियोंकी उपेक्षाका हाल है। सुस्थ बनाये रखनेके लिये दूध बड़ी चीज है। अपने पोषक ताप-गुणके अलावे वह भिटामिन देनेवाली मुख्य वस्तु है। वह अनमोल आहार है। वह इतने महत्वका आहार है इसलिये परिवारमें उसके उपयोगमें पक्षपात होना बहुत खलता है। पर होता यही है। इस रिपोर्टके उपसंहारमें लिखा है: "दूधकी खपतका विश्लेषण करने पर पता चलता है कि, परिवारके पुरुषोंको स्त्रियोंसे अधिक दूध मिलता है।" (२१६, २३६, २५७, २७८, ३०३, ३७२)

# आँकड़ा—२७

३७४. **प्रति दिन प्रति मनुष्य गव्योंकी खपत, आउन्समें :**

| दूध | मन्टगुमरी | हरियाना | कोसी युक्तप्रान्त | बिहार | मध्यप्रान्त | काँकरेज बंबई | अंगोल मदरास | भारतके सात संवर्धन अंचल | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सयाने (पुरुष) | ८'१७ | ९'३६ | ९'४० | ६'९० | ३'५१ | ७'२० | ०'८७ | ६'६३ | सयाने (पुरुष) |
| सयानी (स्त्रियाँ) | ४'८८ | ५'९६ | ४'३० | १'४० | १'५२ | ४'४५ | ०'५१ | ३'३४ | सयानी (स्त्रियाँ) |
| लड़के | ६'४८ | ४'७३ | ७'३० | ८'१० | ४'२१ | ६'९० | २'०० | ५'८२ | लड़के |
| लड़कियाँ | ४'३४ | ३'५७ | ४'३० | ३'१० | ३'२४ | ६'०० | १'९० | ३'७७ | लड़कियाँ |
| शिशु (पुरुष) | ३'०८ | १'४९ | ४'१० | ५'६० | २'६७ | ३'८० | ६'३० | ३'७७ | शिशु (पुरुष) |
| शिशु (स्त्रियाँ) | २'२१ | ०'९८ | २'४० | २'८० | १'६३ | ३'६० | ६'१० | २'५३ | शिशु (स्त्रियाँ) |
| प्रति मनुष्य | ६'१४ | ६'७६ | ६'९० | ४'८० | २'७९ | ५'९६ | १'३६ | ५'०५ | प्रति मनुष्य |
| घी | ०'०५ | ०'००२ | ०'०८ | ०'०४ | ०'१९ | ०'३५ | ०'२८ | ०'१३ | घी |
| मक्खन | ०'६७ | ०'३६ | ०'०५ | - | - | - | - | ०'१७ | मक्खन |
| दही | ०'३२ | ०'३६ | ०'०२ | ०'१० | ०'५३ | ०'०२ | २'१० | ०'२२ | दही |
| दुद्धी | १२'६१ | १६'८० | ८'२० | ०'६० | १'३० | ४'०६ | १६'९० | ८'७५ | दुद्धी |
| कुल गव्य | १५'५३ | १२'३९ | ९'७१ | ५'५१ | ६'७३ | १२'०७ | ८'७३ | १०'१६ | कुल गव्य |

—(सात संवर्धन अंचलकी रिपोर्ट, पृ० १२) (२१६, २३६, २५७, २७८, ३०३, ३७२)

३९५. **स्त्रियों और गायोंको कम नहीं मानना चाहिये :** स्त्रियोंको पोषकताप कम चाहिये सिर्फ इसलिये यह भेद नहीं किया जाता है। क्योंकि लड़कों और शिशुओंमें भी यह भेद उसी तरह रखा जाता है। पुरुषको विशेषता दी जाती है और स्त्रीमें कमी की जाती है। मनुष्य परिवारमें माँ बाँटनेवाली होती है और इसलिये यह स्वाभाविक है कि वह कमानेवाले पुरुष और काम करनेवाले लड़केको कुछ अधिक दे दे। यह बात समझमें आ सकती है। पर शिशुओं तक में यह भेदभाव रखा गया है। यह एक सामाजिक बुराई है। मर्द इसकी पर्वाह कुछ नहीं कर रहे हैं। पर अब तो जांचने यह बात खोज निकाली है। इसलिये इस बुराई का सामना करना ही होगा और स्त्रियों तथा गायोंके साथ कटौती नहीं करनी होगी। आजकल तो यही होता है। इसका परिणाम वही बुरा चक्कर होगा जिसे दूसरे अनेक मामलोंमें कष्टकर मानते हैं। कमजोर जननी की सतान कमजोर होगी और उसकी सतान और भी कमजोर। इस बातका भंडाफोड़ होना चाहिये और इस बुराईको समूल नष्ट करना चाहिये। अगर किसीको अच्छी सँभाल, परिचर्या और पालनकी जरूरत है तो वह जननी और भावी जननी ही है। उसके स्वास्थ्यपर सारे परिवारका और इस तरह सारे राष्ट्रका स्वास्थ्य निर्भर है।

भैंस कमाऊ जीव है इसलिये उसके साथ कमाऊ मर्दसा सलूक किया जाता है। यह बात आसानीसे समझमें आ जाती है। पर यदि किसानके बैलका अधिकाधिक ह्रास होता रहे तो क्या उस हालतमें भैंस उसके परिवारका पालन कर सकेगी? भैंसा खेतीमें बहुत उपयोगी नहीं है। दूध उत्पादनमें उसके बिना कोई हर्ज नहीं होता। इसलिये उसे मरने दिया जा सकता है। यह दूधके लिये भैंस पालनेमें और एक लालच है। (२१६, २३६, २५७, २७८, ३०३, ३७२)

३७६. **भैंस और गायकी एकसी सँभाल करिये :** गायकी रक्षाके लिये इस अन्यायका निराकरण करना होगा। गायके खिलानेमें भी जादे नहीं तो कमसे कम भैंसके बराबर ही ध्यान देना होगा। अंतमें इसका फल कई गुना मिलना जरूरी है। गायकी छीजन रोकने की राहमें यह एक डेग आगे बढ़ना है। यह कहा जा सकता है कि किसान इतना गरीब है कि गायको नहीं खिला सकता। यह सच है। खिलानेका उपाय निकालना चाहिये। पर पहले तो मनोवृत्ति बदलनेकी जरूरत है। क्योंकि मनोवृत्ति बदले बिना आजकी हालतमें जो अतिरिक्त प्रबंध किया जायगा वह भैंसके लिये होगा और गाय सदाकी तरह भूखी ही रहेगी।

अपनी रक्षाके लिये किसान गायको अच्छी तरह खिलावे, इस मनोवृत्तिका विकास करना होगा। सारे भारतमें गायकी उपेक्षा दूर करनी होगी इसमें सन्देह नहीं। भारवहनके लिये बैल और दूधके लिये भैंस इस सरकार प्रवर्तित मतवादका विरोध कर उसे दफना देना है।

काम और दूधके पशुका यह भेद हानिकारक है। यह आसानीसे गायकी उपेक्षाकी ओर ले जाता है। क्योंकि गाय भारवाही पशु नहीं है और आजकलकी विचारधाराके अनुसार वह दुधार भी नहीं है या यों कहें कि होना नहीं चाहिये। उसके कम दूध होनेका मुख्य कारण उपेक्षा है। पर शरीर-रचनाके हिसाबसे भी उसके दूधमें भैंससे कम मक्खन है। दूधमें मक्खन होनेके गुण पर जरूरतसे जादे जोर दिया गया है। ज्योंही दूधसे मक्खन बिलोड़ (मथ) लिया जाता है उसकी जात चली जाती है और वह अछूत हो जाता है। दुद्धीकी जनता और कानूनकी निगाहमें कोई कीमत नहीं। दुद्धीसे बना छेना यदि कलकत्तेमें दुद्धीका छेना कहकर कोई बेचे तो उसे सजा हो सकती है। यद्यपि दुद्धीका पोषक गुण पूर्ण दूधका कमसे कम ५०% है तोभी उसे कानूनी आधार कुछ नहीं है। दूध-नियंत्रणका गव्य व्यवसायके सिलसिलेमें विचार होगा। (१०६-' २७, २१६, २३६, २५७, २७८, ३०३, ३७२)

**३७७. गायका दूध भैंसके दूधसे अच्छा है :** हमलोग अपने विषयपर आवें। गायके दूधमें भैंससे कम मक्खन होता है। अगर इसे गायकी कमी मानी जाय तो इस कमीको सह लेना होगा। पर यह कोई कमी नहीं है। गायके दूधमें भैंससे कम मक्खन है तो भी गायका दूध उससे अच्छा है। भैंसके पूर्ण दूधकी तुलनामें यह बच्चों और निर्बलोंके लिये अधिक अनुकूल है। पर भैंसका दूध जैसा होना चाहिये बाजारमें शायदही मिलता है। भैंसके सभी दूधमें पानी मिलाकर उसे शुद्ध दूध, 'फेंटा हुआ' दूध या गायका दूध कहकर बेचा जाता है।

इस भ्रान्त मूल्य-निर्धारण और भैंसके दूधमें मिलावटके आधारपर गायकी उपेक्षा बन्द होनी चाहिये। भैंसके दूधमें मिलावट करने और गायका कहकर बेचने के खिलाफ कानून बननेसे भैंसको दुधार होनेकी जो तरजीह या प्रधानता दी जाती है वह बहुत अंशमें कम हो जायगी। (१०६-'२७, ५२०)

**३७८. भैंसकी समस्या बंगालमें नहीं है :** जहाँ ऐसी होड़ है वहाँ गायको इससे बचाना चाहिये इसमें जरा भी सन्देह नहीं। पर ऐसे भी स्थान हैं,

जैसे बंगालके देहात, जहाँ केवल गाय ही दुधार पशु है। पर वहाँ भी बैल और गायमें बहुत भेद किया जाता है। यह प्रत्यक्ष है। जहाँ भैंस जादे हैं वहाँ से किसी तरह यह भेदभाव यहाँ कम नहीं हैं। संवर्धक किसानके अपने हितके लिये ही बैलकी तुलनामें गायको कम मानना बन्द होना ही चाहिये। अगर गायको अच्छी तरह खिलाया जायगा तो उससे अच्छे बैल पैदा होंगे और वह दूध भी जादे देगी।

ढोर-संवर्धनकी सारी इमारतकी नीव जननीकी देह है—यह महत्वकी कहावत् है। इसलिये गायको उचित रूपसे खिलाना चाहिये जिससे वह बलिष्ठ और अच्छे साँढ़ तथा बैल जन सके और पालककी अधिक दूध दे सके। (१०६-'२७, ३४७)

**३७९. अच्छे सलूकका गाय प्रतिदान देगी :** गाय चाहे मानी हुई नस्लकी हो अथवा अज्ञात कुलकी इससे कुछ मतलब नहीं। उसे खिलाओ और वह पहले से बहुत अच्छी हो जायगी। क्योंकि गाय सचमुच ऐसा पशु है जिसपर सलूकका ठीक असर होता है। कुछ हालतों में भलेही वह स्वयं अधिक दूध देनेमें असमर्थ हो। जन्मसे ही और पोषण कालमें उसे जैसी कठिनाई झेलनी पड़ी है उससे उसकी देह पर ऐसा बुरा असर हुआ है कि, अच्छा खिलानेपर भी वह अधिक दुधार नहीं बन सकती। पर अच्छा खिलानेसे होनेवाले बछरूको बढ़नेका अच्छा मौका मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि उपेक्षित माँसे अच्छी सँभालवाली माँकी संतान अच्छी गाय, साँढ़ या बैल बनेगी। (२२, १२७)

**३८०. आर्थिक पशुके रूपमें गाय :** गायको शुद्ध आर्थिक पशुके रूपमें देखने पर उसकी दो अवस्थायें दिखाई पड़ती हैं। एक तो वह दुधार पशुओंके रूपमें पालकको स्वास्थ्य या धन देती है। और दूसरे वह जननी है। प्रौढ़ होनेपर जितनी जल्दी वह ब्याना शुरू करे उतनाही उसका आर्थिक महत्व बढ़ जाता है। और उसके बाद जितनी जल्दी जल्दी ब्याती है उतनाही अधिकाधिक लाभ उससे होता है।

साधारण कम खिलायी गायसे गोपालन शुरू करनेमें कम आर्थिक लाभ पाया गया है। यह स्वतः प्रमाण बात है कि गाय जब पहले अपनेको सँभाल लेती है तभी वह आर्थिक उपयोगमें आती है। मामूली देहाती गाय खुद कठिनाईसे जी रही है। ऐसी हालतमें उससे अर्थलाभ कम होगा ही। दूसरे शब्दोंमें (१) आशु प्रौढ़ता, (२) दो ब्यान के बीचके समयमें कमी, (३) दूध-उत्पादन, यह सब गायको आर्थिक दृष्टिसे अधिकाधिक मूल्यवान् बनाते हैं। पर यदि वह जैसे तैसे जी रही है तो इन सभी बातोंमें कमी आ जाती है। प्रकृतिही उससे यह कराती है।

पूरा आहार नहीं मिलनेसे वह देरसे गरम होगी। अगर वह छोटी उमरमें गरम हो और गाभिन हो जाय तो प्रसव-वेदनासे वह मर जायगी। ऐसी दुर्घटनासे प्रकृति उसकी रक्षा करती है। प्रकृति उसे गरम होनेकी प्रेरणाही नहीं करती। वह हर साल अपना आहार ग्रहण करती जाती है और चौथे या पांचवें वर्षमें जननी-धर्मका पालन करनेके लिये गरम होती है। चाहे वह गरम हो या न हो फिरभी उसे किसी तरह जीती रखनेमें उसके मालिक को कुछ लाभ नहीं होता। साधारण अवस्थामें गाय दो वर्ष दो महीने में गरम होती है। पर अगर उसका गरम होना दो वर्ष टल जाय तो वह इन दो वर्षोंमें अतिरिक्त चारा खायेगी। इन निष्फल दो वर्षों में उसने जो खाया है वह यदि शुरूमें ही उसे खिला दिया जाता तो वह जल्दी ब्याती। और उस अतिरिक्त आहारसे अधिक ही वह दे देती। इस सलूकसे गाय और उसके मालिक दोनोंकी हानि होती है। गाय कष्ट पाती है। इससे उसके मालिकको अतिरिक्त हानि होती है। बांझ गाय संवर्धक की बोझ है, यद्यपि प्रौढ़तामें देर होनेसे वह मेहनतसे बच जाती और अपने प्राणकी रक्षा करती है। (२२)

**३८१. भूखा गायमें आर्थिक गुणों की कमी :** जिस गायको अपनी जीविका खोजनी होती या अस्तित्वके लिये संग्राम करना होता है उसमें आर्थिक गुणकी कमी होना अनिवार्य है।

इस सवालको उसके प्रकार (वर्ग) या नस्लसे कुछ लेना देना नहीं है। वह अच्छे नस्लकी या अज्ञात कुलकी भी हो सकती है। पर नियम सब पर लागू है। अज्ञात कुलकी अस्पष्ट नस्लवाली अच्छी तरह खिलायी पिलायी गाय अपने इलाकेकी अन्य खिलायी पिलायी गायोंकी तरह स्वाभाविक समय पर गरम हो जायगी। भले ही वह समय ३ या ४ वर्ष हो। कम खिलाई से उसे गरम होनेमें देर लगती है और अपने वंश तथा स्थानके स्वाभाविक ब्यानके समयको वह पार कर जाती है। उसी तरहसे ब्यानके बीचके समय और दूधकी उत्पत्तिमें भी गड़बड़ी होती है।

यदि वह कम दुधार जातिकी है तो कम खिलायीसे उसका दूध और भी कम होगा। और यदि वह २ वर्ष पर ब्यानेवाली जातिको है तो अपनी जान बचानेके लिये वह ३ वर्ष पर ब्यायेगी। ऐसी अवस्थामें गाय या उसके वंशको दोष देना अच्छा नहीं है। यह सब शरीर-क्रिया-शास्त्रके नियम हैं। इनके अधीन वह है ही।

जीवन-संग्रामके कारण अपनी रहन सहन या संभालकी प्रतिकूलताके अनुपातमें यदि गायकी आर्थिक योग्यता कम हो जाये तो उसकी रहनसहन या सँभाल बदल

देनेसे उसकी आर्थिक योग्यतामें—आशु-प्रौढ़ता, ब्यानेके बीचके समयकी कमी, और अधिक दूध उत्पादनमें—बढ़ती होना स्वाभाविक है। (२२)

३८२. **सर्फ खादके लिये पालित घटिया ढोरकी उन्नति :** देशके बहुत बड़े भागमें किसान सिर्फ गोबरके लिये ढोरके बड़े बड़े ठट्ठ पालते हैं। न उन्हें अच्छी तरह खिलाया जाता है और न सँभाल की जाती है। जब खेतोंमें फसल नहीं होती, उन्हें छोड़ देते हैं कि वह जो पा सकें टूँगें या परतीमें डोलें। उनके संवर्धन पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। किसी उमरका कोई घटिया साँढ़ उन्हें फला देता है जिससे छीन और दुर्बल संतान पैदा होती है। ढोर रातके समय बाड़ोंमें बन्द कर दिये जाते हैं जिससे उनका गोबर जमा किया जा सके। उन्हें यथेष्ट चारा कभी नहीं मिलता और घरपर भी उन्हें कुछ नहीं दिया जाता। वह सदा भूखे रखे जाते हैं। बछड़ा जब हलके लायक होता है तब उसे बधिया कर देते और खेतीका काम लेते हैं। बाकी पशु बुरी तरह जीते हैं। महामारी और साधारण बीमारीमें ये बहुत मरते हैं। इसका नाम गोरक्षा या गोपालन नहीं है। इस निरंतर की भुखमरी और दुखमय जीवनसे गोवध कहीं अच्छा है। इसे रोकनेके लिये प्रयत्न आवश्यक है। यह रीतिं दंडनीय है। जिस खादके लिये यह सब किया जाता है उसकी भी हिफाजत नहीं होती। कुछ गोबरकी ढेर लगादी जाती है, जहाँ वह वर्षामें घुलकर बह जाता और कड़ी धूपमें जल जाता है। गोमूत्रको जमा करनेकी न कोई व्यवस्था है न प्रयत्न, इससे वह बर्बाद होता है।

यदि उचित व्यवस्था हो तो इनमेंसे अनेक पशुओंको गाँवके आर्थिक व्यवस्थामें स्थान हो सकता है। किसान केवल उन्हीं पशुओंको रक्खे जिन्हें वह ठीक तरहसे सँभाल सकता और खिला सकता है। ठट्ठमें एक अच्छा साँढ़ जरूर हो। सभी खाद विधिवत् जमाकर खेतमें डाली जाय। अच्छी तरह खिलायी और सँभालवाली कुछही गायोंका गोबर यदि उचित रीतिसे काममें लाया जाय तो बड़े ठट्ठमें जितना होता है सदा उससे मात्रामें अधिक और गुणयुक्त होगा। अनुत्पादक पशुओंको संतान पैदा नहीं करने देना चाहिये। इस बातपर ध्यान रखना चाहिये कि बिना आमदनीवाला कोई पशु ठट्ठमें पैदा न हो। क्योंकि यदि ऐसा पशु पैदा न होगा तो कभी मारा नहीं जायगा।

इससे किसानको उसकी जरूरतकी खादही नहीं मिलेगी पर खेतीके लिये अच्छे और अधिक बैल तथा घर और बाजारके लिये घी दूधभी मिलेंगे।

अनुभवसे देखा गया है कि, गाँवके गायोंको जब अच्छी तरह खिलाया जाता और देखभाल की जाती है तब वह केवल अधिक और अच्छा दूध तथा मजबूत बछड़े ही नहीं देतीं पर जल्दी जवान होती और नियमसे ब्याती हैं। इस तरह वह भार बननेके बदले "कामधेनु" बन जाती हैं। (२२)

**३८३. गायको भूखी मत रखिये :** पर यदि गायकी शरीर-रचना उसके प्रतिकूल हो गयी है तो अबभी सवर्धक उसकी सँभाल करें जिससे उसके गर्भकी संतानकी शरीर-रचना ऐसी हो कि वह अपनी माँसे अधिक गुणवाली हो सके। शरीर-रचना प्रसवसे पहलेही शुरू हो जाती है। इसलिये गर्भाधानके बाद जितनी जल्दी हो सँभाल शुरू हो जाना चाहिये। इससे माँसे अच्छी संतान पैदा होगी। इस दृष्टिकोणसे यह कहा जा सकता है कि आरंभ करनेका मुद्दा माँ नहीं, गर्भस्थ बछरू है।

ऊपर रहनसहनके जिस वातावरणका बखान है उसमें जलवायुकी प्रतिकूलता, रोग फैलना, परोपजीवी, किलौरी (ticks), दुष्पोषण, गुण और मात्रामें चारेकी कमी आदि हैं। चतुराईसे प्रबन्ध करनेपर इन त्रुटियोंका बहुत मात्रामें सुधार हो सकता है। (२२)

**३८४. सुन्दर भविष्यके लिये बछरूकी सँभाल :** साधारण तौरपर होता यह है कि, अलाभकर घटिया पशुसे लाभ लेनेके लिये मालिक बछरूको कमसे कम दूधपर जीता रखनेकी कलाका आविष्कार करते हैं, उनको सँभाल नहीं करते। शहरोंमें जहाँ पालनका व्यय अधिक है, यह भावना औरभी अधिक है। इसका परिणाम बछरुओंकी ऊँची मृत्यु संख्या है। जो बछरू इस अग्नि-परीक्षासे निकल आते हैं उनकी बाढ़ रुक जाती है। उनका भविष्य शून्यवत् हो जाता है। बछरूकी सँभालमें उन्हें काफी दूध और बादको दुद्धी देना भी है। कुछ दिनोंतक बछरू दूधके सिवा और कुछ नहीं पचा सकते। जन्मतेही उनका पेट घास आदि पचाने लायक नहीं होता। कुछ दिनोंतक उसे दूध पिलाकर पालना होता है और जैसे जैसे उमर बढ़े साथमें कुछ माँड़ देना चाहिये। बछरू उचित पोषण पा रहा है इसकी जाँच उसकी तौलकी बढ़तीसे होती है। हरेक प्राणीका समय निश्चित है जिसमें वह जन्मके समय की तौलसे दूना होता है। (२२)

३८५. नवजातकी तौल दूनी होनेके दिन :

## आँकड़ा—२८

### विभिन्न जीवोंके नवजातोंकी वृद्धि

| | | नवजातकी तौल दूनी होनेका दिन | | दूधमें प्रोटीन की मात्रा |
|---|---|---|---|---|
| मनुष्य | ... | १८० | ... | १·६ |
| घोड़ा | ... | ६० | ... | २·० |
| गाय | ... | ४७ | ... | ३·५ (यूरोपी) |
| बकरी | ... | २२ | ... | ४·३ |
| भेड़ | ... | १५ | ... | ६·५ |
| सूअर | ... | १४ | ... | ६·७ |
| कुत्ता | ... | ९ | ... | ७·१ |

आँकड़ा देखनेसे पता चलता है कि माँके दूधमें प्रोटीनकी मात्रापर ही बढ़ती निर्भर है। युरोपी गायके बछड़े ४७ दिनमें दूने तौलके हो जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहें तो यदि कोई बछरू जन्मके दिन ४० रत्तल है तो प्रायः सात सप्ताहमें उसकी तौलमें और ४० रत्तल बढ़ जायेंगे। अथवा प्रति सप्ताह बढ़ती प्रायः ६ रत्तल होगी। पहले साल हरियाना गायकी प्रति सप्ताहकी बढ़ती ८ रत्तल है। इसका कारण शायद यह है कि भारतीय गायोंके दूधमें ५% मक्खन होता है और यूरोपीके ३·५%। बछरूकी जन्मकालकी तौल, नसल और माँकी शरीर रचनाके हिसाबसे अलग अलग होती है। पर संवर्धकको यह देखना चाहिये कि बछरू आँकड़ेकी तौलके अनुसार बढ़ रहा है। यदि बछरू जन्मके समय बहुतही दुबला है तो प्रारंभिक कमी पूरी करनेके लिये बढ़ती अनुपातसे अधिक होगी।

# अध्याय ९

## चारेकी कमी पूरी करना

३८६. **चारेकी कमी :** गायोंको जितना पोषण चाहिये उसका कुछ अंशभी नहीं दिया जाता और कमाऊ पशुओंको भी उचित रीतिसे नहीं खिलाया जाता है। चारेकी कमी के कारण यह होता है। बरसातमें कुछ जगह अच्छी पुरी बहुत घासें उग आती हैं। अगर इन्हें सुखाकर रख लिया जाय तो इससे चारेकी कमी कुछ हद तक पूरी होगी। पर दुर्भाग्यसे यह हो नहीं सकता। क्योंकि, जब घास खूब बढ़ी रहती है तब बरसातके कारण वह सुखायी नहीं जा सकती। और जब बरसात थम जाती है तब घास घटिया हो जाती है और ढोरको कम रुचिकर होती है।

राइटकी रिपोर्टमें मिलनेवाले चारोंका एक आँकड़ा है। उससे सवाल पैदा होता है कि, चारेकी इतनी कमी होनेके कारण ढोरोंको खिलाया क्या जाय? (२१, ३६१, ५६१)

३८७. **मिलनेवाले चारोंका राइटका आँकड़ा :**

### आँकड़ा—२६

मिलनेवाला कुल चारा

| चारे | कितनी मात्रामें मिलता है (१,००० टन में) | पचने लायक कुल पोषक (१,००० टन में) | पोषक गुणका अनुपात |
|---|---|---|---|
| सूखा चारा | १,११,००० | ३६,४८० | १ : ३६·० |
| हरा चारा | १,००,००० | ११,५६२ | १ : १०·६ |
| पौष्टिक | १,५०० | १,१६३ | १ : १·६ |
| बिनौला | २,३०० | १,८१८ | १ : ५·१ |
| कुल— | २,१४,८०० | ५१,०२३ | १ : १७·५ |

ब्रिटिश भारतकी साढ़े इक्कीस करोड़ गाय-भैंस और भेड़-बकरियोंके लिये साढ़े इक्कीस करोड़ टन चारा, एक पशु पर वर्षमें १ टन पड़ा। या वह प्रति मास २$\frac{3}{4}$ मन अथवा प्रति दिन प्रति पशु ३ सेर हुआ। इसमें लगभग आधा हरा चारा है। यह दैनिक खुराक यदि सुखा दी जाय तो प्रति पशु २ सेर ही रह जायगी।

बंगालकी सबसे छोटी गायको भी प्रति दिन चार सेर सूखा चारा चाहिये। बैल और भैंस इससे बहुत जादे मात्रामें खा जाते हैं। इनमें यदि भेड़ बकरियों को भी शामिल किया जाय तो इनमेंसे हर उमरकी सात एक ढोरके बराबर मानी गयी हैं। (२१, ५६१)

**३८८. चारेकी कमीका डा० केहरका आँकड़ा :** इंपीरियल भेटेरिनरी रिसर्च इंस्टीट्यूटके रिसर्च अफसर डा० केहरने भारतकी चारेकी कुल कमी आँकी है। (पशु पालन शाखाकी चौथी मिटिंगकी रिपोर्ट, सन् १९४०, पृ० १९७)

# आँकड़ा—३०

## प्रति ढोर प्राप्य चारा

| | भारतमें प्राप्य टनमें | २१ करोड़ ४० लाख ढोरके लिये प्रति दिन प्रति ढोर प्राप्य | | ५०० रत्तल तौलके पशुकी मामूली जरूरत |
|---|---|---|---|---|
| कुल पचनीय पोषक | ५,१०,१३,००० | १·४५६ रत्तल | | ९·९ रत्तल |
| कुल पचनीय क्रूड प्रोटीन | २७,६३,००० | ०·०७९ रत्तल | | ०·३ रत्तल |
| **सूखे पदार्थ :** | | | | |
| सूखा चारा | ११,१०,००,००० | ३·१७ | ३·८३ | १०-११ रत्तल |
| हरा चारा | १०,००,००,००० | ०·५५ | | |
| पौष्टिक | ३८,००,००० | ०·११ | | |

इस आँकड़ेसे कमी साफ मालूम होगी। जितना चाहिये उसके आधेसे भी कम चारा मिलता है।

शाही कमीशनने अपनी रिपोर्टके परिशिष्टमें एक आँकड़ा दिया है। इसमें ब्रिटिश भारतके विभिन्न जिलोंमें रैयतको एक जोड़ी बैल पालनेमें वर्षमें क्या खर्च पड़ता है यह दिखाया है। इस आँकड़ेमें (३८९) कितना रूखा और कितना पौष्टिक

चारा चाहिये यह दिया हुआ है। रूखे चारेसे मतलब है जिस चारेसे पेट भरे और कुछ पोषण भी हो। धानका पुआल, अन्न और दलहनके भूसे, सूखी और हरी घास, रूखे चारे हैं। अन्न, दलहन, खली, तेलहन आदि पौष्टिक चारे माने गये हैं।

शाही कमीशनने चारेका खर्च निकालनेमें स्थानीय प्रथाके अनुसार क्या खिलाना चाहिये इसेही आँका है, जो सचमुच खिलाया जाता है उसे नहीं। कमीशनने उसे यों लिखा है :

"हलवाले ढोरको खिलानेमें औसत किसानको क्या खर्च पड़ता है, कृषि विभागोंसे यह पूछकर हमलोगोंने उन्हें कठिनाईमें डाल दिया। मानना पड़ेगा कि औसत किसान अपने हलवाले पशुओंको क्या खिलाते हैं और इसमें क्या खर्च बैठता है इस सवालके बदले 'वह उन्हें क्या खिलाना चाहते हैं' इसका जवाब उनलोगोंने जादे दिया है।" (२१, ५६१)

## आँकड़ा---३१

३८६. प्रति वर्ष एक जोड़ी बैलको खिलानेका खर्च :

| प्रान्त | रूखा चारा प्रकार(क) | रूखा चारा मात्रा रत्तलमें प्रति दिन और कितने दिन खिलाया (ग) | रूखे चारेका स्थानीय दरसे दाम रु० | पौष्टिक चारा प्रकार(ख) | पौष्टिक चारा मात्रा रत्तलमें प्रति दिन और कितने दिन खिलाया(ग) | पौष्टिक चारेका स्थानीय दरसे दाम रु० | रूखे और पौष्टिकका कुल दाम रु० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **मद्रास** | | | | | | | |
| तिरुभल्लूर (हलवाले पशु) | धा. | २५×३६५ | ४६ | खली<br>चोकर | $१\frac{१}{४}$×१८०<br>$३\frac{१}{२}$×१८० | २२ | ६८ |
| तिरुभल्लूर (गाड़ीके पशु) | धा. | २५×३६५ | ४६ | खली<br>चोकर | $२\frac{१}{२}$<br>७ } ×३६५ | ९१ | १३७ |
| रामनाड(कपासकीकालीमिट्टी) | ज्वा. | २०×३६५ | ११२ | बिनौला | $६\frac{१}{४}$×३६५ | ११२ | २२४ |
| मदुरा | धा. | ३७×३६५ | १३६ | — | — | — | १३६ |
| कोयम्बतूर केन्द्रिय क्षेत्र | ज्वा,बा,धा, ह.घा. | ३६×३६५ | १४४ | मू,ख,बि,च, चा.गु. | * | ११६ | २६० |
| पुक्काची | ज्वा,बा,धा, ह.घा. | २९×३६५ | ९१ | ,, | * | १२४ | २१५ |
| अनकापल्ली | धा. | ४९×३६५ | ९१ | मू.ख.,<br>च,<br>चा.गु.,<br>नमक | ३<br>२<br>२<br>१/३२ | ३५ | १२६ |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **सिंध** | | | | | | | |
| नबाब शाह (नहर सिंचाई इलाका) | क. | ४०×१२०<br>२०×१९० | २८ | ख. | ½×६० | २ | ३० |
| नबाब शाह (कुआ सिंचाई इलाका) | क. चराई और ह. चा. | २०-४०×२३०<br>* ×१३५ | ३०<br>— | ख. | १×९५ | ६ | ३६ |
| **बंबई** | | | | | | | |
| धारवाड़ (मल्लादका पथरीला भाग) | घा.<br>ह.घा. | ३२×१८०<br>* १८० | ३६<br>३४ | बि. | ४×१५० | ३० | १०० |
| धारवाड़ (कालीमिट्टी) | क.<br>भू. | १९×३६५<br>२०×३६५ | ६०<br>७२ | बि. | ६×१८३ | ४३ | १७५ |
| धारवाड़ (मध्य) | ज्वा. | ४०×१८३<br>२०×१८२ | ६८ | बि. | ६×२५० | ६० | १२८ |
| पूर्व खानदेश (सूखा) | क.<br>ह.घा. | ३१×२१३<br>३७×१५२ | ६६<br>२८ | बि.या ख. | ६×२४३ | ४५ | १३९ |
| पश्चिम खानदेश (सूखा) | क,बा,मू, चारा,घास | ४०×३४० | १४ | बि. | ४×१२१ | १९ | १६८ |
| **बंगाल** | | | | | | | |
| पूर्व (ढाका मैमनसिंह आदि) | घा.+ह.घा और पतवार | २×१८०<br>* | ४५ | स.ख. | १×१८० | १७ | ६२ |

| प्रान्त | रूखा चारा प्रकार (क) | रूखा चारा मात्रा रत्तलमें प्रति दिन और कितने दिन खिलाया (ग) | रूखे चारेका स्थानीय दरसे दाम रु० | पौष्टिक चारा प्रकार (ख) | पौष्टिक चारा मात्रा रत्तलमें प्रति दिन और कितने दिन खिलाया (ग) | पौष्टिक चारेका स्थानीय दरसे दाम रु० | रूखे और पौष्टिकका कुल दाम रु० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मध्य (पवना, नदिया) | धा.+ह.घा और पतवार | २०×२४० * | ६० | स.ख. | १×२४० | २० | ८० |
| पच्छिम (बर्दमान, बाँकुड़ा) | ,, | २०×२७० * | ६९ | स.ख. | १× ९१ | ७ | ७६ |
| **युक्तप्रान्त** | | | | | | | |
| मेरठ | ज्वा, भू,+ ह.घा और पतवार | २०×४०* | ४५ | ख,च, भूसीचुन्नी | ४-८×३६५ | ७२ | ११७ |
| **पंजाब** | | | | | | | |
| गुड़गाँव | क | ५२×१२१ | ८४ | च,ख, | ६×२७३ | ७१ | २१५ |
| | भू+ | | | गुड़, घी, | | | |
| | ह.घा., ह.चा | ३२×१२२ | ४८ | आँटा | * | १२ | |
| लायलपुर | भू | १६×३६५ | ५३ | च,ख, | ८× ८० | ३० | १७३ |
| | ह.चा | $1\frac{3}{2}$ एकड़ | ९० | | | | |
| मन्टगुमरी | भू. | १०-४०×३६५ | १०६ | च,ख, | ६× ९१ | ३१ | २३४ |
| | ह.चा | * | ९७ | | | | |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **बिहार उड़ीसा** | | | | | | | |
| कटक | धा. | १६-२०×३६५ | ५६ | धानकी फटकन | ६×१५० | ४२ | ९८ |
| सारन | ह.चा.,भू. | ८०×१५२ | ४८ | * | ४×१५२ | २४ | १३७ |
| | धा,भू. | | | | | | |
| | गन्नेका पतवार | ४०×२१३ | ५३ | * | *×२१३ | १२ | |
| **मध्यप्रान्त** | | | | | | | |
| गेहूँ और कपासभाग | भू. | ३०-५०×३६५ | १५८ | * | ३-६×३०० | ५३ | २११ |
| धान भाग | धा. | ४०×३६५ | ९० | * | २×२४० | १५ | १०५ |
| **आसाम** | | | | | | | |
| सिव सागर | धा. | १०×१२१ | ७ | चा.गु. | ४×१२१ | ८ | १५ |
| सिलहट | धा. | १६×१५२ | १९ | चा.गु. | ४×१५२ | ९ | २८ |
| | | | | | | | (२१, ५६१) |

(क) प्रयुक्त अक्षरोंका अभिप्राय :— ज्वा—ज्वारकी कड़वी, बा—बाजराकी कड़वी, धा—धानका पुआल, भू—गेहूँका भूसा, ह.घा.—हरी घास, ह.चा.—हरा चारा, क—कड़वी (सब तरहकी)

(ख) प्रयुक्त अक्षरोंका अभिप्राय :— ख—खली (सब तरहकी), बि—बिनौला, मू.ख.—मूँगफलीकी खली, च—चना, स.ख.—सरसोंकी खली, चा.गु—चावलका गुंडा

(ग) अगर खिलाये दिन सालसे कम हैं तो बाकीके दिनोंमें पशु चर कर रहा है।

* कोई पता नहीं।

**३६०. आँकड़ा क्या बताता है :** आँकड़ेपर नजर दौड़ानेसे दिखाई पड़ेगा कि एक जोड़ी कमाऊ बैल प्रति दिन ४० रत्तल रूखे चारेके अतिरिक्त पौष्टिक भी खाते हैं। आँकड़ा सालके कुछ ही दिनोंका अंक बताता है। दूसरे समयमें बैल चरकर पेट भर लेते हैं उसमें किसानका कुछ खर्च नहीं पड़ता। इसलिये वह खर्चके आँकनेमें नहीं आता।

ऊपरके आँकड़ेके आँकने में सूखे और हरे चारे के उत्पादनकी लागतमें पशु जितना चर लेते हैं उतना बाद दे दिया गया है। फिरभी सभी बातोंका विचार करने और छूट रखने पर भी ११ करोड़ १० लाख टन सूखा और १० करोड़ टन हरा चारा भारतके कुल ढोरके लिये बहुत अपर्याप्त है। (२१, ५६१)

**३६१. छीजन और जादे फैलेगी :** शाही कमीशनने लिखा है : "गवाहोंके बयान छीजनकी संभावना बनाते हैं। खेती के विस्तारके कारण बैलोंकी बढ़ी माँगसे जो अवस्था हो गयी है उसकी हमलोगोंने जाँच की। इससे हमलोगोंने निष्कर्ष निकाला है कि, ऐसी अवस्था हो गयी है जो पशुधनकी हानि किये बिना नहीं रहेगी। और इस अवस्थाने अपना असरभी शुरू कर दिया है। अगर आजकी व्यवस्थामें वास्तविक परिवर्त्तन नहीं किया जायगा तो वैसे ढोर और अधिक हो जायेंगे जैसे दयनीय ढोर आजकल बंगाल और मध्यप्रान्त के कुछ भागों में देखे जाते हैं।"

ढोरके छीजनके कारणोंमें खेतीके विस्तारसे बैलोंकी बढ़ती माँग, इस एक का ही जिक्र कर शाही कमीशन चुप हो गया यह आश्चर्य की बात है। (२१, ३८६, ५६१)

**३६२. ढोरोंकी आबादी बढ़नेका स्वाभाविक परिमाण :** मान लीजिये कि स्वाभाविक हालतमें गाय तीन वर्षकी उमरमें ब्याना शुरू करती है। और हर १२ वें महीने ब्याती है उसकी उमर दस वर्षकी मान ली जाय तो हिसाब लगानेपर देखा गया है कि, १० वर्ष में एक गाय और उसकी बेटी से चार गायें हो जायेंगी। फिर दूसरे १० वर्षमें उन चार गायोंसे और चार चार गायें हो जायेंगी। इसलिये दुर्घटनाओंकी बात छोड़ २० वर्षमें एक गायसे १६ हो जाती हैं। जब गायोंकी गुणन-शक्ति इतनी चढ़ी बढ़ी है तो यह अचरजकी बात है कि किसान बैलोंकी माँग पूरी नहीं कर पाता और शाही कमीशनके अनुसार कमीके हो कारण उनका दाम बढ़ रहा है।

बैल सचमुच कम हैं। पर कमीका कारण मुख्य रूपसे गायमें है। कमजोर,

अलाभकरी, अधभुखी, बिना सँभालवाली और हानिकरी, देरसे ब्याना शुरू करनेवाली और अपने जीवनमें केवल कुछ ही बार ब्यानेवाली गाय कारण-रूप है।

गायको अधभुखी रखा जाता है। इसलिये बैलोंकी कमी है। पहली चीज खिलाना है, यही समस्या फिर सामने आती है। गाय और उसके बच्चेको कैसे खिलावें।

**३६३. गो-समस्या—इसे सुलझानेका उपाय :** इस मामलेमें आँकड़े हमें धोखा देते हैं। अगर वह कोई राह दिखा सकें तो हमलोग उसी पर चलें और उसका विकाश करें। उद्धारका उपाय आँकड़े नहीं बता सकते, इसीलिये शाही कमीशनने गो-समस्याको न सुलझनेवाली कह उसे छोड़ दिया।

शाही कमीशन असफल रहा इसलिये हम सन्तोष कर बैठ नहीं सकते। कोई राह निकालनी ही होगी। गायकी उन्नतिके लिये डा० भोयेलकरने एक राह दिखायी है। गोबरको जलाने से बचा फसलकी उपज बढ़ानेके लिये खादके काममें लानेके वह पक्षपाती थे। अधिक फसल उपजनेसे कुछ जमीन चारा उपजानेके लिये निकल सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुत सन्तोषप्रद और उचित सलाह है। इस सिलसिलेमें बड़े काम तो केन्द्रीय सरकारपर निर्भर हैं। रैयतको करीब मुफ्तमें जलावन मिले इस मामलेमें सरकारका झुकाव नहीं है। इसलिये उधरसे उम्मीद कम की जानी चाहिये।

पर गो-उन्नतिमें सरकारकी चूकसे हुई निराशाभी हमें दूर करनी होगी। और गायको खिलानेके लिये उपाय खोजने होंगे जिससे छीजन रुक जाय। लोगोंको शक्तिके साधन अपनी पँहुचके भीतर खोजने होंगे, जिनके प्रयोगसे वह ऐसे परिणाम निकाल सकें जो गायकी आजकी दुर्दशाका उल्टा हो। संयोगोंने यह स्थिति कर दी थी। जिन संयोगोंने आजकी विनाशकारी स्थिति पैदा की थी उसके उलटे संयोग तैयार करनेकी राह निकालनी चाहिये।

**३६४. भारतीय किसान व्यवस्था करना जानते हैं :** भारतीय किसान पूरी तरह निस्सहाय नहीं हैं। जब वह अपनी जरूरत समझ लेते हैं और उसकी व्यवस्थाकी राह उन्हें मालूम हो जाती है तो वह वैसी व्यवस्था कर लेते हैं। कपास और धानके स्थानोंमें गायके साथ जैसा बर्ताव होता है उससे मालूम होता है कि किसानोंमें व्यवस्था कर लेनेकी छिपी शक्ति है।

**३६५. प्रांतके उदाहरण :** मदरासमें हमने देखा है कि कोयम्बतूरके रैयतोंने प्राकृतिक कठिनाईको सुबीता कैसे बना दिया। यह स्थान सूखा और बिना सिंचाईका है। इसलिये किसान कुएँकी सिंचाई और पशुपालन करते हैं। बाड़ेदार खेत ही गोचर हैं। वह लोग भारतके ढोरके कुछ श्रेष्ठ प्रकार पाल रहे हैं। पर उसी मदरास प्रांतके उत्तर भागमें भद्राचलम् ढोरके बारेमेंभी हम जान चुके हैं। ऐसे रद्दी पशुकी कल्पना नहीं हो सकती। सँभालके बिना यह जंगलमें पाला जाता है। ये कमजोर और अधजंगली पशु दियारेके (delta) धानके स्थानमें झुंडके झुंड भेजे जाते हैं।

मदरासके बिलारी और तंजूर जिलोंकेभी यही दृश्य हैं। बिलारी कपासका और तंजूर धानका देश है। बिलारीसे तजूरमें खेतीकी जमीनके हिसाबसे चौगुने ढोर हैं। बिलारी और तजूरमें खेतीवाली जमीन जैसी है और जसी फसल पैदा होती है उसीके अनुसार पशु संख्याभी है। बिलारीमें धान थोड़ा ही होता है। उसकी प्रधान फसलें ज्वार-बाजरा १५ लाख और कपास ५ लाख एकड़ में होती हैं। दूसरी तरफ तंजूरमें कुल जमीनके ७० सैकड़ेमें धान होता है। यह ११ लाख एकड़ है। दूसरी फसलें नगण्य हैं। बिलारीमें कुल ढोर बहुत कम हैं। १०० एकड़ आबाद जमीन पर २१ का हिसाब है। इसके मुकाबिले सारे मदरास प्रांतमें ६६ और बंगालमें १०८ हैं।

**३६६. गोचर भूमि पर मामला निर्भर नहीं हैं :** इसलिये ढोरकी अवस्था गोचर भूमिकी कमी पर पूरी तरह निर्भर नहीं है। यह तो चारेकी फसल उपजाने और नहीं उपजाने का सवाल है। यह धानके पुआल और ज्वार-बाजरा या गेहूँके डाँटके पोषक गुणके भेदका भी सवाल है। धानके इलाके चाहे वह बंगाल, मदरास, मालाबार, काश्मीर, काँगड़ा, या कहीं हों—घटिया ढोरके लिये बदनाम हैं। कभी यह समझा जाता था कि जमीनमें कोई ऐसी चीज है जो खेतीके लिये बहुत प्रतिकूल है पर ढोर को अनुकूल होती है। दूसरे शब्दोंमें जहाँ वर्षा और मौसमी घासकी अधिकता होती है वहाँके ढोर घटिया होते हैं। और जहाँ वर्षाकी कमीसे घासका अभाव है, साथही खेतकी उपज भी कम हैं वहाँ ढोर पनपते हैं।

इसका कारण यह है कि, नम जगहोंमें बरसातमें घास हो जाती है। इसलिये किसानोंकी आदत हो जाती है कि सूखे महीनोंमें जब घासका अभाव होता है तब ढोरको खिलानेके लिये चारा उपजानेका झंझट नहीं करते। पर सूखे इलाकेमें

१२ महीने अच्छी चराईका अभाव होता है इसलिये वहांके किसानको चारा उपजाना होता है और ढोरको तैयार रखना होता है। उन्हें ढोर कमसे कम भी रखना होना है। (४२६-'३६,५६६)

**३६७. धानके पुआलके पोषक गुणकी कमी ढोरको घटिया बनाती है :** दूसरा और मेरी समझमें बहुत महत्वका कारण यह है कि नम जगह अनिवार्य रूपसे धानकी जगह है। धानकी जगहोंमें पुआलही मुख्य और सेंता हुआ चारा होता है। पुआलमें प्रोटीन और उपयुक्त मात्रामें खनिज नमककी बहुत कमी रहती है। पुआलमें जितने प्रोटीन और खनिज नून हैं वह बहुत कम हजम होते हैं। पुआल पर पाले ढोर जरूरही बेकार होंगे। किसान यह सब नहीं जानता। वह पुआल छोड़ दूसरा सूखा चारा कभी काममें नहीं लाया और न ला सकता है। पुआलमें ढोरके भोजन तत्वकी इतनी बड़ी कमीके बारेमें उसे कुछ मालूम नहीं। वह यह भी नहीं जानता कि पुआलके आहार तत्वकी कमी सुधारी जा सकती है, और सुधार उसके सामर्थ्य की बात है। धान और बिना धानकी जगहोंके भेदका कारण यह है। पर इसके साथ यह नहीं भूलना चाहिये कि जिस किसानको रुपयेकी फसलोंकी हानि करके चारा उपजाना होता है उसमें अपने ढोरोंके पालने और उनकी संख्याका पूरा ख्याल रहता है। सूखे स्थानके ढोरके आकार और बलकी विशेषताका केवलमात्र यही नहीं, पर एक कारण यह भी है।

इन सब विचारोंके बाद यह निर्णय हो सकता है कि जहाँ सरकार किसान की भलाई करना नहीं जानती या उस पर ध्यान नहीं देती हो वहाँ भी खिलाई की दशा सुधर सकती है। ऐसे वातावरणमें सुधारकके सामने मुख्य समस्या यह है कि रैयतोंसे कैसे सम्पर्क बढ़े और उनके तरीके बदलवानेके लिये उन्हें कैसे राजी किया जाय। (५०५, ६५५, ७६४, ८६४)

**३६८. सरकार और किसानके बीचकी खाई :** समस्याकी सारी कठिनाई यही है। सरकारका इरादा जब अच्छा भी रहता है तब भी सारे प्रचारके होते उसका किसानसे संपर्क नहीं हो पाता। सरकार जितना जादे प्रचार करती है उतना ही उससे भ्रांति पैदा होती है और अविश्वास फैलता है। यह अवस्था उसी कारण से हुई है जिसने भारतको नपुंसक बनाकर आजकी सरकारके हाथकी कठपुतली बना दिया है। अंग्रेजोंके पहलेका भारत ऐसा नहीं था। अंग्रेजों के पहलेकी सरकार चाहे सहानुभूति रखनेवाली या उदासीन हो, विदेशी हो या शत्रुता रखती हो, उस

समयके भारतीय गाँव एकदमसे उस पर निर्भर नहीं रहते थे। एक सरकार और थी। और वह उस सरकारके नीचे उससे कहीं जादे मजबूत सरकार थी।

जब भारतमें अंग्रेजी सत्ता जम रही थी, उस समय देहातियोंके हाथ कितनी शक्ति थी यह एलफिन्सटन (Elphinston) के लिखे कुछ वाक्योंसे समझा जा सकता है। उस शक्तिकी हानि आजकी अनेक विपदाओंका कारण है। गायकी उपेक्षा और चारेकी कमी उसी विपदाके लक्षण हैं। मैं यहाँ ग्राम-समाजके विनाशके बारेमें कह रहा हूँ। (१८, २६४-'६५)

३९९. **ग्राम-समाज :** रमेशचन्द्र दत्तने "ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास" में (Economic History of British India) "पेशवाओंसे जीते गये देश" की रिपोर्ट (इस्ट इंडिया पेपर, खंड ४)से नीचे लिखा उद्धृत किया है :

"चाहे जिस दृष्टिसे हम दक्खिनकी देशी सरकारकी जाँच करें उसमें सबसे पहली और महत्वकी पहचान गाँवों या शहरोंका विभाजन है। उसमें बसनेवाली समाजोंको छोटे रूपमें सरकारका सभी रूप प्राप्त है। यदि कोई दूसरी सरकारें न रहें तो भी अपनी रक्षा करनेकी सामर्थ्य उनमें भरपूर है। शायद बहुत अच्छे ढंगकी सरकारसे उनका मेल न बैठे पर बुरी सरकारोंकी अपूर्णताओंका वह उत्कृष्ट प्रतीकार हैं। उनकी उपेक्षाओं और कमजोरियोंके बुरे परिणामोंका वह निवारण करती और अत्याचार तथा लूटमें वह कुछ बाधाभी डालती हैं।

"हर गाँवमें कुछ जमीन ऐसी होती है जिसका प्रबन्ध गाँववालोंके हाथ है। सीमा होशियारी से बाँधी जाती है और उसकी दृढ़तासे हिफाजत होती है। खेत बँटे रहते हैं जिसकी सीमा अच्छी तरह मालूम रहती है।...गाँववाले प्रायः सबही खेत जोतनेवाले हैं। उनकी जरूरतें पूरी करनेके लिये उनके अतिरिक्त कुछ व्यवसायी और कारीगरभी होते हैं। हर गाँवका मुखिया पाटिल होता है।... इसके सिवा बारह बलाटी नामके १२ पदाधिकारी भी होते हैं। यह लोग ज्योतिषी, पुरोहित, बढ़ई, नाई आदि हैं"... (५२५, ५२८)

४००. **भूतकालकी ग्राम-पंचायत प्रथा :** "पर इन सब बुराइयोंके होते हुए भी महाराष्ट्र देश फूला फला। हमारी अधिक योग्य सरकारके आधीन भी कुछ बुराइयाँ हैं उनसे वह लोग बचे हुए हैं। इसलिये उस प्रथामें कुछ ऐसी खूबियाँ हैं जो उसकी स्पष्ट त्रुटियोंका निराकरण करती हैं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि इनमेंसे बहुतोंका मूल एक बातमें है। वह यह कि यद्यपि सरकारने

प्रजा न्याय पावे इसके लिये कुछ नहीं किया पर उसने उसे स्वयं पाने का साधन उन्हींको दे दिया। इसका सुबीता नीचे वर्गके लोग खास तौर पर समझते थे। क्योंकि उनकी अपने शासकों तक बहुत कम पँहुच है और हर सरकारमें उनकी उपेक्षाकी बहुत जादे संभावना रहती है।"...

"इसलिये मेरा निवेदन है कि देशीप्रथा (रीति) की अभी भी रक्षा होनी चाहिये और ऐसा उपाय करना चाहिये जो उनकी त्रुटियोंको दूर करते हुए उनकी शक्ति को पुनरुज्जीवित करे।"...

"हमारा मुख्य साधन पंचायत ही बना रहे, और हमारी ओर से सभी नयी तरहकी रुकावटों और कानूनोंसे वह सदा अलग रखी जाय।" (२५ अक्तूबर १८१९) (५२५, ५२८)

४०१. **ग्राम्य समाजोंकी पुनर्रचना कीजिये :** अगर देहातोंमें ग्राम्य समाजोंकी पुनर्रचना हो जाय, उनकी कार्यकारिणी समिति के रूपमें पंचायतें बन जाँय, तो पंचायतके कुछ सदस्य दूसरे इलाकों की यात्रा करें। और देखें कि वहाँ के लोग जिन खेतों में कपास और बाजरा आदि रुपयों की फसल हो सकती है उनमें चारा कैसे उपजाते हैं। पंचायतें समझें कि ढोरको खिलाने में नफा है। जैसे कि रामपुरका किसान एक जोड़ी बैल पालनेमें १०५) रुपया लगाता है पर बराड़का किसान इसका दूना २११) रुपये (३८६)। पर इस कारण वह किसान दिवालिया नहीं होता बल्कि रामपुरके किसानसे किसी तरह अच्छा ही रहता है। कपासके इलाकोंमें पंचायतको जो मिल सकता है वह धानके इलाकोंमें नहींभी मिल सकता। पर इसमें सन्देह नहीं कि धान-इलाकेका किसान अपने ढोरकी बहुत कुछ उन्नति कर सकता है। वह अपने जंगलों और परती जमीनोंको फायदेका बनाना जान सकता है। उन्हें सिर्फ बाधक जानकर छोड़ेगा नहीं। धान-इलाकेकी पंचायतके सदस्य अपने किसी होनहार नौजवान को प्रांतीय कृषि-विभागमें भेज सकते हैं। वहाँ धानके पुआलके पोषक गुण और उनकी कमियोंके बारेमें सब कुछ सीखेगा। खेतमें इधर उधर पड़ी हड्डियोंके चूरेके संभव प्रयोगसे वह कमियोंको पूरा करनाभी जान लेगा। यदि उसकी हिन्दू-भावनापर इससे चोट पँहुचती हो तो वह उसे चमारसे जलवावेगा। और इस अग्निशुद्ध रासायनिक द्रव्य "अस्थि-भस्म" से पुआलके आहार-तत्वकी कमी पूरेगा। (५२५, ५२८)

**४०२. ग्राम-समाजें क्या कर सकती हैं :** पंचायतें यह सब सिद्ध कर सकती हैं। पंचायतोंसे यह मामला ग्राम-समाजोंके पास आ सकता है कि उसे सारा गाँव स्वीकार कर ले। इससे उनके ढोरकी दशा सुधर सकती है। एक ग्राम-समाजसे यह बात दूसरेमें फैल सकती है। इस तरह रायपुरकी गाय निठुर "अरउआ" से बचाई जा सकती है और दयनीय दशासे उसे उबारा जा सकता है।

आलोचक कह सकते हैं कि गाँववाले आजभी यह कर सकते हैं। अब तो यूनियनबोर्ड हैं जिनमें सभी गाँवोंसे प्रतिनिधिरूपमें प्रभावशाली व्यक्ति रहते हैं। सबके ऊपर जिलाबोर्ड है जिसका सरोकार सरकारके पीठस्थान सरकारी दफ्तर से है। वास्तवमें यूनियनबोर्ड और जिलाबोर्ड के द्वारा गाँववालोंका सरोकार आजकल पहलेसे जादा है। इसके अतिरिक्त नयी योजना का आर्थिक दायित्व लेनेके लिये सहयोग-समितियाँ हैं। खासकर ढोर-संवर्धनके लिये नयी समितियाँ सरकार चलवा रही है। (५२५, ५२८)

**४०३. यूनियनबोर्ड और सहयोग-समितियाँ मुर्दा क्यों हैं :** सभी बातें सच हैं। पर एक बातकी कमी है। यह सभी साधन निर्जीव हैं। उनमें प्राण देनेकी जरूरत है। यह सब गाँववालोंपर ऊपरसे लादी गयी हैं। जरूरत पूरी करनेकी इच्छासे कार्य-साधक रूपमें गाँववालोंने इन्हें नहीं खड़ा किया है। इन्हें एक विदेशी सरकारने देशकी सभी राजनैतिक उन्नतिको परखने और अपने हितके लिये उनपर नियंत्रण करनेको उनपर लादा है। गाँववालोंकी आवश्यक और मार्मिक जरूरतोंके लिये वह नहीं हैं। प्रजाकी भावना यह है। आजका संघटन जनताका बनाया हुआ नहीं बल्कि जबर्दस्तीका है।

ग्राम-पंचायत केवल वैधानिक संस्थाके अतिरिक्त कुछ और भी थी। ग्रामकी समाजही ग्रामका जीवन थी। वह उसके अपने हाड़ मांसकी थी। वह गाँवके लिये थी और गाँवकी रक्षा करती थी। समाजको किसी पुरस्कारका लोभ नहीं था और न किसी दंडका भय। वह गाँवका सामूहिक जीवन थी। यह सब खतम हो गया। अब कानूनकी एक कलम चला देनेसे फिर नहीं बनायी जा सकती। कानून इन समाजोंको बिगाड़ सकता है और उसने बिगाड़ा ही है। पर उसे नये सिरेसे फिर बनाना कानूनके बूतेका नहीं है। जो उद्देश्य पहले इनसे पूरा होता था उसे फिर पूरा करनेके लिये जनताही फिर इन्हें बनावेगी। (२६४-'६५, ५२५, ५२८)

**४०४. आजकी राजनैतिक अवस्थाकी कठिनाई :** जनताकी आजकी मनोदशामें गाँवके जीवनमें प्राण फूँकना बहुत मुश्किल है। जिला मजिस्ट्रेट तुरत उसे अपना प्रतिद्वन्दी मान लेंगे और यह प्रतिद्वन्दी हो भी जावेगी। क्योंकि दोनों हित परस्पर विरोधी हैं। मजिस्ट्रेट सिर्फ अपने बनाये यूनियनबोर्ड तथा तरह तरहके बोर्डों और समितियोंको जानते हैं। इनके लिये एक बात जरूरी है कि ये मजिस्ट्रेटोंके दासानुदास रहें। यदि ये दासानुदास नहीं हैं तो इन्हें बागी करार दिया जासकता और दबा दिया जा सकता है। यह सही है कि हमारे देशमें ग्राम-समाज जैसी संस्थायें थीं वैसीके बिना गाँवकी परिणामकारी भलाई बड़े पैमाने पर नहीं हो सकती। वह सब सरकारके बिना स्वतत्ररूपमें बनीं और पनपीं। वह सब किसी विदेशी सरकारका अंग और अंश नहीं बन सकतीं। हमारे आदर्शकी ग्राम्य समाज-रचनामें मजिस्ट्रेटोंके विरोधके सिवा एक सांस्कृतिक रुकावटभी है। विदेशी संस्कृतिने हमारे समझदारोंको विषको अमृत और जीवनदाता अमृतको विष मानना सिखाया है। (५२५,५२८)

**४०५. ग्राम्य समाजें क्या थीं :** ग्राम्य समाज और ग्राम्य पंचायतोंका आधार गाँवकी आत्मनिर्भरता थी। एलफिंस्टनका उद्धरण इसे पूरी तरह झलकाता है। आगे चल भारतके स्थानापन्न बड़ेलाट सर चार्लेस मेटकाफने सन् १८३०के अपने कार्य-विवरणमें इस विषयका और भी प्रतिपादन किया। रमेशचन्द्र दत्तके 'ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास' से सर चार्लेस मेटकाफका उद्धरण नीचे दिया जाता है :

"ग्राम्य समाज छोटे छोटे प्रजातंत्र हैं। उन्हें जो चाहिये प्रायः वह सब अपने यहाँ ही मिल जाता है। ये एक तरहसे बाहरी प्रभावसे मुक्त होती हैं। जहाँ कुछ नहीं टिकता वहाँ भी यह टिकती दिखायी देती हैं। कितने राजवंश मिट गये; एक एक कर कितनी क्रांतियाँ हुईं; हिन्दू, पाठान, मुगल, सिख और अंग्रेज बारी बारीसे अधिपति होते गये, पर गाँवकी समाजें जो थीं वही रहीं। जिस समय कोई शत्रु-सेना देश होकर निकलती है ऐसे संकट कालमें वह हथियार उठा अपनी किलेबन्दी करती हैं। गाँवकी जनता गाँवके कोट (शहरपनाह) के भीतर अपने ढोरोंको ले आती है और शत्रुको चिढ़ाये बिना चले जाने देती। पर यदि उन्हींको लूटने और मटियामेट करनेके लिये चढ़ाई होती और शत्रु भी अदम्य होता तो वह दूरके मित्र-गाँवोंमें भाग जाती थीं। पर तूफानके रुकतेही लौट आतीं और सारा

काम फिर पहलेसा चलने लगता। जिस देशमें कई साल तक लूट और खून-खराबीका नाटक चलता रहा और गाँवमें रहना कठिन हुआ तो बिखरे देहाती तभी लौटते जब शान्तिका दौर दौरा फिर हो जाता है। एक पीढ़ी बीत जाय पर दूसरी लौट आवेगी। गाँव उजड़नेके समय जो लोग भगा दिये गये थे उनके बंशज अपने बाप-दादोंके ही खेत फिरसे दखल करते हैं। उसी जमीन पर घर बनाते हैं, उसी स्थान पर गाँव बसाते हैं। बेटे अपने बापोंका पद लेते हैं। उन्हें दूर भगाना मामूली बात नहीं है। क्योंकि दंगा फसादके दिनोंमें वह प्रायः अपने पदोंकी रक्षा करते और लूट तथा अत्याचार सफलताके साथ रोकनेका बल प्राप्त करते हैं। (५२५, ५२८)

**४०६. ग्राम्य समाजोंने क्रांतियोंमें जनताकी रक्षाकी :** "ग्राम्य समाजोंके संघ अलग अलग सरकारके जैसे हैं। मेरी समझमें जिन सभी क्रांतियों और परिवर्तनोंका संकट भारतकी जनताको झेलना पड़ा है उनमें इन संघोंनेही उसे सबसे जादे बचाया है। उसके सुख और स्वाधीनता के उपभोगमें ये अधिकांश सहायक हैं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि ग्राम-विधानमें कभी छेड़-छाड़ नहीं किया जाय। इन्हें नष्ट भ्रष्ट करनेके रुझान या प्रवृत्तिसे मैं घबड़ाता हूँ। उनके प्रतिनिधि गाँवके मुखियाके जरिये ग्राम-समाजके साथ लगान बन्दोबस्ती नहीं कर, रैयतवारी प्रथाके अनुसार अलग अलग किसानके साथ बन्दोबस्तीमें यह रुझान या झुकाव है। इसका मुझे आशंका है। इसकारण और केवल इसी कारण मैं पच्छिमी प्रांतोमें रैयतवारी प्रथाका चलन देखना नहीं चाहता।"

रमेशचन्द्र दत्त इतिहासकार और शासक थे। उन्होंने उस शासन-पद्धतिके अनुसार कार्य किये जिसने सभी ग्राम-समाजोंका नाश किया था। उनके नीचे लिखे शब्द उनके देश-भाइयोंकी भावनाके द्योतक हैं :

"मदरास और बंबई प्रांतोमें रैयतवारी प्रथाके चलनेसे ग्राम्य समाजें लुप्त हो जायेंगी। सर चार्ल्स मेटकाफका यह कहना सही है। जिस समय गांवके हर किसानके साथ अलग अलग बन्दोबस्त किया जाता है उसी समय ग्राम-समाजका मूल उद्देश्य नष्ट हो जाता है। समाजका मुख्य काम छीन लेनेके बाद उसे जीवित रखनेकी मुनरो और एलफिस्टनकी सभी कोशिशें असफल हुईं। ऐसेही कारणों से पिछले सत्तर वर्षोंमें उत्तर भारतके भी ग्राम्य समाज लुप्त हो गये हैं।" (५२५, ५२८)

**४०७. ग्राम-समाजोंका लोप कैसे हुआ :** "अंग्रेजी सरकारने पच्छिमी विचारके मुताबिक, भूमिकर (मालगुजारी) के लिये खास आदमियोंको जवाबदेही सौंपी और उन्हें जमीन्दार या मुखिया बना दिया। इससे समाज नष्ट हो गये। पच्छिमके समान न्याय और शासनका अधिकार केन्द्रित कर अपने हाकिमोंके हाथ ही सौंपा। इस तरह उसने समाजके पुराने अधिकार छीन लिये या कमजोर कर दिये। अंतमें वह छिन्नमूल वृक्षके तरह गिर पड़े। मुनरो, एलफिंस्टन और मेटकाफको इस पुराने ढंगके स्वायत्त शासनको बचानेकी उत्कट अभिलाषा थी इसे उन्होंने जोरदार शब्दोंमें कहा है। पर उनका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। क्योंकि उनलोगोंने छोटे प्रजातंत्रोंसे उसके अधिकार छीन लिये। क्योंकि उन्होंने अपनी दीवानी अदालतों और सरकारी हाकिमोंके हाथमें अधिकार केन्द्रित कर दिये। क्योंकि उनलोगोंको जनताकी पुरानी संस्थाओंपर सच्चा विश्वास नहीं था। ग्राम स्वायत्त शासनका लोप भारतमें अंग्रेजी राजके दुखद परिणामोंमें एक है! दुनियाँके देशोंमें केवल भारतही में सबसे पहले इसका विकाश हुआ और सबसे अधिक दिनों तक बचा रहा।"

अबतो ग्राम-समाज पूरी तरह मिट चुका है, यही एक वस्तु थी जो दुखके कुछ भार कम कर और जनताको बलीकर गायकी और भारतकी भी रक्षा कर सकती थी। (५२५, ५२८)

**४०८. ग्राम्य समाजोंके लोपके लिये सांस्कृतिक विजय उत्तरदायी है :** रमेश दत्तने ग्राम्य समाजके उन्मूलनका कारण भूमिकरकी पुरानी सामूहिक पद्धतिके बदले रैयतवारी प्रथाके चलनको माना है। इसने ग्राम्य समाजोंको जीवनी शक्ति से रहित कर दिया। दीवानी अदालतोंके जरिये आजकलकी कर--प्रबन्धकी पद्धतिभी कारणरूप है। केवल यही कारण नहीं है। दूसरा बड़ा कारण सांस्कृतिक विजय था। किसी एलफिंस्टन और मेटकाफने जो महसूस किया उसे अंग्रेजी पढ़े भारतीय नहीं करते। क्योंकि पच्छिमने उन्हें अन्धा कर दिया है। पच्छिमकी बुराई भी उन्हें भलाई मालूम देती है। इस दिमागी हारने, भारतकी पुरानी संस्थाओंके लिये श्रद्धाके इस अभावने उनके विनाशका कार्य पूरा किया। यदि आज समझदारोंमें फिरसे श्रद्धाका भाव जाग उठे, यदि भारतीय जीवनमें मिठास और शक्तिकी धारा बहानेवाली संस्थाओंका

मूल्य फिर समझा जाय तो आजकी इस गड़बड़ी में भी कुछ बड़ी बात फिर बन सकती है। (५२५, ५२८)

४०९. **रक्षाके लिये स्वावलम्बी गाँव बनें :** गायकी रक्षाके लिये हमें स्वावलम्बी गाँव चाहिये। यह स्वावलम्बन कोई बाहरी वस्तु नहीं जिसे खरीदा या उधार लिया जा सके। स्वावलम्बी गाँवका अर्थ है बहुतसी अनावश्यक चीजों को छोड़ देना। सभी गाँव या ग्राम-समुदाय अपनी जरूरतका अन्न, चारा और तेलहन पैदा करें। प्रत्येक ग्राम या ग्राम-समुदाय अपनी कपास पैदा करे और उसे कात बुनकर अपने सभी अधिवासियोंका कपड़ा तैयार करे। तब अन्न-वस्त्रके मामलेमें गाँव स्वावलम्बी बन जायेंगे। हर ग्राम-समूह अपने कामकी लकड़ी, बाँस और छाजनके सामान पैदा करे और इस तरह असन, वसन और निवसनकी पहली जरूरतें पूरी करे। (५२५, ५२८)

४१०. **ढोर-पालन और ग्राम्य समाजका पुनर्जीवन :** अन्न उपजानेमें खेती और दूधके लिये पशुपालनभी आ जाता है। इसलिये हरेक किसान खेतिहर और पशुपालक बने। गाँवके हितके लिये मिश्रित खेती करे। यदि यह पूरा हो जाय तो दूसरी चीजें अपने आप इस योजनामें बैठ जायेंगी। पहली तरहकी प्राथमिक शिक्षा-पद्धतिका विकास होगा, जिसका ग्राम-जीवनसे सजीव संपर्क होगा। क्योंकि इसे गाँवसेही प्रेरणा और आदर्श प्राप्त होंगे। यह सभी बातों को हर तरहसे अच्छी रहनके लिये सहायक बनावेगी। (५२५, ५२८)

४११. **स्वबलसे स्वावलंबी ग्राम :** इसके लिये बाहरसे धनकी आवश्यकता नहीं। जो जो कहा गया है वह वहाँकी जनताकी मेहनतके जरिये मिट्टीसे बनाया जा सकता है। रुपयेपर अधिक जोर नहीं दिया जायगा, उसकी जगह वस्तु-विनिमयकी सुन्दर प्रथा होगी। ऐसी योजनामें किसान, लोहार, बढ़ई, वैद्य, पशु-चिकित्सक, पंसारी, गाड़ीवान, ग्वाला, मछुआ, चमार, रंगरेज, छीपी, कागदी, चुड़िहारे, तेली, कुम्हार, पासी, गिंदौड़िये (गुड़ बनानेवाले), लकड़हारे, घसगढ़े, नावनिर्माता, मलाह, पथेरा (ईंट पाथनेवाला), पत्थरसाज, बनिया, महाजन, शिक्षक, छात्र, लेखक, कवि, कलाविद् और चितेरे सबकी प्रतिष्ठा अपने अपने स्थानपर होगी। रुपया हो, न हो, ऐसी योजनाका काम अपने आप होगा। यथा-योग्य मात्रामें श्रम या वस्तुही पारस्परिक व्यवहारमें विनिमयका साधन होगा। (२८, ४४४, ५२५, ५२८, ५७७)

४१२. **स्वावलम्बी योजना :** यदि लोग सादी रहन सहनके लिये तैयार हों और सिर्फ जरूरी चीजोंकी ही चाह करें तो ग्राम्य समाज और ग्राम-पंचायत फिरसे स्थापित हो सकती हैं। इस तरह लोगोंको द्रुत वाहन और द्रुत समाचार, रेडियो और सिनेमासे हाथ धोना पड़ सकता है। पर इसमें सन्देह नहीं कि इनके अभावमें जीवन कम आनन्दप्रद नहीं होगा। यह भी नहीं कि, रेल, तार, जहाज और रेडियो इस योजनामें बैठ नहीं सकते। वह हो सकते हैं पर नाशकारी लक्षणसे रहित होंगे। रुपया भी हो सकता है पर उसका अनुचित महत्व नहीं होगा। तब उसका उपयोग सेवकके रूपमें होगा, स्वामीके रूपमें नहीं। (२४, २६, ५२८, ५४४, ५७६)

४१३. **गोरक्षाका दूसरा उपाय नहीं :** कोई पूछ सकता है कि क्या गोरक्षाके लिये यह सब करना ही होगा? दूसरा उपाय होनेमें मुझे शंका है। शाही कमीशनभी किसी तरहकी कोई राह नहीं दिखा सका। कमीशनको उद्धारका कोई उपाय नहीं सूझा। क्योंकि कमीशनवाले सभी बातोंको जैसीकी तैसी रहने देकर भी गायके लिये ठेलठालकर जगह बनाना चाहते थे। इस प्रयासमें दुर्भाग्यसे वह भैंस पर ढल गये और इस तरह गायको उन्होंने और भी दूर ठेल दिया।

मनुष्यकी मुख्य आवश्यकतायें जिस संघजीवनमें पूरी होना जरूरी है वह यदि नहीं रुचे तो इसका परिणाम मनुष्य और गौका विनाश है। धीरे धीरे हो या द्रुतगतिसे, परिणाम विनाशही है। दोही बातें हो सकती हैं, एक विनाश या दूसरी पूर्णकाम ग्रामजीवन जो माताकी तरह दूध पिला पालता है। इस ग्रामजीवनमें लोग प्रबुद्ध होंगे और ग्राम-पंचायतोंकी छत्रछायामें आनन्दसे रहेंगे।

एक बार जहाँ यह मूल आवश्यकता जानली गयी कि फिर गायकी रक्षाके मामलेमें महत्वके दूसरे मुद्दे विस्तारके साथ अपने आप विकशित होंगे और सुख देंगे।

# अध्याय १०

## चारा उपजाना और सैंतना—चराई

४१४. **चारेके लिये भूमि-समस्या हल हो गई :** यह मान लेनेपर कि लोग जीवनकी परम आवश्यक वस्तु ग्राम्य समाजोंके संघके द्वारा प्राप्त करनेमें अपना

सारा ध्यान लगावेंगे, यह स्पष्ट है कि, ऐसी बहुतसी जमीन खाली हो जायगी जिसमें अनावश्यक सामान पैदा किया जाता है। ऐसी जमीनोंमें कामके लायक चारा उपजायेंगे। इसलिये चारेके लिये जमीनके अभावका सवाल नहीं उठेगा। भारत अपनी खेतीकी बहुतसी उपज विदेश भेज देता है। इसके बदले वह बहुतसी आवश्यक और अनावश्यक चीजें लेता है। भविष्यमें भारत खेतीकी अपनी जरूरतकी उपज बाहर भेजना बन्द कर देगा। भारत अपनी रुई, बिनौला, गेहूँ, ज्वार-बाजरा और महुआ आदि चलान करना बन्द कर देगा। इतनाही पैदा किया जायगा जितने से अपना काम चले और कुछ, जिस साल सूखा पड़े या फसल मारी जाय उस समय काम आवे। यदि गाँवोंमें यही नीति मानली जाय और जिस चीजकी देशमें जरूरत है गाँववाले केवल वही उपजावें तो विदेशी या प्रजा-विरोधी कोई सरकार विदेशी माँग पुरानेके लिये यह या वह उपजानेके लिये ऐसे गाँवोंको बाध्य नहीं कर सकती या ऊँचे दामके लालचमें भी नहीं फँसा सकती।

४१५. **खेतीकी उपजके चलानकी वन्दी :** यह पूछा जा सकता है कि यदि भारत खेतीकी उपजका चलान बन्द कर दे तो वह आमदनी (आयात) की कीमत कहाँसे देगा? भारत अपना पैर उतनाही फैलावेगा "जेती लम्बी सौर (चादर)" होगी, यही उत्तर है। वह परिस्थितिके अनुकूल बन जायगा। वह उतनाही आयात रखेगा जितनेका दाम अपनी भूमिकी अतिरिक्त उपजके निर्यातसे सुगमतासे वह चुका सकेगा। यह अतिरिक्त खनिजों, पशुधन और दूसरे तैयार मालके रूपमें हो सकता है। यदि आयातमें बहुत बड़ी कमी है तो भारत वह कमी बनाये रखनेका नुकसान झेल लेगा। बहुत बड़ी मात्रामें आज जो अनावश्यक माल आ रहा है उसका आना रुक जायगा। इस अनावश्यक आयातसे छुटकारा पाकर भारत अपना आधार दृढ़ करेगा।

इसलिये खेतीकी उपजका निर्यात कम करने या बन्द करनेकी गुंजाइश है। और इस तरह छुटी हुई जमीनपर यथेष्ट अन्न, चारा और जीवनोपयोगी अनेक दूसरी आवश्यक चीजें उपजायी जा सकती हैं।

भोयेलकरने तेलहन, खली और हड्डीकी खादके रूपमें जमीनकी उपजाऊ शक्तिका निर्यात रोकनेकी जोरदार सिफारिश की है।

सतर्क ग्राम-समाज इसे सचमुच रोक देगा। तीसी निर्यातका बहुत बड़ा सामान है। भारत अपनी जरूरतसे फाजिल तीसीका निर्यात रोक देगा और तीसीवाले खेतमें

चारा उपजायेगा। पाटके बारेमें भी यही बात लागू होती है। कच्चे या तैयार मालके रूपमें निर्यात करनेके लिये पाटकी खेती रुक जायगी। भारतीय मिलोंमें पाटसे सामान तैयार करनेमें देहातका कुछ फायदा नहीं होता। पाटके मिल-मालिक मिलकर जो चाहते हैं वही दाम लाद देते हैं। अच्छी तरहसे जगे ग्राम-समाजके किसान सट्टेवाले सभी सामानको शककी नजरसे देखेंगे। इन सामानोंके दाम स्वाभाविक माँग और खपत पर निर्भर नहीं होते। दुनियाँके किसी कोनेमें बैठे सटोतरी लोग (Speculator) इन सामानोंके दामका नियन्त्रण करते हैं। जिन चीजोंकी भारतीय किसान या उसके पड़ोसीको आवश्यकता नहीं होगी उसे वह नहीं उपजावेगा।

४१६. **चारोंका चुनाव :** यदि पाट, कपास, तीसी, मूँगफलीसे कुछ जमीन निकल सकना संभव हो और उसके बदले अन्न और चारा उपजाना तय हो तो दूसरा सवाल आगे आवेगा कि कौनसे चारे उपजाये जायँ। प्रत्येक प्रान्त और ग्राम-समुदाय अपनी जरूरत के अनुसार चुनेंगे। ढोरके आहारके रूपमें धानके पुआल और गेहूँके भूसेका कम महत्व रहेगा। आज रूखे चारेमें यही मुख्य हैं। पर इनमेंसे कुछ, और विशेषकर पुआलमें ढोरके आवश्यक तत्वोंकी कमी है। कमियोंको पूरा करनेके लिये पूरक चारे चुनना चाहिये। साधारण रूपमें छीमीवाली फसलें हर तरहसे उपयोगी हैं। छीमीवाली फसलोंसे केवल चाराही नहीं मिलता वह जमीनमें नाइट्रोजन डालकर (Nitrogen fixation) उसे उपजाऊ बनाती हैं। दलहनके रूपमें छीमी उपजाने से तीन मतलब सधते हैं। उसे आदमी खाते हैं और उसकी डाँट ढोरको खिलाते हैं। मिट्टीको नाइट्रोजन की बहुत जरूरत होती है। वह भी इससे मिलता है। यह तीन उपयोगवाली फसल जहाँतक हो सके दूसरी फसलके रूपमें उपजानी चाहिये। क्योंकि यह कदाचित ही खेतको ६ महीनेसे जादे छेंके रहती है। छिमियोंको काटनेके बाद दूसरी फसलोंके लिये खेत अधिक उपजाऊ बन जाता है।

प्रत्येक प्रांत और आबहवाके लिये खूब उपजनेवाली बहुतसी घासें हैं। किसी स्थानविशेषके लिये उनका चुनाव कर लेना होगा। गिनी घास (Guinea), हाथी घास (Napier), मक्का, सेंजा और अंजन परिचित घास हैं। जो बहुत उपजती हैं। इनमें से कुछ में पचनीय प्रोटीन खास तौर पर बहुत है। पोषणके अध्यायमें इन घासोंके चुनावकी विधि बतायी जायगी।

**४१७. चारोंका संरक्षण :** चारा उपजाना होगा और उससेभी अधिक उसका संरक्षण करना होगा। अन्न और दलहनकी डाँट सुखाकर रखनी होगी। पर इसी तरह घासको नहीं करना है। घास बरसातमें सबसे जादे बढ़ती है। वह ढोरको खिलायी जा सकती है या चरवायी जा सकती है। पर सूखे मौसममें काम आनेके लिये उसे सेंतकर रखना मुश्किल है। बरसातमें सूखी घास तैयार करना कठिन है। सुखानेके लिये धूपमें पसारी घास अचानककी झड़ीसे खराब हो सकती है। नम जगहोंमें यह खास तौरपर कठिन है। जब हरे चारे की बाढ़ अत्यधिक होती है तब उसे बर्बाद होना ही पड़ता है। क्योंकि वह सुखाया और बचाया नहीं जा सकता। अभीतक यही हुआ है। पर भविष्यके प्रबुद्ध और क्रियाशील समाजमें ऐसा क्यों हो?

**४१८. अतिरिक्त चारेका साइलेज :** हरे चारेको सँभालकर सेंतनेकी क्रिया का नाम साइलेज (Silage) है। जब गरमीकी ऋतुमें दूसरा हरा चारा नहीं मिलता तब इससे सरस चारेका काम लेते हैं। गढ़ों (silo—साइलो), पुंजों या कोठोंमें इसे जमा किया जाता है। हरे चारेको जमाकर उसे दबाते हैं जिससे कि उसके बीचकी हवा निकल जाय। फिर उसे अच्छी तरह ढक दिया जाता है कि हवासे उसका लगाव नहीं रहे। यह ढकाई उसको सड़नेसे बचाती है। गढ़े या कोठेमें रखना, दबाना और ढकना, हवा अलग रखनेके लिये किया जाता है। यदि हवा उसमें घुस जाती है तो चारा गरम हो जाता है या भभक उठता, सड़ने लगता और नष्ट हो जाता है।

हवा निकाली जगहमें जमा करना कई तरहसे हो सकता है। सबसे सरल उपाय गढ़ा खोदकर उसे सिमेन्ट और ईंटसे बाँध जल-अवरोधक बना लेना है। पर सिमेन्ट किया हुआ गढ़ा अनावश्यक है। जहाँकी मिट्टी कड़ी है, सीधी खुदाई ही से काम चल जायगा। "साइलो"-कोठेमें भी साइलेज बन सकता है। यह जमीनके ऊपर बुर्ज की तरह बनाया गोल कोठा होता है। इसमें भरना और निकालना दोनों कठिन होता है। इसके लिये कलोंसे काम लिया जा सकता है। हमारे किसान और संवर्धकके लिये इसकी चर्चा ही व्यर्थ है।

हमारे लिये गढ़ेकी खत्ती ही सबसे अच्छी है। खुदाईका खर्च एक तरहसे कुछ नहीं या बहुत कम है। एकही खत्ती कई साल चलती है। कहा जाता है कि खत्तियोंमें श्रेष्ठ प्रकारकी साइलेज बन सकती है।

४१९. **खत्तीके लिये स्थान :** सबसे जरूरी मुद्दा यह है कि खत्ती का पेंदा बरसातमें पानी की सतहसे कई फूट ऊपर होना चाहिये। यदि इसका ठीक पता नहीं लगाया जायगा तो पानी अगल बगलसे रिसकर (छनछनकर) साइलेजको चौपट कर देगा। इसलिये स्थान सावधानीसे चुनना चाहिये, हो सके तो ऊँचे पर जहाँ पानीका निकास ठीक हो। खत्तीका स्थान गोशालाके पासही हो। यहाँसे खिलानेके लिये साइलेज आसानीसे लाया जा सकता है। ढोनेकी मिहनत अधिक नहीं लगती। बड़े ठट्ठके लिये बड़ी खत्तीका स्थान प्रायः जहाँ चारा उपजाते हैं वहीं खेतमें चुनते हैं। इससे चराईकी क्रिया सरल होजाती है। काममें लानेके लिये साइलेजको गोशालातक गाड़ीमें ढोते हैं। साइलेज करनेके समय चारेमें नमी होनेके कारण तैयार माल कभी कभी पतला सा हो जाता है। ऐसे सामानका गाड़ीपर ढोना कठिन है।

जहाँ हर बरसातमें पानी इतना बढ़ता है कि सारा इलाका डूबा रहता है वहाँ नकली टीले बनाने पड़ते हैं। बहुत नम जगहमें यह एक कठिनाई है और वहीं इसकी जरूरत भी जादे है। क्योंकि, दियारेमें (खादर-deltaic areas) हरसाल जलप्लावन होता है इसलिये किसानोंको अपना घर बाढ़की सतहसे ऊँचा रखनेमें बड़ी कठिनाई होती है। ऐसी जगहोंमें सहयोग-श्रमसे खेतोंमें तालाब खोदकर विशेष ऊँचा टीला तैयार करना चाहिये। यह भी सही है कि डुब्बा जगहोंमें चारेकी रक्षाकी जरूरत सबसे जादा है। पूर्वी बंगालमें, विशेषरूपसे बरसातमें सारी धरती जलमग्न होजाती है। वहाँके निवासियोंके घर छोटे छोटे द्वीप मालूम होते हैं। ऐसे स्थानोंमें खत्ती (गढ़े) के लिये स्थानका चुनाव एक समस्या है।

४२०. **साइलो खत्ती :** खत्ती किसी आकारकी हो सकती है। पर चौकोन आकार जादे अच्छा है। ऊँचाई और चौड़ाई साधारण तौर पर समान रखी जाती हैं। ८ फूट मान लें। गहराई ८ फूटसे कम नहीं होनी चाहिये। खत्तीकी दीवार चिकनी होनी चाहिये जिससे हवा निकलनेमें आसानी हो और दबावमें बाधा नहीं पड़े। चौड़ाई या गहराईसे लम्बाई दुगुनी या तिगुनी हो सकती है। कोना जरूरही गोल रखना चाहिये। एक ही खत्तीके लिये गोलाकार सबसे अधिक उपयोगी है।

यह याद रखना चाहिये कि जितना चारा जमीनके साथ लगा रहता है वह खराब

होजाता है। इसलिये बहुत छोटी खत्तीमें हानि है। पर बड़ी खत्ती भरने और खलास करनेमें बहुत समय लगता है। जितने चारेकी जरूरत है उसी हिसाब से खत्तीका आकार रखना चाहिये। भरनेके समय एक घनफूटमें १८ सेर हरा चारा अँटता है। भरनेके समय चारा कितना पका है और उसमें कितनी नमी है उसी अनुपातमें वह बैठेगा और कम होगा।

यदि एक तिहाई बैठ जाता है तो एक घनफूटमें १२ सेर तर सामान खिलानेके समय निकलेगा। इस आधार पर ८ फूट गहरी × ८ फूट चौड़ी × १० फूट लम्बी खत्तीमें ६४० घन फूट चारा निकलेगा।

ऐसी खत्ती १० ढोरको डेढ़ महीनेके करीब खिला सकती है। इसमें पशुके आकारके हिसाबसे कमी बेशी भी हो सकती है।

एक बहुत बड़ी खत्तीके बदले कई खत्तियाँ होनेसे सुभीता रहता है।

**४२१. खत्ती भरना :** भरनेके समय खत्तीपर वर्षासे बचनेके लिये छावनी की जा सकती है। क्योंकि यदि भराईके समय पानी बरस गया तो वह साईलेजको नष्ट कर देगा। हर दिन दो फूट सामान खतीमें डालना और रौंद रौंद कर अच्छी तरह दबाना चाहिये। जब कोई पुरानी खत्ती काममें लानी हो तो उसमेंकी सड़ी और पिघली चीजें निकाल कर सफाई करनी चाहिये और खत्तीकी मरम्मत भी।

घास और चारा विना काटेही जैसे खेतसे आया है उसी तरह उसमें डाला जा सकता है। पर इसे खिलानेके समय काटना होगा। एक खास तरहके खुदाईके औजारसे जो रेतीली जमीनमें कुआँ खोदनेके काममें आता है यह चारा काटना होता है। चारेको काटकर ही ढेरमें से निकालना होता है, क्योंकि विना काटे वह निकाला नहीं जा सकता। क्योंकि दबवाने और कुटवानेसे ढेर मिल जाती है अथवा गुथ जाती है। पर यदि चारेकी कुट्टी खत्तीमें डाली जाये तो उसे खलास करना सरल होता है। सिरे परका चारा छप्परकी तरह ढलुआँ होना चाहिये। ४५ अंश (degrees) की ढाल जादे अच्छी होगी। ढालको भी अच्छी तरह कूटना-दबाना चाहिये। इसके ऊपर ६ इंच या १ फूट मामूली सूखे पत्ते-पतियाँ, या पुआल आदि की एक तह देनी चाहिये। पत्ते पुआल, ऊपर डाली जानेवाली मिट्टी साइलेजमें नहीं पड़ने देते और उसे बिगड़ने से बचाते हैं। खुदाईमें जितनी मट्टी निकली थी उसका आधा खत्ती ढकनेमें लगती है। इससे एक मोटी तह बन जाती है जो उसे वर्षासे बचाती है। खत्तीके चौबगल ढलुआँ कर देना चाहिये जिससे बरसातका पानी निकल

जाय। खत्तीके आसपास कोई नाली नहीं होनी चाहिये। क्योंकि इसका पानी रिसकर खत्तीमें पँहुच जाता है। खत्तीके कूट कूट कर दबाये साफ सिरेपर घास-फूस डाल देना चाहिये जिससे कि बरसामें उसकी मिट्टी बह जानेका डर कम रहे।

अगर खत्तीमें हवा पानीका प्रवेश न हो तो अच्छी तरह बनी हुयी साइलेज बहुत दिनों तक चलती है। एक साइलेज ८ वर्षके बाद भी बहुत अच्छी हालत में पाया गया।

सिरेकी ढकाईकी जांच खासकर बरसात और उसके बाद जरूर करनी चाहिये। अगर कहीं पर वह बैठ गयी हो, दरार पड़ गयी हो या मिट्टी बह गयी हो तो उसकी मरम्मत कर देनी चाहिये। ढकाईकी मरम्मत सदा होती रहे।

४२२. **खत्ती खोलना :** खत्ती खोलनेमें बहुत सावधान रहना चाहिये। आरम्भ में एक छोटासा मुँह बनाना चाहिये। जितनी मात्राकी नित्य जरूरत हो केवल उतनी ही निकालना चाहिये। निकालनेके लिये सारी चौड़ाई एक बार नहीं खोलनी चाहिये। एक एक हिस्सा खोलकर उसीके नीचे तक निकालना चाहिये। यदि लम्बाईमें दो फुट खोला गया है तो बस यहीं दो फुट तलेतक निकालते रहना चाहिये। खलास करनेके समय भी हवाका बचाव जहाँतक हो सके करना चाहिये। इसलिये छोटी छोटी कई खत्तियोंमें जमा करना जरूरी है, जिससे कि जो खत्ती एक बार खुली वह जल्दीहो खतम हो सके। खलास करनेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि, खुली जगहसे कमसे कम ३ इंच गहरा चारा निकाल लिया जाया करे।

ऊपर नीचे या अगल बगलमें बिगड़ा सामान और कुछ फेनिल या गन्दला पदार्थ यदि मिले या खोलनेके बाद पानी चूने लगे तो उसे इकट्ठा कर खादके काममें लाना चाहिये।

खलास करनेके समय खत्ती पर हलकी छावनी कर देनी चाहिये जिससे कि वर्षाका पानी उसमें न जाय। यदि बहुत पनीले और खिच्चे (बिना पका) सामानसे साइलेज बनाया जाय तो वह पतला बनेगा और खलास करनेके समय उसमें से पानी टपकेगा। ऐसी चीज ढोर पसन्द नहीं करते और इसे काममें लाना भी कठिन है।

यह न हो इसलिये भराईके समय ही सतर्क रहना चाहिये। बीच बीचमें सूखी घास, पुआल या गहूँ और ज्वारकी डांट जैसी सूखी चीजें भराईमें मिला देनी चाहिये। हरे और सूखे सामानका फेंट देना जरूरी नहीं। एक तह सूखे सामानकी हो और उसके ऊपर दूसरी तह हरे की। हरे और सूखेका अनुपात दोनों सामानकी हालतके अनुसार रखना चाहिये। कम पनीले सामान जैसे पुआल और मक्केकी जुआई डाँटकी तह हेर फेरकर देनेसे भी खत्तीके शुद्ध पनीले सामान की नमी मिटती है। और वह जैसा चाहिये वैसा हो जाता है।

सरकारी क्षेत्र अब साइलेज तैयार कर रहे हैं। साइलेज सबसे पास जहाँ बनता हो वहाँका पता लगाना चाहिये और किसी शिक्षार्थीको भराई और निकासीके समय वहाँ रखनेका प्रबन्ध कर देना चाहिये। उस स्थानकी अवस्थाके अनुसार भराई और निकासी देखनेसे बढ़कर शिक्षाका और कोई उपाय नहीं है। इससे बहुतसी दिक्कतें और निराशा दूर हो सकती हैं।

४२३. सूखे चारेकी रक्षा: सूखे चारेका रक्षा आसान है। स्थान स्थानका तरीका अलग अलग है। साधारण विधि पुंज लगानेकी है। इसे ढोरसे बचानेके लिये घेर देते हैं। धूप और पानीमें खुला रहनेके कारण इसकी कुछ बरबादी होगी ही, इसके गुण और पचनीयतामें भी कमी हो जाती है। साइलोके बारेमें यही दावा है कि उसके जमा करनेमें जितना नुकसान होता है वह सूखे चारेकी पुंजसे कम है। साइलेज करनेसे नीचे लिखे सुबीतोंका दावा किया जाता है:

१. जिस ऋतुमें हरे चारेका अभाव होता है उसमें यह रसीला चारा देता है।
२. जिस समय हरे चारेकी बहुतायत होती है यह अतिरिक्त चारेके काममें आता है।
३. यह सभी चारेको स्वादिष्ट रख उसे बचाता है। रखने और खिलाने दोनोंमें सूखे चारेसे इसमें कम नुकसान है।
४. सूखे चारेसे यह ज्यादे स्वादिष्ट है।
५. जमीनके नीचे रहनेके कारण इसे चोर या आग का भय नहीं है।

पर साइलेज करनेमें एक त्रुटि है। सभी ढोरको सिर्फ साइलेजही नहीं खिलाया जा सकता। इसमें नमीकी मात्रा अधिक है इसलिये सभी कामकाजी पशुओंके लिये इसके साथ कुछ सूखा चारा भी मिला देना चाहिये। पर बिसुखी और दुधार गायें केवल साइलेजपर ही रक्खी जा सकती हैं।

४२४. गाँवकी गैरमजरुआ आममें चराना : बन्दोबस्तोके कागजोंमें गाँवकी कुछ जमीन जनताकी दिखायी रहती है। गोचर, श्मशान या कब्रिस्तानकी जमीनके छोटे टुकड़े जनताकी मिल्कियत बताए गए हैं। जनताको उन्हें काममें लानेका अबाध अधिकार है। गैरकानूनी दखलकी लालचसे बहुत सी जगहोंमें रैयतोंको खेतीके लिये गोचरोंका बन्दोबस्त दे दिया गया है। अनेक स्थानोंमें धीरे धीरे उसे दबा लिया गया है। ढोरोंकी संख्या-वृद्धिके कारण गावोंमें सार्वजनिक गोचरकी कमी बहुत खटकने लगी है। कभी कभी पशुओंकी संख्याके अनुपातमें जमीन इतनी कम होती है कि, उसे खड़े होने या कसरतके लिये घूमनेकी जगह मानना अधिक ठीक होगा। उस पर चरने लायक सामान किसी समय भी जादे नहीं होता। पशु अधिक होते हैं इसलिये घासकी पत्तियों और उनमें होड़ रहती है। उसमें कोपलें दिखायी पड़ीं नहीं कि उसे कतर लेनेको सजीव कैंची तयार है। ढोर इस होड़में सफल होते हैं और गोचर उजाड़का उजाड़ रहता है।

समय समयपर इसके लिये बहुतसे सुझाव हुए हैं कि जिन, गैरमजरुआ आम जमीनोंको दबा लिया गया या बन्दोबस्त कर दिया गया है उन्हें छुड़ा लिया जाय, जमीनपर पशुओंके बढ़तीका नियंत्रण हो, इन्हें घेरकर इनमें चारा और घास उपजायी जाय और उन्हें काटकर वितरण किया जाय। पर कोई परिणामकारी काम नहीं हुआ। ग्राम्य समाजोंके मिटनेसे गाँवकी ये सार्वजनिक सुख-सुविधायें भी मिट गयीं। यह भी कहा गया है कि, गाँवके सार्वजनिक गोचरोंके विस्तारसे कोई मतलब न हो सकेगा क्योंकि उनका विस्तार होते ही उनपर दुबले पतले ढोर भर जायेंगे। और इस तरह अवस्थामें क्षणिक सुधारके सिवा और कुछ नहीं होगा। बिगड़ी बातके लिये रोने से क्या फायदा? ये सार्वजनिक गोचर सदाके लिये बिदा हो चुके। ग्राम्य समाजोंकी पुनःप्रतिष्ठासे गाँवमें फिरसे जीवन आ सकता है। तभी सार्वजनिक गोचरका प्रस्ताव भी सजीव हो सकता है। इसलिये आज सार्वजनिक गोचरके मामलेमें ग्राम्य समाजोंकी पुनःप्रतिष्ठाके अलावा और कुछ न तो सोचा जा सकता है और न किया। बात यहाँ तक बढ़ गयी है कि, कुछ स्थानोंके गोचरोंमें गोबरकी भी रखवाली होती है। यदि चरवाहेको मालूम हो जाय कि यह गोबर उसके ढोरका है तो चट उसे उठा लेता है। वास्तविक चराईके लिये आज इन गोचरों को पूरी तरह नष्ट ही मानना चाहिये।

**४२५. गोचरकी रक्षा :** रेलवे बाँधके अगल-बगल, नदी और नहरके तट, सड़कोंके किनारे आजकल गोचरका काम चलाया जाता है। गाँवकी गली-बाटको अगल-बगलके किसानोंने दबा लिया है। इस कारण अच्छी सड़कें भी कहीं कहीं सँकरी हो गई हैं और वह एक तरहसे जाने आने लायक नहीं रहीं। तौभी इन गलियोंमें चरनेको कुछ मिल जाता है। पर अभी कुछ नहीं किया जा सकता। जब ग्राम्य समाजें पुनःप्रतिष्ठित होंगी तब ये नई संस्थाएँ गांवके सार्वजनिक स्थान, गोचर, गली-घाटके प्रति अपना कर्त्तव्य समझेंगी और उचित कार्रवाई करेंगी। (५९६)



चित्र ३२. जंगल-चराईके कारण दुबले पतले पशु
(लाइभ-स्टॉक प्रॉब्लेम भिस-ए-भिस ग्रेजिं)

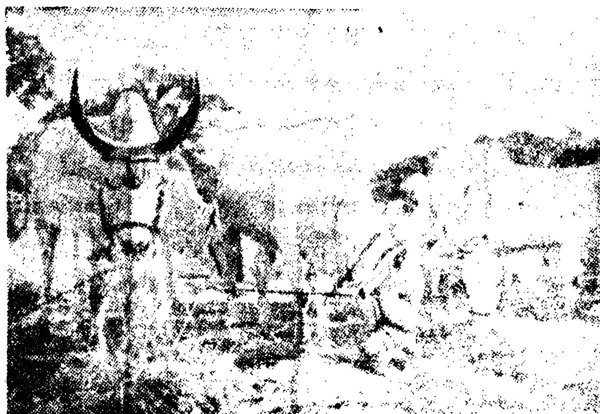
**४२६. जंगलकी चराई :** यह विषय विशाल और रोचक है। केवल उसकी रूपरेखाकी चर्चा यहाँ हो सकती है।

डा० भोयेल्करने इन जंगलोंकी उपयोगिताकी ओर सरकारका ध्यान खींचा। जनता उनका और अच्छा उपयोग करे इसके लिये उनने उपाय भी सुझाये। उनका तर्क था कि, जंगल सरकारकी आमदनीके लिये नहीं हैं। पर जहाँ तक हो सके वह जनताकी भलाईके लिये हैं। यह सरकारकी भी घोषित नीति है। उनका आग्रह था कि, वह घोषित नीति काममें लायी जाय। उन्होंने जंगलकी

और दिखाया कि (क) वहाँ चराईकी अच्छी गंजाइश है, और (ख) जलावन भी मिल सकता है जिससे खादके लिये गोबर बच जायेगा।

जंगलसे गोचरका काम लिया जा सकता है इसी विषय की चर्चा यहाँ की जाती है।

**जंगलमें चराई का आँकड़ा :** भारतमें जंगल-विभागके अधीन १५८ हजार वर्गमील जमीन है। गैरमजरुआ जमीनका क्षेत्रफल भी बहुत है। यह माल-विभाग (Revenue Department) के जिम्मे है। इसलिये इसे जंगलसे अलग मानना है।



चित्र ३३. खूँटेपर खिलाईके कारण हृष्ट पुष्ट पशु
(लइभ-स्टॉक प्रॉब्लेम मिस-ए-मिस ग्रेंजि)

जंगलकी जमीनमें जितनी ऊपरी हिमालयमें है उनसे काम नहीं लिया जाता। बंगाल, बिहार और युक्तप्रान्तमें हिमालयके पादप्रदेशकी पहाड़ियोंपर जो बड़ा बन-भाग है वहाँ तक किसानोंकी पहुँच नहीं है। (३६६. ५६६)

**४२७. जिन प्रान्तोंमें बनकी चराई होतीहै :** जिन प्रान्तोंमें जंगलकी चराई होती है वह मुख्यरूपसे पंजाब, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, मंदरास, बम्बई और सिन्ध हैं। चराईकी सुविधा सारे पशुधनके बहुत कम भागको मिल सकती है। सिर्फ ढोरका ही विचार करनेपर आँकड़ा नीचे लिखे अनुसार होगा।

# आँकड़ा—३२

## जंगलमें चरनेवाले ढोर को गिनती

| | | चरनेवाले | कुल ढोर |
|---|---|---|---|
| युक्तप्रान्त | ... | १० लाख | ३ करोड़ २५ लाख |
| मदरास | ... | १५ ,, | २ ,, ४५ ,, |
| पंजाब | ... | १० ,, | १ ,, ६० ,, |
| मध्यप्रान्त | ... | ३० ,, | १ ,, ४० ,, |
| बम्बई | ... | २० ,, | १ ,, |
| | कुल | ८५ लाख | ९ करोड़ ७० लाख |

जिन प्रान्तोंमें ढोरको सबसे जादे चराते हैं मालूम होता है कि वहाँ केवल ८½% को जंगलका फायदा होता है। सारे भारतका अंक तो और कम हो जायगा। वह पाँच सैकड़ाके लगभग हो सकता है। (३६६, ५६६)

४२८. **चराई वाले पाँच प्रान्तोंका आँकड़ा :** प्रान्तोंके कुल पशुधनकी संख्याका विचार करते हुए आँकड़ा यों है :

# आँकड़ा—३३

## १६३५ की गणनाके अनुसार कुल पशुधनकी संख्या (हजारमें)

| प्रान्त | | भैंस | गाय बैल | भेड़ बकरी | अन्य | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| युक्तप्रान्त | ... | ९,२९३ | २३,१७७ | १०,००२ | ८१८ | ४३,२९० |
| मदरास | ... | ६,८१७ | १७,७९० | १८,७०० | २०३ | ४३,५१० |
| पंजाब | ... | ६,०४८ | ९,७९२ | ८,५८९ | १,३९८ | २५,८२७ |
| मध्यप्रान्त | ... | २,१९४ | ११,६५० | २,१९३ | १८५ | १६,२२२ |
| बंबई | ... | २,५१३ | ७,४४८ | ३,७९० | २०० | १३,९५१ |
| | कुल— | २६,८६५ | ६९,८५७ | ४३,२७४ | २,८०४ | १,४२,८०० |
| बाकी ब्रिटिश भारत | | ४,७६८ | ४२,१४७ | १५,१११ | ५३९ | ६२,५६५ |
| देशी राज्य ६६% | | १२,३५१ | ४२,०२२ | ३३,७५२ | १,७९० | ८९,९१५ |
| अखिल भारतका कुल | | ४३,९६४ | [illegible] | ९२,१३७ | ५,१३३ | २,९५,२८० |

## चराईके इलाके और चरनेवाले पशु

| प्रान्त | कुल जंगल वर्ग मीलमें | कुल जंगल जहाँ चराई होती है वर्ग मीलमें | जंगलमें चरनेवाले पशुधनकी संख्या (हजारमें) भैंस | गाय बैल | भेड़ बकरी | अन्य | कुल | प्रति वर्ग मीलमें संख्या और प्रति पशु एकड़ संख्या | एकड़ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| युक्तप्रान्त | ६,००० | ४,००० | १४६ | ८८३ | २५० | १० | १,२८९ | ३२२ | २ |
| मद्रास | १६,००० | १४,००० | १०८ | १,३७० | ७३२ | - | २,२१० | १५८ | ४ |
| पंजाब | ५,२०० | ४,७०० | २४७ | ८६६ | १,५५७ | ५६ | २,७२६ | ५८० | १·१ |
| मध्यप्रान्त | १९,४०० | १७,००० | ३१२ | २,५०० | ३०० | ५ | ३,११७ | १८३ | ३·५ |
| बंबई | ३४,००० | १५,४०० | ३५३ | १,५१४ | ५४२ | १७ | २,४२६ | १९५ | ३·२५ |
| कुल— | ६०,६०० | ५२,१०० | १,१६६ | ७,१३३ | ३,३८१ | ८८ | ११,७६८ | २२६ | २·८ |
| | | | | | | | | (औसत) | |

(३६६, ५६६)

**४२९. प्रति ढोर जमीन :** इस आँकड़ेसे प्रति ढोर जमीनका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। आँकड़े यहाँ काम नहीं देते। आँकड़ेके हिसाबसे (आँकड़ा—३३) पंजाबमें प्रतिढोर १·१ एकड़ जमीन होती है और मद्रासमें प्रति ढोर ४ एकड़ है। कुलका औसत २·८ एकड़ होता है। पर यह कुल जमीन है। इसीमें अगम घने जंगल और बहुत ऊँचे पहाड़ भी शामिल हैं। ऐसी जगहोंमें या तो चरने लायक कुछ है नहीं अथवा वह काममें नहीं आ सकतीं। क्योंकि वास-वाससे दूर होनेके कारण वहाँतक पँहुचना कठिन है। गाँवोंके पास जंगलके किनारे जहाँ पानीका सुबीता है और जहाँ अस्थायी वास बन सकते हैं, प्रति ढोर जमीनका अनुपात अधिक होते हुए भी संकुलता बढ़ती होगी।

**४३०. चराईकी नाममात्रकी फीस :** पंजाबमें चराईके लिये कुछ देना नहीं पड़ता। वहाँ गाँववालोंको ढोर चरानेका हक है। युक्तप्रान्तमें ६८ सैकड़ा ढोर चराई करते हैं। इसके लिये कुछ देना नहीं पड़ता। उनका हक मंजूर कर लिया गया है। जहाँ पशुओंकी चराईके लिये देना होता है वहाँ फीस नाममात्रकी ही नीचे लिखे अनुसार है।

| पशु | | प्रतिवर्ष |
|---|---|---|
| गाय, बैल और साँढ़ | ... | २ आनेसे ८ आने तक |
| भैंस | ... | १२ आनेसे २) रुपए |
| बछड़े और पाड़े | ... | मुफ्त |
| भेड़ बकरी | ... | ३ पैसेसे २ आने तक |

नाममात्रकी यह फीस देकर लोग बहुत दूर तक अपने ढोर चरा सकते हैं। चरनेवाले पशुओंकी संख्या बहुत ही जादे होती है। चाहे जितने पशुको चरनेकी इजाजत मिल जाती है। फीस नाममात्रकी होती है इसलिये जंगलके पासके गाँवों और जंगलोंमें लोग बहुत जादे ढोर पालते हैं। फीस थोड़ी मिलती है इसलिये जंगल-विभागवाले चरागाहोंकी कुछ उन्नति नहीं करते। दूसरी ओर फीस देनेवालोंमें इससे असंतोष पैदा होता है कि, उनसे फीस तो ली जाती है पर चरागाहोंकी हालत सुधारनेके लिये कुछ नहीं किया जाता। आजकी हालत तो यह है कि, ऐसे चरागाह जलावन तैयार करनेके काममें आ सकते हैं और कभी कभी आते भी हैं। नाममात्रकी फीस लेकर असंख्य ढोरोंको चरनेकी इजाजत दे दी जाती है और वह अपनी संख्या-वृद्धि करते हैं। उनका गोबर सुखाकर जलावनके लिये लाया

जाता है। जानवरोंका कैसा उल्टा उपयोग हो रहा है! पशु चाहे जितने घटिया हों पर बेचने पर उनका भी कुछ दाम मिलता ही है।

हालत बहुत कुछ सुधर सकती है। यह बात नहीं कि, कहीं सुधार नहीं किया जा रहा है। युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बंबई और मदरास प्रान्तोंमें अवस्था सुधारनेके लिये जंगल-विभागवाले बहुत संलग्न हैं। पर जैसी दशा है उसमें कुछ होनेकी बहुत कम आशा है। यदि अकेले जंगलकी चराईकी समस्याही सुलझानेकी कोशिश हो तो सुधारकी गंजाइश कम है। यह सुझाया गया था कि, किसी निर्दिष्ट स्थानमें चरनेके लिये पशुओंकी संख्या निर्धारित रहे। उस स्थानपर नियंत्रण रखनेके लिये घेरा लगाया जाय। पशुओंके आर्थिक महत्वके हिसाबसे फीस कम-बेशी रहे। पशु जितनाही हीन कोटिका हो उतनी ही जादे फीस उसकी ली जाय। श्रेष्ठतर पशुओंकी केवल नाममात्रकी फीस हो। यह आखरी सुझाव अव्यवहारिक है। क्योंकि, अच्छे और बुरेका अंतर सूक्ष्मही है। मध्यप्रान्तमें नियंत्रण किया जा रहा है और कुछ स्थानोंमें घेराभी लगाया जा रहा है। कुछ इलाकोंमें मदरास और बंबई भी नियंत्रण चालू कर रहे हैं। अभी केवल शुरू हो किया गया है। पर जहाँ कुछ उत्साह है वहाँ परिणाम शीघ्रतासे होनेकी उम्मीद है।

शाही कमीशनने चराईके बदले घास गढ़ाई (काटने) को बढ़ावा देनेकी भी सिफारिश की है। देखा गया कि, यह भी अव्यवहार्य है। चरानेसे गढ़नेमें खर्च बहुत जादे पड़ता है। जिस दूरके स्थानमें ढोर चरनेको नहीं आ सकते वहांके लिये घासके सुखाने, बाँधने और ढोनेकी समस्या है। घास काटनेके समय मजूर मिलना कठिन है। क्योंकि, आदमी खेतीके दूसरे काममें फँसे रहते हैं। यह दूर होने लायक कठिनाई नहीं है। इन कठिनाइयोंके कारण जंगलकी चराईके मामलेमें जितना अभी हो रहा है उससे अधिक कुछ नहीं हो सकता। (३६६, ५६६)

**४३१. बंगालमें जंगलकी चराई :** प्रान्तोंमें जंगलकी चराईका वर्णन नीचे दिया जाता है। बंगालकी सीमाके हिमालय-प्रदेशमें जितनी बस्तियाँ हैं वहाँ सरकार खूँटेपरकी खिलाईको बढ़ावा दे रही है। मालूम होता है कि, पहाड़के शहरोंमें दूध जुटानेके लिये यह उपाय किया जा रहा है। सरकारी खर्चसे गोहाल बनाने और खूँटेपर खिलानेके लिये घास कटाईकी थोड़ीसी फीस लेनेकी

पद्धति चलायी गयी। दोगली नस्लकी गायको बढ़ावा देनेके लिये ये गोशालायें काममें लायी जाती थीं। हिमालयके ठंडे प्रदेशमें वे सचमुचमें अधिक दूध देती थीं, पर इनमें भारवहन-गुण नहीं होता था। इनके बैल किसानके किसी कामके नहीं होते थे। दार्जिलिंग और करसियांग के जंगलोंभर ही यह प्रयत्न रहा। कलिम्पोंग जंगल-डिविजनमें गोहालके किरायेदारोंको खूँटेपर खिलानेके लिये राजी नहीं किया जा सका। इन गोहालोंमें खूँटेपर खिलानेके प्रयोगका प्रान्तकी साधारण ढोर-समस्यासे कोई सरोकार नहीं था।

डुआरभी पहाड़ी इलाके हैं। इनमें पहाड़ीलोग बहुत छिट फुट बसे हुए हैं। मैदानके गाँव तराईसे बहुत दूर बसे हैं। इसलिये तराईमें चरानेका सुबीता उन्हें नहीं है। चटगाँवके और पहाड़ी डिविजनके पहाड़ी लोग अनिश्चित ढगसे खेती करते हैं। चरानेकी इजाजत है। पर प्रान्तके लिये उसका आर्थिक महत्व नगण्य है। (३९६, ५९६)

४३२. **बिहारमें जंगलकी चराई :** बिहारमें इस समस्याका बहुत महत्व नहीं है। क्योंकि यहाँ जंगल केवल तीन सैकड़े जमीनपर है। इसके सिवा सरकारके अधीन गोचरके लायक जितनी जमीन है वह नगण्य है। सरकारके पास कुल २२ लाख एकड़ है और ४०५ लाख एकड़ जमींदारोंके पास है। सरकारको जितना जंगल है, जो वस्तुतः जंगल कहा जा सकता है उसमें कुछ करनेकी जरूरत है नहीं। पानीसे निकली और बेहड़ जमीनमें चराईके लिये सुधारकी गुंजाइश है। यह सुझाव पेश किया गया है कि यदि खाई खोदकर इन जमीनोंकी ढोरसे रक्षा की जाय तो इनमें जल्दी ही घास जम जायगी। तब यहाँ घास गढ़ना (काटना) या नियंत्रित उपायसे चराना संभव होगा।

बहुतसी परती जमीन और जंगल व्यक्तिगत हैं। इनका उचित प्रबन्ध नहीं होता है। अगर इनका उचित प्रबन्ध हुआ रहता तो चरानेके लिये बहुत जमीन होती। (३९६, ५९६)

४३३. **बम्बईमें जंगलकी चराई :** कृषि-विभाग ने खासकर सूखे इलाकेमें बहुत काम किया है। जो उपाय किये गये हैं, उनसे साबित हो चुका है कि, चराने और घास उपजानेमें बहुत उन्नति की जा सकती है। और वह उपाय हैं :— बाड़ा घेरना, फेर-बदल कर चराना, ढोरकी संख्या सीमित कर देना, बरसातमें चराना बन्द कर देना, पानीका प्रबन्ध करना और छायेदार पेड़ लगाना।

नियोजित प्रबन्धमें जंगलकी चराईका विकास हो रहा है। ५०० एकड़ जमीनको सौ सौ एकड़के पांच टुकड़ोंमें बांट दिया गया है। सौ एकड़के एक टुकड़े में हर पांच वर्षके लिये चराई बन्द रखी जाती है। इसके सिवा प्रति वर्ष कटाई करलेनेके पहले ३६,००० एकड़ जमीन चराईके लिये दी जाती है। बम्बईके सूखे भागों में अत्यधिक चराईसे गहरी हानि हो रही है। (३६६, ५६६)

**४३४. मध्यप्रान्त और बराड़ में जंगलकी चराई :** प्रान्तकी कुल जमीनका $\frac{३}{१०}$ भाग सरकारी जंगल है। इन जंगलोंका ८६ सैकड़ा भाग चरानेके लिये खुला है। इसके सिवा व्यक्तिगत जंगल बहुत हैं। जंगल-विभाग निर्धारित ढंगसे काम करता है। समय समयपर और फेर-बदल कर जंगल बन्द भी किये जाते हैं।

मध्यप्रान्तके पच्छिमी सरकलके जंगलके कंजरवेटर श्री सी० एम० हारलोने पशुपालन-शाखाकी दूसरी बैठकके लिये अपनी टिप्पणीमें मध्यप्रान्तके ढोरके बारेमें लिखा है। उसमें उन्होंने जंगलमें चरानेकी समस्या खास तौरे पर बताई है।

"यह एक साधारण बात है कि, चरनेकी जितनी जादे सुविधा होगी ढोर उतनेही खराब होंगे। यह बात सच है। इसमें अपवाद थोड़े हैं। दूसरी तरफ यहभी सच है कि, थोड़े ही अच्छे ढोर रक्षित जंगलोंमें चरनेके लिये जाते हैं। अधिक सयाने समाजके लोगोंके दखलमें अच्छी जमीन होती है। यह जंगलसे दूर हुआ करती है। जंगलके पासकी जमीन घटिया होती है। इसपर आदिवासियों या कम सयानी जातिवालोंका दखल होता है। मैदानका किसान जरूरतसे जादे ढोर नहीं रखता। उसके लिये हर एकका महत्व बहुत है। वह उनकी सँभाल रखता और अच्छी तरह खिलाता है। अगर उसे बदलना पड़ता है तो वह मिल सके तो अच्छी नसलका खरीदता है। पर अधिकतर पासके जंगलसे वार्षिक मेलोंमें लाये गये चुनिन्दे ढोर लेता है। कुछ अधिक नियमित खिलाईसे ये ढोर सुधर जाते हैं। जंगली इलाकोंमें रहने-वाले निकम्मे ढोरके बड़े-ठट्ठ पालते हैं। उन्हें या देशको जितनी जरूरत है उससे कहीं जादे बड़ा ठट्ठ वे पालते हैं। उन्हें खूँटेपर कभी नहीं खिलाया जाता। जब फसल कट जाती है तब वे खेतोंमें चरते हैं। दूसरे समय वे जंगल या गाँवके गोचरमें चरते हैं। इसके लिये वे नित्य जंगल आते-जाते हैं।"

(पृ० २३६) (३६६, ५६६)

४३५. **मदरासमें जंगलकी चराई :** मदरासमें जंगलोंके बीच बीच गाँव बसे हैं। इसलिये नजदीकी गाँवके ढोर वहाँ चरते ही हैं। जंगलकी सीमापर हदसे जादे चराई होती है। वहाँ अच्छे प्रकारकी घासोंका प्रयोग किया गया है। पर इसका फायदा तबतक नहीं हो सकता जबतक चराईकी फीस बढ़ाई नहीं जाती। यह जंगल-विभागकी राय है। पूरे वर्षके लिये चराई-फीस प्रति गाय ३ आनेसे १) रुपए तक है। ओसत आठ आनेका है। जंगल-विभाग एक तरहके कीड़े (cochineal insects) के द्वारा गोचरों में नागफनी नहीं जमने देते। गोचरोंमें पानी मिले इस तरफ भी कुछ ध्यान दिया गया है। कुछ जगहोंमें फेर-बदलकर चरनेकी व्यवस्थाकी गयी है। इनमें "कंचा" प्रथा उल्लेखनीय है। सारे प्रान्तमें नेल्लर ही एक ऐसी जगह है जहाँ चराईका प्रबन्ध दृढ़ सिद्धान्तके अनुसार है। यह प्रथा बहुत प्राचीन है। उन्नत पशुके मालिकोंको इससे लाभ हुआ हैं। कंचादार (ठीकेदार) के साथ शर्त्त रहती है कि वह जमीनकी रक्षा करेगा। बरसातमें तीन महीनेतक चराई स्थगित रखेगा। ढोरकी अधिकसे अधिक संख्या सीमित रखेगा। (३९६, ५९६)

४३६. **युक्तप्रान्तमें जंगलकी चराई :** युक्तप्रान्तमें खाद और जलावनकी बहुत जरूरत रहती है इसलिये अनेक पशु पाले जाते हैं। इन्हें जंगलोंके किनारे और घासके मैदानोंमें चराते हैं। इन स्थानोंमें चरनेवाले ढोरकी संख्या अपरिमित है। पर जंगलतक बहुत थोड़ेही पहुँच पाते हैं। क्योंकि वह उनके रहनेकी जगहसे दूर होते हैं। ४३२½ लाख गृह-पशु हैं जिनमें ४२० लाख पशु जंगल नहीं जाते। १२½ लाख पशु जगल जाते हैं। इनमेंसे ६८ सैकड़ाको बहुत दिनोंके रिवाज या हकके कारण छूट है। इसलिये उनको रोका नहीं जा सकता। इतना होते भी जंगलोंमें कायदेसे चराई और जंगल लगानेके कारण सुधार हो रहा है।

बिहारकी तरह ही युक्तप्रान्तमें भी असली समस्या सरकारी और व्यक्तिगत गंगबरार (पानीसे निकली) और परती जमीनों के उपयोगकी है। (३९६, ५९६)

४३७. **पंजाबमें जंगलकी चराई :** पंजाबमें जंगलकी चराईका प्रबन्ध हुआ है। पंजाबमें जंगलके अफसरलोग बहुत दिनोंसे महसूस कर रहे हैं कि, तराईके प्रायः सभी जंगलोंकी हालत बहुत खराब हो रही है। क्योंकि, उनमें सामर्थ्यसे जादे चराई होरही है। जंगलोंमें चरानेका सबको पुराना हक मिला हुआ है। इसलिये वहाँ नियंत्रण करना संभव नहीं। यह बुराई अभीतक चली आरही है

इस कारण वर्षासे मिट्टी कटती है। घास और पौधे बह जाते हैं। यह बुराई बढ़ ही रही है। इसलिये तराईके निवासियोंका चराईके मामलोंमें नियंत्रण करना चाहिये। इसमें उन्हींकी भलाई है। (३६६, ५६६)

४३८. **अन्य प्रान्त :** उत्तर-पच्छिम सीमाप्रान्तकी हालत भी बहुत कुछ पंजाबसी है। आसाम, उड़ीसा और सिन्धमें चराईकी समस्या नहीं है। क्योंकि उसकी जरूरत कम है और जंगलका महत्वभी अपेक्षाकृत कम है। केवल ३ प्रतिशत अर्थात् ४५,००० ढोरही चराये जाते हैं। इतनेके लिये चरनेका काफी सामान है। (३६६, ५६६)

४३९. **सरकारी जंगलोंके बाहरकी चराई :** माल महकमा और व्यक्तिगत अधिकारमें बहुतसी पड़ती जमीन है। इनके कुछ हिस्सोंमें चारेके लिये फायदेके साथ घास उपजायी जा सकती है। इन जमीनोंका बहुत सुधार किया जा सकता है। इन पड़ती जमीनोंके बीच बाचमें बहुतसी बस्तियाँभी हैं। इसलिये इन्हें चरनेके लायक बना देनेसे बहुत फायदा होगा। युक्तप्रान्तने एक उदाहरण दिखाया है।

युक्तप्रान्तमें ऐसी जमीन बहुत है जिसे ऊसर कहते हैं। इस मिट्टीमें क्षार (alkali) होता है। यह व्यापारके लिये क्षार (सोडा) पानेका प्राकृतिक साधन है। सन् १९१८ के महायुद्धके समय रेह-मिट्टीसे क्षार बनानेका सफल प्रयोग किया गया। मिट्टीकी ऊपरी सतहपर आधा या तीन चौथाई इंच रेह रहती है। इसे हटा लेने पर फिर दूसरे साल वैसीही परत पड़ जाती है। इस तरह कमसे कम कुछ दिनोंतक क्षार मिलता रह सकता है। यह प्रयोग बन्द कर दिया गया। इसका कारण शायद लड़ाई के बादका सस्ता विदेशी क्षार है। (३६६, ५६६)

४४०. **ऊसरको आबाद करना :** ऊसर बेकार पड़ा हुआ है। उसे आबाद करने की जरूरत है। मिट्टीका क्षार निकालनेके कितने ही प्रयोग हुए हैं। मिट्टीमें क्षारकी मौजूदगी, वह कैसे इकट्ठा होता है और सूरत बदलता है इस बारेमें बहुतसे मत मतान्तर हैं। युक्तप्रान्तकी सरकारने उन्हें आबाद करनेका बहुत सरल उपाय पा लिया है। जमीनमें इतनी क्षार होती है कि उसपर पेड़ नहीं उग सकते। पर जहाँ पेड़ नहीं उग सकते वहाँ घास उग सकती है। इसके लिये उसे चराई से बचाना होगा। इसकी कोशिश की गयी। ऊसरमें चराई रोक दी गयी। नयी उगी घास खूब पनपी और जमीनपर छा गयी। घास काट लेनेकी इजाजत थी।

इस प्रयोगमें बहुत सफलता मिली। चराई बन्द करनेके बादका चार वर्षोंका लेखा नीचे दिया जाता है।

| वर्ष | | प्रति एकड़ घासकी उपज |
|---|---|---|
| १९३१ | ... | २·७ मन |
| १९३२ | ... | ४·८ ,, |
| १९३३ | ... | ९·३ ,, |
| १९३४ | ... | १२·१ ,, |

चार वर्षके प्रयत्नसे ही घासकी उपज २·७ मनसे १२·१ मन प्रति एकड़ हो गयी। कानपुर और उन्नावके पास कुछ ऊसरोंको बहुत दिनोंतक रक्खा गया। उनमें एकड़में २९ मनसे भी अधिक सूखी घास हुई।

ये प्रयोग यह बताते हैं कि ऊसरोंको यदि काममें लाया जाय और उनमें घास उपजायी जाय तो युक्तप्रान्तमें चारेकी समस्या सुलझ जायगी।

४४१. **नहरके तट और कमजोर जमीनका उपयोग :** "लकड़ी, जलावन और चारा उपजानेके लिये यह सब जमीनें सबसे उत्कृष्ट सिद्ध हुई हैं। नहरके किनारे लगाये पेड़ इतना बढ़ते हैं कि प्रान्तका कोई जंगल इनसे आगे नहीं बढ़ सकता।"—(स्माइथीज, पशुपालन शाखाकी दूसरी बैठक, १९३६, पृ० २३०)। पेड़के चारेके सिलसिलेमें यह बात फिर कही जायगी। एक तरहकी जमीन और है। इसमें खेती करना खतरनाक है। क्योंकि इसकी मिट्टी बहुत कमजोर है। बरसातमें इसमें घास पैदा की जा सकती है और उसे काटकर साइलेज बनाया जा सकता है। इसमें किसी तरहका बाड़ा लगाना चाहिये जिससे घास बढ़े। घास काटकर उसे सुखा लेनेके बाद इस जमीनमें चराने देना चाहिये। इससे इस जमीनको खाद मिलेगी और धीरे धीरे स्थायी उन्नति होगी।

४४२. **पेड़का चारा :** ऐसे बहुत से पेड़ हैं जिनके पत्तोंका चारा हो सकता है और काटी डाल जलावनके काम आ सकती है। कुछ दिनोंके बाद पेड़ोंको जलावन या लकड़ी (मकान आदिकी) के काममें लाया जा सकता है और उनकी जगह नये पेड़ लगाये जा सकते हैं जिससे चारे मिलनेका सिलसिला बराबर लगा रहे।

पेड़से चारा मिल सकनेके बारेमें श्री स्माइथीज (Mr. Smythies, Conservator of Forest, Western Circle, U.P.) लिखते हैं :

"...सूखे और घटिया गोचर-स्थानोंमें सिर्फ घासकी ही बात सोचना भूल है। हाल-सालमें जंगल-विभागमें कितने जरूरी सुधार हुए हैं। उनमें एक यह है कि, सूखे स्थानोंमें पेड़ लगाकर बहुतसा चारा उपजाया जा सकता है। सारी जमीनमें छायी हुई घासकी अपेक्षा उसी जमीनके एक पेड़से सालमें एक बार या कई बार काटे पत्तेके चारेकी मात्रा अधिक होगी यह साफ है। जंगल-विभाग थोड़े खर्चसे बहुत बड़ा जंगल लगानेमें तत्पर हैं। चारा, काठ और जलावनके लिये 'टौंग्या' का साधन इस काममें लाया जारहा है। मैं सहारनपुर डिविजनका उदाहरण दूँगा। यहाँ २,००० एकड़से जादेमें सफलताके साथ पेड़ लगाये जा चुके हैं। हमलोगोंका लक्ष्य है कि ५० वर्षतक हर साल ६०० एकड़में पेड़ लगावें। बहराइचके भिनगा-जंगलमें भी २०,००० एकड़ टौंग्या लगानेके लिये अलग निकाल दिया गया है। इसके जरिए आस-पासके गाँवोंमें चराई और पत्तेके चारेकी सुविधा होगी। सहारनपुरमें हमारे टौंग्या-गाँवोंकी जनसख्या अभी ही २,००० से अधिक है। वहाँ हमलोगोंने ग्राम-पाठशालायें, चिकित्सा-प्रबन्ध, सहयोग-समितियाँ आदि खोली हैं। इन बातोंसे पता चलेगा कि चारा और जलावन सफलतापूर्वक पैदा करनेके संघटनको हम कितना महत्व देते हैं। यह माननेमें हमें हिचक नहीं है कि, इस तरह काम करनेसे घासकी तरक्की और तरीकोंकी अपेक्षा अधिक हो सकती है। क्योंकि ये सूखे भाग घासकी अपेक्षा स्वभावतः पेड़के लायक हैं। घास तो जमीनकी लम्बाई चौड़ाईमें ही हो सकती है। पेड़को ऊँचाईभी मिलती है। हमारे लगाये पेड़ अभीतक इतने बड़े नहीं हुए हैं कि छँटाई सह सकें। (सबसे बड़ेभी पाँच वर्षके ही हैं)। पर समय आनेपर हमारा विचार बारी बारीसे पत्तेके चारेकी छँटाई करनेका है। अनुभव होनेपर काम ब्यौरे के साथ होगा।"

"वर्त्तमान जंगलोंमें पत्तेके चारेके लिये छँटाई: यह प्रथा व्यापक है। पशुधन को खिलानेमें चराईके अतिरिक्त यह महत्वकी चीज है। अनुभवसे यह सिद्ध हुआ है कि छँटाईका नियंत्रण आवश्यक है। उदाहरणके लिये 'गूजर' हैं। यह लोग नाशकारी छँटाईके लिये बदनाम हैं। यह लोग पश्चिमी सरकलमें व्यापक छँटाई करते हैं। पर नियन्त्रणके कारण जंगलोंकी स्थायी हानि नहीं होती·····"—(पशुपालन शाखाकी दूसरी बैठक, १९२७, पृ० २२९)

फेर-बदल कर यदि पेड़ोंको छाँटें तो बहुत चारा मिल सकता है। इस बातका लोगोंने काफी फायदा नहीं उठाया है। इस तरह चारेका साधन बहुत

बढ़ाया जा सकता है। जहाँ ऊसर और नहरके तट गाँवके नजदीक हैं वहाँ उनपर उपयुक्त पेड़ लगाने से यह जलावन और चारेका बड़ा साधन हो सकता है। बबूल खराब से खराब जमीनमें भी होता है। सिन्धवालोंके लिये यह बहुत जरूरी चीज है। इसकी पत्तियोंसे उन्हें चारा मिल जाता है। बीजसे पौष्टिक और तनेसे काठ तथा जलावन। बबूलके सार काठसे गाड़ीके चक्के और धुरी बनाई जाती है। मैं यह भी कह सकता हूँ कि चमड़ा कमानेके लिये बबूलकी छाल बहुत अच्छी चीज है। जिस जमीनमें और कुछ नहीं उपजेगा वहाँ यह उपज सकता है। और इस तरह गाँवके जलावन तथा चारेकी जरूरत पूरी करता है। यह कोई नयी बात नहीं है।

**४४३. चूके अवसरका अध्याय :** डा० भोयेलकरकी एक ही पुकार थी "चारा और जलावनकी रखाँत"। नीचे उनका उद्धरण विस्तारसे दिया जाता है। यदि जलावन और चारेकी रखांतका बहुत उपयोगी और व्यावहारिक उपाय लगातार किया गया होता तो यह सवाल कितना हल हुआ रहता, यही दिखाना इसका उद्देश्य है। डा० भोयेलकरने जो उदाहरण दिखाये हैं उनसे चारा और जलावनकी समस्या सुलझानेके लिये आजभी कुछ करनेकी प्रबल प्रेरणा मिलती है। रेलवे और नहरके बाँध, छोटी नदियोंके तट, पड़ती और ऊसर जमीनें सभीसे जलावन और चारा मिल सकता है।

**४४४. चारा और जलावनकी रखाँतके लिये डा० भोयेलकरकी युक्ति :** डा० भोयेलकरने अपनी रिपोर्टमें लिखा है :

"...खेतीके कामकी लकड़ी अधिक मिले इसका सबसे अच्छा उपाय यह है कि, नयी जमीनें घेरी जायँ और उनमें लकड़ी, जंगल-झाड़ी और घास पैदा की जायँ। ऐसे घेरोंको 'जलावन और चारेकी रखाँत' कहते हैं।"

" 'जलावन और चारेकी रखाँत' की सिफारिश क्रमसे सर डी० ब्रैन्डिसने (Sir D. Brandis) सन् १८७३ में, अकाल कमीशनने सन् १८७९ में, और अकाल कमीशन की सिफारिशके अनुसार भारत सरकारने सन् १८८३ में की है।" —(पृ० १५२)

"सही सही अर्थमें 'जलावन और चारेकी रखाँत' के लिये मुझे सबसे पुराना जिक्र उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें रुड़कीके पास पतरी जंगलका मिला है। पेड़ लगानेका यह काम सन् १८७१ में शुरू किया गया था। कुल ८० एकड़के पाँच टुकड़ोंकी

हदबन्दी की गयी। इसमें पेड़ लगाये गये, जिसमें अधिकांश शीशमके थे। इसकी सिंचाई गंगाजीकी नहरसे एक नाली निकालकर की गयी थी। ··· यह वास्तवमें 'गाँवके जंगल' की तरहका था, और खेतीके कामका था।

"अजमेर-मेरवाड़ाके जंगल यद्यपि बहुत विस्तृत और जंगल-विभागके अधीन हैं तो भी वास्तवमें वह बड़े पैमानेपर 'जलावन और चारेकी रखाँत' ही हैं।··· मैंने जंगलविभागमें जो देखा या पढ़ा उनकी अपेक्षा ये 'खेतीके जंगल' मेरे आदर्शके अधिक अनुरूप है। मेरी शिकायत यह है कि, अजमेर-मेरवाड़ा (जैसे जंगल) काफी नहीं हैं।···"—(पृ० १५३) ( २८, ३१, ४११, ४४५–'५३, ६६०, ५७७ )

**४४५. इटावा झाँसी और कानपुरमें पेड़ लगाना :** "जिन जगहोंमें पेड़ लगानेका प्रयोग कुछ अधिक किया गया है उनमें इटावा, झाँसी, कानपुर और अवा मुख्य हैं, क्योंकि अलीगढ़के उसरोंमें यह छोटे पैमानेपर किया गया है और वहाँ मुख्य रूपसे घास तथा फसल उपजानेकी ही कोशिश हुई है···"

इटावेमें मिली सफलताके बारेमें उन्होंने लिखा है : "इसमें प्रायः ४,४०० एकड़ (७,००० बीघा) जमीन देशी जमीन्दारोंकी है। इसपर ढोर इधर उधर डोलते थे, इसके सिवा यह जमीन और किसी कामकी नहीं थी। सन् १८८५ में पश्चिमोत्तर प्रान्तके कृषि-विभागने पेड़ लगानेका प्रयोग करनेके लिये जमीन्दारोंको बढ़ावा दिया और उनसे इस जमीनपर बबूल बोनेके लिये ६००) रु० लगवाया। ढोर दूर रखे गये, और बरसात शुरू होनेके जरा पहले बबूलके बीज तमाम छींट दिये गये। पौधे बहुत अच्छी तरह उगे और घास भी जमी। फिर जो जमीन बेकार पड़ी हुई थी उसमें थोड़े दिनके बाद ही 'जलावन और चारेकी रखाँत' तैयार हो गयी। अब इस 'रखाँत' से सालमें १,१००) रु० की आमदनी होती है···"—(पृ० १५५) (४४४, ५७७)

**४४६. रखाँतके लिये किस वर्गकी जमीनें मिल सकती हैं :** "···जिन वर्गोंकी जमीनें मिल सकती हैं उनके नाम यहाँ देता हूँ।

"(क) जहाँ रैयतवारी प्रथा है वहाँ सरकारी पड़ती जमीनें (कमसे कम मदरासमें), सड़कों, नालों, पोखरों, बाँधों और नदियों आदिके अगल बगलकी जमीनें भी इसीमें शामिल हैं।

"(ख) गाँवोंकी पड़ती जमीनें (कमसे कम गाँवकी जरूरतसे फाजिल) और दूसरी गैरमजरुआ जमीनें।

"(ग) ऊसर जमीन।

"(घ) बेहड़ जमीन।

"(ङ) नहर और रेलवेके किनारे।

"(च) आज जिन जमीनों में सूखी खेती होती है पर यदि उसमें 'रखाँत' लगादी जाय तो अधिक आमदनी हो सके।"—(पृ० १५७) (४४४, ५७७)

**४४७. 'रखाँत': सरकारी पड़ती:** "(क) मदरासमें सभी पड़ती सरकारी हैं। श्री निकोल्सनने (Mr. Nicholson) सन् १८८७ में लिखा था कि, अनन्तपुर जिलेमें ही १,१४१,०८९ एकड़ सरकारी पड़ती है और ऐसेभी भाग हैं जहाँ १,००० एकड़के चक बनाये जा सकते हैं। इनके चारों तरफ खाई खोद अड़का घेरा बनावे और बरसातके पहलेही पेड़ोंके बीज बो दे।"—(उसीसे)

"श्री निकोल्सनने अपनी 'मैनुअल ऑफ कोयम्बतूर' (Manual of Coimbatore) में करूर, धारापुरम्, कुगालूर, पलवापलायम्, नम्बीयूर, उदमालपेट और दूसरी जगहोंका जिक्र किया है। यहाँ जलावनकी रखाँतकी जरूरत है और वह बनायी भी जा सकती हैं। करूरके बारेमें वह कहते हैं :—'नदी और नालोंके किनारे पेड़ लगाये जा सकते हैं और उनका फायदा भी उठाया जा सकता है।···ताल्लूकेमें पेड़ कम हैं ··· नालोंके तट, पानीके पासकी नीची जमीनें आदि बहुत अनुकूल स्थानों का भी उपयोग नहीं होता है। ··· सिर्फ एकही निजी जगल है। पर इसे प्रकृतिके भरोसे छोड़ दिया गया है, उसमें पेड़ नहीं लगाये जाते ···इस में बबूल और घास बहुत होती हैं'।"—(पृ० १५७-'५८)

"मदरासमें यात्रा करते समय मैंने देखा है कि, अनेक नालोंके तट, पोखरों और सड़कोंके किनारे पेड़ लगाये जा सकते थे।

"सन् १८८३ में जब जाँच की गयी तो पता चला कि, सारे प्रान्तमें किसीभी ताल्लूकेमें गाँव पीछे १०० एकड़ जमीन 'जलावन और चारेकी रखाँत' के लिये मिल सकती है।

"मध्यप्रान्तमें सबलपुर जिलेकी एक ही तहसीलमें ६,००० एकड़से अधिक जमीन मिली जो सरकार की चीज थी और इसलिये यह 'जलावन और चारेकी रखाँत' के लिये मिल सकती थी।"—(पृ०१५८) (४४४, ५७७)

**४४८. रखाँत: गाँवकी परती और गैरमजरुआ जमीनें:** "(ख) किसी गाँवकी परती जमीन ले लेना कहाँतक उचित है यह एक सवाल

है। पर पंजाब और विशेष रूपसे मध्यप्रान्तमें गाँववालोंकी जरूरतसे फाजिल जमीन है ऐसे भी गाँव हैं। पंजाबके लेफ्टिनेन्ट गवर्नर भी समझते हैं कि, फाजिल जमीनमें रखाँत तैयार कर दी जाय। लाहौर और अमृतसरके बीच मैंने बहुत ज्यादे गैर-आबाद जमीन देखी। इसमें जहाँ कहीं भी पेड़ थे वह बहुत सुन्दर थे।

"आगरा और ग्वालियारके बीच मैंने बहुतसी गैर-आबाद जमीन देखी।"

"श्री फिनूकेनने (Mr. Finucane) बंगालमें कैमूर पहाड़के रोहतास और रेहुल पठारमें ३७½ वर्ग मील जमीन देखी। इसे 'चारा और जलावन' के लिये रक्षित किया जा सकता है। बंगाल सरकारने (उस समयकी, जब बिहार बंगाल एक था) देव-राजसे १,२०० बीघा जमीन खरीदनेकी मंजूरी दी। सहसराममें भी जमीन लेनेकी बात हुई। इनके बारेमें अपनी रिपोर्टमें डिप्टी कंजरवेटरने लिखा है :— 'मेरी समझमें चारा और जलावनकी रखाँतके लिये इससे बढ़कर और कोई जगह नहीं होती।' गाँववालोंको दिये गये सालाना परवाने ( अनुमति ) से ही काफी आमदनी होनेकी उम्मीद की गई थी।

"बेतिया (बिहार) और नेपालकी सीमाके बीच ऐसी जगहें हैं जो 'चारा और जलावनकी रखाँत' बनाई जा सकती हैं। ये जगहें जमीन्दारोंकी हैं। ये खरीदी जा सकती हैं।

"सुगौली (बिहार) के पासमें काफी परती जमीन है। सन् १८६५ के अकालके समयसे इसमें खेती नहीं होती है।

"१८८६-८७ के बम्बईके कृषि-विभागकी रिपोर्टसे बहुतसी जमीनका पता चलता है जिसमें नदीके किनारेके गाँवोंकी और दूसरी भी बबूलके लायक जमीनें हैं। अपनी जमीनमें बबूल रोपनेवालोंको या इसी कामके लिये जमीन लेनेवालोंको बम्बई सरकारने लगानमें $\frac{3}{4}$ छूट दी है। ऐसी कुछ जमीनें अहमदाबाद, नासिक और पूनाके पास हैं।

"मैसूरमें मैंने मैसूर शहर और हुनसूरके बीच बहुतसी विस्तृत जमीन देखी। इसमें खेती नहीं होती। पर इसमें जलावनकी लकड़ी बहुत ज्यादे पैदा हो सकती है। मैसूरके मध्यमें अरसीकेरी और हसनके पास बहुत जमीन है, इसे घेरकर 'चारा और जलावनकी रखाँत' बनायी जा सकती है।"—(उसीसे)

४४६. **रक्षित ऊसर :** "(ग) उत्तर-पच्छिम प्रान्तोंमें रेहवाली (ऊसर) बहुत अधिक जमीनका जिक्र हो चुका है। पंजाब, दक्षिण महाराष्ट्र, दक्खिन और

मद्रासके कुछ हिस्सोंमें तथा दूसरी जगह भी ऐसी जमीनें हैं। दिल्ली और रेवाड़ीके बीच रेहड़ ज़मीन है इस पर फरास (Tamarisk) की झाड़ी अच्छी तरह होती है।

"(घ) गंगा-जमुना के दोनों तटके बेहड़ों का जिक्र पहले हो चुका है।"—(उसीसे)

"सर एडवर्ड बकने (Sir Edward Buck) मथुराके बन्दोबस्तकी रिपोर्टमें लिखा है कि, जमुना किनारेके इलाकेमें 'चारा और जलावनकी रखाँत' जारी करना संभव है। वह बताते हैं कि अजमेर और दूसरी जगह जो प्रयोग हुए हैं उनसे सिद्ध होता है कि, उचित प्रबन्धसे ऐसी बहुतसी जमीन जिसमें साधारण तौरपर खेती नहीं हो सकती पेड़ लगाने और चराई करनेके काममें आ सकती है।—(पृ० १५८-'५९)

"उत्तर-पच्छिम प्रान्तमें मिर्जापूरके पास पहारेमें बेहड़ जमीन बहुत है।" —(पृ० १५९) (४७४, ५७७)

**४५०. रक्षित स्थान : नहरके तट : रेलवेके बाँध :** "(ङ) मध्य-प्रान्तके शासनकी रिपोर्टमें जिक्र है कि नदीके तट और कछारों आदिमें झाड़ी (जलावनकी लकड़ी) के लायक जमीन सदा ही मिलती है।

"बम्बईके कृषि-विभागकी सन् १८८८-'८९ की रिपोर्ट में इस बातपर खेद प्रकट किया गया है कि सदर मराठा रेलवेके किनारे किनारे हुबली और गदागके बीचकी जमीन जिसमें बबूल बहुत अच्छा होता है नहीं ली गई और एक मौका चूक गया।

"बंगाल कृषि-विभागकी सन् १८८९-'९० की रिपोर्टमें लिखा है कि, यह बात तै हो चुकी है कि आसाम-बिहार, तिरहुत, और नई चटगांव-आसाम लाइनके किनारे 'चारा और जलावनकी रखाँत' बनायी जा सकती है।"—(उसीसे) (४४४, ५७७)

**४५१. सूखी जमीनका उपयोग :** "(च) यह निश्चित है कि, बहुतसी जमीनें हैं जहाँ सूखी खेती होती है। यहाँ जब कभी दो ३, ४ या ६ वर्षपर भी एक फसल हो जाती है। पर इस जमीनको 'चारा और जलावनकी रखाँत' बना देनेसे इसका और अच्छा उपयोग हो सकता है।

"मही (बम्बई) में ऐसी जमीन लगभग १,४०० एकड़ है। यह १ आना एकड़ लगानके लायक भी नहीं है।

"अविनाशी में (कोयम्बतूर) भी काफी सूखी जमीन है जिसकी मालगुजारी १) रु० एकड़ है। इसपर पेड़ अच्छी तरह उग सकते हैं। कड़प्पाका भी यही हाल है।

"दक्खिनके कुछ हिस्सोंमें औजार बनानेके लिये लकड़ी मुश्किलसे मिलती है। वहाँ लकड़ी उपजानेमें सीधे तौर पर मुनाफा नहीं भी होसकता है। पर किसानोंके लिये इससे बड़ा सुबीता होगा।

"श्री फुलरका (Mr. Fuller) ख्याल है कि, मध्यप्रान्तके कुछ भागोंमें जिस जमीन होकर सड़क निकली है उसके मालिक यदि सड़कके किनारे पेड़ लगावें और उसकी रखवाली करें तो सरकार उसकी मालगुजारी माफ करदे। यह बहुत अच्छा होगा।

"बम्बई सरकारके भादगाँव-प्रयोगक्षेत्रमें श्री उजाने (Mr. Ozanne) जो प्रयोग कर रहे हैं मैं उसके बारेमें कहता हूँ। सन् १८८८ के जून महीनेमें श्री उजानेने ८ एकड़ आबाद जमीनमें बबूल बोया। आधी जमीनमें कुछ भी सिंचाई नहीं की गई। आधीमें सिर्फ पहले वर्ष एक सिंचाई हुई। बबूल पंक्तियोंमें लगाये गये। पंक्तियोंके बीच बीच चना बाजरा आदि फसलें बोयी गयीं। सन् १८९० के अगस्तमें जब मैं वहाँ गया था पौधे खूब बढ़ रहे थे। कुछ बहुत बढ़िया पौधे ४ फूट ऊँचे थे। पौधे लगाने में कुछ खर्च नहीं पड़ा। धारीके बीचकी फसलसे सब खर्च निकल गया।"—(उसीसे) (४४४,५७७)

**४५२. जलावन और चारेकी रखाँतके लिये काफी जमीन:** "जो उदाहरण मैंने दिये हैं उससे यह बहुत साफ होजाता है कि, 'जलावन और चारेकी रखाँत' के लिये काफी जमीन है। और यदि विधिवत् जाँचकी जाय तो पता चलेगा…कि जितना कहा गया उससे कहीं जादे जमीन है।

"प्रायः हर जिलेमें परती (गैरमजरुआ) जमीनें हैं।…इनमें बबूल और इसी तरहके दूसरे पेड़ बहुत अच्छी तरह हो सकते हैं। इन जमीनोंके लेनेसे सरकारको नफा नहीं होगा। फिर भी इस उदाहरणसे जमीन्दार और दूसरोंको पेड़ लगानेकी योजना चलानेमें बढ़ावा मिलेगा।"—(उसीसे)

इस बातको लिखे आधी सदी बीत चुकी और कितने परिवर्त्तन हो चुके। प्रान्तोंके पुराने नामोंके नये नामकरण हुए। पर जहाँतक इस मामलेका सरोकार है रिपोर्ट पड़ी की पड़ी रही है। ऐसा मालूम होता है कि डा० भोयेलकरके आनेके पहलेही अकाल-कमीशनकी रिपोर्टके कारण भारतमें चारेके साधनका उपयोग करनेकी बात चल रही थी। और अधिक खाद देकर अन्नकी पैदावार

बढ़ानेकी बात भी चल रही थी। यह स्वाभाविक भी था। इसी मैदानमें डा० भोयेलकर उतरे। उन्होंने अपनी पैनी दृष्टिसे उस समय ज्ञात बातोंके अतिरिक्त और भी बहुतसी बातोंका पता लगाया। अधिक खाद और चारा पाने के लिये जलावनका प्रबन्ध और चारा उपजाना यह नीति सरकारके लिये निर्धारित की। मालूम होता है कि सरकार थोड़े दिनके बाद यह सब भूल गयी। भारतकी जनताकी इस पहली जरूरतकी अवहेलना की गयी। डा० भोयेलकरके आगमनके समय सरकार क्या उपाय कर रही थी इसका कुछ पता नहीं चलता। उन्होंने जो लिखा है वह उनकी रिपोर्ट से ही मालूम हो सकता है, या इसकी खोज फिरसे करनी होगी। (४४७, ५७७)

**४५३. भोयेलकरकी रिपोर्टकी उपेक्षा की गयी :** उस समय डा० भोयेलकरने बताया था कि, सरकारको हर सूरतसे खाद और जलावनका प्रबन्ध करना चाहिये। उन्होंने इसका उपाय भी बताया। सरकारने बहुत कम काम किया और सन् १९२७ के शाही कमीशनने भी पशुओं और इस कारण मनुष्योंके बढ़ते हुए क्रमिक ह्रासको रोकनेका कोई व्यावहारिक उपाय नहीं बताया है। (३१, ४४४, ५७७)

**४५४. ग्राम-समाजें यह कर सकती हैं :** ग्राम-समाजोंकी स्थापनाकी आवश्यकता सिद्ध हो चुकी है। भविष्यके ग्राम-समाजोंका यह काम होगा कि, देशकी परती जमीन काममें लावें और उसे 'जलावन और चारे की रखाँत' बनावें। सरकार जो नहीं कर सकी वह निजी जमीनमें जनता कर सकती है।

**४५५. चारेके पेड़ोंकी सूची :** पेड़से चारा लेनेके विषयपर पशुपालन शाखाकी मीटिंगमें (३री, पृ० २५८) विचार हुआ। जिन पेड़ोंसे अकालका चारा मिल सकता है उनके नामकी सूची प्रकाशित की गयी। हमलोग तो समझते हैं कि, पेड़ोंसे मामूली चाराभी मिल सकता है जिससे चारेकी कमी पूरी हो।

# आँकड़ा (सूची)—३४

## चारेके पेड़ोंकी सूची

| लैटिन नाम । | हिन्दी और देशी नाम । | कहाँ कहाँ होता है । |
|---|---|---|
| Acacia arabica* | बबूल, कीकर | सिन्ध और उत्तरी दक्खिन, दूसरी जगहोंमें बोया जाता है। |
| Acacia modesta | फुलइ (पंजाब) | उत्तर-पच्छिम भारतसे अफगानिस्तान तक। |
| Adina cordifolia* | करम, हर्दू, हल्दू | उत्तर-पश्चिम भारत, अफगानिस्तान, बिहार। |
| Aegle Marmelos* | बेल | सारे भारतमें। |
| Albizzia Lebbek | सिरिस | ,, |
| Albizzia odoratissima | सिरिस | ,, |
| Albizzia stipulata | काला सिरिस | ,, |
| Anogeisus latifolia | धौड़ा | ,, |
| Artocarpus integrifolia | कटहल | दक्खिन भारतमें जंगली, भारतके विभिन्न भागोंमें लगाया जाता है। |
| Azadirachta indica | नीम | ,, ,, |
| Balanites | हिंगोट | भारतके गरम स्थानोंमें। |
| Bauhina purpurea | कोनार,सोना, कंचन | सारे भारतमें। |
| Bauhinia malabarica | अमटी, अमली | ,, |
| Bauhinia racemosa | करमौली | ,, |
| Bauhinia variegata* | कचनार | ,, |
| Briedelia montana | खाजा | पंजाबसे भूटानतक उत्तर भारत, कारोमंडल में भी। |

| लैटिन नाम। | हिन्दी और देशी नाम। | कहाँ कहाँ होता है। |
|---|---|---|
| Briedelia retusa | कसाई | भारतके गरम भागोंमें। |
| Buchanania latifolia | प्यार, चिरौंजी | ,, |
| Carallia integerrima | केरपा (बंगाल) | ,, |
| Careya arborea | कुंभी | ,, |
| Cassia Fistula | अमलतास | सारा भारत। |
| Coltris tetranda | चीटीमोटी | सारा भारत। |
| Cordia latifolia | लभेरा, लसोड़ा | भारतके गरम भागोंमें। |
| Dalbergia Sissoo* | सीसम | हिमालय पद-देश, बहुत लगाया जाता है। |
| Diespyres montana | बिस्तेन्दू | भारतके क्रान्तिमंडल प्रदेश। |
| Ehretia laevis | चमरोर, दतरंगा | क्रान्तिमंडलके उत्तर और नजदीकके प्रदेश। |
| Ficus bengalensis | बड़, बरगद | उत्तर और मध्य भारत, प्राय: लागाया जाता है। |
| Ficus glomerata | गूलर | भारतके क्रान्तिमंडल प्रदेश। |
| Ficus infectoria | पाकर | उत्तर और मध्य भारत, प्रायः लगाया जाता है। |
| Ficus religiosa * | पीपल | साराभारत। |
| Ficus Roxburghii | त्रिमल, तिमला | उत्तर भारत। |
| Ficus Rumphii | पाकर, कबर, पीपल | उत्तर और मध्य भारत। |
| Gmeline arborea | गम्हार | सारा भारत। |
| Grewia asiatica | फालसा | उत्तर और मध्य भारत। |
| Grewia tiliaefolia | धामन | सारा भारत। |
| Grewia opposite folia* | पस्तौना | सारा भारत। |
| Hardwickia binata | अंजन | मध्य प्रान्त। |
| Heterophragma Roxburghii | वरंस | मध्य भारत, प० दक्खिन। |
| Hymenodcityon excelsum | भरकुन्ड, कुकरकाट | हिमालय की तराई, दक्खिन, मध्य भारत। |

| लैटिन नाम । | हिन्दी और देशी नाम । | कहाँ कहाँ होता है । |
|---|---|---|
| Melia Azaderach | बकायन, महानिम्म | सारे भारतमें । |
| Melia azadirachta* | नीम | ,, |
| Morinda tinctoria | आछ, आल | ,, |
| Moringa pterygosperma | मुनगा, सहजना | उत्तरी भारतमें जंगली । |
| Morus indica | सहतूत | उत्तरी भारत । |
| Morus Alba* | सहतूत | उत्तर-पच्छिम हिमालय प्रदेश । |
| Morus serrata | कीमू, हीमू | उत्तर-पच्छिम हिमालय-प्रदेश । |
| Odina Wodier | जीयल, झिंगन | भारतके गरम प्रदेश । |
| Outgeinia dalbergioides | पन्नन, सन्दन | उत्तर और मध्य भारत । |
| Petrocarpus marsupium | पैसार, पियासाल विजयसाल | — — |
| Piptadenia oudhensis | गैंती | अवध । |
| Populus nigra | सफेदा | पंजाबमें लगाया जाता है और उत्तर-पच्छिम हिमालय प्रदेश । |
| Premna integrifol a | बाकर, बतबन्दा | बंगाल और दक्खिन भारत । |
| Prosopis spicigera | झंड, खेजरा | उत्तर पच्छिम भारत । |
| Quercus incana | बन, बंज | मध्य हिमालय । |
| Saccopetalumtom entosum | कीरुवा, कारी | अवध, बिहार, उड़ीसासे ट्रावनकोर तक । |
| Salix acmophylla | बेस, जलमाला | उत्तर-पच्छिम भारत । |
| Salvadora oleides Dene | जाल, झाक, झाल | पंजाबके पठार और सिन्ध । |
| Schleichera trijuga | कुसुम | उत्तर भारत । |
| Tecoma undulata | लहुरा, राहिरा | उत्तर-पच्छिमके पठार प्रदेशमें । |
| Terminalia Arjuna | अर्जुन, कहुआ | सारे भारतमें । |
| Terminalia belerica | बहेड़ा | भारतके पठार और पहाड़ियोंमें । |

| लैटिन नाम। | हिन्दी और देशी नाम। | कहाँ कहाँ होता है। |
|---|---|---|
| Terminalia Chebula | हर्र, हरीतकी | उत्तर-मध्य भारत। |
| Terminalia tomentosa | आसन, सैन | उत्तर-पच्छिम, उत्तर और मध्य भारत। |
| Wendlandia exserta | तिलइ | हिमालय तराईके सूखेजंगल और मध्य भारत। |
| Ziziphus ujuba* | बेर | सारे भारतमें। |

४५६. **बाढ़की जगहके चारेके पेड़ :** उड़ीसामें प्रायः सत्यानाशी बाढ़ आती है। उड़ीसा सरकारने एकबार बाढ़ सह लेनेवाले चारेके पेड़ोंकी खोज करायी थी। देहरादून फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूटके बनमालीने (sylviculturist) अपने जवाबमें चारेके पेड़ोंकी एक सूची भेजी थी। बाढ़के कारण चारेकी कमी होनेपर इनके पत्ते पशुओंको खिलाये जा सकते हैं। उनकी टिप्पणीं थी :

"...उत्तर भारतके पेशेवर पशु-चरवाहे जिन पेड़ोंको छाँटते हैं उनमें अधिकांशके साथ यह कठिनाई है कि, जिस समय उनमें पत्तेका चारा खूब रहता है, उस समय साधारण तौरपर घास और दूसरे चारेका अभाव नहीं रहता। पर बाढ़के मामलेमें यह कठिनाई उतनी नहीं है। क्योंकि बाढ़ बरसातमें आती है। इस समय चारेके पत्ते सबसे जादे होते हैं। इसलिये खासकर बाढ़के कारण चारेका अभाव दूर करनेके लिये ऐसे पेड़ लगाये जा सकते हैं।

"इस बातपर जोर दिया गया है कि, जहाँ हर साल बाढ़ आती है अथवा बहुत आया करती है वहाँ सफलताके साथ पेड़ नहीं लगाये जा सकते हैं। क्योंकि छोटी उमरके पेड़ पूरी तरह डूब जानेके कारण शायद ठहर नहीं सकें। यदि पानीमें धार हो तो जमीनसे पेड़के बीज या अंकुरके बह जानेकी भी आशंका है। इसलिये जहाँ संभव हो गाँवकी ऊँची जमीनमें पेड़ लगाये जायँ। पर जहाँ बाढ़का पानी थोड़ा चढ़ता है और उसमें धार नहीं हो तो टीलों या मेड़ोंपर बीज बोकर पेड़ लगाये जा सकते हैं। पर यह काम खर्चीला जरूर है। ऐसी जगहोंमें पीपल, बड़, गूलर आदिकी बड़ी बड़ी डालें काटकर लगायी जा सकती हैं।

---

* आम तौरपर अकालके चारे माने जाते हैं।

"सभी अच्छे चारेके पेड़ोंको जंगली जानवर चर जाते हैं। इसलिये शुरूके वर्षोंमें पालतू और जंगली जानवरोंसे चारेके पेड़ोंकी हिफाजत करनी होगी। साधारण तौरपर घेरा लगाना ही एकमात्र संतोषप्रद उपाय है। पर यह है बहुत खर्चीला। ...कभी कभी जल्दी बढ़नेवाली कँटीली बुरे स्वादवाली जातिके पौधोंके बीच चारेवाले पेड़ लगानेसे वह बच सकते हैं। क्योंकि इससे छोटी उम्रमें उनकी रक्षा होजाती है। जब चारेके पेड़ काफी बड़े हो जाते हैं तब कँटीले और रखवालीवाले पेड़ काट डाले जाते हैं। बबूल, खैर या कैसिस सायमिआ (Cassis siamea) आदि कँटीले पेड़ोंके साथ नीम लगाने से बहुत सफलता मिलती है।

"पेड़की कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो बहुत जल्दी बढ़ती हैं। इन्हें अगर बहुत घना बोया जाय और यदि इनकी बाढ़ खूब जोरदार हो तो इनकी जंगली जानवरोंसे हिफाजत किये बिनाही इन्हें उगाया जा सकता है।...ऐसी जातियोंमें सहतूत (Morus alba) है जिसे कभी कभी इस विधिसे उगा सकते हैं......"

"...पेड़ोंसे छाँटे अधिकांश चारेको भूखा होनेपर भी पशु छूते नहीं और जिन पेड़ोंका चारा अच्छा नहीं माना जाता उनके पत्ते खाते हैं। इसका कारण पूरी तरह समझमें नहीं आया। यह हो सकता है कि ढोरोंको खिलाते समय पत्ते एकदम ताजा हों।..."—(पशुपालन शाखाकी तीसरी बैठक, १९३९, पृ० २५२)

इसके बाद चारेके पेड़ोंकी सूची है। जहाँ सदा बाढ़ आया करती है यह वहाँके लिये है। सारे उत्तरी भारतका कोई न कोई भाग इस प्रकारका है। उड़ीसा, बंगाल, बिहार और युक्तप्रान्तके भी कुछ भाग ऐसे हैं। इसलिये यह सूची बहुतोंके कामकी है। इसके अलावे जहाँ बाढ़ नहीं आती वहाँ यह निश्चय ही होंगे और चारेके काममें आवेंगे।

/ **४५७. चारेके कुछ पेड़ोंका वर्णन : बबूल :** आसानीसे तैयार होता है। डूबनेवाली जगहोंमें भी अच्छी तरह होता है। फलीका अच्छा चारा होता है। पत्तियाँ भी चारेके काम आती हैं। साथ ही यह अच्छा काठ और जलावन है। छोटेपनमें काफी जल्दी बढ़ता है। पहले वर्षमें पशु इसे चरते नहीं, क्योंकि इसमें काँटे होते हैं। यह दूसरे पेड़ोंको भी चराईसे बचाते हैं।

**सफेद सिरिस** (Albizzia procera) : बीजसे उगानेमें आसानी है। ऐसा माना जाता है कि जहाँ प्रायः बाढ़ आती है वहाँ अच्छा होता है। छोटेमें यह जल्दी जल्दी बढ़ता है।

**छोटी मोटी अदोना** (Celtis tetranda) : ऊपर कहे हुएकी तरह अच्छा चारा है पर धीरे धीरे बढ़ता है।

**कंचन :** इसका लगाना बहुत सरल है। छोटेमें बहुत बढ़ता है। इसे यदि शुरूमें घनी झाड़ीकी तरह लगाया जाय तो चराई से हानि नहीं होती।

**आसन :** यह उत्कृष्ट चारा है। बाढ़ सह लेता है। चराईसे इसकी हिफाजत करनी चाहिये।

**सहजन :** बहुत प्रसिद्ध चारा है। बहुत तेजीसे बढ़ता है। इसका लगाना बहुत सरल है। पर हिफाजतकी दरकार है। सूअर इसके बड़े शत्रु हैं।

**सहतूत :** यदि इसकी घनी झाड़ी लगायी जाय तो घेरेके बिना भी हो सकता है, बशर्ते चराई अधिक न हो।

**सिरिस :** सफेद सिरिसकी तरह इसकी पूरी हिफाजत चाहिये। नहीं तो पौधा तैयार नहीं हो सकेगा।

**गूलर :** पूरी तरह बढ़नेपर इसका चारा उत्कृष्ट होता है। बरसातके पहले डाल काटकर लगाने से हो सकता है।

**अर्जुन, कहुआ :** यह पेड़ चारे के लिये अच्छा है। आसानी से हो सकता है। धीरे धीरे बढ़ता है।

**अमटी :** इसे पैदा करना आसान है। बहुत जल्दी हो जाता है। इसका पेड़ तो छोटा होता है पर चारा काफी होता है।

**कुसुम** (Schleichera trijuga) : सूखी आवहवाके लिये चारेका उत्कृष्ट पेड़ है। छोटेपनमें बहुत धीरे धीरे बढ़ता है। इसका चारा ऊँची कोटिका होता है।

**विजयसार :** उत्कृष्ट चारा और काठ। मूल और डाल लगानी होती है। हिफाजतकी जरूरत है।

**अंजन :** देरसे होता है। पर चारा बहुत ऊँचे प्रकारका होता है।

**सन्दन :** ऊपरवालेकी तरह है। बोनेसे बहुत अच्छा होता है।

**केरपा :** बहुत अच्छा चारा है। नम जगहोंमें अच्छा होता है। पूरी तरह हिफाजत करनेकी जरूरत है।

**नीम :** बीज बोया जाता है। उत्कृष्ट चारा है। हिफाजत चाहिये।

**परल** (Stereospermum suaveolens)**:** उत्कृष्ट चारा। चरवाहे इसे पसन्द करते हैं। पूरी हिफाजत चाहिये। देरसे होता है।

**बहेड़ा :** उत्कृष्ट चारा। लगाना सरल है। पूरी हिफाजत चाहिये।

**बड़ और पीपल :** उत्तम चारा। डाल लगाई जाती है। पूरी हिफाजत चाहिये।

**४५८. अकालका चारा :** सूखा और उसके कारण होनेवाले अकालमें चारेके लिये दूसरी तरहके पेड़ोंकी जरूरत है। भारतके सूखे भागोंमें वर्षाके अभावमें फसलें मारी जाती हैं। घास सूख जाती है और मनुष्य तथा पशु दोनोंके भोजनका टोटा पड़ जाता है। मनुष्यका भोजन तो दूसरे प्रान्तोंसे भी लाया जा सकता है। पर चारेका लाना कठिन है। क्योंकि वह मोटी चीज है। इसलिये रेलसे सूखा चारा ढोनेकी बात ही व्यर्थ है।

पिछली शताब्दीमें प्रायः दश बार सूखा पड़ा। हर दश वर्षका औसत रहा। इनमेंसे कई तो बहुत व्यापक थे। सन् १९३७-'४०के अकालका प्रभाव सिन्ध, राजपुताना और पच्छिमी पंजाबपर था। यह सभी अकालोंमें सबसे अधिक दारुण था। वर्षाके अभावसे यह अकाल हुआ। इसके कारण चारे और अन्नकी फसल पूरी तरह मारी गई। अकालके मारे प्रदेशमें सयोगसे भारतके कई सर्वोत्तम नस्लके ढोर हैं। चारेके अभावमें जहाँ जहाँ चारा मिल सकता था वहाँ उन्हें भेजना पड़ा, या उन्हें नाम-मात्रके दामपर बेचना पड़ा। कितने मर गये।

खबर है कि चार लाख ढोर थार्परकर जिलेमें और प्रायः तीन लाख कराची जिलेमें मर गये। रोहतक और हिसारमें ३०से ६० सैकड़ाके नष्ट होनेका अनुमान है। जो मरनेसे बचे वह आगे चलकर कमजोरीके कारण बीमारियोंसे मर गये या निकम्मे हो गये। हरे चारेके अभावमें भिटामिनकी कमी बहुत हुई। इसके कारण ढोरोंको अन्धापन, रतौंधी, थोड़े दिनका अन्धापन (Xerophthalmia), गर्भपात, जेर (फूल) नहीं निकलना, बच्चोंका दस्त (calf scour) हुए।

कुछ पेड़ आमतौरपर अकालके चारे माने जाते हैं। उनमें कोई खास गुण नहीं है। पर लोगोंको उनके बारेमें और जादे जानकारी होनी चाहिये। चारेके पेड़की सूचीमें उनपर तारा चिन्ह लगा दिये गये हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि, ढोरोंको खिलानेमें चारेके पेड़ोंका बड़ा भाग है।

पशुओंको खिलानेमें उनका जो स्थान है वह उन्हें मिलना चाहिये। अभाव और बाढ़के समय जब और साधनोंसे काम नहीं चलता तब पेड़से ही साधारण चारा प्राप्त होता है। इसके अलावे भी वह बड़े कामके होते हैं। इसलिये यह और भी जरूरी है कि, चारेके पेड़ोंकी ओर अधिक ध्यान दिया जाय।

अकालके समय सूखी घास या भूसा आदि भी दिया जाता है। इनसे ढोरोंको जितना भिटामिन चाहिये नहीं मिलता। जिन ढोरोंको सूखा चारा और पौष्टिक साधारण मात्रामें खिलाया गया उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। अन्धेपनकी बीमारी खूब फैली। इसका कारण हरे चारेके अभावसे भिटामिन 'ए' (A) का अभाव था। ऐसी जगहोंपर पेड़ोंका विशेष उपयोगी स्थान है। अकालके समय भी हरे चारेको छोड़ नहीं सकते। पेड़ोंसे वह मिल जाता है। पेड़के पत्तेका साइलेज भी हो सकता है। शीशमके पत्तोंका साइलेज, ढोर विशेष स्वाद से खाते हैं, यह देखा गया है। कोई कारण नहीं कि दूसरे पेड़के पत्तोंका साइलेज भी उतनाही अच्छा न हो। सिन्ध, राजपुताना जैसे सूखे और निर्जल स्थानोंमें हरे पत्ते साइलोमें कई वर्ष रह सकते हैं और अभावके दिनोंमें ही काममें लाये जा सकते हैं।

४५६. **अकालके कुछ दूसरे चारे :** अकालके चारोंकी खोज इंपीरियल भेटेरिनरी रिसर्च इंस्टिट्यूट में हो रही है। जो चीजें दूसरे समय व्यर्थ मानी जाती हैं उन्हें अभावके समय खिलाना संभव है या नहीं इसकी खोज हो रही है। खर, मूँगफलीकी भूसी, बाजरेकी भूसी, धानकी भूसी और गुड़ इनपर खोज हो रही है।

अकालके समय मुख्य मोटे चारेके लिये खर (reed—नरकट) पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। लाखों एकड़ जमीनमें इनका जंगल है। नयी कोपलोंको पशु थोड़ा बहुत चरते हैं। कुल उपजका सामान्य भाग झोपड़ोंके छानेके काम आता है। साधारण तौरपर पक जानेपर खेतमें ही उन्हें जला देते हैं। खर या नरकट सूखी और अधसूखी दोनों जगहों में हो जाता है।

खर और छोआ-गुड़के चारेको गेहूँका चोकर और खली मिलाकर उपयोगी बनाया गया। खिलानेके पहले खरकी महीन कुट्टीकर पानीमें भिगा दी गयी। इसे इतना भिगाया गया कि, उंगलीमें वह नहीं चुभे। यह प्रयोग ८ महीने चला। यह परीक्षावाला आहार खाकर पशुओंका स्वास्थ्य नहीं बिगड़ा। गुड़से मीठा

बनाया खर मुख्य आहार नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें पचने लायक प्रोटीन नहीं है। जरूरी प्रोटीन पूरा करनेके लिये हरे पत्ते, साइलेज या खली देने की जरूरत है।

कुछ बछड़ोंको भी खर और गुड़के साथ एक रत्तल हरे पत्ते दिये जाते थे। सात हफ्ते तक बछड़ोंको इसी खुराकपर रखा गया। इस बीच उनमें किसी तरह की छीजन नहीं दिखाई दी।

ऐसा मालूम होता है कि, चारेका साधन बहुत बड़ा है पर उसका उपयोग नहीं किया गया है। उनकी ओर अधिक ध्यान देने से चारेका इतना अभाव जो प्रत्यक्ष है कुछ हदतक मिट सकता है।

४६०. **अधिक छीमीवाला चारा :** नम या धानके इलाकेकी गायोंको बहुत कम खाना मिलता है। इसीलिये वह बहुत मरियल (कमजोर) दिखायी पड़ती हैं। धानके पुआलमें आहार-तत्व बहुत कम है। इस अल्प पोषणका मूल कारण यही है। धानके पुआलकी हीनताका सुधार अधिक मात्रामें छीमीवाला चारा खिलाने से हो सकता है। छीमीकी फसल जमीनको कमजोर करनेके बदले उसे मजबूत करती है। छीमीसे मनुष्योंके खाने लायक दाल होती है। और उसके सूखे डठलका पुष्टिकारक चारा होता है।

बारहों महीने छीमी (फली) का चारा खासकर धानके इलाकेमें बड़ी मात्रामें खिलाया जा सकता है। खेतोंसे पानी उतर जाय और धानकी फसल पक जाय तो, फसल लगे खेतकी गीली मिट्टीमें दलहनके बीज छींटकर बो सकते हैं। धान काटकर भी फलियाँ बोयी जा सकती हैं। पकनेपर इनका साइलेज किया जा सकता या सुखाकर रखा जा सकता है।

बहुत जगह पशुओंसे बचानेकी कठिनाई है। धानके इलाकोंमें किसानोंकी आदत है कि धान काटनेके बाद ढोरको खेतमें 'छुट्टा' छोड़ देते हैं। धान काटनेके बाद उसकी खूँटीमें नये कोंपल जल्दीही निकल आते हैं। पशु इन्हेंही चरते हैं। इस समय छिट-फुट खेतोंकी फसलकी हिफाजत कठिन है। गाँववालोंका सामूहिक उद्योग इसका उपाय है। ढोरोंका स्वास्थ्य बनाये रखनेका प्रबन्ध गाँवकी भलाई सोचनेवाली जीती जागती संस्था कर सकती है। ग्राम-समाजें और उनकी कार्यकारिणी पंचायतें गाँवके ढोरोंका नियन्त्रण जरूर ही कर सकती हैं। इससे फलीदार चारा उपजानेमें कठिनता नहीं होगी। पर यदि सारा गाँव

फलियाँ उपजाने लगे तो पशुओंके नियंत्रण का भी सवाल नहीं रहेगा। जैसे धानकी फसलके समय यह सवाल नहीं उठता। क्योंकि, छुट्टे पशुसे धानकी हिफाजत करना सबके लिये एकसा है। उसी तरह जब फलियोंकी खेती भी आम हो जायगी तो छुट्टे जानवरोंसे बँचावकी बात भी हवा हो जायगी। भारत-भरके धान-इलाकोंमें फलियोंकी खेती करनेसे चारेकी कमी बहुत कुछ पूरी होगी। पर केवल धान-इलाकोंमें ही फलियोंकी खेती आवश्यक नहीं है। चारेके सुधारके लिये सारे भारतमें फलियोंकी ओर अधिक खेती होनी चाहिये।

४६१. **कुट्टी करना :** हमारे देशमें चारेकी कमी है। इसके अनेक भागोंमें ज्वार-बाजरा जैसे कड़े चारे समूचे ही ढोरको दिये जाते हैं। ढोर मुलायम और पत्तेदार भाग तो खा जाते हैं और बाकी छोड़ देते हैं। किसान इन जूठे टुकड़ोंको घूरेपर डालते हैं और उनके ठाँठ और कम फायदेके ढोर भूखों मरते हैं — इस तरह ३०% चारेसे कम बर्बाद नहीं होता और जानवर भूखे मरते हैं। अगर चारेकी कुट्टी कर ली जाय तो चारेकी अधिकाश बर्बादी बचे और अधिक गायें अच्छी तरह पाली जायें। बराड़में ७५ पशुओंको मामूली तौरपर १,५०० रत्तल सूखी कड़वी चाहिये। पर यदि उसकी कुट्टी दी जाय तो लगभग ४५० रत्तलकी बचत हो। इसका अर्थ हुआ कि प्रायः और ३० पशु उतनीही सामग्रीसे पाले जा सकेंगे।

# अध्याय ११

## खादकी रक्षा

४६२. **पूर्व कथित समस्या :** खादकी रक्षाके विषयका खेतीसे संबन्ध है। पर गोपालनके सिलसिलेमें भी उसपर विचार करना होता है। गोबरकी खादसे जितनी आमदनी होती है वह पशुपालनकी आमदनीका चौथाई या उससे भी अधिक भाग है। अर्थात् १,००० करोड़ रुपए की कुल आमदनी में उससे २७० करोड़ की आमदनी होती है। इसलिये पशुपालकको जितना हो सके गोबरकी रक्षा करनी चाहिये। नहीं तो उसका बहुत बड़ा अंश तो नष्ट हो जायगा और कागजोंमें

पशुपालनके फायदेका केवल हिसाब रह जायगा। थोड़ी सँभाल करें और गोबर जलानेके बदले सिर्फ खादके काममें लावें तो उसकी अधिकांश कीमतका उपयोग हो जायगा।

जलावनका काम गोबरसे लेना दुर्भाग्यकी बात है। डा० भोयेलकरने यह दिखानेका परिश्रम किया है कि, भारतीय खेतिहर गोबरका गुण जानते हैं। वह मजबूर होकर ही खादसे जलावनका काम लेते हैं। इसलिये उस समय सरकारकी प्रवर्त्तित "जलावन और चारेकी रखात" की नीति जोरसे काममें लानेकी उन्होंने सलाह दी थी। उनकी सिफारिशोंके अनुसार सरकारने काम नहीं किया। पहलेके अध्यायोंमें यह दिखाया जा चुका है कि चारा और जलावन जुटानेका अबभी कितना अच्छा मौका है। (२८, ३२, ४४४, ५७७)

**४६३. गोबरकी रक्षा हो :** आजकल गोबर जलावनके काममें आता है। अब ऐसा न किया जाये। उससे केवल खादका काम लिया जाय। पर जलनेसे बचाना यह अधूरी समस्या है। ढोरकी खादके गुणका प्रायः आधा पेशाबमें है। पेशाबको काममें लानेमें उपयुक्त जलावनका सवाल भी नहीं उठता।

पूरे जवान बैलके गोबरका मूल्य वर्षमें १४) रुपए और पेशाबका १२) रुपए आँका गया है। दोनों मिलाकर २६) रुपए होते हैं। सारे गोवंशके मलमूत्रका औसत इसका आधा अर्थात् १३) रुपए माना गया है।

**४६४. गोमूत्रकी रक्षा हो :** हमलोगोंको सभी सयाने पशुके १४) रुपएके गोबर ही नहीं, १२) रुपएके गोमूत्रकी भी रक्षा करनी है। बहुतसा गोमूत्र नष्ट हो जाता है। उसका नगण्य अंश ही खादके काममें आता है। जहाँ खेतोंमें ढोरके लिये अस्थायी बथान बनाने और फिर उसे दूसरी जगह लेजानेकी चाल है, वहाँ गोमूत्र काममें आजाता है। क्योंकि मिट्टी उसे सोख लेती है और इसके थोड़े दिनके बादही उसमें खेती होती है। पर ऐसा कुछ ही जिलोंमें होता है, वह भी विशेष मौसमोंमें। गोमूत्र गोबरकी तरह ही गुणवाला है। इसलिये इसके बचावका उपाय करना चाहिये। पर गोबर और गोमूत्र ही खादकी सूचीमें बस नहीं हैं।

**४६५. विभिन्न खादें :** गोबरकी खादके अतिरिक्त औरभी खादें हैं। घरकी बुहारन, अन्नके कचरे, फसलकी बुहारन, भूसी, राख, खूँटी, बेकार और सड़े पत्ते, गाँवके कचरे, राहकी बुहारन, खली, गू-मूत, मरे पशुओंका हाड़-मांस, मरे पालतू छोटे जानवर और बिल्ली, चूहा, छिपकिली, तिलचट्टे, फतिंगे आदिकी लाश सभी खाद हैं या उनसे खाद बन सकती है। यदि इन्हें उचित कियाके बाद

मिट्टीमें डाला जाय तो जमीनका उपजाऊपन बढ़ेगा। इससे आदमी और पशुओंकी भूखकी आजकी समस्या सुलझेगी। खादकी यह सूची बढ़ायी जा सकती है। क्योंकि, जिनसे खाद बन सकती है ऐसी चीजें सैकड़ों मिलेंगी।

**४६६. जमीनका उपजाऊपन :** पौधे अपनी बाढ़ और फूलने फलनेके लिये जरूरी तत्वोंका संग्रह मिट्टी और हवासे कर लेते हैं। जिन खनिज तत्वों और प्रोटीनोंसे पौधा बना हुआ है वह मिट्टीसे प्राप्त होते हैं। हवा तथा पानी से कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) मिलता है।

जिन तत्वोंसे पौधोंका निर्माण होता है बारबारकी खेतीसे मिट्टीमें उनका अभाव हो जाता है। उसकी पूर्तिका उपाय करना जरूरी है जिससे जमीन कमजोर न हो। पौधोंके निर्माण करनेवाले तत्वोंका केवल बनाये रखना ही जरूरी नहीं है। उपज जादे हो इसलिये इन्हें भी जादे होना चाहिये। इन पौधा निर्माण करनेवाले तत्वोंको फिरसे जमीनमें डालना होगा। मिट्टीमें खाद डालनेका अर्थ है मिट्टीमें पौधा निर्माण करनेवाले तत्वोंको ताजा करना और बढ़ाना। मिट्टीमें जितनी ही खाद डाली जायगी, जमीनकी उर्वरता उतनी ही बढ़ेगी। यह ठीक है कि जमीनकी उर्वरताकी भी एक सीमा है। भारतमें फसल हर साल उपजायी जाती है, पर जमीनमें ठीक तरहसे खाद नहीं डाली जाती। इससे यह सोचा जा सकता है कि, एक दिन ऐसा आ सकता है जब जमीनकी सारी उर्वरता नष्ट हो जाय। भारतमें यह हो गया रहता, पर हुआ नहीं, क्योंकि, प्रकृति उस कमीकी पूर्त्ति कर रही है। मालूम होता है फसल उगानेके कारण जमीनके तत्वोंकी कमी और उसकी पूर्तिका भारतमें समतौल चल रहा है। यह तो कुछ प्राकृतिक है और कुछ खादसे है। इसलिये यह साफ है कि यदि अभी मिट्टीमें अधिक खाद डाली जायगी तो अधिक उपज होगी। शास्त्रीय पद्धतिसे खाद देनेपर भारतमें उपज बहुत बढ़ सकती है।

**४६७. चारेकी खाद बनाना :** कहा जा चुका है कि जगलके पासके देहाती लोग जगलोंमें ढोर चराते हैं। वहलोग चाहे जितने ढोर पालते हैं और उनके गोबरकी पूरी संभाल करते हैं। इसे वह जलाते हैं। यहाँ देहाती पशुओंसे पत्तोंका गोबर बनवाते हैं और जलाते हैं।

ढोरकी पाचन-क्रियासे जो कुछ होता है वह बाहर भी हो सकता है। पाचन-क्रिया पत्तोंको पचाकर कुछका खून बनाती है और कुछका गोबर।

पचनेके बाद अनेक जीते और मरे जीवाणु गोबरके साथ बाहर आजाते हैं। इनकी मददसे मुलायम पत्ते वगैरहकी खाद बन सकती है। यदि पत्तों, पुआल या डंठलों आदि पर गोबरको पानीमें घोलकर छिड़का जाय तो जीवाणु उसे खाद बना देते हैं। कूड़े करकट और पत्तों आदिकी खाद बनानेकी इस विधिका नाम कम्पोस्टिंग है।

गोबरके जीवाणु जो कर सकते हैं, गूके जीवाणु भी वह कर सकते हैं। गू भी कम्पोस्टिंगके काममें आ सकता है।

४६८. **खादकी सँभाल :** धूप, हवा या वर्षासे गोबरकी बहुतसी खाद नष्ट हो जाती है। इसलिये उसकी सँभाल आवश्यक है। बागोंमें कच्ची खादको नालीमें दाब कर सुरक्षित करनेकी विधिसे भी काम ले सकते हैं। नालीके दोनों तरफवाले पौधे, जब खाद पक जाती है, उससे फायदा उठाते हैं। इसमें कुछ बर्बाद नहीं होता। गव्य-क्षेत्रोंमें गिनी घासकी क्यारियोंमें इस विधिसे सफलताके साथ खाद दी जा सकती है। घास पाँतमें लगाई जाती है। पाँतियोंके बीचमें उथली नालियाँ खोद उनमें गोबरकी हलकी परत डाल तुरत ढक देना चाहिये। दोनों तरफकी घासकी जड़ उसमें पहुँच अपनी खुराक लेती है। खादका कुछ भी नष्ट नहीं होता और घासपर तुरत ही असर दिखाई देता है। नालियाँ फेरीसे खोदी जा सकती हैं। और इस तरह रोज रोजके गोबरसे कुछ खेतोंको बराबर खाद मिलती रहती है।

पर इस विधिसे सभी पौधोंको ठीक लाभ नहीं होता। कुछको ताजा गोबर हानि करेगा। पर चारेकी घासपर इसका अच्छा असर होता है। घर और खलिहानके दूसरे कचरे भी गोबर और मूत्रके साथ नालियोंमें दाबे जा सकते हैं। नित्यकी इस बिधिसे गोशालाके आस पास सफाई रहती है। पर फसल उपजानेके लिये नित्य नाली नहीं भरी जा सकती। इसमें सारे खेतको एकसी खाद देनी होती है और कुछ ही दिनोंमें जोतकर खेत तैयार करना होता है। इसके लिये गोबरको पकानेके लिये जमा करना होता है।

४६९. **गोबर जमा करना :** गोबर गढ़ोंमें जमा किया जाता है। सामर्थ्य हो तो गढ़ा पक्का बना लिया जाय। ढोरोंकी सख्याके अनुसार गढ़ा बनाया जाय। बड़े गढ़े नहीं बनाये जायें। छोटे छोटे कई अच्छे होते हैं। हर तीसरे महीने गढ़े खाली कर खाद काममें लायी जा सकती है। एक गढ़ा भर जाय तो

दूसरेमें भराई हो। जिसकी ऊपरी परत पुरानी हो गई है उसे काममें ले आते हैं।

जहाँ पक्का गढ़ा बनाना संभव नहीं, वहाँ चिकनी मिट्टीसे काम लें। जहाँ पानीकी सतह जमीनके पास हो वहाँ गढ़ा जमीनके ऊपर मिट्टीकी मोटी दीवालसे बनायी जाय। वर्षासे बचानेके लिये गढ़ोंपर छप्पर डाल देना चाहिये। वर्षा और हवासे चीज बिगड़ जाती है। भीतरकी ओरसे चिकनी मिट्टी लिसी (लेपी) रहनी चाहिये। पानीकी सतहके ऊपर, तलेमें १२″ इंच और दीवालमें ६″ इंचकी परतें आदर्श होगी। ऐसे गढ़ोंसे रस बाहर नहीं बह सकता। मिट्टीके मकान जैसे बनाये जाते हैं, दीवाल उसी तरह बनानी चाहिये। जमीनके ऊपरवाले गढ़ोंकी दीवालको "पुष्टा" देकर मजबूत कर देना चाहिये। पुष्टा ढालू हो। गोबर जमा करनेकी दूसरी विधि है ३′ फुट गहरी × ५′ फुट चौड़ी, लंबी नालियाँ खोदना। नालियाँ रोज भरी और ढकी जा सकती हैं। पकी खाद पीछेकी तरफ और आगेकी तरफ ताजी दी जा सकती है। दीवालकी ऊँचाई या गढ़ेकी गहराई ४-५ फूटसे ज्यादे न हो। यह जितनी ऊँची होगी पुष्टा उतनाही ऊँचा और मोटा होना चाहिये। जमीनके ऊपरके गढ़ेमें ढालके ऊपर होके खाद ले जानी होती है।

**४७०. गोबर जमा करना :** जहाँ ढोरको खूँटेपर खिलाया जाता है वहाँ रात और दिन दोनो समयका गोबर जमा करना चाहिये। यदि ढट्ठ चरनेके लिये भेजा जाता है तो उसका गोबर भी जमा करनेका उद्योग होना चाहिये। गोबरसे पोती हुयी दो टोकरियोंमें रस्सी बाँध उन्हें किसी ढोरकी पीठपर लटका देना चाहिये। १२″ इंच लम्बी और ६″ इंच चौड़ी टीनकी चद्दर तीन तरफसे मोड़ लो। इसे टोकरीके साथ रखो। इसकी सहायतासे हाथ गन्दा किये बिना गोबर टोकरियोंमें रखा जा सकता है।

रास्तेमें बैलको खिलानेके लिये बैलगाड़ीपर कुछ पुआल रखनेकी चाल है। गाड़ीवान गाड़ीके नीचे एक टोकरी बाँध सकता है। रास्तेमें बैल जितना गोबर करे वह इसमें रखा जा सकता है। इससे उसे जो खिलाया जाता है उसकी कीमत गोबरके रूपमें मिल सकती है।

यदि गाँवमें एक जोड़ी बैल पालनेका खर्च १००) रु० साल मान लिया जाय तो सिर्फ गोबरसे २५) रु० मिल सकते हैं। यदि इसमें गोमूत्रकी कीमत २५) रु० भी जोड़ दी जाय तो खिलानेके खर्चका आधा मलमूत्रसे ही

मिल जाता है । विवेकी और चतुर पशुपालकको इस बातका काफी ध्यान रखना चाहिये ।

**४७१. गोमूत्रकी बर्बादी :** गोमूतकी सँभाल कदाचित् ही होती है। जहाँ ढोर दिनमें चरने जाते और रातको गोशालामें रखे जाते हैं वहाँ रातका गोबर तो जमा कर लिया जाता है पर गोमूत कच्ची जमीनमें ही सूख जाता है । अगर जमीन बलुई है तो सारा गोमूत सूख जाता है पर चिकनी मिट्टीके फर्शपर सब मूत सूखता नहीं । कुछ गोबरमें मिल जाता है । इतने भागकी रक्षा होजाती है।

चतुर किसान फर्शको ढालू कर देते हैं । इससे मूत बहकर नालीके द्वारा किसी गढ़ेमें जमा होता है। नाली खादके गढ़ेमें गिरे । नहीं तो गढ़ेमें बड़ीसी नाद बैठा देनी चाहिये । यदि जमीन कड़ी चिकनी मिट्टीकी है तो अधिक मूत नष्ट नहीं होगा ।

**४७२. सूखी मिट्टीमें मूत सोखकर बचानेकी विधि :** गौशालामें मूतकी रक्षाके लिये फर्शपर सूखी मिट्टीकी मोटी तह डाल दो। जब यह भीग जाय, इसे हटाकर दूसरी मिट्टी डालो । मिट्टी मूत सोखे इसलिये उसे ढीली करके उकट देना चाहिये । इस विधिकी व्यावहारिक जाँच हुई है। परीक्षाके लिये एक तो पुरानी रीतिसे गोबरकी ढेर लगायी गयी और दूसरी छाँहदार गढ़ेमें गोबरके ऊपर मूत सोखी मिट्टी डाली गयी। मूत सोखी मिट्टीको "मूतकी मिट्टी" कहते हैं। प्रयोगसे मालूम हुआ कि, पुराने तरीके की खादकी अपेक्षा मूतकी मिट्टीकी तहवाली गढ़ेकी खादसे दूनी उपज होती है। नीचे कुछ विस्तारसे लिखा जाता है। —(सिंह और रसूल । एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, जुलाई १९३३, पृ० ३५२)

**४७३. मूतकी मिट्टीकी विधि :** लायलपुरमें (पंजाब) मूतकी मिट्टी काममें लायी जाती है। पुराने तरीके से गोबरकी ढेर लगाने और इसकी तुलना की गयी । लायलपुरमें वर्षा कम होती है। दो जोड़ी बैल लिये गये। उन सबको एकही चीज खिलायी जाती थी । एक जोड़ीका गोबर पुरानी चालसे ढेर लगाकर जमा किया जाता था और दूसरी जोड़ीका मूतकी मिट्टीकी विधिसे । आधा समय बीतनेपर जोड़ियाँ अदल बदल कर दी गयीं जिससे दोनों विधियोंके गोबरकी मात्रा ठीक रहे । आधा गोबर खुली ढेरी और आधा छाये गढ़ेमें डाला जाता था। गोबर गढ़ेमें रखा जाता था, क्योंकि लायलपुरमें गढ़ेके भीतर पानी चूनेका कोई

अन्देशा नहीं है। धूप और पानीसे बचानेके लिये हलकीसी छावनी गढ़ेके ऊपर कर दी गयी थी।

(क) मूतकी मिट्टीकी विधिसे एक जोड़ी बैलका मूत सोखनेके लिये फर्शपर मिट्टीकी ६ इंच मोटी तह डाल दी गई थी। जरूरतके अनुसार उसे खोदकर हलका कर दिया जाता था। गोबर समेटकर एक कच्चे गढ़ेमें डाल दिया जाता था। इसपर हफ्तेमें एकबार ३ इंच मिट्टी डाली जाती थी।

(ख) दूसरे प्रयोगमें गोबर समेटकर एक खुली ढेरीमें जमा किया जाता था। प्रयोग २३० दिन चला। इस बीच कुल वर्षा केवल ३·८७ इंच हुयी। एक दिनमें सबसे अधिक वर्षा १·८ इंच थी।

**४७४. मूतकी मिट्टीका तुलनात्मक हिसाब :** प्रयोगके अन्तमें मूतकी मिट्टी, खुली ढेरी और छप्परदार गढ़ेकी खाद तौली गयी। नमूनोंका विश्लेषण हुआ। फल नीचे लिखा जाता है :

## आँकड़ा—३५

### खाद रखनेके लिये नये और पुराने तरीकोंकी तुलना

| विवरण | खुली ढेरी रत्तल | मूतकी मिट्टी और सुधरी विधि: छप्परदार कच्चे गढ़ेकी ठोस खाद रत्तल | मूतकी मिट्टी और सुधरी विधि: मूतकी मिट्टी रत्तल |
|---|---|---|---|
| कुल मात्रा | ६,०९१·२ | १२,०५६·९ | ८,२९०·३ |
| कुल सेन्द्रिय वस्तु | २,५२०·४ | २,१०३·२ | - |
| जल प्रतिशत | ३५·०५ | ६८·३० | ७·९ |
| असली नमूनेमें जलके साथ नाइट्रोजन प्रतिशत | ०·२४०० | ०·१५६३ | ०·१४४९ |
| सूखी चीजोंके आधारपर नाइट्रोजन प्रतिशत | ०·३६९५ | ०·५२७३ | ०·१५६३ |
| कुल नाइट्रोजन | १४·६२ | १८·८४ | १२·०१ |

पुरानी विधिकी अपेक्षा कुल नाइट्रोजन दूना था। सिर्फ गोबरमें भी खुलेमें जमा करनेकी अपेक्षा छप्परदार गढ़ेमें मिट्टीकी तहके साथ जमा करनेपर ३० सैकड़ाकी बढ़ती है। मूतसे ७० सैकड़ा और बढ़ता है। कुल मिलाकर खादका मूल्य सौ सैकड़ा बढ़ जाता है। सुधरी विधिसे खादका प्रबन्ध करनेमें नीचे लिखा अतिरिक्त श्रम लगता है।

| | मनुष्य घंटे | बैल घंटे |
|---|---|---|
| १. खेतसे मिट्टी ढोना और खेतमें फिर ले जाना, जरूरत पर फर्श कोड़ना | ८८ | १६ |
| २. गढ़ेमें गोबर भरना, पानी छिड़कना और मिट्टीसे दबाना | ४८ | — |
| ३. गढ़ेवाले खादके लिये अतिरिक्त पानी और मिट्टीका खेतमें ले जाना | ८ | ४ |

अतिरिक्त तौलसे मालूम होता है कि एक जोड़ी बैलके लिये खेतसे ५ गाड़ी मिट्टी लानी पड़ी है। एक ठट्ठ होनेसे मिट्टी की मात्रा कम होगी। क्योंकि, गोबरकी चाहे जो मात्रा हो हफ्तेमें ३ इंच मिट्टी ही डालनी होती है।

बड़े ठट्टका मूत सोखनेके लिये काफी मात्रामें सूखी मिट्टी चाहिये। इस प्रयोग में २३० दिनमें एक जोड़ी बैलके लिये ३ गाड़ी मिट्टी लगी। इस तरह वर्षमें ४½ गाड़ी हुई। यह मात्रा बहुत है। पता लगाना होगा कि, कम मिट्टीभी सोख सकती है कि नहीं। अगर मिट्टीमें चुल्हेकी राख मिलादें तो बहुत कम मिट्टीकी जरूरत होगी। क्योंकि राख बहुत जादा सोखने वाली है।

प्रयोग लायलपुरमें किया गया। यह बहुत कम वर्षाकी जगह है। अलग अलग वर्षाकी जगहमें प्रयोग करनेसे सोखने के लिये कितनी मिट्टी चाहिये इसका पता चलेगा। अधिक वर्षाकी जगहों और दियारोंमें गढ़े जमीनके ऊपर बनाने होंगे। ऐसी जगहोंमें साल भरकी मिट्टी गर्मीमें लाकर छाँहमें रखनी होगी। इसके लिये अतिरिक्त छप्परोंकी भी जरूरत होगी। छप्परोंके लिये अतिरिक्त स्थान चाहिये। यह अतिरिक्त कठिनाई है। पर इसका इनाम बहुत बड़ा है। उतनीही जमीनमें जादे उपज होती है।

४७५. **कचरे, बुहारन, घासपात और दूसरी चीजोंकी खाद :** मलके जीवाणु सरलतासे जल्दी ही बहुतसी सेन्द्रिय वस्तुओंकी खाद बना देते हैं। वह वस्तुएँ घरकी बुहारन, पशुओंके नहीं खाने लायक अन्नके कचरे, भूसी, घासपात आदि हो सकती हैं। इन्हें गोबर या गूके संयोगसे खाद बनाया जा सकता है। इस विधिको कम्पोस्टिंग कहते हैं। कम्पोस्टिंगके जरिये बड़े परिमाणमें खाद मिल सकती है। और इससे जमीनकी उपज बढ़ायी जा सकती है। कम्पोस्टिंगके द्वारा सभी वनस्पतियोंकी बढ़िया खाद बन सकती है।

इस विधिका आधार जीवाणु है। यह हवा और आर्द्रतामें अपनी क्रिया करता है। यथेष्ट हवा और आर्द्रता आवश्यक है। साइलेजकी विधिसे यह एकदम भिन्न है। उसमें हवा बिलकुल बचायी जाती है।

४७६. **कम्पोस्टिंग : स्थान :** कम्पोस्टिंगके लिये ऐसा स्थान चुनना चाहिये जो ऊँचा हो और पानी लगने या डूबनेका डर जहाँ न हो। छायाकी जगह हो जिससे खाद जल्दी नहीं सूखे। बरसातमें इस बातकी सँभाल करनी चाहिये कि अधिक वर्षासे पकी खाद कहीं बह न जाय। इसलिये गहरी वर्षाके इलाकेमें कम्पोस्टपर छावनी कर देनी चाहिये।

जलस्थान और गौशालाके पास ही कंपोस्टकी जगह चुनना ठीक है। क्योंकि इन सामानोंको कम्पोस्टकी जगह ले जाना होता है।

**कम्पोस्टिंगका क्षेत्रफल :** कचरे और बनस्पति पदार्थोंको कम्पोस्ट करनेके लिये जमीनपर फैला देते हैं। इनकी तह एक फूट तक होती है। कम्पोस्ट की ढेरी की चौड़ाई ६ फूटके लगभग हो, लम्बाई उपकरणोंके अनुरूप। अच्छा तो यह हो कि १६—१३ फूटके कई ढेर हों। ढेरकी ऊँचाई ४ फूट हो।

**नमी :** हरी या भीगी चीजें कम्पोस्टके काममें लानी चाहिये। सूखे पत्ते या दूसरी चीजोंको पानीसे फुलाकर कम्पोस्टिंगके लिये लाया जाय। अच्छा तो यह हो कि सूखी चीजोंको गौशालामें बिछा दिया जाय और जब वह मूतको अच्छी तरह सोख ले और गोबरका भी रस लेले तब कम्पोस्टिंगके लिये लाया जाय। किसे कितना भिगाया जाय यह अलग अलग सामानपर निर्भर है। यदि ढेरमें कुंभी (water hyacinth) भी डालना है तो सूखी चीजें भी बिना भिगाये उसमें डाली जा सकती हैं। आबहवाका भी विचार करना चाहिये। सूखी आबहवामें अधिक नमीकी जरूरत होती है।

**ढेर लगाना :** सामानको जमीन पर १ फूट ऊँचा फैला देते हैं। उसे पैरसे दाबते नहीं हैं। अगर झाड़ीदार बहुतसे पौधे हैं तो उन्हें काटकर छोटा कर लेते या टहनियाँ छाँट देते हैं, तब ढेरमें डालते हैं। सामानकी एक तह फैलाकर उसपर दो इंच गोबर छिड़कते हैं। अच्छा तो यह हो कि, उतनेही गोबरको पानीके साथ सामानमें मिला दिया जाय तब ढेर लगायी जाय। इसके बाद मिट्टीकी एक पतली तह लगानी चाहिये और हो सके तो उसपर गोमूत, गोशालाकी धोअन या १५ गुना पानीमें गोबर घोलकर छिड़कना चाहिये। एक तहके बाद दूसरी, तीसरी और चौथी लगाते जाना चाहिये। इस तरह ढेर पूरी होती है। ढेरको कभी दबाना नहीं चाहिये। भीतर हवाकी जगह रहनी चाहिये। यही इस विधिकी जान है। रौंदने या दबानेसे हवा बाहर निकल आती है। इससे खाद बननेमें बाधा पड़ती है। ढेरकी चोटी कुछ ढलुआँ रख सकते हैं।

ढेरकी जाँच समय समय पर कर देखना चाहिये कि काफी नमी है या नहीं। अगर यह सूख रहा हो तो उसपर पानी छिड़कना चाहिये। कुंभी जैसी बहुत नम चीज जब ढेरमें डाली जाय तो बांसके सूखे पत्ते, पुआल आदि सूखी चीजें उसमें मिलायी जायँ। इन सबको गोमूतमें तर करके ढेर लगाना चाहिये।

**विधिका पूरा होना :** इस विधिको पूरा करनेके लिये ढेरको तोड़कर फिरसे लगाना जरुरी है। जब यह देखा जाय कि आधा सामान गल चुका है तब ढेरको तोड़कर फिरसे लगावें। सूखी चीजोंके गलनेमें ६ हफ्ते और बहुत गीलीको ३ हफ्ते लगते हैं। इसके बाद ढेर तोड़ना और लगाना चाहिये। तोड़कर फिरसे ढेर सजानेमें सब सामान पूरी तरह मिल जाता है। कड़ी टहनी, डंठलोंके छिलके और नरम अंश गलकर छूट जाते हैं। इन कड़ी लकड़ियोंको ढेरसे निकाल देना चाहिये। इन्हें सुखाकर जला सकते हैं। फिरसे ढेर करनेमें तहका क्रम बदल जाता है। जो ऊपर था वह तलेमें चला जाता है और तलेकी चीज ऊपर आ जाती है। सबसे कड़ी चीज बीचमें रखनी चाहिये। अगर सूखापन पाया जाय तो गोबरमें पानी मिलाकर (१५ : १) छिड़कना चाहिये। इस तरह ३ से ६ हफ्तेमें कम्पोस्ट खेतमें डालने लायक हो जायगा।

कम्पोस्ट गर्मी या जाड़ेकी अपेक्षा बरसातमें जल्दी तैयार होता है। साधारण तौरपर ३—३½ महीना इसके लिये औसत समय है। बहुत कड़ी चीजको कूटकर देनी चाहिये। भूसे जैसी चीज पत्तोंपर हलकेसे फैला देनी चाहिये। नहींतो

हवाकी जगह भर जायगी। सूखी चीजोंको कम्पोस्ट करनेके पहले उसे ढोरके पेशाबसे तर कर लेना अच्छा होता है। धानके भूसेके लिये भी यही ठीक है।

**४७७. खाद : पाखानेका उपयोग :** गोबरकी अपेक्षा गू जादे अच्छी खाद है। जिन शहरोंमें पानीसे साफ होनेवाले पाखाने हैं वहाँ गू बह जाता है और बर्बाद हो जाता है। पर बहुतसे शहरोंमें आदमी पाखाना साफ करते हैं और उसे गाड़ देते हैं। यह तरीका भी बर्बादीका है। उससे अच्छा तरीका यह है कि शहरके कचरेकी कम्पोस्टिंग में जीवाणुकी क्रियाके लिये पाखाना काममें लाया जाय। इंदौर-पद्धतिसे शहरका कचरा गूके साथ बहुत अच्छी तरह और जल्दी कम्पोस्ट किया जा सकता है। पर गाँवोंमें गूकी खाद बनानेके लिये दूसरा उपाय करना होगा। उसे नालियोंमें दाबा जा सकता है। छायेदार नालीके ऊपर चलते फिरते पाखाने आदर्श चीज हैं। यदि यह चाल चल पड़े तो गाँवकी बहुत कुछ गन्दगी मिट जाय। पानी अलग बहे। वह गूके साथ नहीं मिले। पानी मिलनेसे गू घुलकर पतला हो जाता है और उसमेंसे दुर्गन्ध आने लगती है। क्योंकि पतला पाखाना मिट्टीसे अच्छी तरह ढकता नहीं है। इसलिये इस तरह काम करना चाहिये कि नालीमें सिर्फ गू जाय। मूत ओर आबदस्त (शौच) का पानी अलग बह जाय। पाखाना करनेके बाद पाखानेको मिट्टीसे दाब दिया जाय। इसके लिये मिट्टी सूखी रखनी चाहिये। ३ से ६ महीनेमें पाखाना मिट्टी हो जाता है। उसे खेतोंमें खादके लिये ले जा सकते हैं।

**४७८. मरे जानवरोंकी खाद :** खाल खींच लेनेके बाद मरे जानवरोंकी खाद बनायी जा सकती है। लाशको टुकड़ा टुकड़ा कर उबाल लेनेसे चर्बी निकल आती है। इसके बाद हाड़-मांसको किसी कड़ाहमें भूँज सकते हैं। तब सूखे मांससे हड्डी अलग की जा सकती है। सूखा मांस पहले मिट्टीमें गाड़ो। तीन हफ्तेमें उसकी खाद तैयार हो जाती है। हड्डीको हल्की आगपर झुलसाओ जिससे वह भुरभुरी हो जाय। झुलसी हड्डी ढेंकीमें चूरी जा सकती है और खादके काम आती है।

छोटे जानवर तथा कीड़े मकोड़ोंको जमीनमें गाड़ उनकी खाद बना सकते हैं।

यदि कोई आदमी खेतकी उपज बढ़ानेके लिये खादकी चिन्ता करे तो और बहुतसी सूरतें निकल सकती हैं। गायको बचानेके लिये उपज बढ़ानी होगी।

अब उतनी ही जमीनसे जादे अन्न उपजने लगेगा तो चारेके लिये कुछ जमीन निकाली जा सकेगी। इस तरह गो-रक्षा होगी।

४७९. खलीकी खाद: खलीका उपयोग लोग जानते हैं। कहीं कहीं वह खास फसलोंमें डाली जाती है। इसका प्रयोग और अधिक हो सकता है। खाद विदेश भेजनेसे भारतको जितनी आमदनी होती है वह खलीकी खाद काममें लानेसे जितनी आमदनी होगी उसके मुकाबले कुछ नहीं है।

चाहे जिस नामकी खाद हो और चाहे जैसे बनती हो वह गायकी रक्षक है। क्योंकि, खेतमें डालनेसे वह उसकी उर्वरता बढ़ाती है। इससे चारा उपजानेके लिये जमीन मिलती है। (२७-'६, ५४७-'५१)

# अध्याय १२

## साँढ़से उन्नति—दूधका लेखा रखना और ठट्ठकी रजिस्टरी

४८०. घटिया साँढ़ झूठा है: घटिया साँढ़ वह है जो संवर्धनके लायक नहीं है। आज तो घटिया साँढ़ बुराईकी जड़ है। क्योंकि इसके कारण भारतकी नस्लें दिन दिन खराब होती जा रही हैं। पर ऐसा क्यों होने दिया जाता है? हम परिस्थिति समझनेकी कोशिश करें। (१४३, ५१३)

४८१. ग्राम-समाज और घटिया साँढ़: ग्राम-समाजोंका बखान हो चुका है। भूतकालका भारत इन्हींने बनाया था। इन्होंने बतौर शासकके कुछ मसले अपने हाथमें लिये थे। ग्राम-समाजोंने जो काम अपने कर्त्तव्य समझ हाथमें लिये थे उनमें साँढ़की व्यवस्था एक थी। ठीक साँढ़की व्यवस्था करनेकी जवाबदेही रैयतके सिर नहीं थी। यह काम समाजका था, व्यक्तिविशेषका नहीं। व्यक्ति समाजका अंग जरूर था। यह प्रथा अज्ञात भूतकालमें चली थी और गाँवके व्यवहारमें घुलमिल गयी थी। उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये समाजको अपना तन्त्र था। जो लोग समर्थ थे उनके लिये यह धार्मिक कर्त्तव्य था कि समाजको साँढ़ उत्सर्ग

करें। और हरेक किसान-परिवारका यह कर्त्तव्य था कि उस साँढ़का पालन ठीक तरहसे करें। इस संस्थाने अच्छा काम किया। उस समयकी अनुकूल परिस्थितिमें इसने कई उत्कृष्ट नसूलें तैयार कीं। अब हम इतना जानते हैं कि पहले वह बहुलतासे थीं और अब मिट गयी हैं।

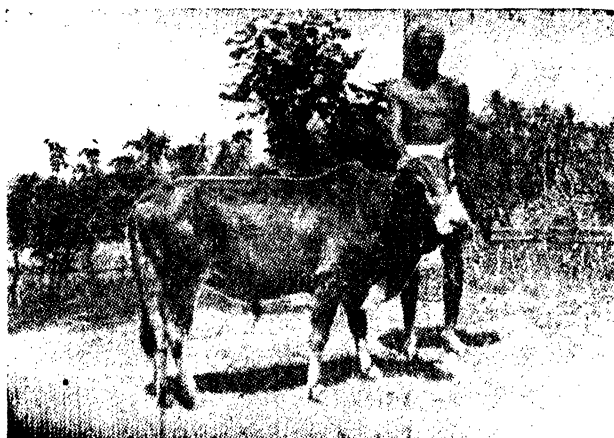
अंग्रेजोंके विजयके बाद ग्राम-समाजें निर्मूल हो गयीं। वृषोत्सर्गकी परिपाटी रह गयी पर निष्प्राण होकर। उस प्रथाका स्वरूप अब भी है। प्रायः सारे भारतमें श्राद्धमें अब भी बछड़ा उत्सर्ग किया जाता है। पर मूल उद्देश्य भ्रष्ट होनेके कारण प्रथा निष्प्राण हो गयो है। किसी तरहका सस्ता बछड़ा उत्सर्ग कर दिया जाता है जो गाँवमें मारा फिरता है। संचालक-संस्था मिट गयी और कोई नियंत्रण करनेवाला रहा नहीं जो देखे कि साँढ़ोंकी संख्या उचित है और उनकी ठीक सँभाल होती है या उन्हें चारा मिल जाता है। बहुतसी ऐसी जगहें हैं जहाँ ऐसे साँढ़ इतने कम हैं कि गोपालोंको गायके गरमानेपर परेशानी होती है। अपनी पसन्दका साँढ़ चुननेकी गुंजाइश नहीं है इसलिये उनके खिलानेकी जवाबदेही भी कोई नहीं मानता। वह भाग्यके भरोसे छोड़ दिये जाते हैं। साँढ़ोकी कैसी गड़बड़ी है यह कोई सहजही देख सकता है। कह सकते हैं कि जैसे गायोंको पूरा भोजन नहीं मिलता उसी तरह साँढ़ोकी भी बहुत हीन दशा है। जाग्रत समाज इस समस्याको सुलझा सकता है और फैली हुई कुव्यवस्था दूर कर सकता है। अलग अलग परिवारोंने कभी साँढ़की बात सोची भी नहीं। सबलोग इस कामके लिये पूरी तरह समाजके भरोसे ही रहे हैं। ग्राम-समाज तो मिट गये पर धार्मिक प्रथाके कारण कुछ कमजोर और अयोग्य साँढ़ अभी मिलते जा रहे हैं। यह अच्छी संतान पैदा नहीं कर सकते। जिस किसानको मवेशी हैं, वह व्यक्तिगत रूपसे अपने आसपासके सिवा जादे नहीं देखता। वह जानता है कि गायें छीज रही हैं। साँढ़ घटिया है। गाँवके ठट्ठका जनक होने लायक नहीं है। वह यह सब जानता है पर यह नहीं जानता कि उपाय क्या है। अलग अलग परिवारमें एक दो या दश गायें है। वह साँढ़ पालनेमें समर्थ नहीं हैं।

पुरानी संस्था टूटी और उसकी जगह कोई नयी संस्था बनी नहीं। इसके कारण भारत इस मुसीबतमें पड़ गया है। (१४३)

**४८२. घटिया साँढ़ : सबसे मँहगा साँढ़ :** मनसे या बेमनसे देहाती प्रायः घटिया साँढ़ पालते हैं। इस तरह अपनी दरिद्रतामें वह सबसे

मँहगा साँढ़ पाल रहे हैं क्योंकि घटिया साँड़से मँहगा दूसरा साँढ़ नहीं। वह भर पेट या अधपेट आहार करताही है। पर उसके कारण ढ़ठ्ठका गुण घटता है। अधपेट खिलाकर और फसलके दिनों खेत खेतसे भगाये जानेपर भी क्या वह मँहगा नहीं? अमेरिकामें घटिया साँढ़ सबसे मँहगा माना जाता है।

घटिया साँढ़का लोप हो जाना चाहिये। जहांके किसान ढोरकी भलाई चाहते हों वहाँ साँढ़ बनानेके लिये सबसे बढ़िया बछड़ा चुनना और पालना



चित्र ३४. घटिया साँढ़—दुनियामें सबसे खर्चीला साँढ़
(लॉइभ-स्टॉक इन सदर्न इंडिया)

चाहिये। यदि गाँवमें इधर उधर घूमकर खानेसे काम न चले तो सभी ढोर पालनेवालोंसे उनकी सामर्थ्य और पशुओंकी संख्याके अनुसार चन्दा वसूल कर साँढ़को खूँटेपर खिलाना चाहिये। पुरानी प्रथा फिरसे चलानी चाहिये और घटिया साँढ़को बधिया कर देना चाहिये।

युक्तप्रान्तके बारेमें कहा जा चुका है। यहाँ किसान अपनी इच्छासे अधिकारियोंसे अच्छे प्रकारके साँढ़ माँगने जाते हैं, और जहाँ इनामी साँढ़ दिया जाता है बहुलोग घटिया साँढ़का बधिया कराना मंजूर कर लेते हैं।

जिलाबोर्ड या सरकार साँढ़ दे या न दे, गाँववाले स्वयं ही अपने यहाँका सबसे बढ़िया बछड़ा लेकर पालें और अपने ठड्डके समागमके लिये उसे साँढ़ बनावें। नस्ल सुधारनेके लिये यह एक विषय है, और यह विषय बहुत महत्वका है। साँढ़के लिये बछड़ेका चुनाव करते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि, जिस नस्लकी गायोंसे समागम कराना है बछड़ा उसी नस्लका है। यदि वह दोगली नस्लका है तो उसके प्रबल लक्षणका पता लगाना चाहिये और जरूरतके लायक बछड़ा चुनना चाहिये। (१४३)

**४८३. सरकारकी ओरसे अच्छे साँढ़की व्यवस्था :** सरकार नामी नस्लोंके अच्छे साँढ़से काम लेनेका प्रचार कर रही है। पर घोंघेकी चालसे भी ज्यादे सुस्तीसे काम हो रहा है। इसी तरह यदि काम होता रहा तो भारतके ढोरोंकी नस्ल कभी सुधर नहीं सकती। ५० या ६० गायके लिये एक साँढ़की जरूरत होती है। अब गायोंकी संख्याके अनुसार हिसाब लगाइये। यह आरंभिक जरूरत है। इसमें हर साल ⅕ नयोंकी जरूरत होती रहेगी। क्योंकि अभी काम करनेका औसत ५ वर्षसे ज्यादे नहीं हो सकता। अच्छे सुधरे साँढ़ोंकी बहुत बड़ी माँग पूरा करने के लिये पुराने चालकी ग्राम-समाज बनानेकी जरूरत है। वही जादूकी तरह यह काम कर सकती है। आजकल ऐसी संस्थाओंका मेल केन्द्रित शासनसे बैठानेकी कोशिश की जाती है। नयी संस्थाओंका नाम रखा जाता है, संवर्धक समिति या परिषद्। यह सब बहुत ज्यादे सरकारी हैं जिसके कारण देहातियोंसे उनका लगाव नहीं होता। इससे कोई काम नहीं होता है।

सुधरे साँढ़की व्यवस्था करनेके लिये जितने सरकारी उपाय हुए हैं उनसे एक बात साफ प्रकट होती है। भारतको जितने सुधरे साँढ़ चाहिये वह सरकारी संवर्धन-क्षेत्रोंसेही नहीं मिल सकते। इसलिये कुछ प्रान्तोंमें यह नीति रखी गयी है कि, जिस इलाकेमें उपयुक्त प्रकार की नस्लें हैं वहाँ पसन्द किये हुए साँढ़ भेजे जायँ और खूब उत्साहसे संवर्धन कराया जाय। कुछ दिनोंके बाद इन गाँवोंमें पसन्दके साँढ़ पैदा होंगे और जहाँ उस नस्लके साँढ़की जरूरत होगी वहाँ भेजे जा सकेंगे। यह काम उचित ढंगका है।

जहाँ जहाँ इस तरह जमकर संवर्धनका काम शुरू हो वहाँ पहले सभी घटिया साँढ़ोंको बधिया कर देना चाहिये। ऐसे कामसे सरकार कुछही वर्षोंमें संवर्धक गाँवोंका निर्माण कर लेगी जहाँसे सारे देशकी इस विषयकी जरूरत पूरी होगी। (१४२-'४३)

**४८४. साँढ़ोंकी बदलौवल :** चतुर संवर्धक जानते हैं कि, ठट्ठमें उसी साँढ़को बनाये रखनेसे वह अपनी बहनों और बेटियोंसे ही समागम करेगा। इससे सपिंड समागमसे होनेवाली बुराई पैदा होगी। इसका निराकरण करनेके लिये वह साँढ़को बेच देते हैं या हलमें जोतते हैं। इस कारण बहुत बार अच्छे साँढ़ हाथसे निकल जाते हैं। पर यदि उन्हें दूसरी जगह भेज दिया जाय तो वह अनेक कामके पशु पैदा कर सकें। संवर्धक सब समय अपने साँढ़ बेच दूसरे नहीं खरीद सकते। सहयोग पद्धतिपर साँढ़ पालनेसे ऐसी बहुतसी कठिनाइयाँ दूर होसकती हैं।

उदाहरणके लिये क, ख, ग, तीन संवर्धक हैं। तीनों एकही नसलसे सरोकार रखते हैं। तीनोंने सन् १९४० में क्ष, त्र, ज्ञ, ये तीनसाँढ़ खरीदे – और एक एक सबने लेलिया।

क, ख, ग, संवर्धक क्रमसे क्ष, त्र, ज्ञ, साँढ़ोंसे सन् १९४३ तक काम लेते रहे। इसके बाद साँढ़ोंकी बदलौवल की गयी। 'क' को ज्ञ, 'ख' को क्ष और 'ग'को त्र मिले। इसके बाद सन् १९४६ में फिर बदली हुई। 'क'को त्र, 'ख'को ज्ञ और 'ग' को क्ष मिले। इस तरह तीनों संवर्धकोंको तीनों साँढ़ोंका लाभ मिल गया। इस बीच यदि कोई साँढ़ सन्तोषप्रद नहीं मालूम हुआ तो उसकी जगह नया आ जायगा। इस तरह साँढ़की जाँच हो जाती है और उसका कम खर्चमें पूरा उपयोग हो जाता है। (१४३)

**४८५. नन्दीशालायें :** पुरानी प्रथा थी कि, समाजकी ओरसे साँढ़ोंकी व्यवस्था हो। देशके अनेक भागमें यह प्रथा अबभी है। सूरत वही है पर भावना मिट गयी है। अपनी नसूलका नमूना यदि मिल सकता है तो बहुत सस्ता सा खरीदकर दागा जाता है और मृतके नामपर उत्सर्ग कर दिया जाता है। वह पशु इधर उधर घूमता है और जा पाता है खेतोंमें चरता है। लोग हर खेतसे हाँक देते हैं और उसे आफत मानते हैं। ऐसे बे-सँभाल साँढ़से घटिया पशु पैदा होना निश्चित है। यह उत्सर्गित पशु है इसलिये इसका बधियाना भी नहीं हो सकता और न हलमें जा सकता है।

उपयोगिता बढ़ानेके लिये इस प्रथामें कुछ नवीनता लानी चाहिये। केवल सर्वोत्तम पशु ही उत्सर्ग किये जायँ। इनकी देखभाल गाँवकी गोशाला, मुखिया, मंदिर या किसी विश्वासी कार्यकर्ता के जिम्मे रहे। खिलाने और दूसरे खर्चके लिये करके रूपमें गायवालोंसे सामान लिया जाय। फलानेके लिये गायें साँढ़के पास लायी

जायँ। खाली समयमें उससे कुछ हल्का काम लिया जा सकता है; जैसे गाँवका कूड़ा हटाना, गाँवके ढोरोंके लिये पानी भरना आदि। इससे उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा और समाजकी भी कुछ सेवा होगी। उत्सर्ग किये साँढ़ोंको रखनेके लिये पहले सार्वजनिक स्थान होते थे। उन्हें नन्दीशाला कहा जाता था। (१४३)

४८६. **ऊँचे दर्जेके साँढ़ पैदा करना :** ऊँचे दर्जेके साँढ़के अभावसे ढोरोंकी व्यापक उन्नतिमें बहुत बाधा पड़ी है। प्रगतिशील संवर्धकोंका अपने मानके अनुकूल साँढ़ मिलना बहुत कठिन है। अनेक प्रान्तोंमें संवर्धनके लिये साँढ़ पैदा करने और बाँटनेका प्रयास सरकारकी ओरसे हो रहा है। पर उनसे पूर नहीं पड़ती है। दूसरी ओर सारे भारतमें उन्नतिशील ऐसे संवर्धक हैं जिनके पास नस्लोंके कुछ सर्वोत्तम नमूने हैं। पर उचित विज्ञापन और जरूरी साखके अभावमें वह अपने पाले साँढ़ बाँट नहीं सकते। अगर इनके सहयोगसे काम करनेका कोई उपाय हो सके तो इस समस्याके सुलझानेमें बहुत सहूलियत होगी। सुधारके लिये एक योजना नीचे लिखे अनुसार है। जिस जगह ढोरके सुधारका काम करना है वहाँ एक आदर्श क्षेत्र स्थापित करना चाहिये। प्रस्तावित नस्लकी ५० गायके लगभग वहाँ रखी जायँ और एक बढ़ियासे बढ़िया साँढ़ भी रहे। इस ठट्ठके चुनिन्दे साँढ़ सनद पाये हुए संवर्धकोंकी गाय फलानेके लिये भेजे जायेंगे। ये संवर्धक सभी क्रियायें शास्त्रीय विधिसे करेंगे। उनके अच्छे साँढ़ सरकार खरीद लिया करेगी जिन्हें वह इस इलाकेमें वितरण कर देगी। प्रबंध ऐसा किया जाय कि एक साँढ़ अपने जीवनमें तीन ठट्ठसे समागम करे। यदि प्रबन्ध अच्छा हो तो एक आदर्श क्षेत्र कमसे कम ५०,००० गायोंके लायक साँढ़ दे सकता है। किसी स्थानमें जमकर काम करनेसे प्रायः १० वर्षमें ढोरोंकी सूरत बदल जायगी (१४१, १४३)

४८७. **घटिया गाय : दूधका लेखा रखना :** आजकी नस्लका दूध बढ़ानेके लिये इन नस्लोंके उत्तमतर साँढ़ों की आवश्यकता है, इस कामके लिये संवर्धक-ग्रामोंमें साँढ़ देना ही यथेष्ट नहीं है। भारवाही गुणकी सूरत देखकर चुनाव हो सकता है, पर दूधके गुणके लिये कोई बाहरी पहचान नहीं है। पसन्दकी हुई गायों पर साँढ़ोंकी आजमाइश हो और देखा जाय उनकी सन्तान कैसी होती है। इसके लिये गायका चुनाव भी जरूरी है। घटिया गायोंकी जरूरत नहीं। क्योंकि ये बराबर हानि पहुंचाती रहेंगी। घटिया गायोंको निर्मूल करनेके सवालपर पीछे

विचार होगा। अभी जो मतलब है उसके लिये इन्हीं गायोंमें से चुनना जरूरी है। दूध देनेकी शक्ति, ब्यानका अन्तराल, स्वास्थ्य और निरोगताका विचारकर गाय चुननी चाहिये। गाय चुनकर उसे उन्नत साँड़से फलाया जाय और उसकी संतानके गुन-करतब (गुण, कर्त्तव्य) देखे जायँ। जब जाँचसे मालूम हो कि कोई गाय और साँड़ मन चाहे गुणोंवाली संतान पैदाकर सकते हैं तो आगेकी संतान भी उन्हींकी तरह होगी यह उम्मीद की जा सकती है। बच्चेके लिये ऐसी गाय पसन्द करने लायक है। पर जब उसके गुण बताने और उसकी सनद देनेवाली कोई संस्था नहीं है तो ऐसी गाय पहचानी कैसे जाय?

४८८. **दूधका लेखा रखनेकी जरूरत :** इसी जगह दूधका लेखा रखने, और लेखा रखनेवाली संस्थाओंकी आवश्यकता सामने आती है।

गाय खरीदनेके लिये आजकल हो सके तो अपने सामने दूध दुहाकर देखा जाता है। नहीं तो खरीददारको उसकी सूरत-शकलपर ही भरोसा करना होता है। वह गाय मिट्टीके मोल लेनेकी कोशिश करता है, और यह वाजिब ही है। क्योंकि उसके गुणके बारेमें वह कुछ जानता नहीं। जहाँ एक बार दुहाकर गाय खरीदी जाती है वहाँ उसका कुछ मूल्य लगाया जाता है। पर भाग्यका जुआ इसमें भी काम करता है। बेचनेवाला इसमें भी चालाकी कर सकता है। सबेरे ज्यादे दूध दिखानेके लिये वह साँझको नहीं दुहेगा। इसमें भी तीनोंको नुकसान उठाना पड़ सकता है। बेचनेवालेका नुकसान यह है कि, अधिक दूध दिखानेके बाद भी गाहक उसपर शंका कर सकता है। बेचवालको उचित दाम नहीं भी मिल सकता है। इन्हीं कारणोंसे गाहककी भी हानि हो सकती है। वह आवश्यकतासे अधिक सतर्क या विश्वासी हो सकता है। अधिक सतर्क होनेके कारण उसके हाथसे अच्छी गाय निकल जा सकती है। अधिक विश्वाससे वह अधिक दाम दे सकता है। और बादको पूरी जाँचके बाद वह पछता सकता है। गायकी हानि दोनोंमें है। क्योंकि लेवाल बेचवाल दोनोंही उसके लायक दाम नहीं लगा सकते। (२५३)

४८९. **खरीदनेके लिये गाय चुनना :** कुछ शहरी हाटोंमें, खास कर कलकत्तेमें, चाल है कि गाय गाहकके घर लायी जाती है। उसके साथ बेचनेवालेका एक आदमी आता है। गाय लगातार तीन दिन दुही जाती है। उसकी सँभाल बेंचवाल ही करता है। तीन दिनके बाद उसके दैनिक दूधका औसत निकाला जाता है और उसीपर दाम लगाया जाता है। यदि बेचनेवालेका गाहकसे पहलेका

सरोकार है तो वह यह व्यवस्था स्वीकार कर लेता है। एक बार दुहवाकर लेनेसे यह कहीं अच्छा है।

फिर इन तीनों दिनोंकी दुहाईसे सब पता नहीं चलता। इस हिसाबसे गाय कितने दिनोंतक दूध देगी? दूसरे महीने उसका दूध कम होगा या जादे? ये सवाल हैं जिनपर गाहकको विचार करना है। लगाया हुआ दाम उसे देना होगा। फिरभी वह अनिश्चित पशु ही ले रहा है। वह अन्दाजसे कमभी हो सकता है और बढ़भी सकता है। इसलिये तीन दिनकी जाँचमें भी गायका नुकसान ही है। उसपर शक बना रहता है और उसके गुणोंकी पूरी शाबाशी उसे नहीं भी मिल सकती है। यदि वह उम्मीदसे बढ़कर निकली तो बेचवाल अन्याय महसूस करेगा और अच्छी गायोंके संवर्धनके लिये वह सतर्क हो जायगा। वह उनके जन्मसे ही उनका उचित पालन करेगा। यह पहले बताया जा चुका है कि बछड़ा जब माँके गर्भमें रहता है उसी समयसे संवर्धन आरम्भ होता है। प्रसवसे पहले या बादकी किसी त्रुटिका गायपर बुरा असर होता है। अच्छे संवर्धनमें यह सब बाधायें हैं।

४६०. **गायको प्रमाणपत्र (सनद) मिलना चाहिये :** यदि गायकी उचित सँभाल करनी है तो गाहकको उसके बारेमें कुछ जानकारी होनी चाहिये। बेचवाल उसके सारे इतिहासके साथ उसे हाट ले जाता है और ग्राहक क्या खरीद रहा है यह अच्छी तरह जान उसे खरीदता है। दोनों ओर गायका ठीक मूल्य लगाया जाता है और वह उसके गुणोंके अनुसार होता है।

गायका पूरा दाम मिले इसलिये यह प्रबन्ध हो कि, उसके बारेमें लोग अच्छी तरह जानें। यदि गाय पालनेवाला दूधका लेखा रखता है तो एक कठिनाई दूर हो जाती है। पर ग्राहक सिर्फ दूधके लेखेसे संतुष्ट नहीं होगा। वह उसके माँबापके गुण-कर्म भी जानना चाहेगा। माँको कितना दूध होता था? गायकी माँकी उमर फलनेके समय क्या थी और हर ब्यानमें उसे कितना दूध हुआ? गायका जनक कौन है? इस जनकका लेखा (प्रमाण) क्या है? ये सवाल खड़े होना स्वाभाविक है। अगर इस गायका जनक किसी दूसरी गायका भी जनक है जो बहुत अच्छी है तो यह अनुमान किया जा सकता है कि यह गाय भी अपनी बहनकी तरह अच्छी निकलेगी। इन बातोंसे पशुकी वंशावली जाँचनेकी जरूरत पैदा होती है। यह काम हो जाने से गायके बारेमें बहुतसी अनिश्चित बातें मिट जाती हैं और

इससे गायको फायदा है। उसके दूधके पिछले लेखे और उसके माँबापके गुण-कर्मसे उसका सही परिचय लोगोंके सामने रहता है। गायके लिये यह नहीं करना उसका बुरा करना है, और उसकी उन्नतिमें रुकावट डालना है।

**४६१. वंशावलीकी रजिस्टरी :** गायकी वंशावली एक खातेमें दर्ज होती है—इसे वंशावली-खाता (Pedigree Register) या ठट्ठ-बही (Herd Book) कहते हैं। भारतमें 'ठट्ठ-बही' यह नाम अधिक प्रसिद्ध है।

सब बातोंका विचारकर हम इस नतीजेपर आते हैं कि, गायको पतनसे बचानेके लिये (१) दूधका लेखा और (२) ठट्ठ-बही की जरूरत है। गायकी उन्नतिके लिये ये दो जरूरी काम हैं।

दूसरे देशोंमें दूधका लेखा जारी होनेसे गायकी बहुत उन्नति हुई है। गो-परीक्षण समिति (Cow Testing Association) नामकी संस्थाओंने लेखा रखना आरम्भ किया था।

**४६२. गो-परीक्षण समिति :** पहली गो-परीक्षण समिति सन् १८९५ में डेनमार्कमें बनी। डेनमार्की किसान इसे बहुत चाहते थे। संसारके सभी दुग्ध-व्यवसायी देशोंमें ये समितियाँ फैल गयीं। अमेरिकाकी पहली समिति सन् १९०५ में फ्रेमाउट निवेगो जिला, मिचिगनमें स्थापित हुई। तबसे यह आन्दोलन तेजीसे फैल रहा है। सन् १९३८ में अमेरिकाके विभिन्न राज्योंमें १,१०६ समितियाँ थीं। बादमें इन समितियोंका नाम 'दुधार-ठट्ठ-सुधार समिति' (Dairy Herd Improvement Association) कहा जाने लगा। वास्तवमें यही ठीक भी है। सन् १९३४ में डेनमार्कमें १,५७९ गो-परीक्षण समितियाँ थीं। इनसे संलग्न ४८,२४८ ठट्ठ थे, जिनमें ६,७८,४०२ गायें थीं। डेनमार्कमें ऐसे स्थान हैं जहाँ ७० सैकड़ा तक परीक्षित गायें हैं।

**४६३. दुधार-ठट्ठ-सुधार समितिका संघटन :** संघटनकी योजना सरल है। १,५२५ किसान अपनी समिति संघटित कर अपना पदाधिकारी चुन लेते हैं। वहलोग कुछ गायोंको परीक्षाके लिये देना भी स्वीकार कर लेते हैं। अमेरिकामें स्थान, गाय और सदस्योंकी संख्याके अनुसार प्रति वर्ष प्रति गायके लिये १'५० डालर (करीब ५) रु०) से २'५० डालर (करीब ८) रु०) तक देना पड़ता है। समिति फीसपर परीक्षक नियुक्त करती है। साधारण तौरपर परीक्षक हर सदस्यके क्षेत्रपर महीनेमें एक बार जाता है। वह हर गायका दूध तौलता है,

उनका नमूना लेता है और उसकी जाँच कर मक्खनका प्रतिशत निकालता है। इसीसे महीनेभरके मक्खनकी उपज निकाली जाती है। महीनेके बाकी दिनोंमें हर गायके दूधकी तौल इसी कामके पर्चेपर लिखी जाती है। एक दूसरे पर्चेपर गायको जो चारा दिया जाता है वह लिखा जाता है। महीनेके लेखेको परीक्षक जाँचता है। वह वर्षके अन्तमें उपज, और चारेके खर्चका विवरण तैयार करता है। अपने कामके सिलसिलेमें परीक्षक अनेक गव्य-व्यवसायियोंके सम्पर्कमें आते हैं जिससे उन्हें बहुतसी उपयोगी बातें मालूम होती हैं। यह बातें वह दूसरे किसानोंको बताते हैं।

**४६४. डेनमार्कमें गो-परीक्षण :** डेनमार्कमें ये समितियाँ सरकारसे सम्बद्ध हो जाती हैं। यदि समितिमें कमसे कम १० सदस्य और २०० गायें हुईं तो सरकार उसे वार्षिक वृत्ति देती है। समितिको हर गायकी उपजका विवरण बदलेमें देना होता है। सरकार एक सरकारी ठट्ठ-बही रखती है—इसमें सभी प्रमाणित गायोंकी वंशावली लिखी रहती है। सरकारी ठट्ठ-बहीमें नाम चढ़वानेके लिये कमसे कम कुछ ऐसी आवश्यक बाते हैं जिनकी पूर्त्ति होना जरूरी है। यह बातें ढोर-परीक्षण समितिके लेखेपर निर्भर करती हैं।

सरकार किसानोंके यहाँ सलाहकारोंको भेजा करती है। यह गव्यक्षेत्र और पशुओंकी उन्नतिके काममें अपना पूरा समय लगानेवाले होते हैं। डेनमार्कने सरकार और गोपालन-समितियोंकी सहायतासे गव्य-व्यवसायमें आश्चर्यकी उन्नति की है। इस देशमें सन् १९११ में गायको वर्षमें औसत मक्खन ११० रत्तल होता था। कुल २ करोड़ ६० लाख रत्तल मक्खनका निर्यात हुआ था। सन् १९३४ में गायके मक्खनका औसत २९८ रत्तल तक पँहुचा और निर्यात ३३ करोड़ रत्तलोंका हुआ।

**४६५. भारतमें रजिस्टरी :** अभी ही भारतमें इसका प्रारम्भ हुआ है। इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्चने दूधका लेखा और ठट्ठ-बही रखना शुरू किया है। प्रान्तीय पशुपालन-विभाग कामकी देखभाल करते हैं। काउन्सिलके मंत्रीको सीधे लिखनेपर वह प्रान्तीय संस्थाके द्वारा जाँच कराते हैं। फिर रजिस्टरी प्रान्तीय अधिकारी कर देते हैं।

यूरोप और अमेरिकामें परीक्षाके लिये दूध तौला जाता है और उसमें कितना मक्खन है यह देखा जाता है। भारतमें अभी केवल दूधकी तौल ही ली जाती है, मक्खनका विचार नहीं किया जाता। इस प्रारम्भिक अवस्थामें सरकार किसी तरहकी

फीस नहीं लेती है। इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रिकल्चरल रिसर्चका दुग्ध-परीक्षक पन्द्रहवें दिन किसानके यहाँ जा २४ घंटेके दूधका लेखा लेता है। इसीसे १५ दिनोंके दूधकी कुल उपजका हिसाब निकाला जाता है। काउन्सिलने इस कामके लिये एक गुर (नियम) निकाला है। जबतक दूध होता है महीने महीने यह किया जाता। इससे किसान दूधका दैनिक लेखा रखनेके झंझटसे बच जाता है। शुरू करनेके लिये यह तरीका अच्छा है।'

दिल्लीमें एक ठट्ठ-बही रखी गयी है। उत्साही किसानोंको इस संस्थासे संपर्क बढ़ाना और संबद्ध होना चाहिये। उचित संचालन होनेसे यह भविष्यमें ढोर-सुधारका महान् कार्य कर सकती है। किसी प्रमाणित गायका बच्चा उसका गुण जान कर खरीदा जायगा यों ही अन्दाजी नहीं। इससे उसका दाम भी जादा मिलेगा। सिर्फ यही नहीं, इस रीतिसे "प्रबलवीर्य" साँड़का भी पता चलेगा। प्रबलवीर्य साँड़ ही अपनी बेटीमें दुधार गुण ला सकता है। ऐसा साँड़ अमुक ठट्ठमें है यह पता चलनेपर उसकी संतानका प्रचार सब जगह होगा। इससे ढोर-सुधारका काम आगे बढ़ेगा।

४६६. **घटिया गायोंका निर्मूल करना :** गायकी जाँचमें लेखा ही केवल उपाय नहीं है। दूधके लेखे और वंशावलीसे जरूर कुछ पता चलेगा। इन बातोंको आंकना चाहिये। दूसरे कारणोंका भी लेखेके साथ विचार करना होता है। आकृति एक जबरदस्त मुद्दा है। अभ्यस्त आदमी गायको देखकर उसके गुण बहुत कुछ ठीक बता सकते हैं। आकृतिसे दूधकी परीक्षा की जा सकती है। वंश परम्पराके लिये भी केवल व्यक्तिगत लेखा ही यथेष्ट नहीं है।

नसल सुधारके लिये घटिया साँढ़ निर्मूल हो जाय यह अब स्पष्ट है। उसी तरह घटिया गायका निर्मूल करना भी उतनेही महत्वका है। इनमें किसीकी उपेक्षा करनेसे अच्छे पशु उत्पन्न नहीं होंगे और गोरक्षाकी समस्या कुछभी नहीं सुलझेगी।

घटिया साँढ़ बधिया करनेपर सरलतासे निर्मूल हो जाता है। पर खराब, अलाभकर, बेकार गायोंका उन्मूलन उसी तरह नहीं हो सकता। जब चाहें गायको बाँझ कर देना अभी सम्भव नहीं है। जाति-हितके लिये ऐसी गायोंको बच्चे पैदा करने नहीं देना है।

यदि किसी रैयतको ऐसी गाय है जिसका संवर्धन समाजकी दृष्टिमें अवांछित हो सकता है, और वह भी उसे फायदेकी नहीं मानता तो उसे निर्मूल कर देना होगा।

पर दूसरोंके हाथ बेचनेसे यह काम नहीं हो सकता। और ऐसा करना भी नहीं चाहिये। क्योंकि अवांछित पशुका दोष किसीको बताये बिना उसके हाथ उसे बेचना ठीक नहीं। वह कसाईके हाथ काटे जानेके लिये बेची जा सकती है। पर ऐसा करना भावनाके विरुद्ध है। किसी ग्राहकको चुपचाप बेच देनेका अर्थ उसे कसाई-खाना भेजनेके बराबर है। क्योंकि बेफायदावाली गाय अंतमें कसाईखाना जायगी ही। यह रोकनेके लिये विवेकी किसान ऐसी गायोंको हलमें जोते और उसे अलग रखे जिससे साँढ़से उसका समागम न हो।

४६७. **दो प्रकारके ढोरोंकी उन्नति :** भारतमें भिन्न भिन्न इलाकोंकी अपनी विशेष समस्यायें हैं। पर नस्लके आधारपर उनका भेद किया जा सकता है। ऐसी जगहें हैं जहाँ विशेष प्रकारकी नस्लें हैं। इनमेंसे कुछकी सूची बन चुकी है, गिनती भी हुई है और अभी काम बढ़ही रहा है। यह एक प्रकारका इलाका हुआ। दूसरे इलाके हैं जहाँ अज्ञातकुल-ढोर हैं। किसी विशेष नस्लसे उनका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। पर यह माना जाता है कि वह पहाड़ी प्रकारके छोटे ढोरकी संतान हैं।

यह धानके नम इलाकोंमें अधिक पाये जाते हैं। मध्य भारत और मध्य प्रदेशके सूखे इलाकोंमेंभी यह बहुत हैं। प्रसिद्ध नस्लोंके सुधारसे इनके सुधारका सवाल बिलकुल भिन्न है। कई पीढ़ियोंके यत्नसे किये चुनाव और संवर्धनसे विशिष्ट नस्ल तैयार होती है। कुछ समयके बाद प्रकार स्थिर हो जाता है। फिर इस प्रकारवाले ढोरसे उसी प्रकारके लक्षणोंवाली संतानकी उम्मीद की जाती है। रंग, सींगका रूप, आकार, लक्षण सभी एक मानके होते हैं। यह मान जब आ जाता है तब नस्ल बन जाती है।

ऐसी नस्लके मूलमें संकरभी हो सकता है। पर संकर हो जानेके बाद नये रक्तमें एक नस्ल कायम करनेवाले लक्षण स्थिर हो सकते हैं।

४६८. **खास नस्लके ढोर :** किसी नस्लके ढोरका सुधार करनेमें यदि कुछ फल दिखायी नहीं देता तो कोटि-निर्माण करना चाहिये। अच्छा साँढ़ काममें लाना चाहिये। वह अपनी संतानको अच्छे लक्षण देता है। पहले तो नया रक्त आधा ही रहता है। यह पहली पीढ़ीमें होता है। यदि पहली पीढ़ीवाली संतानका समागम सुधरे साँढ़से कराया जाय तो दूसरी पीढ़ीका रक्त तीन चौथाई सुधरा हुआ होगा। तीसरी पीढ़ीमें यदि सुधरे साँढ़का समागम हुआ तो सन्तानमें

$\frac{7}{8}$ सुधरा रक्त और $\frac{1}{8}$ मूल रक्त रह जायगा। इसे कोटि-निर्माणके द्वारा शुद्ध-रक्त संवर्धन करना कहते हैं। इस तरह जब आगेकी संतानमें बिलकुल नया रक्त हो जाता है तब जो पशु पैदा होता है वह शुद्ध रक्तका होगा। शुद्ध रक्तके पशुओंमें कुछ विशेषतायें बदले विना ज्योंकी त्यों सन्तानमें भी आजाती हैं। शुद्ध-रक्तके संवर्धनकी जरूरत यही है। शुद्ध रक्तवालोंके सुधारकी भी जरूरत है। कोई गाय या साँढ़ शुद्ध नस्ल (रक्त) का इसका यह माने नहीं कि अपनी नस्लका वह सर्वश्रेष्ठ है। इसका अर्थ यही है कि, पशुमें अपनी नस्लको साधारण विशेषता है। माँ से बेटियोंका दूध अधिक कर सकनेवाला साँढ़ यदि ऐसी शुद्ध नस्लके ठट्ठमें रहे तो वह इस ठट्ठका सुधार करेगा।

इसलिये जानी हुई नस्लके ठट्ठमें उसी नस्लका शुद्ध-रक्त साँढ़ लाओ। तीन या चार पीढ़ीके बाद उसे शुद्ध रक्तका ठट्ठ बना दो और अच्छे से अच्छे साँढ़ चुनकर ठट्ठके गुणकी उन्नति करो।

४९९. **प्रगतिशील सुधारमें कठिनाई :** शुरूमें उल्लेखनीय सुधार आसानीसे हो जाता है। पर जैसे जैसे चाहा गुण बढ़ता है आगेकी उन्नति कठिन होती जाती है। इसके बदले संभावना यह भी रहती है कि, साँढ़के चुनावमें पूरी सावधानी रखने पर भी दूधका गुण घट जाय। विशेष कारणसे पूरी सावधानी रखने पर भी कभी का ऊँचा मान घट जाता है।

किसी एक गायको बहुदुग्धा बनानेकी कोशिश नहीं होनी चाहिये। चाहिये यह कि पूरे ठट्ठको ऊँचा उठाया जाय। विशेष गायोंका काम चाहे जैसा हो पर सामान्यरूपसे पूरा ठट्ठ उत्कृष्ट हो जाय।

५००. **सकल साधारणका उत्कृष्ट होना :** इस मामलेमें सभी संवर्धक अपनी अक्ल लगा रहे हैं। उपाय मामूली है, अर्थात् प्रमाणित साँढ़ काममें लाना। प्रमाणित साँढ़ वह है जिसकी जाँच हो चुकी है। अलग अलग गायसे उत्पन्न उसकी बेटियोंकी दूध-उत्पत्तिकी जाँच होती है। उस साँढ़की बेटियाँ अपनी माँसे श्रेष्ठ होती हैं। उस श्रेष्ठताकी रक्षा और सारे ठट्ठमें उसीकी छाप देनेके लिये संवर्धक सपिंड-संवर्धन करते हैं।

५०१. **उत्कृष्टताके लिये सपिंड-संवर्धन :** सपिंड-संवर्धन अर्थात् बाप-बेटी, दादा-पोती, भाई-बहन आदि निकट संबन्धियोंका समागम। इसके बारेमें लोगोंको भ्रान्ति है। पशु-पालनमें सपिंड-समागम उन्नतिकी पहली सीढ़ी रही है।

उल्लेखनीय और चिरस्थायी सुधारके लिये मूल-पशु बलिष्ठ हों। आरम्भमें प्रजोत्पत्तिके लिये जननियोंका चुनाव, आकृति, डील, निरोगता आदिके विचारसे करना चाहिये। उपयुक्त बुनियादी पशु और प्रमाणित साँढ़की सन्तान पहलेवालोंसे कहीं जादे अच्छे प्रकारकी होगी।

अभी हमारे देशमें एक ब्यानमें १०,००० रत्तल और इससे भी अधिक दूध देनेवाली गाय मिलती है। अभी पशुपालकोंको और जादे उन्नतिकी समस्या पर गंभीर विचार करना होगा। सपिंड-समागम उत्कृष्टताके लिये प्रसिद्ध उपाय है। बुकानन स्मिथके ( Buchanan Smith, Institute of Animal Genetics, University of Edinburgh) एक लेखके निम्नलिखित उद्धरणसे यह बात स्पष्ट होती है।

"पशु-धनकी उन्नतिके लिये पालकोंके काम लाने लायक महत्वके उपायोंमें एक सपिंड-समागम है। सपिंड-समागमकी सफलता हरतरहसे बुनियादी पशुओंके प्रकार पर निर्भर है। प्रकार दो दृष्टिसे अच्छा होना चाहिये। उपजकी दृष्टिसे (दुधार गायोंके लिये दूधकी उपज और उसका मक्खन) और देहकी गढ़तकी दृष्टिसे भी। इसके अलावे सिर्फ ऊपरी निगाहसे ही बुनियादी पशु अच्छे न हों, उनकी आनुवंशिकता भी पूरी पुष्ट हो।

"किसी पशुकी आनुवंशिक गढ़तकी जाँच उसकी संतानसे की जाती है। दो निकट संबन्धके पशुओंका समागम कराकर हम निश्चितरूपसे उनकी आनुवंशिक गढ़न उत्पन्न करा सकते हैं।

"चुनावके साथ सपिंड-समागमसे हम वांछित गुणोंको घना कर सकते हैं। इससे प्रबलवीर्यता आती है।" —(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इन्डिया, सेप्टेम्बर, १९३५)

अपने देशमें चतुराई और सतर्कतासे सपिंड-समागमके द्वारा अपने ढोरोंका प्रकार स्थिर करना जरूरी है। मैं इसे आजके लिये वांछित मानता हूँ। कुछ मामलेमें असफलता हो सकती है। तब ऐसी सन्तानको बाँझ करके निर्मूल कर देना चाहिये। (१६३)

**५०२. सपिंड-समागमके लिये चेतावनी :** 'यद्यपि प्रवीण संवर्धकोंने सपिंड-समागमसे उत्कृष्ट फल उत्पन्न किये हैं, पर शौकिया लोगोंको इसके प्रयोगमें बहुत सावधानी रखनी चाहिये। इसकी भी गुंजाइश रहती है कि अवांछि

लक्षण बढ़ते जायें और अन्तमें सारे ठट्ठको बिगाड़ दें। क्योंकि सपिंड-समागमसे वांछित और अवांछित (चाहे अनचाहे) दोनों लक्षण स्थिर होते हैं। बहुत दिनोंतक सपिंड-समागम चलता रहनेसे सन्तान कमजोर और उसकी प्रजोत्पादन-शक्ति कम हो जा सकती है। (१६३)

**५०३. अज्ञात-कुल प्रदेशके लिये सुधरा साँढ़ :** अज्ञात-कुल प्रदेशके लिये समस्या बिलकुल भिन्न है। यहाँ ढोर साधारण तौरपर बहुत क्षीण होते हैं। इन अंचलोंमें भी सुधरे साँढ़के लिये बहुत जोर है। मालूम होता है सरकारने दूसरी जगह जो नीति रखी है वही यहाँ भी है।

सुधारके लिये वातावरण और चारा जरूरी बातें हैं। पंजाबके घटिया इलाकोंमें रोफ्फन ढोरकी उपयुक्तताके सिलसिलेमें यह कहा जा चुका है कि वातावरण पर सारी बातें निर्भर हैं। जिन पशुओंको गीली आबहवा और घटिया चारेका अभ्यास नहीं है उन्हें ऐसे स्थानमें संवर्धनके लिये लानेसे कष्ट होता है और वह बिगड़ जाते हैं। उनकी संतान कदाचित् इस प्रतिकूल जलवायु और चारेपर टिक न सके। (२७१)

**५०४. पूरबी बंगाल चार महीने डूबा रहता है :** उदाहरणके लिये पूर्व बंगाल लें। इस प्रदेशमें सालके चार या पाँच महीनों तक बाढ़ रहती है। घर छोटे छोटे टापूसे दीखते हैं। ऐसी जगहोंमें ऐसे संकटके समय ढोरोंका स्वास्थ्य बनाये रखना कठिन काम है। बहुत जगह धानके सूखे पुआलके सिवा कुछ नहीं मिल सकता। (३४६)

**५०५. एकमात्र चारा—पुआल :** बंगालके दूसरे भागोंमें भी बहुत वर्षा होती है। पच्छिमी बंगालके कुछ भागोंको छोड़ वर्षामें बाढ़ आना साधारण बात है। बंगालमें चारेकी खेती नहीं होती, धानका पुआलही मुख्य चारा है। अकेले पुआलका चारा बहुत बुरी चीज है। धानके पुआलके पोषक गुणकी खोजमें पता चला कि उसमें खनिज पदार्थोंकी कमी है। कैलसियम (चूना Calcium) और फॉसफोरस (Phosphorus) का उचित अनुपात होना चाहिये, पर पुआलमें यह ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त इसमें पोटाश (Potassium) बहुत जादे है, इस कारण कैल्शियम नहीं पचता। इसमें जो प्रोटीन है वह पचनीय नहीं है। इस तरहके मुख्य आहार पर बंगाल और धानके अन्य प्रदेशोंमें ढोर पाले जाते हैं। वहाँकी गायें ऐसी हीन हैं तो अचरज क्या है?

धानके इलाकेके पशु अनेक पीढ़ियोंके अभ्याससे ऐसे घटिया चारेपर जी सकते हैं। इन प्रदेशोंमें यदि किसी प्रसिद्ध नस्लका साँढ़ संकर करनेके लिये लाया जाये तो निराशाजनक फल होगा। पंजाबके थोड़ेसे साँढ़ कुछ नहीं कर सकते। बंगालके करोड़ों पशुओंका सुधार इनसे होना कठिन है। दूसरी नस्लके साँढ़ लानेसे ही कुछ नहीं होगा। जैसे कि बंगालकी गायसे हरियानाका समागम करानेका अभिप्राय बराबर हरियानासे ही समागम करा, पहले संकर फिर धीरे धीरे शुद्ध-रक्त पशु तैयार करना होना चाहिये। इस पर सवाल उठ सकता है कि क्या हरियाना या दूसरी किसी प्रसिद्ध नस्लका पशु बंगालके वातावरणमें टिक सकता है? बंगालके किसानकी आजकी स्थितिके विचारसे वह उसका जैसा पालन कर सकते हैं, क्या वह उसे सह सकेगा? (३६७, ६५५, ७६४-८१४)

**५०६. श्रेष्ठ प्रकारके साँढ़ बाहरसे लानेका खतरा :** श्री पीजने (Mr. Pease) जो सिद्धान्त ठहराया है वह बंगाल और दूसरे धानके इलाकेके पशुओंपर पूरी तरह लागू होना चाहिये। उनका मत है कि जिस स्थानमें जिस प्रकारके पशु पाये जाते हैं वहाँ उसी प्रकारके पशु उत्पन्न करना चाहिये। पर वह पहलेसे मजबूत और अच्छे हों तथा जो चारा मिलता है उसीपर गुजर करने वाले हों (२७१)। हरियाना जैसे बड़े और भारी साँढ़ बंगालमें लाना इस सिद्धान्तके प्रतिकूल है। धानके इलाकेमें जो चारा नसीब होता है उसपर ऐसे साँढ़ और उनकी संतानसे वह काम होनेकी उम्मीद भी नहीं करनी चाहिये जो स्थानीय घटिया पशु कर रहे हैं। (२१७)

**५०७. विदेशी प्रकारके ढोर लानेके खतरेके बारेमें ऑलवरका मत :** सर अर्थर ऑलवरने अपने एक लेखमें लिखा है :

"...जो इलाके उन्नत ढोर की प्रकृतिके प्रतिकूल हैं वहाँ भी ऊँचे दर्जेके पशु पैदा किये जा सकते हैं। पर साधारण संवर्धक इसका खर्च नहीं उठा सकता। उसे अनिवार्य प्रतिकूल परिस्थितिओंसे लड़ना पड़ेगा। इसके सिवा एक दिक्कत यह है कि यदि स्थानीय नस्लसे भिन्न पुरुष-संतानसे काम लिया गया तो उससे भलाई के बदले बुराईकी अधिक संभावना है। सबसे बड़ी बात यह कि नया रक्त पानेके लिये हमेशा बाहरसे साँढ़ मँगाते रहना होगा।"—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इन्डिया, जुलाई, १९३७)

यह बात धानके इलाके में हूबहू लागू होती है। इन इलाकोंमें चारे आदिकी

गाँवोंमें जैसी हालत है, हरियाना साँड़ उपयुक्त नहीं हैं। बदले हुए रक्तको बनाये रखनेके लिये जादेसे जादे हरियाना मँगाते रहना होगा। और "इससे भलाईके बदले बुराईकी अधिक संभावना है।"

५०८. **श्रेष्ठ प्रकारके बारेमें श्री ब्रूएनका अनुभव :** "...दोगली गाय और कुलीन साँड़से पहला संकर प्रायः इतना अच्छा होता है कि, बहुतसे अनुभवी लोगोंकी आँख भी धोखा खा जाती है, और अकसर ऐसे साँड़को शुद्ध नस्ल का समझ उसका दाम बहुत जादे दे देते हैं। पर उनकी सन्तान अपनी माँ से भी घटिया होती है।"—(पशुपालन शाखाकी पहली बैठककी रिपोर्ट, १९३३, पृ० १५०)

इन बातोंके होते भी बंगाल सरकारने एक योजना बनायी कि बंगालके १५ जिलोंके लिये १,५०० साँड़ की पहली किस्त पंजाबसे लायी जाय। यह हरियाना नस्लके हों। यह सब जनतामें बाँट दिये गये हैं। (२७१)

५०९. **ऑलवरने हरियानाको बंगालके लिये दुधार नस्ल बताया है :** सर अर्थर ऑलवरने अपनी ऊपर कही चेतावनीके विपरीत भी बंगाल में हरियाना या राठ साँड़की सिफारिश की है। इसमें उन्होंने शहरोंके दूधकी जरूरत और साधारण ढोर-उन्नतिकी आवश्यकता दोनों बातोंको असावधानतासे एक साथ मिला दिया है। दूधकी व्यवस्थाके सुधारके बारेमें उन्होंने कहा था :

"जहाँके ढोर बहुत खराब और निकम्मे हों वहाँ भारतके दूसरे हिस्सेसे अच्छे पशु लाना भी आवश्यक हो सकता है। अच्छे और दुधार ढोर लाभप्रद हैं, रैयतोंको यह दिखाना है। शर्त यही है कि उन्हें उचितरूपसे खिलाया और पाला जाय। उन्हें इस तरह रखा जाय कि उनके पेशाब और गोबर कमसे कम नष्ट हों। धान उपजाने-वाले ढोरपर अधिक ध्यान दें। इसलिये कलकत्तेके पासके प्रान्तों और रियासतोंको मैंने एक सिफारिश की है कि वह लोग इस मौकेसे फायदा उठावें। कलकत्तेसे सस्ते दाममें हरियाना गायें खरीदकर चुने हुए रैयतोंको किस्तपर दें। उनसे शर्त्त यह रहे कि वह लोग अपनी कुछ जमीनमें फेरबदलसे फलियाँ या घास उपजावें और पुआलके साथ उसे खिलावें। इस रीतिसे फायदेके साथ दूध पैदा किया जा सकता है, और सालभर पशु भी अच्छी तरह रखे जा सकते हैं। मैंने यह भी सुझाया है कि, हर गायके लिये हरी घास, फलियाँ या ऐसीही फसलोंसे काफी साइलेज बनाना चाहिये। इन्हें बरसातमें पैदा करना और छोटेही में काट लेना चाहिये, जिससे कि,

सूखे मौसममें रसीला चारा काफी मिल सके। विभागकी देखभालमें ऐसी गायें अतिरिक्त आयकी साधन सिद्ध होंगी। इसके सिवा वह कामके साँढ़ और बैल भी पैदा करेंगी। श्रेष्ठ पशुओंको ठीक तरह खिलाने से क्या लाभ है इसे उन गायों के पानेवाले ही नहीं उनके पड़ोसी भी समझेंगे। कलकत्तेके पासके धानके इलाकोंके लिये इसीलिये मैंने छोटे गठीले प्रकारके हरियाना साँढ़की सिफारिश की है। यह अच्छा काम कर रहे हैं और बहुत लोकप्रिय हैं। उसी तरहके इलाकेके लिये, जो कलकत्तेके उतने पास नहीं हैं, मैंने थार्परकरकी सिफारिश की है। मैं समझता हूँ कि ये या इनसे भी अच्छे राठ ढोर अधिक उपयुक्त सिद्ध होंगे। दोनों ही बहुत गठीले, मेहनती और अच्छे दुधार हैं। खासकर राठ तेज और फुर्तीले होते हैं"—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इन्डिया, सेप्टेम्बर, १९३८)

सर अर्थर ऑलवरका बयान उनके प्रतिपादित सिद्धान्तका (जो ५०७ पैरामें उद्धृत हो चुका है) विरोधी है। उनकी उक्तिके पिछले अंशमें हम पाते हैं कि, कलकत्तेके पासके धानके इलाकेके लिये उन्होंने हरियाना साँढ़की सिफारिश की है और कलकत्तेसे दूरके लिये थार्परकर और राठ साँढोंकी। (३५०)

५१०. **क्या बंगालके गाँवोंमें हरियाना पनप सकता है?** पर थार्परकर और राठ साँढ बंगालके देहातोंमें क्या करेंगे? क्या वह धानके खेतमें 'कांदो' कर सकेंगे? और पुआल तथा बरसातकी बाढ़में केवल कंभी खाकर रह सकेंगे? बिना अजमाये यह कोई नहीं कह सकता। क्या बंगालके सारे पशुओंका हरियनीकरण संभव है? और यह कौन कह सकता है कि बंगालमें हरियानाको घुसानेसे सुधारही होगा, बिगाड़ नहीं? इसकी आशंका ऑलवरने भी की है और ब्रुएनने उसका विरोध किया है। सरकारी क्षेत्रोंमें चार पीढ़ियोंतक संवर्धन कर इसके बारेमें पक्के तौरपर जाना जा सकता है। यह किये बिना बंगाल, उड़ीसा और दूसरी जगहके धानके इलाकोंमें हरियाना साँढ़ चलाना भूल और जोखिमका काम होगा। यदि सरकारी क्षेत्रके संकर सफलभी हों तो भी जहाँ धानके इलाकेकी तरह चारेकी हालत नहीं है वहाँकी नसल मँगाना चारेके सुधार बिना खतरनाक है। ऑलवरने हरियानेकी सिफारिशके साथ चारा उपजानेकी शर्त्त भी लगायी है। उनकी सिफारिशके अनुसार भी फलियोंकी खेती और साइलेज आदिके बिना काम नहीं चल सकता।

५११. **शुद्ध हरियानाकी बंगालमें दूधके लिये जरूरत :** कलकत्तेके

पास पशु बहुत घटिया हैं। वहाँके लिये हरियाना गायकी सिफारिश ऑलवरने की है। उनका अभिप्राय शायद बंगाल, आसाम और उड़ीसासे है।

उनके लेखके अनुसार यह दूध बढ़ाने के लिये है। सिर्फ दूधके लिये गाय पालना शहरहीके लिये जरूरी है। उदाहरणके लिये कलकत्ता लीजिये। दूधके लिये वहाँ हर साल हरियाना लायी जाती हैं और बिसुकने पर काट डाली जाती हैं। कलकत्तेके खास इन्तजाम और ग्वालोंकी सेवासे हरियाना और साहीवाल वहाँ पनपती हैं। कलकत्ता जैसे शहरोंमें बहुत दुधार गायें रखना और उन्हें खूँटेपर खिलाना शक्य ही नहीं, आवश्यकभी है। पंजाबसे हरसाल हजारों दुधार गायें आती हैं और काट डाली जाती हैं। इनको बचानेके लिये हरियाना और साहीवालका कलकत्ते और दूसरे शहरोंके आसपास पालना चाहिये। भलेही वह घटिया ढोरका धानका भीगा इलाका हो। यह पूरी तरहसे शहरोंको दूध देनेका सवाल है। इन शुद्ध हरियाना या साहीवालके जो बछड़े होंगे उनकी वहाँ कोई जरूरत नहीं होगी। इस-लिये उन्हें युक्तप्रान्त और बिहारमें जहाँ बंगालकी तरह बुरी हालत नहीं है, बेच सकते हैं। यदि अतिरिक्त हरियाना या साहीवाल बछड़े अवस्था सुधारे बिना बंगालके किसानोंको मुफ्त भी दे दिये जायँ तो इस व्यापक प्रयोगका भीषण परिणाम भी हो सकता है।

बंगालमें २,५०० हरियाना साँड़ तो छोड़े जा चुके हैं। अभी ठहर कर देखना चाहिये कि बंगालके किसानोंकी आजकी हालत और चारेपर वह कैसा पनपते हैं। निजी पत्राचारसे यह पता चला है कि, लार्ड लिनलिथगो की इनामी साँड़ योजनाके अनुसार नम इलाकोंमें जो हरियाना साँड़ बाँटे गये थे, उनके बारेमें इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्च कुछ कह नहीं सकती। (३५०)

५१२. बृहत् **परिमाणमें संकर करना अच्छा नहीं :** बंगालके एक क्षेत्रकी खबर है कि वहाँ बंगाली ढोरके लिये हरियाना साँड़ काममें लाये गये। पर परिणाम सन्तोष देनेवाला नहीं हुआ और छीजन बहुत तेजीसे हुई। वह ठट्ठ एक तरहसे टूट गया। इस परीक्षणका ब्यौरा अभी नहीं मिला है। मैंने कुछ बंग-हरियाना संकर देखे हैं। बहुत अच्छा खिलाने पर भी उन्होंने ३ सेर दूध ही दिया। अच्छी सँभालसे स्थानीय गायोंसे इतना और इससे भी अधिक दूध ले सकते हैं। इसपर विचारनेसे मालूम होता है कि दोगली या बंगाल और दूसरे धानके

इलाकोंकी अज्ञातकुल गायोंका हरियाना से संकर करना व्यापक रूपसे उपयोगी नहीं होगा।

धानके घटिया गीले इलाकेमें सुधारका ठीक काम पहले चारेका सुधार करना है। साथही पुआलके चारेकी त्रुटियोंका ज्ञान कराना और उसे दूर करनेका उपाय बताना चाहिये। इसमें सुधार होनेपर घटिया पशुभी पहलेसे बहुत अच्छे दिखायी देंगे। फिर वरण (चुनाव) और सपिंड-समागमके द्वारा अच्छे प्रकार बनाये जा सकते हैं। फिर सगोत्र-समागम करके सारे प्रान्तमें उनका प्रसार किया जा सकता है। पंजाबी या सिन्धी साँड़से सकर करनेका काम सरकारी संस्थाओं और क्षेत्रोंतक ही सीमित रहे।

इन घटिया इलाकोंके शहरोंमें दूध देनेके लिये शुद्ध हरियाना, या अच्छा हो, साहीवाल रखी जायँ। जैसा कहा जा चुका है अतिरिक्त बछड़े दूसरे सूखे प्रान्तोंमें भेज दिये जायँ। वहाँ साँढ़ बनानेके लिये उनकी जरूरत रहेगी।

५१३. **घटिया साँढ़को बधिया करना :** घटिया साँढ़ चाहे वह अच्छी नसलके प्रदेशमें हों उनको बधिया करना चाहिये। बंगालमें साँढ़ को जोतते हैं। साँढ़ कमजोर होते हैं, इसलिये किसानोंको उन्हें बैलोंकी तरह जोतनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। भारवहनके काममें लाये जाने वाले ये साँढ़ प्रजोत्पादनका भी काम करते हैं। यह प्रथा बहुत हानिकारक है, इससे ढोरमें कुछ खराबी आती है। यह खराबी रोकनेके लिये इन साँढ़ोंको बधिया कर देना चाहिये। इस मामलेमें सरकार कानून बना सकती है। पर इसके पहले प्रचारके द्वारा जनताका मत इस तरफ कर देना चाहिये। जबतक पहले प्रचार न होगा और कुछ चुनी जगहोंमें लोगोंको राजी करके बड़ी संख्यामें बधिया नहीं किया जायगा, सिर्फ कानून बननेसे कुछ होगा नहीं। इसीके साथ पसन्द किये काफी साँढ़भी देने होंगे। जहाँ प्रसिद्ध नस्लें होती हैं वहाँ साँढ़का प्रबन्ध इतना कठिन नहीं होगा। अज्ञातकुल ढोरके इलाकोंमें दूसरे प्रान्तोंसे ज्ञात नस्लके साँढ़ मँगानेकी सिफारिश नहीं है। इसलिये वहाँ अच्छे प्रकारका स्थानीय साँढ़ तैयार करना होगा। अच्छे साँढ़ बनानेके साथ साथ घटियाको बधिया करना चाहिये। अच्छे साँढ़ोंका इन्तजाम किये विना बधिया नहीं करना चाहिये। यह बड़े महत्वकी समस्या है। बधियाका काम व्यापक रूपसे तुरत शुरू करना चाहिये। साथही गाँवके ढोरसेही अच्छे साँढ़ बनानेका कामभी गायका ह्रास रोकनेके लिये लगनके साथ करना चाहिये।

प्रान्तीय सरकारोंने बधिया करनेकी कुछ कोशिश की है। पर बधियाकी संख्या नगण्य है। एक सालमें जितने बछड़े पैदा हों उनमें साँड़ बनाने लायकको छोड़ बाकी सबको बधिया करनेकी माँग है। इसके अलावा जोते जानेवाले साँड़ और आवारा साँड़ोंकोभी बधिया करना जरूरी है। (४८०)

५१४. **साँड़को प्रमाणपत्र (license) देना :** साँड़का मालिक उसके दूसरे वर्षमें उसके लिये प्रमाणपत्र लेले यह अच्छा कानून है। सरकारको इसके लिये जरूरी कर्मचारी और प्रबन्धका आभाव है।

पर जहाँ सरकार देर कर रही है या कुछ करनेमें असमर्थ है वहाँ गाँववालोंको यह काम अपने हाथमें लेना चाहिये। आजकल बधिया करनेकी कैंची से बधिया करना बहुत आसान है। विदेशी मँगानेकी अपेक्षा भारतमें बनाकर उसे सस्ता बेच सकते हैं। बर्डिज्जो बधिया-यंत्र (Burdizzo Castrator) इटलीसे आता है। हर गाँवमें एक कैंची रखी जा सकती है। उससे झटसे तकलीफके बिना बधिया किया जा सकता है। जितने बछड़ोंको साँड़ बनाना है उन्हें छोड़ बाकीको गाँवकी प्रथाके अनुसार दूसरे वर्ष या उसके पहले बधिया कर सकते हैं। ग्राम-समाज साँड़ बनानेके लिये अपने यहाँके सर्वोतम बछड़े खरीदे या प्रमाणित बछड़ोंका उपहार ले।

५१५. **बम्बईका कानून :** बम्बई सरकारने बधियाका कानून बनाया और अनिवार्य बधिया-करणके कार्यसंचालनके लिये नियम बनाये। कानून बननेसे प्रमाणित करानेकी बात तो आही जाती है। संघटित ग्रामसमाज स्वेच्छासे यही काम कर सकता और निगरानी रख सकता है। इसमें खर्च कुछ नहीं है। यदि गायकी रक्षा करनी है तो आन्तरिक अनुशासन और सहयोगसे काम करना जरूरी है। भारतके ढोरकी बहुत उन्नति हुई थी, क्योंकि, उसके गाँव और समाजका संघटन प्रगतिशील और रक्षा करनेवाला था। आजकी आवश्यकना और परिस्थितिके अनुकूल उसकी पुनर्रचना करनी होगी।

५१६. **मदरासका कानून :** मदरासकी भेटेरिनरी विभागकी रिपोर्टमें (सन् १९४०-४१) लिखा है :—"चारेकी कमीसे हालके वर्षोंमें ढोर-संवर्धनके काम में रुकावट हुई है। उसका कारण अन्नकी फसलके स्थान पर दूसरी व्यापारी फसलें जैसे कपास, तमाकू, मिरचाई, हल्दी आदिकी खेती है। इनसे चारा नहीं निकलता। सन् १९३५ तक ५ वर्षोंमें ८ लाख एकड़ खेती कम हुई। संवर्धक-इलाकेमें अच्छे

साँढ़ोंकी बहुत कमीसे ढोरकी किस्मभी घटिया हो गयी है · नेल्लूर और गुन्टूर जिलोंमें (दोनोंही अंगोल इलाके हैं) गाय और साँढ़का अनुपात क्रमशः १ : २३१ और १ : १२२ था। जबकि सारे प्रान्तका अनुपात १ : २० था। इन इलाकोंमें साँढ़का प्रबन्ध करनेकी जोरदार कोशिश हो रही है। इसके लिये सरकारी आर्थिक सहायतासे साँढ़ पालनेके लिये उत्साहित किया जा रहा है। इसके लिये योजनायें बनायी गयी हैं ··· सन् १९४० ई० में सरकारने एक पशुधन-सुधार कानून बनाया। इससे अयोग्य साँढ़को बधिया करना अनिवार्य किया गया।"

**५१७. गाँवके ढोरका कोटि-निर्माण (मदरास) :** मदरास भेटेरिनरी रिपोर्टमें (सन् १९४१-४२) गाँवके ढोरका कोटि-निर्माण करनेका जिक्र है। इसमें गाँवके पशुके कोटि-निर्माणकी तारीफ की गयी है। तुरत परिणाम पानेके लिये यह सबसे सस्ता और सरल उपाय माना गया है।

"··· अगर लगातार शुद्ध नस्लके साँढ़ काममें लाये जायें तो लगभग ६ पीढ़ीमें गाँवके ढोरसे अनुन्नत रक्त प्रायः गायब हो जाता है। यह हिसाब लगाया गया है। पर एक महत्वका मुद्दा यह है कि, जब शुद्ध रक्तका साँढ़ नहीं दिया जायगा उसी दम कोटि-निर्माणसे हुआ परिणाम खतम हो जायगा। यदि जिलेके ढोरोंकी उन्नति करनी है तो यह जरूरी है कि, कोटि-निर्माण किये हुए ढोरके लिये उसी नस्लके सम्बन्धरहित साँढ़ काममें लाये जायें जिस नस्लके पहले लाये गये थे। ······ बोर्डकी बात सरकारने (मदरास) स्वीकार कर ली और उसने आदेश दिया कि, कोटि-निर्मित ढोरके लिये दोगले साँढ़ काममें न लाये जायें। भेटेरिनरी विभाग गाँवके ढोरोंका कोटि-निर्माण शुरू करे ···"

ऐसा मालूम होता है कि मदरासके भेटेरिनरी विभागने यह कोशिश की है कि, सुधरे साँढ़ोंकी सन्तानसे उसी नस्लके शुद्ध और सम्बन्धरहित साँढ़का ही समागम हो। इस कामके लिये हर साँढ़से फलायी गायका रजिस्टर रखा जायगा।

# अध्याय १३

## बिक्री—मेला, हाट और प्रदर्शनी

५१८. **पशु-जनित पदार्थोंकी बिक्री :** गव्योंकी और दूसरे गो-जनित पदार्थोंकी बिक्रीका प्रभाव गायपर बहुत पड़ता है। अच्छे बाजारका प्रभाव गायपर सीधा और तुरत पड़ता है। शहरोंमें दूधका दाम ऊँचा होता है। व्यापारके केन्द्रोंसे देहात जितनेही दूर होते हैं वहाँ दाम उतनाही कम होता है। कुछ जगहोंमें गायें खास मौसममें ही दूध देती हैं। यह भी हो सकता है कि उस मौसममें दूधकी माँग बहुत कम हो। घरमें जो दूध काममें आता है उसे गृहस्थ बर्बादी मानता है, क्योंकि वह तो नगद रुपया चाहता है। स्थानीय ग्वाला गृहस्थके स्वभाव और जरूरतसे फायदा उठाता है और उचित दामसे अपने दूधका दाम कम रखता है। गायके दूधमें कम मुनाफा देख किसान उसे खिलानेमें कोताही (कमी) करता है। यदि उस दूधसे कुछ नगद पैसेकी प्राप्ति होती तो वह उसे खिलानेकी ओर ध्यान देता। जब देहातोंमें दूध मुनाफेकी वस्तु हो जायगा तब गायकी दशा सुधरेगी और तभी गायका दूध भी बढ़ाया जा सकेगा।

जहाँ गायके दूध और उसकी बनी चीजोंके व्यवसायमें प्रतियोगिता है और जहाँ भैंसने दखल नहीं दिया है वहाँ कमसे कम दूधके मौसममें गाय पनपती है।

५१९. **बाजारके लिये गाय और भैंसकी होड़ :** किसान गायको तभी खिलावेगा जब उसे खिलानेमें मुनाफा हो। भैंसकी गायके साथ अनुचित होड़ है। इससे गायकी जड़ कट रही है। दूध और घी दोनोंके बाजारमें गाय पीछे ढकेली जा रही है। इसके कारण पर विचार हो चुका है। ग्राम-समाजोंका यह काम है कि वह भैंसकी प्रतियोगितासे गायको बचावें। उसके दूधके मक्खनकी मात्राके अनुसार दाम लगानाही बुराईकी जड़ है। सहयोगके द्वारा गायके दूधका अच्छा दाम स्थिर करनेसे यह बुराई सुधरेगी। इसके साथही

भैंसके दूधमें मिलावट कर उसे गायका कह, बेचनेकी कानूनी रोक लगानी होगी। पर इस मामलेमें समझदारी कानूनसे अच्छी रहेगी। गायका दूध अपने गुणसे भैंसके दूधका मुकाबला कर सकता है। भैंसके दूधमें पानी मिला उसे गायका बना, होड़ की जाती है। घीके मामलेमें दुद्धी और मट्ठेका दाम गिराकर होड़की जाती है। इसके सिवा पोषक गुणका विचार किये बिना सभी घीको एकसा मानकर दाम लगाना भी है। (१०६-'२७)

**५२०. गायके घीमें १० गुना कैरोटीन भिटामिन** (Carotene Vitamin) **है :** पोषक गुणमें गायका घी भैंससे श्रेष्ट है, यह विचारणीय कारण है। घीमें स्नेहके अलावा बहुत महत्वकी चीज भिटामिन 'ए' (A) है। यह सिद्ध हो चुका है कि कैरोटीन नामक रंजन पदार्थ भिटामिन 'ए'का पूर्व चिन्ह है। वास्तवमें यह भिटामिन 'ए'का प्रतिनिधि है। गाय और भैंसके घीका भेद उसके कैरोटीन और भिटामिन 'ए'की मात्रापर है। भैंसके घीसे गायके घीमें १० गुना कैरोटीन है। गायके घीमें प्रति ग्रेन २०.९ (I. V. unit—इनटरनेशनल भिटामिन यूनिट) कैरोटीन है और भैंसके घीमें १.९। —(मजुमदार)

गाय और भैंसके मक्खनमें कैरोटीनकी मात्रापर श्री बालने एक लेख लिखा है। उसमें कहा गया है कि, जहाँ भैंसके १०० ग्राम (gram) मक्खनमें २० और ३० माइक्रोग्राम (microgram) के बीच कैरोटीन है वहाँ उतनी ही मात्राके गायके मक्खनमें वह २०० और ५७० के बीच है। —(श्री बाल और श्री श्रीवास्तव, नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, नं० ६, १९४०)

"गायका घी भैंसके घीसे श्रेष्ठ है, क्योंकि, उसका भिटामिन आगकी गर्मी सह लेता है।"—(बनर्जी, एग्रिकल्चर एन्ड लाइभस्टॉक इन इंडिया, जनवरी, १९३७)। भैंसके घीमें जो भिटामिन है वह आगमें और भी नष्ट होता है।

भोजन बनानेके लिये घी गरम करना होता है। गरम करनेसे भैंसके घीका भिटामिन गायके घीके भिटामिनसे अधिक नष्ट होता है। यह भी देखा गया है कि, कैरोटीनके रहनेसे घी खराब नहीं होता है। —(बनर्जी, एग्रिकल्चर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, मार्च, १९३८)। पर भैंसके घीमें मुश्किलसे कैरोटीन होता है।—(मजुमदार)

हर सूरतसे गायका घी भैंससे श्रेष्ठ ठहरता है। इसलिये गाय और भैंस दोनोंके घीका ग्राहक और बेचवाल अलग अलग दाम लगावें। स्वास्थ्यके

आधारपर भैंसके घी और दूधसे गायके घी और दूधको अधिक पसन्द करना चाहिये। यह दिखाया जा चुका है कि किसान अच्छी तरह खिलायी गायसे भैंसकी अपेक्षा सस्ता घी-दूध पैदा कर सकता है।

अपने अपने हितके लिये किसान-संवर्धक और ग्राहक दोनोंको बेचने और लेनेमें गायके दूध-घीको प्रधानता देनी चाहिये। (१२७, ३७७)

**५२१. गायके दूधकी चीजोंकी बिक्रीका प्रबन्ध :** गायके दूध-घी की बिक्रीका अच्छा प्रबन्ध करना गायके साथ इन्साफ करना है। आज गायके घीको प्रधानता नहीं मिल रही है। बहुत जगह दोनों तरहका दूध और घी मिलाकर बेचा जाता है। अपने हितके लिये ही व्यवसायी गायके शुद्ध घीका अधिक दाम दें। इससे मिश्रित घी उठ जायगा। तब गायका घी रह जायगा और भैंसका तबतक रहेगा जबतक उसका पालना बिलकुल बन्द नहीं होता।

यदि किसान अपना हित सोच सकते हैं तो उन्हें भैंसको प्रधानता नहीं देनी चाहिये। उत्साही व्यवसायी गायके घी-दूधको बढ़ावा देकर स्थिति सँभाल सकते हैं। (१२७)

**५२२. घीका बाजार खुलनेका प्रभाव :** गायकी रक्षाके लिये जितने सवाल हैं उनमें एक उसे भैंसकी अनुचित होड़से बचाना है। यह समस्या गंभीर रूपसे बार बार सामने आती है। यदि गायकी रक्षा करनी है तो भैंसपर उसे प्रधानता देनी होगी।

शहरोंमें घी-बाजार खुलना और दूधमें मक्खनकी मात्रापर बहुत जोर देना आधुनिक बात है। दूध नष्ट न हो इसलिये सँभालकर रखनेके लिये देहातमें घी बनाकर रखनेकी जरूरत है। पर लस्सी और मट्ठेका भी स्थान है। दूध और इसी तरहकी चीज शहरोंको आसानीसे नहीं भेजी जा सकती। वहाँ अकेले घीकी माँग है, इसलिये घीका महत्व बहुत बढ़ गया है। शहरोंने अनेक बुराइयाँ पैदा की हैं। दूधकी बनी चीजोंमें सिर्फ घी पर जोर देना उनमेंसे एक बुराई है। दूधकी कमीसे घी की खपत शहरमें बहुत है। इसलिये देहाती दूध-उत्पादक और व्यवसायीके लिये केवल घी ही एक मात्र पण्य (व्यापारकी चीज) बन गया है। भैंसके दूधमें अधिक मक्खन होता है इसलिये जो महत्व उसे नहीं मिलना चाहिये वह दिया गया है। गाँवके पशुपालकोंको जानना चाहिये कि वह दो तरहके पशु गाय और भैंस नहीं पाल सकते। गायके बिना उसकी भलाई

और दूसरे भारवाही काम रुक जायँगे। उसे गोपालन करना चाहिये, गायको अच्छी तरह खिलाना और जो कुछ वह दे उससे सन्तुष्ट होना चाहिये। आधुनिक गव्य-क्षेत्रोंने यह साबित कर दिया है कि, दूधकी उपज और मक्खन दोनों मामलोंमें अच्छी गाय भैंसकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। इसलिये किसानोंका यह पवित्र कर्त्तव्य है कि, वह गायके साथ अच्छेसे अच्छा सलूक करें। जैसा सलूक वह भैंसके साथ करते आये हैं उससे बढ़कर गायके साथ करें। वह भैंसके पीछे पागल न हों और गाय जो दे उतनेसे ही सन्तुष्ट रहें। यदि वह गायकी रक्षा करेंगे तो गाय उनकी रक्षा करेगी। भैंस नहीं करेगी। उन्हें समझ लेना होगा कि, भैंसकी जादे फिक्र और गायकी उपेक्षासे तथा घीकी दिखाऊ नगदी आमदनीको अनुचित महत्व दे वह उस पशुको तुच्छ बना रहे हैं जो उनकी रक्षा कर सकता है। (१२७)

५२३. **दूधपर अधिक जोर :** जो बिना घीके काम चला सकते हैं उन्हें यह करना और दूधका भरोसा करना चाहिये। घीका व्यापार कम होनेपर दूधमें मक्खनकी मात्राका अनुचित महत्व मिट जायगा। तब दूधके लिये दूध होगा। अधिक दामपर भी गायका दूध भैंसके दूधसे अच्छा है।

गायके घीका मक्खन श्रेष्ठ है। शास्त्रीय विधिसे यह सिद्ध हो चुका है। घी पर जोर देनेके कारण ही भैंसके घीका महत्व उसके भिटामिनका विचार किये बिना बढ़ा है। यह देख गोभक्तोंको गायके ही दूध-घी आदिका आग्रह रखना चाहिये, और घी कमसे कम व्यवहार करना चाहिये। गोरक्षाके लिये उन्हें यह उदाहरण दिखाना चाहिये। (१२७)

५२४. **गायके दूधमें मक्खनकी बहुत कम मात्रा स्थिर करनेसे हानि :** कुछ म्युनिसिपैलिटी और प्रान्तीय स्वास्थ्य-विभागोंने अंग्रेजी गायके दूधके मक्खनके आधारपर "दूधका मान" (standard) ठहराया है। इससे हालत बिगड़ी है। भारतीय गायोंके दूधमें शायदही ४·५ सैकड़ा से कम मक्खन होता है, जबकि अंग्रेजी गायके दूधमें केवल ३·५ होता है। भारतके स्वास्थ्य-विभाग केवल ३·५ सैकड़ा मक्खनसे ही सन्तुष्ट हैं। इस कारण भैंसके दूधमें काफी पानी मिला गायके दूधका मान उसे दिया जा सकता है। इसीसे दूधमें पानी मिलानेवाले खूब नफा कमाते हैं। इस विषयपर गव्य-व्यवसायके सिलसिलेमें और कहा जायगा।

जहां कानून कामयाब न हो वहाँ उत्साही तिजारती काम बढ़ा सकते हैं। उत्साही व्यवसायी अनुकूल स्थान खोजें, और गोपालकोंको सहायता दें। शर्त्त यह

रहे कि, वह भैंस पालना बन्द कर दें और सिर्फ गो-दुग्ध ही बेचें। इसके लिये उन्हें अधिक दाम दिया जाय। गाँवके उत्पादकोंसे ही संघटन शुरू हो। अधिक दामकी सहायताके कारण वह भैंसके दूधमें मिलावट कर सकते हैं। इसलिये जो सिर्फ गाय ही पालते हैं वही लिये जायँ। इस तरह जमा किये हुए दूधका मक्खन देहातमें ही निकाल उसका घी बनाया जा सकता है। दुद्धी दूधवालोंको लौटा दी जा सकती है या उसका दही, खीर, मावा (खोवा) या और कोई खानेकी चीज बना बेच सकते हैं। जितना घी देहातमें खपे उतना वहीं बेचना चाहिये। अतिरिक्त घी शहरोंको चलान करना चाहिये। वहाँ शुद्ध घीकी माँग बनी रहती है। (१२७)

५२५. **ग्राम-समाज और दूध :** जो गाँववाले समर्थ हों वह जितना दूध पी सकते हों पीयें। सात इलाकोंकी रिपोर्टमें जैसा कहा गया है, गाँववालोंको साराका सारा दूध बेचना नहीं चाहिये।

अपने घरमें ही अधिक दूध खपा देनेसे उत्पादकको कम पैसे मिलेंगे। पर अधिक दूध पीनेसे उसे बड़ा फायदा है। इससे उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा और बीमारी कम होगी। दूधकी उपयोगिताके बारेमें गव्य-व्यवसायके अध्यायमें लिखा गया है।

अधिक दाममें गो-दुग्ध खरीदनेका गोपालन पर अच्छा असर पड़ेगा। गाय अच्छी तरह पाली जायगी। इससे इसका दूध बढ़ेगा। और हो सकता है कि गाँवके लोग जादे दूध पीयें, इससे वह अधिक स्वस्थ और जानदार होंगे। स्कूलोंमें दूधके उपयोगका प्रायः जो लाभ देखा जाता है वह गाँवमें भी देखा जायगा। स्कूल और बोर्डिंग हाउसोंमें जिन लड़कोंको दूध दिया जाता है वह तेजीसे बढ़ते हैं। उनका दब्बूपन मिट जाता है और उनको काबूमें रखना कठिन हो जाता है। आजकलके देहाती पूरे दब्बू हैं। (३९६, ४११)

५२६. **गोरक्षा पर "अधिक गोदुग्ध पीओ" आन्दोलनका असर :** भारतीयोंके आहारमें दूधकी बहुत कमी है। इसका परिणाम दुष्पोषण, दृढ़ता या सहन-शक्तिका अभाव और अधिक मृत्यु-संख्या है। "अधिक गोदुग्ध पीओ" के लिये प्रभावकारी आन्दोलनके साथ सस्ते दूधसे यह दोष बहुत हद तक सुधरेगा। देशके अनेक भाग जैसे काठियावाड़, गुजरात, बम्बई, दक्खिन बराड़, मध्यप्रान्त आदिमें गायके दूधके लिये लोगोंकी उदासीनता प्रसिद्ध है। भैंसने पूरी तरह गायपर पर्दा

डाल दिया है। गाय भूखी रहती है और मरियल बच्चे जनती है। गाय छीजने लगी है। गाय सस्तेमें दूध दे सकती है, और उसका दूध भैंससे अधिक पोषक भी है। यदि लोग सिर्फ गायका ही दूध लें तो इससे गायकी हालत तो सुधरेगी ही, अच्छे सुडौल और मजबूत बैलभी मिलने लगेंगे। गाय सदाके लिये बच जायगी। वर्धामें (मध्यप्रान्त) मिले हालके अनुभव उत्साह-वर्धक हैं। सन् १९२५ तक वहाँ थोड़ा गो-दुग्धभी खरीदना कठिन था। पर गोसेवा-व्रतने बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया है। कई सुव्यवस्थित गव्य और संवर्धन-क्षेत्र स्थापित हो गये हैं। इनमें नित्य १,५०० रत्तल गोदुग्ध होता है। जिन गायोंकी पहले कुछ पूछ नहीं थी, सारा दूध उन्हींका है। अच्छे प्रकारकी गायके लिये बाजार हो गया है। लोग गायकी बात अधिक सोचने लगे हैं।

**५२७. देहातियोंके लिये अधिक दूध :** दूधके आहारसे देहातियोंमें प्राण और उत्साह बढ़ेगा। इससे उनकी भलाई होना अनिवार्य है। वह अधिक परिश्रमी और उद्योगी बनेंगे। ग्राम-समाज अधिक सप्राण हो जायगा। खेल कूद फिर शुरू हो जायेंगे और डाक्टरोंकी अनिश्चित दवाओंपर जो रुपये नष्ट होते हैं उनसे रचनात्मक काम होंगे। लोग ढोरोंकी चिन्ता अधिक करेंगे, अर्थात् वह अपनी ही भलाईकी चिन्ता करेंगे।

दूध और उससे बनी चीजोंके बेचनेकी सुविधासेही काम पूरा नहीं होगा। चमड़े और लाशका भी उचित दाम लगाना चाहिये। गाँवमें चर्मालय खुल सकते हैं। इनमें गाँवके मरे ढोरका चमड़ा काममें लाया जायगा। फिरसे संघटित जाग्रत ग्रामजीवनमें लोग लाशके हाड़-मांसको बेशकीमती चीजें मानने लगेंगे। ये हाड़-मांस इतने कीमती हैं कि, नाव और रेलसे सैकड़ों मील चल, शहर जाते हैं। वहाँ इन्हें चूरा जाता है। फिर हजारों मील चलकर बिदेशोंके खेतको उपजाऊ बनाते हैं। उनसे विदेशी खेत जितना अधिक उपजाऊ बनते हैं, उतनाही देशके खेत कमजोर होते जाते हैं।

**५२८. गाँवकी सारी कार्य-प्रवृत्तिका केन्द्र गाय :** पशुपालनके उत्पादनका बाजार खुल जानेसे गाँवमें ही ग्राहक मिल जायेंगे। ये साफ किया और बीजाणुरहित मांस और हाड़ खादके लिये खरीदेंगे। हड्डीका चूर्ण ढोरको चारेके साथ खिलायेंगे। स्वास्थ्यके लिये अत्यावश्यक खनिज पदार्थोंकी कमी पुआलमें रहती है वह इससे पूरी हो जायगी।

स्थानीय चर्मालय खुलनेपर चमड़ा कमानेके लिये बबूलकी छालका महत्व बढ़ जायगा। इसलिये बबूलके पेड़ बहुत लगाये जायेंगे। उसकी पत्ती चारे और पेड़ जलावनके काम आवेंगे। पहले अनेक गाँवोंमें यह प्रथा थी कि, अपने मरे ढोरके बदलेमें लोगोंको जरूरतकी चमड़ेकी सभी चीजें मुफ्त मिलती थीं। किसान और चमार दोनोंकी भलाईके लिये यह प्रथा फिर चल सकती है।

देशमें ढोरकी हाटें तमाम हैं। बाजारकी सुविधा और ठट्ठकी रजिस्टरीसे संवर्धनका काम बढ़ेगा। इससे अच्छे जानवरोंकी कीमत अच्छी मिलेगी। (२४, २६, ३६६, ४१२, ५४४, ५७६)

५२६. **हाट, बाजार और मेले :** उद्योग-धन्धोंको बढ़ानेके लिये ये पुरानी जगहें हैं। ढोरके मामलेमें इनकी उपेक्षा की गयी है। सस्ती, बेकार और धोखेकी विदेशी चीजोंकी प्रदर्शनी मेले बन गये हैं। इनसे गाँवकी भलाईके बदले उसकी जान जाती है। पशु-मेलोंके ढोर-बाड़ेमें लोगोंकी अभिरुचि बढ़नी चाहिये। अनेक आपत्तिजनक उपायसे मेलोंमें भीड़ जमा की जाती है। घटिया दर्जेके मनोरंजनका प्रबन्ध भीड़ जमा करनेके लिये किया जाता है। इनके प्रबन्धक या मालिक बहुत बार अनैतिक उपाय भी करते हैं। अच्छे साँढ़ और गायसे उत्पन्न अच्छे बैल और दूसरे ढोरको प्रदर्शनी तथा खरीद-बिक्रीका प्रबन्ध करनेसे मेले गाँवकी भलाई करनेवाले होंगे। जब खाली खरीद-बिक्री मन्दी पड़ जाय तो ढोरकी कसरतके खेलसे उसे जानदार बनाया जाय। लोगोंकी अभिरुचि ढोरमें बढ़ानेके लिये, और मनोरंजनकी व्यवस्था करनेके लिये, ढोरोंका जुलूस, दूधका लेखा लेना, बैलोंकी शक्तिका गाड़ी और हलमें प्रदर्शनी, प्रवीणताके साथ सीधी और समानान्तर सीता बनाना, ऐसे कितने ही साधन लोगोंको आकृष्ट करनेके लिये हो सकते हैं।

५३०. **महानन्दीमें पत्थर खींचनेका खेल :** मदरासका कुरनूल जिला पथरीला और कपासकी काली मिट्टीवाला है। इसके कारण खेतीके लिये भारी पशुओंकी जरूरत होती है। अनेक अज्ञातकुल-ढोर काममें लाये जाते हैं, फिरभी अंगोल नसलका मुख्यरूपसे व्यवहार है। लोग बलवान् बैल चाहते हैं। इसलिये भारी पत्थर खिंचवाकर उनकी सामर्थ्यकी परीक्षा करते हैं। इसका एक खेलही बन गया है। उत्सवोंके समय मनोरंजनके लिये पत्थर खींचनेकी प्रतियोगिता होती है। इसके लिये पशुओंको सिखाया जाता है। महानन्दी तीर्थमें शिवरात्रिका मेला आकर्षक है। कुछ पशु-प्रेमी उत्साही लोगोंकी कमीटीने वहाँ पशु-प्रदर्शनीका

आयोजन किया है। पत्थर खींचनेकी होड़भी होती है। महानन्दीके महानन्देश्वर मन्दिरके ट्रष्टी लोगोंकी ओर से विजयी जोड़ीको एक मुहर मोलका सोनेका पदक दिया जाता है।

पत्थर ११ फूट लम्बा और ३.२ टन भारी है। आधा घंटेमें जादे से जादे दूर खींचनेवालेको पुरस्कार दिया जाता है। सन् १९३९ में सबसे बड़ी दूरी २११ फूट रही थी। इसमें खेल और किसानोंकी सुरुचि भी है।

हर जगह ऐसे उत्सव हैं जिनका केन्द्र गाय है। उत्साही गो-भक्त इन उत्सवोंमें जान ला सकते हैं। वह इनमें शरीक हों। इस अवसरपर भारतके लिये गायका महत्व समझावें और गो-भक्ति का प्रदर्शन करें।



चित्र ३३. कुरनूल जिलेके महानन्दीमें पत्थर खींचनेका खेल
(इन्डियन फार्मिग, खंड २, नं० ४)

**२३१. ज्ञान-प्रसारके लिये मेलोंका उपयोग :** कथावार्त्ता, व्याख्यान, प्रदर्शन, चित्र, नमूने आदिसे स्थानको ज्ञानवर्धक बना सकते हैं। आजकल शहरकी सस्ती आकर्षक चीजें वहाँ पँहुच जाती हैं। गोभक्त इसकी सूरत बदल सकते हैं। उसे ढोर और उनकी बीमारी तथा बचनेके उपाय जाननेकी जगह बना सकते हैं।

मेला और हाट आमदनीकी जगहें हैं। गोभक्त ऐसी आमदनीको गोसुधारमें लगवानेका उद्योग कर सकते हैं। मेला आदिका ऐसा उपयोग भी गोरक्षामें

बहुत सहायक होगा। स्थानीय पिंजरापोल और बम्बईकी जीवदया-समिति (Humanitarian Society) यह सुधार कर सकती है। गोभक्त इन मेलोंमें गो-हितके लिये जनमत तैयार कर सकते हैं।

**५३२. गायके साथकी निर्दयताका भंडाफोड़ :** गायके साथ बहुत निठुरता की जाती है। "अरउआ" (उसकानेका अंकुश) का जिक्र हो चुका है। इसके सिवा और कामभी हैं। कान और सींग बाँधनेकी प्रथा बड़ा कष्टदायक है। यह नहीं करना चाहिये। इससे हुई हानिका प्रदर्शन करना चाहिये। पुरानी चालके जुएके बदले नये और अच्छे जुए सोचे जा रहे हैं। तकलीफ मिटानेवाली ऐसी ही तरकीबोंकी ओर मेलोंमें सबका ध्यान खींचना चाहिये।



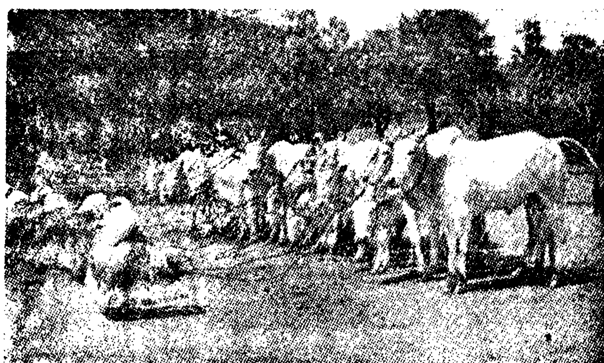
चित्र ३६. कुरनूल जिलेके महानन्दीमें पत्थर खींचनेका खेल
(इन्डियन फार्मिंग, खंड २, नं० ४)

मेलोंमें अस्पताल और दवाखाने भी हो सकते हैं। इनमें नकशे और आँकड़े टँगे रहें। रोग-निवारण और भेटेरिनरी सहायता पानेके सबसे अच्छे उपाय पर पहले से ही व्याख्यानका प्रबन्ध किया जाय। गाय बनाम भैंसपर विचार हो और गोरक्षाके व्यावहारिक उपाय बताये जायँ। दुद्धी और लस्सीका महत्व तथा उनका पोषक गुण समझाया जाय।

**५३३. गो संबन्धी नाटक :** गो-जीवनके बारेमें नाटक दिखाये जा सकते

हैं। कहानियोंके जरिये गायकी अच्छी सँभालका तरीका बताया जाय। देशमें अनेक नाटककार और कलाविद् हैं। इस मामलेमें उनकी सहानुभूति प्राप्त की जाय। गायके पोष्य-पुत्र मनुष्य, गोजीवन और गोकाव्यमें जान फूँक दें। इस रचनात्मक उद्योगमें लेखक, कवि, नाटककार, कलाविद्, शास्त्री सबका स्थान है।

मैजिक लालटेनसे साफ और गन्दे दूधका चित्र दिखा सकते हैं। दुहनेवालेके हाथ से दूधको गन्दा करनेवाले रोग-बीजाणु और कितनी ही गायोंको बाँझ बनानेवाले संक्रामक गर्भपातक जीवाणुके चित्र दिखाये जा सकते हैं।



चित्र ३७. पशु प्रदर्शनी : बिक्रीके लिये बैल
(इन्डियन फार्मिंग, भाग ४, नं० ५)

**५३४. पशु-प्रदर्शनी :** अखिल-भारत पशु-प्रदर्शनी अब स्थायी हो गयी है। यह जादे से जादे महत्वपूर्ण इस अर्थमें हो रही है कि, यह गो-समस्यापर अधिकाधिक ध्यान खींच रही है। यह ऊँची कुर्सीवाले हाकिमों और संस्थावालोंको ढोरकी ओर कुछ झुका रही है।

**५३५. अखिल-भारत पशु-प्रदर्शनी समिति :** पहली अखिल-भारत पशु-प्रदर्शनी सन् १९३८ में दिल्लीमें हुई। यह एक तरहका प्रयोग थी। इसमें ४८८ गाय, बैल और भैंसें आयीं। सरकारने प्रदर्शनीका संघटन किया था और इसे स्थायी बनानेके लिये २½ लाख रुपये मंजूर किये। सन् १९३९ के सोसायटी

कानूनके अनुसार इस समितिको रजिस्टरी की गयी और इसे स्थायी संस्था बनाया गया।

नयी दिल्लीमें दूसरी प्रदर्शनी सन् १९३९ में हुई। प्रदर्शित ढोरके विचारसे यह पहली से अधिक सफल रही। ६३७ ढोर दाखिल हुए। नस्लोंकी संख्या २२ थी। सबसे जादे संख्या साहीवाल नस्लकी थी। इसकी संख्या १०३ थी। १५,००० रु० की बिक्री और सौदा इसमें हुआ। यह याद रखना चाहिये कि यह प्रदर्शनी थी, मेला नहीं था जहाँ बेचनेके लिये ढोर लाये जाते हैं। इस प्रदर्शनीमें



चित्र ३८. पशु प्रदर्शनी : एक पशुको देखनेमें तल्लीन दर्शकगण
(इन्डियन फार्मिंग, भाग ४, नं० ५)

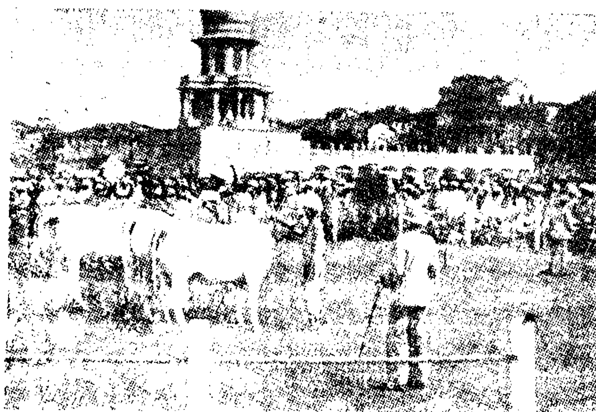
लानेके पहले हर पशुकी रजिस्टरी करानी होती थी। प्रदर्शकोंको भर्तीकी फीस नहीं देनी होती थी। हर तरहका खर्च, जिसमें प्रदर्शनीके समय ढोरके खिलानेका भी खर्च शामिल है, सरकारने किया। बहुत दूरसे ढोर लानेमें सरकारने किसानोंकी मदद की।

**५३६. केन्द्रीय और प्रादेशिक प्रदर्शनियाँ :** प्रबन्धकोंका ध्यान किसानोंकी और अधिक माल लानेकी ओर गया। इसलिये प्रादेशिक प्रदर्शनी करना विचारा गया जिससे पास-पड़ोसीके लोग सम्मिलित हो सकें। दो प्रादेशिक प्रदर्शनियोंका प्रबन्ध हुआ है। एक दक्षिण देशकी प्रदर्शनी बंगलूरमें और

दूसरी पश्चिम देशकी भावनगरमें। इन प्रदर्शनियोंके पुरस्कार-विजेताओंको दिल्लीकी केन्द्रीय प्रदर्शनीमें जानेके लिये उत्साहित किया जाता है।

इन प्रदर्शनियोंमें पशुओंका वर्गीकरण नसल और प्रकारके आधारपर होता है। अध्ययनके लिये यह बहुत अच्छा क्षेत्र है।

सन् १९४१-'४२ की प्रदर्शनीमें नीचे लिखी भर्ती हुई :



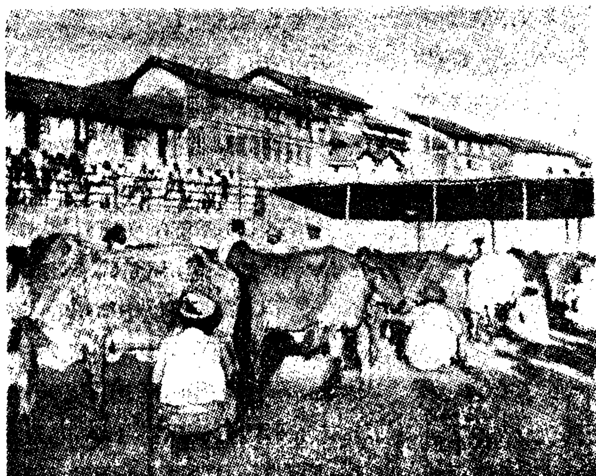
चित्र ३९. पशु प्रदर्शनी (भावनगर) : जाँच चल रही है
(इन्डियन फार्मिंग, भाग ४, नं० ५)

## आँकड़ा—३६

### सन् १९४२ की प्रदर्शनीमें ढोरोंकी भर्ती

| | गाय | भैंस | भेड़ | बकरी |
|---|---|---|---|---|
| भावनगर | ३६२ | १०८ | ८० | ४० |
| बंगलूर | ६५९ | ४१ | ३५० | — |
| दिल्ली | ५६० | १५० | १४४ | ११३ |
| कुल— | १,५८१ | २९९ | ५७४ | १५३ |

५३७. **प्रान्तोंकी प्रदर्शनी :** किन जगहोंमें नसूलोंकी प्रदर्शनी की गयी इसका ब्योरा श्री कर्थाने पशुपालन शाखाके चौथे अधिवेशन (१९४०) के लिये तैयार किया था। सूचीमें हर नसूलकी प्रदर्शनीकी जगहका नाम है। ध्यान देनेकी बात है कि थार्परकरका नाम कहीं नहीं है। सिन्धीका चलान सबसे जादे है। उसकी प्रदर्शनी सिन्धमें नहीं हुई।



चित्र ४०. पशु प्रदर्शनी (भावनगर) : दुहनेकी प्रतियोगिता।
(इन्डियन फार्मिंग, भाग ४, नं० ५)

## आँकड़ा (सूची)—३७

### नसूलें और उनकी प्रदर्शनीके स्थानोंकी सूची

| नस्ल। | प्रान्त। | स्थान। |
|---|---|---|
| अंगोल | मदरास | गुन्टूर, नेल्लूर, कडप्पा, प्रोद्दातूर, जम्मलमडुगू, कुरनूल, महानन्दी, कुरनूल अल्लागड्डा, कुरनूल लोअर अहोबिलम्। |
| | कोचीन | चित्तूर। |

| नस्ल। | प्रान्त। | स्थान। |
| --- | --- | --- |
| आलम्बादी | मदरास | कडप्पा, प्रोद्दातूर। |
| कृष्णागिरी | ,, | दक्षिण कन्नड़, सुतानदी। |
| सिन्धी | ,, | कोयम्बतूर, वालपराई। |
| | बम्बई | वामबोरी। |
| | बंगाल | बरासत। |
| | उ.प. सीमाप्रान्त | हरिपुर, कोहाट। |
| | कोचीन | नल्लीपिल्ली, चित्तूर। |
| कृष्णावेली | बम्बई | यादराड, बीजापुरी, अथनई, सेवाड़ी, धारवाड़, यादूर, नन्दी, बरवाड़, बेलगाँव, शोलापुर। |
| खिल्लारी | बम्बई | यादराड, बीजापुरी, अथनई, गुमगल, यादूर, नन्दी, बरवाड, बेलगाँव, पारनेर, मीरी, वामबोरी, एरन्डगाँव, जामखेड, अहिल्यापुर, शोलापुर, मालशिराश, पटखाल, बरहमनपुरी, तंडुलवाड़ी, खाटगुन, म्हासवड़, सिंगनापुर, खिल्लारी। |
| अमृतमहाल | बम्बई | बीजापुर, रत्तीहाली, देवरगुड्ड, गुमगल, बेलगाँव। |
| | मैसूर | हसन, फ्रेंच रौक, अरासिकेर, कृष्णराजनगर, अरकालगुड, सालिग्राम, चनेरायपटना, तुमकुर सीरा, तुरुवेकर, हरियूर, हरिहर, शिमोगा, सोराब चन्नागिरि, होन्नालि, कालसा। |
| | कोचीन | चित्तूर। |
| कांकरेज | बम्बई | सानन्द, एरन्डगाँव, अक्कालकुवा, खापर, पट्टी तलोदा। |
| | बरौदा | काड़ी, पत्तन, चनास्मा, वादनगर, सिद्धपुर |
| सूरती | बम्बई | सानन्द, श्रीगोन्डा, मीरी, अकोला, जामखेड। |

| नस्ल । | प्रान्त । | स्थान । |
|---|---|---|
| गोर | बम्बई | बेलगाँव, मीरी, वामबोरी, एरंडगाँव, अकोला, शोलापुर । |
| | बरौदा | अमरेली, कोदिनार । |
| निमाड़ी | बम्बई | जामखेड । |
| | मध्यप्रान्त | सिंगजी । |
| मालवा | बम्बई | अक्कालकुवा, खापर, पाटी, तालोढा, अहिल्यापुर । |
| | मध्यप्रान्त | गढ़ाकोटा, बरमन, सिंगजी । |
| | भूपाल | चिकलोद । |
| सोरी | बंगाल | कलिम्पोंग, करसियोंग । |
| साहीवाल | बगाल | सूरी । |
| | पंजाब | कांगड़ा जिला, फिरोजपुर, मिन्टगुमरो, दीपालपुर, कबीर, लायलपुर, चक नं० ४५ एल०बी०, बछरियांवाला, चक ५२८ जी०बी०, पौलियानी । |
| | बिहार | सोनपुर (सारन)। |
| | उ.प. सीमाप्रान्त | कोहाट । |
| | उड़ीसा | कटक । |
| हरियाना | युक्तप्रान्त | बटेश्वर, मनकापुर, देवरोआ, एन, भईघाट, खटौली, अलीगढ़, बुलन्दशहर । |
| | पजाब | मंगलो, ससाय, तोशन, धनगार, ओधन, सोनपत, रोहतक, पल्ना, तिगून, पलवाल, धारूहेरा, पहेवा, कैथल, सम्बलका, थस्का, मिरांजी, गोपाल, मोचन, सवारा, मोरिन्दा, होशियारपुर, जलंधर, फिरोजपुर, अमृतसर, गुरदासपुर, शेखूपुरा, सरगोधा, गुजरात, मिन्टगुमरी, कबीर, दीयालपुर, झंग, |

| नस्ल। | प्रान्त। | स्थान। |
|---|---|---|
| | | मुलतान, मैलसी, कादिरपुर, कबीरवाला, सखीपुर, लायलपुर, चक नं० ४५ एल० बी०, बचरियाँवाला, चक ५२८ जी०बी०, पोलियानी। |
| | बिहार | सोनपुर (सारन)। |
| | उड़ीसा | खिरदा, ब्रीबोई, कटक, लुच्याापाड़ा, इच्छापुर। |
| धन्नी | पंजाब | जतली, गुजरखाना, रावलपिन्डी, फतेगज, तल्लागंज, पिंडीघेव, लावा, तम्मन, हसन अब्दल, मियाँवली, मूसाखेल, सरगोधा, खुशाव, भलवाल, भगतांवाला, सुल्लाबाली, शाहपुर, गुजरात। |
| | उ.प. सीमाप्रान्त | मरदान, हरिपुर, कोहाट, डेराइस्माइलखाँ। |
| दज्जल | पंजाब | शहर मुलतान, नवाँकोट, कारोर, खानपुर, बागाशहर, तलाई नूरशाह, झंग, मुलतान, मैलसी, कादिरपुर, कबीरवाला, सखीपुर, डेरागाजीखाँ, फजलपुर, दजल, लालगढ़, तौनसा, सिखानीवाला, रोझन। |
| गावलाव | मध्यप्रान्त | कातोल, धागा, बोरगाँव।* |
| हल्लीकर | मैसूर | बंगलूर, होसकोट, कंकनहल्ली, चेना पटना, नेला मंगल, मागदी, देवनहल्ली, दोदवल्लपुर, सिदलाघट्टा वेगापल्ली, चिन्तामणि, गरीविदनुर, चिकावल्लपुर, माल्लूर, कोल्लार, हसन, हंसूर, टी०नरसिंहपुर, आरसीकेर, |

* आजकल प्रदर्शनियाँ वर्धा, यातमल, चन्दूर, कातोल, उमरेड, मर्द्री और शावनेरमें हुआ करती हैं।

| नस्ल। | प्रान्त। | स्थान। |
|---|---|---|
| | मैसूर | कृष्णराजनगर, अरकालगुड, शालिग्राम, होलेनरासिंपुर, मद्दूर, मल्लावली, नगमानगोला, चनेरयापटना, तमकूर, चिकनाई कनहल्ली, सीरा, यावगदा, कुनीगल, तूरूवेकर, मधुगिरी, गुबी, हिरिऊर, हरिहर, शिमोगा, सोराव, चन्नगिरि, होन्नाली, कलसा। |
| मेवाती | युक्तप्रान्त | देवरोआ। |
| खेरीगढ़ | ,, | ,, |
| पँवार | ,, | चाँदपुर, शाहजहाँपुर। |
| कोसी | ,, | बटेश्वर, शाहजहाँपुर। |
| नागौरी | मध्यप्रान्त | सिंगापुर। |
| डांगी | बम्बई | जामखेद। |
| देशी | ,, | ,, |
| तापी | ,, | अहिल्यापुर। |
| गवाती | ,, | इस्लामपुर। |
| मस्वाद | ,, | खातगन, खानपुर। |
| नेपाली | बंगाल | कलिम्पोंग, कर्सियोंग। |
| शाहावाद | बिहार | हिजला। |
| तयपोर | ,, | सोनपुर (सारन)। |
| काथीवाड़ी | मध्यप्रान्त | गढ़ाकोट। |
| खुरगोनी | ,, | सिंगापुर। |
| गुज्जामव | मैसूर | बंगलूर, मागदी, नगमानोला, तमकूर कनीगल। |
| नाडूदाना | ,, | दोदबल्लपुर। |
| बेट्टादाना | ,, | हंसूर। |
| नाद् | ,, | तमकूर, कनीगल। |
| पंधारपुरी भैंस | बम्बई | बेलगाँव। |

| नस्ल । | प्रान्त । | स्थान । |
|---|---|---|
| मेहासनी भैंस | बरौदा | कादी, पट्टन । |
| नीली भैंस | उ.प.सीमाप्रान्त | हरिपुर । |
| जफ्फरबादी भैंस | बरोदा | कोदानीर । |

**५३८. प्रतियोगिताका कार्ड :** प्रदर्शनीकी होड़में शरीक होनेवाले गाय-बैलोंका तुलनात्मक विचार करनेका कोई तरीका होना चाहिये। इसकेलिये प्रतियोगिता-कार्ड-पद्धति निकाली गयी। उद्देश्य यह है कि, जिस नसूलका पशु है उसके हिसाबसे उसके शरीरकी पूरी परीक्षा हो। शुद्ध-रक्तके पशुकी आकृतिकी अपनी नस्लकी आकृतिके साथ पूरी एकरूपता होती है। इसलिये यदि उसके सभी अंग उस नस्लके अंगोंके साथ पूरी तरह एकरूप हुए तो उसे पूरा सौ नम्बर मिल सकता है।

प्रतियोगिता-कार्डकी परीक्षामें शरीरके हर अंगके लिये कुछ नम्बर रक्खे जाते हैं। आदर्श अंगको नम्बर दिये जाते हैं। पूरे शरीरके लिये नम्बर १०० है। नम्बर देना बहुत कुछ मन चाहा है। किसी दो प्रवीणोंकी राय नहीं भी मिल सकती है। फिरभी काम चलानेका यह एक उपाय है। यह पच्छिमी तरीका है। पच्छिमी या अंगरेजी तरीकेमें १३ मुद्दे मान उनका उपभेद किया और सबका नम्बर रखा है। यह तरीका अनुभवके आधारपर पहलेसे ही मंजूर कर लिया गया है। पर अब हर नसूलके लिये नये प्रतियोगिता-कार्ड बनाये जा रहे हैं और उनपर नम्बर बैठाया जा रहा है।

पर नम्बर देनेमें असली चीज तो परखनेवाली आँख है। प्रतियोगिता-कार्ड-पद्धतिसे प्रायः सहूलियतके बदले बाधा ही होती है। भारतमें यह माना जाता है कि गाय या साँढ़का दाम कूतनेमें महत्वके मुद्दोंका विचार करनेके लिये इसकी सहायतासे विद्यार्थियोंको सिखाया जाय तो अच्छा। इतना ही ठीक रहेगा।

नीचे प्रतियोगिता-कार्डके नमूने दिये जा रहे हैं। एक अंगोल और दूसरा गीर गाय और साँढ़के लिये है। अंगोल-कार्डका सुझाव मदरासके कैप्टन लिट्लउडका है और गीर-कार्ड श्री कोठावालाका।

## आँकड़ा—९८

**५३९. अंगोलकी परीक्षाके लिये प्रतियोगिता-कार्ड :**

| मुद्दा | गायका नम्बर | | | साँड़का नम्बर |
|---|---|---|---|---|
| १. सिर | | | | |
| ललाट | १ | ... | | १ |
| मुँह | १ | ... | | १ |
| थूथन | २ | ... | | २ |
| जबड़ा | २ | . | | २ |
| आँखें | ३ | ... | | ३ |
| कान | १ | ... | | १ |
| सींग | ३ | ... | | ५ |
| | १३ | | | १५ |
| २. गरदन | २ | | २. गरदन | ५ |
| ३. झालर | २ | | ३. झालर | २ |
| ४. कुब्ब | २ | | ४. कुब्ब | ४ |
| ५. कंधा | ६ | | ५. देह | ९ |
| ६. छाती | ४ | | ६. छाती | ६ |
| ७. खोल (पेटका) | १० | | ७. खोल | ८ |
| ८. कमर | ६ | | ८. कमर | ८ |
| ९. पुट्ठा | १० | | ९. पुट्ठा | ६ |
| १०. पूँछ | ३ | | १०. नितम्बास्थि | २ |
| ११. बगल | २ | | ११. पूँछ | ४ |
| १२. जाँघ | २ | | १२. बगल | २ |
| १३. पैर और टाँग | ८ | | १३. जाँघ | ५ |
| १४. चमड़ी और बाल | ५ | | १४. टाँग | ६ |
| १५. दुग्धतंत्र | १० | | १५. पैर | ४ |
| १६. शैली और प्रकार | ७ | | १६. चमड़ा और बाल | ५ |
| १७. आकार और तौल | ५ | | १७. रंग | ४ |
| १८. रंग | ३ | | १८. आकार और तौल | ५ |
| | कुल—१०० | | | कुल—१०० |

—(लिटिलउड लिखित "अंगोल गाय और साँड़")

# आँकड़ा—३६

५४०. गोरक्षके लिये प्रतियोगिता-कार्ड :

**गाय**

| मुद्दा | नम्बर |
|---|---|
| १. सिर | |
| ललाट | ४ |
| मुँह,थूथन | १ |
| आँखें | १ |
| कान | ४ |
| सींग | ३ |
| | १३ |
| २. देह और अग | |
| (१) अगला हिस्सा | |
| गरदन | २ |
| झालर | १ |
| छाती | ३ |
| टाँग और कधा | ३ |
| (२) खोल (पेटका) | |
| पीठ | ४ |
| पसली | ४ |
| नाभी | १ |
| (३) पिछला हिस्सा | |
| कमर और कुल्हा | ५ |
| पुट्ठा, नितम्बास्थि | ६ |
| बगल | २ |
| जांघ, नितम्ब | ४ |
| पूँछ | २ |
| टखने, टाँग, खुर | ५ |
| | ४२ |

**साँढ़**

| मुद्दा | नम्बर |
|---|---|
| १. सिर | |
| ललाट | ५ |
| मुँह थूथन | २ |
| आँखें | १ |
| कान | ४ |
| सींग | ३ |
| | १५ |
| २. देह और अंग | |
| (१) अगला हिस्सा | |
| गरदन | २ |
| झालर | १ |
| छाती | ४ |
| टाँग और कंधा | ४ |
| (२) खोल (पेटका) | ११ |
| (३) पिछला हिस्सा | २८ |
| | ५० |

| मुद्दा | नम्बर |
|---|---|
| ३. थन, चूची और | |
| दूधकी नस (शिरा) | |
| थन | ६ |
| चूची | ५ |
| दूधकी नस (शिरा) | ५ |
| | १६ |
| ४. चमड़ा, बाल, | |
| नितम्बोंका मध्यभाग : | |
| चमड़ा | ४ |
| बाल | २ |
| नितम्बोंका मध्यभाग | २ |
| | ८ |
| ५. रंग और दाग | ४ |
| ६. साधारण आकृति | ४ |
| आकार | २ |
| ढव | ३ |
| गति | २ |
| स्वभाव | २ |
| लक्षण | २ |
| अपने प्रकारकी | |
| अनुरूपता | २ |
| | १७ |

कुल नम्बर— १००

| मुद्दा | नम्बर |
|---|---|
| ३. चमड़ा, बाल | |
| नितम्बोंका मध्यभाग | १० |
| ४. रंग दाग | ५ |
| ५. साधारण आकृति, आकार, ढव, गति, स्वभाव, लक्षण अपने प्रकारकी अनुरूपता | २० |

कुल नम्बर— १००

(अगर मुद्देपर दिये गए नम्बरके आधेसे कम कोई गाय या साँड़ लावे तो वह अयोग्य माना जायगा)

# अध्याय १४

## मिश्रित खेती और ग्रामोद्योग गोरक्षाके उपाय हैं

**५४१. पहले मिश्रित खेती ही होती थी :** भारतके किसान मिश्रित खेती ही करते थे। इंगलैन्ड और दूसरे देशोंमें खेत जोतने आदिके लिये तेलके इंजन या घोड़े आदिसे काम लिया जाता था। भारतमें वही काम बैलोंसे लिया जाता है। साधारण तौरपर किसान अपने घरमें पैदा हुए बैल ही काममें लाना चाहते हैं। इसलिये वह दूध और बैल पैदा करने—इन दोनों कामके लिये गाय पालते हैं। प्रत्येक गृहस्थ-किसान, पशुपालक और संवर्धक भी है। भारतमें इनका अलग भेद नहीं था। ग्वाले केवल दूधके लिये गाय पालते थे। पर देशकी कुल गायोंके मुकाबले ग्वालोंकी गायोंकी संख्या तुच्छ थी। आज भी यही बात है। सरकारने गृहस्थोंके इन कामोंमें भेद करना चाहा है। दूध-उत्पादकोंका अलग भेद करनेकी जितनी कोशिश होती है, स्वस्थ ग्राम-जीवनकी समस्या उतनी ही पेचीदा होती है। इस सम्बन्धके सरकारी विभाग दूध देने और भारवहनके कामको अलग करनेपर लगातार जोर दे रहे हैं। वह दूधके लिये भैंस और भारवहनके लिये गायको मुकर्रर करना चाहते हैं। इस व्यर्थ आग्रहसे बहुत हानि हो भी चुकी है। दूसरी तरफ, भैंसके दूधमें पानी मिला उसे गायका कह बेचना रोकनेके लिये कुछ नहीं किया गया। भैंसको दुधार पशु ठहरानेकी अदूरदर्शी नीतिसे देशकी कितनी हानि हो रही है, यह अब सरकारको समझ लेना चाहिये।

**५४२. खेतिहर और पशुपालक अलग नहीं हैं :** भारतमें खेतिहर और पशुपालकके भेदोंका कोई मतलब नहीं है। जहाँ मिश्रित खेती उठती जा रही हो वहाँ इसे चलानेका पूरा उद्योग करना चाहिये। मिश्रित खेतीमें गव्यधन्धा और ढोर-संवर्धन भी शामिल हैं। ये तीनों काम साथ साथ होने चाहिये। इन दो कामोंको शामिल कर किसान बाप-दादोंकी राह चलेंगे। उनके बाप-दादे फूले

फले भी। हरेक किसान पशुपालक भी बने। अपनी सारी जमीनमें अनाज और रुपयेकी फसलही नहीं उपजानी चाहिये। कुछ हिस्सेमें ढोरका चाराभी उपजाना चाहिये। वह सच्चा किसान और पशुपाल बने। यद्यपि सब किसान वास्तवमें दोनोंही हैं, पर आजके पृथक् कार्य-प्रणालीने कृषक-जीवनको बर्बाद करना शुरू कर दिया है।

कुछ दिनोंतक इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्च और खासकर सर अर्थर ऑलवर किसानकी आमदनी बढ़ानेके लिये मिश्रित खेतीका प्रचार करते रहे। इसका मतलब यह था कि अनाज और रुपयेकी फसलसे कुछ जमीन निकाल उसमें चारा उपजाया जाय। चारेके लिये इतनी अतिरिक्त जमीन हो कि उसमें दूध और संवर्धनके कामके पशुओंका चारा निकल आवे।

५४३. **अधिक दूधके लिये मिश्रित खेती आवश्यक है :** ग्रेट ब्रिटेनमें प्रति मनुष्य ३९ आउन्स दूध होता है। सन् १९४३ में वहांके सचिव-मंडलने दूधकी खपत बढ़ानेके लिये चार वर्षोंमें ३५ लाख पाउन्ड खर्च करनेकी मंजूरी दी। चार वर्षोंमें ३५ लाख पाउन्डका अर्थ है—वर्षमें १$\frac{1}{2}$ करोड़ रुपये। यह खर्च अधिक दूध पीनेके लिये राजी करनेको है।

मिश्रित खेतीकी बहुत जरूरत है। अतिरिक्त चारेसे हमारी निकम्मी गायोंको भी अतिरिक्त दूध होगा। इससे फसलकी उपजमें कमी नहीं होगी। खूँटे पर अच्छी तरह खिलानेसे ढोरको अधिक गोबर होगा। अधिक गोबरसे खेतमें अधिक उपज होगी। इससे जो जमीन चारेके काममें लायी गयी है उसकी कमी पूरी होगी। इस रीतिसे दूध कुछ अधिक हो सकेगा, और देशको अधिक दूधकी बहुत जरूरत है। अगर चाहोतो इसका आर्थिक मूल्य जोड़ लो। पर असली मूल्य तो पोषणका है। हरेक विचारवान् देहातके किसानोंकी स्वास्थ्य-उन्नतिके लिये इस पोषक गुणका महत्व मानेगा। इससे दूध सस्ता हो सकेगा और साथही किसानको भी लाभ होगा। भारतको सस्ते दूधकी जरूरत है। बढ़ा हुआ दूध गरीबोंके लिये सुरक्षित करनेमें उसको अधिक भलाई है। गव्यधन्धेके विकासके लिये ये विचारणीय विषय हैं।

कुछ लोगोंका यह अनुभव है कि क्षेत्रमें अधिक ढोर रखनेसे चारा और अन्नकी अधिक उपज होती है। तेलनखेड़ी गव्य-क्षेत्रका नीचे लिखा आँकड़ा आँख खोलनेवाला है।

## आँकड़ा—४०

### ढोरकी वृद्धिसे अनाज और चारेकी वृद्धि

| क्रम संख्या | वर्ष | चारा (मनमें) | अन्न (मनमें) |
|---|---|---|---|
| १. | १९३२-३३ | १२,५९५ | २१९ |
| २. | १९३३-३४ | १२,६९४ | ५०६ |
| ३. | १९३४-३५ | १८,०२८ | ३५० |
| ४. | १९३५-३६ | १५,१४३ | ५२९ |
| ५. | १९३६-३७ | १८,२७२ | ६३४ |
| ६. | १९३७-३८ | १९,०२४ | ४३३ |
| ७. | १९३८-३९ | १९,४७३ | ६१० |

—(औद्योगिक जाँच कमीशनकी रिपोर्ट, भाग १, खंड २)

५४४. **ग्राम-उद्योगोंका स्थान :** ग्राम-उद्योग गोरक्षाके उपायोंमें एक माना गया है। जब हमारे पास अधिक और बली ढोर हो जायँगे, तब सवाल उठेगा कि, यदि इन्हें खाँय नहीं तो इनका क्या करें ? इसका एक ही उपाय है, उनसे उचित काम लिया जाय। गायें दूध देंगी। हर पचास गायोंपर एक साँढ़ रहेगा। इनके अतिरिक्त पुंगवों (बैलों)से श्रम लिया जायगा।

गाड़ी खींचना, पानी भरना, कोल्हू चलाना, ऊख पेरना और घरेलू मशीन चलाना इनका श्रम होगा। फैक्टरियोंका बहुत सारा काम बैलकी शक्तिसे गाँवोंमें हो सकता है। एक तरफ तो मनुष्य और बैलकी शक्ति नष्ट हो और दूसरी ओर हम तेल या कोयलेसे चलनेवाले इंजनके पीछे पागल हों यह कोई शास्त्रसम्मत विचार नहीं है। सजीव इंजनोंको कम नहीं समझना चाहिये। ग्राम-उद्योगोंका सरोकार ग्राम-केन्द्रित जीवनसे है। उसका आधार शोषण नहीं है। इसमें भी शोषण हो सकता है, पर इसकी गुंजाइश कम है और रोक थाम जादे।

मिश्रित खेतीसे अधिक चारा और अधिक गोबर पैदा होगा, इससे खेतीकी उपज बढ़ेगी और प्रजाके लिये अधिक अन्न और दूध मिलेंगे तथा रचनात्मक काममें मनुष्य और पशु शक्तिको अधिक काम मिलेगा। **(२४, २६, ४१२, ५२८, ५७६)**

५४५. **मिश्रित खेतीका अर्थशास्त्र :** ढोरको समझनेवाले भावी भारतकी सुन्दर तस्वीर सर अर्थर ऑलवर ने उतारी है। घटिया गायसे उन्हें चिढ़ और गुस्सा

नहीं था। इस लेखका शीर्षक "भारतमें गव्य-धन्धा और मिश्रित खेती की गूढ़ शक्ति" थी।

"...इस ठट्ठ (फिरोजपुर) के प्राप्त परिणामोंसे यह साफ है कि दूध और मक्खनकी उत्पत्तिके मामलेमें भारतकी श्रेष्ठ गायोंकी तुलना यूरोप और अमेरिकाके दुधार ठट्ठोंसे की जा सकती है।"

"...भारतकी गायोंके सुधारकी संभावना बहुत बड़ी है। क्योंकि, पिछले समयमें भारतीय गायोंकी दुग्ध-उत्पत्तिपर ध्यान नहीं दिया गया है। इसका कारण कामवाले ढोरके संवर्धनपर सारा ध्यान केन्द्रित करना और घीके लिये भैंसके दूधको तरजीह (महत्व) देना है। क्योंकि भैंसके दूधमें मक्खनकी मात्रा बहुत होती है।"

"इस मौकेपर भारतमें बहुत बड़ा गव्यधन्धा फैलानेसे दूसरा लाभ यह हो सकता है कि मिश्रित खेतीके कारण उचित अनुपातमें पशुधनभी पाले जा सकेंगे और बाजारमें अन्न और दूसरी पैसा देनेवाली फसलें भी मिल सकेंगी। यदि गव्य पदार्थ कुछ ही अधिक लोग खांय तो बहुत ज़ादे अन्न ढोरोंको खिलानेके लिये निकल सकता है। यह जरूरी नहीं कि, यह अन्न बहुत अच्छा ही हो। हिसाब लगाया गया है कि, यदि गव्य पदार्थोंकी खपत १० सैकड़ा बढ़ जाय तो पिछले तीन वर्षोंमें जितना अनाज विदेश गया है उतना वह पौष्टिक चारेके लिये मिल सकता है।..."—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इन्डिया, जुलाई, १९३४)

५४६. **विचारमें परिवर्त्तनकी आवश्यकता :** सर अर्थरके विचारसे गव्यक्षेत्रका अर्थ गो-गव्यक्षेत्र है, महिष-गव्यक्षेत्र नहीं। अंग्रेजी राज्यके कारण भारतीय किसान गरीब हो गया है, मनुष्य और पशुका भूखा मरना साधारण बात हो गयी है। इस समस्यापर चाहे जिस दृष्टिसे विचार करें पर यदि हम केवल आवश्यक बातोंकी ही चिन्ता करनेकी आदत डालें, विलासकी चीजें खरीदनेके लिये रुपयेकी चिन्ता छोड़ अन्न-वस्त्रकी ही चिन्ता करें तो यह कष्ट मिट जायगा। इस लेखमें सर अर्थरने भारतीयोंको सुझाया है कि वह अन्नका निर्यात न करें। इस अन्नको पौष्टिक आहारके रूपमें ढोरको खिलावें और उसके बदले दूध प्राप्त करें। उनका सुझाव काममें लानेसे मिश्रित खेतीसे अधिक दूध मिल सकेगा। अच्छा खिलानेसे अच्छे ढोर होंगे। इनकी बिक्रीसे जो आय होगी वह निर्यात व्यापार रुक जानेसे नगदी आमदनीके घाटेको सिर्फ पूरा ही नहीं करेगी, बल्कि उससे भी अधिक होगी।

**५४७. धरतीको लूटना :** पर सर अर्थर ऑल्वर और उन सरीखे विचारके लोगोंकी देशकी व्यवस्थामें पूछ नहीं है। लाट लिनलिथगोके कमीशनकी रायमें किसानोंकी भावी भलाईके लिये चारा और खादका निर्यात जरूरी है। इस तरह धरती और पशुका भोजन लुटता रहना आवश्यक माना गया है। खली, तेलहन, हड्डी, हड्डीका चूर्ण (bone-meal) आदिका विदेशी निर्यातके बारेमें शाही कमीशन की यही राय है।

रिपोर्टके अर्थमें तेलहनके चालानसे भारतकी मिट्टीकी हानि बतायी गयी है। और इति यह कहकर की गयी है कि, भारतके निर्धन किसानोंकी भलाईके लिये इसका जारी रहना जरूरी है। खली, मछली की खाद और हड्डीकी खादके बारेमें भी यही कहा गया है। (२७, २६, ४७६)

**५४८. शाही कमीशनने खलीके चलानका समर्थन किया है :** "हमलोगोंके आगे बहुतसे गवाहोंने कहा है कि, भारतमें उत्पन्न तेलहनके इतने जादे निर्यातसे उसे नाइट्रोजनकी बहुत हानि होती है। नीचे लिखे आँकड़ेमें पिछले १५ वर्षकी तेलहनकी उत्पत्ति और निर्यात दिखाया गया है :

## आँकड़ा—४१

### तेलहनका निर्यात

### सन् १९११ से १९२५ तक कुल १५ वर्ष

| | कुल उपज ('००० टन) | कुल निर्यात ('००० टन) | उत्पत्तिके हिसाबसे निर्यातका प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| बिनौला (१) | २७,६९७ | २,१९८ | ८ |
| मूंगफली (२) | १४,०१९ | २,८४२ | २० |
| सरसों और तोड़ी (३) | १७,०९३ | २,८२५ | १६½ |
| अलसी (४) | ६,९१५ | ४,६४२ | ६७ |
| तिल (५) | ६,७९४ | ७७९ | ११½ |
| कुल (१ से ५ तकका) | ७२,५१८ | १३,२८६ | १८ |
| सभी तेलहनका कुल | नहीं मिला | १५,३५६ | — |

"इन आँकड़ोंसे यह पता चलता है कि, बिनौला, मूंगफली, सरसों अलसी और तिलकी उत्पत्तिका १८ सैकड़ा विदेश जाता है। यदि यह मान लिया जाय कि यह सभी नाइट्रोजन जमीनमें ही लौटा दिया जायगा तो इसकी बहुमूल्य उपजातके चलानसे भारतकी जमीनकी हानिका पता चलता है। आजकी चालके अनुसार यह बहुलसा ढोरको खिलाया जाता है और उसके बाद उसका जलावन हो जाता है। खली और तेलहनका निर्यात रोकने और किसानके खरीदने लायक दामका बनानेके लिये इन चीजोंपर टैक्स लगानेका विचार रखा गया है, यह अचरज की बात नहीं है। यह विचार लोगोंको बहुत पसन्द आया है। सन् १९१९ में बोर्ड ऑफ एग्रिकलचर और भारतीय कर-जाँच समिति (Indian Taxation Enquiry Committee) के बहुमतने भी इसे समर्थन किया। पर भारतीय फिसकल (Fiscal) कमीशनने नहीं किया। कुछ सदस्योंने और बड़ी बात कही। उन्होंने निर्यात एकदम बन्द करनेपर जोर दिया। ऊख, तमाकू, कपास और चाय जैसी कुछ दामी फसलोंमें कुछ खलियोंका उपयोग और अधिक करनेसे भारतकी खेतीको लाभ होगा यह हम अच्छी तरह जानते हैं। पर हमें ऐसा मालूम होता है कि जो लोग निर्यात बन्दकर या रोककर यह उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं वह इसकी आर्थिक बारीकियोंको नहीं समझ सके हैं।···ऐसी स्थितिमें यह अर्थशास्त्रकी स्वतःप्रमाण बात है कि, निर्यात-कर उत्पादकही झेलता है। इसलिये तेलहनके निर्यातका दाम किसानको कम मिलेगा···"
—(पृ० ८८) (२७-'६, ४७६)

५३६. **शाही कमीशनका निर्यातके पक्षमें तर्क :** "...यदि निर्यातमें रोक लगानेसे खलीका दाम कमभी हो जाय तो इसका अर्थ होगा किसानोंके एक अपेक्षाकृत छोटे हिस्सेकी भलाईके लिये दूसरे हिस्सेकी सजा करना। क्योंकि जो खलीका सबसे अधिक उपयोग करेंगे, कदाचित् वह तेलहन पैदा करनेवाले नहीं होंगे।

"इसी तरहका तर्क खलीके लिये है"······—(पृ० ८८-८९)

ऐसे तर्कोंपर ध्यान देना व्यर्थ है। भारतकी मिट्टी उपजाऊ बनानेके लिये यदि खली डाली जायगी तो दलहन उपजाने वालोंको उसकी दर गिरनेसे घाटा लगेगा, इसलिये भारतकी मिट्टीमें खाद डाल उसे उपजाऊ बनाना निषिद्ध है। तेलहन उपजानेवाले और हैं और खली डालनेवाले और, यह तर्क मानने लायक नहीं है। ऐसा भेदही नहीं है। इसमें शक नहीं कि, वही आदमी तेलहन, आलू और तमाकू

पैदा करता है। पर यदि दोनों अलग अलग भी हों तो भी विचार सम्पूर्ण भारतकी भलाईकी दृष्टिसे होना चाहिये। (२७-'६, ४७६)

५५०. **हड्डीका चलान जारी रहे :** उसी तर्कके आधारपर हड्डीका चलान भी चलता रहे। इस बारका रोना किसानके लिये नहीं है। इस बार हड्डी चुननेवाले गरीबोंकी हित-हानिके लिये रोना है। कमीशनका कथन है :

"हड्डी और उसके चूर्णसे नाइट्रोजनकी कमी बहुत कुछ पूरी हो सकती है। पर फॉसफेट की कमी पूरी करनेके लिये इस तरहकी खाद और भी महत्वकी है। यह हमलोग पहले बता चुके हैं कि भारतीय अंतरीप और निचले बर्मामें नाइट्रोजनकी अपेक्षा यह कम है। दूसरी खादोंकी तरह यह खादभी भारतके काम नहीं आती। क्योंकि, उसे मिट्टीमें नहीं डालते और चलान कर देते हैं।..." —(पृ० ९२) (२७, २६, ४७६)

५५१. **भारतमें हड्डीके चूर्ण (खाद) का व्यापार :** पर फिरभी शाही कमीशनकी राय है कि, यह निर्यात चालू रहे। किसकी भलाईके लिये? इंग्लैन्डको हड्डीकी खाद और सेन्द्रिय खाद जरूर मिलनी चाहिये। दूसरे श्वेतांग देशोंकी जमीन उपजाऊ बनानेके लिये यह चाहिये। भारतको यह सलाह दी गयी है कि वह बाहरसे नकली खाद मँगावे और अपनी अधिक दामी हड्डीकी खाद, प्राकृतिक खाद विदेश भेजे। हड्डीकी खादका व्यापार भारतमें विदेशी निर्यात करनेवाले गुट्टके हाथ है। निर्यात बन्द करनेका अर्थ इनके व्यापारका अन्त है। निर्यातकोंका गुट्ट इतना शक्तिसम्पन्न है कि हड्डी पीसनेके काममें लगनेवाले नये आदमीको मुसीबत उठानी होती है। पर इनके लिये शाही कमीशनने वकालत नहीं की है। यहाँ उन्हें रोनेके लिये किसान नहीं मिला, पर शाही कमीशनको एक अद्भुत राह मिल गयी।

"...हड्डीके निर्यातपर किसी तरहकी रोक लगानेसे सबसे गरीब जनताकी आमदनीका साधन मिट जायगा। इसकी उसे बहुत जरूरत है।"—(पृ० ९२)

पर क्या यह सबसे गरीब जनता उसी काममें नहीं लगायी जा सकती और भारतके खेतोंके लिये हड्डी तैयार नहीं की जा सकती? भारतका उपजाऊपन बढ़ानेके लिये जिस सरकारने कमर कसली हो उसके लिये क्या यह असम्भव काम है? भारत-भाग्य-विधाताओंसे तर्क व्यर्थ है, क्योंकि बात क्या है यह वह जानते हैं। यह बात नहीं कि, वह वास्तविकता नहीं जानते हों। पर स्वार्थोंकी टक्कर राह रोकती है। इस कमीशनके अध्यक्ष लार्ड लिनलिथगो थे। और आज

सन् १९४३ के अक्तूबरकी २री तारीखको वही भारत-भाग्य-विधाता हैं'। वह कुछ दिनोंमें चले जायँगे, पर सेवाके बहाने गरीबोंको चूसनेका तंत्र उनके साथ नहीं जायगा। (२७-'६, ४७६)

५५२. **उन्नतिके लिये मिश्रित खेती :** मिश्रित खेती और ग्राम-उद्योगोंका यह अध्याय समाप्त होता है। मिश्रित खेती, पशुपालन और गव्य-धन्धेकी आवश्यकता समझानेके लिये काफी लिखा गया है। अच्छी तरह खिलाए हुए सुडौल बैलोंको गाड़ी खींचने, कोल्हू चलाने आदिके जरिये काममें लगानेके बारेमें भी काफी लिखा गया है (६५८)। अधिक दूध पैदा होनेसे जनता स्वस्थ और सुखी होगी। (२७)

---

# अध्याय १५

## गोरक्षाके लिये सरकारी संघटन

५५३. **शाही गव्य-निपुण :** डा० राइट भारतके ढोर और गव्य-धन्धेके सुधारकी रिपोर्ट तैयार करनेके लिये सन् १९३६-'३७ में पाँच महीने इस देशमें थे। उस समय गव्य-धन्धा सुधारके लिये कोई सरकारी संघटन एक तरहसे कुछ था ही नहीं। उस समय गव्य-धन्धा सुधारके सारे कामके लिये शाही गव्य-धन्धा निपुण ही एक व्यक्ति थे। उनका ऑफिस इंपीरियल डेयरी इंस्टीट्यूट, बंगलूरमें था। उनके मातहत स्थायी कर्मचारी, दो दूसरे दर्जेके अफसर और चार तीसरे दर्जेके थे। इंस्टीट्यूटको १९८ एकड़का एक क्षेत्र था। यह मुख्यतः शिक्षण केन्द्र था। इस परिस्थितिमें ऊपर लिखे सहायकोंके साथ शाही गव्य-धन्धा निपुणको नीचे लिखे काम करने होते हैं :

(क) प्रान्तों और देशी राज्योंके खेती और भेटेरिनरी विभागको सलाह देना।

(ख) पोस्ट-ग्रेजुएट और इंडियन डेयरी डिप्लोमाके छात्रोंको पढ़ाना।

(ग) जहाँ दूसरा प्रबन्ध न हो वहाँ जनताके गव्य-पदार्थोंकी जाँच करना।

(घ) गव्य-धन्धाके संबन्धकी समस्याओंकी गवेषणा करना, दूधका प्रबन्ध और यातायातके उपाय खोजना, दूध और उसके बने सामानके उपयोग खोजना।

(ङ) नये तरहके गव्य-यंत्रोंकी जाँच।

कामकी सूची बहुत जबर्दस्त थी। पर सारे भारतके कामकी बात प्रायः कुछ नहीं हो सकी।

"इस संक्षिप्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि कृषिकी एक बड़ी शाखा, भारतीय गव्य-व्यवसायकी सुविधाके लिये केन्द्र और प्रान्तोंमें अपर्याप्त कर्मचारी हैं।" —(राइटकी रिपोर्ट)

इसके बाद कुछ सुधार किये गये हैं। पर उसके बाद तुरत लड़ाई शुरू हो गयी, इसलिये इस सुधारसे जिस उन्नतिकी आशा की जाती थी वह बहुत नहीं हुई।

भारतमें गव्य-व्यवसाय ढोर-सुधारका एक पहलू है। पशु-पालनका क्षेत्र इससे बड़ा है। ढोरका पैदा करना, पालना, खिलाना, रोग-निवारण इसके अन्दर ही हैं। पशुओं और गव्योंकी खरीद बिक्रीका गव्य-धन्धा एक अंग है।

५५४. **पशुपालनकी परिभाषा :** भारतमें पशुपालन-विभाग नहीं है। इस नामके बारेमें कुछ उलझन हो सकती है। पशु-पालन स्वतः कोई शास्त्र नहीं है। पशुओंके संवर्धन, पालन आदि विषयमें कई शास्त्रोंके उपयोगका नाम पशुपालन है।

पशुपालनके एक विभाग, गव्य-धन्धाका काम सरकारने शाही गव्य-धन्धा निपुणके जिम्मे किया है। चिकित्सा संबन्धी दूसरा विभाग भेटेरिनरी विभागके अधीन हैं। दूसरे काम खेती और दूसरे विभागोंमें बँटे हैं।

५५५. **पशुपालन समन्वयी शास्त्र है :** हमलोग पशुपालनका व्यापक अर्थ समझनेकी कोशिश करें। एडिनबरा विश्वविद्यालयके पशुपालन-विभागके श्री बुकानन स्मिथने इसकी व्याख्या और परिभाषा की है :

"पशुपालन शास्त्रका लक्ष्य पशुधनकी उत्पत्ति है। इसमें हमारे क्षेत्रके पशुधनकी उत्पत्ति, पालन और पुष्टिके लिये काममें लाये जानेवाले आधारभूत शास्त्रोंका विवेचन है। जो शास्त्र इसके आधार हैं उनमें 'प्रजनन-शास्त्र,

पुष्टि-शास्त्र, पशु-स्वास्थ्य शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, उत्पादन और पोषण सम्बन्धी शरीर-क्रिया शास्त्र मुख्य हैं......"

"जिन शास्त्रोंसे पशुपालन निकला है उन्हें काममें लानेसे बढ़कर इसका काम है इन सबका समन्वय करना। शास्त्रीय पशुपालकका सही काम नये ज्ञानका काममें लाना या आधार-भूत शास्त्रोंके अनुमानोंको व्यापक रूपसे अपनाना नहीं है। वल्कि वर्तमान स्थितिमें नयी बातोंके अनुसार काम करना है। इसका अर्थ है कि, पशुपालन प्रयुक्त शास्त्र नहीं हैं। यह नयी पद्धति निकाल सकता है और गवेषणा कर सकता है।..."

"...उदाहरणके लिये पशुपालन-शास्त्रका आधार आहार (पुष्टि) शास्त्र है। आहार (पुष्टि) शास्त्र दूसरे शास्त्रोंके विना पशुधनके द्वारा अकेला ही मानव-कल्याण नहीं कर सकता। इस तरह ऐसे उन्नत पशुपालक हैं जो मुख्यतः आहार-शास्त्री हैं। उन्हें दूसरे शास्त्रोंका पूरा ज्ञान है जिसका वह अपने प्रसिद्ध कामसे समन्वय करते हैं। इसी तरह ऐसे पशुपालक हैं जो मुख्य रूपसे चिकित्सक या प्रजनन-शास्त्री हैं।"

५५६. **पशुपालन-शास्त्र पशु पैदा करनेके लिये शास्त्रोंका प्रयोग करता है :** "सही परिभाषा कुछ शब्दोंमें सीमित नहीं हो सकती। संक्षेपमें पशुपालनकी परिभाषा होगी शास्त्रका वह विभाग जो पशुधनकी उत्पत्तिके लिये शास्त्रका अर्थ करता, समन्वय करता और उसे काममें लाता है।"

भारतमें प्रजनन-शास्त्री, आहार-शास्त्री, चिकित्सक और कृषकके इस समन्वयका बड़ा अभाव है। इसीलिये पशुहितके सारे काम नहीं हो रहे हैं।

सर अर्थर ऑलवर पशुपालन-शास्त्री थे। उन्होंने कोशिश की कि केन्द्रीय सरकार सभी टुकड़ा विभागोंका समन्वय करे। उनकी सलाह काममें नहीं लायी गयी। इस कामके लिये वैधानिक और व्यावहारिक कठिनाई जरूर होगी, पर वह दूर होनी चाहिये।

५५७. **पशुपालन कार्य : अभी टुकड़ोंमें होता है :** सरकार पशुपालनका खर्च कृषि-विभागके मदमें रखती है। वहाँ उसका उप-विभाग होता है। कुछ कृषि-विभागके अधीन रहता है और कुछ पशुचिकित्सा-विभाग (भेटेरिनरी) के जिम्मे कर दिया जाता है। यह विभाग भी कृषि-विभागका ही अंग है। इस कारण पशुपालनके काममें सफलता नहीं मिली। क्योंकि, सारे कामके लिये किसीकी जवावदेही नहीं है। केन्द्र और प्रांतोंमें पशुपालन-निपुण हैं। पर ये बहुत कुछ

सलाहकार जैसे हैं। इससे पशुपालनको लाभ नहीं हुआ है। बजटमें बहुत कम रुपये इस कामके लिये मंजूर होते हैं। सर अर्थर ऑलवरका यही रोना था कि उसका भी पूरा फायदा नहीं उठाया जाता। इसके प्रबन्धका ढंग ही भूलोंसे भरा है, इसीसे ऐसा होता है।

५५८. **पुनःसंघटनके लिये ऑलवरके सुझाव :** पशुपालन शाखाकी दूसरी बैठकमें सर अर्थरने जो नोट पढ़ा था, उसमें लिखा है :

"...यह साफ है कि सम्पूर्ण पशुपालन-कार्यके लिये जितने रुपये दिये जाते हैं वह खेतीके अनुपातमें बहुत कम हैं। दूसरे देशोंमें पशुपालनके सभी काम करनेके लिये संघटन है। उन्हें पूरी सुविधा और कर्मचारीभी हैं। उनका नियंत्रण इस विषयके विशेषज्ञ करते हैं। उस तरहकी कोई चीज अभी अनेक प्रान्तोंमें नहीं है। सिर्फ पंजाब और उत्तर-पच्छिम सीमाप्रान्तमें ही पशुपालनका सारा काम एक विभागकी अधीनतामें होता है। वह विभाग है प्रान्तीय पशुचिकित्सा-विभाग। यह एक विशेषज्ञके सम्मिलित नियंत्रणमें है। जिन प्रान्तोंमें ऐसा नियंत्रण नहीं है और पशुपालनका कुछ काम कृषि-विभागके डाइरेक्टर और कुछ पशुचिकित्साके डाइरेक्टर करते हैं और कुछ काम कुछभी नहीं होता, वहाँसे इन प्रान्तोंमें पशुधनकी संघटित प्रगति बहुत हुई है, यह ध्यान देनेकी बात है। (५८१)

५५९. **पशुपालनके डाइरेक्टरकी नियुक्ति :** "मैं स्वीकार करता हूँ कि, भारतके अनेक प्रांतोंमें कृषिके डारेक्टरके अधीन प्राप्त धन और सुविधासे पशुधनके अफसरोंने अच्छा काम किया है। पर सारे प्रान्त या कम से कम संवर्धनके मुख्य स्थानोंमें केवल पशुपालनका ही काम करनेवाली संस्था उनकी पीठ पर न हो तो उनसे पशुधनकी सर्वांगीण उन्नतिकी आशा कैसे की जा सकती है। इसलिये मुझे ऐसा लगता है कि, सही तरीका यह है कि, प्रान्तोंके कृषि-डाइरेक्टरके नीचे काम करनेवाले पशुधनके कर्मचारियों और भेटेरिनरी विभागोंको एकमें मिला दिया जाय। और सभी पशुपालन कार्य जैसे रोगनियंत्रण, संवर्धन-नियंत्रण, विधिसे बधिया करना, सुधरे पशुओं को दवाकी सूई लगाना, कुलीन पशुओंकी सरकारी रजिस्टरी, और गव्य और दूसरे पशुजनित पदार्थोंकी खरीद-बिक्री पशुपालन विभागके डाइरेक्टरके अधीन होना चाहिये। डेनमार्क, अमेरिका, न्यूजीलैंड, अस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, और मुख्य ब्रिटिश उपनिवेशोंमें इसीसे सफलताके साथ काम हुआ है ..."

"उदाहरणके लिये मैं सोचता हूँ कि, गव्य-धन्धा, भेड़, बकरी और मुर्गी तथा पशुजनित पदार्थोंकी बिक्रीके लिये विशेषज्ञोंको जरूरत होगी। आजकल खेतीकी उपजका जितना आर्थिक महत्व है उससे अधिक पशुधन और उनसे उत्पन्न पदार्थोंका है। इस विचारसे पशुपालनके डाइरेक्टरकी मर्जीसे काम होनेके लिये उन्हें धन और सुविधा मिलनी चाहिये ..."

"...भारतमें पशुधनका विशेष महत्व है। क्योंकि उनसे खेती जुताया और दूध प्राप्त किया जाता है। यह दूध विशेष महत्वका है क्योंकि, लोगोंका मुख्य आहार निरामिष है। यद्यपि यह माना जाता है फिर भी इनसे पता चलता है कि, खेतीकी अपेक्षा पशुपालन के लिये आधेसे भी कम खर्च किया जाता है और रोग नियंत्रण, चिकित्सा, पशुचिकित्सा-शिक्षा भी इसी खर्चमें है।"

सर अर्थरको अवसर (ऑफिस छोड़े) हुए इतने वर्ष बीत गये पर पशुपालनका पुराना सरकारी तरीका ज्यों का त्यों अब भी है। यह विभाग ऐसा है कि जिसके सुधारसे प्रजाकी आर्थिक स्थिति सुधर सकती थी। अब हम जान गये हैं कि, भारतमें ढोरोंकी ऐसी नसलें हैं जो दूध देने या भारवहनमें दुनियाँमें किसी से कम नहीं हैं।

हमारे द्वारपर ऐसा रत्न बँधा है, फिरभी रोना रोया जाता है कि, देशमें रद्दी पशु भरे हैं। और इनके वधकी शिफारिश की जाती है। शास्त्रीय उपायसे इनको लाभकारी बनानेकी कोशिश कम ही होती है।

सर अर्थरकी आलोचना समझनेके लिये नीचे लिखा आँकड़ा है। यह आँकड़ा ऑलवरने सन् १९३३ में तैयार किया था। इसके बाद डा० राइटने सन् १९३६ में एक आँकड़ा (आँकड़ा—४३) तैयार किया। इसमें पशुपालन कार्यका कुल प्रतिशत दिखाया गया है। इसमें पशुचिकित्सा-कार्य, पशुधन-सुधारकार्य, और सिर्फ सुधारकार्य पर हुआ खर्चभी शामिल है।

५६०. १९३५-'३६ में प्रांतोंमें खेती और पशुपालन कार्यके व्ययका तुलनात्मक आँकड़ा :

## आँकड़ा—४२

### पशुपालन और खेतीके खर्चकी तुलना

| प्रांत | पशुपालन (पशु चिकित्सा विभागका कुल। खेती वि० में पशुधनका मद। इसमें पशु चिकित्सा कालेजका खर्च नहीं है) (१) रु० | खेती (खेती वि० का कुल खर्च। पशुधन और पशु चिकित्सा कालेजका खर्च छोड़ देकर) (२) रु० | खेतीका कुल। खेती और पशु चिकित्सा कालेजका खर्च बाद (१+२) (३) रु० | पशुचिकित्सा और पशुधनके कुल खर्च का प्रतिशत कोलम१/कॉलम३ (४) | खेती विभाग से पशुधन कार्य के लिये दी गयी मद। कुल (५) रु० | खेती विभाग से पशुधन कार्य के लिये दी गयी मद। प्रतिशत (६) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मदरास | ९,६७,१०० | १५,८२,७०० | २५,४९,८०० | ३७·९३ | १,१५,८०० | ६·२७ |
| बंबई | ४,०३,००० | १०,००,००० | १४,०३,००० | २८.८६ | ९१,००० | ७·४० |
| बंगाल | ३,८२,०६७ | ९,४०,६३३ | १३,२२,७०० | २८.८८ | ५४,३६७ | ५·४८ |
| पंजाब * | ११,७१,०३६ | २३,६०,२६४ | ३५,३१,३०० | ३३·१६ | * | ... |
| युक्तप्रान्त | ५,५६,७३३ | १९,११,५६२ | २४,६८,२९५ | २२·४७ | १,२०,७३८ | ५·२३ |
| मध्यप्रान्त | ४,८१,०२० | ७,०३,३४६ | ११,८४,३६६ | ४०.६१ | ९५,०२० | १०·५५ |
| बिहार और उड़ीसा* | ४,८२,९९३ | ६,४९,३९९ | ११,३२,३९२ | ४२.७४ | * | ... |
| आसाम | २,५६,५८९ | ३,७१,४९५ | ६,२८,०८४ | ४०·८४ | १,१५,३८६ | २३·६८ |
| सीमाप्रान्त | १,२८,७०० | २,१५,०० | ३,४३,७०० | ३७·४४ | ... | ... |
| | पंजाब, बिहार-उड़ीसा, तथा सीमाप्रान्त को छोड़कर औसत— | | | | | ७·५७ |

* पशुधन कार्यका कुल खर्च पशुचिकित्साके बजटसे होता है या कुछ पशुचिकित्सा और कुछ खेती से। इसलिये आँकड़ा नहीं दिया गया।

## आँकड़ा—४३

५६१. पशुधन-सुधार और पशु-चिकित्सा नौकरीपर हुआ खर्च :

| प्रान्त | कृषि विभाग कुल बजट रु० | कृषि विभाग पशुधन सुधारकी मद रु० | पशुधनके सुधार मद का अनुपात | पशुचिकित्सा विभागका कुल बजट रु० | पशुचिकित्सा और पशुधन सुधारका कुल रु० | दोनों विभागका कुल बजट रु० | * पशुपालन के लिये व्यवहृत अनुपात |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मदरास | १८,४७,००० | १,१५,८०० | ६·२% | ९,६३,००० | १०,७८,८०० | २८,१०,००० | ३८·३% |
| बंबई | १२,२९,००० | ९१,००० | ७·४ ,, | ३,७८,००० | ४,६९,००० | १६,०७,००० | २९·२ ,, |
| बंगाल | ९,९५,००० | ५४,३६७ | ५·४ ,, | ४,८२,००० | ५,३६,३६७ | १४,७७,००० | ३६·३ ,, |
| पंजाब | २५,९६,५०० | ५३,८३६ | २·१ ,, | १२,९१,००० + | १३,४४,८३६ | ३८,८७,५०० | ३४·६ ,, |
| युक्तप्रान्त | २३,६२,३०० | १,२०,७३८ | ५·१ ,, | ४,३६,००० | ५,५६,७३८ | २७,९८,३०० | १९·९ ,, |
| मध्यप्रान्त | ९,००,००० | ९५,०२० | १०·५ ,, | ३,८६,००० | ४,८१,०२० | १२,८६,००० | ३७·३ ,, |
| बिहार | ६,९२,६१७ | ४३,२१८ | ३·२ ,, | ५,२१,५७४ + | ५,६४,७९२ | १२,१४,१९१ | ४६·४ ,, |
| आसाम | ४,८६,८८१ | १,१५,३८६ | २३·७ ,, | १,४१,२०३ | २,५६,५८९ | ६,२८,०८४ | ४०·८ ,, |
| सीमाप्रान्त | २,१५,००० | ... | ... | १,२८,७०० + | १,२८,७०० | ३,४३,७०० | ३७·२ ,, |
| कुल— | १,१३,२४,२९८ | ६,८९,३६५ | ६·१% | ४७,२७,४७७ | ५४,१६,८४२ | १,६०,५१,७७५ | ३३·७% |

* पशुचिकित्सा-विभागका खर्च + पशुपालनके लिये खेती विभागकी मद ।

\+ इन पशुचिकित्सा विभागोंने नीचे लिखी रकम पशुधन-सुधारके लिये दी है : पंजाब २,३२,९०० रु०, बिहार ५३,१५१ रु०, सीमाप्रान्त २०,२०० रु० ।—(राइटका आँकड़ा—४२)

आँकड़ेसे पता चलता है कि भेटेरिनरीका कुल खर्च सर अर्थरके नोटके समयसे भी कम है। पशुधन सुधारका खर्च ७·५७ से घट ६·१ सैकड़ा हो गया है। इसका अर्थ है कि, पशुपालन कार्य आगे बढ़नेके बदले पीछेही हटा है।

सरकारने पशुओंकी देखभालके लिये जो आदमी रखे हैं उनकी संख्या देखनेसे उपेक्षा ही झलकती है।

**५६२. प्रांतोंमें सन् १९३६-'३७ में खेती और भेटेरिनरीके अफसरोंकी संख्या :**

## आँकड़ा—४४

**खेती और पशुचिकित्सा विभागके अफसरोंकी संख्या**

| | खेती | | भेटेरिनरी | |
|---|---|---|---|---|
| प्रान्त | गैजेटेड | ननगैजेटेड | गैजेटेड | ननगैजेटेड |
| मध्यप्रान्त | २५ | १६६ | ७ | १६३ |
| बंबई | ३८ | २०८ | ९ | १४३ |
| मदरास | ५९ | ४६४ | २३ | २७४ |
| पंजाब | ६९ | २३६ | ३६ | ४०६ |
| युक्तप्रान्त | ४४ | २७४ | ४ | २२६ |
| बंगाल | २६ | १८८ | १३ | १७४ |
| बिहार | १८ | ११३ | ११ | १३९ |
| उड़ीसा | १४ | १४ | २ | २८ |
| आसाम | ९ | ५४ | २ | ६० |
| सीमाप्रान्त | [illegible] | १८ | २ | ३३ |
| कुल— | ३०७ | १,७३५ | १०९ | १,६४६ |

—(राइटका आँकड़ा—४१)

कुल पशुचिकित्सा अफसर १०९ गैजेटेड और १,६४६ ननगैजेटेड हैं। कॉलेजों या स्कूलोंमें पढ़ानेवाले भी इसीमें हैं। २१ करोड़ ५० लाख ढोरपर १,६४६ ननगैजेटेड अफसरके हिसाबसे १,३०,००० ढोरपर एक अफसर पड़ा।

हर प्रांतमें एक भेटेरिनरी कर्मचारी पर कितने पशु पड़े इसका हिसाब यहाँ दिया जाता है।

# आँकड़ा—४५

**५६३. प्रति पशुचिकित्सक ढोरकी संख्या और प्रति ढोर खर्च :**

| प्रांत | प्रति भेट० असिस्टेंट सरजन ढोरकी संख्या | प्रति ढोर भेट० और पशु-धन उन्नतिका खर्च (पाई) |
|---|---|---|
| सीमाप्रान्त | २९,५०० | २३·८ |
| पंजाब | ३६,००० | १६·३ |
| बंबई | ६५,५०० | ९·१ |
| मध्यप्रान्त | ८१,५०० | ६·७ |
| मदरास | ८२,५०० | ८·४ |
| आसाम | ९६,५०० | ८·२ |
| बंगाल | १,३५,००० | ४·१ |
| युक्तप्रान्त | १,४१,००० | ३·३ |
| बिहार | १,४२,००० | ५·१ |

—(राइटका आँकड़ा—४३)

ढोरोंकी किस्मतका अंदाज उनकी सँभाल और चिकित्सासे किया जा सकता है। छोटेसे सीमाप्रान्तको छोड़ सबसे जादे खर्च पंजाबका है। यहाँ १६·३ पाई प्रति पशु खर्च है। पंजाबमें कार्य बहुत अच्छा हुआ है। इसलिये वहाँ खर्चसे ढोरोंको दूना लाभ हुआ है।

**५६४. भारत और अमेरिकामें पशुपालन :** इस मामलेमें अमेरिकाके आँकड़ेकी तुलना रोचक होगी।

# आँकड़ा—४६

## भारत और अमेरिकामें पशुपालन पर खर्च

सन् १९२९-'३०के पशुपालनके आँकड़ेके आधार पर (ऑल्वर)

**(१) पशुधनकी संख्या :**

| | | |
|---|---|---|
| अमेरिका | ... | १८ करोड़ १० लाख (इसमें सूअर भी हैं) |
| ब्रिटिश भारत | ... | २२ करोड़ (इसमें सूअर और मुर्गी भी हैं) |
| अखिल भारत | ... | ३० करोड़ (लगभग) |

**(२) पशु-जनित पदार्थोंका कुल मूल्य :**

भारत (१९२९के सेप्टेम्बरमें)—१,९०० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष।
भारत (राइटके अनुसार) —१,००० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष।
अमेरिका (१९२९के सेप्टेम्बरमें)—६,२४३ मिलियन डॉलर ;
= १,७११ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष।
अमेरिकाकी फसलें —५,६८० मिलियन डॉलर ;
= १,५५६ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष।

**(३) केन्द्रीय कोषसे पशुपालन विभागकी नौकरियों पर खर्च (१९२९–३०):**

| | |
|---|---|
| अमेरिका पशु धन्धेका ब्यूरो— | ४४६ लाख |
| ब्रिटिश भारत केन्द्रीय कोषसे पूसा और मुक्तस्वरके लिये— | १४ लाख |

**केन्द्रीय बजटका ब्यौरा (१९२९–'३०)**

| | | |
|---|---|---|
| (क) | कृषि विभाग | ९·१ लाख |
| (ख) | पशु-पालन विभाग करनाल, बंगलूर, वेलिंगटन और आनन्द इंस्टीट्यूट। शाही गव्य-निपुण और फीजियोलॉजिकल केमिस्ट | ६·८ लाख |
| (ग) | मुक्तेश्वर | ७·९ लाख |
| | कुल— | २३·८ लाख |
| | मुक्तेश्वरको आमदनी बाद गयी | ८·१ लाख |
| | कुल ठेठ खर्च— | १५·७ लाख |

मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटकी सीरम और भैक्सीन (serum and vaccines) से ७·९ लाख खर्च कर ८·१ लाख लाभ होता था। प्रान्तोंके खर्चसे मुनाफा करनेकी निन्दा शाही कमीशनने की है। पर देखते हैं शाही कमीशनकी सिफारिशके बाद भी केन्द्रीय सरकार मुनाफा छोड़नेको तैयार नहीं है।

**५६५. अपर्याप्त कार्य :** कर्मचारी कम हैं। इसलिये रोग निवारण या ढोरकी उन्नतिके कार्यकी अधिक आशा नहीं करनी चाहिये। जिला-बोर्ड पशु और

मनुष्यके अस्पताल और दवाखाने चलाते हैं। इस खास कामको यदि ठीक तरहसे करना है तो कर्मचारियों को दूसरा और काम नहीं रहना चाहिये।

महामारियोंको रोकनेके लिये सफरी कर्मचारी हैं। पर उन्हें जितना काम करना है उसके हिसाबसे रोगके प्रायः शान्त होने परही उनका उपयोग हो सकता है। क्योंकि, खबर मिलनेका तरीका जितना गलत है उतनेही आदमी भी कम हैं। सुधार और बधियाकी प्रवृत्ति अब शुरु हो रही है। पर जो किया जारहा है वह सिन्धुमें विन्दुके समान है।

**५६६. अज्ञात-कुल इलाकोंके लिये साँढ़-नीति :** निपुणोंके बताये सिद्धान्तके विरुद्ध अज्ञानकुल इलाकोंमें साँढ़ दिये जा रहे हैं। इस इलाकेकी नस्लके सुधारके लिये ब्रुएन और ऑलवरकी राय उद्धृत की जा चुकी है। ऑलवरने साँढ़ देनेके आजके कुछ तरीकोंके खतरोंसे सावधान किया है।

"... वास्तवमें इतने कम साँढ़ देनेसे खतरा है। आजकी हालतमें इससे ऐसे पशु पैदा हो सकते हैं जो स्थानीय या उससे भी जादे मिश्रित मूलके पशुकी तरह घटिया हों। ऐसे कामका नियंत्रण होशियारीसे निपुणोंको करनेकी जरूरत है। इनकी पीठपर सारे देशमें पशुपालक संस्थायें होनी चाहिये जो संवर्धकोंको व्यवस्थित सहायता देनेमें समर्थ हों और जिन प्रतिकूल कारणोंसे भारतके अनेक भागोंमें अच्छे पशु तैयार करना असंभव हो गया है उनका अध्ययन और नियंत्रण कर सकें।" —(पशुपालन शाखाकी पहली बैठक, १९३३, पृ० २३१)

इस साफ चेतावनी पर भी अज्ञातकुल इलाकों, जैसे बंगालमें साँढ़ बाँटे जा रहे हैं। इस कामका विचार नहीं किया जाता कि, इससे अगली ३ या ४ पीढ़ियोंमें छीजन भी हो सकती है। श्रेष्ठ साँढ़ोंके प्रयोगका काम पहले सरकारी क्षेत्रोंमें करना चाहिये था और यदि परिणाम अच्छा निकलता तो बाहरी साँढ़ बाँटे जा सकते थे। इस देरसे कोई हानि नहीं हो जाती। क्योंकि, १० या १२ बर्षोंमें चारा उपजानेमें सुधार, वरण करके और इस जलवायुके अभ्यस्त अच्छे नमूनेसे संवर्धन और निवारणीय रोगोंका संघटित निवारण किया जा सकता था। ये तथा और दूसरे काम किये जा सकते थे। प्रति जिला १०० या इसी तरह पहलेसे ठहराकर हड़बड़ीमें साँढ़ बाँटना उचित नहीं ठहराया जा सकता जबकि लाखों निरीह पशुओंकी भलाई और देखभालके लिये थोड़ेसे ही अफसर हैं।

५६७. **इक्का दुक्का अयोग्य साँढ़ बाँटना :** जब यह समस्या जमकर अच्छी तरह काम करने से ही हल हो सकती है तब इस तरह सारे प्रांतमें इक्का दुक्का अयोग्य साँढ़ बाँटना किसी तरह उचित नहीं कहा जा सकता।

हरियाना साँढ़ बगाल लाये जा रहे हैं। उनके अपने प्रान्त पंजाब और युक्तप्रान्त में ही उनकी कमी है। अनिश्चित फलके लिये २,५०० साँढ़ बगाल भेजनेके बदले इनका पंजाब, सीमाप्रान्त, युक्तप्रान्तमें जादे अच्छा उपयोग हो सकता था।

कुल माँग १० लाख अच्छे साँढ़ोंकी है। बदलनेके लिये प्रतिवर्ष २ लाख साँढ़ चाहिये। बंगाल, बिहार, आसाम या उड़ीसाके बातावरणमें अज्ञानकुल ढोरोंके बीच मुट्ठी भर साँढ़ छितरानेसे कोई फयदा नहीं।

कर्मचारियोंके अभावका कारण कुछ तो शिक्षाका अपर्याप्त प्रबंध है और कुछ नौकरी-पेशा लोगोंकी पशुपालन कार्यमें अरुचि।

सांस्कृतिक दिशामें हुए परिवर्त्तन दुखदायी हैं। ग्राम-समाजोंके उन्मूलनसे सर्वनाश तेजीसे हुआ है। संस्कार इतना जादे बदल गया है कि, खेती और पशुपालनके जरिये सेवा करनेवालेकी वैसी इज्जत नहीं होती जैसी किसी डाक्टर आदिकी होती है।

योग्य पशुपालक तैयार करनेके लिये पशुचिकित्सा और इसी तरहकी शिक्षाका प्रबन्ध अपर्याप्त है। सारे भारतमें थोड़ेसेही स्कूल और कालेज हैं और जितने आदमी सीख पढ़कर निकलते हैं वह बहुत कम हैं। विद्यालयोंकी कमी है और उधर गाँवोंमें अच्छे संवर्धक और चिकित्सक तैयार करनेवाली परम्परा भी तेजीसे मिट रही है।

डा० राइटकी रिपोर्टके बाद केन्द्रमें भेटेरिनरी और गव्यधन्धेकी अच्छी शिक्षाके लिये सोचा जा रहा था पर लड़ाईके कारण कुछ हो नहीं सका।

५६८. **पशुचिकित्सा-शिक्षा :** हर तरहकी शिक्षाकी हालत बुरी है। शिक्षामें वास्तविकताका अभाव है। लोग तोतारटंत पढ़ते और पास करते हैं। शिक्षाका सच्चा उद्देश्य नष्ट होगया है। यह बात कृषकोंके जीवनमें जितनी खटकती है उतनी और कहीं नहीं। उनके बच्चे स्कूल जाकर गंभीर व्यावहारिक किसानी बुद्धि नहीं सीखते। देहातोंमें भी प्राथमिक शिक्षाका ग्रामजीवनसे कोई संबंध नहीं है। (१५)

**५६९. जिला-बोर्ड और पशुचिकित्सामें सहायता :** प्रान्त और जिला-बोर्डके बजटमें शिक्षाके लिये बड़ी रकम रहती है। जिलाबोर्डका व्यापक संघटन है। उसकी आमदनी गरीब से गरीबसे भी होती है। जिलाबोर्ड शिक्षापर बड़ी रकम खर्च करता है पर जिस तरह खर्च होता है वह संतोषकारक नहीं है।

पंजाबके किसानोंने गाँवके पशुधनकी उन्नतिके लिये दिये गये बोर्डके साँढ़की कीमत देनेमें उज्र किया। उनका कहना था कि, जिलाबोर्डका कोष उनके रुपयोंसे है। इसलिये उन्हींके रुपयोंसे खरीदे साँढ़की कीमत वह दुबारा क्यों दें। एकबार सेस के रूपमें अप्रत्यक्ष रीतिसे और फिर साँढ़की नगद या किस्त कीमतके रूपमें प्रत्यक्ष रीतिसे इस तरह दुबारा उन्होंने देनेसे इनकार किया। यह तर्क पुष्ट है। शायद बोर्डने स्वीकार भी कर लिया है। उसी तरह शिक्षाके मामलेमें भी वह बोर्डको अपने बच्चोंको खेती और पशुपालनकी प्रारम्भिक शिक्षाके लिये कह सकते हैं। यह उचित हक है। पर न तो कभी इसका दावा किया गया और न सोचा गया। (१५)

**५७०. शिक्षाका झुकाव :** भेटेरिनरी या कृषि कॉलेजमें लड़के पास करनेके बाद सरकारी नौकरी पानेके लोभसे भर्त्ती होते हैं। स्वयं खेती या पशुपालन करनेके लिये वहाँ कोई भर्त्ती नहीं होता। ऐसे धनी किसान हैं जो अपने लड़कोंको अपनेही धन्धेमें लगानेके लिये कॉलेजों में भेज सकते हैं। यही ठीक बात भी होती। पर यह नहीं हो रहा है। इसीलिये खेती और भेटेरिनरी की शिक्षाकी उन्नति होने पर भी किसानों पर उसका कुछ असर नहीं हुआ है। आदिसे अंत तक शिक्षा अवास्तविक और ऊपरसे लादी हुई है। (१५, ५६७)

**५७१. इस घड़ीकी शिक्षाकी जरूरत :** देशमें पशुपालन विषयके प्रारंभिक शिक्षाप्रसारकी इस घड़ी आवश्यकता है। गाँवके स्कूलोंके पाठ्यक्रममें इसे सम्मिलित करना चाहिये। व्यावहारिक कामका सुबीता भी रहना चाहिये। व्यावहारिक काम का प्रबन्ध सम्भव है। इससे गाँवमें जान आ जायगी। इसके लिये सरकारको राह दिखानी चाहिये। यदि सरकार अपना कर्त्तव्य नहीं करती तो सरकारके भीतर जो दूसरी सरकार है अर्थात् ग्राम-पंचायतें स्वयं यह करें। (१५, ५६७)

**५७२. भेटेरिनरी कॉलेज :** यह तो हुई जनताके लिये प्रारंभिक पशुपालन शिक्षाकी बात। इसका पूरा अभाव भी है। ऊंची शिक्षाके लिये देशमें ५ कॉलेज

कलकत्ता, बंबई, मदरास, लायलपुर और पूसामें हैं। इन कॉलिजोंमें भेटेरिनरी असिस्टेंट सरजन तैयार होते हैं। (१५, ५६७)

**५७३. प्रस्तावित केन्द्रीय कॉलेज :** और ऊँची शिक्षाके लिये एक केन्द्रीय कॉलिजकी जरूरत है। मुक्तेश्वर (इज्जतनगर)में एक कॉलेज खोलना सरकार सोचती थी। यहाँ इंगलैन्डके मेम्बर ऑफ रॉयल सिविल भेटेरिनरी सर्विस (M. R. C. V. S.) जैसी पढ़ाई होती। पाँच वर्षमें १०—१२ विद्यार्थी तैयार किये जाते। यदि प्रान्तके कॉलेज दो वर्षका पाठ्यक्रम अपने यहाँ स्वीकार लेते तो दो वर्षोंकी पढ़ाई वहीं हो जाती। प्रयोगशाला आदिमें ७० विद्यार्थियोंका प्रबन्ध रहता। प्रारंभिक व्यय ९ लाख रुपये (लड़ाईके पहलेके) कूता गया था। इसके बाद २ लाख १० हजार वार्षिक। (१५, ५६७)

**५७४. एक आदमीकी शिक्षाके लिये २०,०००) रु० :** हर पाँचवें वर्ष पास होनेवाले १० छात्रोंपर इतनी रकम बैठानेसे प्रति छात्र २०,०००) रु० होते हैं। यदि सरकार सरकारी वृत्ति देकर छात्रोंको पढ़नेके लिये इंगलैंड भेजे तो M.R.C.V.S. डिप्लोमा इससे कहीं सस्ता मिल सकता है। ऊँचे दर्जेका केन्द्रीय कॉलेज भारतमें होना अच्छा है। पर क्या प्रति छात्र २०,०००) रु० खर्च कर भेटेरिनरी सेवाकार्यके लिये आदमी तैयार करनेमें वह समर्थ है?

इस समय पुष्टिकर आहार और गव्यधन्धाका प्रारंभिक ज्ञान फैलानेकी जरूरत है। यह प्रारंभिक ज्ञान शास्त्रीय और नयीसे नयी खोजसे प्राप्त तथ्यके अनुसार हो। (१५,५६७)

**५७५. रोगनिवारणका अपर्याप्त प्रबन्ध :** रोग भगाना भेटेरिनरी विभागका मुख्य काम है। सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट यह काम कर रहा है। पर उसकी खोजके फल जल्दीसे जल्दी देहातोंमें नहीं पहुँचते। क्योंकि सहायक कर्मचारियोंका अभाव है। पशुपालकोंको काम सिखानेकी कोशिश हुई है। यह लोग साधारण रोगोंकी चिकित्सा, भैक्सिन और सिरमकी सुई लगानेका काम कर सकते हैं। यदि सरकार उचित संघटन करे, और सिखावे तो हजारों ऐसे लोगों को काम मिल जाय। यह लोग रोगनिवारक उपायोंसे हर साल हजारोंका ग्रास करनेवाले रोगोंको दूर भगा सकते हैं। सरकारी पशुपालन विभाग यदि देशकी जरूरत समझनेवाला हो तो नीचे लिखे अनुसार काम कर सकता है। गोरक्षाके संबन्धमें इन पर विचार हो चुका है। उसके कुछ मुद्दे यहाँ फिर लिखे जाते हैं :

प्रारंभिक शिक्षाके साथ पशुपालन-शिक्षाका प्रबन्ध, इसके साथ वर्धाकी बुनियादी शिक्षाके ढंगपर व्यावहारिक शिक्षा हो। बच्चे शुरूसे ही ढोरका प्यार करने वाले हों। वह ढोरका प्रबन्ध करना सीखें और उसकी सेवा करें। जिलाबोर्ड शिक्षाका खर्च ऊपरके अनुसार करें और भेटेरिनरी तथा पशुपालन मदमें अधिक रकम स्वीकारें। (५६७)

**५७६. गोरक्षाके लिये आवश्यक परिवर्तन :** गायको भैंसकी अनुचित होड़से बचाना होगा। अभी सरकारी नीति भैंसको दुधार पशु माननेकी है। शाही कमीशनने इस पर मोहर लगादी है। सरकारी तौर पर गाय नहीं, भैंस दुधार पशु है। गाय दूध भी देती है और भारवाही पशुभी देती है। उसके इस पद को छीननेकी भूल सरकारको अब तक समझ लेनी चाहिये थी। पुरानी नीति बदलकर नयी बनानी चाहिये और अनुचित होड़की हरेक बात मिटा देनी चाहिये :

(क) गायके दूध घीके पौष्टिक गुणके बारेमें भैंसके दूध घी से तुलना कर समझाना।

(ख) पानी मिलाकर भैंसके दूधको गायका बता बेचना रोकना और उसके लिये कानून बनाना। सरकारी स्वास्थ्यविभाग और दुग्ध-विश्लेषण विभागोंमें अभी दूधका जो "मान" है न रहे। थनसे निकला शुद्ध पदार्थ ही दूध माना जाय और गाय और भैंसके दूधका वर्गीकरण हो।

(ग) भैंसके गव्यसे गायके गव्यको प्रधानता दी जाय। कैरोटीनके कारण गायके घीका कानूनसे ऊँचा दाम रहे। वनस्पति पदार्थों से घी बचाया जाय। मिश्रित घी (गाय और भैंसका) कानूनसे बाजारमें न बिकने पावे। क्योंकि, इससे जाँचमें कठिनाई होती है।

(घ) दुद्धी (मक्खन निकाले दूध) के पौष्टिक गुणका प्रचार और घीके बदले शुद्ध दूध को प्रधानता देना। (५६७)

**५७७. जलावन और चारेका रखाँत बनाना :** सरकारका काम है कि, गरीबोंको नाममात्र दामसे जलावन दे। गोबरको जलनेसे बचानेके लिये डा० भोयेलकरके बताये ढंगपर कोयला या लकड़ी दी जाय। दवामी (स्थायी) बन्दोबस्तके इलाकोंमें सरकार जमीन्दारोंके मारफत चारेकी खेती जितने जमीन में हो उसका लगान कम करा सकती है। नहर और रेलके बाँध पर चारेके पेड़ वह लगवा सकती है। उसे जमीनको उपजाऊ बनाने और उसके उपजाऊपनकी रक्षाके लिये

तेलहन, खली, हड्डी, मछलीकी खादका निर्यात रोकना चाहिये और यह प्रबन्ध करना चाहिये कि ये चीजें जानवरोंको खिलायी जायें या सीधे ही जमीनमें डाली जायें। जब तेलकी विदेशोंमें माँग न हो या उसके भेजनेका प्रबन्ध न हो तब तक, अतिरिक्त तेलहन न उपजा उस खेतमें दूसरी उपयोगी फसलें उपजायी जायें। (२८, ३१, ४११, ४४४-'५३, ४६२, ५६७)

५७८. **माहामारियों का प्रभावकारी निवारण :** रोगनिवारण और ढोरकी सेवाके लिये हजारों पशुपालकोंको पशुपालन, आहार (पुष्टि-शास्त्र), गव्यधन्धा, बधिया करना, सिरम और भैक्सिनकी सूई लगानेकी क्रिया सिखानी चाहिये। महामारी फैलने पर योजनाके अनुसार पशुपालन विभागकी देखरेखमें उन्हें मुफ्तमें सिरम, भैक्सिन आदि देना चाहिये। (५६७)

५७९. **पशुशक्तिका उपयोग :** जोतने आदिके कामके लिये सरकार तेल या कोयलेके इंजनके बदले पशुशक्तिको बढ़ावे। इसका अर्थ मिलकी होड़से ग्राम-उद्योगकी रक्षा करना है। (२४, २६, ४१२, ५२८, ५४४, ५६७)

५८०. **संवर्धन और बधियाका सफल उपाय :** सरकारका काम नसूलोंका कोटि-निर्माण कर उन्हें शुद्ध नसूलका बनाना है। और चाहे वह भारवाही प्रकारकी हो या दुधारको, उनका दूध बढ़ाना है। अज्ञातकुल इलाकेमें रक्त-मिश्रणका काम सरकारी क्षेत्रोंमें ही होगा। और जबतक कुछ स्पष्ट परिणाम नहीं मिलता तब तक सरकार गाँववालोंको वरण और अच्छी खिलाई आदि अनुभूत उपायोंसे अपने ढोरका सुधार करनेमें मदद करेगी। घटिया गाय-बैलोंका उन्मूलन प्रचारके द्वारा करेगी। (५६७)

५८१. **पुनः संघटन :** सरकार पशुपालन विभागका पुनः संघटन करनेको है। अभी कुछ काम कृषि और कुछ भेटेरिनरी विभाग कर रहे हैं। पशुपालनका स्वतंत्र विभाग हो। इसमें भेटेरिनरी विभाग मिला दिया जाय और पशुपालन कार्य करनेवाले कृषिविभागके कर्मचारी इसी विभागमें दे दिये जायँ। आजका भेटेरिनरी विभाग इस पशुपालन विभागका अंग होवे।

भेटेरिनरी असिस्टेन्ट सरजनों की संख्या बढ़ा देनी चाहिये। अभी जो कर्मचारी हैं उन्हें फिरसे पशु-आहार, प्रजननशास्त्र और गव्य-धन्धेकी शिक्षा दी जाय। अभीके कॉलेज अपने पाठ्यक्रममें पशु-आहार, प्रजननशास्त्र और गव्यधन्धा भी जोड़ें।

पशुपालन-डाइरेक्टरकी नीति काममें लानेके लिये सैकड़ों पशुपालकोंको सिखानेका इन्तजाम होना चाहिये।

पशुपालनके कामके लिये आज इन बातों की विशेष जरूरत है :

(१) पशु आहार (पुष्टि) ;

(२) मौजूद पशुओंके सुधारके लिये संवर्धन और बधिया करना ;

(३) गायोंका दूध बढ़ाना और भैंसकी होड़ रोकना ;

(४) सूई चिकित्सा ( inoculation ) से रोग निवारण ;

(५) पशुपालन विभाग का पहला काम गायकी सँभाल होना चाहिये। घोड़े और घोड़ेकी सर्जरी पर जो जोर लगाया जाता है उसकी जगह गायके आहार (पोषण) पर जोर लगाया जाय ;

(६) आजके भेटेरिनरी असिटेन्ट सरजनका नाम एनीमल हस्बैन्डरी असिस्टेन्ट हो। ये और पशुपालक गाँवका संबन्ध उस विभागके प्रधान व्यवस्थापकसे जोड़ें और उसके द्वारा मुक्तेश्वरकी खोजों से। (५५८, ५६७)

५८२. **पिंजरापोल :** पिंजरापोल और पिंजरापोल गोशालाएँ गोरक्षाकी संस्थायें विशेष रूपसे हैं; और साधारण रूपसे सभी पालतू पशुओंकी। (५६७)

५८३. **गायकी रक्षामें गोरक्षिणी समितियों का स्थान :** गोरक्षिणी समिति की स्थापना पहले पहल तब हुई जब भारतीय संस्कृति मुख्यतः ग्राम समाजों के आधार पर थी। संवर्धक और किसान पशु उत्पादन या दूधके लिये ढोर पालते थे। आमदनीके लिये उनके मालिक उन्हें अच्छी तरह पालते थे। पर दुर्घटना या बुढ़ापेके कारण जब उनसे आमदनी नहीं होती थी उनकी देखभाल भी नहीं होती थी। नतीजा होता था कि, वह कसाईखाने पहुँच जाते थे। पर भावनाको इससे चोट पहुँचती थी इसलिये गोरक्षिणी समितियाँ बनीं। कई गाँवोंके सहयोगसे ऐसे जानवरोंकी सँभाल होती थी। दयालु लोग अपने धर्मादा (धर्मार्थ) कोषसे चन्दा देते थे। किसान भी अपनी उपजमेंसे कुछ दे देते थे। प्रबन्ध महाजनोंके हाथ सौंपा गया।

पर ब्रिटिश राजके पधारनेसे बातें बदल गयी हैं। अब ये संस्थायें समाजकी चीज नहीं रहीं। और ये समितियाँ अब पशुओंकी या उनके मालिकोंकी भलाईकी परवाह नहीं करतीं। हर जगह गोरक्षिणी समितियोंकी दुर्दशा प्रत्यक्ष है।

ये संस्थाएँ गोरक्षाके लिये बहुत कुछ कर सकती हैं। गोसेवा संघने १-२-१९४२ को एक प्रस्ताव पासकर इन्हें कुछ सुझाव दिये हैं। वह प्रस्ताव यों है :

"पिंजरापोल या गोशालाका असली काम बीमार, बूढ़े और कमजोर पशुओंका कष्टके जीवनसे रक्षा करना है। सम्मेलनकी राय है कि, पिंजरापोलोंका प्रबन्ध नीचे लिखे ढंगसे सुधारना जरूरी है :

(१) हर संस्थामें पालन, चिकित्सा और ऐसे दूसरे कामका प्रबन्ध होना चाहिये तथा इसका सुबीता आसपासके गोपालकोंको मिलना चाहिये।

(२) निम्न कोटिके किसी ढोरको संतान पैदा नहीं करने देना चाहिये। अच्छी खिलाई, संवर्धन और प्रबन्धसे ऊँची कोटिकी गायको अधिक दुधार बनाना चाहिये और उनसे अच्छे बैल पैदा करना चाहिये।

(३) हर संस्था अपने यहाँ उच्चकोटिके साँढ़ रखे और आसपासके लोगोंको उनसे काम लेने दे।

(४) हर संस्थाको यथेष्ट गोचर होना चाहिये जहाँ दूसरे संवर्धकोंके बिसुके और छोटे पशु कम खर्च पर पल सकें। यहाँ उच्चकोटिके साँढ़ भी रखे जायँ।

(५) हरा चारा और साइलेज अधिक परिमाणमें पैदा किया और सँभाल कर रखा जाय।

(६) पिंजरापोलके सभी मकान सफाई और स्वास्थ्यके नियमोंके अनुसार बनाये जायँ। कूएँ, सिचाई, घेरा आदिका भी प्रबन्ध ठीक शास्त्रीय रीतिसे हो।

(७) हर संस्था एक ढोर-निपुण रखे। सारा काम इसीके आधीन होवे। यह ढोरके प्रबन्ध, चारेकी खेती और पशुचिकित्सा शास्त्रमें दक्ष हो।"

सरकार और दूसरे लोग गोरक्षाके प्रयासमें पिंजरापोलोंसे सहयोग करें। रक्षा और सुधारके सभी कार्योंमें लोगोंका सहयोग प्राप्त किया जाय। पिंजरापोल अभी जीवदयाका उदार कार्य कर रहे हैं। पर आगे वह गोरक्षाके लिये महत्वका काम भी कर सकते हैं।

# भारतमें गाय

## पहला खंड

## तीसरा भाग

### गायका पोषण

# तीसरा भाग

## गायका पोषण

---

### अध्यायोंकी सूची



---

# अध्याय १६

## आहारका महत्व

५८४. **गाय—पालतू पशु :** जंगली पशु अपनी सहज बुद्धिसे जैसा आहार स्वास्थ्यके लिये चाहिये पसन्द कर लेते हैं। पर पालतू पशुओंको अपनी पसन्दका कम अवसर है। मालिक जो खिलावे गायको वही खाना पड़ता है। परिमाण और गुणकी कमीसे उसे कष्ट हो सकता है। अगर मनुष्य इनकी योग्यतासे सँभाल करे तो यह भी पनपती हैं। यदि परिस्थिति प्रतिकूल हो तो पशु मालिकके लिये बांझ हो जाता है और अन्तमें बिमारी या दुष्पोषणका शिकार हो जाता है। आहार-शास्त्र हमें पालतू पशुओंको सुस्थ रखनेका उपाय बताता है। मनुष्य पशुओंको प्राकृतिक अवस्थासे जितनाही अलग करता है उतनाही झंझट उसे उनकी सँभालके लिये करना पड़ता है।

५८५. **गायके जिम्मे काम :** दुधार गाय और कमाऊ बैल मनुष्यकी बनावटी रचना है। बच्चे जबतक दूसरा भोजन नहीं करते तबतक उन्हें जितना दूध चाहिये उतनाही दूसरे जानवरोंकी तरह गायको भी होता है। जैसे जैसे बच्चा दूसरा भोजन पचाने लगता है, थनका दूध कम होने लगता है।

मनुष्य दुधार गायसे एकदम दूसरा काम लेता है। वह चाहता है कि गाय जादेसे जादे दूध दे। ऐसी हालतमें केवल पूरी चराईसे ही वह बहुत दूध नहीं दे सकती।

५८६. **रूखा और पुष्ट चारा :** जिन गायोंके थनकी सामर्थ्य कई पीढ़ीके संस्कारसे बढ़ाई गयी है, आदमी उनसे दिनमें १० रत्तल दूध लेकर सन्तोष नहीं करेगा। गायके लिये जो सही है वही बैलके लिये भी है। उनसे जितना काम लेना चाहते हैं उतना ही अधिक खिलाना जरूरी है। आदमीने गायपर दूध और

काम ये दो भार लादे हैं। इन दो जरूरतोंकी पूर्तिके लिये जिस आहारकी जरूरत है वह चाहे जितनी चराईसे ही सदा मिल नहीं सकता। क्योंकि उनके पेटकी शक्ति सीमित है। पेटसे अधिक वह नहीं खा सकती। पर यदि उससे दूध या कामके रूपमें अधिक उत्पादन कराना है तो उसे अधिक खिलाना होगा। नहीं तो उससे उतना काम नहीं हो सकता। इस जरूरतको पूरा करनेके लिये उसे पौष्टिक आहार दिया जाता है। इसका थोड़ा अंश बहुत जादे घास-पातका काम कर सकता है। ऐसे पौष्टिक आहार अन्न, दलहन और खली हैं। इन चीजोंको पौष्टिक (concentrates) और घासपातको रूखा (roughages) चारा कहते हैं। रूखे आहारका माने व्यर्थ चीजें नहीं हैं। इसका अर्थ है मोटी चीजें। इनसे पेट भर जाता है और पशुकी कुछ पुष्टि भी हो जाती है।

पौष्टिक चारा वह उपाय है जिससे आदमी गायको अधिक खिला सकता है। इस तरह वह गायकी दूध देने और बैलकी काम करनेकी शक्ति बढ़ाता है। इसके कारण होशियारीके साथ खिलानेकी आदमी की जवाबदेही भी बढ़ी है।

**५८७. खूँटेपर खिलाना :** खूँटेपर घासपात और पौष्टिक चारे मिलाकर खिलाये जाते हैं। चरनेके लिये गायको दूर जाना होता है और ताकत लगानी होती है। बैलोंसे दिनमें काम लिया जाता है और उन्हें चरनेका समय थोड़ा ही मिलता है। यदि वह चारेकी खोजमें दिन बितावें तो कामके लिये समय नहीं मिलेगा। इसलिये आदमीने खूँटेपर खिलानेकी रीति निकाली है। पशुको चारेके लिये गोचर जानेकी जरूरत नहीं, पासही उसे चारा, पुष्टई, पानी और सभी चीजें मिल जाती हैं। गाय आदमीके इस व्यवहारसे चिढ़ी नहीं। इसके बदले उसने आदमीकी इच्छापर अपनेको छोड़ दिया और अपनेको वैसाही बना लिया। मनुष्य गायकी जरूरतें पूरी करता, उसकी सँभाल करता और उसके लिये घर बनाता है। उसके बदले आदमीकी अपनी जरूरतें पूरी होती हैं। इस अन्योन्याश्रय सम्बन्धसे पालतू होनेके पहलेकी अपेक्षा गाय अच्छी हो गयी है और मनुष्यभी अच्छा बना है। (६८१)

**५८८. अच्छे इन्तजामके लिये उचित आहारका ज्ञान :** गाय रखनेवालेका मुख्य कर्त्तव्य उसके उचित आहार, कसरत, पानी, सफाई आदिका प्रबन्ध करना है। ढोर-पालनके सभी विषय इस उचित प्रबन्धके भीतर आजाते हैं। इसमें आहार या पोषणका स्थान सबसे पहला है।

गायको खिलानेके लिये आहार-तत्वका पूरा ज्ञान होना चाहिये। यह कहा जाता है कि, हजारों वर्षसे मनुष्य पोषण-तत्वके शास्त्रीय ज्ञानके बिना भी ढोर पालते आ रहे हैं। सदासे कुछ चारा, खली, दलहन और अन्नके रूपमें कुछ पुष्टई उन्हें दी जा रही है और वह पनपते भी रहे हैं। इसलिये इस विषयके शास्त्रीय ज्ञानमें प्रवेश करनेको क्या जरूरत है? बहुतोंका मत है कि, इस विषयके तात्विक ज्ञानकी जरूरत नहीं है, सिर्फ व्यावहारिक अनुभवही बस है। पर यह सही दृष्टिकोण नहीं है। मनुष्य सृष्टिके आदिसे खा-पीकर अपनेको पालता आ रहा है। पर आहार और स्वास्थ्यकी आवश्यकताओंके बारेमें अधिकसे अधिक ज्ञानकी जरूरत सदा रही है। हमारा ज्ञान बढ़ रहा है। आहार, स्वास्थ्य और आचारिक (सफाई) के बड़े ज्ञानसे हमें लाभ ही पहुँचा है। पालतू पशुओंके लिये भी यही बात है। उनकी आवश्यकताओंके बारेमें हमारा शास्त्रीय ज्ञान जितना जादे होगा उतनाही दोनोंके फायदेका प्रबन्ध हम कर सकेंगे।

जो घास और पुआल हम उन्हें खिलाते हैं वह परिमाणमें पूरा हो सकता है पर गुणमें अपूर्ण भी हो सकता है। यह भूल ढोरकी बढ़तीके लिये हानिकर हो सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य अपने आहार-तत्वके बारेमें भी उदासीन है। यह नहीं होना चाहिये। जिन्हें जानना चाहिये वह भी मनुष्यके आहारके बारेमें जाननेकी अधिक चिन्ता नहीं करते, पशुकी आहारकी ता क्या करेंगे।

५८९. **गोपालनसे लाभ नहीं :** भारतमें पशुओंकी हालत ऐसी कर दी गयी है कि उनसे आर्थिक लाभ नहीं हो रहा है। "रैयत गायमें दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं" इसका अभिप्राय यही है कि गोपालनसे उसे घाटा है। अगर गोपालन घाटेकी चीज है तो हर हालतमें गायका भरोसा करनेवाले राष्ट्रका क्या होगा?

रोग और इलाजकी बात मनुष्य सरलतासे समझता है। रोगसे शीघ्र मुक्त होनेके लिये मनुष्य चिकित्सकोंका आश्रित हो गया है। यही बात पालतू पशुओंके लियेभी लागू है। कुछ गड़बड़ो होनेसे भेटेरिनरी सरजन जहां मिल सके, बुलाया जाता है। यह ठीक भी है। पर इससे कहीं अच्छा यह है कि, आहार-तत्वका ज्ञान प्राप्त किया जाय और अच्छी खिलाई तथा स्वास्थ्यप्रद ढंगसे रख रोग निवारण किया जाय। (२११)

५९०. **हरेकके लिये आहार-तत्वका प्राथमिक ज्ञान :** यह आवश्यक

है कि सभी गोपालक आहार-तत्वका प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करें। अपोषणका कारण कम खिलाना अथवा चारेमें पोषक तत्वोंकी कमी हो सकता है।

जहाँ ढोरोंको यथेष्ट चारा दिया जाता है वहाँ यह देखना चाहिये कि चारेमें आवश्यक पोषक तत्व हैं या नहीं। भारतमें हमारे ढोरोंको खानेकी चीजोंका अभाव है। जो अपर्याप्त भोजन उन्हें मिलता है, बहुतबार वह भी त्रुटिपूर्ण होता है।

५६१. **चारेकी कमी और दुष्पोषण :** चारेकी कमी और दुष्पोषण साथ साथ चल रहे हैं। इनका परिणामभी प्रत्यक्ष है। पिछले अध्यायोंमें भारतकी चारेकी कमीका बखान हो चुका है। यह कमी अब जगजाहिर है। दूसरे देशोंके इस विषयके साहित्यमें इस कमीका हवाला आप पा सकते हैं।

रोमके इन्टरनेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ एग्रिकलचर के मासिक परिपत्र (नं० ४, अप्रैल, १९४०) का नाम "पशु-आहारकी आजकलकी समस्या" है। इसमें चारेका स्वावलम्बन नामका लेख है। इस लेखमें लेखकने भारतमें चारेकी कमीके बारेमें लिखा है। (२१, ३८६-'६१)

५६२. **भारतके चारेकी कमी—४५ सैकड़ा :** "२१ करोड़ ५० लाख ढोर हैं। (खेतीमें १५,५४,९०,४७० टन सूखा चारा * मिलता है), इस आधारपर पता चलता है कि प्रति दिन प्रति ढोर केवल ४·४ रत्तल सूखा चारा मिलता है। पर यदि चोकर, भूसी आदि भी चारे माने जायँ और वह मोटे चारेके साथ खिलाये जायँ तो प्रति दिन प्रति ढोर एक आउन्ससे कुछ ही अधिकको चारेमें वृद्धि होगी। इस हिसाबमें भेड़, बकरी और घोड़ेकी गिनती नहीं है। यदि भारतीय ढोरके देहकी औसत तौल ४०० रत्तल मानी जाय तो उसे ८ रत्तल सूखा सामान (जिसमें पुष्टई भी शामिल है) प्रति दिन चाहिये। कड़ी मेहनत करनेवाले पशुओं और दुधार गायोंको यह और ज्यादा देना होगा। जितनी पुष्टई (खली और बिनौला) और चोकर

---

| | | |
|---|---|---|
| * (क) पुआल (नमी १०%) | १३,५१,९९,०८२ | टन |
| (ख) उसी पुआलमें सूखा सामान | १२,१६,७९,१७४ | " |
| (ग) हरा चारा (नमी ८०%) | १६,९०,५६,४७९ | " |
| (घ) उसी चारेमें सूखा सामान | ३,३८,११,२९६ | " |
| खली और बिनौला (सूखा) | ३८,२९,७४६ | " |

आदि अभी मिल रही है, उसका हिसाब प्रति दिन प्रति ढोर लगभग ०·२ रत्तल होता है। ८ रत्तल सूखा सामान चारेमें रोज मिलना चाहिये, और खेतीसे ४·४ रत्तल ही मिल रहा है। इसलिये इस चीजकी ४५ सैकड़ा कमी है।

"यह स्पष्ट है कि घास और सूखी घास यह कमी पूरी करनेमें सहायक होंगी। घाससे यह ४५ सैकड़ा पूरी हो सकेगी या नहीं, इसके बारेमें ठीकसे नहीं कहा जा सकता। इसमें निश्चय ही और अधिक दे सकनेकी छिपी शक्ति है। इसीलिये घासकी जमीनके सुधार और जंगलोंका और अच्छा उपयोग करनेका इतना महत्व है।" —(इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, मार्च, १९४१)

५६३. **धनी देशोंमें दुष्पोषण :** भारतमें चारेकी कितनी कमी है यह इससे मालूम होता है। प्रति ढोर औसत ८ रत्तल सूखे चारेका प्रबन्ध होना चाहिये। यह पहली बात है, इसके साथ ही चारेके पोषक गुणका भी सवाल है। पर शास्त्रीय ज्ञानमें उन्नत देश जिनके आधीन दूसरे देश हैं, वहां चारेकी कमी नहीं होनी चाहिये। पर वहाँ भी दुष्पोषण और कम खिलाईका झगड़ा है। कमी प्रबन्धकी है। वह शास्त्रीय खोज और उसके परिणाम (सिद्धान्त) के अनुसार हो।

इंगलैन्डमें उत्कृष्ट शास्त्रीय सलाह मिल सकती है। दुनियाँके किसी भागसे पोषक आहार लानेका सुबीता है। लायी चीजोंका दाम देनेकी शक्ति भी है। फिर भी वहाँ दुष्पोषणसे पशुपालन और गव्य-धन्धेकी बड़ी हानि हो रही है। ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशनने अप्रैल, १९३९ में "राष्ट्रीय आहार सम्मेलन" किया था। इसमें रॉयल भेटेरिनरी कॉलेज, लंडनके श्री डबल्यू० सी० मिलरने (Mr. W. C. Miller) यह बात कही थी।

"इस शताब्दीका पहला चरण इतिहासमें शायद इसलिये प्रसिद्ध होगा कि इस कालमें सिर्फ बैक्टीरिया (bacteria) या जीवाणु-शास्त्रके आधारपर रोगका कारण जाननेके लिये अधिक ध्यान दिया गया। इसके बाद साथ साथ मनुष्य पशु और पौधेके रोगका कारण भाइरस (virus) या रोगाणुओंको मान, बड़ी तत्परतासे इसकी खोज शुरू हुई। यह खोज अभी खतम नहीं हुई है। इस अनुसन्धानकालमें ही धीरे धीरे यह साफ हो गया कि रोगके कारणका पूरा उत्तर न तो बैक्टीरिया या जीवाणु हैं और न भाइरस या रोगाणु। कुछ दिनोंतक खनिजोंकी लोकप्रियता

रही है। भिटामिनकी भी प्रसिद्धि है। पर यद्यपि दोनों महत्वके हैं फिरभी इनमेंसे किसीका अभाव रोगका सिर्फ आंशिक कारण है।

"मैं समझता हूँ कि सम्पूर्ण शरीरकी पुष्टिके गहरे अध्ययनके द्वारा साधारण समस्याके हल करनेकी कोशिश हो रही है और आगे भी होती रहेगी। इस नवीन ज्ञानकी प्रगति बहुत हो रही है और यद्यपि आकाश अभी किसी तरह साफ नहीं हुआ है, फिरभी परिस्थितिका और अधिक स्पष्ट ज्ञान हो इसकी राह निकाली जा रही है।..."

**५६४. स्वास्थ्यका अध्ययन—स्वास्थ्यही उद्देश्य :** "स्वास्थ्य ही उद्देश्य है और उसे प्राप्त करने और उसे बनाये रखनेके उपाय तथा विधि उसके लिये पूरक और अत्यावश्यक हैं। इनका अध्ययन अवश्य चलता रहे।..."

"स्पष्ट रूपसे यह कहना जरूरी है कि यदि अपनी खेतीसे पूरा लाभ उठाकर इस देशको प्रगति करनी है तो इसके किसानोंको अबतक उन्होंने अपने पशुधनके स्वास्थ्यकी जितनी चिन्ता की है उससे कहीं जादे करनी होगी।

"प्रति वर्ष मेमने, सुअरके बच्चे और बछड़े बहुत जादे मरते हैं। यदि अच्छे और उचित ढंगसे व्यापकरूपमें पालन और खिलाई हो तो इनमेंसे बहुत बच सकते हैं। गोचरके सुधार, जाड़ेमें पर्याप्त भिटामिन और खनिज देने और बचपनमें अनुपयुक्त भोजन नहीं खिलानेसे यह हानि बहुत रुक सकती है। यह सयाने पशुओंके स्वास्थ्य सुधार, रोगको दबानेकी शक्ति और उनके गुणकी वृद्धिके लिये भी बहुत अच्छा होगा। पालनेकी अधिक स्वाभाविक रीति, छोटे पशुओंसे कम काम लेने, घरके उपजाये ताजा और अच्छे प्रकारके आहारके अधिक खिलानेसे हर जातिके तरुण पशुओंके स्वास्थ्य और शरीरको फायदा होगा। विदेशी अन्नोंके उपजातोंसे बना मिश्रित आहार बन्द करनेसे भी यह फायदा होगा।

**५६५. गलत तरहसे खिलानेके कारण छीजन :** "इसका बहुतसा प्रमाण है कि आजकलकी 'शास्त्रीय खिलाई' से क्षेत्रके पशुओंका स्वास्थ्य छीजता जा रहा है। किसी विशेषका निर्देश करना कठिन है। पर गव्य ठट्ठोंकी बढ़ती हुई वार्षिक हानि (आजकल २५ सैकड़ा से ऊपर), गाय और साँढ़ोंका बढ़ता हुआ बाँझपन, थनका शोथ, पेटकी गड़बड़ी, सभी श्रेणीके पशुधनकी साधारण शरीर गढ़न और स्वास्थ्यमें बाधाएँ और घनी रीतिसे पाले मुर्गीखानेमें मृत्यु, इन बातोंसे आजकी खिलानेकी गलत रीतिका पता चलता है। इसमें सन्देह नहीं कि, इनमेंसे कुछ

संकटोंका कारण विदेशी वनस्पति-प्रोटीन, खासकर गरम देशोंके तेलहनकी खली हो सकती है"...

"पशुओंको गलत और विचारहीन ढंगसे खिलानेसे रोग रोकनेकी शक्तिही कम नहीं होती है, वह मनुष्यका आहार भी कम पोषकगुणवाला पैदा करता है।"

भारतके हमारे किसान सहज ज्ञान और अनुभवसे शास्त्रीय प्रयोगालयकी सहायताके बिना पशुओंकी खिलाई और पोषणके बारेमें बहुत कुछ जानते थे। पर पाश्चात्य शास्त्रोंके आविष्कारके आगे उनके ज्ञान और कार्य-शक्तिकी कुछ कदर नहीं रही। इंगलैन्डमें भी पशु संवर्धनके लिये कृत्रिम उपायोंपर बहुत भरोसा करनेकी प्रतिक्रिया हो रही है। स्वाभाविक रीतिसे पशु-पालन करनेपर जादेसे जादा जोर दिया जा रहा है। ऐसी चीजें हैं जिनकी व्याख्या शास्त्र नहीं कर सकता इसलिये उनकी उपेक्षा की जाती है। आहारका नया ज्ञान उन स्वाभाविक उपायोंको फिरसे अपना रहा है। जिन चीजोंका पहले कोई महत्व नहीं मालूम होता था उनमें अब अधिक गुण और भलाई देख रहे हैं।

५६६. **घास और चराईका महत्व :** इसके बाद श्री मिलरने ढोरोंको दिये जानेवाले चारेकी हीनताका वर्णन किया है। "गोचर-प्रबन्धका आवश्यक ज्ञान—जो किसानोंको होना चाहिये उसका अभाव" इसका कारण है।

"पशु-स्वास्थ्यपर घास और चराईके महत्वको कम समझना असंभव है। घरपर बनावटी खिलाईके किसी उपायसे वह परिणाम नहीं निकल सकता, जिसकी तुलना अच्छी चराईके परिणामसे हो सके। इसका पूरा प्रमाण दिया जा सकता है कि ठीक तरहके प्रबन्धका गोचर ऊँचे दर्जेके पोषक तत्व देनेवाले स्वस्थ और उत्पादक ढोर पैदा करनेके लिये ब्रिटेनके अच्छे प्राकृतिक साधनोंमें एक है।"

गोचरोंको बेहद चराईके लिये योंही नहीं छोड़ना चाहिये। पशु पालकोंको गोचरोंकी "बिमारी"से उनकी रक्षा करनी चाहिये। व्याख्यानमें इस बारेमें जोर दिया गया है कि सच्चे सुधारके लिये सभी शास्त्रवेत्ताओंके सहयोगकी आवश्यकता है।

"इस कामके लिये उद्भिद शास्त्री, उद्भिद प्रजनन शास्त्री, मिट्टी निपुण, किसान, शालिहोत्री (पशु-चिकित्सक) सबका सहयोग चाहिये। पूरी गवेषणाके लिये जितनी रकम चाहिये वह भावी सुधारसे चुकता होजाती है। (३६६, ४२४-'२६, ६८१-'८२)

**५६७. छात्र, भूमि और क्षेत्र-पशुओंका सम्पर्क :** इतनाही नहीं, श्री मिलर अपनी जनताके दृष्टिकोणमें परिवर्त्तन चाहते हैं : "देहाती केन्द्रोंकी तुरत जरूरत है, जिससे कि छात्र, भूमि और पशुमें सम्पर्क हो सके।"

भारतीय पशुचिकित्सकलोगोंने ब्रिटेनकी शिक्षा पायी है जहांके पुराने पशुचिकित्सकके लिये घोड़ा मुख्य पात्र था। इसलिये अपना दृष्टिकोण बदलनेके लिये व्याख्यानके निम्न अंशसे उन्हें प्रबल प्रेरणा मिलनी चाहिये।

"घोड़ों (और अभी हालमें कुत्ते, बिल्लियों) के लिये पक्षपात था। यह बदलना चाहिये। आहार उत्पन्न करनेवाले पशुओंपर अधिक ध्यान देना चाहिये।" (१५, २७, ५७०-'८०)

**५६८. भारतीय चारेके बारेमें जानकारी :** भारतमें गायके आहारकी समस्या एक अलग कठिनाई है। स्वास्थ्य, पोषण और चारेके रासायनिक द्रव्य तथा उनकी सुपचताके बारेमें भारतमें खोज नहीं हुई है। भारतके चारेकी सुपचताकी जाँच अब शुरू की जारही है। कुछ मसाला जमा हुआ है पर अभी बहुत जादेकी जरूरत है। लेकिन जितना भी मालूम हो सका है उसके आधारपर देशके प्रचलित पोषण उपायमें बड़ा परिवर्त्तन किया जा सकता है। भारत, अफ्रिका या दूसरे गरम देशोंमें जो जानकारी मिली है वह भारतमें जहाँ तक लागू हो सकती है उसे काममें लाना चाहिये और दुष्पोषण रोकना चाहिये।

**५६९. पोषणमें थोड़ासा सुधार भी बड़ी भलाई कर सकता है :** पशु-पोषणके महत्वपर जितना जोर दिया जाय कम है। थोड़ा भी इधर उधर सुधार करनेसे उल्लेखनीय परिणाम मिलना संभव है और इससे किसान अपनी परिमित शक्तिके अन्दर सुधार करनेके लिये प्रोत्साहित होगा। ज्ञान और प्रोत्साहनके अभावके कारण ही वह इस विषयमें कुछ कर नहीं रहा है। उसके उत्साहित होनेपर चारेकी हीनताकी साधारण समस्या कुछ हदतक सुलझेगी।

यह बहुत पहले मालूम हो चुका है कि पशु युक्ताहार जितना जादे खायगा उतना ही वह पुष्ट होगा। पर यदि आहार अयुक्त है तो पशु उसे जितना ही खायगा उतना ही कम उसका पोषण होगा। यह युक्त (संतुलित) और अयुक्ताहार पशुकी जरूरतके हिसाबसे है। ऐसे मामलोंमें थोड़ी मात्राके सुधारसे ही बड़ा परिवर्त्तन हो सकता है। चूहे और चूजों (मुर्गीके बच्चों) पर प्रयोग कर यह बात बहुत पहले मालूम हो चुकी है कि मुख्यरूपसे मकाके आहारमें १ सैकड़ा

साधारण नोन (sodium chloride) मिलानेसे उसकी वृद्धिकारक शक्ति ४० से ५० सैकड़ा बढ़ गयी।

# अध्याय १७

## पौधे और पशु

६००. **पौधे पशु-जीवनके आधार हैं :** पशुओंका पोषण पौधोंपर निर्भर है। दोनों साथ साथ पैदा होते हैं। जहाँ कोई पौधा नहीं वहाँ पशु भी नहीं है। ऐसी जगह मरुभूमि है। अगर कोई "मरु" को "मालव" (हराभरा) कर सके, वहाँ पौधोंके उपजनेका प्रबन्ध कर सके तो पशु भी वहाँ अपने आप आ जायेंगे। कुछ ऐसे पशु हैं जो मांस-भोजी हैं। उनका आहार वनस्पतिवर्ग नहीं है। वह दूसरे जानवरोंको खा जाते हैं। पर भक्ष्य पशु वनस्पतिजीवी हैं। इस तरह मांस-भोजी पशु भी अप्रत्यक्षरूपसे पौधोंके ऊपर ही निर्भर हैं। समुद्रतल पर अथाह पानीके नीचे या चाहे जहाँ जाइये पशुको पौधेपर ही निर्भर पाइयेगा। यह आश्चर्यकी बात है कि पशु और पौधेमें जीवनकी क्रियायें एकसी हैं। दोनोंको वृद्धि, विकास और प्रजननके अवयव हैं। प्रजननकी विधि भी एकसी ही है। स्त्रीके डिम्ब और पुरुषके शुक्रके संयोगसे ही नया पौधा तैयार होता है। विभाजन विधिसे भी सृजन, पशु और पौधा, दोनोंमें है। वृद्धि और विकासके अवयवोंमें इन दोनोंमें किसका अधिक विकसित है यह कहना कठिन है। पोषणके मामलेमें पशुओंसे पौधे एक डेग आगे हैं। पशु अपने जीवनके लिये पौधेपर निर्भर हैं। पर पौधे भूमि और सूर्यसे अपना आहार सीधे ही लेते हैं। पशुओंके लिये भी सूर्य किरण जरूरी है पर पौधोंके जितना नहीं। जमीनमें पड़े एक बीजसे पौधा उगता और विकसित होता है। उसी तरह डिम्ब और शुक्रके संयोगसे पशु पैदा होता है। गायके लिये हम हर तरहसे, चाहे वह चारा हो या पुष्टई, पौधेपर ही निर्भर हैं। अंतमें पशु और पौधे दोनोंका शरीर मिट्टीके जिन तत्वोंका बना है उसीमें मिल जाता है।

**६०१. पौधा जलाना :** किसी पौधेमें यदि हम आग लगादें तो वह जलेगा। जलनेपर पौधेकी बहुतसी चीज नष्ट हो गयीसी मालूम होगी। सिर्फ राख बच रहेगी। इतना बड़ा पेड़ कहाँ चला गया ? निस्सन्देह हवामें उड़ गया। जमीनपर राख रह गयी। आगने जलाकर पौधेके सभी तत्वोंको जुदा कर दिया। वायुतत्व वायुमें मिल गया और भूमितत्व भूमिपर रह गया। पौधेकी रचनामें मुख्य रूपसे वायुतत्व लगे हैं। कुछ तत्व भूमिके भी हैं, पर उनका अंश बहुत कम है। जलनेपर पौधेकी केवल राख बच रही है। यह पौधेके भूमितत्वसे बनी वस्तु है। भूमिसे पौधेको पानी भी मिला था पर वह गर्मीसे भाफ बन उड़ गया और अब ओसके रूपमें फिर जमीनमें लौट जायगा। इसपर विश्वास करना कठिन है। फिर भी यह सच है कि लकड़ीकी बनावटमें ८०—९० सैकड़ा वायुतत्व है।

**६०२. पौधेको भूमिका दान :** पौधेकी रचनामें वायु और भूमिका चाहे जिसका जितना हाथ हो पर महत्व दोनोंका बराबर है। हवाके बिना पौधे नहीं उगेंगे और न सूर्य किरणके बिना। उसी तरह भूमिके तत्वोंके बिना भी उसकी देह रचना नहीं हो सकती। पौधोंके जीवित अवयव सूर्यके प्रभावसे हवाको तोड़कर अपना आहार ग्रहण करते हैं। उसी रीतिसे घोलके रूपमें अँधेरी भूमिसे भी अपना आहार खींचते हैं। हवा और धरतीके संयुक्त तत्व और सूर्यकी शक्तिसे पौधा बना है। पौधा जब जलता है तब तापके रूपमें सूर्य शक्ति लौटाता है। पौधेके जलनेकी गर्मी नापकर हम उसमें लगी सूर्य शक्तिकी मात्रा जान सकते हैं। पौधेका पत्ता और उसमेंका हरा पदार्थ "क्लोरोफिल" (chlorophyll) अद्भुत रीतिसे सूर्यकी शक्तिसे हवा पीकर उससे अपनी पुष्टई बनाता है। पौधेकी जड़ भूमिसे जलकी शक्तिसे अपना आहार प्राप्त करती है।

पेड़ कैसे बढ़ता है, यह जाननेके लिये हमें उन चीजोंको जानना होगा जिनसे पेड़ बने हैं।

**६०३. पौधेकी देह "सेलूलोज" (cellulcse) से बनी है :** पौधेकी देह सेलूलोजकी बनी है और सेलूलोज एक तरहका "कार्बोहाइड्रेट" (carbohydrate) है। पेड़की लकड़ी, छाल और पत्तेमें और भी दूसरे पदार्थ हैं, पर मुख्य है कार्बोहाइड्रेट। कार्बोहाइड्रेट कारबन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजनसे बना मिश्रित पदार्थ है। यह पदार्थ अनेक नामोंसे यौगिक रूपमें सदा हमारे

आसपास देखा जा सकता है। ये सर्वव्यापी तत्व कारबन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन हमारे बाहर भीतर सब जगह मौजूद हैं।

६०४. **पौधेका कारबन हवासे आता है :** लकड़ीका कोयला कारबन है। लकड़ीके कोयलेकी अशुद्धि (मैल) उसकी राख है। शुद्ध कारबन जलानेसे राख नहीं रहती। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन हम सरलतासे पानीमें पा सकते हैं। पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजनका बनता है। ये दोनों तत्व स्वतत्र स्थितिमें गैस (gas–वायव्य पदार्थ) हैं। दोनोंके संयोगसे उसका वायवीय रूप बदलकर पानी बन जाता है। ठंढसे पानी जमकर ठोस या बरफ हो जाता है, और ताप या वायुके असरसे वह फिर वाष्प (भाफ) बन जाता है। अगर हम किसी रिकाबी या थालीमें पानी रखें तो वह धीरे धीरे गायब हो जाता है। वह भाफ बन सूख जाता है और हवाके सहारे उड़ जाता है।

६०५. **हवाके ऑक्सीजन, नाइट्रोजन और कारबन :** ऑक्सीजन भी हवाका एक घटक (component) है। हवा नाइट्रोजन और ऑक्सीजनका यौगिक (compouud) है। उसके साथ थोड़ासा कारबन-डाइऑक्साइड (carbon-dioxide) अर्थात् कारबन और ऑक्सीजनका यौगिक भी है। हवा इन्हीं तीन वस्तुओंका मिश्रण है। उन्मुक्त अवस्थामें नाइट्रोजन एक प्रकारका गैस है। कारबन और ऑक्सीजनका मिश्रण, कारबन-डाइऑक्साइड भी एक गैस है। लकड़ी जलानेसे भी यह पैदा होता है।

६०६. **कारबन-डाइऑक्साइडसे लकड़ी :** पौधेमें लकड़ी कहाँसे आती है। इसका भेद हमें मालूम हो गया। हम जानते हैं कि, हवामें कारबन-डाइऑक्साइड है। पत्ता हवाके कारबन-डाइऑक्साइडको सूर्यके प्रभावसे तोड़ना (विश्लेषण करता) है। फिर अपने हरे क्लोरोफिलके द्वारा हवासे कारबन सोखता है, और अपनी जीवन-क्रियाके द्वारा अद्भुत रीतिसे उसे कार्बोहाइड्रेटके रूपमें बदल देता है। कार्बोहाइड्रेट तीन तत्वों (कारबन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन) का बना है। पौधा इन्हें हवा और जलसे लेता है। जल धरतीमें है। इसे पौधा जड़की सहायतासे खींचता है।

पौधेकी देह मुख्य काठकी बनी है। हम जान चुके हैं कि, इस काठका साधक जल और वायु है। (६३१)

६०७. **पौधेमें प्रोटीन :** पौधेकी बनावटमें दूसरी महत्वकी चीज प्रोटीन (protein) है। कारबन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजनके अतिरिक्त इसमें नाइट्रोजन भी है। नाइट्रोजन हवामें होता है। इसमें जड़ता बहुत जादे है। सरलतासे यह दूसरे तत्वोंमें नहीं मिलता। इसे मिलानेके लिये पौधेमें विशेष उपाय हैं। पौधे धरतीसे नाइट्रोजन लेते हैं। वहां यह जीवाणुके द्वारा हवासे जाता है।

कुछ ऐसे पौधे हैं जो हवासे नाइट्रोजनका संग्रह करते हैं और उसे अपनी जड़के द्वारा धरतीमें भी छोड़ते हैं (८५६)। फलीवाले पौधोंमें इस कामकी विशेष योग्यता है। पर केवल फलीवाले पौधे ही यह नहीं करते। दूसरे भी ऐसा करने हैं। धानके पौधेमें यह गुण है। पानीके पौधों (सेवार) में भी है। पौधोंके जीवाणु हवासे नाइट्रोजन लेकर उसे मिट्टीमें स्थिर करते हैं। तब सामान्य पौधे मिट्टीसे उसे अपनी देहमें खींचते हैं, खासकर पत्तेमें प्रोटीनके रूपमें। (६१६-'१७, ६२२, ६५७, ६६६, ७२४, ८४४)

६०८. **विभिन्न प्रोटीन :** पाठक प्रोटीनके कुछ रूपोंसे परिचित होंगे। दूधमें यह है। दूधसे मक्खन निकालकर दुद्धीमें तेजाब (अम्ल, एसिड) डालनेपर दूधका प्रोटीन (छेना) अलग हो जाता है। यह पशु-जन्य प्रोटीन है। दूधके सुखाये हुए प्रोटीनका चूर्ण बाजारमें केजीन (casein) कहा जाता है। बहुतसे धन्धोंमें इसका उपयोग होता है। सोहागेमें गलानेसे यह सरेसकी तरह हो जाता है। यह चीज जोड़ने या साटनेके लिये श्रेष्ठ बस्तु है।

गेहूँके सने हुए आटेको धोनेसे उसका स्टार्च (starch) घुल जाता है। जो चीज बच रहती है, निशास्ता या ग्लूटीन (gluten—लसलसा पदार्थ) है। यह बहुत चिपचिपी होती है और लकड़ी जोड़नेके काम आती है। यह ग्लूटीन पौधेकी प्रोटीन है। पशुका चमड़ा और मांसभी प्रोटीन है। पौधा हवासे कारबन, धरतीसे नाइट्रोजन और जल लेकर प्रोटीन बनाता है।

६०९. **पौधोंमें खनिज :** पौधोंमें कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीनका वर्णन हो चुका है। इसके सिवा एक तीसरी श्रेणीकी चीजें और हैं। इन्हें खनिज कहते हैं। इन खनिजोंके बिना पहले दोनों पदार्थ पौधा शरीरकी रचना नहीं कर सकते। सूक्ष्म मात्रामें इनकी जरूरत होती है। पर पौधेकी बढ़ती और विकासमें इनका जबर्दस्त हाथ है। यह बहुतसे हैं। पर इनमें मुख्य कैलशियम

(calcium—चुनेका तत्व), फॉसफोरस (phosphorus), पोटाश (potassium), सोडियम (sodium) और मैगनीसियम (magnesium) हैं। (७०२, ७१२)

६१०. **पौधोंमें कैलशियम :** धरतीमें दूसरी चीजोंके साथ खनिज भी हैं। इन्हें हम कुछ अधिक जानें। सीप आदि मुख्य रूपसे कैलशियमकी ही बनी हैं। उन्हें जलानेसे चूना बनता है। चूना धरतीमें खड़िया और कंकरके रूपमें भी है। दूसरे खनिजोंकी तरह चूनेका तत्व कैलशियम भी धरतीसे पौधेमें और पौधेसे पशुमें जाता है। पौधे या पशुके मरनेपर वह फिर धरतीमें लौट आता है। पशुओंकी हड्डीमें बहुत जादे कैलशियम है। (६१२, ७०८, ७१४-'२२, ७७४)

६११. **पौधेमें फॉसफोरस, पोटाश और सोडियम :** हवामें फॉसफोरस जल उठता है। जुगनूकी चमक इसीके कारण है। धरतीकी बनावटमें और तत्वोंके साथ यह भी है। कुछ पौधे और घासमें पौटाश जादे हैं। सोडियम भी पेड़का मुख्य घटक है। सोडियमका सबसे परिचित रूप खानेका नमक है। यह वस्तु समुद्र जलमें बहुत जादे है। जमीनमें भी यह है। इसके सिवा दूसरे खनिज भी हैं।

पौधे अपने जीवन-क्रियामें इन तत्वोंका संग्रह करते और उसे अपने शरीरकी रचनामें लगाते हैं। (७१४-'२२)

६१२. **भिटामिन :** दूसरे प्राणदाता पदार्थ भिटामिन हैं। इनकी मात्रा अति सूक्ष्म होती है। पर जीवित शरीरकी रचनामें इनका महत्व बहुत बड़ा है। (६१०, ७०६, ७५०-'६१, ८६२, ८७२-'७४, ११९५)

६१३. **बीज—भावी जीवनके लिये भंडार :** इन चार चीजों (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिन) को पौधेकी पुष्टि और वृद्धिके लिये जरूरी मानना चाहिये। पौधोंकी रचना अपनी वंशवृद्धिके लिये है। वंशवृद्धिका सबसे प्रसिद्ध उपाय बीज है। भावी पौधेके अंकुरके लिये पौधा बीज ही में आवश्यक वस्तु जमाकर देता है। उचित ऋतुमें जब बीजका सम्पर्क नमी, वायु, और धरती की गरमीसे होता है तब वह अंकुरता है। बीजमें जो जीवन तन्द्रामें था वह अब जाग पड़ता है और नये पौधेका रूप लेता है। अंकुर दुर्बल बच्चेकी तरह होते हैं। इसलिये उसके प्रारम्भिक दिनोंके लिये बीजमें आहारका भंडार भर दिया जाता है।

**६१४. बीज स्टार्च (श्वेतसार) देते हैं :** पौधोंको अपनी शरीर रचनाके लिये कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिनकी जरूरत होती है, यह हम जान चुके हैं। नये प्राणीको इनकी जरूरत होगी इसलिये पितर पौधा बीजमें इन्हें जमा करता है। अंकुर इनको काममें लाते और अपनी देह बनाते हैं। जड़ धरतीमें और धड़ हवामें बढ़ वहाँ से पौधेका आहार लेते हैं। यह होने तक अंकुर, बीजके भंडारसे आहार लेकर जड़, धड़ और पत्तोंकी रचना करते हैं। जब जड़, धड़ और पत्ते आहार ग्रहण करने लायक हो जाते हैं तब बीज-भंडारकी जरूरत भी नहीं रहती और वह चुकभी जाता है। इस तरह देखनेपर पता चलता है कि, पूरा पौधा बीजहीमें घनीभूत है।

**६१५. बीजोंका तेल कारबन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजनका यौगिक है :** तेल कारबन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजनका यौगिक है और कार्बोहाइड्रेटकी तरह जलनेवाला है। शिशु-पौधा जबतक अपने तत्वों या कार्बोहाइड्रेटसे तेल बना नहीं सकता उसे तेलकी जरूरत होती है। इसीसे बीजमें तेल होता है। पौधे की विशेष आवश्यकताके कारण कुछ बीजोंमें कुछ पदार्थ बहुत होते हैं। आदमी इसे पहचानते और काममें लाते हैं। जिन बीजोंमें कार्बोहाइड्रेट अधिक होते हैं वह अन्न कहे जाते हैं, जैसे धान, गेहूँ, जौ, बाजरा, मकई और रागी आदि।

**६१६. दलहनोंमें प्रोटीन अधिक होता है :** जिन बीजोंमें प्रोटीन अधिक होता है उन्हें दलहन कहते हैं, जैसे मटर, चना, मूँग, मसूर, माष (उड़द), अरहर आदि। जिन बीजोंमें तेल अधिक होता है उन्हें तेलहन कहते हैं, जैसे सरसों, राई, तिल, तीसी आदि। खनिज और भिटामिन सभी बीजोंमें होते हैं। (६०७)

**६१७. खलीका प्रोटीन :** तेलहन पेरनेसे तेल निकल आता है। जो बच रहता है वह खली है। बीज-कोष और बीजके सभी खनिज तथा प्रोटीन खलीमें होते हैं। प्रोटीन और खनिजोंके कारण खली, पशु और जमीन दोनोंकी अच्छी खुराक है। (६०७)

**६१८. पौधेके भंडार कंद :** पौधेके भंडार केवल बीजही नहीं है। स्टार्च और चीनीके रूपमें कार्बोहाइड्रेट कुछ मूलोंमेंभी रहता है। यह मूलभी पौधोंका भंडार है। पौधेकी देह मुख्यतः सेल्लोजकी है जो कार्बोहाइड्रेटका ही एक रूप है। प्रोटीनका भंडार पत्तोंमें रहता है। बीजका भंडार जितना पूरा

इस हिसाबसे ये भंडार अधूरे हैं। बीजमें जीवनकी उपयोगी सामग्री उचित में रहती है। कुछ पौधोंके कंदोंमें स्टार्च (श्वेतसार) के रूपमें बड़ी मात्रामें इड्रेट होता है। इसे पशु और मनुष्य दोनों खाते हैं।

६१६. **गायकी पोषक प्रणाली :** पौधेके बारेमें हमने कुछ जान लिया। अब गायकी पाचन प्रणाली (पाचनयन्त्र) और उसकी पोषण सामग्री पर भी कुछ विचार हो।

पौधे ; वायु, सूर्यकिरण और भूमिसे कार्बोहाइड्रेट, स्नेह (fats), प्रोटीन और आवश्यक भिटामिन ले सकते हैं। पशु इस तरह नहीं कर सकते। गायकी तरहके रोमंथ (पागुर) करनेवाले पशुओंका पेट ऐसा होता है कि, बड़ी मात्रामें वनस्पति पचा सकते हैं। इनका मुख्य पोषण वनस्पतियोंसे ही होता है। पौधे जो कर सकते हैं गाय वह नहीं कर सकती। गाय आकाशका कारबन नहीं ले सकती। वह थोड़ी सी मिट्टी खाकर पानीके सहारे उससे कार्बोहाइड्रेट नहीं बना सकती। उसकी देहकी ऐसी बनावट नहीं है। गाय घास-पात और पेड़-पौधे पचा सकती है। प्राकृतिक अवस्थामें वह इसीपर गुजारा करती है, अर्थात् घास-पात, पेड़-पौधेके कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिन से ही उसका निर्वाह है।

पागुर करनेवाली गाय जो कर सकती है, घोड़ा नहीं कर सकता। उसका पेट दूसरी तरह बना होता है। घोड़ाभी कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिन पौधेसे ही पाता है। पौधोंकी तरह घोड़ा इनका संश्लेषण या निर्माण उन तत्वोंसे नहीं कर सकता। पर घोड़ा तो वहभी नहीं कर सकता जो गाय कर सकती है। गायकी तरह वह सारी घास और वनस्पति नहीं पचा सकता। गायके इतनी घास आदि घोड़ेका पेट नहीं पचा सकता। घोड़ेका पेट छोटा और दूसरी तरह बना होता है। घोड़ेको गायकी अपेक्षा अधिक पुष्टई और कम घास-पात चाहिये।

जो घोड़ा कर सकता है वह भी बिल्ली, कुत्ते नहीं कर सकते। उनका पेट और छोटा है, इसलिये उन्हें और अधिक पुष्टई चाहिये। आदमी मांसभोजी और वनस्पतिभोजीके बीचमें है। मनुष्यका पेट कुत्ता-बिल्लीसे अधिक वनस्पति पचा सकता है, पर गाय, घोड़ाके इतना नहीं। मनुष्यको फल, तरकारीके रूपमें कुछ वनस्पति चाहिये और अन्न, दाल आदिके रूपमें अधिकांश पुष्टई :-

**६२०. आवश्यक आहार-तत्व : पशु और पौधेके एकही हैं :** पौधा, गाय, घोड़ा, बिल्ली, मनुष्य चाहे कोई हो, सबके लिये कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिन ये चारों चीजें जरूरी हैं। मांसभोजीको प्रोटीन सबसे जादे चाहिये। प्रोटीनसे वह वही काम लेते हैं जो मनुष्य या गाय अन्न या घास से लेते हैं। प्रोटीन इनमें भी है।

**६२१. हड्डी और लकड़ीकी सजीव बनावट :** गाय कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिन घास और दूसरे चारोंसे लेती है और उन्हें अपने शरीरमें लगाती है। गाय अपने पोषणके सभी पदार्थ पौधेसे ही लेती है। फिरभी उसके और पौधेकी पोषणकी आवश्यकताओंमें भेद है। वृक्ष-शरीर मुख्य रूपसे कार्बोहाइड्रेट है। उसका ढाँचा काठ या सेल्लूलोजका है—यह कार्बोहाइड्रेटका एक रूप है। वृक्ष-शरीरका आधार काठ है। उसी तरह पशु शरीरका हड्डी। काठके ढाँचेके ऊपर छाल और पत्ते हैं। इनमें कुछ प्रोटीन होती है, पर इनमें भी मुख्यरूपसे कार्बोहाइड्रेट ही है। गायकी हड्डीमें खनिज होते हैं और चमड़ा और मांसमें मुख्यरूपसे प्रोटीन। इनमें भी काफी खनिज पदार्थ होते हैं। इस तरह जहाँ पेड़की बनावटमें अधिकांश कार्बोहाइड्रेट और साथ साथ कुछ खनिज और प्रोटीन हैं, वहाँ पशुकी रचना हड्डी या खनिजों और प्रोटीनोंकी है। हड्डी मुख्यरूपसे खनिज, कैलशियम और फॉस्फोरस से बनी है। हड्डीकी पोलमें प्रोटीन होता है। पर इस पोलके प्रोटीनके अलावा, हड्डी पूरी तौरपर कैलशियम और फॉस्फोरसकी बनी है। हड्डी जलनेके बाद जो राख बचती है वह प्रायः शुद्ध कैलशियम फॉस्फेट (calcium phosphate) है। यह कैलशियम और फॉस्फेटका यौगिक है।

**६२२. हड्डीमें खनिज और प्रोटीन अधिक हैं :** इससे साफ है कि पशुकी बनावटमें खनिज और प्रोटीन अधिक हैं। कार्बोहाइड्रेट पौधेके लेखे पशुमें कम महत्वकी चीज है।

इसलिये अपनी देहके लिये वनस्पतिके घटकोंसे गायको अपनी जरूरतके अनुसार चीजें चुननी होती हैं। पौधोंमें उनका जो अनुपात है उससे भिन्न अनुपातमें गाय उन्हें काममें लाती है। गायकी शरीर रचनाके लिये जितने कार्बोहाइड्रेटकी जरूरत है वह उतनेसे बहुत जादे वनस्पतियोंमें होता है। (६०७)

**६२३. गाय कार्बोहाइड्रेटका क्या करती है ?** पौधेके इस अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेटका गाय क्या करती है ? गायका मुख्य आहार वनस्पति है। इसमें कार्बोहाइड्रेट अधिक और खनिज तथा प्रोटीन कम हैं। ऐसी चीजसे उसे खनिज और प्रोटीनप्रधान शरीरकी रचना करनी है। प्रकृतिने गायका भोजन वनस्पति क्यों बनाया ? अपने मुख्य आवश्यक प्रोटीन और खनिजकी खोजमें उसे अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट खा जाना पड़ता है। इसे वह अपने शरीरसे कैसे निकालती है।

हमें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। प्रकृति अपने उद्देश्यके लिये जो काम करती है उसमें त्रुटि नहीं होती। हमें उसके तरीकोंका प्रयोजन और मतलब खोजना चाहिये। हम देखेंगे कि गायकी जीवनक्रियामें कार्बोहाइड्रेटको बड़ी जरूरत है। यह दूसरी बात है कि, उसकी देहके लिये वह थोड़ा ही चाहिये। (६५८, ६८३)

**६२४. गायको अपना आहार खोजना होता है :** हमें गाय और पौधेका काम देखना चाहिये। पौधेके लिये जीवनका उद्देश्य एक ही स्थानपर खड़े खड़े अपनी देह बनाना और प्रजोत्पादन करना है। इसी कामके लिये अपना आहार खोजनेमें गायको घूमना फिरना होता है। इसीलिये अपना आहार खोजनेके कामका यह भेद प्रकृतिने उसपर लाद दिया है।

**६२५. पौधा अपनी जड़ जमीनमें जमाता है :** पौधा एकही जगह खड़ा होकर अपनी सब जरूरतें पूरी कर लेता है। वह एक स्थान पर अपनी जड़ जमा, खड़ा रहता है। जड़ोंकी शाखायें जमीनमें फैलती और चारों तरफकी धरतीसे अपना आहार नाइट्रोजन और खनिज दोनों घोलके रूपमें जमा करती हैं। धड़ ऊपर बढ़ता है। उसमेंसे डालियाँ और पत्ते निकलते हैं। पत्ते हवाके कार्बोहाइड्रेटको बदलकर पौधेका कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं। ऊपर और नीचे पौधोंकी चारो तरफ आहार हैं। पौधेको उसकी खोजमें जाना नहीं होता। हवाका काम है कि वह पौधेको अपने कारबन-डाइऑक्साइडसे कारबनकी मात्रा दे। हवा बहती है और पौधे अपने पत्तोंके द्वारा ताजी हवाका उपयोग करते हैं। हवा पत्तोंके पास रात दिन बहती रहती है। पत्ता हवामें डूबा रहता है। पौधेके लिये आहार सस्ता है। जड़को कम मेहनत होती है। उन्हें सदा नयी सतहसे अपना आहार चूसनेके लिये केवल फैलना पड़ता है।

६२६. **चलफिरकर गाय अपनी शक्ति व्यय करती है :** पौधेमें गति नहीं है। गाय और उसमें यह बड़ा भेद है। पौधा चुपचाप खड़ाखड़ा अपना पालन पोषण कर लेता है, पर गायको पेट भरनेके लिये मैदानमें घूमकर चरना होता है। पेड़के मुकाबले गायमें गति अतिरिक्त वस्तु है। चलने फिरनेका अर्थ शक्तिका व्यय है। शक्तिव्यय कर गाय खाये हुए पौधेके अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेटका अच्छा उपयोग कर लेती है।

६२७. **शक्ति निर्माण और आहार :** शक्ति और उसके साधन कार्बोहाइड्रेट-आहारका संबन्ध जाननेके लिये यह जानना होगा कि कार्बोहाइड्रेटसे वह शक्ति कैसे बनती है। पौधा गायको खनिजकी अपेक्षा कार्बोहाइड्रेट अधिक देता है। गाय सब कार्बोहाइड्रेट काममें ले आती है। यह हम देख चुके हैं कि गायको चरनेके लिये जो चलना पड़ना है उसके लिये कार्बोहाइड्रेट जरूरी है। थोड़ी देरके लिये हम पौधेको भूल जायँ और गायको कार्बोहाइड्रेटसे शक्ति बनानेवाली मशीन मान विचार करें।

६२८. **देहके भीतर कार्बोहाइड्रेटका जलना :** गाय अपने आहारमें कार्बोहाइड्रेट खाती है। यह उसके शरीर रचनाके काममें नहीं आ सकता। क्योंकि उसके शरीर रचनामें उतना कार्बोहाइड्रेट नहीं है जितना खनिज और प्रोटीन। कार्बोहाइड्रेट खाकर गाय उसे अपनी देहके भीतर जलाती है। पौधेमें कार्बोहाइड्रेटका पता लगाते लगाते हम हवा तक आते हैं। हवामें कारबन-डाइऑक्साइड गैस होती है। पेड़ कारबन-डाइऑक्साइडसे कारबन लेकर ऑक्सीजन हवामें छोड़ देता है। पशु शरीरमें इसका उल्टा होता है। पशु कार्बोहाइड्रेट खाता है। उसका कारबन हवाके आक्सीजन के साथ देहके भीतर मिल जाता है। इससे कारबन-डाइऑक्साइड पैदा होती है। पशु साँसके साथ देहमें हवा खींचता है। देहके भीतर हवाकी आक्सीजन कार्बोहाइड्रेटके कारबनसे मिलती है। ली हुई साँसमें (श्वास) शुद्ध हवा है, और छोड़ी हुई साँस (प्रश्वास) कारबन-डाइऑक्साइड से भरी हुई है। वह हवा ही है। पत्ता कारबन-डाइऑक्साइडका कारबन सोख लेता है और जो हवा उल्टी साँसमें छोड़ता है उसमें कारबन-डाइऑक्साइड कम और ऑक्सीजन जादे रहता है। इसी कारबनसे पौधेका कार्बोहाइड्रेट बनता है।

६२९. **हवामें कारबनका संतुलन :** पौधेके कार्बोहाइड्रेटकी रचनाके

लिये हवासे जो कारबन लिया गया था उसे लौटानेकी बारी अब आती है। पशु कार्बोहाइड्रेटको ऑक्सीजनकी सहायता से अपनी देहके भीतर जलाते हैं। उससे कारबन-डाइऑक्साइड पैदा होती है। अपनी उल्टी साँसमें यह कारबन-डाइऑक्साइड वह हवाको लौटा देते हैं। हवामें कारबन पशु और पौधेके चक्करसे लौटता है। पौधे हवासे कुछ ले लेते हैं। पशु उन पौधोंको खा कुछ हवा को लौटा देते हैं। इस तरह हवामें सन्तुलन बना रहता है। पौधोंमें जमा कारबन केवल इसी रीतिसे ठिकाने नहीं लगता अर्थात् हवामें लौट नहीं जाता। सभी वनस्पतियाँ पशुओंके पेटमें नहीं जातीं। पर जब कभी पौधा सड़ता है तब भी वही काम होता है जो पशुके पेटमें होता है। इस तरह भी कारबन-डाइऑक्साइड हवामें वापस लौटता है।

६३०. **कारबनका गीला जलना :** गायके शरीरमें साँस लेने और पचनेकी जो क्रिया रात दिन चल रही है उसे जलना कह सकते हैं। यह गीली जलाई है। पर अंतिम परिणाम वही है जो हवामें सूखी जलाईका होता है। लकड़ी का कोई टुकड़ा जलाने पर गर्मी पैदा होती है और कारबन-डाइऑक्साइड भी पैदा होकर हवामें उड़ जाती है। गायके शरीरमें कारबन जलना है। जब कभी कारबन (कार्बोहाइड्रेट या चर्बीके रूपमें) जलता है तो कारबन-डाइऑक्साइड और गरमी पैदा होती है। गायके भीतर कारबन-डाइऑक्साइड पैदा होती और साँसके साथ बाहर निकलती है, यह सिद्ध किया जा सकता है। आदमी या गायकी उल्टी साँसमें कारबन-डाइऑक्साइड निकलती है। यह जलनेसे पैदा होती है।

६३१. **साँसमें निकले कारबन-डाइऑक्साइडकी जाँच :** पानीमें चूना घोलकर यदि हिलाओ और रख दो तो थोड़ी देरमें साफ पानी ऊपर निथर आवेगा और चूना नीचे बैठ जायगा। यह साफ पानी चूनेका पानी कहा जाता है। चूनेके पानीमें कारबन-डाइऑक्साइड सोखने और उससे कैलशियम कार्बोनेट (calcium carbonate) या खड़िया बनानेकी शक्ति होती है। चूनेका साफ पानी यदि दूसरे बरतनमें ढाल लिया जाय और उसपर साँस फेंकी जाय तो उस साफ पानीका रंग दुधिया हो जायगा। यह छोड़ी साँसके कारबन-डाइऑक्साइड सोखनेके कारण हुआ। हम जानते हैं कि हवामें कुछ थोड़ी कारबन-डाइऑक्साइड है। खुली हवामें चूनेका पानी रखकर यह भी जाना जा सकता है कि हवामें

कारबन-डाइऑक्साइड है। थोड़ी देरके बाद साफ पानीके ऊपर एक पपड़ी सी पड़ जायगी। यह पपड़ी आसानीसे टूट तलेमें बैठ जायगी। यही पपड़ी कैलशियम कार्बोनेट या खड़ी है जो हवाके कारबन-डाइऑक्साइड और चूनेके पानीके योगसे बनी है। (६०६)

**६३२. जलनेसे कारबन-डाइऑक्साइड और गरमी पैदा होती हैं :** हवाके योगसे कारबन जलनेपर केवल कारबन-डाइऑक्साइड नहीं पैदा होती है, गरमी भी पैदा होती है। जले कारबनके अनुपातके अनुसार ही गरमी होती है। कितनी गरमी पैदा हुई यह सही सही जाना जा सकता है। कारबन चाहे पेटके अन्दर जले चाहे बाहरी हवामें, उसकी मात्राके अनुरूप गरमी एक जैसी होगी। कारबन नापकर उसकी गरमी नापी जा सकती है। कारबन चाहे देहके भीतर जले या बाहर, गरमी बराबर पैदा होती है यह निश्चित हो चुका है।

हम चुल्हेमें कोयलेके रूपमें या तेल (जिसे हाइड्रोकारबन hydrocarbon कहते हैं) के रूपमें कारबन जला सकते हैं। परिणाम दोनोंका एक ही है—कारबन-डाइऑक्साइड बनना और गरमी पैदा होना।

**६३३. दहन या जलनेकी गरमी** (Heat of combustion): इस गरमीसे पानी उबाला जा सकता है या कोई चीज गरम की जा सकती है। मनुष्य उचित यंत्रके द्वारा इस गरमीसे कोई काम ले सकते हैं। गरमी एक तरहकी शक्ति है। इस तापशक्तिको कामके रूपमें बदल सकते हैं। भाफके (स्टीम) या तेलके इंजनमें यही होता भी है। भाफके इंजनमें एक बायलर या "बैल्ट" (boiler—जिसमें पानी उबलता है) लगा रहता है। जलते कोयले या लकड़ीकी गरमीसे पानी गरम करते और भाफ तैयार करते हैं। भाफ इंजनको ढकेलती है। इंजनके चक्के या डंडे (पिस्टन-piston) को चलानेमें भाफकी गरमी लग जाती है और वह ठंढी हो कर पानी बन जाती है। इंजन तापशक्तिको कार्य या गतिमें बदलता है। भाफकी प्रेरणासे इंजन चलता है। गतिका मूल कारण ताप ही है। उसी तरह तेलके इंजनमें तेल जलता है और पैदा हुआ ताप पिस्टन और चक्केकी गतिसे काममें बदल जाता है। यहाँ भी तेलमें संचित तापशक्ति उन्मुक्त हो काममें रूपान्तरित हो जाती है। तेल या भाफ दोनोंके इंजनमें यदि उसमें बने कारबन-डाइऑक्साइडका हिसाब रखा जाय तो कितना कोयला आदि जला इसका पता चल सकता है। उसी तरह जले कारबनके हिसाबसे कितनी कारबन-डाइऑक्साइड बनी

यह मालूम हो सकता है। कारबन-डाइऑक्साइड और तापकी मात्रा निकाली जा सकती है, क्योंकि अनुपात स्थिर है।

**६३४. जलनेकी गरमीसे काम लेना :** गाय जब अपने शरीरमें कारबन जलाती है तब वह भी इंजनकी तरह निश्चित परिमाणमें ताप और कारबन-डाइऑक्साइड पैदा करती है। उस तापका वह उपयोग करती है। उससे वह अपनी देह गरम रखती है। उसकी देहके भीतर बाहर जो जीवन-क्रिया चल रही या देहसे वह जो काम ले रही है इन सबमें भी वह ताप काम आता है। पेटमें जब पाचक यंत्र संचालित होते हैं तो कुछ काम होता है। चारेके जलनेसे पैदा हुई गरमीसे यह सम्पन्न होता है। साँस लेनेमें वह हवा भीतर लेती है तब छाती फूलती है। फिर छाती सिकुड़ती है तब हवा बाहर निकल जाती है। यह सब भी काम ही है। गाय सिर हिलाती, पूँछ डुलाती अथवा चलती है। यह सब काम वह खायी घासके कारबन जलनेके तापके बलपर करती है।

**६३५. वनस्पतिसे गायकी शरीर रचना होती और वह काम करती है :** अब हमें पता चल गया कि गाय वनस्पतिके साथ जो कार्बोहाइड्रेट खा जाती वह उसकी शरीररचनामें नहीं लगता तो उसका होता क्या है? अब हम समझ गये कि, खायी वनस्पतिसे गाय अपनी शरीररचना भी करती है और चबाना, पचाना आदि भीतरी क्रिया तथा चलना आदि बाहरी क्रिया इसीकी बदौलत करती है।

**६३६. पोषण (आहार) के सिद्धान्तोंका सारसंग्रह :** पशु और पौधेके जीवनका विश्लेषण करनेपर हम नीचे लिखे निर्णय पर आते हैं :

(१) पौधे, धरती और वायुमंडलसे मौलिक पदार्थोंको लेकर उनसे अपने भीतर कार्बोहाइड्रेट, स्नेह (चर्बी), प्रोटीन, खनिजों और भिटामिनोंका संश्लेषण कर शरीर-पदार्थमें परिणत करते हैं।

(२) कार्बोहाइड्रेट और स्नेह मुख्यरूपसे हवासे बनते हैं। लकड़ीकी बनावटमें अधिकांश यही होते हैं।

(३) पौधे धरतीके नाइट्रोजनसे प्रोटीन बनाते हैं। यह नाइट्रोजन पौधेके द्वारा फिर धरतीमें चला जाता है।

(४) पौधेके शरीरमें जो पदार्थ हैं उनमें खनिजोंका भी योग है। यह जमीनसे भी मिलते हैं।

(५) गाय, पौधेके कार्बोहाइड्रेट, स्नेह, प्रोटीन और खनिज खाती है और उन्हें अपने शरीरमें लगाती है। अपनी शरीररचनाके लिये उसे बहुत कम कार्बोहाइड्रेटकी जरूरत होती है। खाये हुए कार्बोहाइड्रेटका अधिकांश, पाचन आदि भीतरी क्रिया और चलना, काम करना आदि बाहरी क्रियाके काममें आता है, अर्थात् इन क्रियाओंके लिये ताप और शक्ति देता है।

इसके बाद हम गायके निर्वाहकी आवश्यक वस्तुओं और आहार या पोषणके चार आधार, कार्बोहाइड्रेट और स्नेह, प्रोटीन, खनिज और भिटामिनका विचार करेंगे।

# अध्याय १८

## आहारका रूपान्तर

६३७. पिछले अध्यायमें कहा गया है कि पौधा अपने भीतर कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिनका संश्लेषण करता है। इन चीजोंको गाय पौधे खाकर पाती है। पोषक पदार्थोंके ये ही चार आधार हैं।

ये सामान जिस रूपमें पौधेमें होते हैं, गाय उसी रूपमें इनसे काम लेती है, यह नहीं मानना चाहिये। गायके शरीरमें भी ये सभी पोषक पदार्थ हैं, फिरभी पौधेसे भिन्न हैं। पशुशरीरमें कार्बोहाइड्रेट दूसरे रूपमें है और उसकी मात्रा नगण्य है। इसका उल्टा पौधेमें इसीकी प्रधानता है। पशु, प्रोटीन पौधेसे लेता है और उससे नया प्रोटीन तैयार करता है। यह पशु शरीरमें मांस, स्नायु या दूधके रूपमें पाया जाता है। पशु-प्रोटीन पौधा-प्रोटीनसे भिन्न है। प्रोटीन और दूसरे पदार्थोंमें खनिज ओतप्रोत रहते हैं। गाय पौधोंसे कच्चा माल लेकर उससे अपने शरीरके पदार्थ बनाती है। आहारकी इस पुनर्रचनाका नाम अंगरेजीमें "मेटाबोलिज्म" (metabolism—प्रसादपाक) है। मेटाबोलिज्म अनेकविध कार्य करता है।

उपयुक्त आहारसे इस क्रियाके द्वारा अद्भुत् काम होते हैं और मिश्रित पदार्थ बनते हैं जिनसे शरीरकी रचना, मरम्मत और भीतरी और बाहरी क्रियायें सम्पन्न होती हैं।

६३८. **वनस्पतियाँ गायकी देह बनाती हैं :** गायकी देहमें हाड़, चाम, रोवाँ (लोम) और खुर, भीतरी अंगोंके पाचन और रक्तसंचारके यंत्र, स्नायु या नाड़ी तंत्र, मलोत्सर्जन तंत्र आदि हैं। उसे जो घास या दूसरे आहार दिये जाते हैं, उन्हींसे यह सब बनते हैं। पर यह (क) रचना कार्य उसके नियत कार्योंका सिर्फ एक हिस्सा है। रचना जन्मसे जवान होनेतक होती है। इसके बाद, स्वाभाविक, पूर्ण विकशित, स्वस्थ्य शरीरकी वास्तविक रचना रुक जाती है। पर रचनाके साथ (ख) मरम्मतका काम चलता रहता है। रोजके कामसे देहके पदार्थ जीर्ण होते हैं। जितना अंश जीर्ण और क्षय होता और बाहर निकल जाता है उतनेकी मरम्मत और पूर्त्ति शरीरको दुरुस्त और काम करने लायक बनाये रखनेके लिये बराबर जारी रहनी चाहिये। इसलिये (क) रचना और (ख) मरम्मतका काम साथ साथ होता रहता है।

६३९. **भीतरी और बाहरी काम आहारसे होते हैं :** शरीर रचनाके लिये भीतरी अवयवोंको काम करना होता है। साँस लेने, रक्तसंचार, पाचन और विसर्ग (मल निष्काशन) की इन्द्रियाँ काम करती रहें इसलिये उचित रूपमें (ग) शक्ति पैदाकरने की जरूरत है।

जीनेके लिये पशुको कुछ बाहरी काम करना होता है। इसके लिये (घ) आहारसे शक्ति पैदा करनी होती है। बढ़ने और अच्छी तरह काम करनेके लिये येही चार (क) (ख) (ग) (घ) क्रियायें पशुको आहारके द्वारा करनी होती हैं।

६४०. **खूनका जलना :** चार कामोंमेंसे (ग) और (घ) शक्तियाँ हैं। ये शक्तियाँ आहारसे मिलती हैं। एकतो आहारके प्रसादपाक (मेटाबोलिज्म) से और दूसरी इस तरह रूपान्तरित आहारके जलनेसे। पशुओंके पास जलानेका एकही उपाय है। यदि हमारे पास किरासनका स्टोभ है तो उसमें हम कोयला नहीं जला सकते। तापकी जरूरत होनेपर हमें स्टोभमें किरासन भरना होगा। पशुओंमें जलनेकी अन्तिम चीज खून है। जलनेके लिये उसे रक्त प्रणालीमें जाना पड़ता है। वहीं यह जलता है। इससे रक्तमें और भी दूषित पदार्थ हो जाते हैं। इनमें एक कारबन-डाइऑक्साइड है। वह जलनेवाली चीज यदि बाहर जलायी जाय तौभी उससे कारबन-डाइऑक्साइड बनती है। खूनमें उस रद्दी सामानको सोख लेनेकी

शक्ति है। वह इसे सोख फेफड़ेमें पहुँचाता है। फेफड़ा इस (कारबन-डाइऑक्साइड) को प्रश्वासके साथ बाहर निकाल देता है। साँसकी हवाके ऑक्सीजनसे खून फिर ताजा हो जाता है। इस पुस्तकके दूसरे खंडके पाँचवें भागमें गायकी शरीररचनाके सिलसिलेमें यह क्रिया विस्तारसे समझायी गयी है। शक्ति उत्पादनके लिये हुई जलाईमें कारबन-डाइऑक्साइडके साथ और दूषित चीजेंभी बनती हैं। यह सब मल, मूत्र और पसीनेके रूपमें अंत्र, मूत्रग्रन्थि (वृक्क) और चमड़ेके द्वारा बाहर निकाल दी जाती हैं।

६४१. **खून शरीरकी रचना और मरम्मत करता है :** (क) और (ख) अर्थात् शरीर रचना और मरम्मतके लिये जरूरी समान भी खूनमें बहना चाहिये। आहार सामग्रीका खूनमें बहना सूक्ष्म काम है। खूनकी अपनी मर्यादा है। काम ठीक तरहसे होनेके लिये खून अपनी मर्यादामें रहे यह जरूरी है। यदि कोई बाहरी चीज खूनमें मिल जाती है तब वह ठीक काम नहीं करता और दुष्पोषण, रोग या कोई आपत्ति इसके कारण आती है। गाय घास खाती और पागुर करती है, उस समय उसका रक्त ठीक काम करता रहता है। मुँहसे जो चारा पेटमें जाता है वह पचता है और फिर उसका उपयोगी अंश रक्तमें पहुँचता है। इससे वह रक्त तर और ताजा बना रहता है।

हम पहले (ग) और (घ) काम और शक्तिके विषयपर विचार करेंगे, उसके बाद (क) और (ख) अर्थात् रचना और मरम्मतपर।

६४२. **खूनकी चीनीका जलना :** जब कोई काम होता है, खून जलता है। खूनमें परिमित परिमाणमें चीनी होती है। चीनी घुलने लायक कार्बोहाइड्रेट है। भिन्न भिन्न रूपके खाये कार्बोहाइड्रेट से यह बनती है। गायको अन्न, दाल, खली, पत्ता या कंदमूलके रूपमें कार्बोहाइड्रेट मिल सकते हैं। प्रसादपाक (मेटाबोलिज्म) के जरिये रूपान्तर होनेपर ये सब खूनमें मिल जाते हैं। कार्बोहाइड्रेटका कुछ अंश यकृतमें जमा रहता है। काम करनेसे खूनकी चीनी जैसे जैसे चुकती जाती है, यकृत थोड़ी थोड़ी देकर वह कमी पूरी करता है।

कार्बोहाइड्रेट जमा करनेकी यकृतकी शक्ति सीमित है। किसी जरूरी समयके लिये शरीरको चीनीका संग्रह रखना जरूरी है। इस संग्रहके मामलेमें पशु-शरीर कुछ अंशमें पौधेकी तरह ही है। शरीरमें कार्बोहाइड्रेटका साधारण भंडार यकृत ही है। पर जरूरतके लिये यह काफी नहीं है। इसलिये संग्रहके दूसरे ढंगभी हैं।

इसके लिये पशु कार्बोहाइड्रेटकी चर्बी (मेद) बना उसे देहके विभिन्न भागोंमें जमा करता है। खासकर चमड़ेके नीचे उसीका अस्तर सा होता है। संकटके समय यदि यकृतकी चीनी चुक जाती है तो यही चर्बी काम देती है। कार्बोहाइड्रेटकी तरह चर्बीमें भी कारबन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन होते हैं। चर्बी पशुशरीरमें कार्बोहाइड्रेटसे ही बनती है।

गायके शरीरको कुछ चर्बीभी चाहिये। यह उसे खिलानी होती है। यदि उसे अन्न और खलीसे कुछ चर्बी मिल जाय तो वह अच्छी रहती है। अन्नके अंकुरमें अच्छी मात्रामें स्नेह (चर्बी) होता है। यह देखा गया है कि थोड़ासा भी तेल या खली देनेसे उसकी जरूरत बहुत अच्छी तरह पूरी हो जाती है। हम साधारण तौरपर कार्बोहाइड्रेटको ही शक्तिका साधक मानते हैं। पर प्रोटीनभी जलता है। यदि तापकी जरूरत हुई और कार्बोहाइड्रेटका अभाव है तो शरीर प्रोटीनसे ही काम लेता है। प्रोटीनके जलनेसे शरीर खिन्न होता और तौल घटती है।

प्रोटीन तैयार करना शरीरको अपेक्षाकृत मँहगा पड़ता है। इसलिये देहके प्रोटीनका जलने देना गलत है। पर जरूरत पड़नेपर इसके लियेभी लाचारी होती है। साधारण समयमें भी यह मँहगा पदार्थ जल जाता है। जितने प्रोटीनकी जरूरत है, उससे जादे खिला दिया जाय तो वह कार्बोहाइड्रेटकी तरह जलता है। इस तरह प्रोटीन जलनेसे शरीरके भीतरी अवयवोंपर भार पड़ता है। इससे मामूली से जादे मलमूत्र पैदा होता है जिसके कारण वृक्कको (गुर्दा) कठिन मेहनत करनी पड़ती है।

६४३. **भीतरी और बाहरी काम :** कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन जलाकर शरीर भीतरी और बाहरी काम कर सकता है।

रचना और मरम्मतके काम (क) और (ख) के लिये (६३८) प्रोटीन है। प्रोटीन पदार्थ रक्त प्रणालीमें मिलने हैं और रोज मरम्मतका काम करते हैं। जब रचनाकी जरूरत होती है तो चाही हुई मात्रा रक्तके द्वारा जाती है और उससे शरीर-तंतु बनते हैं। शरीरकी रचना और मरम्मत तथा भीतरी और बाहरी काम खाये हुए प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेटसे होते हैं।

६४४. **खनिज और भिटामिन हाथ बँटाते हैं :** खनिजों और भिटामिनोंका कोई जिक्र नहीं हुआ है। पर यह याद रखना चाहिये कि, आहारमें

इनकी भी उचित मात्रा चाहिये। इनके बिना रक्तका जो लक्षण होना चाहिये नहीं रहेगा। इनके बिना आहार किसी कामका नहीं होगा। पर खनिजों और भिटामिनोंमें जलनेका गुण कम है। फिरभी उन्हें छोड़ने से काम नहीं चलेगा। जल और वायु इनका भी जिक्र नहीं हुआ है, पर खनिज और भिटामिनके साथ (क), (ख), (ग) और (घ) के लिये इनकी भी जरूरत है।

जिस वनस्पतिमें आवश्यक कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन हों पर खनिज और भिटामिन नहीं उसे ढोर नहीं पचा सकते। इन पदार्थोंकी उचित मात्राके बिना वह जी नहीं सकते। प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेटसे यह सब कम महत्वके नहीं हैं। आगे चलकर हम देखेंगे कि इनका महत्व अधिकतर है। अभी इतना ही जानना बस है कि खनिज और भिटामिनका महत्व जलनेवाले पदार्थके विचारसे कुछ नहीं है।

६४५. **शक्तिकी आवश्यकताका विचार :** अभी तक हमने पोषणके चौविध आधार पर जोर दिया है। अब पांचवें सवाल शक्ति संपादन पर विचार करना है। इसका अर्थ समझना है।

पशु जितना अधिक काम करता है उतनी ही उसकी शक्ति चुकती है और उतने ही शक्ति-उत्पादक पदार्थ उसे खिलाने की जरूरत होती है। यदि सब काम बन्द कर दिया जाय, चलना-फिरना भी रोक दिया जाय तौभी जीवन और पाचन क्रिया चालू रखनेके लिये कुछ शक्ति चाहिये ही। शरीर काम करता रहे इसलिये कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन जलाना होगा। इससे ताप पैदा होगा। यह चमड़ेके द्वारा फैलेगा। इसका अंश-मात्र ही देह गरम रखनेमें लगेगा। जब सभी बाहरी काम बन्द कर दिये जाते हैं तब भी पशुकी तौल कम हुए बिना वह जीता रहे इसके लिये शक्तिकी जरूरत होती है। यह उसे देना जरूरी है। इसे "आधारीय प्रसादपाक" या "बेसल मेटाबोलिज्म" (basal metabolism) कहते हैं। इसका विचार शास्त्रीय रीतिसे होता है। क्योंकि इसीके आधारपर वृद्धि, दूध, काम और गर्भपालनकी शक्तिका हिसाब लगाया जा सकता है।

६४६. **शक्तिकी इकाई :** एक किलोग्राम (kilogram—करीब २¼ रत्तल) पानीका ताप सेन्टिग्रेड थर्मामीटरमें एक डिग्रीतक उठानेके लिये जितनी शक्ति लगेगी उसे एक पोषक-ताप या कैलोरी ( calorie ) कहते हैं। एक हजार पोषकताप या कैलोरीका एक थर्म (Therm) होता है। शक्तिकी नापमें

थर्म इकाई है। एक छोटा पोषक-ताप (small calorie) होता है। अंग्रेजीमें उसे छोटी 'सी'(c)से लिखते हैं। एक घन सेन्टिमीटर (cubic centimeter—करीब १७ बूंद) पानीके तापको सेन्टिग्रेड थर्मामीटरमें एक डिग्री तक उठानेसे जितनी गरमी या तापकी जरूरत होती है उसे छोटी कैलोरी कहते हैं।

शक्तिकी आवश्यकता बतानेका एक तरीका और है। यह स्टार्चके रत्तलोंसे बताया जाता है। पशु-शरीरमें एक रत्तल स्टार्च जलनेसे जितनी गरमी पैदा होती है वह एक इकाई है। इसे अंग्रेजी में "स्टार्च इक्विभैलेन्ट" (starch equivalent) अर्थात् स्टार्च तुल्यांक, स्टार्च-बराबर या संक्षेपमें एस० ई० (S.E.) कहते हैं। यदि किसी तरहके १०० रत्तल चारेके पचने या जलनेसे इतना ताप पैदा हो जितना २२ रत्तल स्टार्च (श्वेतसार) के पचने या जलने से होता है तो उस चारेका एस० ई० या स्टार्च तुल्यांक २२ हुआ।

एस० ई० आहारकी नेट या ठेठ शक्ति है। जो शक्ति प्रसादपाक या मेटाबोलिज्मसे काममें लग जाती है, पाचन आदिमें खर्च हो जाती है उसे प्राप्य शक्ति (available energy) कहते हैं। इस प्राप्य शक्तिके बाद जो शक्ति बच रहती है वह एस० ई० है। प्रसादपचित शक्ति किसी पदार्थ की स्वाभाविक ताप उत्पादक शक्ति नहीं है। किसी पदार्थके जलनेसे जो ताप पैदा होता है वह उसकी कुल शक्ति है। कोयलेकी तरह आहारको भी कैलोरीमीटरमें (calorimeter—कैलोरी नापनेका यंत्र) शुद्ध ऑक्सिजनमें जलाकर उसकी कुल शक्ति (gross energy) जानी जाती है। पर पशुशरीरमें यह शक्ति पैदा नहीं होगी। क्योंकि वहाँ अधूरी जलाई अर्थात् पाचन होता है। इसलिये कुल शक्तिसे आहारका पोषक गुण नहीं मालूम होता। कैलोरीमीटरमें जिन पदार्थोंके तापकी इकाई समान होती है वह शरीरमें समान शक्ति नहीं भी दे सकते हैं। क्योंकि अपचके कारण कुछ हानि पाखाना और पेशाबमें निकल जानेसे होती है और कुछ भभकनेवाली बेकाम गैसके बननेसे। इसलिये पोषणके विचारमें कुल शक्तिका मूल्य कम कर देना होता है। जो बच रहता है वह प्राप्य शक्ति या प्रसादपाककी शक्ति है। प्राप्य या प्रसादपाककी सभी शक्ति काममें नहीं लगती। कुछ पचानेमें खर्च होती है। पचानेके बाद जो शक्ति बच रहती है उसे ठेठ शक्ति या अंग्रेजीमें "नेट इनर्जी भैल्यू" (net energy value) कहते हैं। स्टार्चकी नेट इनर्जी भैल्यू वह है जो यह सब बाद देकर

मिलती है। इसलिये एस० ई० ठेठ शक्ति या नेट इनर्जी भैल्यू है। नीचे लिखे समीकरणसे परिभाषा स्पष्ट हो जायगी :

कुल शक्तिका मूल्य (Gross energy value) } —ऋण मलमूत्र और भभकती गैसके बननेमें जो शक्ति नष्ट हुई ;

= प्रसादपाक ( मेटाबोलिज्म ) की शक्ति या प्राप्य शक्ति।

प्रसादपाक शक्ति (Metabolised energy) } —पचनेमें लगी शक्तिको बाद देने पर नेट या ठेठ शक्ति (Net energy) है।

प्रोटीनमें स्टार्चसे बहुत अधिक कुल शक्ति (gross energy) हो सकती है। पर देहमें तापके लिये काममें लानेमें उसकी बहुतसी शक्ति नष्ट होजाती है। इस कारण उसमें स्टार्चसे कम ठेठ शक्ति देख पड़ती है। (६७६)

६४७. **थर्म और एस० ई० का सम्बन्ध :** थर्म और एस० ई० इन दो इकाइयोंका बड़ा सीधा सम्बन्ध है। यदि एस० ई० अंकको १·०७ से गुना करें तो गुणनफल थर्म होता है। उदाहरणके लिये १५ एस० ई० का थर्म १५ × १·०७ =१६·०५ होगा। इसी तरह थर्मको १·०७ से भाग देनेपर एस० ई० मालूम हो सकती है। इंगलैन्डमें एस० ई० इकाईमें शक्ति बतायी जाती है और अमेरिकामें थर्ममें। यदि हम याद रखें कि दोनों लगभग बराबर हैं तो कोई कठिनाई न हो। एस० ई० १·०७ थर्मके समान है।

यह कहा जा चुका है कि प्रोटीनभी जलता है और शक्ति पैदा करता है। मूल या बेसिक शक्तिकी कुल जरूरत जाननेके लिये इसको जोड़ना होगा।

मूल (बेसिक) शक्तिकी जरूरत पशुशरीरके क्षेत्रफल पर निर्भर है। यद्यपि वह सम्बन्ध अनुपातके अनुसार नहीं है तब भी इस क्षेत्रफलका सम्बन्ध तौलसे भी है।

सभी आहार समस्याओंमें पशुकी तौलका भी सवाल आता है। जहाँ तौलनेका प्रबन्ध नहीं है वहाँ आकारके हिसाबसे तौल निकालना होता है। आकारके हिसाबसे तौलके आँकड़ेसे भी काम चलता है। आँकड़ेके बिना हिसाब निकालनेका तरीका ६२५ पैरामें दिया हुआ है।

६४८. **गायके निर्वाहके उपयुक्त एस० ई० और ढोरकी तौल :** साधारण गणना है कि अपने निर्वाहके लिये १,००० रत्तल तौलकी गायकी

६·० रत्तल एस० ई० की जरूरत है जिसमें ·६ रत्तल पचनीय कच्चा प्रोटीन भी हो। इस हिसाबसे किसी गाय—मानलें ५०० रत्तलवालीकी जरूरत अनुपातसे ३ रत्तल नहीं जोड़ी जा सकती। ५०० रत्तलकी गायको जरासा और चाहिये। १,००० रत्तलकी एक गायसे ५०० रत्तलकी दो गायोंको अधिक आहार चाहिये। यह होता भी है और शास्त्रीय विधिसे भी यही पाया गया। शक्तिकी जरूरतमें तौलके दो-तिहाईका फर्क होता है। दूसरे पंडितोंके मतानुसार तौलके ·७३ का फर्क होता है। ·७३ का पता पाना कठिन है। साधारण कामके लिये इसकी जरूरत भी नहीं है। नीचे लिखे आँकड़ेसे भिन्न भिन्न तौलके लिये एस० ई० की जरूरत दिखायी गयी है। यह आँकड़ा डा० सेन रचित इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्च की बुलेटिन नं० २५ से लिया गया है। इसका आधार मौरिसनका अमेरिकन गायोंका अंक है। ढोरकी तौल, आँकड़ेसे अथवा हिसाबसे या तौलकर जानी जा सकती है। छातीके घेरे से तौल निकालनेका तरीका ६२५ पैरामें है। (६७१, ७२६, ७६७, ७६८, ६२५, ६७१-७२)

**६४६. प्रति दिन प्रति दुधार गायके निर्वाहके लिये पोषण कितना चाहिये :**

## आँकड़ा—४७

### दुधार गायोंके निर्वाहका पोषण

| शरीरकी तौल रत्तल | पचनीय प्रोटीन रत्तल | पचनीय कार्बोहाइड्रेट एस० ई० रत्तल |
|---|---|---|
| ५०० | ०.३३८ | ३·०५ |
| ६०० | ०·३९९ | ३·५८ |
| ७०० | ०·४५८ | ४·०९ |
| ८०० | ०.५१६ | ४.५९ |
| ९०० | ०·५७० | ५·०८ |
| १,००० | ०·६२५ | ५·५७ |

ऊपरके अंकोसे यह पता चल सकता है कि यदि अनुपातके अनुसार मूल्य निकाल लिये जायें और घटी तौलके लिये कुछ जोड़ दिया जाय तो वह करीब करीब सही होगा। (६७३)

**६५०. प्रोटीनका एस० ई० :** कच्चे प्रोटीनका एस० ई० ·९४ माना जाता है। कच्चे और शुद्ध प्रोटीनमें भेद है। चारेमें कच्चा प्रोटीन होता है। उस कच्चे प्रोटीनमें शुद्ध प्रोटीनके साथ एमाइड (amides) नामकी एक चीज मिली रहती है। चारेकी अँकाईमें यह सब एक साथ लिया जाता है। एक रत्तल शुद्ध प्रोटीन १·२५ रत्तल स्टार्चके बराबर है। इसलिये इसका एस० ई० १·२५ रत्तल है। पर एक रत्तल एमाइड ·६ रत्तल स्टार्चके बराबर है। इसीलिये १ रत्तल मिश्रित वस्तु जिसे कच्चा प्रोटीन कहते हैं, वह ·९४ रत्तल स्टार्चके बराबर माना गया है। (६·७)

**६५१. कार्बोहाइड्रेटका एस० ई० :** आहारका एस० ई० नापनेके लिये पचनीय कार्बोहाइड्रेटका भी हिसाब किया जाता है। यह कहा जा चुका है कि पशु और पौधेकी चर्बी या तेल कार्बोहाइड्रेटका ही रूपान्तर है। मोमभी इसी कोटिका है। एक रत्तल शुद्ध तेल २·४ रत्तल स्टार्चके बराबर है। पर तेल या मोम हमेशा शुद्ध नहीं मिलते। उनकी बहुत सी कोटियाँ हैं और उन कोटियोंके अनुसार उनकी शक्तियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। हिसाबके आधारके लिये आहारके तेल या चर्बीकी एस० ई० २·२५ रखी गयी है। अर्थात् चारेके एक रत्तल तेल या चर्बीकी एस० ई० २·५ है। विश्लेषणमें इन पदार्थोंके लिये चर्बी (fat) शब्दका प्रयोग नहीं होता। चारा पेरनेसे ईथरके साथ जितना तेल निकलता है उसे ईथर एक्सट्रैक्ट (ether extract) कहते हैं। इसका एस० ई० मूल्य २·५ माना गया है। ईथर एक्सट्रैक्टका एस० ई० जाननेके लिये उसे २·५ से गुना करना चाहिये।

**६५२. आहारकी सुपचता :** निर्वाहके लिये क्या चाहिये जाननेके लिये आहारके सभी कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीनकी एस० ई० का हिसाब नहीं करना है। केवल उनके पचनीय अंशकी ही आवश्यकता है। आँकड़ा—४७ में भिन्न भिन्न तौलकी गायोंके निर्वाहके लिये कितना पचनीय कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन चाहिये यह दिया हुआ है।

जितना खिलाया जाता सभी नहीं पचता है। गाय जो पचा नहीं सकती वह खिलानेसे उसे कुछ लाभ नहीं होगा। जो अंश गाय पचा नहीं सकती वह बाहर निकाल देती है। इसलिये सम्पूर्ण खाद्य और उसके घटकोंकी पचनीयता जानना बड़े महत्वकी बात है। दो चारे जिनके रासायनिक घटक एक से हैं,

जिनके कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीनका एकसा मूल्य है उनकी पचनीयतामें भी बड़ा अन्तर हो सकता है। एक बहुत जादे सुपच हो सकता है और दूसरा ठीक इसका उल्टा। जबतक उनकी पचनीयताका विचार नहीं किया जाता चारा चुनने और उनका मूल्य आँकनेमें उनके रासायनिक घटकोंसे हमें कुछ मदद नहीं मिल सकती।

हर मुख्य चारेकी बनावटके साथ उसकी पचनीयता भी जाननी चाहिये, जिससे कि वह विशेष प्रयोजनका चारा समझा जा सके। दूसरे देशोंमें शास्त्रीलोगोंने चारेकी बनावट और पचनीयताके बारेमें पशुपालक और गव्य-व्यवसायियोंकी भलाईके लिये काम किया है। भारतमें यह काम अभी हाल ही में हाथमें लिया गया है। कुछ प्रसिद्ध आहारोंका पचनीयताके लिये विश्लेषण हुआ है। (८१६, ८२२-'२४, ८३३-'३४, ८६०, ६०५)

**६५३. रासायनिक बनावट और पचनीयता :** चारे और पुष्टईकी रासायनिक बनावट किसी साधारण प्रयोगशालामें भी जानी जा सकती है। पर पचनीयताकी जाँचके लिये पशुकी खास तरहकी सँभालका इंतजाम होना चाहिये। इस कामके लिये पशुको ऐसे स्थानमें रखना होता है जहाँ उसका कुल गोबर और गोमूत्र जमा करनेका प्रबन्ध है। यह जरा भी नष्ट न हों। चारा तौलकर पशुको दिया जाता है। खानेसे जो बच रहता है उसे तौलकर पशुने जितना खाया है उसका पता लगाया जाता है। पशुने कितना कार्बोहाइड्रेट, कितना प्रोटीन और खनिज खाया, खिलायी चीजोंकी रासायनिक बनावटसे इसका हिसाब लगाया जाता है। दूसरी ओर सारा मलमूत्र तौला जाता है। उसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और खनिज जो निकल आये हैं वह खोजे जाते हैं। इन्हें तौलनेसे जितना पच गया उसका पता लग जाता है। इस तरह आहारके पचनीय कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और खनिजका पता लगाया जाता है।

**६५४. किसी एक चारेकी जाँचमें कठिनाई :** पचनीयताका परिणाम प्राप्त करनेमें कठिनाई होती है। एकही चारेमें यदि गायकी जरूरतवाले सभी उपकरण न्यूनाधिक हों तो उनकी पचनीयता सहज जानी जा सकती है। पर यदि चारेमें एक या अधिक उपकरणोंका बहुत अभाव हो तो गाय या तो उसे नहीं खायगी या उस चारेको अकेला खिलानेसे वह बहुत जादे अपचनीय सिद्ध होगा। जिन पदार्थोंकी कमी है वह जब चारेके साथ पशुको खिलाये जायँगे, तभी इस संयुक्त चारे पर काफी दिनोंतक वह टिक सकता है और उससे विश्वसनीय परिणाम प्राप्त हो सकते

हैं। आहारके सामानकी पचनीयता जाननेमें यही कठिनाई है। कुछ वर्षोंसे ऐसा किया जा रहा है और अभीतक जो किया गया है उससे महत्वके उल्लेखनीय परिणाम मिले हैं।

६५५. **धानके पुआलके कार्य :** बहुतसे प्रसिद्ध आहारोंमें अपनी विशिष्टतायें हैं। अब उनकी जानकारी हुई है। उनमें पचनेलायक मिलावट करनेसे उनकी उपयोगिता बढ़ जायगी। इसका ज्वलन्त उदाहरण धानका पुआल है। विश्लेषण से पता चलता है कि, इसमें ३ से ४ सैकड़ा कच्चा प्रोटीन है। यदि ५०० रत्तल तौलकी किसी गायको खिलाना है तो आँकड़ा ४७ के अनुसार उसके निर्वाहके लिये ०·३३८ रत्तल प्रोटीन चाहिये। १०० रत्तल पुआलमें ३ से ४ रत्तल कच्चा प्रोटीन है। गुजारेके लिये ०·३३८ प्रोटीन चाहिये, इसलिये १० रत्तल पुआलका ·३ से ·४ रत्तल प्रोटीन गुजारेके लिये काफी होगा। दूध, गर्भके बच्चे या वृद्धिके लिये कुछ और चाहिये। पर पचनीयताका नक्शा देखने से पता चलता है कि धानके पुआलका प्रोटीन एकदम अपचनीय है। उसमें पचनीयता बिलकुल नहीं है। ऐसी हालतमें यदि गायको अकेला पुआल ही दिया जाय तो उसका परिणाम यह होगा कि, प्रोटीनके मामलेमें वह भूखी रहेगी। हम आगे चलकर देखेंगे कि ऐसे आहारका उसके शरीरपर क्या असर हो सकता है। धान-पुआलके प्रोटीनकी इस पचनशून्यता या अपचनीयतासे हम सावधान हो जायँ और पचनीयताके आँकड़ेको पूरा महत्व दें। किसी आहारका विचार करते समय उसकी पचनीयता भी हमें जाननी चाहिये। (३६७, ५०५, ७६४-८१४, ८२६)

६५६. **पचनीयताकी जाँचका लेखा :** जब किसी चारेकी पचनीयताको जाँच होती है तब उसका परिणाम इस तरह लिखते हैं कि, उनके असली आहार गुणको जाननेके लिये सरलतासे हिसाब किया जा सके। और उसी अनुसार उस चारेकी खिलाई की जा सके। उस चारेमें और जिस चीजके मिलानेकी जरूरत हो वह दूसरे मिलनेवाले पचनीय चारेसे पूरी की जा सके। साधारण तौरपर पचनीयताकी जाँच और रासायनिक विश्लेषणके परिणाम इन विषयोंके बारेमें लिखे जाते हैं : (१) कच्चा प्रोटीन, (२) कार्बोहाइड्रेट, (३) रेशा, (४) नाइट्रोजन रहित एक्सट्रैक्ट, (५) ईथर एक्सट्रैक्ट, (६) पोषणका अनुपात। आँकड़ेमें ये और भिन्न भिन्न खनिज घटकोंके प्रतिशत होते हैं। उल्लिखित विषयोंका महत्व समझनेकी अब हम कोशिश करें।

**६५७. कच्चे प्रोटीनका गुण :** (१) **कच्चा प्रोटीन : प्रोटीन और दूसरे पदार्थोंके मिश्रणका यह नाम दिया गया है। शक्ति निर्धारणमें प्रोटीनका अपनी कोटिके अनुसार मूल्य आँका जाता है। शुद्ध प्रोटीनका १·२५ एस० ई० मूल्य है।** एमाइडका केवल ·६ एस० ई० मूल्य है। इनका सापेक्ष अनुपात अनिश्चित है। एमाइड भी नाइट्रोजन पूर्ण पदार्थ हैं। एमाइडोंके पोषक प्रोटीन-मूल्यके बारेमें प्रवीणोंमें मतभेद है। कुछ प्रवीण इनका मूल्य शुद्ध प्रोटीनका आधा मानते हैं। हम आगे चलकर प्रोटीनोंके बारेमें और जानेंगे। अभी कच्चे प्रोटीनको हम शुद्ध प्रोटीन और विभिन्न प्रोटीन-मूल्योंसे युक्त एमाइडका मिश्रण मान लेते हैं। इस मिश्रणकी शक्ति ·९४ एस० ई० रखी गयी। (६०७, ६५०)

**६५८. कार्बोहाइड्रेटका मूल्य :** (२) कार्बोहाइड्रेटमें बहुतसे पदार्थ आ जाते हैं। इन्हींसे लकड़ी बनती है। बीज, जड़ और कंदमें संचित प्रधान आहार ये ही हैं। पौधेके सूखे सामानका प्राय: तीन चौथाई कार्बोहाइड्रेट है।

कार्बोहाइड्रेट कारबन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजनसे बनता है। यह कार्बोहाइड्रेटकी विशेषता है कि इसमें ऑक्सिजन और हाइड्रोजन उसी अनुपातमें हैं जो पानीमें हैं अर्थात् २ : १। पानी रसायनके अनुसार $H_2O$ यानी दो परमाणु हाइड्रोजन और एक ऑक्सिजनका मेल है। कार्बोहाइड्रेटमें भी यही अनुपात है। कार्बोहाइड्रेट और तेल-चर्बी तथा मोममें यहींपर भेद है। चर्बी कार्बोहाइड्रेटकी तरह कारबन, हाइड्रोजन और ऑक्सिजनकी बनी है। चर्बीमें कार्बोहाइड्रेटसे ऑक्सिजनका अनुपात बहुत कम और कारबन तथा हाइड्रोजनका बहुत जादे है। (६२३)

**६५९. चीनी और पाली-सैकाराइड्स** (poly-saccharides) **:** कार्बोहाइड्रेटके दो दल हैं। एक चीनी और दूसरा पोली-सैकाराइड्स। चीनी सीधी सादी चीज है और जल्दी हजम होती है। दूसरा दल जटिल है। पौधेके काष्ठ-तन्तु इन्हीं जटिल कार्बोहाइड्रेटसे बनते हैं। यह कठिनतासे पचते हैं। इनके पचनेमें बहुत शक्तिका अपव्यय है। इस अपव्ययमें इनकी विभिन्न बनावटके अनुसार कमी बेशी होती है। इनका आहार-मूल्य कम है। कड़ी लकड़ी तो बिलकुल नहीं पच सकती। पहले कहा जा चुका है कि, सूर्यकिरण और क्लोरोफिलका भी हाथ कार्बोहाइड्रेटकी रचनामें है। ये क्रमसे कार्बोहाइड्रेटकी रचना करते हैं। पौधेके हरे भाग, पत्ते और छाल, सूर्यके प्रकाशकी सहायतासे स्वल्प-शक्ति कारबन-

डाइऑक्साइडको प्रचुर-शक्ति कार्बोहाइड्रेटमें बदल देते हैं। प्राथमिक उत्पादन सरल यौगिक (मिश्रण) कहलाते हैं। जैसे चीनी। यह कार्बोहाइड्रेटके पहले दलकी है। क्लोरोफिल अर्थात् हरा रंजक पदार्थ यह सरल आरगेनिक (जैव) यौगिक कैसे बनाता है इसका पता नहीं है। यह जीवन-क्रियाका रहस्य है। सूर्यकी शक्तियाँ इस जैव (आरगेनिक) यौगिकमें जम जाती हैं। इससे वायुका नहीं जलनेवाला पदार्थ कारबन-डाइऑक्साइड जलनेवाला बन जाता है और वह चीनी या स्टार्चकी तरह तापदायक बन जाता है। इन चीनियोंसे पौधे अधिकसे अधिक जटिल हाइड्रो-कारबन (hydro-carbon) बनाते चले जाते हैं। अन्तमें जाकर कड़ी लकड़ीका पोली-सैकाराइड्स बनता है। इसलिये हाइड्रो-कारबनकी कई अवस्थायें होती हैं। पहले पानीमें घुलनेलायक सरल चीनी होती है, फिर पानीमें नहीं घुले पर तेजाबमें घुल जाय ऐसा स्टार्च उससे बनता है। इसके बाद तेलकी और फिर अपचनीय कठिन काष्ठ-तंतुकी अवस्था होती है।

पोली-सैकाराइड्स शब्दका अर्थ है अनेक सैकाराइडों यानी चीनियोंका योग। चीनीके बहुतसे अणु मिलकर पोली-सैकाराइडका एक अणु बनता है। आरंभमें इनमें $H_{10}O_5C_6$ अर्थात् १० हाइड्रोजन, ५ ऑक्सिजन और ६ कारबनके अणु होते हैं। यह सैकाराइड है। फिर इन तत्वोंके गुणन होते होते बहुत जटिल पदार्थ काठ तक बन जाते हैं।

सैकाराइडसे पोली-सैकाराइड बननेका यह क्रम उलट सकता है। उत्सेचक (enzymes—एनजाइम्स) या ताप और तेजाब (एसिड) के असरसे पोली-सैकाराइड विघटित हो सकते हैं। पशु-शरीरमें यह विघटन होता है और पोली-सैकाराइडका घुलने लायक सरल रूप हो जाता है।

स्टार्च कार्बोहाइड्रेटका एक रूप है। यह अन्नों और कन्दमूलोंमें होता है। मनुष्य इन्हें खाते हैं। स्टार्च चीनीसे अधिक जटिल है।

६६०. **तन्तु-मूल्य :** (३) रेशेका मूल्य : सेलूलाज कार्बोहाइड्रेटका भी रूपभेद है। पौधोंके कोष (cell) की दीवाल इसीकी बनी होती है। सेलूलोज स्टार्चसे भी अधिक जटिल है। तेजाबके साथ गरमानेसे यह चीनी बन सकता है। पर इसका विघटन स्टार्चसे चीनी बननेकी तरह सरल नहीं है। सेलूलोजका रूप धीरे धीरे कठिनसे कठिनतर होता जाता है। तब सिर्फ तेजाबमें उबालनेसे भी यह नहीं घुलता। इस नहीं घुलनेवाली चीजको कच्चा तन्तु या रेशा (crude fibre)

या केवल रेशा कहते हैं। पौधेके विश्लेषणमें रेशा या तन्तु शब्द काममें लाया जाता है।

**रेशोंका आँकना :** पौधेके पदार्थोंको सुखाने और चूरनेके बाद बहुत देर तक तेजाबमें रखना होता है। इससे सभी घुलने लायक चीजें निकल आती हैं। धोनेके बाद जो बच रहता है वह रेशा है। इसलिये रेशा कार्बोहाइड्रेटका ही एक रूप है जो तेजाबमें घुलने लायक नहीं है। तेजाब जो काम नहीं कर सकता उसे पेट कर सकता है। रेशोंका कुछ अंश पशु-शरीरमें पच जाता है। तब यह कार्बोहाइड्रेटके दूसरे रूपोंकी तरह काममें आ जाता है। इन कच्चे रेशोंको चबाने और पचानेमें बहुत शक्ति खर्च होती है। इसलिये इनका पोषक गुण बहुत कम है।

**६६१. नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट :** (४) नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्टको घुलनेवाला कार्बोहाइड्रेट भी कहते हैं। इसमें घुलनेवाले रूप जैसे चीनी, स्टार्च, अध्बना सेलूलोज (यह चीज घुलनेवाले रूप और रेशेके बीचकी है) हैं। पौधेमें पाये जानेवाले, घुलनशील कुछ और पदार्थ, जैसे कि जैव तेजाब (organic acids) भी नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्टमें शामिल हैं। विश्लेषणमें इस पदार्थकी खोज नहीं की जाती। पर अंतर से इसका पता चल जाता है। १०० भाग पदार्थमें जल, राख, प्रोटीन रेशा और चर्बीका प्रतिशत निकाला जाता है। इन्हें जोड़नेपर १०० में जितनेकी कमी रहती है, उतना घुलनेवाला पोषक पदार्थ मान लिया जाता है। अन्नमें नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट खास तौर पर अधिक होते हैं। इसका कारण यह है कि इसमें स्टार्च अधिक होते हैं, जो कि तेजाबमें घुलनेवाले होते हैं। सूखी घास और रूखे चारेमें नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट कम होते हैं। तब भी सूखी घासके घुलने लायक अंशमें अध्बना सेलूलोज आदि होते हैं। इसलिये इन चीजोंके नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट बीज या खलीके नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्टसे कम पोषक होते हैं।

**६६२. ईथर एक्सट्रैक्ट-मूल्य :** (५) ईथर एक्सट्रैक्ट—पौधेमें ईथरमें घुलने वाली जितनी चीजें होती हैं उन्हें चर्बी या स्नेहपदार्थ कहते हैं। इसलिये एक्सट्रैक्टमें केवल स्नेहपदार्थ नहीं होता पर उसी ढंगकी कई और चीजें होती हैं। बीजोंके ईथर एक्सट्रैक्टमें सबही स्नेहपदार्थ होगा पर रूखे चारेके एक्सट्रैक्टमें मोम और क्लोरोफिल रहेंगे। इसलिये इनकी शक्ति भिन्न भिन्न

होगी। विश्लेषणमें ईथर एक्सट्रैक्टका औसत एस० ई० या स्टार्च-तुल्यांक २.२५ मान लिया गया है। स्नेहपदार्थकी नीचे लिखी कोटि पायी जाती है :

| | | | |
|---|---|---|---|
| मोटे चारेका स्नेहपदार्थ | ... | १.९ | एस० ई० |
| अन्नका स्नेहपदार्थ | ... | २.१ | ,, |
| तेलहनका स्नेहपदार्थ | | २.४ | ,, |

इन चीजोंके मिश्रणकी औसत एस० ई० २.२५ मानी गयी है।

**६६३. पोषणका अनुपात :** (६) पोषणका अनुपात—अधिक पोषण प्रोटीनसे होता है। पोषणका अर्थ शरीरकी रचना और मरम्मत है। इस अर्थमें कार्बोहाइड्रेट और स्नेहपदार्थ शरीरका पोषण नहीं करते, उसे शक्ति देते हैं। खनिज और भिटामिन आवश्यक वस्तु हैं। पर प्रोटीनकी तुलनामें उनका परिमाण कम है। इन तथा दूसरे कारणोंसे प्रोटीनके पोषक मूल्यको प्रधानता दी जाती है। किसी आहारके मूल्यांकनमें साधारण तौर पर प्रोटीन निर्धारक कारण है। आहारमें कार्बोहाइड्रेट और ईथर ऐक्सट्रैक्ट सस्ती चीजें हैं। किसी भी घासमें यह काफी होते हैं। पर प्रोटीनके लिये यह नहीं कह सकते। चारेका यह सबसे कीमती भाग है, खासकर बढ़नेवाले पशु और दुधार गायोंके लिये। इस उपकरण पर जोर देना व्यावहारिक उपाय है और ऐसा करना चाहिये।

पोषणका निर्धारक अनुपात, पशु कैसा है और उसे काम क्या करना पड़ता है, इसपर निर्भर है। इसका साधारण वर्गीकरण संकीर्ण, मध्यम और व्यापक अनुपात कह कर किया गया है।

| | | |
|---|---|---|
| संकीर्ण अनुपात है | ... | १ : ४ |
| मध्यम अनुपात है | ... | १ : ५ |
| व्यापक अनुपात है | ... | १ : ८ और इससे जादे |

आहारका कोई गाहक सोच सकता है कि इस चीजमें मुझे पचने लायक प्रोटीन कितना मिलेगा ? इसीको साफ समझानेके लिये पोषणका अनुपात निकालना चालू किया गया है। इसका अर्थ है चारेमें दूसरे पचनीय पोषकोंके मुकाबले पचनीय प्रोटीनका अनुपात। यदि चारेका पोषक अनुपात १ : १० है तो इसका अर्थ हुआ कि चारेमें १० भाग दूसरे पचनीय पदार्थ हैं और १ भाग पचनीय प्रोटीन।

६६४. **जौ और चनेकी पचनीयता :** जौ और चनेकी पचनीयताके विश्लेषणके अंक नीचे लिखे हैं :

# आँकड़ा—४८

## जौ और चनेकी पचनीयता

प्रति १०० रत्तल सूखे सामानका पचनीय पोषण ।

| नाम | मूल स्थान | कच्चा प्रोटीन १ | कार्बो-हाइड्रेट २ | ईथर एक्सट्रैक्ट ३ | कुल ४ | पोषक अनुपात ५ | स्टार्च तुल्यांक ६ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जौ— | बंगलूर | ७·३९ | ७५·६९ | १·३० | ८६·०१ | १०·६ | ८४·६ |
| चना— | बंगलूर | १४·३३ | ६३·२७ | १·९६ | ८२·०१ | ४·७ | ७८·५ |

जौ का पोषक अनुपात १०·६ (स्तम्भ ५ में) दिया हुआ है। इसका अर्थ यह है कि प्रति १०·६ दूसरे पचनीय पोषक पर १ रत्तल पचनीय प्रोटीन इसमें है।

जौका कुल पचनीय पोषक कितना है? इसका उत्तर स्तम्भ नं० ४ के कुलमें है। इसमें ८६·०१ दिया हुआ है। इसका अर्थ है कि, १०० रत्तल सूखे जौ में ८६·०१ रत्तल कुल पचनीय पोषक है।

यह ८६·०१ का कुल परिमाण या जोड़ कैसे निकाला गया? प्रोटीन (स्तम्भ १), कार्बोहाइड्रेट (स्तम्भ २), ईथर एक्सट्रैक्ट (स्तम्भ ३) की पचनीयताके प्रतिशत जोड़कर यह निकाला गया। १, २, ३, को जोड़नेके पहले ईथर एक्सट्रैक्ट को २·२५ से गुना करना होता है जिससे स्नेहपदार्थ कार्बोहाइड्रेटकी सतह पर आ जाय। तब हम कार्बोहाइड्रेट और स्नेहपदार्थको जोड़ सकते हैं। इसलिये ईथर एक्सट्रैक्ट (स्तम्भ ३) १·३० को २·२५ से गुना किया। इसका गुणनफल २·९३ निकला। अब इसे यों रखिये :

| | |
|---|---|
| पदार्थोंके १०० भागमें पचनीय प्रोटीन ... ... | ७·३९ |
| ,, ,, ,, कार्बोहाइड्रेट ... ... | ७५·६९ |
| ,, ,, ,, ईथर एक्सट्रैक्ट ×२·२५ ... | २·९३ |
| कुल | ८६·०१ |

(स्तम्भ ४ को तरह)

कुल पचनीय पोषक ८६·०१ मिला। इसमें प्रोटीन ७·३९ है। यदि इसमेंसे प्रोटीन घटा दें तो :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| कुल पोषक | ... | ... | ८६·०१ |
| प्रोटीन ... | ... | ... | ७·३९ |
| प्रोटीनको छोड़ दूसरे पोषक— | | | ७८·६२ |

इसलिये प्रति ७·३९ पचनीय प्रोटीनपर ७८·६२ दूसरे पचनीय पोषक हैं। ७८·६२ को ७·३९ से भाग देनेपर भजनफल १०·६ पोषक अनुपात बताता है।

इसी तरह चनेका भी हिसाब लगाकर समझा जा सकता है।

६६५. **चारेकी बनावट :** पचनीयताकी जाँचका बखेड़ा किये बिना प्रयोगशालामें विश्लेषण किया जा सकता है। यहाँ भी रोचक परिणाम मिल सकते हैं। इन्हें नीचे समझाया जाता है।

जौकी रासायनिक बनावट नीचे लिखी जाती है :

## आँकड़ा—४६

### जौका विश्लेषण

**जौके (अंगूर) १०० भाग सूखे सामानमें यह होता है :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| (क) खनिज घटक : राख | | ४·५३ | (१) |
| (ख) जैव या ऑरगेनिक घटक : | | | |
| कच्चा प्रोटीन | ... | ९·४८ | (२) |
| रेशा (तन्तु) | ... | ५·२३ | (३) |
| नाइट्रोजन रहित एक्सट्रैक्ट | | ७९·०९ | (४) |
| ईथर एक्सट्रैक्ट | ... | १·६७ | (५) |
| कुल— | | १००·०० | |

जौमें खनिज ४·५३ सैकड़ा, कच्चा प्रोटीन ९·४८ सैकड़ा, नाइट्रोजन रहित एक्सट्रैक्ट ७९·०९ सैकड़ा और ईथर एक्सट्रैक्ट १·६७ सैकड़ा है। इसमें नमी कुछ नहीं है। विश्लेषणके पहले नमी सुखा दी जाती है। बाजारू जौमें १० से

१२ सैकड़ा तक नमी रहती है। इसलिये हर मदका परिमाण कम होगा। राख, कच्चा प्रोटीन, रेशा और ईथर एक्सट्रैक्टका परिमाण अलग अलग निकाल लिया जाता है। १०० से उनका जोड़ घटानेपर जो अंतर निकलता है, वही नाइट्रोजन रहित एक्सट्रैक्ट है। यह ७९·०९ हुआ।

रिपोर्टके इस अंशसे कुछ रहस्य नहीं खुला। प्रतिशत राखके घटकोंके बारेमें हमें जानना बाकी ही है। यह विश्लेषणके दूसरे आँकड़ेमें बताया गया है। नया उदाहरण लीजिये।

६६६. **राखका प्रतिशत :**

## आँकड़ा—५०

### चना और चावलके चोकरके * कुल खनिज

| | | केवल चनेका दाना | फलीसहित चना | चावलका चोकर बंगाल |
|---|---|---|---|---|
| कुल राख | | ३·५० | ९·०८ | १५·८५ |
| तेजाबमें घुलनेवाली राख | | ३·[illegible] | ८·३८ | ११·२९ |
| कैलशियम ऑक्साइड | $CaO$ | ०·३३ | १·९४ | ०·२२ |
| फॉसफोरस | $P_2O_5$ | ०·९३ | ०·५६ | ६·२३ |
| मैगनीशियम | $MgO$ | ०·२७ | ०·५० | ०·२६ |
| सोडियम | $Na_2O$ | ०·२२ | ०·१६ | ०·३८ |
| पोटाशियम | $K_2O$ | ०·७२ | २·१५ | ०·१९ |
| घुलनेवाले कुल— | | २·४७ | ५·३१ | ७·२८ |

ऊपरके आँकड़ेकी जाँचसे पता चलता है कि तीनों पदार्थोंके कुल राखमें तेजाबमें घुलनेवाला अंश काफी है। तेजाबमें घुलनेवाला अंश ही केवल पचता है और उसका मेटाबोलिज्म (प्रसादपाक) होता है। इस घुलनेवाली राखमें,

---

* बंगालमें चावलके आवरणको कुँड़ा और बिहारमें गुँड़ा कहते हैं। चावलके छाँटने या पालिश करनेपर यह चावलका आवरण निकल आता है। इसीको छाँट, भूसी या चोकर भी कहते हैं।

जिनका महत्व बहुत जादे है, वही आँकड़ेमें दिये गये हैं। जैसे कि कैलशियम, फॉसफोरस, मैगनीशियम, सोडियम और पोटाशियम। इन खनिजोंके ऑक्साइड (oxide) के चिन्ह भी दिये गये हैं। CaO कैलशियम ऑक्साइड अर्थात् चूनाके लिये है। $P_2O_5$ फॉसफोरस पेन्टॉक्साइड के लिये, MgO मैगनीशियम ऑक्साइडके लिये। $Na_2O$ सोडियम ऑक्साइडके लिये। Na नैट्रियम (Natrium) का संक्षेप है। इसका अर्थ सोडियम है। $K_2O$ पोटाशियम ऑक्साइडके लिये है। K केलियम (Kalium) अर्थात् पोटाशियमके लिये है। इन ऑक्साइडोंके कुल जोड़ कुल घुलनेवाली राखके बराबर नहीं है। दो कारणोंसे यह हो भी नहीं सकते। एकतो यह कि इस आँकड़ेमें सभी मदें नहीं जोड़ी गयी हैं और दूसरे यह कि राखका ऑक्साइडके रूपमें होना जरूरी नहीं। पोषणके तुलनात्मक गुण जाननेमें सहूलियत हो इसीलिये ऑक्साइडके आधार पर इनका हिसाब लगाया गया है।

६६७. **चावलके आवरण या चोकरकी राख :** अब हम मदोंकी जाँच अधिक सावधानी और तुलनात्मक रूपसे करेंगे। चावलके आवरणमें सबसे जादे राख है। इसमें सिर्फ ·२२ सैकड़ा चूना (कैलसियम ऑक्साइड) है, पर फॉसफोरस ६·२३ सैकड़ा। आहारमें फॉसफोरसकी चाह बहुत है। उसी तरह कैलशियम की भी। चुनी हुई तीनों चीजोंमें चावलके आवरणमें कैलशियम सबसे कम है और फॉसफोरस बहुत ही जादे। चारेके लिये जो फॉसफोरसकी खोजमें हों वह इतनी फॉसफोरस-प्रचुर चीज पा खुश हो जायेंगे। पर पचनीयताकी जाँच होनेपर उनकी खुशी खतम हो जायगी। इतना फॉसफोरस होना बुरा है। क्योंकि गाय उसे पचा नहीं सकती। यद्यपि चनेमें चावलके आवरणसे कम फॉसफोरस है फिर भी यह थोड़ी मात्रा चावल-चोकरकी मात्रासे कहीं कीमती है। यह बात प्रयोगसे सिद्ध हो सकती है।

६६८. **चावल-चोकरका फॉसफोरस जमीनको लौटा दो :** ऐसे प्रयोगसे यह भी मालूम हो सकता है कि कामके बाद चावल-चोकरका जमीनको लौटा देना कितना जरूरी है। कहा जाता है कि भारतकी धरतीमें अधिकांश फॉसफोरस की कमी है। इसलिये चावल-चोकरके फॉसफोरसकी बर्बादी पुसा नहीं सकती। उसे धरतीको लौटाना होगा और इस तरह उसके उपजाऊपनकी हिफाजत करनी होगी।

जब धान गाँवके बाहर चावलके मिलोंमें भेजा जाता है तो वह एक तरहसे चावल-चोकरके रूपमें धरतीका उपजाऊपन ही भेजा जाता है। मिलमें चावल कूटने या छाँटनेपर जो चोकर या छाँट निकलती है वह रद्दी चीज समझी जाती है और वहाँ मिलके आसपास उससे कुछ काम भी नहीं लिया जा सकता। धरतीको सजीव करनेवाली चीजोंमें एक फॉसफोरस भी है। वह इस तरह गाँवके बाहर भेजकर बर्बाद कर दिया जाता है।

पुराने कायदेके अनुसार जब गाँवमें ही धान कूटा जाता था तब यह बर्बादी नहीं होती थी। गाँवमें ही धान कूटा जाता था और चावलकी छाँट या चोकर ढोरको खिलाया जाता था। इस तरह वह गोबरके द्वारा फिर धरतीमें पँहुच जाता था। गोबरके जलानेपर भी ललचानेवाले खनिजोंसे भरी राख खेतमें पँहुच ही जाती थी। खेतकी उर्वरताकी रक्षामें दूसरे देशके लोग कितने सावधान हैं। वहाँ धरतीसे प्रेम करना और उसके प्रति कर्त्तव्यका पालन करना सिखाया जाता है। भारतमें शिक्षाके नामसे जो वस्तु है उसका धरतीसे कोई सरोकार नहीं है। शिक्षाने लोगोंको धरतीसे कल्पना लोकमें पँहुचा दिया है। पशुधन-उत्पादन और गव्य-धन्धा आदिके अमेरिकन साहित्यमें धरतीकी उर्वरताकी बड़ी जबर्दस्त वकालत पायी जाती है।

६६९. **धरतीकी उर्वरताकी रक्षा :** वहाँ दीवारोंपर तस्वीर चिपकाके किसानोंसे धरतीका उपजाऊपन बनाये रखनेकी सिफारिश की जाती है। सूखी घास या पुआल बेचना मना किया जाता है। यह दिखाया जाता है कि अच्छा उपाय यह है कि, ढोर पाले जायँ और उनके गव्योंकी बिक्रीसे अधिक आमदनी की जाय तथा साथ ही साथ धरतीका उपजाऊपन भी बनाये रखा जाय।

भारतमें मशीन चालू होनेके पहले उपजाऊपनकी रक्षा सभी बातोंकी रक्षाकी तरह अपने आप होती थी। बातें बहुत तेजीसे बदली हैं और उनसे बुराई हुई है। उन्नतिका अग्रदूत पशुप्रेम हमारे देशसे बिदा होकर आधुनिक अमेरिका, ब्रिटेन, डेनमार्क, जर्मनी और रूश आदिमें जम गया है।

६७०. **केवल रसायनिक विश्लेषण हमें राह नहीं दिखा सकते:** धरतीके फॉसफोरसके साथ हम बहुत दूर निकल गये। चारेके विश्लेषणके दूसरे पहलुओंपर हम फिर आवें। पचनीयताकी जाँच किये बिना सिर्फ चारेके घटकोंका विश्लेषण बहुत भ्रामक भी हो सकता है। चावलकी भूसीके फॉसफोरस जैसा पदार्थ जब अन्तमें असार प्रमाणित हो जाता है तो चारेकी यह स्वाभाविक हीनता और भी

स्पष्ट हो जाती है। ऊपरके आँकड़ेमें केवल दो ही विषय हैं, एक केवल चनेका दाना और दूसरा उसकी फली। जाँचसे पता चलता है कि फलीके कारण फॉसफोरसकी मात्रा घट जाती है। इसका अर्थ है कि फलीमें यह खनिज बहुत कम है। किसी स्थानके लिये चारेके विचारसे इन मुद्दोंका रासायनिक विश्लेषण और पचनीयताकी जाँचके सहारे अच्छे अध्ययनकी जरूरत है।

६७१. **निर्वाहका आधार :** आँकड़ा ४७ में प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेटके आधारपर केवल निर्वाहके आहारका विचार हुआ है (६४६)। यह याद रखना चाहिये कि, निर्वाहकी जरूरतके आँकड़ेको केवल आधार मानना चाहिये, जिसपर खिलाईका ढाँचा खड़ा होगा। गतिहीन निर्वाह, प्रयोगशालाके विचारकी ही चीज है। दूध देनेवाली गाय, बिसुकी गाय, ओसर (गर्भ धारण करने योग्य गाय), गाभिन गाय, और तरह तरहके कामपर तथा बैठे बैलको कैसे आहारकी जरूरत है इसका हमें विचार करना है। उनसे पूरा काम लेनेके लिये इन सभी अवस्थाओंमें खिलाना है। ऐसे आहारकी योजनाके लिये कुछ आँकड़े और आधारकी जरूरत है। वह मुख्यतः प्रोटीन और शक्तिकी आवश्यकता पर होंगे, जिनका आधार यह कल्पना या अनुमान होगा कि १,००० रत्तलकी गायके लिये ६ रत्तल एस० ई० या स्टार्च तुल्यांक और ०·६ रत्तल पचनीय कच्चे प्रोटीनकी जरूरत है। (६४८)

६७२. **वृद्धिके लिये क्या चाहिये :** हरियाना और मन्टगुमरी नसलके बछरू हर हफ्ते ८ रत्तल बढ़ते हैं। कुछ खास इन्तजामवाले क्षेत्रोंमें पहले कुछ हफ्तोंमें बछरू नित्य १½ रत्तल तक बढते हैं। बछरू पालनके सम्बन्धमें विचार करते समय हम इस विषयमें और जानेंगे। १०० रत्तलके बछरू पूरे जवान होने तक प्रतिदिन औसत १ रत्तल बढ़ सकते हैं। यह मान लेने पर निर्वाहकी आवश्यकताके अतिरिक्त उनकी शक्तिकी आवश्यकता प्रतिदिन २ से ३ रत्तल एस० ई० होगी। (६८६, ७६६, ७७०)

# आँकड़ा—५१

## ६७३. बढ़नेवाले गव्य ढोरकी पोषक आवश्यकता :

मौरिसनके आधार पर (सेन)

टिप्पणी :—मौरिसनके मूल आँकड़ेमें अधिकतम और न्यूनतम आवश्यकताके अनुसार मूल्य दिये गये हैं। इस आँकड़ेमें औसत रखा गया है। मूल आँकड़ेमें शक्ति थर्ममें दिखायी गयी है। यहाँ उसे १·०७ से भाग देकर स्टार्च तुल्यांक (स्टार्च इक्विभैलेन्ट) बना दिया गया है।

| शरीरकी तौल | पचनीय प्रोटीन | स्टार्च तुल्यांक |
|---|---|---|
| रत्तल | रत्तल | रत्तल |
| १०० | ०·३२ | १·८ |
| १५० | ०·४७ | २·४ |
| २०० | ०·५७ | ३·३ |
| २५० | ०·६६ | ३·९ |
| ३०० | ०·७३ | ४·५ |
| ४०० | ०·८५ | ५·३ |
| ५०० | ०·९३ | ६·१ |
| ६०० | १·०० | ६·८ |
| ७०० | १·०७ | ७·४ |
| ८०० | १·१३ | ८·० |
| ९०० | १·१९ | ८·७ |
| १,००० | १·२५ | ९·२ |

जिस गायकी साधारण तौल ५०० रत्तल पूरी बाढ़पर है, उसे लगभग १ रत्तल (·९३ रत्तल) कच्चा प्रोटीन और ६·१ रत्तल स्टार्च तुल्यांकके हिसाबसे खिलाना चाहिये।

मानलो हम एक बढ़नेवाली ५०० रत्तल वजनकी गाय सिर्फ दूब पर पालना चाहते हैं। हम कोशिश करके देखें कि इसके लिये क्या करना होगा। (६७४)

६७४. **दूबका पोषक गुण :** नीचेका आँकड़ा देखनेसे पता चलता है कि, अलग अलग जगहकी सूखी दूबका अलग अलग पोषक गुण है। बंगलूरकी सूखी दूबमें ७·२८ सैकड़ा पचनीय प्रोटीन और ३४·८ सैकड़ा स्टार्च तुल्यांक है। करनालकी इसी चीजमें ३·३१ सैकड़ा कच्चा प्रोटीन और २५·९ सैकड़ा स्टार्च तुल्यांक है। ६ प्रकारकी सूखी दूबोंका आँकड़ा नीचे है।

## आँकड़ा—५२

### विभिन्न स्थानोंके दूबका पोषक गुण

| स्थान | | कच्चा प्रोटीन प्रतिशत | | एस० ई० (स्टार्च तुल्यांक) |
|---|---|---|---|---|
| बंगलूर | ... | ७·२८ | ... | ३४·८ |
| बरेली | ... | ४·४५ | ... | २६·५ |
| फैजाबाद | ... | ३·७६ | ... | २६·६ |
| लखनऊ | ... | ३·६८ | ... | ३०·६ |
| करनाल | ... | ३·३१ | ... | २५·९ |
| लायलपुर | ... | ५·४४ | ... | २८·७ |

पोषक गुण सूखी दूबमें १० सैकड़ा नमीके आधार पर है। प्रयोगशालाके सौ सैकड़ा सूखे दूबके आधार पर नहीं है। सौ सैकड़ा सूखेका मूल्य या गुण $\frac{1}{9}$ और अधिक होगा। पर बाजारू सूखी घासमें मामूली तौर पर हमें १० सैकड़ा नमी मिलती है। ऊपरके ६ नमूनोंमें से सबसे बढ़िया बंगलूर और सबसे घटिया करनालके बीच की चीज ले सकते हैं, और अपने अभीके विचारके लिये फैजाबादकी घासको मध्यम श्रेणीका मानलें। यह दूसरे स्थानोंमें भी मिल सकती है।

फैजाबादकी घासमें ३·७६ सैकड़ा पचनीय कच्चा प्रोटीन है। ·९३ रत्तल पचनीय प्रोटीनकी जरूरत पूरी करनेके लिये यह २५ रत्तल खिलानी पड़ेगी। इस घासके २६·६ एस० ई० मूल्यके आधारपर ५०० रत्तलकी गायके लिये हमें ६·१ रत्तल एस० ई० चाहिये, वह २३ रत्तल घाससे पूरी होगी। चाहे जिस मुद्दे पर हम जोर दें, हम देखते हैं कि एक बढ़नेवाली ५०० रत्तलकी गायको

हमें प्रति दिन २३ से २५ रत्तल सूखी घास देनी चाहिये। तब सवाल उठता है—क्या उसे इतना खिला सकते हैं? ५०० रत्तलकी गाय सूखी घास इतनी नहीं खा सकती।

**६७५. बढ़नेवाले गव्य पशुका आहार :** ऊपर कहे मौरिसनके आँकड़ेमें बढ़नेवाली गायको खिलानेके लिये सूखे सामानका भी एक स्तम्भ है।

## आँकड़ा—५३

### बढ़नेवाले दुधार पशुके आहारकी मात्रा

| तौल<br>रत्तल | सूखा सामान<br>रत्तल | पोषक अनुपात<br>१ : |
|---|---|---|
| १०० | १·४ से २·४ | ३·९ से ४·५ |
| १५० | ३·०— ४·० | ४·४—४·१ |
| २०० | ४·६— ५·६ | ५·०—५·५ |
| २५० | ५·९— ६·९ | ५·७—६·२ |
| ३०० | ७·२— ८·० | ६·३—६·८ |
| ४०० | ९·०—१०·० | ६·५—७·० |
| ५०० | १०·६—११·८ | ६·९—७·४ |
| ६०० | १२·०—१३·६ | ७·२—७·७ |
| ७०० | १३·४—१५·५ | ७·४—७·९ |
| ८०० | १४·८—१७·४ | ७·६—८·१ |
| ९०० | १६·१—१९·२ | ७·८—८·३ |
| १,००० | १७·५—२१·० | ८·०—८·४ |

देखते हैं कि बढ़नेवाली ५०० रत्तलकी गायके लिये कुल सूखा सामान १०·६ और ११·८ रत्तलके बीच होना चाहिये। पर यदि हम सूखी घास खिलाते हैं तो वह २३ से २५ रत्तल चाहिये। यह अनहोनी बात है। साधारण विचारमें उल्लिखित आँकड़ेके परिमाणका समर्थन किया जाता है, क्योंकि, आहारकी सीमा शरीरकी तौलकी दो सैकड़ा मानी गयी है। ऊपरका आँकड़ा इसी सीमाके भीतर बनाया गया है। इसलिये हम देखते हैं कि बढ़नेवाली जिस गायकी तौल एक रत्तल प्रति

दिन बढ़नी चाहिये उसे केवल दूब पर नहीं रखा जा सकता। केवल इसी पर उसे जितना चाहिये उसका आधा आहार ही मिलेगा। इसका अर्थ यह है कि, उससे केवल वृद्धि ही नहीं रुकेगी, वह दुबली भी होने लगेगी। दूसरे विचारसे भी हम इस परिणाम पर आते हैं कि केवल सूखी दूबका आहार, बढ़नेवाली गायके लिये बहुत कमजोर चारा है।

ऊपरके आँकड़ेका अंतिम स्तम्भ आवश्यक आहारका पोषक अनुपात बताता है। आँकड़ेके अनुसार ५०० रत्तलकी बढ़नेवाली गायके आहारमें पोषक अंश ६·९—७·४ के अनुपातमें होना चाहिये। हमारे पसन्दकी फैजाबादकी दूबमें पोषक अंश ९·४ के अनुपातमें है। इससे मालूम होता है कि दूसरे चारों या पोषणोंकी तुलनामें फैजाबादकी सूखी दूबमें प्रोटीनका समानुपात इतना नहीं है कि उससे प्रति दिन १ रत्तल वृद्धि हो सके।

इसलिये अपने स्थानकी किसी दूसरी घासका आसरा हम करें जो दूबसे अच्छी हो। बहुतसे फलीदार या छीमीवाले चारे हैं जिनमें नाइट्रोजनकी प्रचुरता है। इनमेंसे ऐसी एक हम चुनलें जिसके पोषक गुणका अनुपात आवश्यक पोषणके लगभग हो। यह नहीं हो तो चारेमें हमें कुछ पुष्टई मिलानी पड़ेगी। हम एक फलीदार या छीमीवाली सूखी घासकी जाँच अभी कर सकते हैं।

लायलपुरकी सूखी बरसीममें पोषक गुण ५·४ के अनुपातमें है। हमें जो चाहिये यह उसीके लगभग है। इसके पचनीय प्रोटीन और एस० ई० १०% नमीके आधारपर ९·२६ और ४२·६ हैं। इसका हिसाब नीचे लिखे अनुसार है :

५०० रत्तलकी गायके लिये हमें ·९३ रत्तल प्रोटीनकी जरूरत है। इसके लिये हमें लगभग १० रत्तल सूखी घास चाहिये। हमारी बढ़नेवाली गायकी शक्तिकी जरूरत पूरी करनेके लिये ६·१ रत्तल एस० ई० चाहिये। यह प्रायः १४ रत्तल सूखी बरसीम घास खिलानेसे पूरी होगी। इसलिये यदि गायको सूखी बरसीम प्रति दिन १० रत्तलके हिसाबसे खिलायी जाय तो उसे जितना चाहिये उतना प्रोटीन तो मिल जाता है, पर जितनी शक्ति चाहिये वह कम पड़ती है। क्योंकि बरसीमकी एस० ई० इतनी ऊँची नहीं जो इस मामलेमें उपयुक्त हो सके। इस तरह बरसीम असफल हुई। (६८०, ८७२-'७८)

**६७६. एस० ई० की कोटि कैसे बनायी जाय :** और भी अधिक पोषक अनुपातकी कुछ सूखी घास हम लें। बोड़ा (Cow-pea) और मूंगफलीकी

सूखी घासका पोषक अनुपात और भी अधिक है जो क्रमशः ३·९ और २·३ है। पर इनकी एस० ई० बरसीमसे भी कम है। इसलिये इनसे हमारी जरूरत पूरी नहीं होती। मौरिसनके मानके अनुसार ५०० रत्तलकी बढ़ती गायके लिये सूखे सामानकी मात्रा १०—११ रत्तल ही बस है और एस० ई० ६ रत्तल निर्धारित है। यदि १० रत्तल सूखे आहारसे ६ रत्तल एस० ई० प्राप्त करना है तो १०० रत्तल आहार-सामग्रीकी एस० ई० ६० होगा।

एस० ई० के कोटि निर्माणका तरीका यह है कि प्रयोजनीय परिमाणकी एक पुष्टई भी शामिल कर ली जाय, और वह पुष्टई यदि अन्न हो तो उसका एस० ई० मूल्य ८० से १०० रत्तल हो। जैसे चारेकी हमें तलाश है वह एस० ई० के लिये अन्न, प्रोटीनके लिये फलियाँ, खनिजोंके लिये खली और रूखे चारेके लिये सूखी घास, इन सबका मिश्रण है। (६४६)

६७७. **आँकड़ोंके उपयोगका अभ्यास :** इस पाठमें हमने आँकड़ोंका उपयोग करना सीखा है। गायके लिये उपयुक्त चारेकी यह सच्ची खोज नहीं हुई। क्योंकि हमने खनिजोंकी ओर एकदम ध्यान नहीं दिया। खनिजोंकी उचित मात्राके बिना भोजन किसी कामका नहीं होगा। यहाँ भी उसके खनिजका प्रतिशत बताने मात्रसे काम नहीं चलेगा। अगर प्रतिशतसे जितना चाहते हैं उतनी मात्राका पता भी चल जाय तो भी उसकी पचनीयताका पता लगाना चाहिये। पर यह सब करनेके पहले हमें क्या चाहिये, यही पूरा पूरा जान लेना अच्छा होगा। अभीतक तो इस विषयकी भूमिका ही हुई है। प्रोटीन, खनिज और भिटामिनके बारेमें हमें अभी और जानना बाकी है। इसके बाद आहारमें क्या हो इसका विचार होगा।

६७८. **चारेके लिये पौधेका उपयुक्त वृद्धि :** अकेले बरसीमके चारेकी उपयुक्तताकी जाँचके समय हमने यह विचार नहीं किया था कि, वह कितना बढ़े तब काटकर उसे सुखाया जाय, या उसे कैसे सुखाया जाय। पर उसके पचनीय पोषकोंके आधार पर इसकी जाँच होनी चाहिये। शाकभुकोंका पोषण करनेके लिये चारेकी एक योग्यतम अवस्था होती है। बहुत छोटी उमरके पौधे बहुत पनीले होते हैं। उसमें यथेष्ट एस० ई० मूल्य नहीं होता। बाढ़के साथ चारेका पोषक मूल्य या गुण बढ़ता है। जब उनमें बीज बनने लगते हैं और उन बीजोंकी दुधिया अवस्था आ जाती है तब उन पौधोंके चारेका गुण सबसे ज्यादे

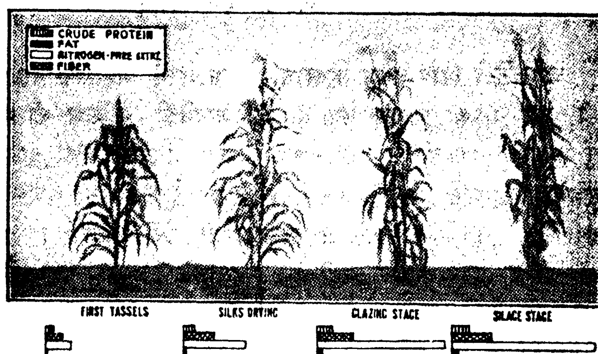
होता है। इस उमरके बाद पौधोंमें ज्यों ज्यों लकड़ीका अंश बढ़ने लगता है उसके घुलने लायक पोषक द्रव्य कमने लगते हैं। साथही उनके बीजका पोषक मूल्य बढ़ने लगाता है। चारेके लिये बीज कड़ा होनेके पहले ही फसल काट लेनी चाहिये। मनुष्यके लिये उपजाये जानेवाले अन्न या दलहनके पौधेका सबसे अच्छा अंश मनुष्य ले लेते हैं और पोषक गुणसे विहीन डंठल पशुओंको दिये जाते हैं। अन्न या दलहन जब चारेके लिये ही उपजाये जाते हों, तो पूरी तरह पकनेके पहले ही उन्हें काटना चाहिये; क्योंकि उस हालतमें पशु-आहारके लिये पोषक गुण उनमें काफी रहते हैं। बीज होने और पकनेपर डंठल और बीज दोनों खिलानेकी अपेक्षा उचित समय पर चारा काटनेसे उसमें पोषण अधिक होता है।

चारा ठीक काटनेके लायक होने पर पौधा, धरती और आकाशसे जितना ले सकता है, लिये रहता है। पकनेके दिनोंमें डठल, पत्ते और जड़में जमा सामान बीज बनने और पकनेमें लग जाता है। पौधा जब देखता है कि, उसका अंत आ रहा है तब अपने वंशकी रक्षाके लिये वह सारी शक्ति लगा देता है। अपने शरीरतत्वका कुल वह अधिक बीज बनाने और उन्हें अधिक पुष्ट करनेमें लगाता है, जिससे अपने बीजोंके द्वारा इस जमीनपर जीवित रहनेका अधिकाधिक अवसर मिले। प्रजोत्पत्तिके द्वारा पौधेका जीवन शाश्वत होता है और जीवनकी यह प्रबल आकांक्षा ही उसे मुकुलित और पुष्पित होकर बीज प्रस्तुत करनेको प्रेरित करती है।

इससे यह साफ है कि, चारेके पोषक गुण पर काटनेके समयका बहुत प्रभाव है। वह जितना पकता है उतना ही उसका सेलूलोज या कार्बोहाइड्रेट कठीला या कठिन हो जाता है। कुछ तो घुलने लायक नहीं रहते और जो रह जाते हैं उनमें शक्तिदायक गुण नहीं रहता, क्योंकि वह सरलसे जटिल बन जाते हैं।

६७६. **पौधेके पकनेकी अवस्थायें :** ज्वार और मक्का जैसे पौधोंमें छोटी अवस्थामें बहुत कम पोषक द्रव्य होते हैं। पनीले पत्तेमें जलका अंश बहुत रहता है और प्रोटीन, रेशा, नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट सभी नगण्य होते हैं। पौधेकी बाढ़के साथ नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट बढ़ता है। प्रोटीन और रेशा उसके इतना नहीं बढ़ते। धीरे धीरे स्नेहद्रव्य भी होता है। दाना पूरी तरह पकनेके पहले नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट बढ़कर अंतिम सीमा तक हो जाता है। इसलिये **चारेकी फसल काटनेकी अवस्थाका महत्व बहुत है।**

**६८०. घास छोटेपनमें जादे पोषक है :** अन्न और दलहनसे घासके स्वभावमें भेद है। घासोंके प्रारम्भिक पत्तोंमें प्रोटीन और खनिज अधिक होते हैं। समयके साथ प्रोटीन और खनिजके प्रतिशत अंश घटते जाते हैं और डंठल कठीला होता जाता है। घासके सिलसिलेमें इस ओर अधिक विचार किया गया है। यह भी जान लेना है कि, सूखे चारेसे हरे चारेमें अधिक पचनीय पोषण है। सूखनेमें




चित्र ४१. पौधे पुष्ट होनेकी विभिन्न अवस्थायें

इस चित्रमें पौधेकी चार अवस्थायें दिखायी गयी हैं :—(१) झब्बा या फुंदना अवस्था, (२) रेशमी अंश सूखनेकी अवस्था, (३) चमकीला होनेकी अवस्था और (४) साइलेज या खत्तीमें सुरक्षित रखनेकी अवस्था। चित्रके नीचे ४ पताकाओंसे पौधेकी चार अवस्थाओंके आहार-मूल्योंका भेद स्पष्ट होता है। पताकाके ऊपरी हिस्सेमें कच्चा प्रोटीन, उसके नीचे तन्तु, तन्तुके नीचे नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट और सबसे नीचे डंडेमें स्नेहद्रव्यके अंशोंके परिमाण अंकित कर दिये गये हैं।

कार्बोहाइड्रेटकी घुलनेकी शक्ति कम होने लगती है। कार्बोहाइड्रेटका प्रकार या गुण सिर्फ उसके सूखने पर ही निर्भर नहीं है, वह कैसे सूखता है, इसपर भी निर्भर है। घास जमा करके रखनेमें भी कार्बोहाइड्रेटका पोषक गुण छीजता है।

कार्बोहाइड्रेट और भी कई रूपोंमें पौधेमें होता है। पेक्टिन (pectins) नामकी गोंद और लसीले पदार्थभी कार्बोहाइड्रेट हैं। इनमेंभी आहार गुण है। (६७५)

# अध्याय १९

## पोषण सम्बन्धी आवश्यकताएँ

६८१. **आँकड़ेसे आहारका हिसाब :** अठारहवें अध्यायके ६७३ पैरामें ५०० रत्तलकी दुधार गायका युक्ताहार क्या हो, यह जाननेकी कोशिश की गयी है। इसके अनुसार आहारकी एक चीजसे '९३ रत्तल पचनीय प्रोटीन और ६'१ रत्तल एस० ई० चाहिये। यह देखा गया कि १० से ११ रत्तल सूखी बरसीम ५०० रत्तलकी गाय खा सकती है। उतनी बरसीमसे जरूरतका प्रोटीन मिल जाता है। पर इतने चारेमें जितनी शक्ति होनी चाहिये, नहीं है। इसलिये यह चारा अपूर्ण है। पर आँकड़ा हमें चारा और खिलाईके बारेमें सभी बातें नहीं बताता। इसलिये उनपर निर्भर रहनेसे हम कहींके नहीं रहेंगे।

यह बात नहीं है कि ५०० रत्तलकी गाय १०'६ या ११'८ रत्तल सूखे चारेसे अधिक खा नहीं सकती। औसत मामलोंमें राह दिखानेके लिये यह सुझाव है। यदि चारा स्वादिष्ट हो और वह आवश्यक मात्रामें खनिज तथा भिटामिनसे संयुक्त युक्ताहार हो तो गाय अपने शरीरकी तौलका २½ सैकड़ा सूखा चारा खा सकती है। यह १२½ रत्तल हो जाता है। बरसीममें १०% नमी मान हमलोगोंने उसका हिसाब किया था। पर २½ सैकड़ा देहकी तौलका आधार सौ सैकड़ा सूखा चारा है। उस आधारपर १२½ रत्तल, हिसाबसे उसकी जरूरतके १४ रत्तलके मुकाबले १३'७ रत्तलके बराबर होगा। आँकड़ेके अंक अन्दाजी हैं। इसलिये जरूरतके १४ रत्तलकी जगहपर १३'७ रत्तलसे एक तरह जरूरत पूरी हो जाती है। इसलिये ऐसा मालूम होता है कि ५०० रत्तलकी गायकी वृद्धि के लिये केवल बरसीमका आहार छोड़नेकी जरूरत नहीं। वास्तवमें व्यवहारमें यह पाया गया है कि ऐसे मामलोंमें बरसीम अकेला खिलाया जा सकता है।

पर हमने सभी बातोंपर विचार नहीं किया। हमने बरसीम का सूखा पुआल चुना है। पर कोई कारण नहीं कि सूखा पुआल १२ महीने खिलाया जाय और उसका हरा चारा कुछ कुछ खिलाया जाय। अगर यह नहीं किया गया और गायको लगातार सूखा चाराही खिलाया गया तो भलेही बरसीम पुष्टिकारक हो, फिरभी गायका पोषण नहीं होगा। क्योंकि गायको जिस भिटामिन 'ए' की जरूरत है, वह पुआलमें नहीं है। भिटामिन 'ए' के बिना उसका शरीर टूट जायगा और उसे जितना चारा दिया जायगा सब नहीं खा सकेगी।

६८२. **चारेका चुनाव :** इस उदाहरणसे यह साफ हो जाता है कि चारेके चुनावमें केवल आँकड़े हमें राह नहीं दिखा सकते। यह सिर्फ काम करनेका ढंग बताते हैं। पर चुना हुआ चारा कैसा है और उसकी प्रतिक्रिया पशु शरीरपर कैसी होती है, इसपर भी विचार करना चाहिये। आँकड़ेके आधारपर आहारका हिसाब लगानेके पहले क्या चारा चाहिये और जो चारा मिल रहा है उसके लक्षणका ज्ञान होना जरूरी है। सिर्फ आँकड़ेके अंकोकी मददसे चारेके गुणोंका हिसाब लगाकर देखनेसे ही यह काम नहीं होगा। चारेकी पूरी जानकारीका महत्व सबसे जादे है। इस आधार और संवर्धकोंके व्यावहारिक ज्ञानके आधारपर चारेके चुनावमें ये आँकड़े बड़े कामके हो सकते हैं।

६८३. **कार्बोहाइड्रेट पोषक द्रव्य :** पशु और पौधेके लिये कार्बोहाइड्रेटके बारेमें हम कुछ जान चुके हैं। आहार या चारेमें भी इसका स्थान इतना महत्वपूर्ण है कि इसके बारेमें हमें और जानना चाहिये।

पौधे हवाके कारबन-डाइऑक्साइड के कारबनसे कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं। पहली चीज जो बनती है वह सरल चीनीकी तरहका पदार्थ होती है। पेड़की आवश्यकताके अनुसार यह सरल पदार्थ बदलता रहता है और वह सरल कार्बोहाइड्रेट बदल कर पौधेकी विभिन्न आवश्यकताके लिये जटिल पदार्थोंमें परिणत हो जाता है तथा उसकी बनावटके काममें आता है। ये पदार्थ छाल और पत्तोंमें जमा होकर उनकी रचना करते हैं और इसके बाद उसके कठिनसे कठिनतर अंगोंकी रचना करते हैं। फुनगी मुलायम होती है, फिर कुछ कड़ी बनती है। इसका भीतरी भाग काठका बन जाता है। यहाँ कार्बोहाइड्रेटकी विभिन्न जटिल अवस्था देखी जा सकती है। कार्बोहाइड्रेट कंद, फल और बीजमें

स्टार्चके रूपमें जमा होता है। मीठे फलोंमें कार्बोहाइड्रेट चीनीके रूपमें होते हैं। बीजोंके रेशेवाले कठिन छिलके कार्बोहाइड्रेट और खनिजोंके मिश्रणसे बने होते हैं। (६३०)

**६८४. कार्बोहाइड्रेट पर जीवाणुकी क्रिया :** गायको खिलाये जानेवाले पत्ते, डंठल, कंद, मूल, बीज, खली आदिका अधिकांश भाग कार्बोहाइडेटका ही बना होता है। कार्बोहाइडेटके भौतिक और रसायनिक गुण या धर्म विविध होते हैं। कुछ कार्बोहाइडेट पानीमें घुल सकते हैं और कुछ तेजाबमें। कुछ, तेजाबमें बहुत देरके बाद घुलते हैं और कुछ पशुओंके पेटमें जीवाणुकी क्रियाके बिना घुलते ही नहीं, तथा कुछ पेटसे जैसेके तैसे निकल आते हैं।

जो चीजें अधिक जटिल और कड़ी होती हैं, पेटमें जीवाणु की क्रियासे उनका परिवर्त्तन होता है। कुछ कार्बोहाइडेट मुँहकी लारके टायलिन स्रावके (ptyalin secretion) असरसेही बदलने लगते हैं। सौभाग्यसे इस तरहका स्राव मनुष्यकी अपेक्षा गायके मुँहमें कम है। यदि यह उन्हें भी होता तो बहुतसा कार्बोहाइडेट मुँहमेंही बदलकर चीनी जैसा बन जाता और पशुके पहले पेटसे गुजरनेके समय इस चीनीपर जीवाणुकी क्रिया होती तथा खूनमें पँहुचकर जलनेके पहलेही वह विघटित हो जाती। तब इसकी शक्ति कार्य उत्पादनके बदले देहके तापमेंही बर्बाद हो जाती। चारा पहले पेटमें कुछ टूटता, इसके बाद दूसरे पेटमें उसपर और क्रियायें होती हैं।

पाचक अंगोंमें जो क्रियाशील रस (एनजाइम-enzymes) पैदा होते हैं वह सेलूलाज और दूसरे जटिल कार्बोहाइडेटको नहीं पचा सकते। पागुर करनेवाले पशुओंके पहले तीनों पेटोंमें उनपर जीवाणुकी क्रिया होती है। जीवाणु उन्हें तोड़कर ऑरगेनिक एसिड या जैव तेजाब और शायद सरल चीनी और ग्लूकोज (glucose) बना देते हैं। जीवाणुकी परिवर्त्तन-क्रियासे गैस बनती है और ताप पैदा होता है। जैव तेजाब भी बहुत कुछ चीनी जैसा काम ही करता है। पैदा हुआ ताप शरीर-ताप बनाये रखनेके लिये जितना चाहिये उसके अतिरिक्त नष्ट हो जाता है। पर जितना चाहिये उससे अतिरिक्त सभी चीजें व्यर्थ ही हैं।

**६८५. गायके पहले पेटमें कार्बोहाइड्रेटका टूटना :** जीवाणु पहले पेटमें केवल सेलूलोजको ही नहीं तोड़ते, वह चीनी और स्टार्चपर भी आक्रमण कर सकते

हैं। यदि ये दोनों चीजें यहीं टूट जायँ तो इससे हानि है। क्योंकि छोटी आँत (small intestine) में इनके टूटनेसे अधिक लाभ है। पर यदि ऊपर जीवाणुकी क्रिया हो तो उनका आहार गुण वायु और ताप पैदा होनेके कारण एक तरहसे नष्ट हो जाता है। (६६३)

**६८६. जीवाणुकी क्रियासे सूजन होती है :** स्टार्चपर जीवाणुकी क्रिया बड़े जोरसे होती है। हरा और सुगमतासे फफदने या खमीर उठानेवाला (ferment) चारा खानेसे बहुत वायु बन सकती है। जितनी वायु निकल सके, उससे भी ज्यादे बन सकती है। इसका फल यह हो सकता है कि पेट फूल जाय। जिन गोचरोंमें फलियाँ होती हैं उनमें जो लोग ढोर चराते हैं वह इसकी भयंकरता जानते हैं। रोग-लक्षण प्रगट होनेके कई मिनटके भीतर ही गाय मर सकती है। तन्दुरुस्त गाय चरते चरते मर सकती है।

पेटमें सेलूलोज तोड़कर जीवाणु एक बड़ा उपकार करते हैं। कोषोंके भीतरकी चीजें वह खोल देते हैं, इसलिये वह सोखे जा सकते हैं या उनपर प्रतिक्रिया हो सकती है।

**६८७. कार्बोहाइड्रेट जलावनकी लकड़ी तक में है :** कार्बोहाइड्रेट कितनी ही सूरतोंमें होता है। उसकी घुलनेकी कई अवस्थायें होती हैं। जैसे चीनीसे स्टार्च, अर्ध-सेलूलोजसे सेलूलोज और सेलूलोज से जलावनकी लकड़ी तक। इससे स्नेह और प्रोटीन भी पैदा हो सकते हैं। स्नेहमें कारबन जमे हुए रूपमें होता है और ऑक्सीजनका अनुपात बहुत कम है। स्नेह (चर्बी) कार्बोहाइड्रेटसे बनती है।

**६८८. कार्बोहाइड्रेट—प्रोटीन और स्नेहकी जननी :** पौधोंमें प्रोटीन होनेके लिये कार्बोहाइड्रेट मातृतत्व माने जाते हैं। प्रोटीनका नाइट्रोजन धरतीसे मिलता है, पर मूल रूपमें वह आकाशी वायुकी चीज है। इसलिये काठ, स्नेह और प्रोटीनका आधार वायुही है। यद्यपि, कार्बोहाइड्रेटसे प्रोटीनको अधिक महत्व देते हैं। फिरभी पशुके पोषणमें कार्बोहाइड्रेटका महत्वपूर्ण हाथ है।

**६८९. कार्बोहाइड्रेट प्रोटीनकी चाह कम कर देता है :** यदि चारेमें उचित अंशमें कार्बोहाइड्रेट हो तो प्रोटीनकी कम चाह होगी। यदि आहारमें पचनीय कार्बोहाइड्रेटकी प्रचुरता हो तो प्रोटीनका हजम कम हो जाता है। इसलिये पशुके आहारका आधार स्नेहसहित कार्बोहाइड्रेटकी यथेष्ट मात्रा होनी चाहिये।

१,००० रत्तल देहकी तौलके लिये ६ रत्तल पचनीय कार्बोहाइड्रेट चाहिये। यह केवल निर्वाहके लिये है। दूध या वृद्धिके लिये यह मात्रा बढ़ानी होगी। मौरीसनके आँकड़ेके (६७३) अनुसार ५०० रत्तलकी गायको वृद्धिके लिये ७·०३ रत्तल कुल पचनीय पोषण चाहिये। स्नेह और प्रोटीन इसीमें शामिल हैं। यही सब, सिर्फ जीवन-निर्वाहके लिये केवल ३ रत्तल चाहिये। जिस गायके दूधमें ४·५ सैकड़ा मक्खन होता है उसे निर्वाहके प्रयोजनके अतिरिक्त प्रति रत्तल दूधके लिये कुल पचनीय पोषक द्रव्य ·३३ से ·३५ रत्तल चाहिये। (६७२)

**६६०. चर्बीके रूपमें कार्बोहाइड्रेट जमा रहता है :** देहकी बनावट और निर्वाहके बाद जो कार्बोहाइड्रेट और चर्बी बचती है वह देहसे फेंकी नहीं जाती किन्तु देहके ही भीतर बदलकर चर्बीके रूपमें रह जाती और देहकी आवश्यक अंश बन जाती है। इससे देहमें गोलाई और चिकनाई आती है। उपवासके समय पहले यही चर्बी तापके लिये काममें आती है जिससे जीवन-क्रिया चालू रहती है।

अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट या चर्बी जरूरी प्रयोजनके लिये चर्बीके रूपमें देहमें जमा रहती है पर इसके अलावे भी उनका दूसरा प्रयोजन है। कार्बोहाइड्रेट या चर्बीका यह दूसरा प्रयोजन कार्यकी उत्पत्तिके लिये है। इस हैसियतसे कार्बोहाइड्रेटका वही काम है जो इंजनमें जलावनका होता है। इंजनसे जितना ही काम लो उतनाही जलावन जलाना होता है। जला हुआ सारा ज़लावन उत्पादनमें ही नहीं लगता। इस क्रियामें कुछ नष्ट भी हो जाता है। ऐसा अन्दाज है कि इंजनमें जिस तरह तापसे काम पैदा होता है उसमें ताप-शक्तिके सिर्फ २५ सैकड़ेका उपयोग उत्पादनमें होता है। बाकी ताप विकीर्ण होकर (radiation) रगड़ (friction) और अपूर्ण उपयोगसे नष्ट हो जाता है।

**६६१. शक्तिका साधन बैल :** शक्तिके लिये बैल, भाफ या तेलके इंजनसे कम नहीं है। कई प्रयोगोंके बाद पाया गया है कि पशु जितना खाते हैं उससे अपनी निर्वाह-शक्तिकी आवश्यकता पूरी करनेके बाद भी खाये हुए भोजनकी कुल शक्तिकी एक तिहाईसे एक चौथाई तक काममें परिणत करते हैं। जलावनसे शक्ति तैयार करनेके यंत्र (जैसे तेलका इंजन आदि) भी इतना ही करते हैं। पशु और तेल इंजनमें यही भेद है कि इंजनमें डाला गया सौ सैकड़ा तेल जल जाता है पर बैल चारारूपी जलावन आधा ही जलाता है और आधा अपचनीय पदार्थके रूपमें बाहर निकाल देता है।

पशु और इंजनके स्वभावमें भिन्नताके कारण दूसरे भेद भी हैं। जीवित प्राणी थक जाता है पर यंत्रमें यह बात नहीं होती। यदि तेल और उसके चलानेका सभी प्रबन्ध ठीक रहे तो इंजन रात दिन चल सकता है। अच्छा चलनेके लिये सफाई और विश्राम जरूरी है। पर यह जलावन या जलनेके तरीकेकी त्रुटिके कारण हैं।

६१२. **प्रोटीनकी आवश्यकता :** प्रोटीन हर प्राणीके लिये आवश्यक है (८५४)। जीवित कोष (cell) के भीतरका जीवनरस जिसे अंग्रेजीमें प्रोटोप्लाजम (protoplasm) कहते हैं और उसके मूल-कण (nucleus) में भी प्रोटीन होता है। पौधोंमें पत्ते तथा उत्पादक भागोंमें प्रोटीन अधिक होता है। पशुओंमें प्रोटीनकी पेशियाँ, भीतरी अवयव, उपास्थि, संयोजक तन्तु, चमड़ा, केश, नख, खुर और सींगका बाहरी आवरण आदि बनते हैं। स्नायु, मस्तिष्क-तत्व और प्रजोत्पादक-तत्वका भी मुख्य घटक प्रोटीन है। देहसे सारा प्रोटीन निकाल देनेसे केवल हड्डी शेष रहती है। इसीलिये प्रोटीनका इतना महत्व है। इसके बिना शरीरकी रचना और मरम्मत रुक जायेंगी। इसके बिना आहार भी अयुक्त होगा और इसके बिना ढोर जादे दिन जी भी नहीं सकेंगे। पशुकी निर्वाहकी आवश्यकता पूरी करनेके बाद उससे काम लेना है, तब भी उसे कुछ और प्रोटीन देना चाहिये जिससे कि वह कामके लिये जरूरी कार्बोहाइड्रेट काममें ला सके। काम करनेसे पशुका पेशी-तंतु या देहका प्रोटीन कुछ भी अतिरिक्त नहीं जलता, यह बार बार देखा गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कामके लिये प्रोटीनकी कुछ जरूरत नहीं है। काम करनेके लिये केवल शुद्ध कार्बोहाइड्रेट ही चाहिये। पर अनुभवसे पता चलता है कि कार्बोहाइड्रेट काममें लानेके लिये कुछ प्रोटीनभी खिलाना होता है। नहीं तो कार्बोहाइड्रेट कम पचता है।

यह अब निश्चय हो चुका है कि यदि उचित परिमाणमें प्रोटीन न हो तो आसानीसे पचा कार्बोहाइड्रेट देहमें नहीं लगता।

मौरिसनने "फीड्स एन्ड फीडिंग" में लिखा है कि पाचनके कई प्रयोगोंमें उन्होंने पाया है कि पागुर करनेवाले पशुओंको ज्वार का युक्त और अयुक्त आहार खिलानेसे नीचे लिखे अनुसार पचता है :

# आँकड़ा—५४

## युक्त और अयुक्त आहारकी पचनीयता

| | युक्ताहारमें कितना पचा | अल्प-प्रोटीन आहारमें कितना पचा |
|---|---|---|
| प्रोटीन .... | ८१ सैकड़ा | ४७ सैकड़ा |
| रेशा (तन्तु) .... | ५५ ,, | ४४ ,, |
| नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट | ९२ ,, | ५१ ,, |
| चर्बी .... | ७६ ,, | ५१ ,, |

युक्ताहारमें पचनीयता काफी है। पर स्वल्प-प्रोटीनवाले आहारमें पचनीयता उसी तरह कम है। मौरीसनका कहना है कि दूसरे अनाजोंके लिये इसी तरहका उदाहरण है।

**६६३. पाचन शक्तिका ह्रास :** स्वल्प प्रोटीनयुक्त आहारके कारण पाचन शक्तिका ह्रास हो जाता है। इसीलिये तात्विक दृष्टिसे जितना प्रोटीन चाहिये उससे अधिक खिलाना लाभदायक है। मौरीसनके अनुसार जब पोषक अनुपात १ : ८ या १ : १० से बड़ा हो तब पाचनका ह्रास हो जाता है।

ऊपर कहा हुआ सुपच्य कार्बोहाइड्रेट जिससे पाचनका ह्रास होता है, वह अधिक स्टार्चवाले अन्न हैं। इसका कारण यह है कि पागुर करनेवालेके पेटमें जो जीवाणु अपना भोजन पानेके लिये सेल्लूलोजपर आक्रमण करनेवाले होते हैं, वह सुपच्य स्टार्च अधिक पसन्द करते हैं और उसपर आक्रमण करने लग जाते हैं। इससे केवल सेल्लूलोज और रेशा ही कम पचता हो ऐसी बात नहीं हैं। कच्चा प्रोटीन और नाइट्रोजन-रहित एक्सट्रैक्ट भी कम पचता है; क्योंकि उनके कोषकी दीवालोंपर कुछ असर नहीं होने से उसके भीतरकी चीजें बन्द ही रहती हैं और उनपर पाचक रसोंकी क्रिया कुछ नहीं होती है। पर यदि स्टार्च या चीनीके आहारमें प्रोटीन-प्रचुर आहार मिला दिया जाता है तो यह ह्रास नहीं होता, क्योंकि, प्रोटीन और नाइट्रोजन-रहित पोषकोंका संतुलन बना रहता है। अधिक प्रोटीन मिलानेसे जीवाणु उत्तेजित होकर और जोरसे काम करते हैं तथा चारेके अधिक कठिन अंश जैसे रेशा आदिसे भिड़ जाते हैं।

६६४. **प्रोटीनका बनना :** प्रोटीन एमिनो तेजाबों (amino acids) के योगसे बनते हैं। पशु-शरीरमें विभिन्न प्रोटीन पदार्थोंके बननेके लिये इन एमिनो तेजाबोंके कई तरहके योग (groupings) या दल हो जाते हैं। २० से ऊपर एमिनो तेजाब हैं। इसलिये इनके असंख्य योग या दल हो सकते हैं, जिससे इन बीसेक एमिनो तेजाबोंसे विभिन्न प्रकारके प्रोटीन पदार्थ बन सकते हैं।

कार्बोहाइड्रेट और धरतीके नाइट्रोजनके योगसे पहले पौधोंमें ही मूल प्रोटीन बनता है। हम यह भी जानते हैं कि पौधे हवासे नाइट्रोजनका संग्रह करनेवाले जीवाणुओंके द्वारा नाइट्रोजन पाते हैं। ऐसे जीवाणु (azotobacter)—अजेटोबैक्टर) आदि पौधेके तंतुमें रहते हैं। वहाँसे जड़ोंमें जाकर नाइट्रोजन-प्रचुर गाँठे बनाते हैं। फलीदार पौधे और चारेके लिये उन पौधोंके महत्व पर विचार करते समय इन जीवाणुओंके बारेमें हम और जानेंगे। (८४४-४७)

६६५. **एमिनो तेजाब :** पौधेके प्रोटीनको जैसेका तैसा पशु काममें नहीं ला सकते। उनके पेटमें यह टूटकर एमिनो तेजाब बन जाते हैं। ये एमिनो तेजाब घुलने लायक रूपमें रक्तमें जाते हैं। फिर पशुके विभिन्न अंगोंमें अंगोंकी आवश्यकताओंके अनुसार उनके विभिन्न प्रकारके योग या दल बन जाते हैं। एमिनो तेजाब रक्तमें मिल उसके साथ बहता है और देहके सूक्ष्मसे सूक्ष्म भागोंमें भी जाता है। जैसी जरूरत हुई उन भागोंकी मरम्मत या रचना करता है और अंग-विशेषके विशेष प्रोटीनके लिये विशेष योग या दल बना लेता है।

६६६. **जरूरी एमिनो तेजाब :** ये एमिनो तेजाब समान मूल्यके नहीं हैं, अर्थात् सब एक प्रकारके नहीं हैं। कुछ ऐसे हैं जो पशु शरीरमें परस्परके मेलसे विशेष प्रकारके बन सकते हैं। पर कुछ ऐसे हैं जिनका चारेमें रहना जरूरी है। इनके बिना शरीरके परिवर्त्तन और रचनाका काम नहीं हो सकता। इसलिये एमिनो तेजाब जरूरी और कुछ बेजरूरी माने गये हैं। चारेके प्रोटीनमें जरूरीका होना आवश्यक है। यह भी हो सकता है कि कुछ बेजरूरी तेजाबका विश्लेषण पशु अपने शरीरमें कर लें। पशु जरूरी को तोड़कर उनसे बेजरूरी अवश्य बना सकते हैं। अभी जितना मालूम है उसके अनुसार नीचे लिखे एमिनो तेजाब जरूरी हैं :

(१) लाइसीन (Lysine)
(२) ट्रिप्टोफेन (Tryptophane)
(३) हिस्टिडीन (Histidine)
(४) फिनाइलएलेनीन (Phenylalanine)
(५) भेलीन (Valine)
(६) लिउसीन (Leucine)
(७) आइसोलिउसीन (Isoleucine)
(८) थ्रियोनीन (Threonine)
(९) आर्जिनीन (Arginine)
(१०) मिथिओनीन (Metheonine)

इन १० के सिवा ११ वाँ साइस्टीन (Cystine) भी जरूरी समझा जाता था। साइस्टीन गन्धक-युक्त मुख्य एमिनो तेजाब है। अब यह सिद्ध हो गया है कि यदि १० वाँ मिथिओनीन मौजूद हो तो साइस्टीनकी जरूरत नहीं भी हो सकती है। मिथिओनीनमें भी गंधक है। ग्लाइसीन (Glycine) बेजरूरी पर बहुत महत्वका एमिनो तेजाब है। इसकी जरूरत बहुत है और पशु शरीरमें दूसरी जरूरी तेजाबोंसे इसका संश्लेषणभी हो सकता है।

६६७. **जरूरी एमिनो तेजाब अवश्य हों :** खूनमें सभी जरूरी एमिनो तेजाब उचित अनुपातमें जरूर रहें। जरूरीमें से यदि एकभी गायब रहे तो प्रोटीनके कुछ दल नहीं भी बन सकते हैं। इससे बाढ़ रुक जायगी या ह्रास और क्षयकी मरम्मत नहीं हो सकेगी। यदि जरूरी तेजाबका अंश जितना चाहिये उससे कम है तो शरीर रचना और मरम्मतके लिये एमिनोतेजाबके अभावके हिसाबसे वह आहार व्यर्थ है। मानलो शरीर-तन्तुकी रचनाके लिये कोई एमिनो तेजाब दो सैकड़ा चाहिये, पर दिये गये चारेमें एक सैकड़ाके लायकही वह है, तो आवश्यक वृद्धिके लिये उसका दूना चारा चाहिये।

पर यदि चारेमें कमी पूरी करनेवाले जरूरी एमिनो तेजाब हैं और बेजरूरीका अभाव है तो उससे मामूली काममें कोई गड़बड़ी नहीं होगी। जैसे कि दूधके प्रोटीनमें ग्लाइसीनका अभाव है। यह महत्वके पर बेजरूरी प्रोटीनोंमेंसे एक है। यदि दूधमें मौजूद जरूरी प्रोटीन काफी खिलाये जायँ तो इससे हानि नहीं होगी। शरीरमें ही दूसरी चीजोंसे ग्लाइसीन बन जायगा।

जरूरी एमिनो तेजाबके भी दो वर्ग हैं। एक जो निर्वाह और वृद्धि दोनोंके लिये चाहिये और दूसरा केवल वृद्धिके लिये ही। ये दूसरे यदि बढ़नेवाले पशुओंमें न हों तो उनकी वृद्धि रुक जायगी। पर यदि यह प्रौढ़ पशुओंको जिन्हें केवल निर्वाहकी आवश्यकता है, न मिले तो कोई हर्ज नहीं। मक्काकी मुख्य प्रोटीन जीन (Zein) है। इसमें दो जरूरी एमिनो तेजाब लाइसीन और ट्रिप्टोफेन का अभाव है। मक्कामें और दूसरे प्रोटीन हैं जो इनकी कमी कुछ हद तक पूरी कर सकते हैं, वृद्धिकी नहीं। तरुण पशुओंकी केवल मक्काके चारेसे पूरी वृद्धि नहीं हो सकती।

एमिनो तेजावके प्रयोग चूहोंपर किये गये हैं। चूहे बहुत जल्दी प्रजोत्पादन करते हैं। इसलिये उनकी तीन पीढ़ी तक पर आहारके प्रभावका अध्ययन साल भर के भीतर ही हो सकता है। जो बात चूहोंपर लागू है वह साधारण तौरपर सभी स्तनपायियों पर है। पर पागुर करनेवाले इस नियमके अपवाद (व्यतिक्रम) हैं, क्यों कि उन्हें चार पेट होते हैं। उनके पचनेकी विशेष विधि है जो दूसरोंमें नहीं है। उनके पहले पेटमें जीवाणु आहारको तोड़ देते हैं। आहार सामग्री जीवाणुके साथ जब बादके पेटोंमें पँहुचती है तब बहुतसे जीवाणु उसीके साथ पच जाते हैं। इन जीवाणुओंकी देह से भी कुछ प्रोटीन, कुछ एमिनो तेजाब, जिसका आहारमें अभाव है—मिल सकता है।

६६८. **अलसीको (तीसी) खली—विशिष्ट चारा :** उदाहरणके तौर पर यह कहा जा सकता है कि एकमात्र प्रोटीन पूरकके रूपमें अकेली अलसीकी खली, अन्न और सूखी घासके साथ ढोरको खिलानेसे उत्कृष्ट परिणाम मिलता है। यही चीज सूअरके बच्चोंके लिये सन्तोषदायक नहीं है। इनके लिये ऊपरके कहे चारेके साथ किसी दूसरी चीजका प्रोटीन देना चाहिये। गायके लिये अलसीकी खली उत्कृष्ट वस्तु है। दूधकी जगह पर बछरूको दूसरी चीज खिलानेकी जरूरत हो तो पुष्टईके रूपमें अलसीकी खली खिलानेसे बड़ा अच्छा परिणाम होता है। वास्तवमें कई मिश्रित पुष्टई हैं जो बछरूके लिये दूधकी जगह पर उपयुक्त मानी जाती हैं। उन सबमें अलसीकी खली ही मुख्य वस्तु है।

**जीव-शास्त्रीय मूल्य** (Biological value) : यह समझ लेना चाहिये कि किसी आहारमें कुछ एमाइडोंका रहना ही बस नहीं है। उनमें कौनसे जरूरी एमाइड हैं या उनसे कितना निर्वाह और वृद्धि होती है इससे उनकी महत्ता नापी जाती है। यही उनका जीव-शास्त्रीय (प्राणि और वनस्पति शास्त्र) मूल्य है।

६९९. **प्रोटीनका प्रकार :** दूधके प्रोटीनमें यथेष्ट साइस्टीन और मिथिओनीनका यद्यपि अभाव है, फिरभी वह पूर्ण प्रोटीन है। पर दूधमें लाइसीन और ट्रिप्टोफेनकी इतनी प्रचुरता है कि, उससे दूसरे आहारोंके प्रोटीनोंकी कमी पूरी होती है। प्रतिशतके द्वारा प्रोटीनका प्रकार बतानेकी चाल है। कुछ ही आहारका मूल्य सौ सैकड़ा तक होता है। ७५ सैकड़ा जीव-शास्त्रीय मूल्यसे यह पता चलता है कि, औसतसे यह प्रोटीन काफी अच्छा है। ६० सैकड़ासे नीचेके मूल्य यह बताते हैं कि प्रोटोन ऊँचे दर्जेका नहीं है। अन्नके प्रोटीनका जीव-शास्त्रीय मूल्य ६० से ७० के बीच है और दूधका ९० या उससेभी अधिक है। (६०७)

७००. **ऊंचे मूल्यके प्रोटीन :** साधारण तौरपर कह सकते हैं कि, अन्नके अंकुरमें उसके शेष अंशसे अच्छा प्रोटीन है। गेहूँके आटेसे उसके चोकरका प्रोटीन अच्छा है। इस लिये चोकरका प्रोटीन-मूल्य संपूर्ण दानेसे श्रेष्ठ है। (६०८) चावलके चोकरमें भी कुछ मूल्यका प्रोटीन है, पर यह चीज ऊँचे दर्जेकी प्राटीन-पुष्टई नहीं मानी जा सकती। क्योंकि, इसमें खनिजोंकी कमी है। (६०३)

फलियोंमें दलहन और पत्तियोंका प्रोटीन-मूल्य अलग अलग है। सोयाबीन और मंगफलोके प्रोटीनका मूल्य बहुत ऊँचा है। यदि उसे अन्नके साथ मिलाकर उसकी कमी पूरी की जाय तो बड़ा अच्छा परिणाम होता है। अन्य अनेक सेमों और दलहनोंका प्रोटीन सोयाबीनसे घटिया है। उनके मूल्यकी कमीका कुछ सुधार अन्नमें मिलाने से होता है। विभिन्न चारोंके मूल्यका विचार करनेके समय अलग अलग चोजके प्रोटीनके मूल्यपर विचार किया जायगा।

बिनौला, अलसो और नारियलके प्रोटीनका पुष्टिकारकोंमें ऊँचा स्थान है। (६१२-'१५)। रूखे चारेमें लूसन (alfalfa) और क्लोभर (clover) ऊँचे दर्जेकी हैं। ऊँचे दर्जेके प्रोटीनके लिये इन पर निर्भर रह सकते हैं।

घासके चरागाहसे भी ऊँचे दर्जेका प्रोटीन प्राप्त हो सकता है। घासके कोंपल प्रोटीन-मूल्यमें लगभग दूधके समान ही हैं। धरतीकी बनावट, उपजाऊपन आदिका चारेके प्रोटीनके जैव मूल्यपर प्रभाव पड़ता है। एकही चारेका एक स्थान पर एक जैव मूल्य है और दूसरे स्थान पर दूसरा। (८४८-'५७)

७०१. **प्रोटीनकी आवश्यकतायें :** गायकी प्रोटीनकी आवश्यकताओंके प्रयोगोंका अन्त नहीं है। किसी किसीने १,००० रत्तलकी गायके लिये बहुत कम अर्थात् दैनिक ०·२१ से ०·२७ रत्तल पचनीय प्रोटीनकी आवश्यकता

निर्धारित की है। कोई इसे अपवाद मानते हैं। ढोरके पोषणकी समस्याके विषयमें अर्मसबी (Armsby) एक विशेषज्ञ हैं। वह १,००० रत्तलकी गायके निर्वाहके लिये प्रति दिन ०·४३ से ०·७५ रत्तल पचनीय प्रोटीन आवश्यक मानते हैं। इस आधार पर वह ·५५ रत्तलके औसत पर जोर देते हैं और १,००० रत्तलको गायके निर्वाहके लिये प्रति दिन ·६ रत्तल पचनीय प्रोटीनकी सिफारिश करते हैं।

विभिन्न प्रकारके पशुकी जरूरत विभिन्न चारेसे निकालना प्रायः असंभव कार्य है। कोई चारा चुननेके लिये उसमें कितना प्रोटीन और कितना पचनीय प्रोटीन है यह जानना चाहिये। सिर्फ पचनीयता जाननेसे अधिक लाभ नहीं होगा, क्योंकि उसकी बनावटका सवाल आगे आवेगा। क्या इसमें जरूरी प्रोटीन है? यदि उसमें कोई जरूरी एमिनो तेजाबका अभाव है तो उसका पता लगाना होगा, और वह कहाँ मिले यह खोजना होगा। जाँच यहाँ भी खतम नहीं होती। दूसरा सवाल चारेके प्रोटीनको बनावटके जीव-शास्त्रीय या जैव मूल्यके बारेमें होगा। यह क्या ५०, ६० या ७० हो सकता है? छपे साहित्यसे कुछ ही सवालोंके जवाब मिल सकेंगे और वह भी चारेके कुछ ही मदोंके बारेमें।

फिरभी एमिनो तेजाब ओर उनके जीव-शास्त्रीय मूल्यके बारेमें बहस निष्प्रयोजन नहीं उठायी गयी है। जब इसका व्यौरा मालूम नहीं है तो यह अच्छा ही है कि हम इस समस्याकी कठिनता अनुभव कर रहे हैं। यद्यपि छपे आंकड़ोंसे स्पष्ट निष्कर्ष नहीं निकल सकता है, फिर भी क्या चाहिये इसका आभास उनसे मिल जाता है। गृहस्थ जितने ज्यादे साधनोंसे चारेमें प्रोटीन मिला सके, अच्छा है। यदि एकमें कमी है तो दूसरा उसे पूरा करेगा। यदि वह ऐसा करता रहे तो बुद्धिमान् गृहस्थोंके अनुभव और कार्यप्रणाली से उसका रास्ता साफ हो जायगा। सिर्फ गणितके शुद्ध अंक किसी कामके नहीं हैं। कई प्रकारोंका मिलाना, चारेमें पचनीय प्रोटीनके प्रतिशतका ज्ञान और इसके साथ समस्याकी साधारण जानकारीसे उसे हल करनेमें सहूलियत होगी। इससे खिलानेकी व्यवस्था सुधरेगी।

१,००० रत्तल वजनकी गायके निर्वाहके लिये ·६ रत्तल पचनीय प्रोटीनके आधारपर हिसाब लगाना व्यावहारिक उपाय है। इसके अलावे पशुको जरूरतके अनुसार दूध, काम या वृद्धिके लिये भी कुछ और देना है।

**७०२. खनिजकी जरूरतें :** चारेके पोषक द्रव्योंके पचाने और देहमें लगाने (assimilation) में खनिजोंका बड़ा हाथ है। खनिज होते हैं थोड़ेसे, पर उनका प्रभाव बहुत बड़ा है। जैसे कि, रक्तमें लोहा बहुत कम होता है, पर इस जरासे लोहेके कारण ही ऑक्सीजन और कायाकल्पकी (oxidation and rejuvenation) क्रियायें हो सकती हैं।

यह बार बार पाया गया है कि, जिस चारेमें खनिजोंका अभाव होता है वह त्रुटिपूर्ण ही नहीं होते विषैले भी होते हैं। जिस चारेसे कुछ खनिज नमक निकाल दिये गये हैं वह पशुकी तन्दुरुस्ती बनाये नहीं रख सकता। यदि खनिजोंकी मार्मिक कमी हुई तो कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और स्नेहका सबसे अच्छा योग देनेपर भी पशु भूखा मर जायगा।

भूखा रहनेकी अपेक्षा खनिज-रहित आहार खिलानेसे पशु जल्दी मरेगा। ऐसी हालतमें आहार विषका काम करता और प्राण लेता है। उदाहरणके लिये यह कहा जा सकता है कि, यदि गायके आहारमें मैगनीशियम एकदम न हो तो उसे एक तरहका धनुष्टंकार हो जाता है और वह जल्दी मर जाती है। आहारमें खनिजोंकी कमीकी बुराई पर अगले अध्यायमें पूरी तरहसे विचार किया गया है। मैगनीशियमकी चर्चा केवल उदाहरणके लिये की गयी है। (६०६)

**७०३. चरागाहोंका खनिज-योग :** पौधोंमें खनिज स्वभावसे ही होते हैं। साधारण तौर पर मिश्रित आहार ही दिया जाता है। संवर्धक अच्छी तरह जानते हैं कि, कौनसा चरागाह तन्दुरुस्तीके लिये ठीक है और कौन नहीं। उदाहरणके लिये श्री लिंटन (Linton) ने अपने "एनिमल न्युट्रीसन एन्ड भेटेरिनरी डायटेटिक्स" (Animal Nutrition and Veterinary Dietetics, 1927) के पृष्ठ ३१ में रमनी मार्श (दलदल) चरागाहकी बात लिखी है।

"व्यावहारिक किसानोंको यह बात बहुत दिनों से मालूम है कि चारागाहोंके आहार-मूल्योंमें बहुत फर्क होता है। यह फर्क इतना तक होता है कि कोई चरागाह प्रति एकड़ ३ पाउन्ड मूल्यमें भी सस्ता माना जाता है और कोई १० शिलिंग प्रति एकड़में भी मँहगा। यह फर्क घासके परिमाण या उसके प्रोटीन और स्टा० ई० के हिसाबसे रासायनिक तत्वोंके फर्कके कारण नहीं है। मुटानेवाले ओर बेमुटानेवाले दोनों तरहके चरागाहोंके आहार-मूल्योंका फर्क पशुओंमें बहुत देखनेमें आता है। श्री हाल और श्री रसल (Hall and Russel) साधारण रासायनिक विश्लेषणसे

प्रोटीन और एस० ई० मूल्यका बड़ा अन्तर निकाल इस फर्कका कारण निकालनेमें असफल रहे। हालमें श्री गोडेन (Goden) ने कुछ प्रयोग किये हैं। उन्होंने सिद्ध किया हैं कि, विभिन्न गोचरोंके आहार मूल्योंका अन्तर उनके प्रोटीन और एस० ई० के कारण नहीं है। उसका कारण उनके चूने और फॉस्फेरिक तेजाबकी मात्रा है।··· हर मैदान (चरागाह) के दो दो आँकड़े दिये गये हैं। इनमें पशुओंने जिन भागोंमें खाया उनकी और जिनमें नहीं खाया उनकी बनावटें दिखायी गयी हैं।

## आँकड़ा—५५

**७०४. रमनी मार्श चरागाहोंकी** (Romney marsh pastures) **बनावटमें खनिज (गोडन) :**

| | CaO % | $P_2O_5$ % | $Na_2O$ % | $K_2O$ % | Cl % | N % | रेशा % | कुल राख % | सिलिका (silica) रहित राख |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **ओगर्स।वेक मुटानेवाला मैदान—** | | | | | | | | | |
| खाया ... | १·०२६ | १·०१० | ०·२२३ | ४·१६० | १·२७२ | ३·०२२ | १९·३६ | १२·७८ | ८·३२ |
| बिन खाया ... | ०·७३८ | ०·५६४ | ०·३४९ | २·२४७ | ०·८२० | १·५९४ | ३०·०६ | ८·६९ | ४·८५ |
| **बिन। मुटानेवाला मैदान—** | | | | | | | | | |
| खाया ... | ०·८८८ | ०·७३५ | ०·१२७ | ३·१८० | १·०९२ | २·८४० | २१·५२ | ११·७१ | ७·०७ |
| बिन खाया ... | ०·६७१ | ०·३८६ | ०·१७७ | १·६११ | ०·५१५ | १·२३७ | ३१·१५ | ७·०० | ३·८३ |

७०५. **गोचरोंके मूल्योंका अन्तर :** "इंगलैन्ड, स्कॉटलैन्ड और वेल्सके पहाड़ी-गोचरों और इंगलैन्ड तथा वेल्सके जोते हुए गोचरोंका अध्ययन करनेसे विभिन्न प्रकारोंके घासके चरागाहोंके आहार मूल्योंका अंतर उनके खनिज घटकोंसे किया जाता है, यह साफ मालूम होता है। उनके एस० ई० से इसका कुछ सरोकार नहीं है। नीचेका आँकड़ा कुछ ऐसे परिणाम दिखाता है जो गोडनको मिले थे।

## आँकड़ा—५६

### गोचरोंकी रचनामें खनिज : सूखी सामान

| | CaO % | $P_2O_5$ % | $Na_2O$ % | $K_2O$ % | Cl % | N % | सिलिका-रहित राख % | रेशा % | पोषक ताप (calorie) प्रति सौ ग्राम |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पहाड़ी गोचर (इंग्लैन्ड और वेल्स) | | | | | | | | | |
| खाया ... | ०'४६४ | ०'१५६ | ०'१५१ | २'३९८ | ०'५६१ | २'२११ | ४'६६३ | २४'६ | २७७'० |
| बिन खाया ... | ०'२६४ | ०'३२५ | ०'१६० | १'५३३ | ०'२९१ | १'८३१ | २'७३३ | २९'६ | २६८'० |
| पहाड़ी गोचर (स्काटलैन्ड) | | | | | | | | | |
| खाया ... | ०'५५९ | ०'६०४ | ०'४०६ | २'५९६ | ०'५९९ | २'५४० | ५'४८६ | २५'२ | २७०'६ |
| बिन खाया ... | ०'३०४ | ०'३७१ | ०'१६६ | १'६१० | ०'३३४ | १'८२० | ३'२३२ | २९'३ | २६३'९ |
| पैदाकी हुई घास | | | | | | | | | |
| खाया .... | १'१८६ | ०'८५४ | ०'२३६ | ३'४५० | १'०७९ | ३'२३८ | ७'६३० | २०'६ | २७३'० |
| बिन खाया ... | ०'८३५ | ०'५७० | ०'२३१ | २'३८१ | ०'७८४ | १'८७३ | ५'३०९ | २८'६ | २५३'० |

"उद्धृत अंक गोचरोंके आहार-मूल्यके बड़े अन्तरको स्पष्ट करते हैं।"....

ऊपरका आँकड़ा देखनेसे पता चलता है कि चारेकी पसंदगी राखके प्रतिशतसे होती है। कम प्रतिशतवाले से अधिक प्रतिशतवाले श्रेष्ठ होते हैं। ढोर भी चारेके मूल्यको ठीकसे समझते हैं। जो अश नहीं खाया गया है वह खाये गये की अपेक्षा खनिजोंमें हीन है यह देखा जा सकता है।

भारतमें भी जिस जगह चरागाहोंमें खनिज द्रव्य अधिक हैं वहाँके ढोरभी अच्छे हैं। मद्रासकी प्रसिद्ध नस्लोंके इलाकेकी धरती और गोचरोंमें चूना अधिक है।

७०६. **खनिजकी जरूरत अन्योन्याश्रित है**: कैलशियम महत्वकी खनिजोंमें एक है। पशु-शरीरकी राखमें ९० प्रतिशत कैलशियम, फॉस्फोरस और सोडियम होते हैं। गायके शरीरकी तौलका दो प्रतिशत कैलशियम-ऑक्साइड अर्थात चूना है। फॉस्फोरिक तेजाब इसीके लगभग है।

खनिजकी जरूरत एक दूसरे या कई पर अन्योन्याश्रित है। उचित अनुपातसे किसीका अतिरेक सबके लिये हानिकारी है। उसी तरह एककी कमी दूसरे या कई दूसरों की उपयोगिता कम कर देती है। उदाहरणके लिये पोटाशियम और सोडियम की जरूरतमें कुछ सम्बन्ध है। यदि पोटाशियम और सोडियमका मामूली अनुपात गड़बड़ा जाय, सोडियमसे पोटाशियम बहुत जादे हो तो इससे सोडियम अंगमें नहीं लगेगा। यही नहीं, जादा होनेपर भी पोटाशियम बिना पचे बाहर निकल जायगा। लेकिन यह क्रिया केवल पारस्परिक सम्बन्धसे ही संचालित नहीं होती है। दूसरे कारणोंके रहनेसे परिणाम विषम बन जाते हैं। खनिज आपसमें एक दूसरेसे गुँथे रहते हैं, एक दूसरेपर प्रभाव डालते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं। फॉस्फोरसकी कमी की प्रतिक्रिया कैलशियम पर होती है, जिसके कारण कैलशियम अंगमें नहीं लगता। उसी तरह कैलशियमकी अधिकता की प्रतिक्रिया होती है। फिर भी कैलशियम पचानेके लिये कुछ हदतक फॉस्फोरस लाभकारी है। सोडियमकी कमी (साधारण नमकमें सोडियम, सोडियम क्लोराइडके रूपमें होता है) से सभी तरहका दुष्पोषण और कमियाँ होती हैं। इसका सुधार चारेमें थोड़ासा नमक मिलाकर किया जा सकता है।

७०७. **युक्ताहारका मूल्य**: श्री मिचेल (Mitchell) ने युक्ताहार पर एक लेखमें ('साइन्स' १९३४, पृ० ५ से इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, जून १९३६ में उद्धृत) लिखा है:

"... श्री कारमैन (Carman) और दूसरे लेखकोंने दिखाया है कि जिस चारेमें मक्का मुख्य है उसमें एक सैकड़ा नमक मिलानेसे उसका वृद्धि करनेका मूल्य ४० से ५० सैकड़ा बढ़ता है। इसका प्रयोग चूहों और मुर्गीके चूजोंपर, उनके पाचनमें कोई खास गड़बड़ी किये बिना किया गया।"

उसी लेखमें दूसरी जगह उन्होंने लिखा है :

"छोटे चूहोंको यदि अधिक कैलशियम और कम फॉसफोरस तथा बिना भिटामिन (भिटामिन 'डी') वाले आहार पर पाला जाय तो उन्हें सूखा रोग (ricket—रिकेट) हो जायगा। जितना जादे रिकेट-उत्पादक आहार नित्य खाया जायगा, यह अस्थि-रोग उतना ही बढ़ेगा।..."

चूहेके प्रयोगमें जो पाया गया, खनिजकी कमीके लिये वही बात शाकभुकोंमें भी लागू है। भारतके बहुत भागोंमें दुष्पोषणका कारण सोडियमकी कमी है।

**७०८. कैलशियम लोहेका पचना नियंत्रित करता है :** यह भी देखा गया है कि आहारमें कैलशियमके परिमाणका असर लोहेके पचने पर पड़ता है। काफी कैलशियम खानेसे थोड़े लोहेसे भी जरूरत पूरी हो जाती है। पर यदि कम कैलशियम मिले तो ऐसा नहीं होगा।

कैलशियमकी कमीसे चूहेके खूनमें चीनी ठीक तरहसे नहीं घुलती। यह माना जाता है कि गायके शरीरमें भी ऐसा ही होता है। (६१०)

**७०९. भिटामिन 'डी' कैलशियम और फॉस्फोरसका पचना नियंत्रित करता है :** केवल खनिज ही आपसमें क्रिया और प्रतिक्रिया नहीं करते पर चारेके दूसरे पोषक-द्रव्योंकी कमी बेशी (जैसे प्रोटीन और भिटामिन या कुल पचनीय पोषण) का असर खनिजोंके पाचन पर पड़ता है। यह कहा जा सकता है कि, भिटामिन 'डी' की कमीसे कैलशियम और फॉस्फोरस पच नहीं सकते। पशुके स्वास्थ्यके लिये भिटामिन 'ए' प्रसिद्ध है। भिटामिन 'ए' की कमीका साधारण पोषक द्रव्योंपर उलटा असर होता है।

इस उलझनमें यह कहना कि इस तौलकी गायके निर्वाहके लिये इतना कैलशियम, इतना फॉस्फोरस, इतना सोडियम, इतना पोटाशियम, इतना मैगनीशियम चाहिये, प्रायः असंभव ही है। दूसरे पोषक-द्रव्य युक्त अनुपातमें हों तभी किसी विशेष खनिजकी जरूरत कितनी है यह जानना सार्थक होगा। एककी अयुक्तताका दूसरोंकी युक्ततापर असर पड़ता है।

इस प्रतिबन्धके साथ विभिन्न खनिजोंकी क्या क्या जरूरत है यह बतानेकी कोशिश साधारण तौर पर की जायगी। कोई खनिज कितना चाहिये यह तय कर लेना है। इसके लिये कोई एक चारे और उसकी पचनीयताकी जांचका सहारा लेना चाहिये। (६१२)

७१०. **खनिजोंका तेजाब-क्षार-लक्षण :** खनिजोंमें कुछका मूल तेजाब है और कुछका क्षार। तेजाब-मूल (acid radicles) वह हैं जो हाइड्रोजन या ऑक्सीजनके योगसे तेजाब बनाते हैं। फॉस्फोरस, क्लोरीन और गंधक तेजाब-मूल हैं। ऑक्सीजन और हाइड्रोजनके योगसे यह तेजाब बनाते हैं। क्लोरीनसे हाइड्रोक्लोरिक तेजाब ( hydrochloric acid ) बनता है। फॉस्फोरससे फॉस्फोरिक तेजाब (phosphoric acid) बनता और गंधकसे गंधक तेजाब (sulphuric acid)। इनसे और बहुतसे तेजाब बन सकते हैं। केवल कुछ साधारण तेजाबोंके नाम यहाँ लिये गये हैं। क्षार-मूल (basic radicles) वह हैं जो हाइड्रोजन और ऑक्सीजनके योगसे क्षार बनाते हैं। कैलशियम ऑक्साइड (calcium oxide) क्षार (alkali) है। सोडियम, पोटाशियम और मैगनीशियम ऑक्साइड भी क्षार हैं। क्षारोंका एक गुण यह है कि, वह तेजाबके योगसे नमक बनाते हैं। कैलशियम ऑक्साइड क्षार, फॉस्फोरिक तेजाब के योगसे कैलशियम फॉस्फेट (calcium phosphate) नामक नमक बनाता है। नमक कहनेसे रोजके खानेका नमक नहीं समझना चाहिये। रसायन शास्त्रमें क्षार और तेजाबके योगसे बने पदार्थका नमक कहते हैं। खानेका नमक भी क्लोरीनके तेजाब (जिसे हाइड्रोक्लोरिक तेजाब कहते हैं) और सोडियम ऑक्साइड नामक क्षारके योगसे बना है।

हालमें विसकौनसिन (Wisconsin) नामक स्थानमें पोषण पर प्रयोग हुए हैं। उनसे पता चला है कि जब खाद्योंमें तेजाब-मूल खनिज अधिक होते हैं तब पाचन अधिक वेगसे होता है।

७११. **खनिजोंके कुछ कार्य :** देह-द्रवों अर्थात् देहके रसोंमें खनिज होते हैं। खनिजोंके कारण ही खून काम करता है। पाचन रसोंकी अम्लताभी खनिजोंके कारण है। पेटके अति क्रियाशील रसोंमें एक पेप्सिन (pepsin) है। पेप्सिन हाइड्रोक्लोरिक तेजाबकी मौजूदगीमें ही आहारको तोड़ उसे पचने लायक बना सकते हैं। यह तेजाब सोडियम क्लोराइड (खानेके नमके) से बनता है। इसमें

सोडियम खनिज है। रक्त और शरीर-द्रवोंका अद्भुत आदान-प्रदान भी खनिज नमकोंके रहने से ही होता है।

खनिज देहके तेजाब और क्षारका संतुलन ठीक रखते हैं। इस सन्तुलनके बिगड़नेसे रोग और मृत्यु हो सकती हैं। गुर्दा (वृक्क) देहमें खनिजका उचित अनुपात बनाये रखनेका बहुत काम करता है। इसके लिये वह खूनके अनावश्यक और अतिरिक्त खनिजोंको बाहर निकालता है। गुर्देकी शक्तिके बाहरकी बात होनेसे तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है।

**७१२. खनिज और मेंढककी धड़कती छाती (हृदय) :** जीवन क्रिया, रसों या द्रवोंके काम करनेसे ही चालू रहती है। शरीर-क्रिया शास्त्रकी प्रयोगशालाओंमें मेढ़कके हृदय पर प्रयोग किये जाते हैं, और देह-द्रवके खनिजोंकी महत्ता दिखाते हैं। यदि मेढ़कका धड़कता हृदय निकालकर नमकके घोलमें छोड़ दिया जाय तो उसकी धड़कन धीरे धीरे धीमी होकर बन्द हो जाती है। इसके बाद यदि उसमें कैलशियम नमक (calcium salt) जरासा मिला दिया जाय तो धड़कन फिर शुरू हो जाय। इस अवस्थामें यह देखा गया है कि घोलमें यदि पोटाशका नमक नहीं मिलाया जाता तो हृदयकी धड़कन मन्द हो जाती है और बन्द होनेके समय हृदय सिकुड़ जाता है। पोटाशका नमक ठीक अनुपातमें चूने और सोडियमके साथ मौजूद रहना चाहिये। (६०६)

**७१३. चारेमें खनिजोंका साधन :** रूखे चारेके साथ खनिज पेटमें जाते हैं। इनमें खनिजकी मात्रा बहुत विभिन्न होती है। इसलिये उचित मिलानके लिये भिन्न भिन्न रूखा चारा चुनना होता है। फलियोंका हरा चारा प्रोटीनका ही नहीं, खनिजोंकाभी प्रचुर साधन है। रूखे चारेकी खनिजोंकी कमी बहुत कुछ फलियोंके मिलानेसे पूरी हो सकती है। पर फलियोंमें अपेक्षाकृत फॉस्फोरस कम है।

खलियाँ भी खनिजोंके प्रचुर साधन हैं। विश्लेषणके आँकड़ेमें देख सकते हैं कि इनमें कई खनिजोंकी प्रचुरता है।

फली और दालकी भूसीमें प्रचुर खनिज हैं। फलियाँ और अन्न खनिजके मँहगे साधन हैं। पर वृद्धि और दूध उत्पादनके लिये फलियाँ जरूरी हैं। वह प्रोटीनके साथ खनिजभी देती हैं। हड्डी कैलशियम और फॉस्फोरसकी अति प्रचुर साधन है। हड्डीका चूर्ण मिलानेसे बहुतसे घटिया आहार भी बढ़िया हो सकते हैं।

खानेके नमकसे सोडियम और क्लोरीन बहुत आसानीसे मिल सकते हैं। इसकी जरूरत भी बहुत रहती है। बहुतसे चारोंमें उचित परिमाणमें दूसरे दूसरे खनिजों और प्रोटीनोंके रहने परभी उनमें सोडियम क्लोराइड (नमक) नहीं भी हो सकता है। गायको नियमसे चारेके साथ नमक खिलाना जरूरी है।

सीप (घोंघा आदि) और कंकड़का चूर्ण चूनेके लिये काममें लाया जा सकता है। कंकड़ आगमें जलाकर हवासे बुझाया जा सकता है। हवाकी क्रियाके लिये उसे बीच बीचमें उकटना चाहिये। थोड़े दिनमें उस कली या कलई चूने (caustic lime) का जलानेवाला (caustic) गुण नष्ट हो जाता है और वह बदलकर कैलशियम कार्बोनेट (calcium carbonate) या खड़िया बन जाता है। यह भी चूनेके लिये काममें आ सकता है। चूनेके पत्थरका चूराभी इसके लिये अच्छा साधन है।

चारेमें साधारण तौर पर पोटाशियम अतिरिक्त मात्रामें होता है। कम पोटाशियम वाला चारा खोजना भी बहुत बार एक समस्या ही है। पर जहाँ पोटाशियमकी कमी हो वहाँ लकड़ी की राखसे काम चल सकता है, क्योंकि इसमें पोटाश बहुत होता है।

साधारण तौर पर आहार में मैगनीशियम उचित मात्रामें मिल जाता है। पर उसकी कमी होने पर मैगनेसाइट ( magnesite ) के रूपमें खनिज और मैगनीशियम काममें लाया जा सकता है।

यदि लोहा कम मालूम पड़े तो रंगाईके कामका आयरन ऑक्साइड (iron oxide—मोर्चा ) चारेमें मिलाया जा सकता है। ताँबेके लिये तूतिया (नीला थोथा—copper sulphate) काममें लाया जा सकता है। गंधकके लिये खारी नमकका सोडियम सल्फेट पर्याप्त साधन है।

७१४. **कैलशियम फॉस्फोरसकी जरूरतें :** देह-द्रव, खून और पेशियोंके रसमें कैलशियम होता है। कैलशियम और फॉसफोरस मिलकर हड्डी बनती है। शरीरमें कैलशियमका सबसे प्रचलित रूप कैलशियम फॉस्फेट है। दूधके खनिजोंमें आधे कैलशियम और फॉस्फोरस हैं।

इन दोनोंसे भिटामिन 'डी' का घनिष्ट सम्बन्ध है। भिटामिन 'डी' के नहीं रहने पर कैलशियम और फॉस्फोरस पच नहीं सकते। पर भिटामिन 'डी' खिलाना कठिन नहीं है। धूपमें सूखे चारेमें भिटामिन 'डी' होता है। खुली धूपमें रहनेसे यह पशुके शरीरमें ही पैदा हो सकता है। (६१०-'११)

**७१५. कैलशियम और फॉस्फोरसका अनुपात :** उनके आपसी व्यवहारके बारेमें कुछ कहा गया। इनके अनुपातमें बड़ा अन्तर होना हानिकारक है। पशु शरीरमें इनका अनुपात १ : १ या २ : १ हैं ; अथवा औसत अनुपात १½ कैलशियम पर १ फॉस्फोरस है। कैलशियम या फॉस्फोरसकी अति अधिकतासे समतोल ठीक नहीं रहता और उचित मात्रामें अन्य खनिजोंके होते हुए भी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। लेकिन जब हरेक खनिज खूब दिया जाय तब अधिक कैलशियम (जैसेकि ६·५ भाग कैलशियम और १ भाग फॉस्फोरसके अनुपातसे) देनेसे दुधार गायें बहुत अच्छी रहती हैं। (६१०-'११)

**७१६. कैलशियम और फॉस्फोरसका शरीरकी तौलपर प्रभाव :** जर्मनीके पशु आहारविद श्री केलनरने (Kellner) इस विषयमें बहुत काम किया है। उन्होंने अपनी पोथी "साइन्टिफिक फिडिंग आफ एनिमल्स" में पशुओंको कितना खनिज चाहिये इसका आधार बताया है। उनके मतानुसार २,००० रत्तलकी देहवाले पशुको नित्य १०० ग्राम (करीब दो छटाक) चूना और ५० ग्राम फॉस्फरिक तेजाब चाहिये। इसीके अनुसार ५०० रत्तलकी गायके लिये अन्दाजी २५ ग्राम चूना ($CaO$) और १२½ ग्राम फास्फोरिक तेजाब ($P_2O_5$) माना जा सकता है।

यूरोप और अमेरिकाके कई गवेषकोंने करीब करीब केलनर वाला अंक दिया है। भारतीय गायको निर्वाहके लिये क्या चाहिये इसका पता लगानेके लिये बंगलूर इन्स्टीट्यूट और उसके बाद ढाका और कृष्णनगर (बंगाल) कृषिक्षेत्रमें कई प्रयोग किये गये।

श्री वार्थ और श्री लैन्डरने ( Warth & Lander ) भारतीय चारेकी पचनीयताके बारेमें कई प्रयोग किये। क्या चाहिये उसका कुछ अन्दाज उनसे मिल सकता है।

**७१७. खनिजपर किये गये बंगालके प्रयोगोंका आँकड़ा :** श्री कारबरी और श्री चटर्जीने (Carbery & Chatterji) बंगालके प्रयोगमें पाया कि ५०० रत्तलके बैलको मुख्यरूपसे धानका पुआल खिलानेसे नीचे लिखी मात्रामें खनिज प्रति दिन चाहिये।

# आँकड़ा—५७

## ५०० रत्तलकी गायके निर्वाहके लिये कितना खनिज चाहिये

| | | | |
|---|---|---|---|
| चूना (Lime) | CaO | ... | २४ ग्राम |
| फॉस्फारिक तेजाब | $P_2O_5$ | ... | १० ,, |
| मैगनेसिया | MgO | ... | १५ ,, |
| पोटाश | $K_2O$ | ... | ७० ,, |
| सोडियम | NaCl | ... | ३२·०५ ,, |

(६१०-’११)

**७१८. धानके पुआलके साथ चूना चाहिये :** इन प्रयोगोंके अनुसार धानका पुआल खिलानेसे २४ ग्राम चूना जादेसे जादे चाहिये। धानके पुआलके चारेका भी बंगलूरमें प्रयोग हुआ है। २४·९१ ग्राम वाले चारेमें चूना ऋणात्मक समतोल (negative balance) है।

ऋणात्मक समतोलका अर्थ है कि पशुको जितना खनिज खिलाया जाता है उससे अधिक वह निकाल देता है (मल मूत्रादिसे)। अतिरिक्त शरीर तन्तुसे आता है। धनात्मक समतोल (positive balance) का अर्थ है कि, पशु जितना खनिज खाता है उससे कम निकालता है। दोनोंका अंतर शरीरमें पच जाता है। इससे निर्वाहको संभावना प्रगट होती है। बंगलूरके एक प्रयोगमें ज्वारके चारेमें १६ ग्राम चूना (CaO) धनात्मक समतोलमें पाया गया। कुछ दूसरे प्रयोगोंमें ७५० रत्तलके पशुके लिये ज्वारके डंठल, औरंगाबादकी सूखी घास, सूखी रोड्स घास (rhodes) और स्पीयर (spear) घासके साथ १५ ग्राम चूनेका धनात्मक समतोल पाया गया।

इन आँकड़ोंके आधार पर दूसरे चारोंका विचार पीछे होगा। ५०० रत्तलकी गायको धानके पुआलके साथ ३६ ग्राम चूना और दूसरे चारोंके साथ कम चूना चाहिये यह अभी माना जा सकता है। यह बंगालके न्यूनतम अंकसे कुछ अधिक है। पर धान-पुआलके चारेमें सतर्कताके लिये इसकी सिफारिश कारबरीने (बंगाल) की है। (६१०-’११)

**७१९. बंगलूर प्रयोग : चूनेकी जरूरत :** यह हो सकता है कि, धान-पुआलको छोड़ और चारेके साथ ५०० रत्तलकी गायके लिये ३६ ग्राम

चूना उतना जरूरी न ही। जब कम कैलशियमवाले रूखे चारे ही मुख्यरूपसे पशुओंको खिलाये जाते हैं तब कैलशियमके अभावमें वह कष्ट पा सकते हैं। बंगलूरके एक प्रयोगमें ४१.३७ ग्राम चूना खानेसे अनपेक्ष समतोल (neutral balance) हुआ। वास्तविक अंक ०.०८ था, अर्थात् सिर्फ नाममात्र का ०.०८ ग्राम शरीरसे बाहर निकला। रागी या मडुआके पुआलके साथ ५७.९९ ग्राम चूना खिलानेसे उसका २.३ ग्राम धनात्मक समतोल हुआ। यह पाँच प्रयोगों का औसत है। पर अलग अलग प्रयोगोंमें यदि एकमें ५३.३ ग्राम खाने से चूनेका धनात्मक समतोल ९.९ ग्राम हुआ तो दूसरेमें ५७.९० ग्राम खानेसे २.३५ ऋणात्मक समतोल हुआ। —(श्री बार्थ, इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३२, पृ० ३२८) बंगालके प्रयोगोंमें धानके पुआलके लिये मानी गयी न्यूनतम २४ या २५ ग्रामकी आवश्यकतासे यह कहीं अधिककी आवश्यकता बताते हैं। पर बंगालके उसी प्रयोगमें ऐसा भी हुआ है कि धानके पुआलके साथ ४७ से ५५ ग्राम चूना (CaO) खिलानेसे भी धनात्मक समतोल नहीं हो सका।

बंगालके प्रयोगोंमें आवश्यक माना गया २४ ग्राम और ४७ से ५५ ग्राम खिलानेपर भी ऋणत्मक समतोलके अंतरका कोई समाधान नहीं है। पर यदि हम कारबरी तथा दूसरोंके स्वीकृत २४ ग्राम (CaO) की उचित न्यूनतम आवश्यकता स्वीकार करलें तो इसका कुछ समाधान तो ढूँढ़ना होगा। धानके पुआलके चारेके विचारमें इस प्रश्नके बारेमें अच्छी तरह कहा गया है। (७६६-८०७)। इस जगह बार बार कही बात फिरसे याद कर लेनी चाहिये कि किसी खनिजके बारेमें कोई निश्चित अंक नहीं है और न उसका कोई लगभग है। चूना या दूसरी चीजें निश्चित या धनात्मक समतोल बनाने के लिये कितनी खायी जायँ यह चारेके अन्य घटकोंकी क्रिया और पारस्परिक क्रिया पर निर्भर हैं। अन्य खनिजोंकी मात्राएँ और रूप, भिटामिनों का रहना और न रहना आदि बातें चारेकी जरूरतोंपर असर डालती हैं। (६१०-'११)

**७२०. चारा और चूना खाना :** पशुओंके पोषणके लिये खनिजोंमें कैलशियमका स्थान महत्वका है। कैलशियमका समतोल धनात्मक रखना होता है। जिन कारणोंसे कैलशियमका समतोल ऋणात्मक होता है, उसका पता लगा, सुधार किये बिना किसी खास चारेके जरिये कैलशियम खिलानेसे धनात्मक समतोल नहीं भी

हो सकता है। दूसरे शब्दोंमें इसके लिये चारेको समतुलित या युक्ताहार बनाना होगा। अभी तो हम भी कारबरीकी सिफारिशके अनुसार देहकी प्रति ५०० रत्तल तौलके लिये साधारण तौरपर अधिक से अधिक ३६ और कमसे कम २४-२५ ग्राम चूनेकी आवश्यकता मानलें। हालतके अनुसार इसमें व्यतिक्रम या अपवाद हो सकते हैं। (६१०-'११)

**७२१. फॉस्फोरसकी आवश्यकता :** कैलशियम और फॉस्फोरस मिल कर हड्डी बनते हैं। हड्डी मुख्यतः एक यौगिक (compound) है जिसे कैलशियम फॉस्फेट कहते हैं। नब्बे सैकड़ा हड्डी कैलशियम फॉस्फेट है। कैलशियम और फॉस्फोरस, ये दो खनिज पशु शरीरके कुल खनिज अवयवों या उपादानोंकी तीन चौथाई हैं। दूधके खनिजोंमें यह दोनों आधेसे जादे हैं।

जीवन-क्रियामें यह दोनों नित्य काममें आते और मलमूत्रमें बाहर निकल जाते हैं। इस दैनिक हानिको पूरा करनेके लिये इन्हें काफी खाना चाहिये। बढ़नेवाले, दूध देनेवाले और गाभिन पशुओंकी बढ़ी जरूरत पूरी करनेके लिये यह खूब खिलाना जरूरी है। निर्वाहके लिये भी यदि यह काफी नहीं दिया जायगा तो दैनिक हानिसे देहको कष्ट होगा। (६१०-'११)

**७२२. उचित अनुपातमें कैलशियम और फॉस्फोरस :** इस सिलसिलेमें यह भी याद रखना चाहिये कि कैलशियम और फॉस्फोरस ही केवल उचित मात्रामें न रहें। उनके साथ भिटामिन 'डी' (और 'ए' भी) जरूरी है जिससे कि खनिज शरीरके तंतु निर्माणमें ठीक तरहसे काममें आ जायँ।

मामूली रूखे चारेमें कैलशियम और फॉस्फोरस कम हैं। इनकी कमीसे गायोंका दुष्पोषण भी मामूली बात है। इसलिये इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि गायके निर्वाह, उत्पादन और वृद्धिकी आवश्यकताओंके लिये चारेमें यह काफी हों। (६१०-'११)

**७२३. फॉस्फेट और फलियोंका चारा :** फलियोंकी पुष्टई या दालमें कैलशियम प्रचुर हैं। उसी तरह फलियोंके पुआल और हरे चारेमें भी है। फलियोंके चारेसे दूसरे चारेमें कम कैलशियम है। बहुतसे रूखे चारेमें फॉस्फोरस कम है। फलियोंके पुआलमें फॉस्फोरस साधारण घासोंसे अधिक नहीं है। अन्नके डंठलोंमें फॉस्फोरस बहुत कम है। अन्नके दानोंमें कैलशियम कम है पर फॉस्फोरस जादे हैं।

**७२४. कैलशियम और फॉस्फोरसके लिये हड्डीका चूर्ण :** फलियोंके पुआलसे जैसे कैलशियम मिलता है, उसी तरह प्रोटीन-प्रचुर खलीसे फॉस्फोरस मिल सकता है। आटेके चोकरमें खासकर फॉस्फोरस बहुत है। उसी तरह चावलकी छाँट या चोकर भी है। पर चावलकी छाँटका फॉस्फोरस अपचनीय रूपमें है। (८२७) इसलिये चारेकी दृष्टिसे उसका मूल्य कम है। हड्डीके चूर्णमें फॉस्फोरस और कैलशियम दोनो ही प्रचुर हैं और इसमें प्रोटीनभी अधिक है। इसमें ३२.६ सैकड़ा कैलशियम, १४ से १५ सैकड़ा फॉस्फोरस, ७ सैकड़ा प्रोटीन और ३.३ सैकड़ा चर्बी है। यह मालूम है कि ५०० रत्तल तौलके शरीरके लिये १०–११ ग्राम पचनीय फॉस्फोरस से काम चल जाता है। फॉस्फोरस यदि कुछ अतिरिक्त हो तो वह कैलशियम तथा दूसरे पोषक द्रव्योंके पचनेमें सहायक होता है। यद्यपि कैलशियमसे फॉस्फोरसकी अनुपातमें अधिक अन्तर अवांछित है, फिरभी ११ भाग कैलशियमके लिये १ भाग फॉस्फोरसकी सिफारिश की गयी है। लेकिन बहुत बार १ भाग फॉस्फोरसके लिये २ भाग कैलशियम सन्तोषप्रद पाया गया है। ऐसे उदाहरणोंका भी अभाव नहीं है जिनमें ६ : १ अनुपातमें कैलशियम और फॉस्फोरस पूरी तरह सन्तोषप्रद पाये गये हैं।

५०० रत्तल तौलके शरीरके लिये चारेमें ३० या ३६ ग्राम कैलशियमके लिये १५ ग्राम पचनीय फॉस्फोरसका आधार हम सन्तोषप्रद मान सकते हैं। (६०७)

**७२५. पोषणों और खनिजोंके विश्लेषणके कुछ आँकड़ोंका अध्ययन :** अब कुछ खास चारोंके विश्लेषण और उनकी उपयुक्तताका अध्ययन करना ठीक रहेगा। सभी खनिज और भिटामिनके बारेमें चारेके मूल्योंका कुल विचार यहाँ नहीं किया गया है। हमलोगोंको कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन तथा खनिजोंमें कैलशियम और फासफोरसकी जरूरतोंका कुछ ज्ञान हो गया है। कुछ और विषयोंपर हमें विचार करना है। जैसे कि पोटाशियम, सोडियम और मैगनीसियम जैसे अन्य महत्वपूर्ण खनिज, विभिन्न भिटामिन की जरूरतें तथा इनकी पारस्परिक क्रियायें।

**७२६. ५०० रत्तल गायकी निर्वाहकी आवश्यकता :** अबतक हम इतना जान चुके हैं कि ५०० रत्तल तौलकी गायकी निर्वाहके लिये नीचे लिखे पोषक चाहिये :

# आँकड़ा — ५८

## ५०० रत्तल गायकी निर्वाहकी आवश्यकता

| | | |
|---|---|---|
| पचनीय प्रोटीन | ... | ०·३३ रत्तल |
| स्टार्च तुल्यांक (एस० ई०) | ... | ३·०५ ,, |
| कैलशियम ऑक्साइडके रूपमें चूना | | २५ ग्राम न्यूनतम |
| | | ३६ ग्राम अधिकतम |
| फॉस्फोरिक एसिडके रूपमें फॉस्फोरस | | १५ ग्राम |

पंजाबको छोड़ सारे भारतमें साधारण चारे अन्नोंके पुआल हैं। स्थानके अनुसार ये अन्न भिन्न भिन्न हैं। सारे भारतमें धान, गेहूँ, ज्वार, रागी या मड़ुआ, बाजरा, मक्का, जौ, खानेके मुख्य अन्न हैं। अन्न निकालनेके बाद उनका डंठल और पुआल मुख्य सूखा रूखा चारा है। पचनीय प्रोटीन, स्टार्च तुल्यांक, खनिज और उनके कैलशियम तथा फॉस्फोरस अंशोंका पोषक गुण जाननेके लिये उनका विश्लेषण नीचे लिखा जाता है। यद्यपि खानेका मुख्य सामान ये ही हैं फिरभी केवल इन्हीं आहारों पर पशु नहीं रह सकते और यों भी केवल इन्हींपर पशु पाले भी नहीं जाते। चाहे कितना ही कम हो, पर थोड़ीसी हरी घास या हरा चारा खिलाया ही जाता है। हरे चारेके बिना भिटामिन 'ए' हो नहीं सकता और भिटामिन 'ए' के बिना कोई पोषण बहुत दिनोंतक पशुको तन्दुरुस्त रख नहीं सकता। (६४८)

७२७. **पचनीयताकी जाँचकी शर्त्तें :** भारतमें पचनीयताकी जाँचके लिये यह प्रथा रही है कि पशुको पहले केवल ऐसे चारेपर रखा जाय जो सत्वहीन सूखा और प्रोटीनहीन हो। इससे उस अकेले चारेके खिलानेसे कितना खनिज मिल सकता है इसका पता चलता है। इसके बाद कुछ पुष्टई देते हैं। और तीसरी अवस्थामें पुष्टई तथा कुछ हरा चारा दिया जाता है। इन तीनों अवस्थाओंकी खनिजकी आवश्यकताओंका निरूपण किया जाता है। श्री बार्थ और श्री अय्यरके बंगलूरके दोनों प्रयोगों (१९३२-'३४) में यही हुआ है। श्री लैन्डर और श्रीधर्मानी के लायलपुरवाले प्रयोगमें (१९३१) तीसरी अवस्था काममें नहीं लायी

गयी। ये प्रयोग (८०८-'१२) राह नहीं दिखा सकते क्योंकि इनमें ० उपयोगिता नहीं है।

७२८. **चारा निर्णय करना :** हमारी जरूरत पूरी करनेके लिये चीजें पसन्द करनी चाहिये जो व्यावहारिक हो सकें। प्रोटीन, शक्ति, कै. और फॉस्फोरस-युक्त चारेकी जरूरतोंका जो ढाँचा बताया गया है वह केवल बौद्ध विचार ही न हो। वह विकासके काममें भी आ सके इसका प्रयास किया गया है। इसलिये चारा नीचे लिखे तीन विभागोंमें बाँटा जा सकता है। (क) सूखा पुआल या कड़बी, इसमें मुख्यरूपसे शक्तिकी पूर्ति होती है; (ख) हरी घास, इससे कुछ प्रोटीन, कुछ खनिज और कुछ भिटामिन 'ए' मिलेंगे; (ग) सहज प्राप्य साधारण पुष्टई, इससे कुछ प्रोटीन और फॉस्फोरस मिलेंगे।

## आँकड़ा—५६

७२६. कुछ चारोंके **पोषक द्रव्य :**

| | पचनीय कच्चा प्रोटीन | कुल पचनीय पोषक | पोषक अनुपात | एस० ई० | CaO | $P_2O_5$ | MgO | $Na_2O$ | $K_2O$ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | % | % | % | % | % | % | % | % | % |
| **सूखे रूखे चारे** | | | | | | | | | |
| धानका पुआल | ०·०० | ५०·२३ | ... | ३२·२ | ०·४० | ०·१४ | ०·२८ | ०·५० | १·६३ |
| गेहूँका ,, | ०·०० | ४८·९५ | ... | २४·३ | ०·४२ | ०·५१ | ०·११ | ०·२८ | १·२५ |
| ज्वारका ,, | ०·६४ | ५१·५९ | ७४·८ | २७·० | ०·३८ | ०·२३ | ... | ... | ... |
| मड़ुआ ,, | ०·२३ | ५५·६३ | २४३·५ | ३४·७ | १·११ | ०·१६ | ०·४५ | ०·२६ | १·५ |
| बाजरा ,, | १·५ | ४२·५ | २७·३ | ३०·० | ०·५५ | ०·४४ | ०·३३ | ०·१३ | २·९६ |
| **हरा चारा** | | | | | | | | | |
| दूब पकी (सूखेके समान) | ५·० | ४६·७८ | १०·५ | ३४·० | ०·७७ | ०·५९ | ०·३४ | ०·२३ | २·०८ |
| **पुष्टई** | | | | | | | | | |
| अलसी की खली | २५·७४ | ७१·८ | १·८ | ८२·६ | ०·५२ | २·२० | ०·९८ | ०·४७ | ०·९२ |

अन्नके अनेक पुआलोंमें से धानके पुआलको हम मुख्य चारा मान लें।

पैरा ७२६ में कहा जा चुका है कि ५०० रत्तलके शरीरके निवा... लिये (क) पचनीय प्रोटीन—·३३ रत्तल, शक्ति—३·०५ एस० ई०, चूना ($CaO$)—२५-३६ ग्राम, फॉस्फोरिक एसिड ($P_2O_5$)—१५ ग्राम चाहिये। इस माँगकी पूर्त्तिके लिये धानके पुआलके साथ दूब और अलसीकी खली चाहिये। जितना सूखा सामान या उस तरह की चीज ही खिलायी जा सकती है उसकी एक सीमा है। शरीरकी तौलके (५०० रत्तल) दो प्रतिशतके हिसाबसे यह १० रत्तल होता है। चारेके तीन चीजोंमें इसे बाँट देना होगा।

**७३०. जाँचका एक आहार :** आरम्भमें हम नीचे लिखेको अजमावें :—

| | | |
|---|---|---|
| धानका पुआल | ... | ८ रत्तल |
| हरी दूब ६ रत्तल जो २ रत्तल सूखी घासके बराबर है | ... | २ ,, |
| अलसीकी खली | ... | $\frac{3}{4}$ ,, |
| | | १०$\frac{3}{4}$ रत्तल |

इस तरहका बटवारा करीब करीब कुल सूखे सामानकी सीमाके भीतर होगा। और यह समझा जाता है कि कोई तन्दुरुस्त गाय कुछ नमकके साथ इतनी स्वादिष्ट पुष्टई खा सकेगी।

**७३१. चारेमें जो पुष्टई मिलती है :** पैरा ६२७ के विश्लेषणके अनुसार चारेसे पशुको नीचे लिखे अनुसार पुष्टई मिलेगी :—

# आँकड़ा—६०

## जाँचका आहार

| | | (१) पचनीय कच्चा प्रोटीन रत्तल | (२) एस० ई० रत्तल | (३) CaO ग्राम* | (४) $P_2O_5$ ग्राम |
|---|---|---|---|---|---|
| धानका पुआल | ८ रत्तल | कुछनहीं | २·५ | १६ | ५·६ |
| दूब घास (सूखे हिसाब से) | २ रत्तल | ०·१ | ०·६८ | ८ | ६ |
| अलसीकी खली | ¾ रत्तल | ०·१८ | ०·६ | १·९ | ८·२ |
| कुल— | १०¾ रत्तल | ०·२८ | ३·७८ | २५·९ | १९·८ |
| आँकड़ेके अनुसार निर्धारित आवश्यकता | १० रत्तल | ०·३३ | ३·०५ | २४·० | १५·० |
| अंतर— | + ¾ रत्तल | –·०५ | + ·७३ | + १·९ | + ४·८ |

**७३२. आजमाइशी चारेकी आलोचना :** ऊपरके आँकड़े पर गौर करने पर पता चलेगा कि कुल सूखा सामान ¾ रत्तल अधिक है। व्यवहारमें यह मात्रा नगण्य है। तन्दुरुस्त गाय अगर आहार स्वादिष्ट हो तो, चाहे तो अपनी तौलके दो सैकड़ासे भी अधिक सूखा चारा खा सकती है।

पचनीय कच्चे प्रोटीनका ·०५ ऋणात्मक अंतर है। यह भी नगण्य मात्रा है। यदि अधिक प्रोटीन बढ़ाया जा सके तो अच्छा हो।

स्टार्च तुल्यांक (एस० ई०) का धनात्मक अंतर ·७३ रत्तल है। इससे निर्वाहमें मदद ही मिलेगी।

चूना (CaO) का न्यूनतम मान जितना है उससे १·९ का धनात्मक अंतर है।

फॉस्फोरस ($P_2O_5$) का धनात्मक अंतर ४·८ ग्रामका है। यह बड़ा लाभ है। पोषक कुल कितना पच सकते हैं यह इससे जाना जाता है। जितना चूना अर्थात् कैलशियम ऑक्साइड खाया गया उससे इसका अनुपात अधिक है। अतिरिक्तसे लाभही होगा। इससे यह सूचित होता है कि, हम अलसी या किसी दूसरी खलीसे कम फॉस्फोरसवाली पुष्टई काममें ला सकते हैं। पर उसमें प्रोटीन जरूरतसे कम न हो।

* एक रत्तल (पाउन्ड) में ४५० ग्रामकी दरसे हिसाब है।

**७३३. विभिन्न पुआल :** पाठक अन्य अनाज, घास और पुष्टई भी अजमा सकते हैं। आँकड़ा—५९ देखनेसे पता चलेगा कि, पचनीय कच्चा प्रोटीनके मामलेमें गेहूँका पुआल (भूसा) भी धान ही की तरह बुरा है। धान-पुआलके प्रोटीनकी तरह गेहूँ-पुआलका प्रोटीन भी बिलकुल अपचनीय है। दूसरे पुआल कुछ अच्छे हैं। पर विश्लेषणके अनुसार उनमें पचनीय प्रोटोन नगण्य है। बाजरेमें १.५ सैकड़ा है। यह अपवाद और सुबीतेका है। बाजरेके बाद ज्वार है। इसमें ०.६४ सैकड़ा है। बाजरे से ज्वार कैलशियम और फॉस्फोरस दोनों ही बातोंमें कम है। फिरभी वह धानके पुआलसे कहीं अच्छा है।

इन सबमें कैलशियमके मामलेमें मड़ुआका पुआल सबसे उत्तम है। इसमें कैलशियम १.११ सैकड़ा है। इसके बाद बाजराका नम्बर है। इसमें .५५ सैकड़ा है। यह मड़ुआके आधेके लगभग है।

पुआलका डंठल कमसे कम इस विचारसे बुरे चारे हैं कि, उनमें तीन आवश्यक पोषक प्रोटीन, फॉस्फोरस और कैलशियम कम हैं। पर उनकी निन्दा करनेसे कोई काम नहीं चलता। जैसी हालत है उसमें यह जानते हुए कि इनमें पोषक कम हैं, हमें इनसे पूरा फायदा उठाना है। सही दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि इनकी कमी पूरी करनेवाली दूसरी जरूरी चीजोंके साथ इन्हें खिलाया जाय। इन चीजोंको छानवीन हम आगे चलकर करेंगे।

**७३४. फलियोंके पुआलका स्थान :** फलियोंकी फसलके पुआलमें प्रोटीन कहीं जादे है। इनमेंसे कुछ, केवल प्रोटीनके कारणही कुछ पुष्टईकी बराबरी करते हैं। पर इनमें फॉस्फोरस बहुत कम है जिसकी पूर्त्ति जरूरी हो तो दूसरी तरह से हो सकती है। जैसे कि, यदि धानके इलाकेमें पचनीय प्रोटीनकी कमी पूरी करनेके लिये धानके पुआलके साथ फलियोंका चारा खिलाया जाय तो आहार समस्या तुरत सुधर जाय। इससे केवल निर्वाहके लिये पुष्टई खिलानेकी जरूरत कुछ हदतक पूरी हो जायगी।

**७३५. आहारकी पुनर्योजना :** बहुतसे फलियोंके चारेमें प्रायः १२ सैकड़ा पचनीय प्रोटीन होती है। अब यदि कोई ऐसा फलीदार चारा चुना गया जिसमें प्रायः १२ सैकड़ा पचनीय प्रोटीन है तो खलीकी दूनी मात्रा अर्थात् १½ रत्तल सूखे चारे से ¾ रत्तल खलीका प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। ऐसी हालतमें ¾ या १ रत्तल धानका पुआल चारेमेंसे अलग कर ¾ रत्तल खली के लिये १½ रत्तल

फलियोंका पुआल मिला देना चाहिये। इससे प्रोटीन की चाह वास्तवमें पूरी हो जायगी। किन्तु खलीमें केवल प्रोटीन ही प्रचुर नहीं है, फॉस्फोरस भी है। फलियांके पुआलमें फॉस्फोरस अपेक्षाकृत कम है। पर हमारे पास तो फॉस्फोरस जरूरत से जादे है, इसलिये फलीका पुआल ठीक रहता है। कुछ फलियोंके पुआल पुष्ट चारे हैं। वह काममें आ सकें यह देखना चाहिये।

**७३६. पुष्टइकी जगह फलियोंका पुआल :** कुछ फलियोंकी रचना का प्रतिशत नीचे लिखा है :—

## आँकड़ा—६१

### कुछ फलियोंके पुआलमें पोषक द्रव्य

| पुआल | पचनीय प्रोटीन प्रतिशत रत्तल | एस० ई० रत्तल | चूना $CaO$ रत्तल | फॉस्फोरस $P_2O_5$ रत्तल प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| बरसीम पुआल | १०·२९ | ४७·३ | २·०७ | ०·३५ |
| बोड़ा पुआल | १०·३३ | २९·६ | २·२७ | ०·४० |
| मूँगफली पुआल | १४·९३ | ३३·८ | २·५४ | ०·४२ |

१½ रत्तल सूखे पुआलसे निम्नलिखित मिलेंगे :—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| बरसीम १½ रत्तल | ०·१५ | ०·७ | ०·०३ | ०·०१ |
| बोड़ा १½ रत्तल | ०·१५ | ०·४ | ०·०३ | ०·००६ |
| मूँगफली १½ रत्तल | ०·२२ | ०·५ | ०·०३ | ०·००६ |

**७३७. पुआल घास और फलीका सूखा पुआल :** यदि ¾ रत्तल खलीकी जगह पर १½ रत्तल फलियोंका पुआल (जैसेकि मूँगफलीका) दें और धानका पुआल १ रत्तल कम कर दें तो नया चारा इस तरहका होगा :

## आँकड़ा—६२

### जाँचके आहारका परिवर्तित स्वरूप

| | | पचनीय प्रोटीन रत्तल | एस० ई० रत्तल | चूना $CO$ ग्राम | फॉस्फोरस $P_2O_5$ ग्राम |
|---|---|---|---|---|---|
| धानका पुआल | ७ रत्तल | — | २·२ | १४ | ५ |
| दूब घास | २ रत्तल | ०·१ | ०·६८ | ८ | ६ |
| मूँगफलीका पुआल | १½ रत्तल | ०·२२ | ०·५ | १५ | ३ |
| कुल प्राप्य— | १०½ रत्तल | ०·३२ | ३·३८ | ३७ | १४ |
| चाहिये— | १० रत्तल | ०·३३ | ३·०५ | २४ | १५ |

नया जोड़ १०½ रत्तल सूखा सामान हो गया है। यह सीमाके भीतर ही है। पचनीय प्रोटीन भी जितना चाहिये उसके भीतर है। यही हाल एस० ई० का भी है। इस परिवर्त्तनसे कैलशियम काफी जादे हो गया है, पर फॉस्फोरस निर्दिष्ट सीमाके लगभग है। ¾ रत्तल पुष्टईके बदले १½ रत्तल फलीके पुआलका परिणाम काफी अच्छा दिखाई पड़ता है। यह सस्ता भी होगा।

ऊपरका उदाहरण किसी स्थानमें निर्वाहका मिश्रित चारा क्या हो सकता है, यह जाननेका उपाय बताता है। किसी स्थानकी अन्नकी फसलसे ही मुख्य रूखा चारा मिल सकता है। इसके बाद जितना हरी घास या कोई दूसरा हरा चारा मिल सके लिया जाय। हरे चारेकी खेतीमें काफी सुधार करने और उसे हरा या साइलेज करके खिलानेकी गुंजाइश है। इनके बाद फलियोंके पुआलका स्थान है।

५०० रत्तलकी गायके निर्वाहके लिये कैलशियम और फॉस्फोरसकी जरूरतके मुताबिक उपयुक्त चारा क्या हो सकता है यह हमने जान लिया। अब दूसरे खनिजोंका विचार एक एक करके होगा।

**७३८. सोडियम, पोटाशियम और क्लोरीनकी जरूरतें :** यह एक विचित्र बात है कि शाकभोजी पशुओंको जितना नमक चारेसे मिलता है, प्रायः उससे जादेकी उन्हें जरूरत रहती है। इसलिये जबतक वनस्पतियोंको छोड़ दूसरे साधनोंसे नमक नहीं प्राप्त हो, इसकी तकलीफ बनी रहती है। मांसभोजी को यह कष्ट

नहीं होता। उन्हें मांससे जरूरतका नमक मिल जाता है। जहाँकी मिट्टीमें रेह होती है वहाँ पशुओंको यह कष्ट नहीं होता। वहाँ पौधोंमें यह माँग पूरी करनेके लिये नमक काफी होता है।

**७३९. सोडियम क्लोराइड या खानेका नमक :** सोडियम क्लोराइड या खानेके नमकमें साडियम और क्लोरीन दोनों होते हैं। झिल्लियों से निकलनेवाले रस, जिनकी दूसरी चीजोंपर प्रतिक्रिया होती है, उनके बहते रहनेके लिये इन दोनों चीजों की जरूरत है। ये देह-द्रवोंमें ओतप्रोत हो जाते हैं और उनका चाप कायम रखनेके लिये इनका रहना आवश्यक है। देह-कोषोंमें पोषक द्रव्य पँहुचाने और वहाँसे फालतू चीजोंको बाहर निकालनेके लिये एक तरहके चाप या दवाबकी जरूरत होती है। इसे देह-द्रवका औसमोटिक चाप (osmotic pressure) कहते हैं। सोडियम क्लोराइड इस चापको कायम रखनेके लिये जरूरी चीज है। पर केवल इसीसे बहुत दिन तक काम नहीं चलता, दूसरे खनिज भी जरूरी हैं।

सोडियम क्लोराइडके क्लोरीनसे हाइड्रोक्लोरिक तेजाब बनता है। पेटके पाचक अम्ल रसमें यही चीज है। रक्तमें सोडियम क्लोराइड होता है। खूनमें खानेके नमकका हिस्सा दूसरे खनिजों से जादा है। खूनका स्वाद नमकीन होता है। देहमें अनेक काम कर लेनेके बाद नमक पेशाब और खासकर पसीनेकी राह निकल जाता है। पसीनेमें प्रचुर नमक है। गाय एक दूसरेकी देह पसीनेके लिये चाटती है।

**७४०. नमकका महत्व :** मेढ़कके हृदयके प्रयोग (७१२) से सिद्ध होता है कि हृदयकी गतिके लिये सोडियम, कैलशियम, पोटाशियम और क्लोरीन कितने जरूरी हैं। किन्तु इनका उचित अनुपातमें होना जरूरी है। यदि गायको नमक नहीं दिया जाय तो साधारण तौर पर उसका स्वास्थ्य बहुत दिनों तक ठीक बना रहता है और उसमें कोई खास परिवर्त्तन नहीं दिखाई देता। वह किफायतसे काम लेती है और उसे (नमक) पेशाबमें कम निकालती है। पर थोड़े दिनोंके बाद नमककी कमीके कारण दुष्पोषण और कमजोरी झलकने लगेगी।

यह देखा गया है कि अधिक पसीना निकलनेसे अधिक नमक निकल जाता है, इससे थकावट मालूम होती है। ऐसे समय यदि नमक मिला हुआ पानी पीया जाय तो कम थकावट मालूम होगी। इसलिये कड़े कामके बाद पसीना निकालनेवाले पशुको नमकका पानी पिलाना चाहिये।

कितना नमक चाहिये यह पोटाशियमकी कितनी मात्रा मौजूद है इसपर निर्भर है। यदि सोडियम और पोटाशियमका अनुपात बिगड़ जाय तो पूरा खानेपर भी दोनों देहके बाहर निकल आवेंगे और देहको उनकी कमी बनी रहेगी। वास्तविक बात यह है कि सोडियमसे पोटाशियमके जादा होने से ही सारा उत्पात होता है। पर सोडियमकी अधिकतासे यह नहीं होता।

**७४१. पोटाशियमकी समस्या :** समस्या यह है कि पोटाशियमका अनुपात बढ़ानेके बदले कम कैसे किया जाय। साधारण चारेमें अक्सर बहुत जादे पोटाशियम होता है। अन्नके पुआलमें यह बहुत जादे होता है। फलियोंके पुआलमें यह और जादे होता है, प्रायः अन्नका डेवढ़ा होता है। जिन सूखी घासोंमें प्रोटीन अधिक होता है उनमें साधारण तौरपर पोटाशियम अधिक होता है। इसलिये जरूरतसे कम पोटाशियम होनेकी संभावना कम रहती है। इसके बदले इसका ध्यान रखना जरूरी है कि यह बहुत जादे न हो जाय। पर यदि यह अधिक होवे ही तो उपाय यह है कि उसी अनुपातमें अधिक नमक खिलाया जाय।

**७४२. नमकके काफी परिमाणका प्रबन्ध करना :** व्यवहारमें इसके लिये सबसे अच्छा उपाय यह पाया गया है कि चारेकी किस्मके अनुसार $\frac{3}{4}$ आउन्ससे २ आउन्स तक नमक रोज खिलाया जाय तथा पशुओंकी पँहुचके भीतरही नमकके ढेले रख दिये जायँ जिससे उसे चाटकर पशु जब चाहें तब अपनी कमी पूरी करलें।

**७४३. आयडीन (iodine) की जरूरत :** चारेमें यद्यपि आयडीन बहुत थोड़ी मात्रामें ही चाहिये फिरभी इसके बिना चल नहीं सकता। समुद्रसे दूरके स्थानोंमें आयडीनकी कमी की आशंका रहती है। खास खास जगहें हैं जहाँ आयडीन की कमी हो सकती है। आयडीनकी कमीसे खासकर नवजातोंको घेघा हो सकता है। ऐसी बात जहाँ हो वहाँ सूक्ष्म मात्रामें पोटाशियम आयडाइड (potassium iodide) देना चाहिये। दो ड्राम (१२० ग्रेन) अर्थात् $\frac{2}{3}$ तोला प्रोटाशियम आयडाइड मन भर नमकमें मिलाना चाहिये और रोज बतौर नमकके इसे देना चाहिये।

**७४४. लोहा और ताँबेकी जरूरत :** पशुओंके शरीरमें लोहेकी मात्रा नगण्य है। तन्दुरुस्त आदमीमें केवल ४३ ग्रेन लोहा होता है। यह परिमाण नगण्य ही है। पशु शरीरमें जरासे लोहाका जीवन क्रियापर बड़ा असर होता है। रक्त कण (blood corpuscles) में हेमोग्लोबिन (haemoglobin) होते हैं। इनके उपादानोंमें लोहा भी एक है। इसलिये हर रक्तकणमें कुछ लोहा रहता ही

है। लोहेके इस अति सूक्ष्म परिमाणसे बहुत जरूरी काम पूरा होता है। इसकी सहायतासे वायुमंडलका ऑक्सीजन खूनमें मिलता है और शिराके नीले खूनको शुद्धकर धमनीका लाल खून बनाता है। लोहा देह-कोषोंमें भी है।

लोहा अपना काम ठीकसे करे इसलिये देहमें कुछ ताँबा भी चाहिये। यह विसकौनसिनके (Wisconsin Station, U. S. A.) हालके एक प्रयोगसे सिद्ध होता है। कामके लिये उसका मौजूद रहना ही काफी है। कैलशियमके बारेमें कहा जा चुका है कि लोहा पचानेमें उसका बहुत हाथ है। यदि देहमें ताँबा न रहे तो लोहा कुछ काम नहीं कर सकता और आहारमें लोहा रहने पर भी रक्ताल्पता (anaemia) हो जाती है। ताँबेके नहीं रहनेसे लोहा यकृतमें जमा हो जाता है और हेमोग्लोबिनकी रचनामें नहीं लगता।

ढोरके साधारण चारेमें काफी लोहा और ताँबा होता है। पर जहाँ घासपातमें बहुत कम लोहा और ताँबा होते हैं वहाँ ढोर नहीं पनपते। यह प्रसिद्ध था कि फ्लोरिडा (Florida) के कुछ रेतीले भागमें पशु नहीं पनपते। उनकी भूख मन्द हो गयी और वह दुबले हो गये। उनके खूनका हेमोग्लोबिन मामूलीसे कम हो गया। वह बढ़ते नहीं थे और बहुतसे ढोर रोगोंसे मर गये। अब पता चला है कि उनके चारेमें लोहा और ताँबेका अभाव ही उनकी मृत्युका कारण हुआ। अभाव या तो लोहा या लोहा और ताँबा दोनोंका था। २५ रत्तल लोहेका जंग (red oxide) और १ रत्तल कॉपर सलफेट (तूतिया) का बारीक चूर्ण ३०० रत्तल नमकमें मिला दिया गया। इस बातका ध्यान रखा गया कि सबको खूब अच्छी तरह मिला दिया जाय, जिससे सब एकसा मिला रहे, कहींपर कॉपर सलफेट अधिक न हो जाय जिससे ताँबाका जहर लगे। पशुओंको यह मिश्रण कुछ कुछ रोज दिया जाता था। इससे पूरा ठट्ठ पनपा। इस नये ज्ञानसे रक्ताल्पताके कई रोगोंमें मनुष्यका लाभ हो सकता है।

**७४५. अजैव (inorganic) लोहेका पचना :** विसकौनसिनके प्रयोगने एक दूसरा कारण ढूँढ़ निकाला। अभीतक यह विश्वास था कि यदि देहमें अजैव खनिज लोहा या उसका नमक जाय तो पच नहीं सकता। लोहेके केवल जैव (organic) यौगिक (compounds) ही कमी पूरी कर सकते हैं। पर अब पता चला है कि पौधेमें पाये जानेवाले जैव लोहा पचना अधिक कठिन है। क्योंकि देहमें लगनेके पहले उसका टूटना जरूरी है।

इसके बदले यदि उचित मात्रामें तूतिया साथ साथ खिलाया जाय तो अजैव लोहा जल्दी पच जाता है। यह भी पता चला कि अजैव लोहेके नमककी तरह अन्नोंका जैव लोहा हेमोग्लोबिन बननेके लिये काममें नहीं आ सकता। पचनेमें अजैव लोहा उपयुक्त है यह नया ज्ञान दूध पीनेवाले सूअरके छोटे बच्चोंकी लोहेकी कमी पूरी करनेके काममें लाया गया।

**७४६. सूअरके बच्चोंपर प्रयोग :** जिन सूअरके बच्चोंको मामूलीसे अधिक दिनों तक माँका दूध पिलाया जाता था उन्हें दुष्पोषणको बीमारियाँ हो जाती थीं। क्योंकि दूधमें लोहे और ताँबेकी कमी रहती है। सूअरके एक जोड़ी नवजात बच्चोंमें एक माँके साथ खड़ंजा किये हुए घेरेमें रखा गया। धरती या चारा तक उसकी पँहुच नहीं हो सकती थी। दूसरा एक दूसरी सुअरियाके पास रखा गया। इसका थन रोज लोहेके सलफेटके घोलसे धोआ जाता था। जो अलग रक्खा गया था उसकी वृद्धि जैसी होती है वैसी हुई, क्योंकि थनमें लगा लोहेका सलफेट उसके पेटमें जाता था। जो माँके साथ रखा गया था उसे भयंकर रक्ताल्पता हुई।

**७४७. माँका दूध और लोहा :** कहा जा चुका है कि अधिक दिनों तक माँके दूधपर रहनेवाले बछड़ेको रक्ताल्पता हो सकती है। माँके दूधमें लोहा और ताँबा कम हैं। गर्भमें भ्रूणकी देहमें माता इतना लोहा भर देती है कि जबतक बच्चेको दूधका अवलंब रहता है, तबतक वह काम देता है। इससे साधारण विकास होता रहता है। पर यदि बछड़ा या मनुष्य-शिशु मामूलीसे जादे दिनोंतक माँके दूधपर ही रखा जाता है तो उसके लिये पूरक लोहे और ताँबेका प्रबन्ध करना चाहिये। नहीं तो बच्चा नहीं पनपेगा।

**७४८. गन्धककी जरूरत :** साइस्टीन नामके प्रोटीनमें गन्धक होता है। साइस्टीनके बननेके लिये गन्धक जरूरी है। मामूली जरूरतके लिये चारेमें काफी गन्धक होती है। जब गन्धककी कमी की आशंका हो तो कच्चा गन्धक या उसका सल्फेट दिया जा सकता है। पर इसकी उपादेयता पर सन्देह किया जाता है। दूबोंमें काफी गन्धक होती है। यह चारेमें अधिक दी जा सकती है। गन्धकवाले चारोंकी घासोंकी सूची पैरा ६३४ में दी गयी है।

**७४९. मैगनीशियमकी जरूरत :** पोषणके लिये मैगनीशियम जरूरी है। इसका अभाव एक विपद है। भाग्यसे साधारण तौर पर सभी चारेमें काफी मैगनीशियम होता है। इसकी कमीकी शंका नहीं रहती है।

बंगालके प्रयोगोंमें इसका (७१७, ८०८-'१२) धनात्मक समतोल पाया गया जबकि, ५०० रत्तल शरीर तौलके पशुको १५ ग्राम खिलाया गया था। पर आहारमें मैगनीशियमकी आवश्यकता बहुत कम आंकी गयी है। ढोरोंको कभी मैगनीशियमकी कमीकी बीमारी होगी इसमें श्री ग्रीन (Green) को शक है।

सावधानी दूसरी बातोंकी रखनी है। अतिरिक्त मैगनीशियम खाया जा सकता है, जिससे चूना और नमक दोनोंके कम पचनेकी आशंका हो सकती है। चावलकी छाँटमें (८१५, ८२७) बहुत अधिक मैगनीशियम है। २·६ प्रतिशतके हिसाबसे यह चावलकी छाँटमें है। चावलकी छाँट या भूसी पुष्टईके रूपमें खिलायी जा सकती है। पर यदि अधिक खिलाया जाय तो यह नुकसान कर सकती है। अधिक दिनोंतक अधिक परिमाणमें मैगनीशियम खिलानेसे हड्डी कमजोर हो सकती है। इसके कारण भूसी या चोकरका रोग (bran disease) हो सकता है। अतिरिक्त मैगनीशियमसे अधिक कैलशियम निकल जाता है, इस सिद्धान्तसे इसका मेल है।

मैंगनीज और बोरॉन (Boron) बहुत कम मात्रामें चाहिये। साधारण तौर पर यह सभी चारोंमे है। इनके लिये कोई खास ध्यान देनेकी जरूरत नहीं, पर इनके अभावसे अपुष्टि या अपोषण-जनित बीमारियाँ (deficiency diseases) हो सकती हैं।

**७५०. भिटामिनकी जरूरतें : साधारण विचार :** ज्यों ज्यों खोज हो रही, भिटामिनोंकी संख्या बढ़ रही है। अभी तक ए, बी, सी, डी, ई, जी (A,B,C,D,E,G) का काफी निश्चित पता चला है। मुर्गीके लिये भिटामिन 'के' (K) की आवश्यकता सिद्ध होनेसे निश्चित गुणोंवाले भिटामिनोंकी सूचीमें यह भी आ गया है। 'बी' जटिल भिटामिन माना जाता है। इसमें ६ भिन्न भिटामिन हैं। जिसे भिटामिन बी$_2$ ($B_2$) कहा जाता था उसे अब 'जी' कहा जाता है।

सभी भिटामिनोंमें ए और डी भेटेरिनरीवालोंके लिये सबसे कामके हैं। यह सभी प्रकारके पशुधनके लिये जरूरी है। पशुधनके आहारमें इसका बड़ा महत्व है। दूसरे भिटामिन पशुओंको खिलाये जानेवाले चारेमें बहुत होते हैं।

भिटामिन ए, बी और सी का पोषण और जीवन-क्रियामें क्या महत्व है इसका सन् १९११ और '१३ के बीच पता चला। जाड़ेसे कुछ पहले शरद् कालमें अमेरिकामें जो सूअरके बच्चे पैदा होते थे उन्हें लकवा (पक्षाघात) या निमोनियाँ (फुस्फुस

प्रदाह, श्वसनक ज्वर) जैसे रोग हुआ करते थे और उनमें बहुतसे मर भी जाते थे। इसका कारण कभी कभी चारेमें जरूरी भिटामिनकी कमी थी। इसका पता पहले नहीं था। इसलिये इस रोग या मृत्युका कोई इलाज नहीं था। भिटामिनका पता चलनेके बाद रोगके कारण समझमें आ गये और शरद्में पैदा होनेवाले सूअरके बच्चोंकी मृत्यु भी रुक गयी।

जिन पशुओंको पुष्टईकी जगह केवल बिनौला दिया जाता था वह नहीं पनपते थे। अगर मौत हो जाती थी तो उसे बिनौलेके विषसे माना जाता था। रोगका कारण भिटामिन और खनिजोंकी कमी थी। इसमें सुधार करनेसे आज बिनौला उत्तम पुष्टइयोंमें एक है। पर कुछ ही वर्ष पहले यह एक भयंकर चीज थी।

इन खोजोंसे पोषणकी बहुतसी पेचीदी समस्यायें सुलझ गयी हैं और अभी भी सुलझ रही हैं। यह दुःखकी बात है कि, भिटामिनके बारेमें जो खोज हुई है उसमें मुख्य ध्यान मनुष्यके आहार पर ही दिया गया है। कुछ चारोंके भिटामिनके बारेमें निश्चित ज्ञान लोगोंको है। जिन थोड़े चारोंके बारेमें यह ज्ञान है, वह भी भारतके बाहर खोज करनेवालोंके देशके हैं। इसलिये भारतके पशु-पालकोंके लिये वह उतने कामके नहीं हैं। भारतके चारोंकी खोज अभी बाकी है। भारतमें आज तक जो काम हुआ है वह है तो महत्वका, पर थोड़ा ही हुआ है।

एकही चारेके भिटामिनमें जमीन और मौसमके अनुसार भिन्नता रहती है। छपे आँकड़ेसे भारतके चारोंके भिटामिनोंका अन्दाज लगाया जा सकता है। (६१२)

७५१. **भिटामिन 'ए':** ढोरके पोषणमें भिटामिन ए के महत्वकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। यह निर्वाहके लिये जरूरी है और उससे भी जादे जरूरी वृद्धि और दूधके लिये है। भिटामिन ए-प्रचुर चारा नहीं खिलानेसे जरूर ही संकट आता है। भिटामिन ए को वृद्धिका भिटामिन कहा जाता है, पर इसका हाथ ढोरकी केवल वृद्धिमें ही नहीं है, उसके जीवनके हर विभागमें है। (६१२)

७५२. **भिटामिन 'ए' का काम:** भिटामिनके मुख्य कामोंमें एक है झिल्ली और चमड़ेके ऊपरी तन्तुओंको स्वस्थ रखना जिससे जीवाणुओंके आक्रमण रोके जा सकें। भिटामिन ए की कमी प्रतिरोधशक्ति कम कर देती है, इससे जीवाणु तुरत शरीर पर आक्रमण कर सकते हैं। भीतरी अवयवोंका आवरण झिल्लीका होता है। किसी अवयवके आवरण पर रोगका असर होनेसे उस अवयवका रोग शुरू हो

जाता है। जैसे कि सारी श्वासप्रणाली झिल्लियोंसे मढ़ी है। भिटामिन एकी कमीसे इस प्रणालीमें रोग हो सकता है। (६१२)

**७'१३. भिटामिन 'ए' और अन्धापन :** रोगके जीवाणु हवामें हैं और फेफड़ेमें पँहुच जाते हैं। श्वासप्रणालीके रोग भिटामिनकी कमीसे हो सकते हैं। केराटोमैलेसिया या जीरौफ्थेल्मियां (kerotomalacia or xerophthalmia) आँखकी एक बीमारी है। आँखकी श्लैष्मिक कला (झिल्ली) की खराबीसे यह रोग होता है। भिटामिन ए की कमी होनेसे यह कला जीवाणु-आक्रमणको रोक नहीं सकती। इनके संक्रमणसे अन्तमें आँखे जाती रहती हैं और रोगी अन्धा हो जाता है। भिटामिन 'ए' की कमीसे श्लैष्मिक कलाकी निरोध-शक्ति ही कम नहीं होती है, स्नायु प्रणाली और दृष्टिस्नायुसे युक्त आँखके पिछले भागका पर्दा (retina-रेटिना, अक्षिपट, संवेदनिक पटल) भी खराब हो जाता है। अमेरिकाके कुछ प्रयोगालयोंमें सुअरियोंको भिटामिन ए-रहित चारा खिलाया गया। इस कमीके कारण जो बच्चे जन्मे उन्हें आँखका कोआ ही (अक्षि गोलक) नदारद था। अमेरिकामें एक दूसरी गायोंको अल्प भिटामिन ए वाला चारा खिलाया गया। उसमें खनिजोंकी कमी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि, बछड़े अन्धे हुए। भिटामिन ए की कमीवाला चारा खिलाकर जो बछड़े पाले गये वह भी अन्धे हो गये। इन सबोंके आँखके स्नायु (optic nerves) खराब हुए थे। यह ध्यान रखना चाहिये कि, इन सबोंके लिये भिटामिन ए की कमी ही एक कारण न थी। क्योंकि इसे सुधारनेके बाद भी कुछ बछड़े अन्धे हो गये। इसके सहायक कारण और भी थे।

यदि गायोंको कुछ दिन तक अल्प-भिटामिन चारा खिलाया जाता है तो साधारण तौरपर बुराई होती ही है। या तो बछरू मरे हुए पैदा होते हैं या इतने कमजोर होते हैं कि थोड़े दिनमें मर जाते हैं। ब्यानेके बाद गाय, जब तक उसे हरा चारा न दिया जाय वह फिर गरम नहीं होती। तरुण ढोरोंकी भिटामिन ए की कमीसे बड़ी हानि होती है। जब उन्हें ए-प्रचुर चारा दिया जाता है तब उनमें कुछ सुधार होता है। नहीं तो वह भयानक रूपसे कमजोर हो जाते हैं। इस भिटामिनकी कमीसे लकवा हो सकता है। तरुण और बढ़नेवाले पशुओंको भिटामिन ए की जादे जरूरत होती है। इसलिये इसकी कमीसे इनका नुकसान भी जादे होता है। (६१२)

**७५४. भिटामिन 'ए' का भंडार :** भिटामिन यकृत और दूसरे तन्तुओं में जमा हो सकता है। इसलिये जब कभी आहारमें इसकी कमी होती तो संचित भंडारसे वह मिलता रहता है; और जबतक भंडार चुकता नहीं है, इसकी कमी महसूस नहीं होती। जब जरूरतसे जादा भिटामिन ए आहारके समय शरीरमें जाता है तो अतिरिक्त भंडारमें जमा हो जाता है। (६१२)

**७५५. भिटामिन 'ए' के साधन :** भिटामिन ए का सबसे बड़ा साधन पौधोंका हरा भाग, हरी पत्ती और हरी टहनी है। चरनेवाली गायके दूधमें यह भिटामिन सबसे जादे होता है। दुधार पशुके भिटामिन ए संग्रह के अनुसार दूध होता है। यदि चारेमें भिटामिन ए प्रचुर है तो दूधमेंभी यह प्रचुर होगा। यदि गायको खिलाये चारेमें इसका अभाव है तो उसके दूधमें भी अभाव रहेगा या नगण्य मात्रामें होगा। इससे रहित चारा जिस दुधार गायको खिलाया जायगा, उसके और उसके बच्चेको जानका खतरा रहता है।

पीले रंगका सम्बन्ध भिटामिन ए से है। यह कैरोटीन (carotene) से गायके देहमें बन सकता है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि, पीले रंगकी गहराई कैरोटीनकी नाप है और जितना ही गहरा पीलापन होगा उतनी ही कैरोटीन की मात्रा अधिक होगी। कुछ ऐसी गायें हैं जिनका मक्खन रंगहीन होता है। पर उसमें जितना चाहिये उतना भिटामिन ए होता है, पर कैरोटीन शायद कुछ नहीं होता। भिटामिन ए रंगरहित वस्तु है और फल पत्ते आदिके पीले कैरोटीन से बन सकती है। बहुतसी गायें कैरोटीनके कुछ अंशको भिटामिन ए में परिणत करती हैं और कुछ सम्पूर्णको। इसलिये दूधमें पीलेपनके अभावसे भिटामिन ए का अभाव मानना जरूरी नहीं है। क्योंकि कैरोटीनके पूरे परिवर्त्तनके कारण उजलापन हो सकता है। पर साधारण तौर पर कह सकते हैं कि सफेद मक्खनमें भिटामिन ए और कैरोटीन की न्यूनता है।

**७५६. कैरोटीन :** कैरोटीन पीले रंगका स्नेहमें घुलनेवाला पदार्थ है। यह गाजर या मक्खनके पीले रंगमें होता है। पौधों में सभी या प्रायः सभी भिटामिन कैरोटीनके रूपमें हरे पत्तोंमें जरूर होता है। कैरोटीन स्वयं तो पीला होता है पर पत्तेके गहरे हरे क्लोरोफिलमें उसका पीला रंग छिप जाता है। पौधा उखाड़ने या पत्ता तोड़ने पर जब उनका हरा रंग सूर्य किरणके प्रभावसे उड़ जाता है, तब पीलापन झलकने लगता है। हरा चारा खानेवाले पशुको कैरोटीन

बहुत मिलता है। पर हरा चारा सुखा देनेसे उसका कैरोटीन पूरा या कुछ नष्ट हो जाता है। पर यदि चारेको छाँहमें इस तरह सुखावें कि उसका हरा रंग बना रहे और वह फफदे या उफने भी नहीं तो बहुत कुछ कैरोटीन बच जाता है। सूखी घासमें उसके हरेपनके अनुपातमें कैरोटीन मानना चाहिये। साइलेजमें जितना हरा रंग रह जाता है उतनाही कैरोटीन भी रहता है। पर वास्तबमें साइलेजमें बहुतसा कैरोटीन रह ही जाता है, इसलिये वह सूखी सुरक्षित घाससे श्रेष्ठ है। गाजरको छोड़ और किसी पीले कन्दमूलमें उल्लेखनीय मात्रामें कैरोटीन नहीं होता।

भिटामिन ए स्नेहमें घुल सकता है। इसलिये दूधका सारा भिटामिन ए मक्खनमें होता है। दुद्धी (मक्खन निकाले हुए दूध) में नगण्य मात्रामें भिटामिन ए हो सकता है। अंडेकी जर्दी और पशु तथा मछलियोंके यकृत (कलेजी) इसके उत्कृष्ट साधन हैं। (६१२)

७·१७. **भिटामिन 'बी' :** भिटामिन बी पानीमें घुलनेवाला भिटामिन है। यह बेरी-बेरी (beri-beri) नाशक भिटामिन कहा जाता है। मिलके कुटे पिसे अनाजका बाहरी अंश या आवरण नष्ट हो जाता है, इसलिये उसमें भिटामिन बी नहीं रहता है। इसीलिये यह अनाज जिनका मुख्य आहार होता है उन्हें बी भिटामिन के अभावमें दुष्पोषण या अपुष्टिका रोग (deficiency disease) बेरी-बेरी हो जाता है।

पौधोंमें भिटामिन बी सब जगह होता है। इसलिये वनस्पतिभोजीको भिटामिन-'बी'-रहित आहारका डर नहीं रहता। यह पुआल और सूखी घास, चाहे हरी हो न हो, उसमें भी रहता है। किण्व या खमीर (yeast) में खास तौर पर बी भिटामिन प्रचुर है। यह देखा गया है कि जीवाणु (bacteria) की क्रियासे पागुर करनेवाले पशुओंके पेटमें यह संश्लेषणसे भी बन सकता है। (६१२)

७·१८. **भिटामिन बी-कमप्लेक्स :** भिटामिन बी अब जटिल पदार्थ माना जाता है। इसके सारे यौगिक पानीमे घुलनेवाले हैं और ऊँचे ताप तथा जलने (oxidation—ऑक्सीजनको क्रिया) का प्रतिरोध करनेवाले हैं। फिरभी उबलते पानीके तापमें देरतक गरम करनेसे यह नष्ट हो जाते हैं।

भिटामिन बी-कमप्लेक्सका अब अलग नाम जी (G) है। इसमें दो यौगिक हैं। फ्लेभिन (flavin) जो वृद्धिके लिये चाहिये और निकोटिनिक तेजाब

(nicotinic acid)। यह तेजाब ही चर्म रोगोंका निरोधक है। मनुष्योंके पैलेग्रा (pellagra) का भी यह निरोधक है। यह ठीकसे नहीं मालूम कि बी-कमप्लेक्सके अन्य यौगिकभी किसी महत्व के हैं या नहीं। भिटामिन बी इतना स्थायी है कि सूखी आबहवामें १०० वर्षसे रखे धानमें भी यह बना हुआ था। (६१२)

**७५६. भिटामिन 'सी':** भिटामिन सी को रवादार या स्फटिक रूपमें (crystalline) अलग किया गया है और वह एसकोर्बिक तेजाब (ascorbic acid) के नामसे विख्यात है। भिटामिन सी स्कर्भी रोगका (एक प्रकारका रक्त-दूषण रोग) नाशक है। यह पानीमें घुलता है और हरे पत्ते तथा फलोंमें, विशेषकर खट्टे फलोंमें होता है। नर, बानर और विलायती चूहे (guinea pigs) भिटामिन सी का संश्लेषण नहीं कर सकते। इसलिये यदि उन्हें हरा आहार खानेको नहीं मिले तो स्कर्भी रोग हो जाता है। यह रोग भिटामिन सी की कमीका रोग है। इसमें दांत हिल और मसूड़े सूज जाते हैं। हड्डी भंगुर हो जाती है। घाव जल्दी भरते नहीं, शक्ति क्षीण हो जाती है तथा मृत्यु हो जाती है। बहुतसे लोगोंको लम्बी समुद्र यात्रामें यह रोग हो जाता है जिससे वह मर भी जाते हैं। कभी यूरोप और अमेरिकामें स्कर्भी मामूली बीमारी थी। पर अब कम होती जाती है। क्योंकि, अब लोग जान गये हैं कि यह रोग भिटामिन सी की कमीकी बीमारी है ओर यह सी भिटामिन, नीबू, नारंगी, इमली या टमाटर के रसमें रहता है। रोज इन फलोंका कच्चा रस खानेसे यह रोग रुक सकता है, और रोग हो जानेपर प्रारंभिक अवस्थामें इससे छूटभी सकता है।

ढोर भिटामिन सी का संश्लेषण कर सकते हैं, इसलिये उन्हें इसकी कमी नहीं होती। अब पता चला है कि, मनुष्योंके शिशु भी ५ महीनेकी उमर तक इसका संश्लेषण कर सकते हैं। इसके बाद उनमें यह सामर्थ्य नहीं रहती। (६१२)

**७६०. भिटामिन 'डी':** भिटामिन डी की ढोरोंको बहुत जरूरत है। ढोर सूर्यकी रोशनीमें इसका संश्लेषण कर सकते हैं।

यह सूखा रोग या रिकेट (ricket) नाशक भिटामिन कहा जाता है। क्योंकि यह रोग इसी भिटामिनके अभावमें नर और पशु दोनोंको होता है। भिटामिन डी के मौजूद रहनेसे ही कैलशियम और फॉस्फोरस पच सकते हैं। ढोरके विकास कालमें यह खास तौर पर चाहिये। गर्भमें वर्द्धमान भ्रूणकी हड्डी कैलशियम और

फॉस्फोरससे बननेके लिये गर्भवती माताओंको यह भिटामिन चाहिये। दूधमें कैलशियम और फॉस्फोरस बहुत होता है, इसलिये दूधके समय चारेके इन दो खनिजोंके पचनेके लिये यह बहुत आवश्यक है।

जिस तरह दूसरे भिटामिनके आविष्कारसे स्कर्भी दूर हो गयी है, उसी तरह भिटामिन डी ने असंख्य नर और पशुके बच्चों की रिकेट या सुखा रोगसे रक्षाकी है। केवल एक पीढ़ी पहले यूरोप और अमेरिकाके शहरोंमें सैकड़े ८० बच्चोंको सूखा रोग होता था। पर अब यह रोग मिट रहा है।

सन् १९२४ में यह पता चला कि कुछ पदार्थोंपर अल्ट्रा-भायोलेट किरण (ultra-violet rays) पड़ने पर उनमें भिटामिन डी पैदा हो जाता है। चमड़ेमें अरगोस्टेरोल (ergosterol) नामका पदार्थ सूक्ष्म रूपमें पाया जाता है। इसपर सूर्यकी किरण पड़नेसे डी भिटामिन बनता है। पशुके तंतुओंमें अरगोस्टेरोलसे यह दिनके हलके प्रकाशमें भी बन सकता है। जिन पशुओंको धूप मिल जाती है उनमें यह पैदा हो जाता है।

भिटामिन डी स्नेहमें घुल सकता है पर उबलते पानीके तापके समान टेम्परेचरमें देर तक गरम करनेसे यह नष्ट नहीं होता। धूपमें सुखाये चारेमें यह होता है। हरे पौधोंमें भिटामिन डी कुछ नहीं होता। धूपमें सुखानेके समय यह बनता है। दूधके मक्खनमें भिटामिन डी होता है। अन्डेकी जर्दीमें यह बहुत है। मछलीके यकृत और उसके यकृतके तेलमें यह प्रचुर है। मछलीके मांसमें भी यह है। (६१२)

**७६१. भिटामिन 'ई' :** यह भिटामिन चारेमें बहुत है। आदमीका जो आहार कृत्रिम तरहसे साफ नहीं किया जाता उसमें भी खूब होता है। भिटामिन ई अन्नों, बीजों और वनस्पति-तेलों में बहुत होता है। बीजके अंकुरमें यह खास तौर पर प्रचुर है। यह हरे पत्तों और पुआलमें भी होता है। चुहियाँ इसके बिना बाँझ हो जाती हैं। चुहिया गाभिन होती है पर भिटामिन ई की कमीके कारण प्रारंभिक अवस्थामें ही भ्रूण मर जाता है और उसकी देहमें मिल जाता है। चूहोंमें भी इस कमीसे बाँझपन हो जाता है। पर यह बात सभी स्तनपायियों पर लागू नहीं है। अभी यह ठीकसे नहीं मालूम हुआ है कि गायको यह ई भिटामिन कहाँतक चाहिये। यदि चाहिये हो तो साधारण चारेमें इसका यथेष्ट प्रबन्ध है। (६१२)

**७६२. पानीकी जरूरत :** पशुके पोषणमें पानीकी अत्यन्त आवश्यकता

है। पानी चमड़ेसे भाफकी तरह उड़ जाता है। साँसमें भी निकल जाता है। मलमूत्रमें यह बहुत निकल जाता है। इन सब हानियोंको पूरा करना होता है। अन्नके पचनेके समय कुछ पानी तो पशु स्वयं बनाता है। जैसे कि, १०० रत्तल कार्बोहाइड्रेटमें ५५·५ रत्तल पानी और १६३ रत्तल कारबन-डाइऑक्साइड होगा। प्रोटीनमें कार्बोहाइड्रेट से कुछ कम पानी होगा। पशुओंको सूखे चारेसे भी कुछ पानी मिल जाता है। हरा चारामें तो काफी पानी है ही।

यदि काफी पानी नहीं दिया जाय तो गायोंका दूध कम हो जाता है। दुधार गायोंको सबसे जादे पानी चाहिये क्योंकि उनके दूधमें ८७ सैंकड़ा पानी ही है। अपने आकारके अनुसार ५ से १२ गैलन तक (करीब २५ सेर से १½ मन तक) पानी गाय पी सकती है। केवल दूधके लिये ही उसे दूधसे ४-५ गुना पानी चाहिये। गोशालामें हमेशा शुद्ध और स्वच्छ पानी रहना चाहिये। छुट्टा रहनेवाले पशुओंके लिये पानीके हौज बनवा देने चाहिये जहाँ वह पी सकें। खूँटेपर खानेवाले हर पशुके लिये पानीकी नाँद होनी चाहिये या दो दो पशुओंपर एक हो अथवा सबके लिये एकही लम्बासा हौज हो जो सबकी पँहुचमें भी हो। जहाँ गायोंको नदीमें पानी पिलाने ले जाते हैं वहाँ यह रोज दो बार करना चाहिये।

पानीका एक मतलब और है। वह देहका ताप ठीक रखता है। जब शरीरका ताप बढ़ जाता है तब थोड़ासा पानी पीनेसे वह कम हो जाता है और तकलीफ दूर हो जाती है।

**७६३. हवाकी जरूरत :** साँसमें जब हवा ली जाती है तब उसकी प्रतिक्रिया फेफड़ेमें होती है और वह बदल जाती है। साँस लेनेमें हवाका ४ सैकड़ा ऑक्सीजनके रूपमें ले लिया जाता है और उसके बदले उतनाही कारबन-डाइऑक्साइड छोड़ दिया जाता है। फेफड़ेमें पहुँचनेवाली हवामें २१ सैकड़ा ऑक्सीजन है। फेफड़ेमें रक्तकी शुद्धिके लिये इसमें से चार सैकड़ा लग जाता है। इसलिये छोड़ी साँसमें केवल १७ सैकड़ा ऑक्सीजन रहता है। साँस लेनेके समय हवामें ·०३ सैकड़ा कारबन-डाइऑक्साइड होता है जो बढ़कर छोड़ी साँसमें चार सैकड़ा हो जाता है। किसी बन्द जगहमें पशुका साँस लेना बराबर जारी रहनेसे उसमें की बन्द हवा प्राण धारणके लायक नहीं रहती। किसी बन्द जगहमें बहुत आदमीके इकट्ठा होनेपर या भीड़में दम घुटने लगता है। पहले यह माना जाता था कि यह तकलीफ हवामें अधिक कारबन-डाइऑक्साइड भर जानेके कारण होती है।

पर पीछे पता चला कि यह बात नहीं है। यदि खुले कमरों की हवामें अधिक मात्रामें कारबन-डाइऑक्साइड हो तब भी यह तकलीफ नहीं होती। यह कष्ट हवामें नमी और तापकी अधिकता से होता है। छोड़ी साँसके भाफके कारण हवामें नमी होती है। तापको शान्त करना और नमीको दूर करना इसका उपाय है। इसके लिये हवाके आने जानेका प्रबन्ध करना चाहिये।

नीचेके आँकड़ेमें दिखाया गया है कि गाय घोड़ा और मनुष्य प्रति घंटे कितना घनफीट कारबन-डाइऑक्साइड छोड़ते हैं और उन्हें कितनी हवा और जगह की जरूरत है।

# आँकड़ा—६३

## जीवोंकी साँसमें निकला हुआ कारबन-डाइऑक्साइड

| | साँसमें प्रति घंटे कितना घनफूट कारबन-डाइ-ऑक्साइड निकला | ·०९% से कम का०-डाइऑक्साइड रखनेके लिये कितना घनफूट हवा चाहिये | का०-डाइऑक्साइड को ·०९% से कम रखनेके लिये प्रति पशु कितना घनफूट जगह चाहिये |
|---|---|---|---|
| बड़ी गाय | ६ | १०,००० | १,१०० |
| मझोली गाय या घोड़ा | ३ | ५,००० | ५५० |
| मनुष्य | ०·६ | १,००० | ३३० |

बन्द घरोंमें ढोर रखनेपर गच और छतके पास काफी खुली जगह छोड़नी चाहिये जिससे हवा आ जा सके।

**७६४. युक्ताहार :** पशुकी पुष्टिके लिये आवश्यक कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिनका ज्ञान हमें हो गया है। अब हम ढोरके लिये युक्ताहार स्थिर कर सकते हैं। पशुका ठीक तरहसे २४ घंटेतक पोषण करनेके लिये जिस आहारमें उचित परिमाणमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, स्नेह, भिटामिन और खनिज हों उसे युक्ताहार कहते हैं।

निर्वाहके लिये पशुको कितना चाहिये यह उसकी देहकी तौलपर निर्भर है। यह सूत्री या गुरसे (६२५) अथवा तौलकर जाना जा सकता है।

कुल आवश्यकतामें प्रोटीन और एस० ई० की आवश्यकता बता दी गयी है।

**७६५. पोषण और शरीरकी तौल :** यह कहा जा चुका है कि पोषणकी आवश्यकताएँ पशु शरीरकी तौलके अनुपातमें नहीं घटतीं बढ़तीं। ३/३ शक्ति या '७३ या '७८ तौलकी शक्ति के अनुपातसे घटती या बढ़ती है। इस आधार पर बनाये गये नीचे लिखे आँकड़ेमें पशुओंकी तौलके अनुसार आवश्यकताएँ दिखायी गयी हैं।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तौल | ५०० | ६०० | ७०० | ८०० | ९०० | १,००० | रत्तल |
| पचनीय प्रोटीन | ०·३३८ | ०·३९९ | ०·४५८ | ०·५१६ | ०·५७० | ०·६२५ | रत्तल |

यदि ०·३३८ रत्तल प्रोटीन ५०० रत्तलके पशुके लिये चाहिये तो १,००० रत्तलवालेको अनुपातके अनुसार ०·३३८ का दूना अर्थात् ०·६७६ रत्तल चाहिये। पर तौलकी शक्तिके आधारपर जोड़े उल्लिखित आँकड़ेमें यह ०·६२५ है। पशुकी जरूरतोंमें अनिश्चित रूपसे बहुत जादे अन्तर हो जाया करता है, इसे देखते हुए दो तरहके हिसाबोंके अनुसार ०·६७६ और ०·६२८ में जो अन्तर है वह नगण्य है। प्रोटीन विभिन्न हैं। खनिजोंकी आवश्यकता पर कितने ज्ञात और अज्ञात कारणोंका नियन्त्रण है। जबकि अनिश्चित मुद्दे इतने अधिक हैं, प्रति दिनके व्यवहारमें इस आँकड़ेके अंतरको महत्व नहीं देना चाहिये। इसलिये ५०० रत्तलकी आवश्यकताओंके आँकड़ेसे पाठक दूसरी तौलोंकी आवश्यकताओंका पता इसी अनुपातसे पा सकेंगे।

## आँकड़ा—६४

**७६६. ५०० रत्तलकी सयानी गायकी फुरसतके समयके निर्वाह-आहारकी मात्रा :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| सूखा सामान | ... | ... | १०–१२½ | रत्तल |
| पचनीय प्रोटीन | ... | ... | ०·३४ | ,, |
| कुल पचनीय पोषक | ... | ... | ४ | ,, |
| एस० ई० | ... | ... | ३·०५ | ,, |
| पोषक अनुपात (Nutrition ratio) | | | १०·८ | ,, |
| कैलशियम ऑक्साइड (CaO) | | ... | २४ | ग्राम |
| फॉसफोरस ($P_2O_5$) | ... | ... | १५ | ,, |
| पोटाशियम (इससे जादे न हो) $K_2O$ | | ... | ७० | ,, |
| खानेका नमक (NaCl) | | .... | २४ | ,, |

ऊपरका आँकड़ा फुरसतमें ढोरकी निर्वाहकी आवश्यकता बताता है। यह प्रयोगशालाकी हालतमें है। पर वास्तवमें सभी पशु फुरसतके समयभी कुछ हिलते डुलते हैं। इसलिये कुछ काम करते हैं। चरनेवाला पशु चरनेके लिये मीलों जाता है। वह इतनी दूर चलनेका काम करता है। इसलिये उसे इस कामके लिये अतिरिक्त चारा देना चाहिये। निर्वाहका चारा तात्विक स्थिरांकके अनुसार (theoretical constant) है। इसमें कामका चारा जोड़ना होता है। यह काम चरना, गाड़ी खींचना, हल चलाना, गर्भ धारण करना या दूध देना हो सकता है। कामकी ये आवश्यकताएँ निर्वाहकी आवश्यकतोंमें जोड़नेके लिये अलग दिखायी गयी हैं।

बढ़नेवाली और सयानी गायका भी भेद करना होता है। बढ़नेवाली गाय प्रति दिन १ रत्तल बढ़ती है। इसलिये बढ़नेवाले पशुको दूसरे आधारपर चारा चाहिये।

इस उदाहरणमें पोषक अनुपात १०·८ निकाला गया है जिसमें पचनीय प्रोटीन ०·३४ और (३·०५—·३४) पचनीय पोषकोंका प्रबन्ध किया गया है। पर यदि ऐसा चारा चुना गया जो सूखा सामान और प्रोटीनकी जरूरत की सीमामें ही हो, किन्तु यदि कुल पचनीय पोषक सूचीसे अधिक हो तो पोषक अनुपात बदल जायगा। इस तरह पोषक अनुपातका व्यापक होना कुछ हद तक हानिकर नहीं होगा।

पोटाशियमके बारेमें यह जान लेना चाहिये कि जितनी मात्रा बतायी गयी है उससे अधिक न हो। इस आँकड़ेमें सिर्फ ५०० रत्तल तौलकी गायके निर्वाह-प्रयोजन की सूचना दी गयी है। दूसरी तौलोंकी गायोंके लिये निर्वाहकी आवश्यकताएँ इसी तौलके अनुपातसे निकालनी चाहिये।

**७६७. बढ़नेवाली गायोंकी आवश्यकता :** अगला आँकड़ा (आँकड़ा ६५) बढ़नेवाले ढोरकी आवश्यकता बताता है। वृद्धि कालमें पशुको ऐसा पोषक देना चाहिये जिससे कि बड़ी नसलके ७०० से १,००० रत्तलके ढोरकी १ रत्तल तौल प्रति दिन बढ़ सके। पशुओंकी जिन्दगीमें यह वृद्धिकाल बड़ा संकटपूर्ण रहता है। यदि जैसी होनी चाहिये वैसी उनकी वृद्धि नहीं हो सकी तो उनका भविष्य चौपट हो जाता है। विकासकालमें वृद्धि रुक जानेके बाद उन्हें अच्छी तरह खिलाने पिलानेसे उनका वजन बढ़ सकता है और तन्दुरुस्त भी दिखाई पड़ सकते हैं। पर गर्भसे ही जो जैसा चाहिये पुष्ट होते आये हैं उनकी तरह वह काम नहीं कर

सकते। यदि वह बछिया है तो उसे गाभिन होनेपर या दूध देनेके समय चाहे जितना खिलाया जाय वह दूध कम ही देगी। बादकी सँभालसे हालत सुधरेगी अवश्य, पर वृद्धि कालकी उपेक्षासे हुई हानि पूरी नहीं हो सकती।

पोषक द्रव्योंका विचार करते समय कहा जा चुका है कि, प्रोटीनसे मांस, चमड़ा, केश आदि और कैलशियम तथा फॉस्फोरस से हड्डी बनती है। विकासकालमें हाड़ और मांस बढ़ते हैं इसलिये विकासकालमें इन चीजोंका देना बहुत जरूरी है।

यह जान लेना चाहिये कि ५०० रत्तलकी गाय तथा बढ़कर और बड़ी होनेवाली बछिया या बछवेके निर्वाहकी आवश्यकताओंमें बड़ा अंतर है। जैसा कहा जा चुका है शरीरिक वजनमें प्रति दिन १ रत्तल वृद्धिके हिसाबसे यह अन्तर होना जरूरी है। सिर्फ वृद्धिके काममें २ से ३ रत्तल तक अतिरिक्त शक्ति खर्च होती है और इसी अनुपातसे पोषणके दूसरे पदार्थोंकी भी जरूरत होती है। (६४८)

**७६८. बढ़नेवाले पशुओंके लिये :** जहाँ ५०० रत्तलके पशुको सिर्फ निर्वाहके लिये ०·३४ रत्तल प्रोटीन चाहिये, वहाँ उसी वजनके वर्द्धनशील पशुको और भी बढ़नेके लिये २$\frac{1}{2}$ गुना प्रोटीन और दूना एस० ई० चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि विकासकाल मूल्यवान है। इस समय पशुसे कुछ काम नहीं लिया जाता पर उसकी खिलाईका खर्च काम करनेवाले या दूध देनेवालेसे कम नहीं है। (६४८)

# आँकड़ा—६५

## बढ़नेवाले ढोरकी जरूरतें

| | सूखा सामान रत्तल | पचनीय प्रोटीन रत्तल | कुल पचनीय पोषक रत्तल | एस० ई० रत्तल | पोषक अनुपात | कैलशियम ऑक्साइड (CaO) ग्राम | फॉसफोरस ($P_2O_5$) ग्राम |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १०० | १·५ से २·५ | ०·३२ | १·५ | १·८ | ४ | ४२ | ३० |
| २०० | ४·६ — ५·६ | ०·५५ | ३·५ | ३·३ | ५ | ५० | ३५ |
| ३०० | ७·२ — ८·० | ०·७० | ५ | ४·५ | ६ | ६० | ४५ |
| ४०० | ९ — १० | ०·८५ | ६ | ५·३ | ६·३ | ७० | ५० |
| ५०० | १०·५ — १२ | ०·९३ | ७ | ६·१ | ७ | ७५ | ५५ |

**७६६. कामके लिये आवश्यकता :** हम जानते हैं कि कामके लिये एस० ई० की जरूरत है। यही मानकर हम चारेमें प्रोटीनरहित पचनीय पोषक और भी मिलावें तो इससे हमारा काम चलना चाहिये। पर बात ऐसी है कि, प्रोटीनके बिना अधिक एस० ई० पशु खा नहीं सकता। (६६०, ६६२)। ८ घंटेके कड़ा चूर कामके लिये निर्वाहके प्रोटीनका दूना और एस० ई० का दूना चाहिये। यह परिमाण केवल रूखे चारेसे नहीं मिल सकता। क्योंकि पशु जितना सूखा सामान खा सकता है वह उसके निर्वाहके लिये ही हो सकता है। जब ऐसी बात है तो अतिरिक्त आवश्यकता पुष्टईसे ही मिल सकती है। यदि निर्वाहकी आवश्यकता कुछ शेष रहे तो निर्वाहकी आवश्यकता पूरी करनेके बाद रूखे चारेमें जो बच रहेगा उससे अतिरिक्त आवश्यकताकी पूर्ति होगी। इसके साथ प्रोटीन और पचनीय पोषक दिया जायगा। इस तरह जितना चाहिये उतना कुल चारा होगा। ८ घंटेसे कम कामके लिये उसी अनुपातमें कम देना चाहिये। (६७२)

**७७०. दूधके लिये अतिरिक्त आवश्यकता :** दुधार गायको निर्वाहके लिये आँकड़ा ६४ के हिसाबसे खिलाना चाहिये। ४·५ से ५ सैकड़ा मक्खन वाले गायके प्रति रत्तल दूधमें नीचे लिखी चीजें होती हैं :—

## आँकड़ा—६६

### प्रति रत्तल दूधमें गाय जो पोषक पदार्थ देती है

| पचनीय प्रोटीन रत्तल | कुल पचनीय पोषक रत्तल | एस० ई० रत्तल | कैलशियम (CaO) ग्राम | फॉस्फोरस ($P_2O_5$) ग्राम |
|---|---|---|---|---|
| ०·०५ | ०·३५ | ०·३० | ०·५ | ०·४ |

दूधके पोषक द्रव्योंके आधारपर अतिरिक्त चारा देना होता है। दूधमें नीचे लिखे पोषक द्रव्य होते हैं :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रोटीन | ... | ३·३ | प्रतिशत |
| कुल पचनीय पोषक | ... | १६·२ | ,, |
| कैलशियम | ... | ०·१२ | ,, |
| फॉस्फोरस | ... | ०·०९ | ,, |

दूधके प्रति रत्तलमें गायसे ऊपर कहे पोषक निकलते हैं। प्रसादपाक और दूधके कारण जो कमी हुई है उसे पूरा करना जरूरी है।

**प्रोटीन :** चारेके लिये प्रोटीन कितना चाहिये उसका हिसाब कई तरहसे किया जाता है। दूधमें जितना प्रोटीन रहता है उसका १·६ से १·२५ गुना तक प्रोटीन गायकी खुराकमें होना चाहिये। दूधमें जितना प्रोटीन है उसका १·६ गुना प्रोटीन गायकी खुराकमें चाहिये, इस हिसाबसे गायके खाद्यमें ·०३३ × १·६=·०५ रत्तल प्रोटीनका होना जरूरी है। यह अंक मंजूर हो चुका है।

**पचनीय पोषक :** १०० रत्तल दूधमें १६ रत्तल कुल पचनीय पोषक मक्खन सहित होते हैं। एक रत्तल दूधमें ·१६ रत्तल कुल पचनीय पोषक गायसे निकलता है। अगर चारेमें यह दूना खिलाया जाय तो हिसाबसे यह ·३२ रत्तल होता है जो ·३० रत्तल एस० ई० के लगभग होता होगा।

**कैलशियम और फॉस्फोरस :** यदि दूधमें यह कितने हैं इसका हिसाब लगाया जाय और चारेमें १·५ गुना दिया जाय तो कैलशियम अथवा चूना ·५ ग्राम और फॉस्फोरस ·४ ग्राम होता है। (६७२)

## आँकड़ा—६७

**७७१. प्रति रत्तल दूधके लिये पोषकोंकी आवश्यकतायें :**

| पचनीय प्रोटीन रत्तल | कुल पचनीय पोषक रत्तल | एस० ई० रत्तल | कैलशियम (CaO) ग्राम | फॉस्फोरस ($P_2O_5$) ग्राम |
|---|---|---|---|---|
| ०·०५ | ०·३२ | ०·३० | ०·५ | ०·४ |

दूध उत्पादनके लिये क्या चाहिये, इसका विचार गव्य धन्धेके सिलसिलेमें फिर हुआ है।

---

# अध्याय २०

## पोषण तत्वकी कमी और उसकी पूर्ति

**७७२. युक्त या समनुलित आवश्यकताही सच्ची आवश्यकता है :** अभीतक हमने काम और निर्वाहकी आवश्यकताके लिये बहुतसे पोषक द्रव्योंका अध्ययन किया है। यह एकांगी काम हुआ। क्योंकि अलग अलग पोषक द्रव्य अकेले कुछ नहीं करते, पर सब मिलकर वह सम्पूर्ण रूपसे समतुलित बन जाते हैं। यह भूलनेसे नहीं चलेगा कि किसी खास कामके लिये किसी खास पोषकके साथ सभी दूसरे पोषक द्रव्योंका रहना भी जरूरी है। किसी पशुको नित्य कुछ प्रोटीन चाहिये। पर यदि केवल उतना प्रोटीन ही दिया जाय तो उसका प्रोटीनका संतुलन तबतक नहीं बन सकता जब तक कि, और दूसरे पोषक पदार्थ कमसे कम

न्यूनतम मात्रामें भी न हों। पचनीयता आदिके शास्त्रीय प्रयोगोंमें भी प्रायः इन बातोंपर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि प्रोटीनकी आवश्यकताके साथ कार्बोहाइड्रेट (शक्ति), खनिज, और भिटामिनकी आवश्यकता भी पूरी तरहसे पूरी की जाय तभी प्रोटीनका पूरा सही फायदा हो सकता है और आहार युक्ताहार हो सकता है। कोई उपादान यदि आवश्यकतासे अधिक हो तो आहार अयुक्त हो सकता है। कहा जाता है कि भिटामिन डी की भी अधिकता दूसरे तरहसे युक्त आहारको भी अयुक्त कर सकती है। यह भिटामिन धूपमें सूखी घासमें होता है।

भारतमें भयंकर दुष्पोषणसे बहुत अधिक ढोर पीड़ित हैं। यह पूरा आहार नहीं देनेके कारण है, और इस आहारमें आवश्यक द्रव्योंकी मात्राएँ भी कम हैं। उनसे काम लेने या उत्पादन करनेकी तो बात क्या, उनके निर्वाहके लिये भी जितना चाहिये उससे कम प्रोटीन और एस० ई० उन्हें खिलाया जाता है। इस दुष्पोषणके कारण थोड़े दिन या सदाके लिये वे बाँझ हो जाते हैं।

**७७३. दुष्पोषणसे बाँझपन :** बाँझपनसे पशु अलाभकर हो जाता है। बाँझपन जितने दिन रहता है मालिक उतनी ही उसकी उपेक्षा करता है और छीजनका वेग उतना ही बढ़ता है। किसी एक पोषक द्रव्यकी कमीसे भी बाँझपन हो सकता है। दुर्भाग्यसे एक नहीं, सभी पोषक पदार्थों, जैसे प्रोटीन, कुल पचनीय पोषक, खनिज और प्रायः भिटामिनकी भी कमी रहती है। एबरडीनके इम्पीरियल बूरो ऑफ एनिमल न्यूट्रीशनके श्री लीच (Litch) कहते हैं :

"प्रजनन शक्तिका पहला आधार पर्याप्त परिमाणमें आहार है। लड़ाई और अकालसे सभी वर्गके पालतू पशुओं और मनुष्योंमें बाँझपन या प्रजनन शक्तिका ह्रास प्रसिद्ध है। महायुद्धके बाद जर्मनी और हंगरीमें ढोर, बकरी और भेड़का बाँझपन आम बात हो गयी था ..."

साधारण पोषणके अभावमें बाँझपन होता है, किन्तु साधारण भोजन मिलता भी रहे तथापि खनिजोंके कारण बाँझपन हो जाता है।

**७७४. बाँझपन और फॉस्फोरसकी कमी :** वह आगे कहते हैं : "खनिज द्रव्योंकी स्वाभाविक कमीसे बाँझपन होता है। इन सबमें फॉस्फोरस की कमी शायद सबसे मुख्य है, क्योंकि दुनिया भरके प्राकृतिक गोचरोंमें यही अभाव सबसे अधिक है। दक्षिण अफ्रिकामें थीलर (Theiler) और उनके साथियों ने; आस्ट्रेलियामें हेनरीने (Henery); इकूल बेकर, पामर और हार्टने (Eckles,

Becker, Palmer & Hart) अमेरिकामें यह सिद्ध कर दिखाया है कि फॉस्फोरस की कमीसे गर्भपात और बाँझपन होता है। थीलर, ग्रीन और डूटोयट ने (Theiler, Green & Dutoit) २०० देशी घटिया गायोंपर प्रयोग किया। आधाको हड्डीका चूर्ण दिया गया। यह पाया गया कि हड्डीका चूर्ण खानेवालियोंमें ८० सैकड़ाने मामूली तोरपर बच्चे जने, और जिन्हें नहीं दिया गया उनमें केवल ११ सैकड़ाने जना। डूटोयट और बिशचौप (Dutoit & Bischop) एक प्रयोगके बारेमें सूचना देते हैं। यह तीन वर्षोंतक चालू रहा। इसमें १०९ गायों को हड्डीका चुर्ण खिलाया गया और २० को वंचित रखा गया। हड्डीका चूर्ण खाने वाली गायोंने जितने बछड़े हो सकते हैं उनका ८७·३ सैकड़ा प्रसव किया और वंचितों ने केवल ५६·५ सैकड़ा। एकलूस, बेकर और पामरनेभी यही पाया कि चारेमें फॉस्फेट मिलानेसे प्रजनन शक्तिमें सुधार होता है। उन्होंने फॉस्फोरसकी कमी से कम बच्चा जननेका कारण ठीक समयपर डिम्बका न होना बताया है।…"

**७७५. बाँझपन और कैलशियमकी कमी :** "हार्ट और उनके सहकर्मियोंने प्रयोग करके दिखाया है कि, जिन गायोंको बहुत परहेजी चारा केवल एकही चीज, जई, गेहूँ या मक्काका पौधा दिया जाता है उनकी प्रजोत्पत्तिके लिये उन्हें कैलशियम देना भी जरूरी है। हार्टने यह भी दिखाया है कि जिस जमीनमें तेजाब है और कैलशियम मामूलीसे कम है उसमें उगी घास या पुआल खानेवाली गाय साधारण सुस्थ बच्चे पैदा नहीं कर सकती। एक प्रयोगमें कम कैलशियमका चारा दिया जाता था। उसमें मेगस (Meigs) ने पाया कि, गायें कठिनतासे गाभिन होती हैं। पर परहेजी गायोंको कुछ खड़िया (calcium carbonate) भी खिलानेसे अच्छा परिणाम निकला।

**७७६. कमी और जीवाणु-संक्रमण :** आहारका प्रजनन-शक्ति पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त और भी रोचक तथा महत्वकी संभावनायें हैं। अप्रत्यक्ष रूपमें इससे जीवाणुके संक्रामकका शिकार होने की संभावना रहती है। यह जानी हुई बात है कि दुष्पोषणसे कई तरहके संक्रमण हो सकते हैं और इसका प्रमाण है कि यह प्रजननमें बाधक जीवाणुओं (Br. abortus and other organisms) के संक्रमणका यह पूर्व कारण है।"—(इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३३, पृ० १९८)

**खनिजकी कमीसे गर्भपात :** मदराससे एक मामलेकी रिपोर्ट मिली है।

इससे यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि खनिजोंकी कमीसे गर्भपात किस तरह होता है। —(उसी पत्रिकासे, १९३९, पृ० ४१५)

मदरासकी एक फौजी अश्वशालामें गर्भपात बहुत होते थे। सन् १९२९ के पहले औसत ७ गर्भपात हर साल होते थे। सन् १९२९ में अधिकारियोंने बछेड़ियोंके शरीरकी हड्डिओंका सुधार करनेकी कोशिश की थी। इसके लिये उन्हें कैलशियम-युक्त खनिज आहार देनेकी व्यवस्था की। जबसे यह आहार दिया जाने लगा, गर्भपात बन्द हो गया। इस नये खनिज आहारसे अच्छी हड्डी बननेकी उम्मीद थी। पर ऐसा नहीं हुआ। इसलिये यह सन् १९३४ में बन्द कर दिया गया। सन् १९३५ में फिर २ गर्भपात हुए और सन् १९३६ में यह संख्या १२ तक हो गयी। उस समय निपुणोंकी सलाह ली गयी, तब पता चला कि चारेमें कैलशियमका अभाव है। संयोगवश जो कैलशियम दिया गया था उससे गर्भपात रुक गया, पर उसके बन्द होते ही फिर शुरू हो गया। कैलशियमका अतिरिक्त आहार फिर से चालू किया गया और गर्भपात बन्द हो गया।

**७७७. दुष्पोषण और प्रजोत्पादन :** क्रोदरने (Crother) कहा है कि, हाल साल तक प्रजोत्पादनकी गड़बड़ी रोग मानी जाती थी। पर अब इसके लिये पक्का प्रमाण मिल सकता है कि अनेक मामलों में मूल कारण दुष्पोषण है। शक्तिदायक पदार्थकी साधारण कमी या भिटामिन या खनिज जैसे जरूरी पदार्थोंमें से एक या अधिककी कमी इस अधूरे पोषणके अन्तर्गत हैं। इन कमियोंसे ऋतु धर्म (oestrus cycle) की गड़बड़ी होती है और अन्तमें बिलकुल बन्द हो जाता है। क्रोदरने इसपर जोर दिया है कि जननीके आहारमें भिटामिन ए और ई की अतिरिक्त मात्रा अवश्य होनी चाहिये। ये भिटामिन हरे पत्तोंके चारेसे मिल सकते हैं।

**७७८. कैलशियमकी कमी और प्रजोत्पत्ति :** डा० सेन (एग्रिकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया, नभम्बर, १९३३) कहते हैं कि, दुष्पोषण और खासकर चूना या फॉसफोरस अथवा दोनोंकी चारेमें कमी से या तो बाँझपन होता है या गर्भपात। कभी कभी गर्भपात नहीं भी हो सकता है पर बछड़ा इतना कमजोर होगा कि बहुत दिन तक जी नहीं सकता। जिन पशुओंको खूँटे पर पुष्टई खिलाई जाती है उन्हें चूनेकी कमी प्रायः होती है। क्योंकि, पुष्टईमें चूनेका अभाव होता है। जहाँ चराईका प्रबन्ध नहीं है और अच्छे प्रकारका चारा भी

नहीं मिलता वहाँ भी चूनेकी कमी होती है। चूनेकी इस कमीके साधारण लक्षणोंमें एक यह है कि पशु मिट्टी और कीच खाते हैं। डा० सेनकी राय है कि, सभी छोटे (तरुण) पशु खनिज बहुत चाहते हैं, क्योंकि, उन्हें हड्डीकी रचनाके लिये इसकी बड़ी जरूरत होती है।

**७७६. पोषक पदार्थोंकी कमी पर डा०सेनका मत : फॉसफोरसकी कमी और बाँझपन :** डा० के० सी० सेनके मतानुसार पालतू पशुओंकी प्रजनन शक्ति पर असर डालनेवाला दूसरा खनिज फॉसफोरस है। बहुत जगहोंके

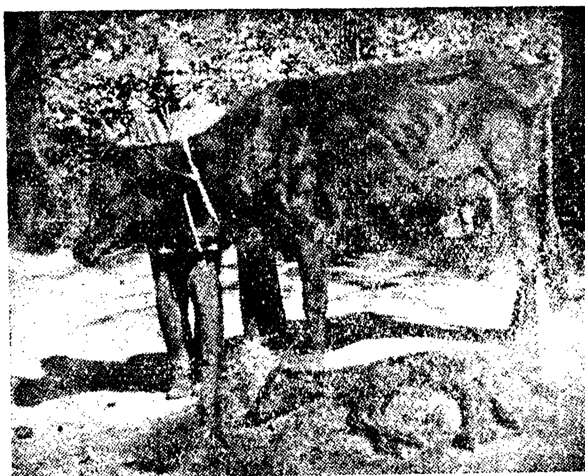


चित्र ४२. खैरी ७५, होलस्टीन-हरियाना, गव्यशालाके साधारण आहार पर
(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया, खंड ५, भाग २)

गोचरोंमें फॉसफोरसकी बहुत कमी है। इससे ढोरकी हालत ऐसी हो जाती है जो फॉसफोरसकी कमीके कारण ही हो सकती है। इस अवस्थाको "ए-फॉसफोरोसिस" कहते हैं। इस हालतमें वह दुबले हो जाते हैं। उन्हें भस्मक रोग हो जाता है और इस दुष्ट भूखके मारे वह हड्डियाँ, लाश और कचरे चबाने लगते हैं। इससे संक्रमक बीमारी उन्हें हो सकती है और वह कुछ या पूरे बाँझ हो जाते हैं। डा० सेन कहते हैं कि, फॉसफोरस-प्रचुर पदार्थों, जैसे हड्डीका चूर्ण (इसमें चूनाभी है) खिलाने से हालत सुधरती है।

फॉसफोरसकी कमीकी बुराई भारतमें बहुत जादे है। क्योंकि, भारतके स्वाभाविक गोचरोंमें इसकी कमी बहुत जादे है।

डा० सेनने एक और लेख लिखा है (एग्रिकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया, मार्च, १९३५)। इसमें उन्होंने लिखा है कि, चूने या फॉसफोरस या दोनोंकी कमीसे दुबलापन, भस्मक रोग (pica—इसमें पशु राक्षसकी तरह खाता है), क्षीण वृद्धि, बाँझपन, दूध और हड्डीके रोग पशुको हो जाते हैं। वह कहते हैं :



चित्र ४२. खैरी ७५, अपने मृत बछड़के साथ।
भीषण दुबलेपन पर ध्यान दीजिये। आहारमें फॉस्फोरस
बहुत कम, चूना जादे और प्रोटीन कुछ कम।
(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया, खंड ५, भाग २)

"हमारे निरीक्षणसे पता चलता है कि, प्रयोगशालाकी स्थितिमें इसका असर दोगले और विदेशी पशुओं पर देशी पशुओंसे अधिक पड़ता है। यद्यपि देशी पशुओंमें भी कम खनिज आहारका असर हमेशा देखा जाता है"...

**७८०. 'खैरी' (नामक) गाय पर प्रयोग :** "इस तरहके उदाहरण दिखाये जाते हैं। चित्र ४२ हमारी दुधार गायोंमेंसे एक 'खैरी ७५' का चित्र है।

यह होलस्टीन और हरियानाकी संकर है। यह खूब दुधार थी और तीन ब्यानकी थी। जब इसपर यह प्रयोग किया गया तब इसके गर्भमें बच्चा भी था। यहाँ इसे फॉसफोरस कमीवाला चारा दिया जाने लगा। अथवा यों कहें कि दो महीने तक ऐसा चारा दिया गया जिसमें फॉसफोरस और चूनेका अनुपात ठीक या स्वाभाविक नहीं था और जिसमें प्रोटीनकी कुछ कमी थी। प्रयोगके कुछ महीनोंके भीतर ही उसका बहुत वजन घट गया। उसे जो बच्चा हुआ वह घंटे भरमें मर गया। चित्र ४६ इसी समयका है। जननी और बच्चेकी अवस्था देखी जा सकती है। अति अयुक्ताहार जिसमें फॉसफोरस बहुत कम और प्रोटीन कुछ कम था उसीके कारण गाय इतनी दुबली हुई और उसे मुमुर्षु बच्चा पैदा हुआ। प्रसवके बाद उसकी हालत इतनी खराब हो गयी कि उसे पूर्ववत् स्वाभाविक आहार दिया जाने लगा। पर वह करीब १ महीने तक सुधर नहीं सकी। पर जब गव्यक्षेत्रके मामूली आहारके अतिरिक्त उसे खूब हरी हरी घासवाले गोचरमें चराने लगे तब कहीं उसकी असली तौल फिरसे लौटी।"

गव्यक्षेत्रका पूरा चारा जिसमें फॉसफोरसकी कमी थी और कुछ प्रोटीनकी भी कमी थी, देने से जैसा संकट आया उससे फॉसफोरसका महत्व सिद्ध होता है।

इसेभी याद रखना चाहिये कि, प्रयोगके बाद खैरीकी पुरानी हालत गव्यक्षेत्रका पूरा युक्ताहार देनेपर भी तबतक नहीं पलटी जबतक कि उसे चरने नहीं दिया गया। गोचरकी घासमें कुछ ऐसी चीज थी जो खूँटेपरकी खिलाईसे नहीं मिलती। हरी घासमें ऐसी रहस्यमय चीज क्या है जिसका असर दुबली और मरियल गायपर जादूसा होता है? अब इसे समझनेकी कोशिश हो रही है। (८६८-'७०) गोचरकी घासके सिलसिलेमें इसपर विचार होगा।

खैरीके सिलसिलेमें डा० सेनने एक साहीवाल गाय 'हंसी २०७' का जिक्र किया है। उतना अद्भुत तो नहीं पर उसी ढंगका परिणाम इस प्रयोगमें भी मिला है। हंसीको जो चारा दिया जाता था, उसमें चूना कम, फॉसफोरस प्रचुर और प्रोटीन काफी रहता था। इसकी हालत धीरे धीरे खराब होने लगी और वह कमजोर होकर ५ महीनेके बाद मर गयी।

**७८१. फॉसफोरसकी कमी से खैरीका कष्ट :** होलस्टीन-हरियाना गाय खैरीके प्रयोगके सिलसिलेमें डा० सेन कहते हैं कि, खैरीकी तरह ही एक दूसरी गायको खिलाया जाता था पर उसे इसके अतिरिक्त फॉस्फेटभी दिया जाता

था। उसकी हालत अच्छी बनी रही। इससे पता चला कि, खैरीकी तकलीफका कारण फॉसफोरसकी कमी था।

**७८२. पोषणके प्रयोगोंका ज्ञान :** डा० सेनने इसपर कहा है :- प्रयोगशालाके प्रयोगके परिणाम बहुत आकर्षक हैं। इसलिये यह देखना जरूरी है कि, दैनिक काममें भी क्या इसी तरहका परिणाम होगा। यह प्रसिद्ध है कि, देशके बहुतसे हिस्सोंकी धरतीमें चूना या फॉसफोरस या दोनोंकी कमी है। इस कमीका असर गोचर पर होना स्वाभाविक है। ऐसे घटिया गोचर पर पले पशुओंमें दुष्पोषणसे बहुतसी खराबियाँ हो सकती हैं। यूरोप, अमेरिका और दक्षिणी आफ्रिकाके विभिन्न भागोंमें चूना या फॉसफोरसकी कमीसे कई बीमारियाँ होती हैं, यह जगजानी बात है। महत्वके बहुतसे काम उन्हीं देशोंमें हुए हैं। इस देशमें इस विषयका साहित्य बहुत कम है। इसका कारण दुष्पोषणकी हानिका अभाव नहीं है। कारण तो यह है कि, कुछ ही लोगोंने इस विषयके अध्ययनका प्रयास किया है। अथवा यदि उन्हें कुछ जानकारी हुई तो उसे उन्होंने लिपिबद्ध नहीं किया। चूना और फॉसफोरसकी कमीसे कई प्रकारके अस्थि रोगका होना प्रसिद्ध है। हालमें हमलोगोंको दक्षिण भारतसे ऐसे कई मामलोंकी रिपोर्ट मिली हैं। चारेमें चूनेकी कमी से घोड़ेकी हड्डियाँ खोखली या छिद्रपूर्ण होनेकी बीमारी ओस्टियोपोरोसिस (osteoporosis) बहुत हुआ करती है, यह बात बहुत दिनों से ज्ञात है। एक गांवमें हमलोगोंने ढोरोंमें हड्डियां मुलायम कर देनेवाला मृदुस्थि ओस्टिओमलेशिया (osteomalacia) रोग बहुत देखा। यहांके चारेका विश्लेषण करने पर पाया गया कि उसमें चूना कम है और फॉसफोरस बहुत ही कम है। पासके गावोंमें जहाँ अच्छे गोचर थे रोगी पशु भेजे गये। इससे रोगकी प्रगति रुक गयी।...”

**७८३. भिटामिनकी कमी :** “पिछले कुछ वर्षोंमें अमेरिका और दक्षिण अफ्रिकाके कर्मियोंने इसका काफी सबूत दिया है कि ढोरके चारेमें भिटामिन ए की कमी से भयंकर कष्ट हो सकता है। अपने एक पहले निबन्धमें मैंने भारतके कुछ हिस्सोंमें बछड़ओंकी अंधता और ढोरोंके गर्भपातका जिक्र किया है। हालमें दक्षिण अफ्रिकासे रिपोर्ट मिली है कि जब बाछियोंको कमीवाला चारा दिया गया तो प्रायः सबके कमजोर और अन्धे बच्चे पैदा हुए। इसका कारण चारेमें भिटामिन ए की कमी मान लिया गया है...”

इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्चकी बुलेटिन नम्बर २५ में डा० सेन कहते हैं : "साधारण तौर पर भारतमें मिलनेवाली पुआल और सूखी घास भिटामिन तत्वसे हीन हैं। बहुतसी पुष्टइयोंका भी यही हाल है। इस कारण हलके रूपमें एभिटामिनोसिस-ए (avitaminosis-A) अर्थात भिटामिनके अभावकी कमी सब जगह फैली हुई है। इस कारण भ्रूणकी अन्धता, बर्द्धमान पशुमें नेत्र रोग, बाँझपन और गर्भपात अनेक स्थानोंमें पाये जाते हैं। चारेकी इस बुराईके सुधारका एक ही व्यावहारिक उपाय है कि चरनेका इन्तजाम हो। यह नहीं हो सके तो वर्धनशील, गाभिन और दूध देनेवाले पशुको प्रतिदिन ८-१० रत्तल हरी घास दिया जाय।"

**७८४. एक जेलकी गोशालामें भिटामिनकी कमी :** जब मैं सन् १९४२-'४४ में अलीपुर सेन्ट्रल जेलका बन्दी था, मेरे जिम्मे वहाँ की गोशाला थी। मेरा वहाँका अनुभव 'एभिटामिनोसिस' के बारेमें डा० सेनके कथनका समर्थन कर रहा है। जेलके अधिकारियों के दिमागमें किसीने यह बात बैठा दी थी कि दुधार पशुओंके लिये हरी घास देना हानिकर है। वहाँ एक बहुत होनहार साँढ़ निमोनियाँसे मर गया। शव परीक्षामें औरतोंके केश सँभालनेका काँटा उसके फेफड़े में घुसा पाया गया। यह उसके पेटमें होकर घुस गया था। इसके बाद चरना बन्द कर दिया गया। ठट्ठको केवल धानका पुआल दिया जाता था और नियमित मात्रामें कुछ पुष्टई।

यह गोशाला मेरे लिये पुरानी जगह थी। इसी जेलमें मैंने अपने पहलेकी सजा (१९३०-'३३) काटी थी, और तब इस गोशालाके लिये जो कुछ कर सकता था मैंने किया था। जेलके अहातेकी दीवारके किनारे किनारे मैंने गिनी घास (guinea grass) लगवायी थी। सन् १९४२ में जब मैंने फिर इसका जिम्मा लिया तो ढोरोंकी हीन दशा देख चकित रह गया। परिचित ठट्ठ इतना बदल गया था कि पहचाना नहीं जाता था। जेलके अहाते की घास काट कर फेंक दी गयी थी। इन परिवर्तनोंसे मैं सोचमें पड़ गया। पिछली बार दो मन तक दूध होता था। इस बार मैंने पाया कि, कुल २५ सेर दूध नित्य होता है। लेखा देखनेसे पता चला कि पिछले २४ प्रसवोंमें १९ मरे बच्चे हुए या कुछ ही दिनोंमें मर गये। २ अन्धे बच्चे जीते थे। पहले तो इसका अपराध बूढ़े साँढ पर मढ़ा गया। यह बहुत दिनोंसे समागम करता आ रहा था और अब बेकामसा हो गया

था। पर कुछ दिनोंके बाद जब मैंने देखा कि पशुओंको हरियाली कुछ भी नहीं दी जाती तो मेरे दिमागमें आया कि यह भिटामिन की कमी के कारण है। ठट्ठ केवल धानके पुआल और पुष्टईपर पाला जाता था।

हरी घास खिलाने और कसरतका प्रबन्ध किया गया। पुआलकी खनिजकी कमी दूर करनेके लिये उसमें हड्डीका चूर्ण मिलाया गया। जिस क्षण मैंने गोशालाका भार अपने हाथमें लिया उसी दम मृत प्रसव बन्द हो गया। मेरे पँहुचनेके कुछ दिनों बाद एक बच्चा पैदा हुआ। विशेष उपचार करनेसे वह बच गया। किसी दुर्घटनाके बिना प्रतिमास दो प्रसवके हिसाबसे प्रसव होते गये। इसी समय लँगड़ी (Black-quarter—ब्लैक क्वार्टर) की महामारी फैली जिसमें ६ बछड़े मर गये। इस दुर्घटनाके होते हुए भी दूधकी उपज २४ सेरसे १३/४ मन हो गयी और ६ महीने तक ऐसी ही रही। इसी बीच मैं छूट गया। मैंने भिटामिन और हड्डी-चूर्णकी समस्या ही केवल उठाई है। यह मानना गलत होगा कि गोशालाके सुधारके केवल या मुख्य विषय ये हो हैं। जेल व्यवस्थाके संकुचित सीमाके भीतर बहुनसे ऐसे सुधार किये गये जिससे वह आदर्श गव्यशाला हो।

प्रयोगोंसे मुझे यह सिद्ध हो गया कि गया गुजरा ठट्ठ भी कितनी जल्दी सुन्दर बन सकता है। छूटनेके समय मुझे यह संतोष था कि १० वर्ष पहले सन् १९३३ में जैसी हालतमें गव्यशाला छोड़कर मैं गया था वैसी ही बढ़िया हालत इसकी फिर हो गयी। जितने दिन मैं जेलमें था, गव्यशाला मेरे प्राणोंका प्राण थी।

**७८५. अकाल और भिटामिन ए की कमी :** सन् १९३९ के पहले लगातार ३ वर्ष तक मारवाड़में बहुत कम बर्षा हुई। पर १९३९ में तो बिलकुल नहीं हुई। इससे अकाल पढ़ गया। दूसरे जगहोंसे भोजन और पुष्टई लाकर कष्ट मिटाया जा सकता था। पर रूखे चारे, खासकर हरियालीके लिये यह नहीं हो सकता था। भिटामिन ए हरे चारेसे मिलता है और वह था नहीं। इससे स्वतः भिटामिनकी कमी या भुखमरी होती है। सन् १९३९ में मारवाड़में वही हुआ। साधारण समयमें हरियाली ५ महीने मिलती है। उसके बदले सन् १९३६ में सिर्फ दो महीने मिली। सन् १९३७ में ढोरोंको हरा चारा मुश्किलसे दो महीने मिला। सन् १९३८ में प्रायः हरा चारा हुआ ही नहीं। सन् १९३९ में तो ढोरको खिलानेके लिये घासकी एक पत्ती भी नहीं दिखायी पड़ती थी। पहले तीन वर्षोंमें 'ए भिटामिनोसिस' से ढोरोंके स्वास्थ्यमें बड़ी हानि हुई। उनका भिटामिन संग्रह

बहुत पहले ही जरूर चुक गया होगा। सन् १९३९ में ढोर संवर्धन गवेषणा क्षेत्र, जोधपुरमें ढोरोंको पुष्टई और सूखा चारा पूरा खिलाया गया। तिसपर भी वह बीमार हो गये और ४५ इसी संस्थामें ही अन्धे हो गये। अजमेरमें अनेक जगहोंमें पशुओंको अवर्णनीय कष्ट हुआ।

भिटामिन ए के अभावसे आँख ही खराब नहीं हुई, थूककी ग्रन्थि (लाला ग्रन्थि) भी बिगड़ी जिससे बहुत थूक गिरने लगा। शरीरमें साधारण कमजोरी आगयी और पिछले पैर हिलानेमें कठिनाई होती थी। गर्भपात भी हुए। जिन्हें बच्चे पैदा हुए वह इतने अपुष्ट थे कि या तो जन्मते ही मर गये या तो एक दिनके बाद मरे। जच्चायें भी मरीं। भिटामिन ए के विचार से कौड मछलीका तेल (cod-liver oil) प्रयोग करनेसे गायोंमें कुछ सुधार हुआ और उन्होंने बच्चे जने। कौड तेलके उपचारके बाद ९ गायोंके बच्चे हुए जो बिलकुल अन्धे थे। —(फरनैन्डस, इंडियन फार्मिंग, दिसम्बर, १९४०)

**७८६. छूतकी बीमारी और पोषण की कमी :** ऊपर कहे निबन्धमें डा० सेनने लिखा है : "अब इस बातका काफी सबूत दिया जा सकता है कि संक्रामक रोगों से बचे रहनेकी स्वाभाविक शक्ति शरीरके पोषण पर निर्भर है। कुछ जीवाणु जो पशु शरीर पर आक्रमण करते हैं उन्हें रोकनेके लिये जो अधिकाधिक प्रतिरोध शक्ति चाहिये और शरीरमें रोग-ग्रहणशीलताकी अधिकाधिक कमी होनी चाहिये, इस क्षमता पर आहारका निश्चित प्रभाव है। पर अभी तक हम आहार और रोग संक्रमणका सम्बन्ध पूरी तरह नहीं समझ सके हैं। पर विभिन्न दलके अनुसंधान कर्ताओंका अनुभव है कि, आहार सामग्रीमें जिन तत्वोंकी कमी है वह मिलाकर सुधार करने से प्रतिरोध शक्ति बहुत बढ़ जाती है। दक्खिनी अफ्रिकाके कर्मियोंने पाया कि फॉस्फोरस हीन आहारमें फास्फेट मिलानेसे ढोरोंकी मृत्यु संख्या घट गयी। एबरडीनके कर्मियोंने पाया कि जब गोचर अच्छे थे तब अयुक्ताहारके समयकी अपेक्षा स्वाभाविक प्रतिपिंड (एन्टिबडी—रक्तके विष निरोधक कण) अधिक होते थे। कुन्नूरकी न्यूट्रीशन इंस्टिट्यूटमें महत्वका एक पता चला है कि जो पशु अयुक्त आहार खाते हैं उनकी श्वास प्रणाली और आमाशयमें रोग संक्रमणका जादे डर रहता है। उनके मूत्राशयमें पथरी भी हो सकती है। एबरडीनके कार्यकर्ताओंने पाया है कि जो जानवर हीन आहार खाते हैं उनकी आँतमें परोपजीवी फ्लोरा (parasitic flora) बढ़ जाते हैं। हमारे अधभूखे, स्वल्प उत्पादन

सामर्थ्यवाले देशी पशुओंकी यह रोग-ग्रहणशीलता प्रायः हम नहीं देख विदेशी नसलों या देशी अच्छी और अधिक दूध देनेवाली नसलोंमें परिणाम बहुत देखनेमें आता है। ... कमजोर जमीनमें उपजी स्थ सामग्रीमें भिटामिन और खनिजोंकी कमीसे पशुओंका आंशिक दुष्पोषण होता है तथा यह पशुओंकी रोग-प्रतिरोध शक्तिके क्षीण होनेका प्रमुख कारण है। हरेक पोषण विषयके कार्यकर्त्ताओंको यह जानना चाहिये कि उपयुक्त पोषणकी एक न्यूनतम अत्यावश्यक मात्रा होती है। इस मात्रामें पोषण देते रहने पर भी भीतर ही भीतर दुष्पोषण भी हो सकता है। केवल पूर्ण विकासमें कमी होनेसे और रोग सक्रमणके प्रतिरोधकी भीतरी शक्तिमें ह्रास होनेसे इसका पता लगता है।"

**७८७. कैलशियमकी कमी और दुधार गाय :** "अब यह सब जगह मान लिया गया है कि शरीरके कैलशियमकी अधिक हानिसे अधिक दुधार गायोंमें दुग्धज्वर (milk fever), क्षय रोग और दस्त या जोन्स-रोग (Johne's disease) जैसे कुछ रोग हो जाते हैं।"

**७८८. कैलशियम-फॉस्फोरसकी कमी :** रोवेन इंस्टिट्यूटके डाइरेक्टर, श्री जे० बी० ओरने (J.B.Orr) सन् १९२९ की भेटेरिनरी कांग्रेसमें एक लेख पढ़ा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि शक्ति (ताप) उत्पन्न नहीं करनेवाले घटकोंमें जो सबसे अधिक मात्रामें चाहिये वह कैलशियम और फास्फोरस हैं। यह अस्थिके मुख्य घटक ही केवल नहीं हैं, पर हरेक जीवित कोषके आवश्यक यौगिक भी हैं। डा० ओरने कैलशियम और फॉस्फोरसकी न्यूनतम आवश्यकता बतानेके बाद कहा है कि आहारमें यह न्यूनतमसे अधिक होना चाहिये, क्योंकि यह आहारमें जितना रहता उसका कुछ ही अंश आँतें शोषण करती हैं।

**७८९. कैलशियमका पचना :** डा० ओरकी रायमें कैलशियमके शोषणमें फास्फोरससे अधिक कठिनता है। आहारमें कैलशियम प्रचुर हो सकता है, पर शोषण होनेकी कठिनाईसे तन्तुओंको कैलशियमकी कमी हो सकती है। जितना खाया गया आँतमें उसका शोषण ० से ८० सैकड़ा या उससे भी अधिक हो सकता है। इसलिये पचने और शोषण होनेका भी उतना ही महत्व है जितना आहारमें उसकी मात्राका।

डा० ओरने कहा है कि भिटामिन 'ए' और अल्ट्रा-भायोलेट किरणें कैलशियम पचनेमें बहुत सहायक होती हैं। मक्का आदिके आहारके साथ सूअरके बच्चोंको कौड मछलीके तेलके रूपमें यह भिटामिन दिया गया। नीचे लिखा परिणाम प्राप्त हुआ :

# आँकड़ा—६८

## भिटामिन के प्रभावसे शरीरमें कैलशियमका शोषण

| दिन | चूना खाया ग्राम | चूना ग्रहण हुआ ग्राम | खाये चूनेका प्रतिशत ग्रहण हुआ |
|---|---|---|---|
| १-७ | ३·४८ | +०·६४ | + १८ |
| ८-१३ | ३·४८ | +०·१७ | + ५ |
| १४-१९ | ३·४८ | —०·३६ | —१० |
| २०-२२ | ३·४८ | —०·३८ | —१४ |
| कौड मछलीका तेल दिया गया— | | | |
| २३-२८ | २·३२ | +०·१७ | + ७ |
| २९-३४ | २·३२ | +१·५४ | + ६६ |
| ३५-४० | १·७ | +१·१६ | + ६८ |

ऊपरके आँकड़ेसे यह अच्छी तरह मालूम होता है कि, आहारमें केवल कैलशियम (चूना) रहनेसे कुछ नहीं होता। उनका शोषण ही सब कुछ है। ३·४८ ग्राम चूना खिलानेसे ·६४ से ·१७ ग्राम तक शोषण हुआ। जैसे जैसे दिन बीता यह उसी आहारपर ऋणात्मक हो गया। पर जब कौडका तेल मिला दिया गया तो १·७ ग्राम, इतनी कम मात्रा खानेपर भी १·१६ ग्राम ग्रहण हुआ। इससे सिद्ध होता है कि चूनेके पचनेमें भिटामिन ए कैसे महत्वका काम करता है। प्रयोगशालामें अल्ट्रा-भायोलेट किरणका प्रयोग करनेसे भी इसी तरहका परिणाम निकला। २२ दिनों तक हल्की किरण पड़नेसे ·४६ से २·१० ग्राम शोषण बढ़ा।

आहारके प्रकारसे भी ऐसे फेरबदल होते हैं। अनेक दूसरी आहार-सामग्रियोंकी अपेक्षा ताजी घासमें कैलशियमका आचूषण अधिक होता है। कैलशियम और फॉस्फोरसके अनुपातका समतोल पर असर पड़ता है। एककी अधिकताका दूसरेके आचूषण पर असर पड़ता है।

**७१०. पोषणकी कमी और वृद्धि :** थीलरके पशुओंके आँकड़ेसे पता चलता है कि, फॉस्फोरसकी कमीवाले गोचरोंमें चरनेवाले पशुओंको हड्डीका चूर्ण

देनेसे उनकी, हड्डीके चूर्ण विना वही घास खानेवाले पशुओंसे तिगुनी वृद्धि हुई। फॉस्फोरसकी कमीसे पशुकी बढ़नेकी शक्ति एक-तिहाई कम हो गयी थी। हड्डीका चूर्ण खिलाने से इसी तरह दूध ४० सैकड़ा बढ़ गया। पोषक पदार्थोंकी कमीका पशुके स्वास्थ्यपर भीषण प्रभाव पड़ता है। शरीरमें कैलशियमके रूपान्तरका (metabolism) फॉसफोरससे, विशेषकर हड्डीमें गहरा सम्बन्ध है। पुष्टिकी कमीसे पशुकी वृद्धि नहीं होती, उसके शरीरपर धब्बे हो जाते हैं, वह दुबला होने लगता है, आलसी हो जाता है और धीरे धीरे चलता है। इन लक्षणोंके सिवा उसे भस्मक रोग हो जाता है। जिन अस्वाभाविक चीजोंको वह रोगके कारण खाता है, उनमें उन द्रव्योंकी प्रचुरता हुआ करती है जिनकी उसके शरीरमें कमी रहती है।

दक्षिण अफ्रिकाके कार्यकर्त्ताओंने भी इस बातकी पुष्टि की कि फॉसफोरस कमीवाले गोचरमें चरनेवाली गायके बछरू जन्मके समय उन नियंत्रित परिमापक गायोंके बछरुओंसे हलके और कमजोर थे जिन्हें आहारके साथ हड्डीका चूर्ण मिलता था। खनिजोंकी कमीसे साधारण तौरपर सारे शरीरमें अस्वस्थता पैदा हो जाती है और रोगसूचक कुछ परिवर्तन दिखाई देते हैं। इनके साथ ही रसवाहक-प्रणालीविहीन ग्रंथियों (ductless glands) के काममें भी बाधा होने लगती है।

दक्षिण अफ्रिकामें इसका पूरा अनुभव हुआ है। फॉस्फोरसकी कमीवाले इलाकेमें जिन ढोरोंको हड्डीका चूर्ण और नमक दिया जाता है उनकी मृत्युसंख्या उन नियंत्रित परिमापक ढोरोंसे कम होती है जिन्हें सिर्फ हड्डीका चूर्ण ही दिया जाता है। भारतमें कुछ कर्मियोंने देखा है कि दुष्पोषणसे पशुओंको परोपजीवियोंका शिकार होनेकी अधिक आशंका रहती है।

**७६१. कमी पूरा करना :** आहारकी कमियाँ पूरी करना सरल है। यदि प्रोटीन और कुल पचनीय पोषकोंकी कमी हो तो इनकी पूर्त्ति करना जरूरी है। यदि खनिजोंकी कमी हो तो इसका उपाय है कि पशुओंको यह खिलाकर कमी पूरी की जाय।

खली, फलियोंकी घास और दलहनसे प्रोटीन मिल सकता है। अन्नसे शक्ति अच्छी तरह मिल जाती है। कैलशियमकी कमी हड्डीके चूर्ण और खलीसे पूरी की जा सकती है। कुछ कमीनाशक चारे प्रसिद्ध हैं। उनके उपयोगसे अयुक्ताहार युक्ताहार बन सकता है।

(१) भिटामिन 'ए' की कमी और बहुतसी अयुक्तताओंके सुधारके लिये हरी घास। चरागाहोंमें छोड़ देनेसे पशु यह खूब अच्छी तरह खाते हैं।

(२) प्रोटीन और फॉस्फोरसकी कमीके लिये खली।

(३) प्रोटीन और कैलशियमकी कमीके लिये फलियाँ, दलहन और सूखी घास। हड्डीके चूर्णसे भी कुछ प्रोटीन प्राप्त हो सकता है।

(४) नमककी कमी पूरी करनेके लिये खानेका नमक। सभी चारोंके साथ नमक देनेकी जरूरत है। खाये हुए अतिरिक्त पोटाशके सुधारके लिये भी नमककी जरूरत होती है। अनेक चारोंके साथ हड्डी-चूर्ण भी चाहिये।

इन कुछ सरलतासे प्राप्य वस्तुओंसे अयुक्तता सुधारनी चाहिये।

# अध्याय २१

## कुछ चारे और आहारके सामान तथा उनकी बनावट

७६२. **अन्नके पुआल :** चारेके लिये पुआल अच्छी चीज नहीं है। उसमें बहुत कम प्रोटीन और फॉस्फोरस होते हैं। दूसरी ओर उसमें पोटाश बहुत जादे है। इससे कई प्रकारकी हानि होती है, और जो भी पोषक द्रव्य आहारमें हैं, इसके कारण ठीकसे नहीं पचते। इस कारण पुआल घटिया चारा माना जाता है। इससे अंशमात्र शक्ति मिलती है। नहीं तो मुख्य रूपसे यह सिर्फ पेट भरता है।

इसलिये ढोर संवर्धनमें पोषणके लिये पुआलके बदले और चीजोंसे काम लिया जाता है। अच्छे पशु संवर्धनके लिये चारेकी फसल उपजाना जरूरी है। दूसरे देशोंमें मुख्य चारे के लिये उपयुक्त प्रकारके चारेकी फसल उपजायी जाती है। चारे की इन फसलोंमें अन्न भी हो सकता है। पर दाना पकनेके पहले ही फसल चारेके लिये काट ली जाती है। अथवा यदि दाना पक गया तो उसे भी ढोरको पुष्टईकी तरह खिला देते हैं। इस तरह बीज (दाना), डंठल और पत्ते सहित पूरे पौधेका चारा बनाया जाता है। अन्नके पुआल यूरोप और अमेरिकामें केवल गोड़थार (पशुका बिछावन) के कामका माना जाता है।

पर भारतका हाल दूसरा है। चारा बहुत कम जमीनमें पैदा किया जाता है, और ढोर मुख्यरूपसे पुआलपर ही पाले जाते हैं।

पौधेका सबसे बढ़िया अंश दानेमें होता है, और वह मनुष्यके खानेके काममें लगता है। जो बचा रहता है उससे गायका पालन नहीं हो सकता। इसपर भी भारतकी गायोंके भाग्यमें जादेतर ऐसी हीन सामग्री पर ही निर्भर रहना बदा है। उस पर भी भाग्यकी मार ऐसी है कि यह हीन सामग्री भी जितनी चाहिये नहीं मिलती। देशकी स्थितिके आँकड़ेके अनुसार जरूरतसे इसकी भी ४५ सैकड़ा कमी है।

**७६३. अन्नके पुआलका महत्व :** इसलिये ये पुआल, चाहे जैसे हीन हों, खिलाये ही जायेंगे। कुछ मुख्य अन्नके पुआलोंकी उपयोगिता और उनके पोषण गुणोंकी कमी जाननेकी हम कोशिश करें, जिससे काममें लानेके समय उनकी कमी हम सुधार सकें। धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, रागी या मड़ुआ और जईका विचार किया गया है। इससे साधारण अवस्था हमें मालूम हो जायगी जिससे जिन पुआलोंका जिक्र नहीं हुआ है पर पचनीयताके आँकड़ेमें जिनके नाम हैं, उनके गुणोंका अंदाज हम लगा सकेंगे। इनके पचनीय घटक या उपादान और खनिज पैरा **७२६** में दिये हुए हैं।

**७६४. धानका पुआल :** धानका पुआल मुख्य चारा है। धानके इलाके बहुत उपजाऊ इलाके हैं। दूसरे इलाकोंमें जहाँ थोड़ी वर्षा होती है उनकी अपेक्षा धानके इलाकोंमें घनी वर्षा होती है। कम वर्षा के कारण दूसरी जगह कम उपज है। उपजवाले ये इलाके ठीक वहीं हैं जहाँके ढोर घटिया हैं। बात यही है, पर है रहस्यमय। इसका समाधान करना कठिन है। (३६७, ५०५, ६५५, ८१४, ८२६)

**७६५. सूखे इलाकोंके पशु अच्छे हैं :** डा० के० सी० सेन इंपीरियल भेटेरिनरी इंस्टिट्यूट, इज्जतनगरके पोषण विभागके अधिकारी हैं। वह लिखते हैं :

"...यह अचंभेकी बात है कि, भारतके अधिकांश अच्छे पशु उन इलाकोंमें होते हैं जहाँ वर्षा कम होती है और पानी की कठिनाई है। सिंचाईकी जगहें जैसे जैसे बढ़ी हैं, फसलकी उपज भी बढ़ी है और चरनेकी जगह कम हो गयी है। कामके लिहाजसे सिंचाईवाली जगहोंके पशु घटिया हैं। इसके सिवा इन पशुओंको परोपजीवी-जनित संक्रामक और साधारण रोग होनेकी आशंका अधिक रहती है।

यह बात खेतिहर और पशु-पालक दोनों के लिये समान रूपसे बड़ेही महत्वकी है। रोग-ग्रहणशीलतामें और काम देनेमें जो यह अंतर पाया जाता है वह आबहवा और पोषणके भेदसे है या किसी दूसरे कारणोंसे है इसका पता लगानेकी कोशिश करनी चाहिये। पंजाबके प्रयोगसे सिद्ध हो चुका है कि, वरणसे संवर्धन और उचित आहारसे स्थानीय नसलें कितनी उन्नति कर सकती हैं। पूसाके प्रयोग इस विचारका समर्थन करते हैं कि, यदि छीजन बहुत अधिक नहीं हुई है तो भारतकी प्रायः सभी नसलोंसे अच्छे पशु तैयार किये जा सकते हैं।" ---(एग्रिकल्चर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया, नभेम्बर, १९३३) (३६७, ५०५, ६५५)

७६६. **सबसे अच्छे ढोर सूखे जिलोंमें होते हैं:** सर अर्थर ऑल्वरने एग्रिकल्चर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया में एक लेख १९३८ के सितंबरमें अपने अवकाश ग्रहणके पहले लिखा है। ८ वर्ष तक भारतकी पशुधन समस्याका गंभीर अध्ययन करनेके बाद उन्होंने इसका निष्कर्ष दिया है। पहले कई मौकों पर और इस लेखमें भी उन्होंने भीगे इलाकोंमें घटिया ढोर होने की बात यों कही है:

"साधारण तौरपर यह माना जा सकता है कि, सारे भारतमें सबसे अच्छे पशु सूखे इलाकोंमें ही होते हैं, जहाँ चराई कम है और घास मोटी नहीं होती। घनी वर्षावाले जंगलोंमें होनेवाली मोटी घास इतनी पोषक नहीं होती जिससे अच्छे पशु पैदा हो सकें। इसलिये भीगे इलाकोंमें सूखे इलाकोंके अधिक पोषक चारा खानेवाले पशु लानेसे ही कुछ उन्नति नहीं हो सकती। इसलिये सावधानीसे वरण करके स्थानीय नस्लका सुधार होना चाहिये। इसके लिये पशुपालन कार्य नियमित रूपसे हो, खास करके अच्छे चारेका प्रबन्ध किया जाय और परोपजीवियोंका निवारण किया जाय। यह सब परोपजीवी ऐसे इलाकोंमें छीजन और रोगोंके भयंकर कारण हैं।

"ऐसा मालूम होता है कि, धानके इलाकोंमें ढोरके छीजनेका बड़ा कारण यह है कि, लोग पशुकी ओर ध्यान नहीं देते और न फलियाँ तथा घास या ज्वार कड़बी जैसी पोषक और स्वास्थ्यप्रद चारे या अर्ध चारेकी फसल ही उपजाते। जिन इलाकोंमें सबसे अच्छे ढोर पाले या पैदा किये जाते हैं वहाँके संवर्धक इन फसलोंकी व्यापक खेती करते हैं। पर यदि धानकी अंतिम सिंचाईके समय ऐसी फसलोंके बीज खेतोंमें छींट दिये जायँ तो धानके इलाकोंमें भी यह हो सकती हैं।"
(३६७, ५०५, ६५५)

**७९७. भीगे इलाकोंके घटियापनके कारण :** कारण चाहे जो हों पर बात यह है कि घनी वर्षा या यों कहें कि धानके इलाकेके ढोर दीन और छीजे हुए हैं। डा० सेन और सर अर्थर ऑलवर दोनों मानते हैं कि ढोरके छीजनेके कारणोंका पूरी तरह पता नहीं लगाया गया है। डा० सेन भीगे इलाकेके पशुओंके छीजनेका मूल कारण जाननेको उत्सुक थे। वह अवनति आबहवा, पोषण या दूसरे कारणोंसे होती है, इसका ठीक ठीक पता लगाना चाहते थे। ऑलवर इन इलाकोंके लोगोंमें पशुप्रेमका अभाव ही इसका कारण मानते हैं। क्योंकि उनकी राय है कि, यदि वे लोग चारा उपजावें तो ढोरका सुधार हो सकता है और ये लोग चारा आसानी से उपजा सकते हैं।

असली कारण यह है कि धानके इलाकेका मुख्य चारा पुआल है, जिसमें पोषक द्रव्योंकी बहुत कमी है (७९८-८००)। चावलकी छाँट या भूसीका भी यही हाल है। (३६७, ५०५, ६५५)

**७९८. धानके इलाकेका महत्व :** पर इतना कह कर ही इस सवालको हम टाल नहीं सकते। धानका इलाका मुख्य इलाका है। इस इलाकेके ढोरोंके सुधार या अवनतिसे वहांके करोड़ों लोगोंका भाग्य बनता या बिगड़ता है। भारतमें धानके इलाकोंका महत्व बहुत है। इन इलाकोंकी ढोर-समस्या और मुख्य चारा धानके पुआल पर अधिक ध्यान देना चाहिये। धानके विभिन्न इलाकोंमें जितनी जमीनमें धानकी खेती होती है उससे हम इस समस्याके महत्वको समझ सकते हैं।

## आँकड़ा—६६

### विभिन्न प्रान्तोंमें धानके खेतोंका प्रतिशत

| | |
|---|---|
| काश्मीर, सिन्ध, मदरास और मध्यप्रान्त … | २० % से अधिक |
| बिहार … | ४० % ,, |
| उड़ीसा … | ६० % ,, |
| बंगाल … | ८० % ,, |

—(इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्च, बुलेटिन नं० ३८) (३६७, ५०५, ६५५)

**७९९. धान और दूसरे अन्नकी खेती जितनी जमीनमें होती है :** १,८६७ लाख एकड़ जमीनमें कुल अन्नकी (धान, गेहूँ, जौ, ज्वार, मक्का, चना और अन्य नाज तथा दलहन) खेती होती है। ६९५ लाख एकड़में धानकी खेती होती है। खाद्य अन्नोंकी कुल खेती जितनी जमीनमें होती है यह उसका ३७ सैकड़ा है। मोटे तौर पर यह ६९५ लाख एकड़ जमीन इस तरह है :

## आँकड़ा—७०

### ब्रिटिश भारतमें धानकी खेतीका क्षेत्रफल

| | | | |
|---|---|---|---|
| बंगाल | ... | २२२ | लाख एकड़ |
| मदरास | ... | १०१ | ,, |
| बिहार | ... | ९५ | ,, |
| युक्तप्रान्त | ... | ७१ | ,, |
| मध्यप्रान्त, बराड़ | ... | ५८ | ,, |
| उड़ीसा | ... | ५१ | ,, |
| आसाम | ... | ५० | ,, |
| बंबई | ... | २३ | ,, |
| सिन्ध | ... | १२ | ,, |
| पंजाब | ... | ११ | ,, |
| विभिन्न | ... | १ | ,, |
| | कुल— | ६९५ | लाख एकड़ |

पर कुल भारतमें धानकी खेती ७२० लाख एकड़ होती है। यह कुल खेतीकी (आबाद) जमीनका २५ सैकड़ा है। (३६७, ५०५, ६५५)

**८००. धानके पुआलका अयुक्ताहार अवनतिका कारण है :** इसमें सन्देह नहीं कि, धीरे धीरे छीजनेका एक कारण दुष्पोषण है। पुआलके अयुक्ताहारके कारण आजकी यह हालत है। इससे घनी वर्षा या धानके इलाकेमें घटिया पशु होनेका रहस्य खुल जाता है। स्थानविशेषका घटियापन धानकी खेतीके कारण है। बंगाल, आसाम और उड़ीसा छोड़ धानके इलाके अन्य प्रान्तोंके विशेष स्थानोंमें

होते हैं। यहांके ढोर उसी प्रान्तके अन्य स्थानोंके ढोरसे घटिया होते हैं। मदरासके ढोर संवर्धनके सिलसिलेमें यह कहा जा चुका है कि, जहाँ कुछ बहुत अच्छे दुधार और भारवाही ढोर हैं वहीं कुछ बहुत घटिया भी हैं। कृष्णा नदीके पंखेमें (मुख-द्वीप) कुछ नीची जमीन है। यह जमीन धानके इलाकेमें है और यहांके ढोर बहुत जादे घटिया हैं। मदरासके तंजूर जिलेमें भी इसी तरहका घटिया इलाका है। मालाबार, काश्मीर और कांगड़ेमें धान होता है। यहांका जिक्र किया जा चुका है। इन सभी जगहोंमें ढोर क्षीण हैं और उसी तरह मनुष्य भी। धान-पुआलके इलाकेकी समस्या व्यापक है। इसका सरोकार करोड़ों ढोर और मनुष्यकी भलाईसे है। (३६७, ५०५, ६५५)

८०१. **बैलोंकी जमीन जोतनेकी योग्यता :** शाही कमीशनने प्रति १०० एकड़ खेतीकी जमीनके लिये कितने बैल चाहिये यह बताया है। बंबईमें एक जोड़ी बैल २० एकड़ जमीन जोतते हैं, और बंगालमें केवल ५.५ एकड़। बंगलूरके पोषण गवेषक श्री इन्दु भूषण चटर्जीने शाही कमीशनके अनुसार नीचे लिखे अनुसार जोतनेकी योग्यताका हिसाब निकाला है :

## आँकड़ा—७१

### बैलोंकी जमीन जोतनेकी योग्यता

| | | |
|---|---|---|
| बंगाल | ... | १ |
| युक्तप्रान्त | ... | १.२ |
| बिहार उड़ीसा | ... | १.३ |
| पंजाब | ... | २.३ |
| मदरास | ... | २.३ |
| मध्यप्रान्त | ... | २.४ |
| बंबई सिन्ध | ... | ३.६ |

आँकड़ेसे पता चलता है कि, बंगालके बैलोंकी अपेक्षा बंबईके बैल साढ़े तीन गुना काम करते हैं। यह अपवाद है। बंगाल या धानके इलाकेके बैलोंकी अपेक्षा पंजाब, मदरास और युक्तप्रान्तके बैल दुगुनासे जादे काम करते हैं। बंगाल वास्तवमें धानका इलाका है। धानके इलाकेके बैल, चाहे जिस प्रान्तके हों, काम एकही तरहका करते हैं। कृष्णा पंखे (मुख-द्वीप), मालाबार या उड़ीसाके बैल बंगालके बैलकी ही तरह कमजोर और छोटे हैं। (३६७, ५०५, ६५५)

# आँकड़ा—७२

८०२. **धानके पुआलके कुल पोषक द्रव्य : प्रतिशत :**

| | कच्चा प्रोटीन | रेशा | ना० रहित एक्सट्रैक्ट | इथर एक्सट्रैक्ट | कैलशियम ($CaO$) | फॉस्फोरस ($P_2O_5$) | सोडियम ($Na_2O$) | पोटाशियम ($K_2O$) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| औसत ... | २·९२ | ३३·३६ | ४५·५८ | ०·८६ | ०·५० | ०·९५ | ०·५० | १·६३ |
| आमन (अगहनी) बंगाल | ३·२५ | ३३·६३ | ४७·९१ | १·०३ | ०·७१ | ०·१२ | ०·२७ | १·७८ |
| आउस (भदई) बंगाल | ५·०४ | ३४·९२ | ४५·६३ | १·५७ | ०·६४ | ०·१८ | ०·२१ | २·०३ |

**धानके पुआलके पचनीय पोषक :**

| | | कच्चा प्रोटीन | कुल पचनीय पोषक | पोषक अनुपात | स्टार्च तुल्यांक (एस० ई०) |
|---|---|---|---|---|---|
| बंगलूर | ... | ०·०० | ४९·५४ | ... | ३०·१ |
| आमन (बंगाल) | ... | ०·२८ | ४४·१३ | १५४·४ | २४·५ |
| आउस (बंगाल) | ... | ०·४४ | ४४·५७ | १००·२ | २४·१ |
| बिहार (कांके) | ... | ०·०० | ५०·२३ | ... | ३२·२ |
| पंजाब (कांगड़ा) | ... | ०·०० | ४१·६२ | .... | २०·३ |

(३६७, ५०५, ६५५)

८०३. १० रत्तल धान-पुआलमें पोषक द्रव्य : धानके पुआलमें कुछमें पचनीय प्रोटीन शून्य है और कुछमें '२८ से '४४ तक है। धानका पुआल खानेवाली गायको कुछ भी प्रोटीन नहीं मिलता। पर कुल पचनीय पोषक काम-चलाऊ ५.० से ४१ तक है, और एस० ई० का औसत २५ है। पर खनिज असाधारण तौर पर युक्ताहारके विरुद्ध हैं। इसमें चूना बहुत कम है। जितने नमूने दिखाये गये उनमें प्रति रत्तल '५० सैकड़ा अथवा २'२ ग्राम था। फॉसफोरस तो और भी कम '१२ प्रतिशत आमन पुआलमें है। यह प्रति रत्तल पुआलमें '५ ग्रामके बराबर है।

ऊपरके विश्लेषणात्मक अंकोंको सही मानकर यदि ५०० रत्तलकी गायको १० रत्तल पुआल खिलाया जाय तो उस गायको नीचे लिखे अनुसार मिलेगा :

## आँकड़ा—७३

### केवल धानके पुआलके पोषक

| | | |
|---|---|---|
| धान पुआल | .... | १० रत्तल |
| प्रोटीन | .... | कुछ नहीं |
| पचनीय पोषक | .... | ५'० रत्तल |
| एस० ई० (स्टार्च तुल्यांक) | .... | २'५ रत्तल |
| कैलशियम | .... | २२ ग्राम |
| फॉसफोरस | .... | ५ ग्राम |
| पोटाशियम | .... | ८० ग्राम |

ऊपरके आँकड़ोंसे तीन बातें झलकती हैं। धानके पुआलमें प्रोटीन कुछ नहीं है। फॉसफोरस बहुत कम है और पोटाश बहुत ज्यादे है। कैलशियम-फॉसफोरस अनुपात भी बहुत असंतोषप्रद है।

कैलशियम-फॉसफोरसकी इतनी अयुक्तता से दूसरी चीजों पर भी उलटा असर पड़ता है। पोटाशियमकी अधिकतासे कैलशियमका शोषण तो हो ही नहीं पाता, साथही वह सोडियमको बाहर निकाल देता है और खुद निकल आता है। (३६७, ५०५, ६५५)

८०४. **धानका पुआल अकेला चारा नहीं है :** धानके पुआल से काम लेना कठिन काम है। कई पीढ़ियोंसे गायोंका मुख्य आहार यही रहा है। कोई गाय केवल सूखे पुआल पर नहीं रह सकती। यही अकेला कभी दिया भी नहीं जाता। गायें किसी दूसरे साधन से कुछ प्रोटीन, कुछ फॉसफोरस और कुछ नमक जरूर खानी हैं, नहीं तो अभी तक वह निर्मूल हो गयी होतीं। फिर भी यह अचरज ही है कि वह अभी तक बनी हैं और प्रजोत्पादन भी करती हैं।

गरीब किसान पुआलके साथ सिर्फ दूब ही दे सकता है (८६६, ८७६)। खेतीकी जमीन जैसे जैसे जादे बढ़ रही है, गोचर कम होते जा रहे हैं। घनी आबादीवाले स्थानोंमें तो अब गोचर प्रायः रहे ही नहीं। काफी दूब देने से पुआलके मुर्दा चारेमें भी जान आ जाय। इस साधनकी कमी से अवनति तेजी से हो रही है। मैं समझता हूँ कि सभी धानके इलाकोंमें अब तक छीजन चरम सीमा तक नहीं हुई है। जैसे कि बंगालके ढोर अपनी आजकी गिरी हालतमें भी उड़ीसाके ढोर से कहीं अच्छे हैं।

बंगालमें सरसों होती है। उसका तेल काममें बहुत आता है। खली ढोरके लिये बच रहती है। जितनी खली खिलाई जाती है उसी हिसाबसे उसका प्रोटीन ढोरको मिलता है। पुष्टईकी सूरतमें भी सरसोंकी खली अलसी या तिलकी खली से घटिया है। धानके इलाके, खासकर बंगालके चारेका यही कच्चा चिट्ठा (पूरा और ठीक विवरण) है।

अब यह सवाल है कि, किसानकी सामर्थ्यके अनुसार दूसरे पदार्थोंके साथ क्या धानका पुआल सुधारके लिये खिलाया जा सकता है। इसका पता लगानेके लिये शाही कृषि अनुसन्धान परिषद, बंगालमें प्रयोग कर रही है। (३६७, ५०५, ६५५)

८०५. **पुआलके चारेका बंगालका प्रयोग :** प्रयोग ढाका और कृष्णनगरमें प्रारंभ हुआ। अनुसंधान पर पहला लेख सितम्बर, १९३७ में "इडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी"में प्रकाशित हुआ। श्री एम० कारबरी और श्री इन्दु भूषण चटर्जीने प्रयोग किये। लेखका सिरनामा है "उत्तर-पूरब भारतमें पशुओंकी खनिजोंकी आवश्यकताका अध्ययन, जिसमें धानके पुआल पर विशेष दृष्टि रखी गयी है।" (३६७, ५०५, ६५५)

८०६. **पुआलके चारे पर प्रयोगके साहित्य :** इस लेखमें वर्णित

विषयोंपर "एग्रिकलचर एन्ड लाइभ स्टॉकमें" कई लेख निकले जो नीचे लिखे अनुसार हैं :-

(१) जुलाई १९३८—"चावलका गुँड़ा (कुँड़ा—Bran) कैसा चारा है ?", लेखक श्री कारबरी और श्री चटर्जी ।

(२) जुलाई १९३८—"आउस धानके पुआलका खाद्य-गुण", लेखक श्री चटर्जी और श्री हाई ।

(३) सितम्बर १९३८—"क्या जलकुंभी पशुओंका चारा हो सकती है ?", लेखक श्री चटर्जी और श्री हाई ।

(४) सितम्बर १९३८—"बंगालके ढोरोंकी चूने और फॉसफोरसकी जरूरत", लेखक श्री चटर्जी और श्री तालपत्र ।

अप्रैल १९४२ के इंडियन फार्मिंगमें श्री चटर्जीने एक लेख "धानका पुआल—इसका आहार-गुण और इसे कैसे सुधारें" लिखा। इसमें उन्होंने पुआलके दोष दिखाये हैं। (३६७, ५०५, ६५५)

**८०७. धानके पुआलके दोष :** "धानके पुआलका मुख्य दोष एक तरफ तो यह है कि, इसमें प्रोटीन फॉसफोरस बहुत कम हैं और रेशा बहुत जादे है। और दूसरी ओर एक ऐसा पदार्थ इसमें है जो चूनेके आचूषण (हजम हो जाने) में बाधक है। चारेके यौगिक (उपादान) और पुआलके प्रकारके आधार पर पुआलके प्रोटीनकी पचनीयता शून्य या ऋणात्मक (अर्थात् पुआलसे जितना मिलता है उससे जादे मलमूत्रमें निकल जाता है) से लेकर ३, ४, ५ और क्रमशः ३४ सैकड़ा तक होती है। एक प्रयोगमें केवल आमन (अगहनी) पुआल खिलाया गया। यह प्रयोग १११ से लेकर १५० दिनों तक चला। (शुरूमें पशुओंकी तौल ३७५ से ४०३ रत्तल तक थी)। पशु ३८ से ८५ रत्तल तक घटे और केवल २ महीनोंमें पाचन शक्ति २५ सैकड़ा घट गयी। इसके बाद तो और भी खराब हुई। उदाहरणके लिये जो पशु पहली जाँचमें ५·३ रत्तल कुल पचनीय पोषक ग्रहण कर सकते थे वह २ महीनोंके बाद दूसरी जाँचमें ३·९ रत्तलसे जादे नहीं ले सके। ... एक दूसरे पशुकी हालत तो और भी निराशाजनक थी" ... (३६७, ५०५, ६५५)

**८०८. आहारके प्रयोगोंके केवल उलटे परिणाम :** ऊपरके वर्णन से पाठकोंको प्रयोगोंका कुछ अनुमान हो सकता है। प्रयोगोंका ब्यौरा बताये

हुए लेखांमें छप चुका है। यह दुर्भाग्यकी बात है कि, केवल विपरीत परिणाम प्राप्त हुए। शास्त्रीय अध्ययनकी दृष्टिसे इसका महत्व कम हो गया है। क्योंकि इन प्रयोगोंमें पोषणकी प्रसिद्ध बातोंपर विचार नहीं किया गया है। जैसे कि आहारके प्रयोगमें सबसे मुख्य बात यह है कि भिटामिन 'ए' चारेके साथ देना चाहिये। जिससे कि जो जरूरी है वह पशु खावे। इन प्रयोगोंमें धानके सूखे पुआलोंके साथ केवल जरासा नमक दिया जाता था। अगर भिटामिन 'ए' नहीं दिया जाय तो युक्ताहारसे भी गाय पोषक द्रव्योंका शोषण नहीं कर सकती। यह दिखाया गया है कि खैरी गाय (७८०–'८१) का स्वास्थ्य, और दृष्टिसे उपयुक्त आहारसे, 'ए' भिटामिनके बिना ठीक नहीं रह सका। प्रयोगके बाद साधारण तौर पर खूँटे पर खिलानेसे भी (इसमें हरा चारा भी जरूर रहा होगा) उसकी देह पहलेकी तरह नहीं हो सकी। खूँटे पर खिलानेके अलावा जब उसे चरने भी दिया गया तभी उसका स्वास्थ्य फिरसे ठीक हुआ। (३६७, ५०५, ६५५)

८०६. **पुआल खिलानेके प्रयोगोंका समय :** बंगालके प्रयोगोंमें पहली तीन अवस्थाओंमें हरा चारा कुछ नहीं दिया गया। यों तो पुआल स्वयं बुरा चारा है फिर भी पचनेके बारेमें बुरे परिणाम भिटामिनोंकी कमीके कारण ही हुए होंगे।

प्रयोग नीचे लिखे अनुसार थे :

| | |
|---|---|
| क—केवल धानका पुआल | ... १८ सप्ताह |
| ख—आमन धान-पुआल और चावलका गूँड़ा (कुँडा) | ... १८ ,, |
| ग—आमन धान-पुआल और अलसीकी खली | ... १२ ,, |
| घ—केवल आउसका पुआल ... | .... ६ ,, |
| ङ—आउसका पुआल, ½ से ¾ रत्तल तीसीकी खलीके साथ .... | ६ ,, |
| च—आमन पुआलके साथ नीचे लिखे हरे चारे— | |
| (१) जल कुंभी, | |
| (२) हाथी घास (नेपियर), | |
| (३) गिनी घास | .... १८ ,, |

केवल च प्रयोगमें पुआलके साथ हरे चारे दिये गये, पर उसमें कोई खली नहीं थी। फिर भी च (१) के कुंभीके अस्वाभाविक खाद्यको छोड़ च प्रयोगके

अंदाज मिल सकता है कि हरे चारेके साथ पुआल कैसा रहता है। दुर्भाग्यसे यह प्रयोग व्यर्थ कर दिया गया। क्योंकि वह ऐसे पशुओंपर किया गया जो बहुत दिनोंसे निर्जीव अयुक्ताहार खानेसे निस्सत्व हो चुके थे।

प्रयोग च (२)—आमन पुआल और नेपियर या हाथी घासके चारेका प्रयोग 'डी-३' और 'डी-६' पशुओंपर किया गया। (३६७, ५०५, ६५५)

**८१०. वही पशु फिरसे काममें लाये गये :** प्रयोगकी सूची देखनेसे पता चलता है कि उन्हीं 'डी-३' और 'डी-६' पशुओंसे नीचे लिखे प्रयोगोंमें भी काम लिया गया।

| डी—३ | | डी—६ | |
|---|---|---|---|
| प्रयोग ख—आमन-पुआल और चावलका गुँड़ा— | १८ सप्ताह | प्रयोग ख—आमन-पुआल और चावलका गुँड़ा— | १८ सप्ताह |
| प्रयोग ग—आमन-पुआल और तीसीकी खली— | १२ ,, | प्रयोग ङ—आउस-पुआल और तीसीकी खली— | ६ ,, |
| प्रयोग घ—केवल आउस-पुआल— | ६ ,, | | |
| | ३६ सप्ताह | | २४ सप्ताह |

(३६७, ५०५, ६५५)

**८११. हरे चारे देनेके पहले शारीरिक तौलकी कमी :** 'डी-३' बैल भिटामिन-रहित निर्जीव आहार पर ३६ सप्ताह तक रहा और 'डी-६' २४ सप्ताह तक। बड़े सौभाग्यकी बात है कि ऐसे निस्सत्व आहार पर वह इतने दिन निबह सके। १८ सप्ताहके ख प्रयोगके पहले 'डी-३'की तौल ५६८ रत्तल थी। ख से घ तकके प्रयोगोंके बाद उसकी तौल ३६ सप्ताहमें ५६८ से घट कर ४६९ रत्तल हो गयी। इस तरह वह ९९ रत्तल घटा।

ख प्रयोगके पहले 'डी-६' बैलकी तौल ५८९ रत्तल थी। २४ सप्ताहके ख और ङ प्रयोगोंके बाद उसकी तौल ५१७ रत्तल हो गयी। इस तरह वह ७२ रत्तल कमा।

**८१२. आहारके प्रयोगोंमें व्यावहारिकताका अभाव :** जब ये बैल अप्राकृतिक और हीन आहार खाकर ९९ और ७७ रत्तल घट गये तब इनपर हरे

चारेका प्रयोग च (३) किया गया। इसलिये इनपर जीवनप्रद गिनी घासका बहुत कम असर हुआ और यह नीचे लिखे अनुसार कम पचा सके।

## आँकड़ा—७४

### कमजोर पशुओंपर हरे चारेका प्रभाव

[च (३) प्रयोगके अनुसार]

| | नाइट्रोजन N | चूना* CaO | फॉस्फोरस $P_2O_5$ | पोटाश $K_2O$ | सोडियम $Na_2O$ | तौल रत्तल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| **डी-३** | | | | | | |
| ग्रहण | ५८·० | ५९·८ | २४·१० | ७३·८ | ३५·० | -१·१०८ |
| बाकी | + ७·३ | + २·५ | + ३·२४१ | — ७·० | + २·८ | |
| **डी-६** | | | | | | |
| ग्रहण | ५७·१ | ५४·९ | २१·६ | ७१·६ | ३३·७ | +०·३७६ |
| बाकी | + १·८ | — १·३ | + २·१ | — २०·५ | —१·६ | |

इस पिछले प्रयोग च (३) में मुख्य रूपसे पोषक द्रव्य गिनी घाससे ग्रहण हुए हैं। क्योंकि, उन्होंने पुआल कम खाया। फिरभी एककी तौल घटी और दूसरा एकसा रहा। पोटाश दोनोंमें ऋणात्मक रहा। डी-६ में कैलशियम और सोडियम दोनों ऋणात्मक रहे।

इसलिये यह साफ है कि इन प्रयोगोंके परिणामसे कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। पुआलके चारेके सुधारमें यह हमें राह दिखा सकते हैं। इसी उद्देश्यसे इनका प्रारम्भ हुआ था। इसलिये यदि डा० राइटने नीचे लिखे शब्दोंमें यह लिखा है कि, ऐसे प्रयोगोंमें व्यावहारिक उद्देश्यका अभाव है तो इसमें अचरजकी बात नहीं।

"ढाकामें अभी तक जो काम हुआ है उसमें आहार सामग्रीकी पचनीयता जाँचनेका प्रतिगामी समीकरणोंके (regression equations) द्वारा नया तरीका बनानेकी चेष्टा की गयी है। बैलोंको निर्वाहके लिये क्या चाहिये इसका भी पता लगाया गया है।

* इस किताबमें कैलशियम ऑक्साइड, कैलशियम और चूनेका एकही अर्थ है।

"इनमें से अनेक खोजें बड़ी सावधानी और शुद्ध तरीके से हुई हैं। इनके प्रयोगोंके परिणामोंके वैज्ञानिक महत्वको कोई टोक नहीं सकता। पर मालूम ऐसा होता है कि अधिकांश कार्यमें व्यावहारिक उद्देश्यकी कमी है और कार्यारंभके लिये उत्तमतर योजना तथा सम्मिलित उपाय करनेकी जरूरत है।"

मालूम होता है, इस तरीके से और भी प्रयोग किये गये हैं। क्योंकि "इंडियन फार्मिंग" वाले लेखमें यह कहा गया है कि, पुआलके साथ सरसोंकी खली खिलायी गयी। यह ऊपर वर्णित क से च तकके प्रयोगोंके बाद हुआ होगा। पर यह प्रयोग भी असंतोषप्रद सिद्ध हुआ। यद्यपि.... "देहकी तौल आदिके विचारसे यह अच्छा मालूम होता था। पर जब खाये गये आवश्यक पोषकोंकी सावधानी से जाँच हुई तो यह देख अचरज हुआ कि, काफी जादे पोटाश खाने पर भी आहारमें जितना पोटाश था उससे जादे निकल गया। यह बात अनेक प्रयोगोंमें देखी गयी है। पर इसके कारणकी खोज अभी हो ही रही है।" (३६७, ५०५, ६५५)

८१३. **पोटाशका काम :** पर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि, पोटाश देह-तंतुओंके खनिज अंशका एक बहुत बड़ा हिस्सा है। पर आहारमें जितना पोटाश मिलता है उससे जादे अगर निकल जाता है तो इससे शरीर तन्तु कमजोर पड़ सकते हैं। दूसरी तरफ तन्तुओंकी कमजोरी साधारण तौर पर तब होती है जब आहारके प्रोटीनमें जरूरी एमिनो तेजाबका अभाव होता है। वर्णित प्रयोगका यह आहार धानके पुआल और सरसोंकी खलीका था। सरसोंके प्रोटीनके एमिनो तेजाबके बारेमें बहुत कम मालूम है। यदि इसमें कमी है तो शरीर क्रियाकी जरूरत पूरी करनेके लिये तन्तुके प्रोटीनका कुछ भाग खर्च हो जाता है। ऐसी हालतमें तन्तुके विश्लेषण या क्षय होनेके कारण पोटाशके साथ मिले हुए उस तन्तुके दूसरे घटक या उपादान भी जरूरही निकल आवेंगे..." (३६७, ५०५, ६५५)

८१४. **धान-पुआलके दोषोंका निष्कर्ष :** पिछले वर्णित लेखमें धानके पुआलका दोष दिखाया गया था। वह नीचे लिखे अनुसार है। उनमेंसे कुछ से पाठक परिचित हो चुके हैं।

# आँकड़ा—७५

## धानके पुआलकी त्रुटियोंकी सूची

१. कार्बोहाइड्रेट : शक्तिकी आवश्यकता पूरी होती है।
२. प्रोटीन : इसकी कमी है जो दूसरे साधनोंसे पूरी हो सकती है।
३. फॉसफोरस : इसकी कमी है। जो है उसके गुणके बारेमें सन्देह है।
४. पोटाश : बहुत बड़ी मात्रामें है। यह शायद चूना (कैलशियम) हजम होनेमें बाधक है।
५. कैलशियम : काफी है। पर इसका अधिक अंश व्यर्थ है। क्योंकि वह कैलशियम ऑक्सलेटकी सूरतमें है।

अभीतक धानके पुआलके प्रयोग ऋणात्मक या नकारात्मक ढगके रहे हैं। इसके दोष दिखाये गये और सिद्ध किये जा चुके हैं। धानके इलाकेमें किसानके घर गाय ब्याती है। बछिया मुख्यरूपसे धानका पुआल खाकर बढ़ती और वह भी ब्याती है। यह पता नहीं चला कि बच्चोंका पालन सफलतापूर्वक कैसे होता है, भले ही उसकी हालत बुरी हो। यदि शुरूसे आखरी तक कैलशियम और पोटाशका समतोल ऋणात्मक होता तो वृद्धि नहीं हो सकती। इसलिये कुछ हद तक पुआलके दोषोंका सुधार उस स्थानमें पाये जानेवाले दूसरे चारोंसे किया जाता है। ये दूसरे चारे क्या क्या कर सकते हैं उसकी तह तक जाने से आगेकी उन्नतिका सूत्र हमारे हाथ लग सकता है। (३६७, ५०५, ६५५, ७६४)

८१५. **धानके गुँड़ाके बारेमें कुछ सुझाव :** प्रयोगियोंने सुझाया है कि, बंगालकी हालतके मुताबिक पुआलके साथ चावलका गुँड़ा पुष्टईके रूपमें और खली तथा हरा चारा खिलाना चाहिये। साथ ही खड़ियाकी थोड़ी बुकनी चूनेकी कमी पूरी करनेके लिये देनी चाहिये। यह दुःखकी बात है कि, इस ढंगपर पचनीयताकी जांच नहीं की गयी है कि उससे धानके इलाकेकी गायकी वृद्धि और बढ़िया बनावटके लिये कोई कामका चारा मिल सके। ऐसा समझा जाता है कि, प्रयोग अभी चल ही रहे हैं।

**८१६. धानके इलाकेके ढोरका सुधार :** तबतकके लिये धानके इलाकेके ढोरके सुधारके लिये मेरा सुझाव नीचे लिखे अनुसार है :—

(१) धानके पुआलके साथ काफी हरी घासका प्रबन्ध। मान लीजिये कि ५०० रत्तलकी गायके लिये ६ रत्तल हरा चारा जो २ रत्तल सूखे चारेके बराबर है।

(२) प्रोटीन और फॉसफोरसकी कमी पूरी करनेके लिये कुछ खली जरूरी है, जैसे कि, ३/४ रत्तल खली, नहीं तो उसके बदले प्रायः दूने परिमाणमें फलियोंका पुआल।

(३) कैलशियमकी कमी पूरी करनेके लिये हड्डीका चूर्ण काममें लाया जाय, प्रयोगियों के सुझावके अनुसार खड़िया या चूनेका पत्थर नहीं। हड्डीके चूर्णसे पचनीय रूपमें फॉसफोरस और कैलशियम दोनों मिलेंगे। ५०० रत्तलकी गायके लिये २ से ३ आउन्स हड्डीका चूर्ण काफी होगा।

(४) कुछ थोड़ा, मान लीजिये १ रत्तल या कम चावलका गुँड़ा भी जिसमें प्रायः २० % तेल होता है, देना चाहिये। क्योंकि वह सब जगह मिल सकता है और किसानके लिये मुफ्तकी चीज है। खलीकी जगह पर (जिसे खरीदना होता है) फलियोंका पुआल काममें आ सकता है। इससे जरूरी प्रोटीन मिल जायगा। इसमें कैलशियम अधिक होता है जो आहारकी युक्तामें सहायक होगा।

(५) धानके पुआलमें पोटाशियम बहुत अधिक है। यही उसमें सबसे बड़ी कठिनाई या प्रतिकूलता है। इसमें प्रोटीन, सुपचनीय कैलशियम और फॉसफोरसका अभाव है। यह इसकी ऋणात्मक त्रुटि है जो पुष्टिकारक सामग्री मिलानेसे सुधर सकती है। पर पोटाशके संबन्धमें इसकी त्रुटि धनात्मक है। इसमें बहुत जादे पोटाश है जिससे कैलशियम नहीं पचता और कैलशियम और फॉसफोरसकी युक्तता बिगड़ जाती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि, यह सोडियमको भी निकाल देता है। समस्या यह है कि इसे कैसे दूर करें या सुधारें। पोटाशके विषैलेपनको मारनेके लिये मामूलीसे जादे सोडियम क्लोराइड या नमक की सिफारिश की गयी है। चारेके बहुत जरूरी सुधारका यह एक उपाय है। धानके इलाकोंमें पशुको जादे से जादे नमक दिया जाय। यह दिया नहीं जाता है। मेरी सम्मतिमें पशुकी असमर्थताका मुख्य कारण यही है। ५०० रत्तलकी गायको

२ आउन्स नमक देना चाहिये। २ आउन्स प्रति दिनका अर्थ है, २ सेर नमक प्रति मास।

हड्डीके चूर्णमें कुछ खर्च नहीं होना चाहिये। यह मुफ्त मिलना चाहिये। अगर खरीदना पड़े तो यह सस्ता ही होता है। मरे ढोरकी हड्डीसे इसे गावोंमें ही बनाना चाहिये। यदि यह खिलानेके अलावे फाजिल बच रहता है तो धरतीके लिये अच्छी खादका काम देगा। जबतक नयी खोजसे कोई उपाय नहीं निकले तबतक धानके इलाकोंमें ढोरकी अधिकाधिक वृद्धिके लिये और पुआलको अधिक उपयोगी चारा बनानेके लिये हड्डीका चूर्ण और नमक विशेष महत्वकी वस्तुएँ हैं। इन चीजोंके व्यवहारसे अपरिमित भलाई होते मैंने देखी है।

**८१७. अपराधी—पोटाशियम :** धानके पुआल पर क्षारके प्रयोगसे यह पता चला कि, पुआलके चारेमें प्रधान दोषी पोटाशियम है। यह प्रयोग इज्जतनगरमें डा० के० सी० सेन और उनके साथी पुआलका आहार-मूल्य बढ़ानेके लिये कर रहे थे। इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बेन्डरी, दिसम्बर १९४२ में उसका परिणाम छपा है। उससे पता चला कि, क्षारके उपचारसे पुआलका आहार-मूल्य सुधर गया। इस उपचारसे दूसरी बातोंके अलावा उसका अधिकांश पोटाश दूर हो सका। प्रयोग कई दृष्टियोंसे आकर्षक है, क्योंकि उससे पुआलके कई खनिजोंकी क्रियाका रहस्य खुलता है।

**८१८. अन्नके पुआल पर क्षारका उपचार :** अन्नके पुआल नीची श्रेणीके चारे माने जाते हैं। जिन दूसरे देशोंमें पशु-पालनकी काफी उन्नति हुई है वहाँ पुआल केवल अकालके समयका चारा माना जाता है। लड़ाईके समय यातायातकी कठिनता रहती है। घासके मैदान मनुष्योंके लिये अन्न उपजानेका जोत लिये जाते हैं। ऐसे समयमें पशुओंकी शक्तिकी जरूरत कुछ पूरी करनेके लिये पुआलसे काम लेते हैं। पहले महायुद्धमें (सन् १९१४-'१८) और उसके बाद भी जर्मनी क्षारके उपचारसे पुआलके चारेका सुधार करनेकी कोशिश कर रहा था। इसके बाद अनेक देशोंके शास्त्रियोंने यह काम उठा लिया। यदि १·२५ सैकड़ा दाहक क्षार (caustic soda—कॉस्टिक सोडा) के घोलमें रात भर फुलाये जायँ तो अन्नके पुआल सुधर जाते हैं। इंगलैन्डमें यह देखा गया कि, क्षारमें फुलाये पुआल और बिना फुलाये पुआल खिलानेका असर

पशुकी वृद्धिपर होता है। फुलाये हुए पुआलके खिलानेसे पशुकी वृद्धि ६० सैकड़ा या उससे भी अधिक हुई।

यह विषय बड़ा रोचक है। क्योंकि धान, गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का आदि अन्नके पुआलसे ८० सैकड़ा रूखा चारा भारतके ढोरोंको मिलता है (सेन और राय, १९४१)। सभी पुआलोंमें धानके पुआलका विशेष स्थान है, क्योंकि कुल खेतीकी जमीनके २५ सैकड़ामें धानकी ही खेती होती है, और इसका पुआल भारतके ढोरकी बड़ी संख्याका मुख्य आहार है।

८१९. **अपचनीय ऑक्सलेटके रूपमें कैलशियम :** दूसरे देशोंमें होने वाले अनुसंधान कार्यको डा० सेनने अपने हाथमें लिया और क्षारके उपचारसे पुआलके सुधारका प्रयोग करने लगे। पुआलके चारेकी बुराइयाँ साधारण हैं। पर धानके पुआलकी बुराई उसीकी विशेषता है। वह कहते हैं :

"...हमारी प्रयोगशालाके (इज्जतनगर) प्रयोगसे मालूम होता है कि धानके पुआलके कैलशियमका एक अंश कैलशियम ऑक्सलेटके रूपमें है। इसका अधिकांश शरीरमें नहीं लग सकता। इस पुआलमें जो बहुतसा पोटाश है उसके कारण कैलशियम ऑक्सलेटके अतिरिक्त जो कैलशियम उसमें रहता है उसके आचूषणमें भी बाधा होती है। यह कारण दूसरे अन्नके पुआलमें प्रायः नहीं है। इसलिये शास्त्रीय अध्ययनकी दृष्टिसे धानका पुआल अद्वितीय है। चाहे युद्ध या 'शान्ति काल हो, जो उपचार इसका पोषक गुण बढ़ा सके और स्वाभाविक दोष दूर कर सके वह अवश्य कर्तव्य है।"

इंगलैन्डमें युद्धकी कठिनाइयोंके बीच यह प्रयोग सफल हुआ है और अब वहाँ क्षारमें फुलाया हुआ पुआल रोजके चारेकी चीज है। फुलाये हुए धान, गेहूँ और जईके पुआलको खिलाकर अजमाया गया। देखा गया कि उसके कुल पोषक हजम हो गये। (६५२)

८२०. **पुआलों पर क्षारका उपचार :** पुआलकी एक एक इंचकी कुट्टी करके उसकी तौलके १० सैकड़ा कॉस्टिक सोडाके घोलमें एक दिन उसे फुलने दिया गया। पुआलके घनफल या आयतन (volume) के १० गुना पानीमें यह घोल तैयार किया गया। ८० रत्तल पुआलके लिये ६४० रत्तल पानी और ८ रत्तल कॉस्टिक सोडा काममें लाया गया। दूसरे दिन पानी छानकर जमा कर लिया गया और उसमें और पानी मिलाकर उसे ६४० रत्तल कर दूसरे उपचारके लिये तैयार किया

गया। कॉस्टिक सोडा छीज कर कारबोनट (carbonate) बन गया था। दूसरे उपचारके लिये उसे फिरसे ठीक किया गया और उसे कॉस्टिक रूपमें लानेके हेतु उसकी ताकत बढ़ानेके लिये उसमें पहलेसे आधा कॉस्टिक सोडा डाला गया। शुरूके घोलसे लगातार तीन उपचार किये जा सके और उसके बाद ताजा पानी काममें लाया गया।

पुआलको अच्छी तरह धोकर खिलाया गया। प्रयोगके लिये तौल निकालनेके वास्ते पुआल सुखा लिया गया। यह पता चला कि पुआलकी किस्मके मुताबिक उसकी तौल घटी।

## आँकड़ा—७६

### क्षार-उपचारके बाद पुआलकी तौलकी कमी

| | | |
|---|---|---|
| गेहूँका पुआल | ... | २५ सैकड़ा |
| जईका पुआल | ... | ३४ सैकड़ा |
| धानका पुआल | ... | २५ सैकड़ा |

उपचरित पुआल सूखने पर अधिकतर पीला और मुलायम हो गया था। क्षारके उपचारसे प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट आदिकी कमी हो गयी थी।

## आँकड़ा—७६ (क)

### क्षार उपचारसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटमें कमी

[ १०० रत्तल सूखा सामान : धानका पुआल ]

| | कच्चा प्रोटीन | ईथर ऐक्सट्रैक्ट | कच्चा रेशा | कुल राख | नाइट्रोजनरहित ऐक्सट्रैक्ट |
|---|---|---|---|---|---|
| बिना उपचारका | २·६८ | ०·८३ | ४०·४ | ८·५७ | ४७·१९ |
| उपचार किया हुआ | २·५१ | ०·६० | ५६·० | ७·२५ | ३३·६१ |

पुआलका क्षारमें घुलने वाला अंश बह गया। उसके साथ प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि बह गये। इसलिये जो चीज रह गयी उसमें रेशा प्रचुर था।

## आँकड़ा—७७

८२१. **क्षार-उपचारसे खनिजोंमें परिवर्तन :**

[ १०० रत्तल सूखा सामान : धानका पुआल ]

| | कैलशियम | मैगनीशियम | पोटाशियम | सोडियम | फॉस्फोरस |
|---|---|---|---|---|---|
| उपचारके पहले कुल | ०·५२ | ०·४७ | ४·५२ | ०·०७ | ०·२२ |
| उपचारके बाद कुल | ०·६६ | ०·४६ | १·१८ | १·३ | ०·११ |

यह देखनेकी बात है कि, उपचारसे कैलशियम बढ़ गया। इसका उत्तर यह है कि धोनेके पानीमें कैलशियम था वह पुआलमें सोख लिया गया। सोडियम भी कुछ बढ़ा। वह इसलिये हुआ कि पुआलका उपचार कॉस्टिक सोडासे किया गया और यह कॉस्टिक सोडा सोडियमसे ही उत्पन्न होता है। सबसे बड़ा उलटफेर पोटाशमें हुआ। वह ४·५२ सैकड़ासे १·१८ सैकड़ा हो गया। क्षार उपचारसे पोटाश बह गया। क्षारने पुआलके कोषोंमें घुस वहांसे पोटाशियम नमक बाहर निकाल दिया। इस बुराईसे छुटकारा पानेपर धानका पुआल खानेका उत्तमतर पदार्थ तुरत हो गया।

वास्तविक जाँचसे यह पता चला कि प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की पचनीयता बहुत जादे बढ़ गयी है। उपचारसे पुआलकी तौल कम होने पर भी उसके पोषक पदार्थ पहलेसे जादे उपयोगमें आये।

## आँकड़ा—७८

८२२. **उपचारित पुआलमें खनिजोंका पचना :**

| | नाइट्रोजन | | कैलशियम | | फॉस्फोरस | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | खाया | बाकी | खाया | बाकी | खाया | बाकी |
| बिना उपचारका पुआल | ५७·४ | + ४ | २३·८ | +१·३ | १३·७ | +१·३ |
| उपचार किया पुआल | ५३·३ | + १६·० | २२·८ | +३·७ | ११·० | +४·२ |

पता चलता है कि उपचारित पुआलमें कम प्रोटीन खाया गया। वह ५७ के मुकाबले ५३ है। फिरभी ४ के मुकाबले १६ काममें आया। उपचारित

पुआलमें ४ गुना अधिक प्रोटीन पचा। इसी तरह कैलशियमका पचना १·३ से ३·७ और फॉस्फोरसका १·३ से बढ़कर ४·२ हो गया। एक दूसरे उदाहरणमें सरसोंकी खलीके साथ उपचार किये पुआलके खिलाने से गायका वजन कैसे बढ़ा इसका उत्तर इसीमें है। बिना उपचारका पुआल खानेसे ६६६ रत्तलकी प्रत्येक गायकी औसत बढ़ती ५ रत्तल थी और उतने ही समयमें उपचारके पुआलसे ?२ रत्तल। (६५२)

**८२३. पुआलमें अत्यन्त पोटाशका परिणाम :** ऊपरके वर्णनसे मालूम होता है कि, उपचारसे पुआल कितना सुधर गया। इस बारेमें उपरोक्त लेखमें लिखा है :

"कुछ सबूत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि, धानके पुआलमें कुछ ऐसी चीज है जो प्रसादपाकमें बाधा डालती है। धानका पुआल खाने पर मूत्रवृद्धिके लक्षणका कारण पुआलका अधिक पोटाश माना जाता है। पोटाशियमका सोडियम और क्लोरीन निकालना रोकनेके लिये अपेक्षाकृत अधिक मात्रामें नमक नियमित रूपसे खिलाना जरूरी पाया गया है। इस खोजमें पाया गया है कि, पोटाशकी अधिक मात्राके कारण गुर्देके द्वारा नाइट्रोजनकी अच्छी मात्रा निकल जाती है। नहीं तो यह देह में ही रहती। इसके समर्थनमें रिचार्ड्स (Richards), गोडेन (Goden) और हसबैंड (Husband) (१९२७) के प्रयोगके प्रमाण दिये जा सकते हैं। इन लोगोंने दिखाया है कि, आहारमें अधिक पोटाश रहने से नाइट्रोजनका पचना और देहमें रहना घट जाता है। इन्हीं लोगोंने सिद्ध किया है कि, पोटाशियमकी अधिक मात्रा खानेसे कैलशियमका आचषण मन्द पड़ जाता है। धानका पुआल खिलानेसे ऋणात्मक समतोलके कुछ अंशका समाधान इसी आधार पर हो सकता है। इस खोजसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि, क्षारके उपचारसे धानके पुआलके अवांछित अत्यधिक पोटाशका अधिकांश, करीब करीब दो तिहाई, दूर हो जाता है।" (६५२)

**८२४. पुआलके ऑक्सलेटका असर :** "धानके पुआलकी दूसरी विचित्रता उसमें ऑक्सलेटका अधिक होना है। इस प्रयोगशालामें इस बातका सबूत जमा किया गया है कि, इस ऑक्सलेटका अधिकांश घुलने लायक पोटाशियम ऑक्सलेटके रूपमें है। पर कुछ रहस्यपूर्ण मात्रा नहीं घुलने लायक कैलशियम ऑक्सलेटके रूपमें है। ...., ऑक्सलेटके नहीं घुलने लायक इसी अंशके कारण पशु खाये हुये कैलशियमका बड़ा अंश पचा नहीं सकते।"

इस क्षार उपचारसे धानके पुआलकी बुराईका पहलेकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट हाल मालूम हुआ है। (६५२)

**८२५. क्षारके उपचारमें आर्थिक लाभ नहीं :** यह दुखकी बात है कि यद्यपि युद्धकालीन इंगलैन्डमें क्षार उपचारित पुआल मामूली चारा हो गया है, पर भारतमें उसको संभावना नहीं है। ८० रत्तल (प्राय: एक मन) पुआलके उपचारके लिये यदि औसत ५ रत्तल भी कॉस्टिक सोडा जरूरी हो तो भी खर्च बहुत जादे पड़ जायगा। यदि कॉस्टिक सोडाका घोल धोबी सोडा (सोडा एश--soda ash) या सज्जी मिट्टीमें चूना मिलाकर बनाया जाय तो भी खर्च बहुत जादे और सामर्थ्य के बाहर हो जायगा। अभी तो प्रयोगने यही तय किया कि, धानका पुआल सुधारनेके लिये क्या जरूरी है। जबतक कोई सस्ती चीज नहीं मिलती, पुआलमें पोटाशकी अधिकता व्यर्थ करनेके लिये चारेमें अतिरिक्त नमकसे काम लेना होगा। इसके लिये सरकार पशुपालकोंके लिये नमक नाममात्रकी कीमत पर दे। "उन्नतिकी जननी" गायके स्वास्थ्य की हानि कर कर न बसूले।

**८२६. धानके इलाकोंकी समस्या :** बंगाल और भारतके हीन ढोरवाले सभी धानके इलाके के ढोरोंकी रुद्ध वृद्धिका कारण कुछ झलकाया गया है। अब यह उन स्थानोंके लोगोंका काम है कि मुख्य चारेकी बुराइयों या त्रुटियोंका सुधार करें। हड्डीके चूर्ण और नमककी बड़ी मात्राको खूब लोकप्रिय बनाना चाहिये। हरी घास खिलाने और धानके खेतमें फलियोंकी फसल पैदा करने पर जोर देना चाहिये। धान काटनेके कुछ पहले जब जमीन भीगी ही रहती है तब फलियोंके (दलहनके) बीज छींट फसल उगानी चाहिये। फलियोंकी फसल हरे चारेके रूपमें खिलायी जा सकती है या फसल काटकर दलहन और उसका पुआल तथा भूसा सालभर तक गायको खिलाना चाहिये। इसके साथ हरी घास और उचित मात्रामें नमक तथा हड्डीके चूर्णसे भीगे इलाकेमें ढोरके चारेकी समस्या अद्भुत रूपसे सुलझ जायगी, और इससे वहाँकी गाय भारतकी अच्छी गायोंके समान हो जायगी। धानका पुआल अकेला या मुख्य चारा हरगिज न रहे। धानके इलाकेमें ढोरको सालभर खिलानेके लिये हरी घास और फलियोंके पुआलको महत्वका स्थान मिलना चाहिये। (६५५, ७६४)

**८२७. चावलके गुँड़ेका गुण कम है :** इस बारेमें धान पुआलके इलाकेमें ढोरको खिलानेमें एक स्वाभाविक असुविधा और है। उसेभी जान लेना

चाहिये। केवल धानके पुआलके कारण ही ढोर नहीं छीजे हैं। चावलके गुँड़ेसे भी बहुत दुष्पोषण होता है। अगर यह अच्छी पुष्टई होती तो इससे पुष्टिके लिये पशुको कुछ मिलता। पर असल बात यह है कि, चावलका गुँड़ा अधिक कामकी चीज नहीं है, यह बंगालके प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है। इसमें कुछ तेल होता है, पर प्रोटीन और कैलशियम कम होते हैं। इसका फ़ास्फोरस घुलने लायक नहीं है, (१०३) और इसमें मैगनीशियमकी मात्रा अधिक और हानिकर है।

**८२८. गेहूँके इलाकोंमें गेहूँके चोकरसे मदत मिलती है:** चावलके गुँड़ेकी घटिया किस्मके मुकाबले गेहूँका चोकर फायदेकी चीज है। चावलके गुँड़ेसे गेहूँका चोकर बहुत श्रेष्ठ है। इसलिये गेहूँके इलाकेमें यद्यपि गेहूँका पुआल मुख्य चारा नहीं है, क्योंकि, वहां दूसरे चारे भी होते हैं, फिर भी वहांके पशुओंको गेहूँका चोकर जो बहुत अच्छी पुष्टई है, मिल जाता है। किन्तु धानके इलाकेमें इसका उलटा होता है।

भीगे या धानके इलाकेके ढोरको छिजानेके लिये धानके पुआलके साथ उसका गुँड़ा भी है। क्योंकि वहाँ मदत करनेवाली दूसरी चीजोंका अभाव है।

**८२९. गेहूँका पुआल:** खाद्योंकी फसलमें धानके बाद गेहूँका स्थान है। धानके ६९५ लाख एकड़के मुकाबले इसकी खेती २६२ लाख एकड़में होती है। सभी खाद्योंकी फसल कुल १,८६० लाख एकड़में होती है। गेहूँकी खेतीका विस्तार नीचे लिखे अनुसार है:—

## आँकड़ा—७९

### गेहूँकी खेतीका क्षेत्रफल

| प्रान्त | लाख एकड़ | प्रान्त | लाख एकड़ |
|---|---|---|---|
| पंजाब .... | ९९ | सिन्ध .... | ११ |
| युक्तप्रान्त .... | ७९ | बिहार .... | ११ |
| मध्यप्रान्त, बराड़ .... | ३३ | सीमाप्रान्त .... | १० |
| बम्बई .... | १८ | बंगाल .... | १ |

गेहूँका पुआल बहुत कुछ धानकी ही तरह है, फिरभी वह उतना बुरा नहीं है। इसके बारेमें सबसे महत्वकी बात यह है कि पशु इसी पर निर्भर नहीं करते। उनके लिये यह न अकेला, न मुख्य चारा है। गेहूँकी कुल उपज दो तिहाईसे जादे युक्तप्रान्त और पंजाबमें होती है। इन दोनों प्रान्तोंमें बहुत जादे जमीनमें चारेकी खेती होती है। सारे भारतकी १०० लाख एकड़ चारेकी खेतीमें ५० लाख सिर्फ पंजाबमें ही है, जबकि वहाँ कुल खेती ३१० लाख एकड़में होती है। अर्थात् प्रान्त की कुल खेतीका प्रायः $\frac{1}{6}$ चारेकी खेती होती है।

## आँकड़ा—८०

८३०. खाद्य और चारेको खेतीका क्षेत्रफल और कुल खेतीकी जमीन (लाख एकड़) :

| | जितनी जमीनमें खाद्योंकी खेती होती है | जितनीमें चारा होता है | कुल खेतीकी जमीन | कुल खेती और चारेका प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| बंगाल | २४० | १ | २९७ | ०·४ |
| बिहार | १९७ | .... | २३८ | ०·० |
| बम्बई | २०२ | २४ | २९६ | ८·३ |
| मध्यप्रान्त | १९९ | ५ | २७२ | १·९ |
| मदरास | २५० | ४ | ३६९ | १·१ |
| सीमाप्रान्त | २१ | १ | २५ | ४·० |
| उड़ीसा | ६१ | .... | ६९ | ०·० |
| पंजाब | २१४ | ५० | ३१५ | १६·० |
| सिन्ध | ४२ | २ | ५७ | ३·५ |
| युक्तप्रान्त | ३८० | १५ | ४४७ | ३·४ |

चारा उपजानेमें पंजाब बहुत आगे है। उसके बाद उससे बहुत पीछे युक्तप्रान्त है। पर युक्तप्रान्तकी अपेक्षा पंजाबमें गेहूँका महत्व जादे है। पंजाबमें अन्नकी कुल खेतीकी २१४ लाख एकड़ जमीनमें ९९ लाख एकड़में गेहूँकी खेती होती है। यह सारे पंजाबकी अन्नकी खेतीका प्रायः ४६ % है। युक्तप्रान्तमें गेहूँकी खेती ३८० लाख

एकड़ अन्नकी खेतीके मुकाबले ७९ लाख एकड़में होती है। यह केवल २०% होता है। इसलिये धानके पुआलके मुकाबले गेहूँके पुआलका चारा अपने आप पीछे पड़ जाता है।

**८३१. गेहूँका पुआल घटिया चारा है :** १९४२ में इज्जतनगर इंस्टिट्यूट में सेन, राय और तालपत्रने गेहूँ और जईके पुआल पर धान ही की तरह क्षारके उपचारका प्रयोग किया था। उसका परिणाम भी उसी तरह सन्तोषप्रद हुआ। धानकी तरह गेहूँके पुआलमें भी पचनीय प्रोटीन कम है। इसमें कैलशियम भी कम है। पर फॉस्फोरस धानके पुआलसे इसमें कुछ अच्छा है और पोटाश धानके पुआलसे कम है। (देखो आँकड़ा—५९, पृ० ४९४)

यदि गेहूँके दो मुख्य इलाके पंजाब और युक्तप्रान्तकी गायोंका मुख्य चारा केवल गेहूँका पुआल ही होता और गेहूँके चोकर जैसा उत्कृष्ट पोषक पदार्थ नहीं दिया जाता तो वहाँ जैसी सुन्दर नस्लें आज हम देखते हैं वैसी शायद नहीं देख सकते।

**८३२. ज्वार (छोलम—मदरास) का पुआल : ज्वारका चारा :** ज्वार बहुत महत्वके चारोंमें एक है और बम्बई, मदरास, मध्यप्रान्त और युक्तप्रान्तमें काममें लाया जाता है। ज्वारकी खेती कितने एकड़में होती है, यह नीचे दिया जाता है :—

## आँकड़ा—८१

### ज्वारकी खेतीका क्षेत्रफल

| | | |
|---|---|---|
| बम्बई | ... | ८० लाख एकड़ |
| मध्यप्रान्त | ... | ४२ ,, |
| मदरास | ... | ४६ ,, |
| पंजाब | ... | ८ ,, |
| सिन्ध | ... | ४ ,, |
| युक्तप्रान्त | ... | ३८ ,, |

ज्वार अन्न और चारा दोनों कामके लिये पैदा किया जाता है। चारेके लिये यह हरा ही काटा जाता है। दाना हो जानेपर उसे झाड़कर डंठल चारेके

काममें आता है। इसका साइलेज बहुत अच्छा हो सकता है। सन् १९३२ के बगलूर प्रयोगसे सिद्ध होता है कि, हरा और पका दोनों हालतमें इसका सफल साइलेज हो सकता है।

ज्वार खरीफ फसल है। सींचकर इसे फरवरीसे जुलाई तक बो सकते हैं और जुलाईसे सितम्बर तक बिना सिंचाईके सूखी फसलकी तरह बोते हैं। इसके बाद उसी जमीनमें कोई दूसरी फसल बोई जा सकती है, पर सूर्यमूखी जैसी शोषक फसल नहीं हो सकती। जमीन ३—४ इंच गहरी अच्छी तरह जोतनी चाहिये। चारेके लिये प्रति एकड़ ३५ से ४० रत्तल बीज बोना चाहिये। मौसमके अनुसार ८ से १५ दिनोंके भीतर इसे सींचनेकी जरूरत है। यदि मौसम बहुत सूखा हो और पौधेकी बाढ़ क्षीण न हो तो फूलने के ठीक पहले उसे खिला सकते हैं। पर अच्छा यह है कि जब दाने दुधिया हो जायँ तब खिलाया जाय। औसत उपज २०० से ४०० मन हरा और ५० से १०० मन सूखा चारा हो सकना है। १० से १५ गाड़ी गोबर की खाद देनी चाहिये। यह सबसे सस्ती चारेकी फसलोंमें एक है। यदि इसे कुट्टी करके खिलाया जाय तो पशु चावसे (स्वादसे) खाते हैं। बोनेके समय फलियोंका बीज मिलाकर बोने की भी चाल है। सुन्धिया, उतावली, निलवा ये कुछ अच्छे और आशु ( जल्दी होने वाले ) प्रकारके चारे हैं। इसका साइलेज अच्छा होता है।

ज्वार उत्तर भारतमें सींचे और बिना सींचे बहुत बोयी जाती है। मई से जून तक इसे बोकर तीन बार काट सकते हैं। इसका चारा अच्छा होता है। हरा चारा, साइलेज या कड़बो (सूखा) हर तरह समान रूपमें अच्छा है। पंजाबमें तैयारी की जुताई के बिना रबीके बाद बोयी जा सकती है। ज्वार की कड़बी बहुत बिगाड़के बिना वर्षोंतक पुंजमें रखी जा सकती है। मदरासकी ज्वार विशेष प्रकार की है तथा पंजाब और युक्तप्रान्त की ज्वार से श्रेष्ठ है। यह जादे पैदा होती है और नभम्बर के अत तक हरी रहती है। इसकी चारेकी फसल मामूली तौर पर ३०० मन प्रति एकड़ होती है। पंजाबमें इसे सस्ता पानीका सुख है। युक्तप्रान्तमें यह मशहूरकी फसल है। वहाँ खरीफ जितनी जमीनमें होती है, उसके १० सैकड़ामें ज्वार होती है। युक्तप्रान्तमें ज्वारके मुख्य स्थान झाँसी, इलाहाबाद और आगरा डिविजन हैं।

कानपुरमें इसपर विस्तृत गवेषणा हुई है। वहाँ कई प्रकारके ज्वारकी खेती की गयी है। और कुछ प्रकार अलग छाँटे गये हैं।

**८३३. ज्वार और धानके पुआलकी पचनीयता :** खनिजों और पचनीयताके लिये ज्वार और धानके पुआलकी जाँच की गयी है। सन् १९३४ में श्री विश्वनाथ अय्यर (बंगलूर) ने नीचे लिखे परिणाम निकाले हैं :—

# आँकड़ा—८२

## ज्वार और धानके पुआलका औसत विश्लेषण

| | कैलशियम | फॉसफोरस | नाइट्रोजन |
|---|---|---|---|
| ज्वारकी डंठल | ० ३८२ | ०·२२७ | ०·५४३ |
| धानका पुआल | ०·५६४ | ०·१६९ | ०·४३० |

उसी लेखकके नीचे लिखे आँकड़ेसे देख सकते हैं कि अकेला खिलानेपर, ज्वार धानके पुआलसे अच्छा काम करता है :—

# आँकड़ा—८३

## ज्वार और धानके पुआलकी पचनीयता

| | | कैलशियम | फॉसफोरस |
|---|---|---|---|
| ज्वारकी डंठल | खाया | १६·० | १७·७ |
| | बाकी | + २·६१ | + २·५७ |
| धानका पुआल | खाया | २७·९ | ११·१ |
| | बाकी | − २·४२ | + ०·०९ |

यह उल्लेखनीय बात है कि ज्वारसे कैलशियम और फॉसफोरस दोनोंका धनात्मक बाकी (balance) मिला। १६ ग्राम कैलशियम खानेपर २·६१ धनात्मक बाकी हुआ और फॉस्फोरस १७·७ ग्राम खानेपर धनात्मक बाकी २·५७

ग्राम हुआ। धानके पुआलमें इसका उलटा है। वहाँ २७·९ ग्राम कैलशियम खानेपर ऋणात्मक बाकी निकला और फॉस्फोरस ११·१ ग्राम खानेपर बाकी प्रायः शून्य रहा क्योंकि वह ०·०९ ग्राम था।

पर ज्वारके साथ कुछ हरी घास और खनिजका पूरक चारा देनेपर कैलशियमका बाकी धनात्मक हुआ है। यहाँ धानके पुआलका परिणाम बंगालके प्रयोगके इतना बुरा नहीं रहा। हरा चारा और कैलशियम तथा फॉस्फेट की न्यूनता पूर्ति करने पर धानके पुआलने भी धनात्मक बाकी दिखायी। बंगालमें भी यही हुआ होता यदि धानके पुआलके साथ हरी घास और हड्डीका चूर्ण भी दिया जाता। फिरभी सन् १९३४ के बंगलूर प्रयोगमें धानके पुआलसे ज्वार कहीं श्रेष्ठ रही है। (६५२)

**८३४. दूसरे देशोंमें ज्वार :** अमेरिकामें ज्वारको सारघम (sorghum) या काफिर (kafir) कहते हैं। अमेरिकाकी ज्वारके दो प्रकार हैं। मीठी ज्वारके डठलमें मीठा रस भरा रहता है। दानेवाली ज्वारका रस खट्टा या थोड़ा मीठा होता है। इसके डंठलमें अधिक गूदा होता है। दानेदार ज्वारका दानाभी ढोरको खिलाया जाता है और डंठल भी। पच्छिमी अमेरिकाके मध्य और दक्षिणी भागमें इसका बहुत महत्व है। मौरीसन लिखते हैं :

"... इस बड़े भागमें पशुपालनकी सफलता का आधार वास्तवमें ज्वार है। यह मक्केकी अपेक्षा सूखा जादे सह सकती है। इसलिये इस प्रदेशके उस भागमें जहाँ वर्षा बहुत कम होती है, इसने मक्केका स्थान ले लिया है।"

"ज्वार भारत, चीन, मंचुकुओ और अफ्रिकामें महत्वकी वस्तु है। इन देशोंमें इसके दानेको गेहूँ या राई (rye—जौ-गेहूँकी तरहकी एक चीज) की जगह आदमी बहुत खाते हैं। अफ्रिकावालोंके मुख्य आहारोंमें ज्वार भी एक है। वहाँ इसकी खेती सूखे मैदानों, सहाराके मरुद्यान, ऊँचे पठारों, पहाड़की घाटियों और गरम जंगलोंमें होती है। इसके आकार प्रकार जैसी हालतोंमें यह उपजती है उसके अनुसार विभिन्न होते हैं। पौधोंकी ऊँचाई ३ से २० फूट होती है। इसकी बालें या बालियाँ कई सूरतकी होती हैं जो ५ से २५ इंच तक लम्बी होती हैं। यद्यपि ज्वार मूलरूपसे गरम देशकी चीज है, पर अब यह मुख्यरूपसे सम-शीतोष्ण देशोंमें उपजायी जाती है।"—(मौरिसन, "फीड्स एन्ड फीडिंग" १९४२, पृ० २८६-'८७)

ज्वारके चारेकी पैदावार अच्छी परिस्थितिमें ४०० मन प्रति एकड़ है। प्रति एकड़ ३० से ३६ सेर बीजकी जरूरत होती है। (६५२)

८३५. **बाजरा या कम्बु (मदरास) का पुआल (डंठल)**: १२५ लाख एकड़में बाजरेकी खेती नीचे लिखे अनुसार होती है :—

## आँकड़ा—८४

### बाजरेकी खेतीका क्षेत्रफल

| | | |
|---|---|---|
| बम्बई | | ४० लाख एकड़ |
| पंजाब | ... | २६ ,, |
| मदरास | ... | २६ ,, |
| युक्तप्रान्त | ... | २१ ,, |
| सिन्ध | ... | ८ ,, |
| मध्यप्रान्त, बराड़ | ... | १ ,, |
| सीमाप्रान्त | ... | १ ,, |
| अन्य | ... | २ ,, |
| | कुल— | १२५ लाख एकड़ |

यह कड़ी फसल साधारण तौरपर कमजोर जमीनमें बोयी जाती है। इसके दाने मनुष्यका आहार होते हैं। डंठल चारेके काम आता, बाजरेका सूखा डंठल या कड़बी ढोरको खिलाया जाता है। यह अकाल या कमी के समयका आधार है। इसका हरा चाराभी हो सकता है। इसे कई बार काट सकते हैं। हरा चारा बोनेके बाद ६० से ८० दिनोंमें तैयार हो सकता है।—(रीड, एग्रिकलचर एन्ड लाइभ स्टॉक इन इंडिया, जनवरी, १९३६)

८३६. **मड़ुए (रागी) का पुआल (घास)**: सारे भारतमें नीचे लिखे अनुसार ३५ लाख एकड़में मड़ुआ होता है :—

## आँकड़ा—८५

### मड़ुएकी खेतीका क्षेत्रफल

| | | |
|---|---|---|
| मद्रास | ... | १६ लाख एकड़ |
| बम्बई | ... | ६ ,, |
| बिहार | ... | ६ ,, |
| उड़ीसा | ... | ३ ,, |
| युक्तप्रान्त | ... | २ ,, |
| मध्यप्रान्त | ... | १ ,, |
| अन्य | ... | १ ,, |
| | | ३५ लाख एकड़ |

रागी या मड़ुआका व्यवहार मद्रासमें सबसे जादे है। दूसरे प्रान्तोंमें भी इसकी फसल होती है। इसका अन्न मनुष्यके खानेके उपयोगमें आता है और इसका पुआल या घास पशु खाते हैं।

डा० वार्थ (Warth) ने बंगलूरमें १९३२में मड़ूएके खनिजोंके हजम होनेका प्रयोग किया था। उन्होंने इसके पुआलमें नीचे लिखी चीजें पायीं :—

## आँकड़ा—८६

### मड़ुएका विश्लेषण

| | | |
|---|---|---|
| चूना ($CaO$) | ... | १·१३६ |
| फॉसफोरस ($P_2O_5$) | ... | ०·१९३ |
| नाइट्रोजन ($N$) | ... | ०·५११ |

**८३७. मड़ुएके पुआलकी पचनीयताकी जाँच :** पचनीयताके प्रयोग तीन अवस्थाओंमें किये गये :

(१) अकेले पुआलका चारा,

(२) पुआलके साथ कैलशियम फॉस्फेट,

(३) पुआलके साथ कैलशियम फॉस्फेट और हरा चारा।

पाया गया कि चारेमें चूना पचानेकी अच्छी शक्ति है। फॉस्फोरिक तेजाब प्रायः यथेष्ट है। कैलशियम फॉस्फेट मिलानेसे चूना जादे पचा। इसका कारण शायद फॉस्फेटका मिलना था। डा० वार्थने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि, फॉस्फोरिक तेजाब चूना पचानेमें जोर लगाता है।

धानके पुआल और घटिया सूखी घाससे मड़ुआ कहीं अच्छा चारा है।

बंगालमें कृषि विभागकी जाँचमें पाया गया कि प्रति एकड़ मड़ुएका सूखा चारा २५० मन होता है। प्रति एकड़ १३ से १५ सेर बीज चाहिये।

"बुकाननकी यात्रा" (Buchanan's Journey, 1807) के खंड १, पृष्ट १०२में मड़ुए (रागी)का अच्छा वर्णन है। उस समय वह श्रीरंगपत्तनमें थे। उस विशिष्ट यात्रीने मड़ुएकी खेतीका बखान करनेके बाद भोजनमें इसके उपयोगका वर्णन किया है। अंतमें यह लिखा है कि धानके पुआलसे इसकी घास श्रेष्ट है।

**८३८. मड़ुएके पुआलके बारेमें बुकानन :** "यहाँ हर तरहके ढोरके लिये मड़ुएका पुआल धानसे श्रेष्ठ माना जाता है। मेरे मदरासी बैलवान इस बातसे सहमत नहीं हैं। पर मैं उनकी बात गलत मानता हूँ। क्योंकि यहाँके लोगोंको दोनों तरहके पुआलका अधिक अनुभव है। पर मदरासके लोग केवल धानका पुआल जानते हैं। कमसे कम उन्होंने मड़ुएके पुआलका व्यवहार सिर्फ हमारी छावनियोंमें ही देखा, जहाँ अनेक कारणोंसे बहुत पशु मरे। और कहीं इसका व्यवहार उन्होंने देखा ही नहीं।"

इसमें सन्देह नहीं कि श्रीरंगपत्तनके लोग सही थे, और डा० बुकाननके बैलवान भूल कर रहे थे। क्योंकि पोषणके आधुनिक प्रयोगसे यह सिद्ध हो चुका है कि, धानसे मड़ुएका पुआल कहीं श्रेष्ट है।

**८३९. मक्का या मकईका पुआल :** सारे भारतमें नीचे लिखे हिसाबसे कुल ५६ लाख एकड़ मकईकी खेती होती है।

# आँकड़ा—८७

## मकईकी खेतीका क्षेत्रफल

| | | | |
|---|---|---|---|
| युक्तप्रान्त | .... | १९ | लाख एकड़ |
| बिहार | .... | १५ | ,, |
| पंजाब | .... | ११ | ,, |
| सीमाप्रान्त | .... | ५ | ,, |
| बंबई | .... | २ | ,, |
| मध्यप्रान्त, बराड़ | .... | १ | ,, |
| मदरास | .... | १ | ,, |
| अन्य | .... | २ | ,, |
| | कुल— | ५६ | लाख एकड़ |

यह बहुत पैदावारवाली खरीफ (भदई) फसल है। यह अच्छी चिकनी (मटियार) मिट्टीमें खूब होती है। हलकी और बलुआ जमीन इसके लिये अच्छी नहीं है। यह मईसे (जेठ) अगस्त (भादो) तक बोई जा सकती है और उपयुक्त जमीनमें अच्छे हरे चारेके लिये साल भर हो सकती है। यह ज्वारसे जल्दी होती है और इसका हरा चारा जादे रसदार होता है। यह साइलेजके लिये बहुत उपयुक्त है। इसकी जड़में पानी लगना यह सह नहीं सकती, पर अधिक वर्षा सह सकती है।

मकई प्रायः बारहों मास हो सकती है पर बहुत ठंढमें यह उतनी अच्छी नहीं होती। यदि प्रति एकड़ १५ से २० गाड़ी गोबरकी खाद दी जाय तो किसी फसलके बादभी यह हो सकती है। जब दुधिया दाने पड़ने लगें, तब यह खिलायी जा सकती है। बाल (भुट्टा—cobs) तोड़ लेनेके बाद की डाँट (stover) अच्छा चारा नहीं रहती। प्रति एकड़ २०० से ४०० मन तक हरा चारा हो सकता है।

# आँकड़ा—८८

**८४०. मकईकी डाँटका विश्लेषण :**

| | | | |
|---|---|---|---|
| पचनीय प्रोटीन | ... | ४·७ | सैकड़ा |
| एस० ई० | ... | ५२·३ | ,, |
| कैलशियम ऑक्साइड | ... | ०·७३ | ,, |
| फॉसफॉरस | ... | ०·६३ | ,, |
| पोटाश | ... | १·६ | ,, |

यह चारेकी उत्कृष्ट फसल है। जब अन्नके लिये बोयी जाती है तब डाँट चारेके काम आती है। अमेरिकामें फसलके चारोंमें मकईका ऊँचा स्थान है।

"मकई (Zea Mays) अमेरिकामें शाही खेतीका पौधा है। जहाँ कहीं इसकी बाढ़के लिये अनुकूल स्थिति है वहाँ सूखे सामान और पचनीय पोषककी उत्पत्तिमें यह सभी चारेकी फसलोंसे आगे बढ़ जाती है। ....फलियोंके चारेकी रानी लूसन (alfalfa) से भी यह इस बारेमें बढ़ी चढ़ी है। ४—५ महीनेमें इसकी ऊँचाई ७ से १५ फीट तक हो जाती है। अनुकूल स्थितिमें इसके हरे चारेकी उपज प्रति एकड़ १० से १५ टन तक (२७० से ४०० मन) होती है, जिसमें ४,००० से ९,०००रत्तल तक सूखा सामान होता है।"

**८४१. अन्य देशोंमें मकईकी डाँट :** "परिस्थितिके अनुकूल हो जानेकी मकईमें बहुत बड़ी शक्ति है। अमेरिकाके दो तिहाई से अधिक क्षेत्रोंमें यह अन्न या चारेके लिये बोयी जाती है। "

"जहाँ कहीं आबहवा और धरती इसके लायक मिलती है, यह सभी अन्नोंसे आगे बढ़ जाती है। प्रति एकड़ इसके दानेकी उपजही जादे नहीं होती, इसका चारा भी खाद्यके महत्वकी दृष्टिसे पहले दर्जेका होता है। प्रति एकड़ अन्य छोटे अनाजोंके पुआलसे इसकी डाँट ढोरको खिलानेके लिये अधिक कीमती है ...."

"घना बोनेसे अनुकूल अवस्थामें हरा चारा बहुत जादे होता है, पर अन्न अपेक्षाकृत कम होता है। इस हरे चारेका पुष्टिकर सूखा चारा बनाया जा सकता

है और वह आहारगुणमें सूखी घासके समान होता है।"—(मौरीसन, फीड्स एन्ड फीडिंग, पृ० २७७)

चारेके लिये मकईकी खेतीका प्रयोग बंगालमें गौसिपने किया था :

"सन् १९२७-२८ में कई प्रकारकी मकई इकट्ठी की गयी। तुलनात्मक जाँचमें कलिम्पोंगकी मकईके कुछ प्रकार और संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके दक्षिणी राज्योंकी साइलेजकी मकईके परिणाम आशाप्रद रहे। आगेकी और जाँचमें कलिम्पोंगके प्रकारोंसे अमेरिकन प्रकारकी उपज जादे रही है।"

सन् १९३८ के बंगाल बुलेटिन नं० ७ में मकईकी उपज ४०० मन प्रति एकड़ दी हुई है। यह ज्वारकी उपजके बराबर है। गिलिंग (Gilling) कहता है कि इसका खेत निकाना (निराना) पड़ता है, पर (पंजाबमें) मकईसे ज्वारको प्रधानता देता है।

**८४२. जईका पुआल :** जई कितनी जमीनमें बोयी जाती है यह अलग नहीं दिखाया गया है। पंजाब और उत्तर भारतके कुछ भागोंमें यह चारेके लिये बोया जाता है। जईकी फसल बीज पूरा पकनेके पहले ही काट लेते हैं। इसलिये चाहे अन्नहीके लिये उपजाया जाय, इसका पुआल दूसरे अन्नोंके पुआलसे अच्छा होता है। रीडने जईकी सुन्दर शब्दोंमें तारीफ की है। यह फसल सिंचाईसे होने वाली है और चारेके लिये बहुत हो सकती है। पर पंजाबमें चारेके लिये सिंचाईका खर्च (नहरकी) बहुत महँगा पड़ता है।

जई प्रायः दुनियाँ भरमें सबसे महत्वके चारेकी फसल मानी जाती है। सभी श्रेणीके पशुधनके लिये इसका दाना प्रथम श्रेणीकी पुष्टई है। यह बहुत कीमती बहु-गुणसम्पन्न चारेकी फसल है। ग्रेट ब्रिटेनमें प्रति बर्ष २० लाख टन जई होती है, और पशुओंको खिलानेके लिये बाहर से भी काफी मँगायी जाती है।

संयुक्तराष्ट्र अमेरिकामें जई १,८५७ लाख टन प्रति बर्ष होती है, और प्रायः सभी ढोरको वहीं खिला दी जाती है। केवल ३ सैकड़ा जई मनुष्य खाते हैं।

दक्षिण अफ्रिकामें भी जई बहुत होती है। वहाँ यह सभी पशुओंका मुख्य चारा है। उत्तर भारतके चारेमें नीचे लिखी मात्राओंमें प्रोटीन मिला :—

## आँकड़ा—८९

### जईमें प्रोटीन

| | | | |
|---|---|---|---|
| हरी जई | ... | १२·०७ | सैकड़ा |
| सूखी जई | ... | ८·०१ | ,, |
| भूसा | ... | ४·९४ | ,, |
| बीज | ... | १०·९९ | ,, |

रीडके मतानुसार पंजाबमें जईकी खेती नहीं फैलनेका कारण सिंचाईकी कड़ी दर है। इज्जतनगरके पुआल पर क्षारके उपचारवाले प्रयोगमें जईका पुआल भी रखा गया था। (८१८) उपचारके बाद इसमें गेहूँ या धानके पुआल से कुल कार्बोहाइड्रेट अधिक बचा। सूखी जईमें नीचे लिखे पचनीय खनिज हैं।

## आँकड़ा—९०

### जईमें पचनीय पोषक

| पचनीय कच्चा प्रोटीन | कुल पचनीय कार्बोहाइड्रेट | पोषक अनुपात | एस० ई० | चूना | फॉसफोरस | पोटाश |
|---|---|---|---|---|---|---|
| २·४ | ६४·० | २५·७ | ४६·९ | ·४६ | ·३८ | २·४४ |

८४३. **फलियोंका सूखा पुआल :** भारतमें ढोरको जादा भरोसा अन्नके पुआलका ही रहता है, यह दुर्भाग्यकी बात है। इसका सुधार जादे से जादा फलियोंका पुआल खिलानेसे हो सकता है। जिन देशोंमें अन्न झारा (अन्न रहित) पुआल ढोरोंको नहीं खिलाते, जहाँ चारेकी खेती होती है और पशुओंको ऐसा चारा खूब खिलाते हैं, वहाँ भी साधारण चारेके अलावे या उसके बदले फलियोंके पुआल पर बहुत जोर दिया जाता है। जिस भारतमें निस्सत्व पुआल मुख्य चारा है, वहाँ फलियोंका चारा कितना जरूरी है!

गाँवके ढोर चाहे किसी खास नस्लके हों, अथवा संकर नस्लके, उन्हें फलियोंका चारा देनेसे उनकी हीन दशा सुधर सकती है।

पशुओंको फलियाँ खेतमें ही खिलायी जा सकती हैं। इसके लिये उन्हें खेतके एक किनारेसे चराते हुए आगे जहाँ तक चराना है, ले जाना चाहिये। उन्हें काटकर भी तुरत हरे चारेके रूपमें खिला सकते हैं या साइलेज कर सकते हैं अथवा उन्हें काट, सुखाकर खूँटे पर खिलानेके लिये रख सकते हैं और दूसरे चारेमें भी मिला कर खिला सकते हैं।

८४४. **फलियोंके प्रोटीन :** सभी साधारण रूखे चारोंमें सूखा या हरा फलियोंका चारा सबसे अधिक प्रोटीन-प्रचुर है। फलियोंकी पत्तियोंमें डाँट से अधिक प्रोटीन है। पत्तियोंके पोषक-द्रव्य डाँटके पोषक-द्रव्योंसे अधिक सुपच हैं। सुखाने या ढोनेमें जब बहुत पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं तो उनसे बहुत दामी अंश नष्ट हो जाते हैं और उनकी ढेरी या तौलसे जितना पता चलता है उससे कहीं जादे नुकसान हो जाता है।

अन्नके प्रोटीनसे फलियोंका प्रोटीन अधिक पुष्ट है। दूसरी चीजोंके प्रोटीनकी कमी इससे पूरी होती है। यह माना जाता है कि उचित मात्रामें फलियाँ खिलानेसे प्रोटीनके प्रकारकी कमी से होनेवाली हानि ढोरको नहीं होती। फलियोंकी यह विशेषता है कि पागुरवाले पशु उनका सबसे अच्छा उपयोग कर सकते हैं। उनका पागुरवाले पशुओंके लिये एक विशेष जीव-शास्त्रीय मूल्य है। घोड़े या सूअर जैसे बिना पागुरवालोंके लिये यह मूल्य नहीं है। (६०७)

८४५. **फलियाँ और कैलशियम-फॉस्फोरस :** फलियोंके चारेमें कैलशियम सबसे जादे है। यथेष्ट मात्रामें यह खिलानेसे कैलशियमकी कमी नहीं होती। विभिन्न फलियोंके चारेमें कुल कितना पचनीय कैलशियम है यह पैरा ६२७ के आँकडेसे जाना जा सकता है। फलियोंमें एक ही त्रुटि है कि उनमें फॉस्फोरस पूरा नहीं है। यदि फलियोंमें जितना चाहिये उतना फॉस्फोरस नहीं है तो उसकी पूर्तिका साधन खोजना चाहिये। वह चीज हड्डीका चूर्ण है, क्योंकि उसमें कैलशियम और फॉस्फोरस सबसे जादे पचनीय रूपमें हैं।

८४६. **फलियाँ और धरतीकी उर्वरता :** यह प्रसिद्ध है कि, फलियोंकी जड़ोंमें गाठें होती हैं, जिनमें नाइट्रोजन स्थिर करनेवाला बैक्टीरिया या जीवाणु रहते हैं (६०७)। ये जीवाणु हवासे नाइट्रोजन लेकर पौधेके लिये प्रोटीन तैयार करते हैं। जो खूँटी या जड़ जमीनमें रह जाती है उससे जमीन भी मजबूत या उपजाऊ होती है। दूसरी फसलोंके बाद फलियाँ लगानेका यही

फायदा है। धरती की खासतौरपर मजबूत बनानेके लिये फलियोंकी फसल उपजाकर उसे हरा ही जोतकर मिट्टीमें मिला देना चाहिये। इससे जमीनको फलियोंकी फसल उपजालेनेकी अपेक्षा कहीं जादे नाइट्रोजनकी खाद मिल जायगी। यदि अन्नके बाद फलियाँ और फलियोंके बाद अन्न फेरबदलकर बोयी जायें तो बिना अधिक खाद दिये भी धरतीका उपजाऊपन बना रहता है। फलियोंकी जड़ें धरतीको नाइट्रोजन केवल देती ही नहीं बल्कि वह धरतीके नाइट्रोजनको अधिक सतेज करती हैं और इसलिये वह नाइट्रोजन अधिक लाभकारी हो जाता है। इससे अधिक फायदा लगातार फलियाँ लगानेकी अपेक्षा दूसरी फसलोंसे फेर बदल कर लगानेमें है। उसी जमीनमें साल साल लगातार फलियाँ लगाना फायदे का नहीं है। इसलिये हर साल फलियों और दूसरे दूसरे अन्नोंको फेरबदलकर लगाना अधिक अच्छा है।

८४७. **नाइट्रोजन स्थिर करनेके लिये जीवाणु :** पर फलियोंसे जमीनका उपजाऊपन बढ़ानेके लिये कुछ शर्त्तें हैं। यदि नाइट्रोजन स्थिर करनेवाले जीवाणु धरतीमें रहें तभी वह फलियोंके पौधोंकी जड़ोंमें रह सकते और धरतीको मजबूत कर सकते हैं। नहीं तो फलियोंकी फसल दूसरी फसलकी तरह धरतीका नाइट्रोजन खा जायगी। उसे कुछ दे नहीं सकेगी। यह भी हो सकता है कि, उस फलीके लिये आवश्यक खास जीवाणु उस धरतीमें इतना कम हो या हो ही नहीं। अगर ऐसा हो तो पौधेकी वृद्धि अच्छी नहीं हो सकती, और उससे फसल भी पैदा नहीं हो सकती।

फलियोंकी फसल की वृद्धिके लिये धरनीमें नाइट्रोजन स्थिर करनेवाले जीवाणुकी जरूरत है। यही नहीं, जीवाणु जिस जातिका चाहिये उसी जातिका भी हो। उनकी कई जातियाँ, कुछ तो बहुत फायदेवाली हैं और कुछ उतनी नहीं हैं। इसलिये पौधेकी जड़ोंमें जो चाहिये वही जीवाणु रहे जिससे उसकी (पौधेकी) सहज वृद्धि हो यह समस्या है। इसका उपाय "जीवाणु-सँचारण" (inoculation) है। बीजमें गाँठोंके जीवाणुका संचारण किया जा सकता है। अँकुरने पर इन बीजोंके जीवाणुओंकी संख्या बढ़ने लगती है। पौधे अच्छी तरह बढ़ते हैं और उनकी जड़ोंमें बहुत सी गाठें हो जाती हैं। एक बार इस तरह जमीनमें जीवाणुका संचारण करने पर वह पासके खेतोंमें भी फैल जाता है। वहाँ असंचारित बीज भी काफी बढ़ते हैं और उनकी जड़ोंमें संचारित बीज या धरतीके पौधोंके तरह ही गाठें होती हैं। भिन्न भिन्न फलियों या दलहनोंके भिन्न भिन्न जीवाणु होते हैं।

**८४८. जीवाणुका संचारित करना :** कनाडाके कृषि विभागका एक बुलेटिन मार्च १९४३ के इंडियन फार्मिंगमें छपा है। उसमें संचारणका विषय सरल रूपमें बताया गया है।

"संचारणका सिद्धान्त सरल है। इस सिद्धान्तके अनुसार धरतीमें उपयोगी जीवाणु मिलाते हैं जो छोटे पौधोंकी मुलायम जड़ोंमें घुसकर उनमें गाँठें (nodules) पैदा करते हैं। यहाँ जीवाणु पौधेके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहते हैं और हवासे नाइट्रोजन लेकर उपयोग करनेकी सामर्थ्य पौधेको देते हैं। ये उपयुक्त जीवाणु न हों तो पौधोंको यह मूल्यवान् तत्व सबका सब धरती ही से लेना पड़े। फसलको उपज, फसलके पुष्टिकारक गुण और जमीनकी शक्तिकी भी उन्नति इस जीवाणु संचारणसे होती है।

"जहाँ फलियाँ पहली बार उपजायी जाती हैं वहाँ प्रायः उपयुक्त जीवाणुका अभाव रहता है। वहाँ जीवाणु संचारणकी जोरदार सिफारिश की जाती है ··· यदि गाँठ रचयिता जीवाणु स्वभावसे ही धरतीमें हों तब भो संचारण लाभप्रद हो सकता है। अनुसन्धानसे ··· पता चला है कि, स्वाभाविक जीवाणु अति योग्य हों ही यह बात नहीं है। इसलिये अधिक नाइट्रोजन स्थिर करनेवाली अच्छी जातिके मिलानेसे फायदा हो सकता है।

"जहाँ कई सालोंसे फसल नहीं बोयी गयी हो, वहाँके लिये संचारणकी सिफारिश की जाती है। फलियोंके पौधोंके अभावमें धरतीके जीवाणु मरने लगते हैं। ··· किसी भो हालतमें तीन या चार वर्षके बाद फिरसे संचारण करना चाहिये। अनुसन्धान कार्यसे एक बातका और पता चला है कि किसी धरतीमें अच्छी तरह जमनेके लिये जीवाणुको एक मौसम (साल) लग सकता है। इसलिये संचारणका लाभ लूसन (अलफ़ालफ़ा) जैसी फसलमें दूसरे सालतक नहीं भी दिखायी पड़ सकता।

"संचारण फलियोंकी फसलकी सफलताका सिर्फ एक कारण है। यदि बीज घटिया हो या धरतीमें तेजाब हो अथवा खेतीका तरीका बुरा हो तो उसकी पूर्ति संचारण नहीं कर सकता। फलियोंके अच्छी तरह पनपनेमें इससे जरूर मदद मिलती है, और कुछ अनुकूल या प्रतिकूल हालतोंके तारतम्यसे सफलता या विफलता हो सकती है।

"बीजका उपचार या उसमें जीवाणुका संचार करना सरल और सस्ता है। विश्वासनीय उपचार सामग्री या जीवाणु संचारक पदार्थ अब कनाडामें काफी बिकते और बड़ी बड़ी बीजकी दूकानोंमें मिल सकते हैं।"....

हम भारतीय बहुत पिछड़े हुए हैं। अभीतक पंजाबमें बरसीमके उपचार (सचारण) का कार्य कुछ आगे बढ़ा है। (८५६)

८४९. **बरसीम—मिसरकी बरसीम :** भारतमें बरसीम सन् १८९४ में लायी गयी और पंजाबमें सन् १९०१ में। यह सींची जानेवाली फलियोंकी फसल है। अब यह पंजाबमें तमाम होती है। इसकी पैदावार बहुत जादे है। एकड़में करीब १,००० मन होती है। इसको थोड़े थोड़े दिनके बाद अनेक बार काट सकते हैं।

बरसीम सितम्बरसे नभम्बर तक बोयी जाती है और मई तक ६-७ बार इसे काट सकते हैं। गर्मीमें ढोरको हरा चारा मिलना कठिन है, उस समय यह काम देती है।

बार बार जोतकर और अच्छी तैयारकी हुई गोबरकी २०-२५ गाड़ी खाद देकर खेत अच्छी तरह तैयार किया जाता है। जिन खेतोंमें पहले बरसीम हो चुकी है उनकी ५ से १० गाड़ी मिट्टी नये खेतमें डालकर उसमें जीवाणुका संचारण करना चाहिये। प्रति एकड़ २५-३० सेर बीज मिट्टी मिलाकर तैयार क्यारियोंमें छींटना चाहिये। जैसा मौसिम हो उसके अनुसार प्रत्येक १० दिनोंपर फसलको सींचना चाहिये। डेढ़ फूट होनेपर फसल काटनी चाहिये। अच्छी तरह गर्मी पड़ने लगे तब तक कटाई जारी रखनी चाहिये। १,००० मन प्रति एकड़ तक पैदावार हुई है। भारतमें इसकी सूखी घास या साइलेज बनानेमें फायदा नहीं रहा है। जहाँ जाड़ा जादे दिनोंतक पड़ता है, केवल वहीं बीज निकाला जाना है। यह बड़ा पुष्ट चारा है। इससे दूध बढ़ता है।

८५०. **बरसीमके पोषक द्रव्य :** हरी बरसीममें १८·३८ सैकड़ा (सूखी घासके हिसाबसे) प्रोटीन होता है। सुखायी हुईमें १४·७० सैकड़ा तक होता है।

## आँकड़ा—६१

### बरसीमकी पचनीयता और खनिज

| पचनीय प्रोटीन | कुल पचनीय पोषक द्रव्य | पोषक अनुपात | स्टार्च तुल्यांक | कैलशियम CaO | फॉसफोरस $P_2O_5$ | पोटाश $K_2O$ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १०·२९ | ६५·७९ | ५·४ | ४७·३ | २·०७ | ०·६५ | ३·८९ |

बरसीमके सूखे पुआलमें १०·२९ सैकड़ा तक पचनीय प्रोटीन है और वह आधी पुष्टईके जैसा है। इसमें कैलशियम बहुत जादे २·०७ है। फॉस्फोरस भी कम नहीं है। वह ·६५ सैकड़ा है।

पहले ऐसा समझा जाता था कि पंजाबमें बरसीमका बीज ठीकसे पुष्ट नहीं हो सकता। इसलिये हर साल मिसर या सीमाप्रान्तकी तरफसे बीज लाना होता था। पर अब देखा गया है कि, पंजाबमें इसका बीज ठीक से पुष्ट होना है। अभीतक कठिनाई यह थी कि, कई बार पौधेको काटने से बीज ठीक तरह से पुष्ट नहीं होता था। इसलिये वह उगता नहीं था। अब पंजाबके व्यापारियों से बीज मिल जाता है।

अब तो बरसीम खूब सफल रही है। पर यह लायलपुरमें श्री रामसिंह सरकारियाके प्रयोगके बाद ही हो सका है। इसमें उन्होंने जीवाणु संचारणके उपचार चालू किये। इसकी रिपोर्ट "एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया", जनवरी १९३३ में छप चुकी है।

**८५१. बरसीममें जीवाणु संचारण हो सकता है और जरूरी है:** संचारित बीज ही बोना उचित है। संचारण द्रव्य (culture) लायलपुर पंजाबकी कृषि अनुसन्धान संस्था (Agriculture Research Institute) से मिल सकता है। खेतीके लिये बीज चुनकर लेना चाहिये और इंस्टिट्यूटके उपचार द्रव्यसे उसे विधिवत् संचारित करना चाहिये।

**८५२. बरसीमके बीजकी अंकुरित होनेकी शक्ति:** बरसीमके सभी बीज उगनेमें एकसे नहीं हैं। सबसे बढ़िया वह हैं जिनका रंग पीला है। उसके बाद लाल हैं। भूरे रंगवाले बीज सबमें घटिया हैं। जीवनी-शक्ति या अंकुरित होनेकी शक्ति पीलेमें प्रायः ९० सैकड़ा, लालमें ५० सैकड़ा और भूरेमें २५ सैकड़ा है। थोड़े पौधे बीजके लिये रखे जायँ, उन्हें चारेके लिये काटा नहीं जाय। क्योंकि बढ़नेकी उमरमें चारेके लिये काटनेसे बीज बिगड़ जाते हैं। बीज संचारित करके बरसीमकी खेती करनेसे पंजाबके ढोरकी बहुत भलाई हुई है। इसकी खेती और बढ़नेसे और भी भलाई होगी।

पंजाबमें 'सैंजी' चारेकी सबसे बढ़िया फसल मानी जाती थी। यह भी फलियोंकी फसल है। पर बरसीम अब उसकी जगह ले रही है, क्योंकि पैदावार उससे अधिक है। पंजाब कृषि विभागने इस बारेमें बहुत काम किया है।

पंजाब कृषि कालेजके श्री जे० सी० लुथराने बीज उत्पादन और उसके चुनावका बहुत काम किया है। यह विभाग कृषि सम्बन्धी जीवाणुओंके विकाश और पालनका भी काम सफलताके साथ कर रहा है।

८५३. **पूसामें बरसीम :** पूसामें बरसीम १९१७ में चालू किया गया। पूसा क्षेत्रमें नदीके किनारे इसकी खेती धीरे धीरे १३० एकड़में फैल गयी। श्री वाइन सायर (Wynne Sayer) ने पूसामें बरसीमके कामकी रिपोर्ट १९३६ में दी।—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, जुलाई, १९३६)। उन्होंने लिखा है कि, उस १३० एकड़में यह लगातार हो रही है। पूसा इस्टेटमें सभी पशुओंके पालनके लिये यह जाड़ेकी एक मुख्य फसल है।

हालमें पंजाबमें संचारित बीजसे जितनी पैदावार बढ़ी है, उससे उन दिनोंकी पैदावार बहुत कम थी। सन् १९३६ में पूसामें हर कटाईमें ९० मन पैदावार प्रति एकड़ हुई। चार कटाई हुई जिसका कुल ३६० मन हुआ। पूसाकी बरसीममें जईका सूखा पुआल मिलाना पड़ा, क्योंकि उसमें बहुत पानी होता था। फेर बदलसे बरसीमके खेतोंमें चरानेसे पूसाके ठट्ठके कुल दूधकी उत्पत्ति और साधारण स्वास्थ्यमें काफी उन्नति हो गयी।

८५४. **बरसीमका क्रमशः पकना और उसके पोषक द्रव्य :** सन् १९४१ में दास गुप्तने बरसीमके क्रमिक पकनेका, उसके प्रोटीन और खनिज द्रव्य पर असरके बारेमें एक लेख लिखा था।—(इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, मार्च १९४२)। उन्होंने देखा कि ९वें हफ्तेमें प्रोटीन सबसे जादे २६·६८ सैकड़ा हुआ और २४वें हफ्तेमें घटकर १५·८ हो गया। वृद्धिके साथ ईथर एक्सट्रैक्ट भी घटा। रेशा १४ से बढ़कर २८ सैकड़ा या लगभग दूना हो गया। चूना धीरे धीरे ९वें हफ्तेमें २·० से बढ़कर १८वें हफ्तेमें ३·६ सैकड़ा हो गया। इसके बाद क्रमशः कम होने लगा। चूनाका उल्टा फॉस्फेट, बढ़तीके साथ, घटा। ९वें सप्ताहमें ·७ सैकड़ासे घटकर १९वें सप्ताहमें ·४ सैकड़ा रह गया और इसके बाद एकसा बना रहा। पर ९वें हफ्तेमें वृद्धि बहुत कम केवल ८ इंच हुई। १३वें में २७ इंच, १७वें में ३९ और २२वें में ५० इंच वृद्धि हुई। १७वें हफ्तेमें फूलना (कुसुमित होना) शुरू हुआ। ऐसा मालूम हुआ कि इस हफ्तेसे ह्रास रुक गया और हालत स्थिर हो गयी है। पर ये परिणाम प्रयोगावस्थामें रहनेके कारण पक्के

नहीं हैं। क्योंकि प्रयोग खतम नहीं हुआ था और सिर्फ एक ही खेतमें किया गया था।

विश्लेषणके आँकड़ेसे (८५०) पता चलता है कि बरसीममें पोटाशियम बहुत अधिक अर्थात् ३·८९ है। यही चारा अकेला पशुको सफलताके साथ खिलाया जा सकता है। इसलिये यह मानना पड़ता है कि, बरसीममें पोटाशियम की अधिकता शरीरको हानि नहीं पहुँचाती। देहके भीतर पोटाशके प्रसादपाकके विषयमें लोगोंका ज्ञान बहुत थोड़ा ही है। चारेके पोटाशका क्या असर होता है, इसकी निश्चित जानकारीके पहले बहुत अनुसंधान कार्य करना होगा। अभी तो अन्नके पुआलमें पोटाशियम एक बड़ी त्रुटि है और इसके दूरीकरणसे उसका पोषक तत्व बहुत बढ़ जाता है।

८५५. **सोयाबीनका चारा :** सोयाबीन फली है। इसका दाना मनुष्यका आहार है। पुआल बड़ा पुष्टिकारक चारा है। सोयाबीन केवल चारेके लिये पैदा किया जा सकता है। यह प्रायः सभी जमीनमें हो सकता है और सिंचाई के बिना पनप सकता है। बंगाल जैसे घनी वर्षावाले स्थानोंमें भी इसकी खेती हो सकती है।

सोयाबीन फली है। इसलिये उसकी जड़ोंमें भी जीवाणुके संचारण से बरसीमकी तरह सोयाबीनकी उपज भी बढ़ सकती है और जमीनको उपजाऊ करनेकी उसकी शक्ति भी बढ़ जा सकती है।

८५६. **सोयाबीनके बीजमें जीवाणुका संचार :** सोयाबीनमें जीवाणु संचारणके बारेमें कनाडाके कृषि विभागकी विज्ञप्तिसे बहुत कुछ जान सकते हैं। (इंडियन फार्मिंग, अगस्त, १९४३) :—

"सोयाबीन फलियोंवाला पौधा है और दूसरी फलियोंकी तरह हवासे नाइट्रोजन जमा करता है जो जड़में जमा हो जाता है। जमीनके नाइट्रोजनकी खपत पूरी करनेके लिये हवासे जितना नाइट्रोजन मिल सके लेना चाहिये, यह आर्थिक दृष्टिसे फायदेमन्द है।

"जिसके द्वारा आकाशका नाइट्रोजन पौधेको मिलता और फायदा पहुँचाता है वह जीवाणु है। धरतीमें यदि ये जीवाणु हों तो सोयाबीनकी जड़ोंमें अपनी संख्या वृद्धि करते और मटर जैसी गाँठे बनाते हैं। इन गाठोंको वनस्पति शास्त्रमें "नोड्यूल्स" (nodules—अर्बुद) कहते हैं। ये गाँठें आँखसे देखी जा सकती

हैं। यदि इनकी गाँठोंकी संख्या काफी न हो तो संचारण सफल नहीं हुआ और फलीकी खेतीका पूरा फायदा नहीं मिला। जो खेत क्लोभर या लूसन (अलूफालूफा) के लिये संचारित किया गया है वह सोयाबीनके लिये किसी कामका नहीं है।...

"बोनेके पहले सोयाबीनके बीजको संचारित करना चाहिये। कनाडामें अनेकों बीज विक्रेताओंके यहाँ सोयाबीन संचारित करनेके लिये प्रस्तुत जीवाणु मिल सकते हैं। व्यवहारमें लानेकी साधारण विधि जीवाणु बनानेवाले बता देते हैं। जहाँतक हो सके संचारित बीजको धूप नहीं लगने देनी चाहिये।

"यदि मध्य गरमी (ग्रीष्म ऋतु) में (अमेरिका और कनाडामें) सोयाबीनकी फसल पीली पड़ती दिखायी पड़े तो उसका कारण अपूर्ण संचारण हो सकता है। हर हालतमें चतुराई यही है कि हर फसलसे कुछ पौधे उखाड़ कर उनकी जड़ोंकी जाँचकी जाय कि, उनमें गाँठे हैं या नहीं। किसी खेतका संचारण साधारणतः कई वर्षोंतक काम देता है। किन्तु लाभकी तुलनामें खर्च और मेहनत इतना कम है कि बीच बीचमें संचारण करते रहना उचित होगा।"

भारत सरकारका यह काम है कि, वह इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्च और प्रान्तीय सरकारोंके द्वारा संचारणके इस वैज्ञानिक आविष्कारका पूरा फायदा उठावे और केवल बरसीम या सोयाबीनके बीजोंमें ही नहीं, सभी दलहनोंके बीजोंमें जीवाणु संचार करनेका इन्तजाम करे जिससे उनकी उपज बढ़े और उनकी वजहसे धरतीको अधिक नाइट्रोजन मिले।

सोयाबीन विभिन्न जलवायुमें पनप सकता है। मंचुकुओके अधिकांश जिलोंकी आबाद जमीनमें ४५ से ६० सैकड़ा तकमें यही होता है। अमेरिकामें धीरे धीरे इसका पैर जम रहा है। अमेरिकाके मकई उपजानेवाले अनेक जिलोंमें सुखाकर खिलानेके लिये फलियोंमें सबसे मुख्य यही है। एक एकड़में ३० से ६० मन सूखा चारा होता है। अमेरिकामें ठीक बीज पकनेके समय सोयाबीन की फसल काटी जाती है और बीज समेत उसे खिला देते हैं। यहाँ भारतमें बीज मनुष्यके आहारके लिये रखा जाता है। इसलिये उसके पुआलका चारा घटिया होगा। फिरभी बीज निकाल लेनेके बाद जो रह जाता है वहभी काफी अच्छा चारा है। साथ ही वह जमीनके लिये अच्छी खाद भी है।

**८५७. सेंजी—भारतीय क्लोभर :** सेंजी पंजाबकी फलियोंवाला रबीकी फसल है जो सींचकर उपजायी जाती है। यह कड़ी मिट्टीमें अच्छी नहीं होती।

साधारण तौरपर मकई और कपासके बढ़ जाने पर अक्तूबरमें इसे उनकी धारियोंके बीच बो देते हैं। फसल फरवरी-मार्चमें कटती है। सेंजी जमीन सुधारती है और आगामी फसलके लिये बहुत फायदे की है। प्रति एकड़ १६,००० रत्तल इसका हरा चारा होता है और यह दुधार पशुके लिये बहुत अच्छा है। खिलानेके समय इसमें कुछ सूखी सामग्री भी मिला देते हैं, क्योंकि इसके हरे चारेमें प्रोटीन और उफनानेवाला कार्बोहाइड्रेट बहुत जादे रहते हैं। अकेला खिलानेसे कार्बोहाइड्रेट पेटमें फफदने लगता है। इसे सुखाकर रखा जा सकता है।

८५८. **मटरका सूखा चारा :** मटरका सूखा चारा फलियोंमें बहुत अच्छा है। यह हरा खिलाया जा सकता है या सुखाकर भी रखा जा सकता है। यह अक्तूबर या नभम्बरके शुरूमें (आसिन—कातिक) धानके खेतोंमें भी बोया जा सकता है। यह दलहनकी रबी फसल है और कहीं भी हो सकता है। सूखे चारेमें १०.९ सैकड़ा कच्चा प्रोटीन होता है। प्रति एकड़ २०० मन हरा चारा होता है। पंजाबमें यह जईके साथ बोया जाता है। दोनोंका मिश्रण उत्कृष्ट हरा चारा है। दूध बढ़ानेके लिये यह खास तौरपर अच्छा है।

धानके नम इलाकोंमें चारेका परिमाण और पोषक गुण सुधारनेके लिये मटर और इसी तरहके दूसरे दलहनोंकी खेती जरूरी है।

चना, खेसारी, उर्द (माष), मूँग सभी मटरको श्रेणीके हैं। इनकी खेती होनी चाहिये। ये रबी की फसल हैं।

८५९. **अरहर—सूखा सहनेवाली :** यह फली है। मदरासमें इसे कपास या मड़ुआके साथ धारीमें लगाते हैं। इस तरहकी लगौनीसे किसानोंकी दूर दृष्टिका पता चलता है। "बुकाननकी यात्रा" से नीचे लिखा उद्धरण है। इन्होंने सन् १८०० ई० में यात्राकी थी।

"वसन्तमें जब कभी पहली वर्षासे, धरती जोतने लायक मुलायम हुई कि जुताई शुरू हो जाती है। उस समयसे जैसी जरूरत हुई १३ ज्येष्ठ या ५ जून तक खेत ४–६ बार जोता जाता है। इसके बाद गोबर डालकर जोतते हैं। जब घनघार वर्षा हाने लगती है तब बीज छींट कर जोतते जिससे बोज ढक जाता है··· दूसरे दिन सारे खेतमें ६ फूट पर इकहरी लीक या सीता बनाते हैं। इनमें 'अभारी' या 'तोभारी' (अरहर) के बीज डालते हैं। इसे अकेला कभी नहीं बोते। मड़ुआभी बिना किसी फलीके कभी नहीं बोया जाता। अभारी या तोभारीका बीज

बोनेवालेके पैर से ही ढक जाता है।...वर्षाके परिमाणके अनुसार मड़ुआ ३ से ४ महीनेमें पक जाता है। अभारी या तोभारी ७ महीनेके पहले नहीं पकती। मड़ुएके साथ इसे बोनेका कारण यह मालूम होता है कि, जब अनावृष्टि होती है तब मड़ुआ मर जाता है या कमसे कम थोड़ा होता है तब फलीदार पौधा सूखेको सहता हैं और शीतकालकी ओससे पकता है। मड़ुआके सफल होनेसे फलीदार पौधा दब जाता है और उसकी उपज कम होती है।....पर मड़ुएके बिगड़ जानेसे वह चमत्कारी रूपसे फैलता है और उसकी उपजभी काफी होती है।" —(पृ० १००-१०१)

अरहरकी पत्तियाँ पुष्टिकारक चारा हैं और काफी होती हैं। इसकी फलियोंमें मनुष्यके आहारकी दाल होती है। धड़ कठीला होता है। चारेके काममें केवल पत्तियाँ या फुनगी आती हैं। यह फली है इसलिये धरतीको मजबूत बनाती है। इसे (चारेके लिये) सालमें ४ से ६ बार तक काट सकते हैं। अरहर चारेकी फसल हो सकती है। यह फलीदार पौधा चार पाँच वर्ष रह सकता है और इतने दिन इसका तना (डंठल) कठीला नहीं होगा। इसकी जड़ें काफी गहरी जमीनमें चली जाती हैं इसलिये यह सूखा सह लेता है। यह इसको तीन खूबियाँ हैं। इस मामलेमें यह बिदेशी लूसनके बराबर है। सूखा सहनेमें लूसन और अरहरकी शक्ति एक कही जा सकती है।

**८६०. अरहर और लूसनकी तुलना :** मौरीसनने अपनी पोथी (फीड्स एन्ड फीडिंग) में लिखा है कि अमेरिकाके कुछ अधसूखे बिना सिंचाई वाले हिस्सेमें लूसनकी बहुत उपज है। इसका कारण उसकी जड़का गहरे तक जाना है। इसलिये वह गहरेमें जमा नमीसे अपने लिये जल खींच लेती है। सूखी आबहवामें इसके कारण धरतीके नीचे (sub-soil) की नमी बहुत कम हो जाती है। "जैसे कि नेब्रेस्का (Nebraska) प्रयोगमें यह पाया गया कि, लूसनके ६ वर्षके पुराने खेतकी नमी ३५ फूट उतर गयी।"

पर यहाँ ऐसा कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि, भले ही एक दो वर्षा चुक जाय, पर बादकी वर्षामें यह कमी पूरी हो जायगी। लेकिन इससे यह मालूम होता है कि चारेके लिये अरहर लूसनके बराबर या उससे भी अच्छी रहेगी। क्योंकि यह देशी है और लूसन विदेशी। इस देशकी जमीनके लायक बननेमें लूसनको कुछ समय लगता है। पर अरहर किसी समय कठिनाईके बिना

हो सकती है। अरहरके चारेके सभावित गुणोंके बारेमें खोज नहीं हुई है। होनी चाहिये।

८६१. **लूसन : अलफाल्फा : रिजका :** यह चारा फलियोंदार है। फिर अरहरको तरह बहु वार्षिक है। यह दुमट जमीनमें होता है। इसे पानी काफी चाहिये पर जड़में पानी लगना इसे वर्दास्त नहीं। यह सितम्बर-अक्तूबरमें (आसिन-कातिक) बोया जाता है। सालमें ७-८ बार इसे काट सकते हैं। अगर यह धरती ठीक तरहसे पकड़ले तो इसकी उपज अधिक होती है। हर बार काटने पर यह प्रति एकड़ १२,००० रत्तल तक होती है। इसकी मुख्य दो जातियाँ हैं। एक वार्षिक फौर दूसरी त्रैवार्षिक।

इसकी जड़ गहरे जाती है इसलिये सूखा सह लेता है। जलकष्टके समय जब दूसरे पौधे मुर्झाने लगते हैं उसके बहुत बाद तक यह हरा रहता है। यह हद दर्जे की सर्दी गर्मी सह सकता है।

कुछ जमीनमें इसका जमना कठिन है। शायद उचित जीवाणुका अभाव इसका कारण हो। पर यदि अच्छी सँभाल हो और रहने दिया जाय तो आगे मौसममें अच्छा रहता है। बीजको संचारित करना जादे अच्छा उपाय है। श्री रीड लूसनकी खेतीकी जोरदार सिफारिश करते हैं। कहते हैं कि हर किसानको एक क्यारी इस खूब होनेवाली फसलकी जरूर हो।

इसमें १६·३ सैकड़ा पचनीय प्रोटीन होता है और कुल पचनीय पोषक ५५·९ सैकड़ा। एस० ई० ३७·७ रत्तल है। इसमें चूना १·७ से २·८ सैकड़ा तक है और फास्फोरस औसत ०·७९ से ०·७४ प्रतिशत तक। पोटाश बहुत अधिक करीब ४ सैकड़ा है।

श्री रीड कहते हैं कि जब फसल काफी फूलने लगे तब काटी जाय। पशु इसमें बाँधकर चराये जा सकते हैं। ४-५ वर्षों के बाद इसे जोत देना चाहिये, क्योंकि इसके बाद तना कठिन होने लगता है।

८६२. **लूसनमें भिटामिन 'ए' :** हरा लूसन या छाँहमें सुखाया लूसन भिटामिन 'ए' के लिये प्रसिद्ध है। पूरा विकास होने पर यह चारेकी बेजोड़ फसल है। इसमें ऊँचे दर्जेकी प्रोटीन बहुत जादे है। इसमें चूना भी प्रचुर है। अमेरिकामें इसकी खेती धूआँधार बढ़ रही है। इसे सिचाईकी जरूरत है। पर सिंचाईके बिना भी हो सकता है। क्योंकि इसकी जड़ गहरी जाती है। जमीनसे

पानी लेनेकी इसकी शक्ति इतनी जादे है कि यदि यह कई साल खेतमें लगा रहे और अगर पानी न बरसे तो यह या अन्य फसल नहीं हो सकती। जहाँ सालमें अच्छी वर्षा हो जाती है वहाँ इसकी वजहसे धरतीके नीचेका पानी कम होनेका डर नहीं रहता। इसके कई प्रकार हैं। प्रान्तीय कृषि विभागसे सलाह लेनी चाहिये कि, कौनसा प्रकार वहाँके लिये अच्छा है। (६१२)

८६३. **शफताल :** (Kabuli Clover) **काबुली क्लोभर :** यह पंजाबकी सींची जानेवाली रबीकी फसल है। यह सेंजीकी तरह है। पर इसकी कटाई गरमीके मौसम तक चलती है। इसकी खूबी यह है कि, चारेकी तंगीके समय इससे चारा मिलता है।

शफताल अक्तूबरमें (आसिन) बोया जाता है। पहली कटाई फरवरीमें होती है। दो तीन कटाई तक इसकी उपज प्रति कटाई प्रति एकड़ १२,००० रत्तल है। —(रीड)

८६४. **ग्वार** (Cluster bean **या** Field vetch) **:** यह भदई फसल दलहन या फली है। अप्रैलसे जूनतक इसे सींचकर बोते हैं। बरसातमें भी बोयी जाती है। बुवाई अगस्त (भादों) तक हो सकती है। यह ६० दिनमें होनेवाली फसल है। प्रति एकड़ १२,५०० रत्तल होती है। हरी खादके लिये यह अच्छी चीज है।—(रीड)

८६५. **बोड़ा या चावली :** यह फली है। इसे अकेला या ज्वारके साथ जल्दी बोना सबसे अच्छा है। सींचनेसे प्रति एकड़ १२ से १६ हजार रत्तल हरा चारा हो सकता है।

बंगालमें कई प्रकारके बोड़े पर प्रयोग किया गया। काले बीजवाली किस्म सबसे पहले होती है। बोनेके ४० दिनके भीतर ही रबीके मौसममें इसमें फूल लगने लगते हैं। विपरीत कालमें भी यह दो महीनोंमें खिलाने लायक हो जाती है। बंगालमें इस फसलके बारेमें प्रयोग हो रहा है। पंजाबमें इसका काम आगे बढ़ा है।

८६६. **घास :** गायका पहला आहार घास है। अच्छे चरागाहोंमें चरनेसे बढ़कर गाय और उसकी संतानके स्वास्थ्यके लिये दूसरी चीज नहीं है। जब गाय स्वाभाविक अवस्थामें मुक्त थी या जंगलमें स्वतन्त्र रहती थी उस समयसे अतिरिक्त काम अब मनुष्यने उसे पालतू बनाकर उसपर लाद दिया है। इस अतिरिक्त कामके लिये उसे पौष्टिककी जरूरत है। केवल चराईसे उसका काम नहीं

चल सकता। इसके अलावे सूखा चारा अस्वाभाविक है। खूँटेपर पुआलके साथ कुछ अशमें उसका स्वाभाविक खाना, जैसे हरी घास, पत्ते और फलियाँ मिलानेसे उसका स्वास्थ्य और कार्य-शक्ति ठीक रह सकती है।

यह दुर्भाग्य है कि, बहुतसे किसान चराईके सभी फायदे नहीं जानते। इस लिये वह यह नहीं जानते कि, पूरी चराईके बिना गायको उचित आहार नहीं मिलता इससे उसे बहुत कष्ट होता है।

अब यह मालूम हो चुका है कि, घासकी उमर बढ़नेसे उसका आहार-गुण घटने लगता है। वह जितनी छोटी हो, उतनी ही अधिक पुष्टिकर है। इसके बारेमें ब्यौरेके साथ आगे कहा जायगा। घास और चराईके अन्य पोषकगुणोंके बारेमें अभी बहुत कम पता है।

**८६७. स्वाभाविक आहारके अज्ञात आहार-गुण :** मार्च १९३७ के इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरीमें इस बारेमें फ्रेजरका (१९३५) मत छपा है।

"... जिस पशुसे संवर्धनका काम लिया जाता है उसे जहाँतक हो सके उसका स्वाभाविक आहार खिलाया जाय। घास और दूध जैसे स्वाभाविक आहारके अज्ञात आहार-गुण हो सकते हैं। पशुधनको खिलानेमें ये महत्वकी चीजें हैं। चरनेवाली भेड़ोंकी स्वाभाविक रोग निरोधक शक्तिको कई जाँचोंके आधार पर अंडरसन और अन्य कहते हैं कि, उगती घासमें कुछ ऐसी चीज है जिसका प्रभाव पशुतन्तुकी रक्षात्मक प्रणाली पर पड़ता है।"

पशुतन्तुकी रक्षात्मक प्रणाली पर जिसकी प्रतिक्रिया होती है वह रहस्यमय वस्तु क्या है यह हम नहीं जानते। कुछ दशक पहले हम भिटामिनके बारेमें नहीं जानते थे। लोग प्रकृतिकी बात नहीं जानते थे। और उसकी उपेक्षा करते थे। वह केवल निस्सत्व बनावटी भोजनके पीछे पागल थे। इस कारण उन्हें रोग और मृत्युके पंजेमें पड़ना होता था। अब भिटामिनके ज्ञानसे हम प्रकृतिके अनुकूल अपना आहार बना सकते हैं।

यह खोज इस दिशामें अन्तिम कार्य नहीं हैं। अभी पोषणकी और दिशायें भी हैं जिनकी खोज नहीं हुई है। इसलिये ऊपरकी कही बात ध्यानमें रखनी चाहिये। सही सही क्या चाहिये यह नहीं जानने पर भी यथासंभव स्वाभाविक आहारकी तरहका आहार हम दे सकें तो उससे फायदा होगा।

८६८. चरानेका विशेष गुण : यदि उगती घासमें कुछ विशेष गुण है तो चरानेमें भी जरूर है। इसलिये पशुको चरानेसे उगती घाससे जो चीज मिल जाती है वह घास काट कर खिलानेसे नहीं मिल सकती। हँसियासे काटनेके लिये घासका कुछ बड़ा होना जरूरी है। पर गाय बहुत छोटी पत्ती भी चर सकती है। किसानोंका अनुभव है कि, वही घास काट कर खूँटेपर खिलानेके बदले चरानेसे अधिक लाभ होता है। "खैरी" का उदाहरण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। (७८०) पोषण-निपुणके खूँटेपर जो चारा खिलाया गया उससे वह नहीं पनपी। उसे हरी घास और युक्ताहार दिया जाता था। पर इन सबसे उसकी हालत नहीं सुधरी जबतक कि उसे अच्छे गोचरमें चरने नहीं दिया गया। इससे सिद्ध होता है कि उगती, या मैं कहूँगा, चरी जानेवाली घासमें सजीवनी और रोग निरोधक कुछ रहस्यमय वस्तु है।

८६९. पोषक वस्तुमें औक्सीमोन (auximone) : मैंक्कारीसनने शाही कमीशनके सामने प्रमाण देते हुए जो कहा था उसे श्री सेनने जैसा उद्धृत किया है वह निम्नलिखित है :—

"...यह पशुको तरह पौधोंके बारेमें दिखाया जा चुका है कि उनके आहारमें खनिज उपादानोंके अतिरिक्त औक्सीमोन नामक कुछ जैव (औरगेनिक) पदार्थ दिये बिना वह पनप नहीं सकते और न उसके बीजमें पूरा 'उत्पादक गुण' आसकता है। यह पदार्थ भिटामिनके जैसा ही है। जिस तरह नर और पशुके स्वाभाविक प्रसादपाकके लिये भिटामिन आवश्यक है उसी तरह पौधोंके स्वाभाविक प्रसादपाकके लिये औक्सीमोन है।"—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, मार्च, १९३५)

यह हो सकता है कि इन "औक्सीमोन" पदार्थोंकी गायको जरूरत हो और वह चरनेमें ही सबसे उत्तम मिल सकता है। पशुओंको खिलानेमें घास और चराईका क्यों महत्व है यह औक्सीमोन की कुछ जानकारी होनेसे समझमें आ जायगा। क्योंकि उगनेवाली घासोंमें बढ़ानेवाली यह चीज क्रियाशील अवस्थामें होती है। पूरी तरह मरे पौधेमें ये वृद्धिकारक तत्व स्वभावसे ही अपने असली मूल रूपमें नहीं रह सकते।

प्रयोगसे यह पाया गया कि औक्सीमोन पदार्थ पौधोंको प्रकाश आदिके लिये उत्तेजना देते हैं। इन पदार्थोंका विश्लेषण करनेपर इनमें तीन रासायनिक द्रव्य पाये गये जिनमें वृद्धि करनेकी सामर्थ्य है। तीनोंमें पहले दो का नाम "औक्सिन ए" और "औक्सिन बी" रखा गया। तीसरा द्रव्य एक परिचित रासायनिक द्रव्य

"इन्डोल ऐसेटिक एसिड" (Indole acetic acid) निकला, जो प्रयोगशालामें बनाया जा सकता है।

इस नये ज्ञानका बागवानी (उद्यान विद्या—horticulture) में उपयोग हो रहा है। कुछ पौधोंकी कलमोंपर इन वृद्धिकारी पदार्थोंका उपचार करनेसे जड़ जल्दी निकलती है।

८७०. **औक्सिन 'ए' और 'बी'** : ये पदार्थ पौधोंके आहार-संग्रहके उपयोगका सुधार या नियंत्रण करते हैं। पशुओंमें जैसे हौरमोन (hormones) उत्तेजना पैदा करते हैं उसी तरह औक्सिन है। प्रोटीनपर जीवाणुकी क्रियासे इंडोल एसेटिक तेजाब पैदा होता है। यह पेशाबमें रहता है। सड़े सेन्द्रिय या जैव पदार्थ से बने कंपोस्ट खादका गुण इन्हींके कारण माना जाता है। सेन्द्रिय खादोंसे पौधोंकी जो बाढ़ होती है वह रासायनिक खादसे नहीं होती। यह बात इससे समझमें आ जाती है।

यह विषय बहुत बड़ा और आकर्षक है। प्रयोगियोंने इसका केवल स्पर्शमात्र किया है। इन वृद्धिकारी पदार्थों और पशु तथा पौधेके विकाशमें उनके हाथके बारेमें और बातें शायद आगे मालूम हों।

प्रयोगसे यह मालूम हुआ कि औक्सिमोन बढ़नेवाले अंकुरके अग्रभागसे उत्तेजना भेजते हैं। यह बात जईके खोखले नलीदार अंकुरके विख्यात प्रयोगमें मालूम हुई।

घास चरनेका विशेष गुण शायद इन वृद्धिकारक पदार्थों से सम्बन्ध रखता हो। शास्त्रके जटिल विषयोंकी ओर जानेकी जरूरत नहीं है। हमारे लिये यही काफी है कि नयी उगनेवाली घासमें कुछ ऐसी चीज जरूर है जिसमें चरनेवाले पशुको फायदा होता है। चरना स्तनपान करनेके समान है। पशुजननी अपनी छातीके दूधमें सबसे आवश्यक और पूर्ण पोषक अपने बच्चोंको पिलाती है। मालूम होता है कि, उसी तरह धरती माता भी तृणजीवियोंको घासके कोंपलके रूपमें अपनी छातीका दूध पिलाती है। इसमें पोषक द्रव्य और 'औक्सिन' प्रचुर हैं। औक्सिन पत्तियोंके अग्रभागकी नोकमें रहते हैं यह स्मरण रखना चाहिये। चरनेमें गाय हर ग्रासमें जाने से ज्यादा यह नोक खाती है। कटी घास खाने और चरनेके रहस्यपूर्ण अन्तर का असल कारण यही है। यदि आज पत्तियोंकी नोकोंको चर लिया जाता है तो प्रकृति उनकी सुधार करती है, उनमें नयी नोकें निकलती हैं, जिनमें नये औक्सिन भरे रहते हैं। यह दूसरी बार चरने लायक हो जाती है।

**८७१. घासके बढ़नेसे उसके पोषकमें परिवर्त्तन :** घासकी वृद्धिसे उसमें जो रासायनिक परिवर्त्तन होते हैं उसके अनेक प्रयोग श्री लैंडरने इस देशमें किये हैं। विभिन्न अवस्थाओंमें घासमें विभिन्न यौगिक पाये जाते हैं। सबका निचोड़ यह है कि, सबसे छोटी उमरकी घासमें अनुपातमें सबसे जादे पोषक-तत्व हैं ; पर सबसे छोटी अवस्थामें जितनी मात्रा मिलती है वह बहुत कम है। इसलिये उसका उपयोग करनेके लिये ऐसा मध्यमान या मध्यकाल ठीक करना चाहिये कि जब परिमाण और गुणमें सब तरहसे ठीक पोषक-द्रव्य मिल सकें।

एक तरहकी घासकी दूसरीसे तुलना करना कठिन है। एक ही घास एक स्थानमें एक तरहकी होती है और दूसरे स्थानमें दूसरी तरहकी। इसके सिवा एक ही घासमें उमरके विचारसे खनिजोंकी कमी बेशी हो सकती है।

पक्व (पक्के) और अपक्व (कच्चे) पौधोंके भेदका ठीक ज्ञान होना जरूरी है। छोटे पौधे पनीले होते हैं। उनमें सूखा सामान कम होता है बढ़नेपर सूखा सामान बढ़ता है। अपरिपक्व या कच्चे पौधेमें सुखाये हुए पौधे से प्रोटीन अधिक होता है। इन दोनोंका हिसाब सूखेके आधारपर किया गया है। कच्चे पौधेमें अधिक भिटामिन, अधिक कैलशियम और अधिक फॉस्फोरस होता है। इसलिये तीनों बातोंमें वह परिपक्व पौधेसे श्रेष्ठ है। अपरिपक्व घासमें पानी अधिक होता है। इसलिये परिपक्व घासके इतना सामान पानेके लिये इसका अधिक मात्रामें उपयोग करना होता है। सूखे अपरिपक्व पौधेमें सूखे परिपक्वसे अधिक पोषक गुण हैं। (६७०)

**८७२. उगती घासमें प्रोटीन, कैलशियम आदि :** साधारण तौरपर यह कह सकते हैं कि छोटी कच्ची घासमें (सुखायी अवस्थामें) १० से १५ सैकड़ा प्रोटीन होता है। पर पकनेपर उसीमें ४ से ७ सैकड़ा रह जाता है।

मौरीसनका कहना है कि अच्छे प्रकारकी परिपक्व सूखी घासोंके मिश्रणमें ५१·७ सैकड़ा कुल पचनीय पोषक होता है। किन्तु उर्वर चरागाह, जिसमें पशु अच्छी तरह चरते हैं, उसकी अपरिपक्व सूखी घासमें कुल पचनीय पोषक ६४·७ सैकड़ा होता है।

प्रोटीनकी तरह ही कैलशियम और फॉसफोरसमें कच्ची घास पकीसे कहीं श्रेष्ठ है। कैलशियम पहले ·६ सैकड़ा होता है, पकने पर ·४ सैकड़ा रह जाता

है। फॉसफोरस उमरके हिसाबसे '४ से घट कर '२ सैकड़ा या उसीके करीब तक आ जाता है।

कच्ची घास हमेशा पुष्टई मानी जाती है। यदि केवल प्रोटीन और खनिजकी ही बात हो तो वास्तवमें वह है भी। पर शक्ति (तापकी) मात्रा अन्न और दलहनसे अधिक मिलती है। इस विषयमें कच्ची घास पुष्टइयोंकी बराबरी नहीं कर सकती। पर कच्ची और पक्की घासकी तुलनामें पचनीय पोषक कच्ची घासमें अधिक हैं। लेकिन जैसा कहा जा चुका है कि कुल पचनीय कार्बोहाइड्रेटके मामलेमें घास अन्नसे कम है। इसका अर्थ यह हुआ कि, उतनी ही तौलकी कच्ची घास शक्ति या तापदायक गुणमें अन्नकी बराबरी नहीं कर सकती। प्रोटीन, कैलशियम और पोटाशमें भलेही वह समान हो ले। (६१२)

८७३. **प्रोटीनदाता घास :** ढोर संवर्धनके लिये यह बहुत अधिक महत्वकी बात है। भारतके ढोरको पुआलोंसेही शक्ति मिल सकती है। शक्तिके लिये इन्हें पुआलोंपर ही निर्भर कराया जा सकता है और यदि काफी चराई मिल सके तो कच्ची घाससे उनके गुजारेके लायक प्रोटीन और खनिज मिल सकते हैं। जहाँ पूरी चराई न हो सके वहाँ भी जो कुछ चरनेको मिल जाय उसीसे प्रोटीन, खनिज, भिटामिन और दूसरे वृद्धिकारी द्रव्योंको कूतना चाहिये। उगती कच्ची घासमें प्रोटीन की प्रचुरता एक बड़े महत्वकी बात है। यह नहीं भूलना चाहिये कि, प्रोटीन-प्रचुर फलियोंके सूखे चारेमें कच्ची घासके बराबर प्रोटीन हो सकता है। जैसे कि, लूसनके सूखे चारेमें १६'३ सैकड़ा पचनीय प्रोटीन और २१'२६ सैकड़ा कुल प्रोटीन है। पर नयी दूबमें (हिसार पशुक्षेत्र चराई मैदानका नमूना, आँकड़ा-१४, लैन्डर) २१'९४ सैकड़ा और महीनेभर बाद २०'९४ सैकड़ा प्रोटीन होता है। सभी दूब घासमें ऐसा नहीं होता। यह तो एक उदाहरण मात्र था कि नयी उमरके घासमें कितना ज्यादे प्रोटीन हो सकता है। काटी हुई उसी घासमें कम प्रोटीन होता है। धरतीकी अवस्था, नमी, वर्षा आदिके आधारपर हर कटाईके प्रोटीनमें अन्तर हो सकता है। मोरीसनकी राय है कि, सबसे बढ़िया कच्ची घास पोषक गुण और उपादानोंमें गेहूँके चोकर, अलसीकी खली आदि प्रोटीन-प्रचुर पुष्टइयोंके बराबर है। पर घास कितनी ही नयी या छोटी हो उसमें रेशे होते हैं। इसलिये वह शक्ति मूल्यमें पुष्टइयोंसे हीन है। (६१२)

८७४. **घास काटते रहनेसे उसका प्रोटीन-मूल्य बना रहता है :** चरागाहकी घासमें अधिक प्रोटीन बनाये रख सकते हैं। इसके लिये उसे बराबर काटते रहें जिससे वह बढ़नेकी हालतमें रहे। बरसात वृद्धिका मौसम है, इसमें घासका प्रोटीन अधिक रहता है। गर्मीमें वृद्धि कम होती है। उस समय बरसातकी तुलनामें एक ही उमरकी घासमें कम प्रोटीन होता है। जब घास फिर से जल्दी जल्दी बढ़ने लगती है तब उसका प्रोटीन भी खूब बढ़ता है। जब घास पूरी बढ़ जाती है और फूलने फलने लगती है तब अपेक्षाकृत उसका प्रोटीन कम हो जाता है।

घासकी बात अन्नोंमें लागू नहीं है। अन्नके पौधोंमें फूलने फलनेके समय अधिक प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट जमा होने लगते हैं। उतने ही वजनकी कच्ची डाँट खिलानेसे, दाने सहित डाँट खिलानेमें अधिक पोषण मिलता है।

छेड़छाड़के बिना यदि घास पूरी तरह बढ़ने पावे तो उसमें जितना सूखा समान होता है उससे कम बारबार काटनेसे होता है। बारबार काटनेसे सिर्फ छोटी छोटी पत्तियाँ ही धूप खा पाती हैं। इसलिये हवा, धूप और क्लोरोफिलसे उनमें कम कार्बोहाइड्रेट बनता है। किसी फसलको खूब चरानेसे इसी तरह उपज पर असर पड़ता है। (६१२, ६७५)

८७५. **काटनेसे उपजमें कमी:** यह पौधेके स्वभाव और दूसरे कारणों पर निर्भर है। पैदावारकी कमी दूब जैसी छोटी और फैलनेवाली चरागाहकी घाससे ऊँचे बढ़नेवाले पौधोंमें अधिक होती है। साधारण तौरपर यह माना जाता है कि यदि घासको पूरी तरह पकने पर काटा जाय तो उससे जितना सूखा समान और कुल पचनीय पोषक मिलेगा उसका ५० से ६० सैकड़ा सूखा समान और ६० से ७५ सैकड़ा पचनीय पोषक दो या तीन हफ्तेके अंतरपर काटनेसे मिलता है।

जितनी ही जल्दी जल्दी कटाई होगी या जितनी अधिक चराई होगी उसकी उपज पकनेपर काटनेके मुकाबले उतनी ही कम होगी। इसलिये लगातार चराई से फेरबदलकर चराना अच्छा है।

घासके खनिज और प्रोटीन पर धरतीका भी असर होता है। जिस धरतीमें फॉसफोरस या चूना कम है उसमें उपजे पौधोंमें यह कम होना चाहिये। पर भारतमें हुए प्रयोग धरतीके खनिज और पौधोंके खनिजका सम्बन्ध नहीं बैठा सके

हैं। सारा विश्लेषकोंको इस विषयकी छानबीन करनी चाहिये। लैन्डरने अनेक नमूनोंका अध्ययन किया, पर अभी तक कुछ स्पष्ट बात नहीं मालूम हुई है।

नाइट्रोजनवाली खाद देनेसे घासमें नाइट्रोजन बढ़ता है। जंगलकी तरह छाँहमें उगी घासमें कम चारा होता है और वह स्वादिष्ट भी कम होता है। काटते समय घासकी जैसी अवस्था होती है उसीके अनुसार उसका पोषक गुण होता है।

यदि घास पकने दी जाय तो उसका पोषक मूल्य कम हो जाता है। घास सुखानेमें धूप और वर्षासे भी पोषक मूल्य काफी कम हो जाता है। घास जितना ही सूखेगी उतनी ही पुआल जैसी हो जायगी। (६७५)

८७६. **दूब** (cynodon dactylon): दूब भारतमें सबजगह और बारहों महीने होती है तथा खूब होती है। इसके फूलनेका समय भी बारहों महीने है। यह इतना बढ़ सकती है कि अनुकूल परिस्थितिमें काटकर सुखायी जा सकती है। इसे सब जगह सुन्दरताके लिये सब्ज बाग या मैदानमें (lawn) लगाते हैं। सब्जबागके अनुकूल इसकी निजी विशेषता है जो दूसरी घासमें नहीं है। इसे जितना ही काटो और दबाओ उतनाही यह फैलती और देखनेमें गलीचेकी तरह लगती है। इस पर बेलन और घास काटनेकी मशीन फिरानेसे यह बढ़ती है पर दूसरी घास खतम हो जाती हैं। दूब अन्य अनेक घासोंको दबाकर स्वयं बढ़ती है।

अमेरिकामें इसे बरमुडा (Bermuda grass) घास कहते हैं। ढाका क्षेत्रमें बरमुडाका बीज मंगाकर लगानेपर वह हमारी दूबही निकली।

लैन्डरका कहना है कि घासोंमें यह बहुत पोषक-गुणकी और सर्वश्रेष्ठ है। जहाँ ठीक तरहकी चराईका प्रबन्ध है वहाँ इसका पोषक चारा बराबर मिल सकता है। यह घास जमीनमें फैलती है। इसकी जड़ लगायी जाती है। पर लगानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि बरसातमें कटी घास लगायी जाय।

**गोचर लगाना :** बरसातमें अच्छी तरह जोतकर फालतू घास साफ की जाती है और जमीन समतल की जाती है। पानीपड़नेपर घास काटकर उसके गुच्छे जमीनमें रोपना चाहिये। फिर उसके निकले छोरको ठोक दबाकर उसे अगल बगलकी मिट्टीसे ढक देना चाहिये। यदि जमीनमें काफी नमी है या वर्षा हो चुकी है तो मिट्टीके नीचे घासकी जितनी पोरें हैं उनमें जड़े निकल आयेंगी। कुछ हफ्तेमें सारे मैदानमें दूब एकसी छा जायगी।

यदि अकेली दूब ही खिलायी जाय तो वह बहुत महँगी पड़ेगी। एक गायके लिये एक एकड़ चाहिये। साधारण तौरपर ३० से १०० मन प्रति एकड़ सूखी घास होती है।

यदि तुरत तुरत चराई होती रहे तो अच्छा रहता है नहीं तो दूब कड़ी और जालीदार हो जाती है। एक महीनेमें इसकी डंटी कड़ी हो जाती है और सिर्फ छोरपर ही पत्तियाँ रह जाती हैं। घास काट लेनेपर जमीन केवल काँटे से बिछी दिखायी पड़ती हैं। दो चार दिनमें पत्तियाँ फिर निकल आती हैं और मैदान फिर हरा भरा हो जाता है। पोषक गुणके अन्तर पर साधारण विचार हो चुका है (८६८–'७८)। लैन्डरके पुस्तकसे उसके विश्लेषणके कुछ परिणाम और विचार नीचे दिये जाते हैं। (६७'२)

## आँकड़ा—६२

### ८७७. दूबमें पोषक द्रव्योंकी विभिन्नता :

[ सूखी फसलका सैकड़ा ]

| | | प्रोटीन | कैलशियम | फॉसफोरिक तेजाब |
|---|---|---|---|---|
| छोटी घास बंगलूर | १९३२ | १४·६८ | ०·८८ | ०·५१ |
| ,, ,, | १९३३ | १४·८३ | ०·७४ | ०·६४ |
| ,, पूसा | १९३२ | १०·७६ | १·२७ | ०·५४ |
| ,, ,, | १९३३ | ४·४६ | ०·८७ | ०·२८ |
| पुष्ट घास बंगलूर | १९३२ | ११·८९ | ०·७६ | ०·४७ |
| ,, ,, | १९३३ | १०·२४ | ०·६४ | ०·५५ |
| ,, पूसा | १९३२ | ९·१८ | ०·६३ | ०·४२ |
| ,, ,, | १९३३ | ६·२९ | १·१६ | ०·४६ |
| पकी घास बंगलूर | १९३२ | ८·२८ | ०·४४ | ०·३० |
| ,, ,, | १९३३ | ८·६० | ०·३८ | ०·२५ |
| ,, पूसा | १९३२ | ६·२८ | ०·७७ | ०·३९ |
| ,, ,, | १९३३ | ५·३३ | ०·६६ | ०·५० |

"इस तरहके प्रयोग १९३३ में लायलपुरमें प्रयोगशालाके पासके मैदानकी दूबसे किये गये। पहला नमूना नवीन वृद्धि होनेपर तुरत ही मार्चमें काटा गया। अक्तूबरके अन्ततक हर महीने कटाई जारी रही। यहाँ भी घास नियंत्रणमें थी। विश्लेषणके नमूने होशियारीसे हाथसे काटे जाते थे। इसके बाद जहाँसे नमूना लिया जाता था उसकी एकसी छँटाई कर दी जाती थी। इस बीच थोड़े थोड़े अन्तर पर मैदान सींचा जाता था। जुलाई, अगस्त और सितम्बरमें वर्षाका पानी भी उसे मिला। यह उल्लेखनीय है कि, प्रोटीन, कैलशियम और फॉसफोरिक तेजाब बराबर खूब जादे रहे। पर गरमीमें तथा जाड़ेके शुरूमें फॉसफोरिक तेजाब कुछ घटने लगा था।" (६७५)

## आँकड़ा—६३

**८७८. विभिन्न कटाईयोंके बाद दूबका विश्लेषण :** विश्लेषणका आँकड़ा नीचे लिखा है :—

| लायलपुर | | प्रोटीन | कैलशियम | फासफोरिक तेजाब |
|---|---|---|---|---|
| २७-३-३३ | १ हली कटाई | १२·७५ | ०·७७ | ०·६८ |
| २७-४-३३ | २ सरी ,, | ९·०० | ०·७७ | ०·६३ |
| २७-५-३३ | ३ सरी ,, | ७·१९ | ०·८८ | ०·६९ |
| २७-६-३३ | ४ थी ,, | ७·५० | ०·९८ | ०·४९ |
| २७-७-३३ | ५ वी ,, | ९·५० | ०·८७ | ०·५४ |
| २८-८-३३ | ६ ठी ,, | ११·१९ | ०·९१ | ०·६७ |
| २९-९-३३ | ७ वी ,, | ११·३६ | ०·९५ | ०·४३ |
| ३०-१०-३३ | ८ वी ,, | ११·४८ | ... | ०·५७ |

"हिसार करनाल और रोहतकके पशुक्षेत्रोंकी भिन्न भिन्न उमरकी दूबका विश्लेषण आँकड़ेमें दिखाया गया है।"

# आँकड़ा—६४

## हिसारकी दूबका विश्लेषण

### हिसार (पशुक्षेत्र-चरनेका मैदान)

| तारीख | | प्रोटीन | कैलशियम | फासफोरिक तेजाब |
|---|---|---|---|---|
| १३-४-३३ | नयीघास | २१·९४ | ०·८१ | ०·८२ |
| १३-५-३३ | ऊपरवालीसे १महीना बड़ी | २०·९४ | ०·८५ | ०·७६ |
| २०-१०-३६ | हरी दूब (बरानी) दुधिया | १६·२५ | ०·९० | ०·४७ |
| | **रोहतक** | | | |
| २०-१०-२६ | बीर, दुधिया | ७·७५ | ०·९० | ०·८१ |
| ९-१०-२६ | कृषिक्षेत्र, दुधिया | ५·१८ | ०·७७ | ०·५७ |
| | **करनाल** | | | |
| ५-१०-२६ | पशुक्षेत्र, दुधिया | १०·०६ | ०·६४ | ०·५६ |
| १७-११-२७ | बीर, सौंची, करनालके पास, पकी | ४·९० | ०·५० | ०·२३ |

"हिसारकी नयी दूबका आँकड़ा विशेष आकर्षक है। इसमें २० से २२ सैकड़ा तक प्रोटीन है। कैलशियम और फॉसफोरिक तेजाब दोनों ही सन्तोषप्रद हैं।

"रोहतकके एक स्वाभाविक गोचरकी छोटी उमर के दूबके नमूनेमें कैलशियम और फॉसफोरिक तेजाब हिसारके बराबर हैं। करनालकी दुधिया दूबके नमूनेमें प्रोटीन अधिक निकला पर कैलशियम और फॉसफोरिक तेजाब कम। दूसरी ओर करनालके बीर की पकी दूबमें प्रोटीन, कैलशियम और फॉसफोरिक तेजाब कम निकले।"

ऊपर लिखेसे यह सिद्ध होता है कि, दूबकी रचनामें देश, काल, पात्र (धरतीकी हालत) के अनुसार अनेक विभेद होते हैं। स्वाभाविक दूबको जमीनमें तीनों चीजें कम पायी गयी हैं।

चरनेसे गोबर और गोमूत्र जमीनमें सब जगह एकसे फैल जाते हैं, इससे घास अधिक और अच्छी होती है। बरसातके पहले गोबरकी खाद छिड़कनेसे गोचर बहुत अच्छा रहता है। चरनेसे गोचरको कुछ खाद मिल जाती है। पर यदि चराई न हो, केवल वार्षिक कटाई ही हो तो घासमें सभी पोषक कम होते हैं। करनालके पास बीरकी भी कुछ ऐसी ही हालत थी। यहांसे स्वाभाविक उगी घास विश्लेषणके लिये मगायी गयी थी। यह बात ऊपरके अन्तिम आंकड़ेमें दिखायी गया है।

लायलपुर कालेजके अहातेमें हर महीनेके कटाईके नमूनेका परिणाम बराबर मध्यम रहा। उन नमूनोंके उपादानोंमें अधिक अन्तर नहीं हुए। बरसातके अन्त में पहली कटाईको छोड़ अगस्त, सितम्बर और अक्तूबरके महीनोंमें जितनी बार कटाई हुई, प्रोटीनकी मात्रा उत्तरोतर अधिकाधिक पायी गयी। पहली कटाईमें प्रोटीन प्रचुर था। इसका कारण शायद यह हो कि, जाड़ेकी तन्द्राके बाद बरसातकी प्रथम और नयी बाढ़की पत्तियोंमें प्रोटीन अधिक था। (६७५)

८७६. **अनजन या धामन घास : कोल्लुकटाई घास :** यह सूखा धरतीमें साधारण तौरपर होती है। पंजाब, बम्बई और मदरासके सूबोंमें इसका बहुत व्यवहार होता है। अफ्रिका, सिसिली और कनारीमें भी यह होती है।

अनजन, धामन या कोल्लुकटाई भारतके स्वाभाविक गोचरोंकी बढ़िया घासोंमें एक है। इसमें प्रोटीन बहुत प्रचुर है। इसकी सूखी घास आसानीसे बन सकती है। इसके लिये अधिक वर्षाकी जरूरत नहीं। थोड़ी वर्षा ही काफी है। इसलिये यह बंगाल जैसी घनी वर्षा सह नहीं सकती। कुछ स्थानोंमें अनजनमें १० सैकड़ासे भी जादे प्रोटीन मिलता है। बार बारकी कटाईमें अनजनमें ७ से ८ सैकड़ा प्रोटीन बराबर रहा है। पर कुछ ऐसी जगहें भी हैं जहाँ इसमें मामूली घासोंके बराबर प्रोटीन की मात्रा हो जाती है। जैसे कि औरंगाबाद, मेरठ, जब्बलपुर, बेल्लारी (मदरास) में। होसूरसे विश्लेषणकी एक रिपोर्ट मिली है, जिसमें प्रोटीनकी मात्रा २०.१६ सैकड़ा दिखायी गयी है। बंगलूर और पूनाके विश्लेषणकी प्रोटीन मात्रा होसूरसे कम है। इन विश्लेषणोंसे पता चलता है कि, दक्षिणके पौधोंमें प्रोटीन अधिक होता है। बेल्लारीका विश्लेषण निराश करनेवाला है। इसमें केवल ३ सैकड़ा प्रोटीन निकला। पर यह सिर्फ एक उदाहरण है, इससे शक होता है कि नमूना ही खास तौरपर बहुत बुरा हो।

अनजनमें कैलशियम और फॉसफोरिक तेजाब प्रचुर हैं, और ये दोनों उचित अनुपातमें मालूम होते हैं। हिसार क्षेत्रके अधिकांश स्वाभाविक गोचरोंमें यही फैली है। पोषणके विचारसे अनजन उत्कृष्ट घास है। ठीक व्यवस्था करनेसे इसका बहुत सुधार हो सकता है।

डबल्यू० कोल्डस्ट्रीम (W. Coldstream) अनजनके बारेमें कहते हैं (लैन्डरका उद्धरण) :

"इसके लिये उपजाऊ जमीन चाहिये। यह पोषक घासोंमें एक है और बहुत उत्तम कही जाती है। कहा जाता है कि सुखाकर इसका पुंज लगानेसे यह १४-१५ वर्षोंसे भी जादा तक ठीक रह सकती है। खेतीके लिये अपना बलिदान करनेवाली अग्रणी घासोंमें यह भी एक है। खेतीके शुरू होते ही प्रथम चासमें ही यह खतम हो जाती है। क्योंकि यह उन्हीं उत्तम जमीनोंमें होती है जिनमें सबसे पहले खेती शुरू हुई। अब यह प्रायः दुष्प्राप्य हो गयी है। रिपोर्ट है कि, यदि यह अच्छी हालतमें हो तो इसे चरनेवाली भैंसका दूध कुछ नशीला हो जाता है।"

**८८०. अनजनकी पुष्टई :** इसकी पुष्टई मानकर इसकी तुलनात्मक पोषक शक्तिका पता लगानेके लिये होसूर पशुधन गवेषण प्रतिष्ठानके सुपरिन्टेन्डेन्ट डी० मुरारीने, सन् १९३२ में एक प्रयोग किया था। १० बछड़े अनजन खिलानेके लिये चुने गये और १० नियंत्रणमें रखे गये। दोनों दलोंको नित्य ६ से ८ रत्तल तक दूध मिलता था और २ घंटेकी चराई। नियंत्रित १० बछड़ोंको कुल १ रत्तल मूँगफलीकी खली और १ रत्तल गेहूँका चोकर मिलता था। पर प्रयोगार्थ १० को प्रति दिन ३½ रत्तल सूखा अनजन मिलता था। प्रयोगार्थ दलकी तौलमें अधिक वृद्धि हुई। नियंत्रितोंके २० सैकड़ाके मुकाबले वह २१·६ सैकड़ा हुई थी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि १·७५ रत्तल सूखा अनजन १ रत्तल उस पुष्टईके बराबर है जो मूँगफलीकी खली और गेहूँके चोकरके समान भागोंसे प्रस्तुत होती है।

**८८१. गिनी घास :** गिनी घास अफ्रिकाके गरम भागोंकी चीज है। पर अब प्रायः सभी गरम देशोंमें होती है। यह विदेशी है। पर भारत आनेपर हमारी जमीन और जलवायुके अनुकूल हो गयी है और काफी फैल रही है। उत्तरी भारतके मैदानोंमें जाड़ेमें यह तन्द्रामें रहती है। वसन्त आते ही

फूट फैलती है। भारतके गरम भागोंमें सिंचाईके बल यह बारहो महीने खूब होती है। सबसे अच्छा यह बरसात और जाड़ेके शुरूमें होती है। साधारण तौर पर इसकी जड़ लगायी जाती है। बंगालमें अच्छी तरह खाद देकर मईके महीनेमें प्रति गुच्छ ३ या ४ जड़ोंके हिसाबसे लगानेसे अगस्तमें काट सकते हैं। यदि २ या ३ वर्षोंके बाद कुछ जड़ें निकाल ली जायँ तो इससे फायदा होता है। यह काम कुदाल (फावड़ा) से कर सकते हैं। निकाली जड़ें दूसरी जगह लग सकती हैं। बंगालमें एक क्यारीसे जड़ खोदकर उसीके समान बीस क्यारियोंमें लगा सकते हैं। बरसात शुरू होनेके कुछ ही महीनों बाद उनसे बहुत घास मिल सकती है। इसे खाद चाहिये। यदि खाद और पानी खूब मिले तो गिनी घास हर महीने कितनी कट सकती है इसका कोई हिसाब नहीं। पानी लगना यह नहीं सह सकती।

फूल छड़ी (flower stalks) निकलने पर घास मोटी हो जाती है। बरसातके बाद यह निकलने लगती है। जहाँ तक हो सके इसे जमीनसे सटा कर काटना चाहिये। पूसामें प्रति एकड़ २०,००० से ३५,००० रत्तलकी पैदावारके लिये सिंचाई नहीं करनी पड़ी। अच्छी तरह खाद देनेसे प्रति एकड़ १,००० मन या ८०,००० रत्तल पैदावार हुई। यह असाधारण अंक नहीं है।

८८२. **गिनी घासकी उपज :** बम्बईके खेतीके बुलेटिन "पश्चिम भारतकी फसल" में डा० मान कहते हैं कि, कराचीमें नाली (ड्रेन) के मैले पानीकी नयी सिंचाईसे गिनी घासकी उपज प्रति कटाईमें २५,००० रत्तल हुई और ऐसी ८ कटाई हुई। इस तरह कुल उपज २,००,००० रत्तल हुई।

किरकीमें खूब खाद देकर उसकी जादेसे जादे उपज जाननेकी कोशिश की गयी। वहाँ दूसरे और तीसरे वर्षमें क्रमसे ९२,००० और १,५१,००० रत्तल प्रति एकड़ उपज हुई। गिनी घासमें प्रोटीनकी मात्रा अच्छी होती है। फूलने पर प्रोटीनकी मात्रा ४·७३ सैकड़ा होती और उसके पहले ७·५६ सैकड़ा। यह सूखी के तौलसे है। पचनीय प्रोटीन ३·१० से ५·८३ तक होता है।

धारियोंके बीच नालीमें कच्चा गोबर दाबनेसे कोई हानि इसे नहीं होती। नालीकी खाद पानेके लिये यह उधर जड़ें बढ़ाती है। एक एक नाली छोड़कर कच्ची खाद पौधेको छेड़छाड़ किये बिनाही दी जा सकती है।

इसमें पोषक गुण बहुत है। इसका चारा मुलायम और सरस होता है।

**८८३. नेपियर या हाथी घास :** यह चिरस्थायी घासभी गिनीकी तरह विदेशी है। यह खास कर बरसातमें खूब जोरसे बढ़ती है। इसकी सबसे अधिक ऊँचाई १० फूट है। चारेके लिये इसे इतना नहीं बढ़ने देना चाहिये। उसे ३·५ फूट बढ़नें पर काट लेना चाहिये। बड़ी होने पर यह ऊखकी तरह मालूम होती है। इसका तना कड़ा होता है। ऊखको तरह इसका तना काटकर लगाना चाहिये। इसके लिये पौधेको पूरा बढ़ने देना चाहिये। मूल पौधोंसे काटकर आसानीसे इसे लगा सकते हैं।

इसकी अच्छीसे अच्छा उपजके लिये गिनी घासकी तरह खूब खाद देनी चाहिये। जाड़ेमें इसकी बाढ़ कम होती है।

लगानेके लिये ३ से ४ फुट लम्बे टुकड़े काटना चाहिये और उन्हें नालामें लम्बा लम्बा डालना चाहिये। नाली ४-४ फुट पर बनानी चाहिये। इसके लगानेका सबसे अच्छा समय बरसातमें अक्तूबर (असिन) तक है। एकड़में ४,००० टुकड़ोंकी जरूरत होती है। ढाका क्षेत्र, बंगालमें गिनी घाससे इसकी उपज दूनी है। इसका पोषक मूल्य गिनीसे बहुत कम है। पूसाके एक विश्लेषणमें इसमें केवल १·०२ सकड़ा कच्चा प्रोटीन निकला। दूसरे विश्लेपणमें कुल प्रोटीन ५·३५ और पचनीय प्रोटीन ३·८५ निकला। इसमें चूना ·४६ सैकड़ा और फॉसफोरिक तेजाब ·८० सैकड़ा है। इसमें पोटाशियमकी मात्रा बहुत जादे अर्थात् ४·८ है और इसलिये यह धानके इलाकेके अनुपयुक्त है, और पुआलके साथ नहीं खिलायी जा सकती। क्योंकि पुआलमें पोटाशियम इतना जादे है कि, वह हानिकर है।

कोयम्बतूरमें हाथी घासकी उपज प्रति एकड़ ६०,००० से ९०,००० रत्तल अर्थात् प्रायः ७५० से ८२५ मन थी। ढाकामें हरे चारेकी उपज ६ ठी दिसम्बर तक ८७७$\frac{1}{2}$ मन थी और उतने ही समयमें गिनी घास ४६७$\frac{3}{4}$ मन हुई। ढाकामें हाथी घास गिनी घाससे जल्दी हुई। बंगाल सरकार किसानोंको हाथी घासके खड बाँटती है। यह सूखा सहनेवाला और जोरदार पौधा है।

**८८४. सूखी जमीनकी पतली हाथी घास :** बंगलरके डिप्टी डाइरेक्टरने सन् १९४० के दिसम्बरके "इन्डियन फार्मिंग" में लिखा है कि, सूखा सहनेवाली घासकी खाजमें उनकोगोंको एक तरहकी लम्बी पतली हाथी घास

मिली। उसका नाम सूखी जमीनकी पतली हाथी घास रखा गया। सन् १९२७ में इसे बीजसे तैयार किया गया।

बीज बो दिये जाते हैं और पौधे जब ४०-५० दिनोंमें ९ इंचके हो जाते हैं, तब उन्हें दूसरी जगह रोपते हैं। १ रत्तल बीज से १ एकड़के लिये काफी पौधे हो जाते हैं। इसकी रोपनी बरसातमें होती है।

मैसूरमें यह बहुत अच्छी हुई है। यह सूखा बहुत बरदास्त करती है। जब और घासें जल गयीं, तब भी यह हरी बनी रही। यह घटियासे घटिया जमीनमें भी ५ फूट बढ़ती है। १ वर्षमें तीन बार काट सकते हैं जिससे प्रति एकड़ लगभग १९० मन हरा चारा होता है। इतनी कटाईसे घास कोमल बनी रहती है और प्रायः ९ महीने तक चारा देती है।

मैसूरका कृषि विभाग इसे फैलानेकी कोशिश कर रहा है कि वह खेतीके लायक काफी पड़ती जमीनमें और विस्तृत 'गामल' अर्थात् गाँवके गोचरोंमें लगायी जाय। यह खूब उपजनेवाली है। पौधोंके झड़े बीज बरसात लगते ही उग आते हैं। इसलिये एकबार लगाकर यदि कुछ भी सँभाल इसकी न हो तो भी यह नहीं मरती। यह घास केवल १८ इंच वर्षावाली जगहोंमें ही नहीं हुई है, १२० इंच वर्षाके जगहोंमें भी हुई है। सन् १९४० में मैसूर राज्यको वितरणके लिये ३,००० रत्तल बीज हुआ।

८८५. **सुदान घास :** यह बरसाती चारा उत्तरी भारत, विशेषकर पंजाबमें लोकप्रिय हो रहा है। इसका वनस्पति शास्त्रीय नाम एन्ड्रोपोगोन सोरघम (andropogan sorghum) है। नामके अनुसार यह ज्वारका ही एक प्रकार है। ज्वारसे यह खूब मिलता है और ज्वारसे इसका संकर हो सकता है। यह हरा, मीठा चारा है। इसकी कड़बी (सूखाचारा) और साइलेजभी अच्छा बन सकता है। सिंचाईसे यह ३-४ बार काटा जा सकता है। हर कटाईमें प्रति एकड़ १६,५०० रत्तल उपज है। इसकी एक विशेषता यह है कि कमसे कम समयमें इसका अच्छा चारा मिल जाता है। ज्वारके लायक किसी जमीनमें यह घास हो सकती है। सूखे आधारपर हरी सुदान घासका प्रोटीन ४·१३ सैकड़ा है।

होनूलूलूमें दुधार गायोंपर हाथी और सुदान घासोंका प्रयोग किया गया। इसमें और बातें तो एकसी पायी गयीं पर सुदान घाससे दूध ८·६६ सैकड़ा बढ़ा। यह नेपियर (हाथी घास) से अधिक स्वादिष्ट भी पायी गयी।

८८६. **सरसोंका चारा :** यह रबी तेलहनको फसल है। इसका हरा चारा हो सकता है। इसके लिये जापानी सरसों सबमें अच्छी है। रबीकी फसलके भीतर यह दो बार कट सकती है। यही किसी धरतीमें हो सकती है। इसे अधिक जुताई और खादकी जरूरत नहीं।

८८७. जलकुंभी (water-hyacinth): यह चारा नहीं है। पर बंगालको जल प्रणालीकी ईति (बड़ी बाधा) है। बगालमें इसे कचुरीपाना और बिहारमें कहीं कहीं इसे केंचुलि भी कहते हैं। यह ईति हालसे ही चली है। हर तरहके संगठित उपाय इसके उन्मूलनमें विफल रहे। बंगालके बाढ़वाले इलाकोंमें जहां चारेको किल्लत हो जाती है, कुछ दिनोंसे इसे खिलाया जाने लगा है। यह पानोपर तैरता है। इसकी जड़ें पानोसे पोषण ग्रहण करती हैं। इसका आहार मूल्य कुछ नहीं है। फिरभी बरसातमें जब कुछ भी नहीं मिलता तो इसे पुआलके साथ खिलाते हैं।

इसमें ९० सैकड़ा जल है और राखमें ३० सैकड़ा पोटाश क्लोराइड (Potash chloride) है। सूखे आधार पर इसमें १ से २·५ सैकड़ा प्रोटीन है। इसमें फॉसफेट ·३३ सैकड़ा है।

ढाकामें केवल पुआल और जल कुंभीके प्रयोगमें पात्रों (प्रयोगार्थ पशु) को तौल बेगसे घटने लगी। प्रति दिन एक रत्तल अलसीकी खली मिलानेसे अनुकूल परिणाम हुआ और पशुओंकी तौल बढ़ने लगी।

८८८. **स्पीयर घास :** पडोबल्लम (मदरास), सुरवला (पंजाब), सुरवाली, सुरवालू (बम्बई), सुरवली, गरयाली, बाल सकरी, ये नाम भी बम्बई प्रान्तमें प्रचलित हैं।

स्पीयर घास स्वाभाविक घास है। पंजाबमें यह गीली जमीन पसन्द करती है और मदरासमें अपने आप किसी धरतीमें हो जाती है। होसूरके सरकारी क्षेत्रमें प्रायः शुद्ध स्पीयर घासकी गोचर है। छोटी घास पशु पसन्द करते हैं। पर पकनेपर यह रूखी हो जाती है। पकनेपर इसके अलावा उसमें काँटेदार बीज हो जाते हैं जो जीभमें छिदते हैं। इनके कारण खाना कठिन होता है।

श्री रामिया, कृषि रासायनिक, कोयम्बतूरने इस घासका प्रयोग किया था। इसका वर्णन उन्होंने सन् १९३३ के मार्चके "इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी" में किया है। यह प्रयोग घासकी उमरके हिसाबसे उसके प्रोटीन

और खनिजोंकी मात्राओंमें जो अन्तर होता है उसका निर्णय करनेके लिये किया गया था। इस लेखमें घासका विवरणभी है।

"स्पीयर घास कठिनाईमें भी जीती रहनेवाली जातिकी है। इसकी जड़ गहरी होती है और खूब फैलती है। यह सूखा बहुत सहती है। साधारण हलकी वर्षासे (दक्षिन भारतकी) यह साल भर हरी रहती है। जिससे पशुओंको चरनेको मिल जाती है। बढ़नेका मुख्य समय सितम्बर से दिसम्बरके शुरू तक है। इसी समय इस इलाकेमें उत्तर पूरबके मेघका पानी बरसता है। फूलनेका समय नभम्बरके मध्यके लगभग है। यह घास अधिकसे अधिक २ फूट बढ़ती है। इसे पशु बहुत चाहते हैं। जब यह मर जाती है और बीज निकल आते हैं तब इसे पशु पसन्द नहीं करते। क्योंकि इसके बीज तेज कँटीले होते हैं। इसीके कारण इसका यह नाम (spear—भाला) पड़ा है। पशुपालन क्षेत्रमें घोड़ोंसे खींचा जानेवाला एक तरहका कंघा काममें लाया जाता है, इससे बीज झाड़ लिये जाते हैं। तब वह सूखी घास बनानेके लिये काटी जाती है।"

सन् १९३० में सूखी घासकी पैदावार प्रति एकड़ ७०० रत्तल थी। चारेके लिये यह सन्तोषप्रद मानी जाती है। घासका यह मैदान घना गोचर नहीं था। पर इसमें फालतू घास नहीं होने दी जाती थी। इसमें प्रायः शुद्ध स्पीयर घास ही खूब होती थी।

जाँच १८ महीने तक हुई। चार विभिन्न क्यारियोंके नमूनेका विश्लेषण होता था। घासके मैदानोंका औसत विश्लेषण नीचे दिया जाता है।

८८६. स्पीयर घासके खनिजोंकी मात्राओंमें तारतम्य या अंतरका विश्लेषण :

## आँकड़ा—६५

### विभिन्न ऋतुओंकी स्पीयर घासका विश्लेषण

[ सूखे आधार पर सैकड़ा ]

| १९३० | कैलशियम | फास्फेट | पोटाश | प्रोटीन | टिप्पणी |
|---|---|---|---|---|---|
| जनवरी | ०·३८ | ०·३९३ | १·४६१ | ४·२७ | बहुत सूखा |
| फरवरी | ०·५४४ | ०·३७१ | ०·८४२ | ३·३६ | ,, |
| मार्च | ०·४८३ | ०·२४२ | ०·८४९ | ३·१८ | ,, |
| अप्रैल | ०·७३३ | ०·४१५ | १·३४० | ३·५२ | ,, |
| मई | ०·५७५ | ०·३१९ | १·३९९ | ६·३७ | घनी वर्षा |
| जून | ०·६०७ | ०·३९९ | १·५१२ | ६·७९ | |
| जुलाई | ०·६२८ | ०·४७७ | १·३७९ | ३·८१ | |
| अगस्त | ०·७९० | ०·५१४ | १·१६३ | ४·२३ | |
| सितम्बर | ०·५८२ | ०·३४७ | १·१६२ | ५·६४ | |
| अक्तूबर | ०·४०२ | ०·४३१ | १·४३८ | ६·३९ | घनी वर्षा |
| नभम्बर | ०·३७७ | ०·५२८ | १·३९५ | ९·०७ | पूरी तरह फूलना |
| दिसम्बर | ०·४२० | ०·४३९ | १·२८१ | ४·८४ | |

स्पीयर घासमें प्रोटीन पूरा है ऐसा मालूम होता है। पर वास्तवमें यह भ्रम है। नीचेके पचनीयताके आँकड़ेसे पता चलेगा कि इसका प्रोटीन एक तरहसे अपच्य है। यदि इसे फूलनेके पहले काट लिया जाय तभी केवल इससे कुछ पचनीय प्रोटीन मिल सकता है। पौधेमें फलनेके समय सबसे जादे प्रोटीन होता है। साधारण तौरपर पौधेकी बाढ़के साथ कैलशियम और फॉसफोरिक तेजाब भी बढ़ते हैं। पर प्रोटीनकी वृद्धिके साथ फॉस्फोरिक तेजाब बढ़ता है और कलशियम घटता है।

आँकड़ेमें यह भी मिलेगा कि, फूलना खतम होनेके बाद ३-४ सूखे महीनेमें प्रोटीन और फॉसफोरस बहुत कम है। फिर जब मईमें घनी वर्षा होती है तब तुरत ही यह बढ़ने लगते हैं।

# आँकड़ा—९६

**८९०. स्पीयर घासके पचनीय प्रोटीन (सेन) :**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| बंगलूर | स्पीयर घास सूखी | (फूलने पर) | ... | ०·८९ | सैकड़ा |
| | ,, | (बीज दार) | ... | ०·०० | ,, |
| होसूर | ,, | छोटी | ... | २·९३ | ,, |
| | ,, | पुष्ट | ... | ०·८४ | ,, |
| | ,, | पकी | ... | ०·०० | ,, |
| बम्बई | ,, | छोटी (आरंभमें) | ... | २·४७ | ,, |
| | ,, | फूलनेके पहले | ... | १·८६ | ,, |
| | ,, | (फूलने पर) | ... | ०·५९ | ,, |
| | ,, | (बीजदार) | ... | ०·०० | ,, |

स्पीयर घासका विश्लेषण पचनीयताके प्रयोगके महत्वका दूसरा उदाहरण है। पचनीयताका ज्ञान यदि न हो तो फूलनेके समय स्पीयर घास काटनेकी इच्छा होगी। क्योंकि, इसी समय सालमें सबसे जादा प्रोटीन ९·०७ सैकड़ा है। पर पचनीयताके परीक्षासे पता चलता है कि ९·०७ में केवल ०·५९ सैकड़ा काममें आता है। —(बम्बईकी रिपोर्ट)। यदि फूलनेके पहले घास काटी जाय तो पचनीय प्रोटीन १·८५ सैकड़ा रहेगा। यदि और पहले काटी जाय तो और जादे २·४७ सैकड़ा रहेगा।

इसके बाद मदरास कृषि-बुलेटिन (१९४१ का ३३ नं०) में श्री रामियाने स्पीयर घासके प्रोटीनको २·४६ सैकड़ा बताया है। (६५२)

**८९१. भैंस घास** (buffalo grass) : यह खरीफ फसल है। घास होती है रूखी पर ढोर उसे स्वादसे खाते हैं। देखनेमें यह ज्वार या मकई जैसी होती है। सरकारी पशु-क्षेत्रोंमें इसका चारा बहुत अच्छा प्रमाणित हुआ है। पर यह बहुत लोकप्रिय नहीं है।

हिसारमें यह १० से १२ फूट तक बढ़ती है। एक जड़से कई जड़ें निकलती हैं। एक फसलमें २६,००० रत्तल हरा चारा होता है। बोनेके

८० दिन बाद यह तैयार हो जाती है। बरसातके पहले इसकी बाढ़ कम होती है, पर बरसातमें यह तेजीसे बढ़ती है। पोषक गुणमें यह ज्वारसे घटिया है। —(रीड)

८६२. **बर्कवानी—खावी, चतियारी, इस्किर** (बंबई) : यह मोरक्कोसे चल उत्तर अफ्रिका, अरब, फारस, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान होती पंजाब और सिंध पहुँची है। यह मरुभूमिका खास पौधा है। इसे बहुत कम पानी चाहिये ("बम्बईकी घासें" ले०—ब्लैटर)। यह हिसार, बीर, पंजाब और बीकानेरमें बहुत होती है। यह आबाद खेतोंके आसपास नहीं होती, जंगलोंमें होती है। जब तक यह मुलायम रहती है इसे पशु चरते हैं। पूरा बढ़नेपर नहीं चरते। इसे पुंजमें रखते हैं और अकालके समय काममें लाते हैं। यह बहुत सुगंधित घास है। इसकी गंध दूधमें भी आ जाती है।

८६३. **चिम्बर—घंटिल या दुब्रा** : सिंध, खानदेश, और दक्खिनमें होती है। यह बलुआ जमीनके लायक पौधा है। यह मुजफ्फरगढ़ और हिसार में भी होती है। यह हर धरतीके, रेह तकके उपयुक्त है। यह फैलनेवाली घास है। जमीनपर फैलनेवाले पौधोंमें यह खूब प्रसिद्ध है। यह खूब उपजती है। चराई और सूखी घास दोनोंके लायक है। मुजफ्फरगढ़ जिले और सीमाप्रान्तमें बलुआ धरतीमें यह दूबकी जगह काममें आती है। वसन्त और बरसातमें इसकी जड़ लगायी जाती है।

८६४. **चमूर** (पंजाब) : गित, सेरा, मेल, शानसुखा, घरम, घमार, गिरनी, मंगहर, बार्न, बरवारी, बड़ीगागली भी इसके नाम हैं।

विस्तार : अरब, अफगानिस्तान, पंजाब, गंगाका ऊपरी पठार (समतल भूमि), पच्छिमी अन्तरीप, सिंहल, आस्ट्रेलिया।

स्थान : पंजाब, सिन्ध, कच्छ, काठियावाड़, पच्छिमी घाट और दक्षिण महाराष्ट्र।—(ब्लैटर)

यह बारहमासी और स्थायी घास लम्बी होती है। इसके लिये उपजाऊ धरती चाहिये। झाड़ियोंके नीचे जहाँ गोबर रहे वहाँ यह साधारण तौरपर होती है। यह घटिया घास है। इसका कटु और नमकीन स्वाद है। जब यह मुलायम रहती है तब कभी कभी पशु इसे चरते हैं।

८६५. **लैम्प घास** : (Aristida Depressa, A. Adscensionis) :

नाम : मोटली बुड़ी, लौंगी कुस्सल, लानी ।

विस्तार : बहुनसे गरम देशोंमें ।

स्थान : सीमाप्रान्त, पंजाब, सिन्ध, गुजरात, खानदेश, पच्छिमी घाट, दक्खिन, जहाँ यह अनेक तरहकी धरतीमें हो सकती है। यह केवल चरी जाती है। क्योंकि इतनी छोटी और हलकी है कि इसकी पंज नहीं लगायी जा सकती और इतनी महीन और मुलायम है कि, हँसुआसे कट नहीं सकती। पशु इसे बहुत स्वादसे खाते हैं। यह बहुत ही पुष्टिकारक है।

८६६. **मकरा घास :**

नाम : बम्बई—गंधी, अंची मंची, जगर सम्मी ।

विस्तार : सभी गरम देश ।

स्थान : पंजाब, सिन्ध, कच्छ, पच्छिमी घाट, दक्खिन, दक्षिण महाराष्ट्र, उत्तर कन्नड़ ।—(ब्लैटर)

यह घास जहाँ तहाँ होतो है। कर्नाटकके सूखे भागके ऊसरों तथा खेतोंमें होती है। इसे अच्छी धरती चाहिये। यह जल्दी होनेवाली घास है। पर खूब नहीं होती। जुनी और खादवालो जमीनमें होती है।

८६७. **पलवान :**

नाम बम्बईमें : चंगा, मारवल, पयेन, पलका, पलवान ।

स्थान : सीमाप्रान्त, पंजाबसे लेकर गुजरात, दक्खिन, पच्छिमी घाट, दक्षिण महाराष्ट्र और उत्तर कन्नड़ ।

विस्तार : न्यूनाधिक सारा भारत, खासकर सूखे भागोंमें; सिंहल, अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, अफ्रिका ।

चराने और पुंज लगाने दोनों कामके लिये यह सब जगह प्रशंसित है। आस्ट्रेलियामें भो इसका मूल्य बहुत माना जाता है। वहाँ बहुत दिनोंतक सूखा सहनेवाली घासोंमें यह भी सर्वोत्तम घास मानी जाती है। सूखाकी हालतमें भी इसमें चारा बेहद होता है। अगर बहुत कड़ा जाड़ा न हो तो यह जाड़ेमें भी उपयोगी होती है। सीमाप्रान्तमें यह दूबकी तरह पोषक मानी जाती है।

८६८. **सामाक घास :** पंजाब—साँवक; बंबई प्रान्त—बोरूर, पाकुड़, पाकुशामा, तोर, तोड़िया, तिरिया, साँवक। यह सारे भारत, सिंहल और गरम देशोंमें होती है। इसका मूलस्थान शायद अफ्रिका और भारत है। कठिन

भूमिमें यह सबसे अच्छी होती है। जल्दी जल्दी बढ़ती है। बहुत सुन्दर हरा चारा है। कहा जाता है कि जंगली सांवकसे ढोरकी हालत बनती है और वह मोटाते हैं।

८९९. **पेड़के पत्तोंका चारा :** पेड़के पत्ते अकाल बाढ़ और साधारण समयमें भी चारेके लायक हैं, यह कहा जा चुका है। (४५५-'५७) विश्लेषणके आंकड़ेमें (९२९-'३०, ९३३) युक्तप्रान्त, बंबई, और मदरासके कुछ पेड़ोंके पत्तोंके नाम हैं।

आंकड़ेसे पता चलता है कि, इन पत्तोंमें कितना जादा प्रोटीन है, अर्थात् १० से १६ सैकड़ा तक है। इस मामलेमें यह फलियोंके सूखे चारेके समान हैं। इनकी पचनीयताका पता नहीं लगाया गया है। पर इनमेंसे कुछको जिस चावसे गायें खाती हैं उससे आशा होती है कि इनमें पचनीय प्रोटीन संतोषजनक है। इनमें कैलशियम भी जादे है।

पेड़के पत्ते जिससे गायका नियमित आहार बन सकें इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। साथ ही प्रोटीन और खनिजोंको पचनीयताकी पूरी जाँच होना चाहिये।

९००. **पुष्टई :** ठीक तरहसे रूखा चारा खिलानेके महत्व पर जोर दिया जा चुका है। पर उत्पादक कार्य सिर्फ रूखे चारेके बल पर नहीं हो सकता। सबसे पहली चीज बढ़िया सूखे चारे हैं। इनके साथ पुष्टईभी जरूर देनी चाहिये जिससे दूध, भारवहन या गर्भधारण जैसे आवश्यक उत्पादन-कार्य सम्पन्न हो सकें।

जिन देशोंमें पशुपालन और गव्यधन्धेका विकाश हो चुका है वहाँ क्षेत्रमें सभी रूखे चारे और पुष्टई पैदा करनेका प्रयास हो रहा है। अगर यह भारतमें भी हो सके तो बहुत अच्छा हो। परन्तु खेर इतने बँटे हुए हैं कि स्वयपूर्ण स्वावलम्बी गव्यक्षेत्रों और गव्यधंधोंका प्रबन्ध करना प्रायः असंभव है।

यदि किसान पुष्टई नहीं उपजा सकें तो उन्हें खरीद या बदलकर लेना जरूरी है। पुष्टईका वर्गीकरण इस तरह हो सकता है :

१. अन्न, फलियाँ, कन्द आदि,

२. खली,

३. क्षेत्रके उपजात द्रव्य,

४. पशुजनित पदार्थ।

**६०१. अन्न, फलियाँ और कन्द:** सभी अन्नमें स्टार्च (लावा) प्रचुर है। इनमें रेशा जरासा ही है। कुल पचनीय पोषक बहुत हैं। इसलिये इनसे बहुत शक्ति मिल सकती है। यह बहुत स्वादिष्ट होते हैं। चावल, मकई, गेहूँ आदि ढोर रुचिसे खाते हैं। यदि ये रुचिकर चीजें पशुओंको दी जायें तो वह अधिक रूखा चारा खा सकते हैं।

अन्नमें साधारण तौरपर फॉस्फोरस कम होता है। उनमें यह सूखी घासकी फसलसे कुछ ही जादे होता है। अन्नके कुछ उप-उत्पादनमें फॉस्फोरस प्रचुर होता है। फलियोंके सूखे चारेमें कैलशियम और काफी प्रोटीन होते हैं। अतएव फलीके पुआलसे अन्नके पुष्टईमें जो कमियाँ हैं वह पूरी की जा सकती हैं। पर फलियोंके सूखे चारेमें भी फॉस्फोरस अधिक नहीं है।

भारतमें अन्न ढोरको बहुत कम खिलाया जाता है। उसका साफ कारण यही है कि, उसे मनुष्य खाते हैं। चावलकी जरूरत पूरी करनेके लिये भारतमें बर्मासे चावल आता था। इससे मनुष्यकी जरूरत मुश्किलसे पूरी होती थी। इसलिये शक्तिके लिये ढोरको चावल खिलानेकी संभावना नहीं है। भारतके ढोरको शक्तिके लिये पुआलों और दूसरे अच्छे रूखे चारों पर ही निर्भर रहना है।

पर अन्नके उपजात काममें जादा आते हैं। कुछका हाल नीचे लिखा जाता है।

**६०२. उपजात—शलगम:** शलगम मनुष्यका आहार है। चारेके लिये भी उपजाया जाता है। यह रबीकी फसल है। बोनेके ८ हफ्ते बाद खोदा जा सकता है। इसकी कुट्टी ढोरको खिलायी जाती है।

**६०३. चावलका चोकर:** गुँड़ा (बिहार), कुँड़ा (बंगाल)। चावलका चोकर खिलानेका प्रयोग बंगालमें (८०६) करबरी और चटर्जीने सन् १९३७ में किया था। (एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, १९३८)। विदेशी नमूनेके विश्लेषणमें ८·५ सैकड़ा गुँड़ा और ३ सैकड़ा चावलकी पालिश (खुद्दी) निकली। कुटे धानका कुल ११·५ सैकड़ा काममें आ सकता है। भारतमें जितना धान होता है उसके हिसाबसे ११½ सैकड़ा बड़ी चीज है। देहातमें गुँड़ा और पालिशको एक साथ मिला दिया जाता है। देहातमें चावल उतना नहीं छाँटा जाता जितना मिल में। इसलिये सारे भारतका चोकर कुल धानकी उपजका १० सैकड़ा मान सकते हैं। इससे भी ढोरोंको बहुत खुराक मिल सकती

है। चावलके गुँड़े या चोकरमें भिटामिन बी बहुत है। भिटामिनकी कमी पूरी करनेके लिये इसे आदमीको ताजा खिलानेकी सिफारिश की गयी है।

**६०४. चावलके गुँड़ेमें तेल :** चावलके गुँड़ेमें प्रोटीन थोड़ा, तेल प्रचुर है। बंगालके प्रयोगोंमें गुँड़ेमें खाने लायक १० सैकड़ा तेल निकला।

चावलके चोकरके विश्लेषणमें फॉसफोरस ६ सैकड़ासे जादा पाया गया। अन्य खनिजोंमें मैगनीशिया २.६ सैकड़ा, चूना सिर्फ ०.२ सैकड़ा पाया गया।

बंगालके प्रयोगने यह सिद्ध किया है कि इसमें बड़ी बड़ी चीजोंके रहते भी परिणाम सन्तोषकारी नहीं हुआ। पशुओंको धानके पुआलके साथ गुँड़ा देनेपर जितना आहार वह खाते थे, उतना नहीं खा सके। खानेसे उन्हें अरुचि हो गयी। ९ पशुओंमें ६ की तौल बहुत घट गयी। यद्यपि पुआल कम खानेसे प्रयोजनीय शक्तिमें कमी पड़ सकती थी पर गुँड़ेका प्रचुर तेल संभवतः उसे पूरा कर सकता था। किन्तु ऐसा कर नहीं सका।

**६०५. पचनीयताकी जाँच—चावलका गुँड़ा :** पचनीयताकी जाँचमें यह पाया गया कि दो तिहाईसे तीन चौथाई तक प्रोटीन पचे बिना निकल जाता है। फॉसफोरस बिलकुल अपचनीय है। यद्यपि निर्वाहके लिये १० ग्रामके लगभग की जरूरत थी, फिरभी ४३ ग्राम फॉसफोरस खानेपर भी ऋणात्मक परिणाम हुआ। अर्थात् खाया हुआ सारा फॉसफोरस देहके बाहर निकल ही आया, और साथही शरीर तन्तुओंका फॉसफोरस भी कुछ निकाल लाया।

प्रयोगियोंका विश्वास है कि गुँड़ामेंका फॉसफोरस फिटीन (phytin) के रूपमें है, जो जल्दी पच नहीं सकता। इसके साथ कम चूना, अत्यधिक मैगनीशियाने इस चीजको कौड़ी कामका नहीं रखा है। प्रयोगके पात्र पशु इस पुष्टईके अभ्यस्त थे या नहीं इसका कोई जिक्र नहीं है। (६५२)

**६०६. गुँड़ाके उपयोगकी सीमा :** श्री गौसिपने ३ से ३½ सेर तक गुँड़ा खिलाकर फिरोजपुरमें प्रयोग किया। परिणाम इतना बुरा हुआ कि ३ पशु मर गये।

पर ३ या ३½ सेर गुँड़ा बहुत अस्वाभाविक आहार है। अभीतक चावलके गुँड़ेके प्रयोगमें ऋणात्मक परिणाम निकला है। पर प्रयोगके इन खिलाइयोंमें त्रुटि थी। गुँड़ामें पचनीय फॉसफोरस नहीं होता और चूना कम होता है। यह जानकर यदि पचनीय प्रोटीन (यह ६ सैकड़ासे अधिक पचनीय है) और तेलके

लिये यह थोड़ासा खिलाया जाता और दूसरी चीजेंभी युक्त रखी जातीं तो परिणाम अनुकूल हो सकता था। यह तो सही है कि ढोरको गुँड़ा खिलाया जाता है और उसका परिणाम भी असन्तोषप्रद नहीं है। आहारके प्रयोगोंसे अब चावलके गुँड़ेमें फॉसफोरसकी पचनीयताकी त्रुटि और चूनेकी कमीका पता चल गया है। उसका उपाय कैलशियम फॉस्फेट खिलाना है। हड्डीके चूर्णसे दोनों चीजें मिल सकती हैं।

**६०७. धानके पुआलके साथ चावलका गुँड़ा खिलाना :** धानके पुआलके साथ जितना प्रोटीन चाहिये उस हिसाबसे खली या फलियोंका सूखा चारा और चावलका गुँड़ा, कुछ हरी घास और हड्डीका चूर्ण खिलाया जा सकता है। इससे पूरा लाभ होनेकी संभावना है। गुँड़ामें तेलकी प्रचुरता है। इस कारण वह बहुमूल्य पुष्टई हो सकती है। शर्त यही है कि उसकी त्रुटियोंको दूर करनेके लिये उसके साथ हड्डीका चूर्ण भी दिया जाय। इस मामलेमें यह याद रखना चाहिये कि चावलके गुँड़ेमें मैंगनीशियमकी मात्रा बहुत जादे है और इसको अतिरिक्त मात्रामें खिलानेसे बड़ी हानि हो सकती है।

**६०८. गेहूँका चोकर :** हम देख चुके हैं कि गेहूँके पुआलका रूखा चारा उपयुक्त नहीं है (८२६)। पर उसका चोकर वैसा नहीं है। यह बहुत अच्छी पुष्टई है। इसमें १५ सैकड़ेसे (बंगलूर) ११ सैकड़े (पूसा) तक प्रोटीन है, जिसमें क्रमशः ११·८ और ८·७ सैकड़ा पचनीय है। इसमें १·७ से ३·४ सैकड़ा स्नेह है। विश्लेषणसे नीचे लिखे अंक मिलते हैं।

## आँकड़ा—६७

### गेहूँके चोकरके पोषक

| | पचनीय प्रोटीन | एस० ई० | कैलशियम | फॉसफोरस |
|---|---|---|---|---|
| बंगलूर | ११·८ | ५६·९ | ·२२ | ६·२३ |
| पूसा | ८·७ | ५३·७ | ·२५ | १·९८ |

इसमें फॉसफोरस बहुत जादे है। कुल पचनीय पोषक जादे होनेके कारण एस० ई० ५३ से ५६ रत्तल तक है। गेहूँके आटेकी अपेक्षा उसके चोकरकी

प्रोटीन कहीं अच्छी है। पर दूधके प्रोटीनके इतना इसका प्रोटीन युक्त (समतुलित) नहीं है। आहारका निर्वाचन करते समय यह याद रखना चाहिये। दूसरी चीजोंके प्रोटीन इसमें मिला देना चाहिये जिससे सुधार हो सके। इसमें उत्कृष्ट फॉसफोरस प्रचुर है।

गेहूँका चोकर अति रुचिकर चारोंमें एक है। यह हलका रेचक भी है। यह वजनमें बहुत हलका होते हुए भी बृहदाकारके कारण देखनेमें बहुत जादे मालूम होता है।

६०९. **फलियोंका दलहन :** दलहन मनुष्यका आहार है। भारतमें इसे दुधार गायोंको खिलाते हैं। इसका बहुत सुन्दर परिणाम होता है। सभी दालें मनुष्यकी खुराक हैं। इनमेंसे सस्ती चुनकर ढोरको खिलायी जाती हैं। दूध बढ़ानेमें उर्द (माष) सभी दालोंमें नामी है। दूसरी दालेंभी दुधार गायको दी जाती हैं। खेसारी (Lathyrus Sativus) उन सबमें सस्ती है। बैल और साँढ़की हालत ठीक रखने और उनकी सामर्थ्य बढ़ानेके लिये उन्हें चना दिया जाता है। दालोंमें (फलियोंमें) चूना और प्रोटीन प्रचुर हैं। इसलिये इन दोनों पदार्थोंकी कमी फलियोंसे पूरी होती है।

६१०. **उपजात—चुन्नी :** दालकी दलाईमें चुन्नी उसकी उपजातके रूपमें है। यह जादेतर ढोरको खिलायी जाती है। यह फलियोंसे पैदा होती है, इससे इसमें प्रोटीन प्रचुर है। इसमें खनिज द्रव्य भी प्रचुर हैं। यह दूध बढ़ाती है। किस दालकी चुन्नी है, दाल कैसे दली गयी, उसमें कितना कचरा है, इन बातोंपर चुन्नीका आहार मूल्य बहुत निर्भर है। इसकी पचनीयताकी जाँच बहुत कम की गयी है। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि इसमें एस० ई० २६ और पचनीय प्रोटीन ४·५ है।

६११. **उपजात—फलियोंकी भूसी :** मनुष्यके खानेकी दालपर से भूसी छुड़ा दी जाती है। यह भूसी बहुत मूल्यवान चारा है। इसमें भूसीके अलावे कुछ दालका भी अंश रहता है। इससे इसमें अतिरिक्त गुण आ जाता है। यह स्वादिष्ट और पुष्टिकर है तथा पुष्टईका काम करती है।

चनेकी भूसी (चनाकी धूलसे रहित) की पचनीयताकी जाँचसे पता चलता है कि, यद्यपि कच्चा प्रोटीन ५·९९ सैकड़ा है पर पचनीय कुछ भी नहीं है। पचनीय प्रोटीनका प्रतिशत ०·०० मिला। इसका एस० ई० ४७·० है।

अरहरकी भूसीकी पचनीयताकी जाँच नहीं हुई है। इसमें कच्चा प्रोटीन ७·०४ है। अर्थात् पूर्ण अरहरके ही लभभग है। इसके खनिजोंका पता नहीं लगाया गया है।

• ६१२. **खली :** खली भारतमें पुष्टिकर आहारोंमें सबसे मुख्य है। ढोर चावसे खली खाते हैं। अरुचिकर पुआलके चारे पर जरासी खली छिड़कनेसे वह भी रुचिकर हो जाता है। खली से प्रोटीन और फॉसफोरस जिसकी बहुत जरूरत है मिलते हैं। इसकी कमी पुआलमें बहुत जादे है। रूखे चारेका बहुत कुछ सुधार खलीके प्रोटीन और फॉसफोरस से हो जाता है। सभी पशुरक्षक कोई न कोई खली काममें लाते ही हैं।

प्रान्तोंमें जैसा तेल होता है उसके अनुसार खली भी तरह तरह की होती है। सरसों, तोरी, बिनौला, तिल, नारियल, मूँगफली इन सभी चीजों की खली ढोरको खिलायी जाती है।

ढोरको खिलानेके लिये गाँवमें बैलकी घानीकी खली जादे अच्छी है, क्योंकि उसमें कुछ अधिक तेल होता है। इसके कारण उसका आहारगुण बहुत बढ़ जाता है क्योंकि इससे आहारका शक्ति गुण बढ़ता है। यदि यह प्रोटीन, शक्ति और फॉसफोरस देनेवाली चीज नहीं खिलायी जाय तो काम करनेवाले बैल आधा ही काम करेंगे।

आजकल बहुत जादे तेलहन शहर चला जाता है और वहाँ मशीनमें पेरा जाता है। मशीनसे दबाब बहुत पड़ता है। इससे सभी तेल निचुड़ जाता है। ऐसी खली खादके लिये अच्छी है। क्योंकि खादमें तेलका रहना बुराई है। पर ढोरको खिलानेके लिये वह घटिया चीज है। किसान ढोरको खिलानेके लिये मशीनकी खली नहीं लेना। साधारण खलीका ही विश्लेषण दिया गया है, मशीनकी खलीका नहीं।

६१३. **बिनौलाकी खली :** बिनौलेको पेरकर तेल निकालते हैं। और तेल निकालने पर जो छूँछा बच रहता है उसे खली कहते हैं। बिनौला पेरनेके पहले उसे कूट कर उसका छिलका छुड़ा लेते हैं। पर बिना कूटेभी तेल निकाल लेते हैं। पूरे बिनौलेकी खलीको पूरे बिनौलेकी खली कहते हैं। कूटे बिनौलेकी खलीको सिर्फ बिनौलेकी खली कहते हैं। साधारण खलीमें ४१ सैकड़ाके लगभग प्रोटीन है। पूरे बिनौलेकी खलीमें छिलकाभी रहता है, इसलिये उसमें रेशे अधिक

होते हैं। इसलिये उसका प्रोटीन घटकर २५ से २८ सैकड़ा रह जाता है। खलीका दाम नाइट्रोजनके अनुसार होता है।

बिनौलेकी खली फॉस्फोरसयुक्त विशेष पुष्टिकर आहारोंमें एक है और बहुत पौष्टिक है। ४३% प्रोटीनवाले प्रकारमें यह १·२ सैकड़ा होता है। साधारण तौरपर सभी खलियोंमें कैलशियम कम होता है। पर तुलनात्मक दृष्टिसे इस खलीका ·२ सैकड़ा चूना बुरा नहीं कहा जा सकता। दूसरे तेलहनोंकी खलियों की तरह बिनौलेकी खलीमें भी भिटामिनका अभाव है। भिटामिनकी कमी हरी घाससे दूर करनी चाहिये। कैलशियमकी कमी फलियोंका सूखा पुआल और हड्डीकी बुकनी मिलाकर दूर करनी चाहिये।

बिनौला खानेवाली गायका मक्खन कड़ा होता है। बिनौलेके आहारमें गौसीपोल (Gossypol) नामकी चीज यथेष्ट मात्रामें है। यह विषैली चीज है। पर ढोरोंपर इसका असर नहीं होता। इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि ३-४ महीनेके बछरूको यह ज़ादे न खिलाया जाय। बिनौलेका तेल निकालनेके लिये उसे गरम करनेसे या घानीकी गरमीसे गौसीपोल नष्ट हो जाता है अथवा उसका रूपान्तर हो जाता है। सूअरके संवर्धनमें ही इसका महत्व है, क्योंकि बड़े ढोरों पर गौसीपोल का असर नहीं होता।

**६१४. बिनौलेका छिलका :** सूखी बरमुडा (दूब) घास तथा अन्य सूखी घास और बिनौलेके छिलकेके तुलनात्मक गुणके बारेमें प्रो० जे० एल० फ्लेचरने साउथ लुसियाना इन्सटिट्यूटमें प्रयोग किया था (एग्रिकलचर एन्ड लाइम-स्टॉक इन इंडिया, नभम्बर, १९३४)। उन परीक्षित वस्तुओंके उपादान नीचे लिखे अनुसार हैं :—

## आँकड़ा—६८

**बिनौलाके छिलके, सूखी दूब और दूसरी सूखी घासकी तुलना**

| नमूना | जल | राख | कच्चा प्रोटीन | रेशा | नाइट्रोजनरहित एक्सट्रैक्ट | स्नेह | पचनीय प्रोटीन | कुल पोषक |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बिनौलेका छिलका | ७·३८ | २·८ | ४·०३ | ५३·२५ | ३१·८४ | ०·७० | ०·२४ | ३७·३४ |
| बरमुडा सूखी १ | ४·९५ | ७·२० | ६·१२ | ४०·९५ | ३९·८३ | ०·९५ | ३·१८ | ४५·६८ |
| सूखी घास २ | ५·४५ | ७·६० | ८·८८ | २९·२५ | ४७·१७ | १·६५ | ४·६२ | ४५·४५ |
| सूखी घास ३ | ६·८५ | ७·७५ | १४·३८ | २९·४५ | ३९·६२ | १·९५ | ७·९१ | ५३·१३ |

इन प्रयोगोंमें दुधार गायोंको साइलेज, दाने और कैलशियमके पूरकसे प्रस्तुत सभी साधारण चारे खिलाये गये। इनके अतिरिक्त केवल बिनौलेका छिलका और सूखी घास फेर बदल कर खिलायी गयी। गायके एक दलको दानेके बराबर तौलकी घास दी गयी। उनके दूधका लेखा रखा गया। उन्हीं गायोंको दूसरा खाना दिया जाने लगा जिसमें सभी चीजें पहलेकी तरह थीं, केवल सूखी घासके बदले बिनौलेका छिलका दिया गया। परिणाम लिख लिया गया। तीन तरहकी सूखी घासें खिलायी गयीं।

यह निष्कर्ष निकला कि दूधकी उत्पत्तिके लिये बिनौलेके साथ चूनेकी पूर्त्तिवाली चीज, हरियाली और प्रोटीन देनेसे वह पहाड़ी सूखी घाससे श्रेष्ठ है और क्लोभर मिश्रितसे घटिया। हमारे देशमें समान तौलकी सूखी घासके बदले बिनौलेका छिलका दिया जा सकता है। पर वह हरे चारेकी एक चौथाईसे जादे न हो।

६१५. **अलसीकी खली :** दुधार पशुके लिये अलसीकी खली सबसे अच्छा प्रोटीन पूरक है। इसमें सिर्फ प्रोटीन ही प्रचुर नहीं हैं, यह स्वादिष्ट भी है। ढोरको प्रोटीनके लिये केवल अलसीकी खली देनेसे अच्छी तरह काम हो जाता है। इसका रेचक उपकरण इसका विशेष गुण माना जाता है। अन्य अनेक पुष्टइयोंसे अलसीको खली दिया हुआ चारा दुधार गाय और बछड़ोंको अधिक सन्तोष देता है। बछड़ेके पालनेके सिलसिलेमें बछड़ेके लिये अलसीके आहारका विचार किया गया है। अलसीकी खलीमें २५ सैकड़ा पचनीय प्रोटीन, ५२ सैकड़ा चूना और २·२ सैकड़ा फॉसफोरस होता है। इस कारण वह आला दर्जेकी पुष्टई है।

६१६. **मूँगफलीकी खली :** इसमें अत्यन्त प्रोटीन है। इसमें ५० सैकड़ासे अधिक प्रोटीन है। पचनीय कच्चा प्रोटीन ४६·३ सैकड़ा है। इसमें ८ सैकड़ा स्नेह, ·२८ सैकड़ा चूना, १·२८ सैकड़ा फॉसफोरस और ७६ रत्तल एस० ई० है।

मूँगफली ढोरके लिये उत्तम प्रोटीन पूरकोंमें एक है। इसकी प्रोटीन खास तौर पर ऊँचे दर्जेकी है। इसके स्वादके कारण पशु इसे बहुत चाहते हैं। बिनौला, अलसी और मूँगफलीका आहार मूल्य एकसा है। बछड़ोंके लिये मूँगफलीकी खलीकी श्रेष्ठता प्रसिद्ध है। मूँगफलीकी खली कुछ रेचक है। यदि अच्छी तरह उसका तेल नहीं निकाला गया है तो उसकी रेचकता कष्टदायी हो सकती है। भारजीनियाके प्रयोगमें दूधके लिये यह बिनौलेके आहार से श्रेष्ठ पायी गयी।

६१७. **नारियलकी खली :** नारियलकी खलीमें मूँगफली आदि के खलीसे कम प्रोटीन है। इसमें कुल २१·१ सैकड़ा पचनीय प्रोटीन है। पर इसका एस० ई० मूल्य बहुत ऊँचा ९० है। इसमें चूना ·१ सैकड़ा और फॉसफरोस १·८ सैकड़ा है। यदि नारियलमें कुछ नमी रह जाय तो खली जल्दी सड़ जाती है।

इसकी प्रोटीन बहुत अच्छे प्रकारकी नहीं है। दुधार गायको खिलानेके लिये इसकी प्रोटीनका भरोसा नहीं करना चाहिये। इस खलीमें कुछ तेल रहता है और ऐसा माना जाता है कि उसके विशेष गुणके कारण उसे खानेवाली गायको मक्खन अधिक होता है। इसमें सन्देह नहीं कि आहारके स्नेहका असर मक्खनके परिमाण और प्रकार पर होता है। मक्खनका प्रकार ही नहीं बदलता, मक्खनका परिमाणभी बढ़ जाता है। नारियलकी खली खानेवाली गायका मक्खन लोग पसन्द नहीं करते हैं।

**६१८. तिलकी खली :** तिलकी खलीमें ४४ सैकड़ा कच्चा प्रोटीन और १२ सैकड़ा स्नेह होता है। इसलिये यह प्रोटीन और स्नेह-प्रचुर खास तौरपर मानी जाती है। यह बहुत दिन तक ठीक रहती है। जल्दी नहीं सड़ती।

दुधार गायोंको खिलानेसे संन्तोषप्रद परिणाम हुआ है और दूध बढ़ा है। यह कहा जाता है कि योग्यतम मात्राके अतिरिक्त खिलानेसे दूधके घन पदार्थोंमें कमी आ जाती है (लिंटन)। ५०० रत्तलकी गायको १ या १½ रत्तल दे सकते हैं। यह सीमासे बाहर नहीं होगा। यह खली कभी यूरोप खासकर फ्रांस और जर्मनीमें बहुत प्रचलित थी।

**६१९. सरसोंकी खली : लाल सरसोंकी खली :** इसके यौगिक नीचे लिखे अनुसार हैं :—

## आँकड़ा—२९

### सरसों क ख .  श्लेषण

| जल | कच्चा प्रोटीन | स्नेह | कार्बोहाइड्रेट | रेशा | राख |
|---|---|---|---|---|---|
| ९% | ३८% | ८% | २४% | ८% | १३% |

विश्लेषणसे पता चलता है कि यह अलसी और अन्य प्रसिद्ध खलियोंसे बहुत भिन्न नहीं है। पर यह खली दूसरी खलियोंके ऐसा बढ़िया आहार नहीं मानी जाती है। इसका तेल झाँसदार होता है। इसके कारण सरसोंका स्वाद खास तरहका होता है। इसीके कारण यह फफोला उठा सकती है। इसीके कारण दुधार गायके लिये इसका आहार-गुण कम हो गया है। दुधार गाय और बछड़ोंको यह नहीं देना चाहिये। बैलोंको यह खूब दिया जाता है।

**६२०. बिनौला :** ब्रिटिश भारतमें कपास रुपयेवाली मुख्य फसल है। लगभग १५० लाख एकड़में हर साल इसकी खेती होती है। यह कुल खेतीकी जमीनका १५·४% है। इसका रेशा ओटकर बिनौलेसे अलग किया जाता है। कपासका यह उपजात है और बहुत मिलता है। दुनियाँके अनेक भागोंमें यह ढोरोंको सूखा, भिगाया हुआ या उबाला हुआ खिलाया जाता है। यह माना जाता है कि, बिनौलेका छिलका रेशेदार और बहुत कड़ा है। पचनेमें कठिनाई होती

है। भिगाने या उबालनेके पहले इसे अच्छी तरह कूट सकते हैं। बिनौला खिलानेसे दुधार पशुके मक्खनमें कड़ापन आता है। देशी तरीकेसे घी बनानेमें इससे बहुत सहूलियत होती है। मौरीसन कहते :

"बहुत जादे बिनौला खिलानेसे पशुओंको पतले दस्त हो सकते हैं, क्योंकि इसमें तेल बहुत है। दुधार गायोंपर परीक्षा करनेके समय ऊँचे दर्जेकी १०० रत्तल बिनौलेके चूर्णकी समानता करनेके लिये १७१ से २०६ रत्तल बिनौलेकी जरूरत हुई थी।"

६२० क. **गाजर :** उत्तरी गुजरातके कुछ हिस्से, राजपुताना, मध्यभारतमें पशुओंको खिलानेके लिये गाजर पैदा किया जाता है। यह जाड़ेमें खिलानेकी बहुत अच्छी चीज है। इसमें जलका अंश बहुत जादे ८० से ९० सैकड़ा है। सूखी सामिग्रीमें कार्बोहाइड्रेट प्रचुर है। प्रोटीन, रेशा और खनिज द्रव्य कम हैं। इसकी पचनीयता बहुत जादे है। यह स्वादिष्ट है। इसमें विटामिन खूब हैं। गायको गाजर खिलानेसे दूधमें सुगन्ध आ जाती है। यह कुछ रेचक है और दूध बढ़ाता है।

६२१. **राब (शीरा) :** चीनी बनानेमें राब एक उपजात है। यह बहुत गुणकारी है। अन्नकी जगह यह बहुत कुछ पूर्तिके तौरपर काममें आ सकता है। पर इसमें प्रोटीन कम है। विश्लेषणसे इसमें नीचे लिखी चीजें निकलीं :—

## आँकड़ा—१००

### राबका विश्लेषण

| | | | |
|---|---|---|---|
| घुलनेलायक कार्बोहाइड्रेट | ... | ... | ७०·०९ सैकड़ा |
| प्रोटीन | ... | ... | ·६ ,, |
| राख | ... | ... | ४·५८ ,, |

यह माना जाता है कि, पुष्टईके रूपमें ढोरको राब खिलाना हानिकर है। राब खिलानेका सही असर क्या होता है यह जाननेके लिये पंजाब कृषि कॉलेजमें कुछ दिन तक परीक्षण हुआ था। परीक्षणमें जहाँ तक हो सका पशुओंके साधारण चारेमें कुछ गड़बड़ी नहीं की गयी। दो रत्तल राब नित्य ढोरको खिलायी

जाती थी और उसका परिणाम देखा गया। पाया गया कि दो रत्तल तक राब ढोर हिचकके बिना खा जाते थे। कुछ बैलोंको कई दिन खिलानेके बाद थूक आना शुरू हुआ। नमक देनेपर यह बन्द हो गया। नमककी चट्टानें पशुओंके आगे रख दी गयीं। वह जब चाहते थे उसे चाटते थे।

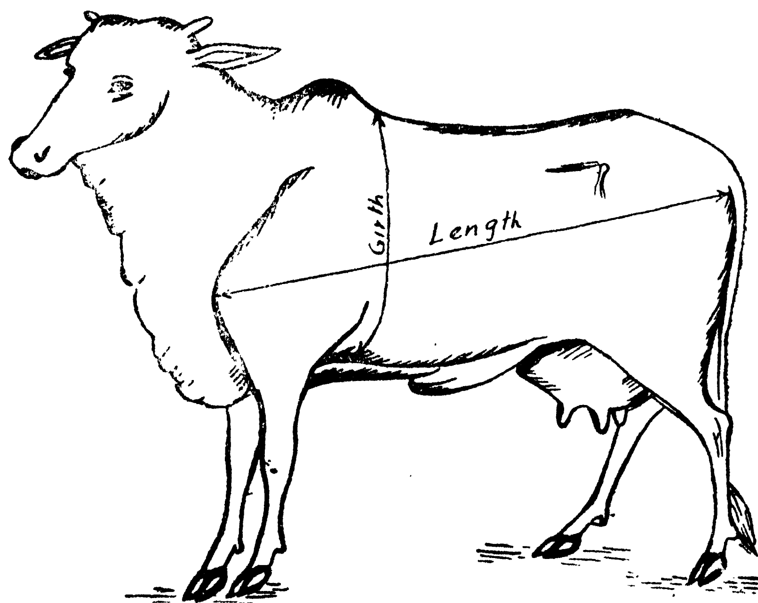
इस प्रयोगसे पाया गया कि काम करनेवाले बैलोंके लिये २ रत्तल राब २ रत्तल मकईकी पुष्टिकी जगह ले सकता है। दुधार गायोंके लिये १ रत्तल राब १ रत्तल चोकरके बदले दिया जा सकता है। इससे गायोंके दूधके परिमाणमें कोई खास फर्क नहीं पड़ा। इस बातका ध्यान रखा गया कि, राबकी प्रोटीनकी कमी दूसरी चीजोंसे पूरी की जाय।

**६२२. जाड़ेमें राब खिलाना :** बैलोंको २ रत्तल से अधिक राब खिलानेसे उपयोग सन्तोषदायक नहीं था। गरमी पड़नेके पहले जनवरीसे अप्रैल (१९३३) तक बैलोंपर परीक्षण चला।

**६२३. गर्मीमें राब खिलाना :** २० जुलाईसे २७ सितम्बर तक गर्मीमें राबका असर देखनेके लिये प्रयोग चलता रहा। पशुओंकी तन्दुरुस्ती बिगड़ने लगी। इसलिये प्रयोग बन्द कर दिया गया। उनका गोबर पतला और काला होता था। कुछने खाना छोड़ दिया और कुछ धूपमें काम करनेके समय हाँफते थे। यह तय हुआ कि गर्मीमें राब खिलाना उचित नहीं। जाड़ेमें राब ठीक है इसको पक्का करनेके लिये अगले जाड़ेमें फिर राबका प्रयोग हुआ। पहले जाड़ेके परिणामकी पुष्टि हुई कि, काम करनेवाले बैलको २ रत्तल मक्काके बदले २ रत्तल राब दी जा सकती है।

**६२४. पशुजन्य पदार्थ :** सिझायी हड्डीका चूर्ण, सिझाये मांसका चूर्ण और हड्डी ये पशुजन्य पदार्थ काममें बहुत आते हैं। हड्डीका चूर्ण तैयार करनेके लिये हड्डीको सिझाकर चूरते हैं और $\frac{3}{16}$ इंच की चलनीमें उसे चालते हैं। इसका विश्लेषण ७२४ पैरामें दिया गया है। चारेके सुधारके लिये यह बहुत अच्छी चीज है। चूना, फॉसफोरस और प्रोटीनकी कमी पूरी करनेके लिये यह थोड़ी मात्रामें गाय और बछड़ों को खिलानेमें कोई हर्ज नहीं है। नम इलाकेके ढोरके लिये यह चीज अपरिहार्य है। **हड्डीके चूर्णसे मांसके चूर्णमें अधिक प्रोटीन और कम चूना तथा फॉस्फोरस है। मांस और हड्डीका मिश्रित चूर्णभी मिलता है। यह बहुत अच्छी पुष्टई है। इससे चूना, फॉस्फोरस और प्रोटीनकी जरूरत पूरी होती है।**

**६२४ क. घोंघा आदि :** घोंघा, सीप आदिको जलाकर चूना बनाया जाता है। घोंघा आदिकी ढेर जमा की जाती है और उसे भट्ठेमें पकाते हैं। इससे चूना बनता है। इस चूनेकी माँग कम ही है। इसलिये सभी घोंघा आदिका उपयोग नहीं होता। वह स्वाभाविक रीतिसे धीरे धीरे गलकर मिट्टीमें मिल जाते हैं। इनके उपयोगकी अच्छी रीति यह है कि उसे ढोरको खिलाया जाय। पुराने घोंघे आदिको उबालकर




चित्र ४८. गुरके अनुसार तौल निकालनेके लिये नापनेका स्थान

(देखो पैरा ६२५)

धूपमें सुखा उसे ढेंकोमें कूट लेना चाहिये या चक्कीमें पीस लेना चाहिये। यह बहुत उत्तम चूनेका पूरक होगा। धानके इलाकेमें साधारण चारेमें चूनेकी कमी रहती है। वहाँ खास तौरपर इसे जमा कर कूटना और ढोरको खिलाना चाहिये। यह हड्डीके चूर्णके इतना अच्छा नहीं है। क्योंकि हड्डीके चूर्णमें चूना और फॉस्फोरस तथा कुछ नाइट्रोजन भी हैं। पर इसमें केवल चूना।

**६२५. छातीके घेरसे गोशालाके पशुकी तोल जानना :** ढोरको शास्त्रीय आहार देनेके लिये उनकी तौल जानना जरूरी है। पोषणकी चर्चामें सब जगह शरीरकी तौलका भी विचार करना होता है। ढोरको तौलनेके लिये कितने आदमी मशीनका काँटा रख सकते हैं? मशीनके अभावमें छातीकी घेर और देहकी लम्बाईकी इंचोंमें नापके आधारपर नीचे लिखे ढंगसे तौल जानी जा सकती है।

पंजाब कृषि कॉलेजके सोंधी गंभीर सिंहने छातीके घेर ओर लबाईकी इंचमें नापसे शरीरकी तोल जाननेका गुर निकाला है।

घेरका नाप अगली टाँगोंके पीछे फीता पार कर, लिया जाता है। जहाँसे अगली टाँग निकलती है वहाँसे चूतड़के अंत तक इंचमें लम्बाई नापी जाती है।

## आँकड़ा—१०१

### शरीरकी तौल जाननेका गुर

$$\frac{\text{इंचमें घेर (girth)} \times \text{इंचमें लम्बाई (length)}}{\text{९ या ८.५ या ८}} = \text{तौल सेरमें}$$

यदि घेर ६५" से कम हो तो ९ से भाग दो,
" " ६५" और ८०" के बीच हो तो ८.५ से भाग दो,
" " ८०" से जादे हो तो ८ से भाग दो।

अनेक जानवरोंकी असली तौल लगभग इसी गुरके अनुसार पायी गयी है। बड़ी जाँचका औसत अंतर नीचे लिखे अनुसार होता है :—

## आँकड़ा—१०२

### शरीरकी तौलकी विभिन्नता

| | नस्ल | पशुओंकी संख्या | असली तौलका औसत अंतर |
|---|---|---|---|
| १. | हिसार बैल | ८४ | १.२८ |
| २. | मन्टगुमरी गायें | १६ | १.७० |
| ३. | धन्नी बैल | १४ | १.५६ |
| ४. | सभी नस्ल एक साथ | ११४ | १.३६ |

इस गुरको काममें लाना चाहिये। —(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, मार्च, १९३३)

९२६. **पोषक मूल्यके आँकड़ेका उपयोग :** नीचे लिखे आँकड़ोंको काममें लानेमें उनकी सीमा याद रखनी चाहिये। पोषणकी चर्चामें कहा जा चुका है कि पौधोंकी उमर, देश और होनेके मौसम (काल) के अनुसार उसका पोषक गुण अलग अलग होता है। इसलिये जिस आँकड़ेमें देश, काल और पौधोंकी उमरका हवाला न हो, बहुत अपूर्ण है।

कुछ ही चीजोंको पचनीयता निकाली गयी है। इसमें प्रोटीनका माने पचनीय प्रोटीन है। पर दिखाये चूना और फॉस्फोरसके प्रतिशतका अर्थ इन खनिजोंका कुल है, लेकिन इससे पचनीयताका पता नहीं लगता।

पचनीयताका आँकड़ा डा० सेनके अनुसार है। अन्य आँकड़े प्रान्तीय हैं। उनमें कुल कच्चे प्रोटीनका जिक्र है, पचनीयताका नहीं।

पेड़के चारोंका विश्लेषण यह दिखाता है कि, प्रोटीन, चूना, और फॉस्फोरसकी प्रचुरता इनमें कितनी है। (९२९-३०, ९३३) इनकी पचनीयताकी जाँचकी बहुत जरूरत है।

## आँकड़ा—१०३

९२७. **आहार सामग्रियोंका पोषक मूल्य :**

(सेनके अनुसार)

| | प्रति १०० रत्तल सूखे सामानमें पचनीय पोषण। | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कच्चा प्रोटीन रत्तल | पोषक अनुपात | एस० ई० रत्तल | चूना $CaO$ | फॉसफोरस $P_2O_5$ | पोटाश $K_2O$ |
| **हरे चारे** | | | | | | |
| बाजरा | ४·३१ | १२·९ | ४७·६ | ०·५५ | ०·४४ | २·९६ |
| बरसीम | १२·५६ | ३·८ | ४३·४ | २·६९ | ०·६४ | ३·४ |
| हाथी घास | ३·८५ | १३·४ | ३८·४ | ०·७० | ०·६१ | २·९९ |
| ग्वार | ६·६३ | ६·४ | ३०·९ | ३·२ | ०·३८ | २·५५ |
| गिनी घास (छोटी) | ५·८३ | १०·२ | ४२·३ | ०·७१ | ०·९० | ३·६८ |
| ज्वार (छोटी) | ४·२० | १२·४ | ३५·८ | ०·६९ | ०·४१ | २·४५ |
| ,, (पुष्ट) | ३·४४ | १४·७ | ३५·२ | ०·५९ | ०·३२ | १·६७ |
| ,, (पकी) | १·१६ | ४५·० | ३०·८ | ०·६३ | ०·२५ | १·७६ |

| | प्रति १०० रत्तल सूखे सामानमें पचनीये पोषण। कच्चा प्रोटीन रत्तल | पोषक अनुपात | एस० ई० रत्तल | चूना $CaO$ | फाँसफोरस $P_2O_5$ | पोटाश $K_2O$ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| लूसन | १६.१९ | २.७ | ४१.४ | ३.६४ | १.१२ | ४.९३ |
| मक्का | ४.६८ | १३.६ | ५२.३ | ०.७३ | ०.६३ | १.६१ |
| जई | १०.५० | ५.४ | ४६.६ | ०.६७ | ०.७६ | ५.२८ |
| सेंजी | १५.६१ | ४.१ | ४४.७ | १.८९ | ०.४२ | २.२१ |
| सूदान घास | १.५७ | २७.२ | २८.४ | १.१९ | १.३३ | १.९९ |
| सूर्य मुखी | ८.५५ | ५.१ | ३७.६ | ... | ... | ... |
| मखमली (velvet bean) | १०.६६ | ४.९ | ५१.१ | ... | ... | ... |
| **सूखी घास** | | | | | | |
| अनजन | १.७१ | २९.३ | ३२.४ | ०.३६ | ०.७२ | १.६१ |
| बोलारम घास (छोटी) | २.२७ | २२.० | ३०.९ | ०.७३ | ०.२४ | १.४३ |
| ,, (पुष्ट) | १.२१ | ४२.२ | ३०.६ | ०.७५ | ०.२२ | ०.९० |
| ,, (पकी) | ०.०० | .... | २५.३ | ०.५० | ०.०९ | ०.१७ |
| दूब घास | ८.०९ | ५.७ | ३८.७ | ०.७० | ०.४४ | १.५३ |
| गिनो घास (फूलनेके पहले) | ४.०९ | १०.६ | २४.८ | .... | ... | ... |
| ज्वार (छोटी) | २.८१ | १७.२ | २७.५ | ०.३८ | ०.५४ | ३.४९ |
| ,, (पुष्ट) | १.७८ | २७.७ | २८.४ | ०.३८ | ०.३३ | १.६७ |
| ,, (पकी) | ०.६४ | ७९.८ | २७.० | ०.३२ | ०.५६ | १.९ |
| कोलू कटाई (छोटी) | ११.१७ | ४.३ | ४२.१ | ... | ... | ... |
| ,, (पुष्ट) | ५.४९ | ९.२ | ३५.२ | .... | .... | .... |
| ,, (पकी) | २.९७ | १६.८ | ३३.२ | .... | .... | ... |
| जई | २.४० | २५.७ | ४६.९ | ०.४६ | ०.३८ | २.४४ |
| स्पीयर घास (पुष्ट) | ०.८४ | ५२.४ | २३.२ | .... | ... | .... |

| | प्रति १०० रत्तल सूखे समानमें पचनीय पोषण । | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कच्चा प्रोटीन रत्तल | पोषक अनुपात | एस० ई० रत्तल | चूना $CaO$ | फॉसफोरस $P_2O_5$ | पोटाश $K_2O$ |
| स्पीयर घास (पकी) | ०·०० | ... | २८·४ | ... | .... | ... |
| ,, (नयी) | २·४७ | ११·५ | ३०·९ | ०·४७ | ०·३० | १·४१ |
| ऊखके पत्ते | ०·०० | ... | २४·६ | ०·५५ | ०·१४ | १·०० |
| **फलियोंका सूखा पुआल** | | | | | | |
| बरसीम | १०·२९ | ५·४ | ४७·३ | २·०७ | ०·६५ | ३·८९ |
| बोड़ा (चावली) | १०·३३ | ३·९ | २९·६ | २·२७ | ०·४० | २·८९ |
| मूँगफली | १४·९३ | २·३ | ३३·८ | २·६५ | ०·५८ | ३·२६ |
| लूसन | १६·३७ | २·४ | ३७·७ | ... | ... | ... |
| **पुआल** | | | | | | |
| चनेका भूसा | २·४१ | १४·४ | ११·२ | ०·४७ | ०·२७ | २·९१ |
| मडुआका पुआल | ०·२३ | २४३·५ | ३४·७ | १·११ | ०·१६ | १·५ |
| धानका पुआल | ०·०० | ... | ३०·१ | ०·५ | ०·१५ | १·६३ |
| गेहूँका पुआल | ०·०० | ... | २४·३ | .... | .... | ... |
| ,, भूसा | ०·०० | ... | २४·५ | ०·४२ | ०·५१ | १·२५ |
| **दाना पुष्टई** | | | | | | |
| जौ | ७·३९ | १०·६ | ८४.६ | ०·२५ | ०·८५ | ०·५६ |
| बिनौला | १२·४९ | ६·१ | ८५·५ | ... | .... | ... |
| चना | १४·३३ | ४·७ | ७८·५ | ०·३३ | ०·९३ | ०·७२ |
| जई | ७·८५ | ९·० | ७३·४ | ०·१६ | ०·९३ | .... |
| मक्का | ८·२२ | १०·५ | ९३·३ | ०·०२ | ०·९४ | .... |
| **खली पुष्टई** | | | | | | |
| नारियल | २१·१० | ३·३ | ९०·० | ०·५६ | १·६९ | ... |
| बिनौला | १९·४२ | ३·१ | ६७·१ | ०·३९ | २·९५ | ... |

| | प्रति १०० रत्तल सूखे सामानमें पचनीय पोषण। | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कच्चा प्रोटीन रत्तल | पोषक अनुपात | एस० ई० रत्तल | चूना $CaO$ | फॉसफोरस $P_2O_5$ | पोटाश $K_2O$ |
| मूँगफली | ४६·३९ | ०·१ | ७५·९ | ०·२८ | १·२८ | १·४३ |
| अलसी | २५·८६ | १·८ | ६९·१ | ०·५२ | २·२० | ०·९२ |
| लाल सरसों | ३०·९२ | १·८ | ८२·६ | ... | ... | ... |
| सरसों | ३०·६८ | १·७ | ७८·१ | ... | ... | ... |
| तिल | ४२·६० | १·० | ८३·३ | ... | .... | ... |
| तोरी | २८·५१ | १·८ | ७५·२ | .... | .... | ... |
| **उपजात** | | | | | | |
| चनेकी भूसी | ०·०० | ... | ४७·० | ... | .... | ... |
| गेहूँका चोकर | ११·८० | ५·४ | ५६·९ | ०·२५ | १·९८ | १·४६ |
| चावलका गुँड़ा | ६·७६ | ८·५ | ४८·३ | ०·२२ | ६·२३ | ०·१९ |

# आँकड़ा—१०४

## ६२८. युक्तप्रान्तकी कुछ घासोंका पोषक मूल्य :

| | कुल प्रोटीन | चूना | फॉस्फोरस |
|---|---|---|---|
| मूसल (Iseilem laxum) | ५·३४ | ०·३५ | ०·२७ |
| दूब (Cynodon dactylon) | ९·०० | ०·८५ | ०·७३ |
| अनजन (Pennisetumcenchroides) | २·८० | ०·३२ | ०·७४ |
| भनजारा (Apuluda Aristata) | ३·३२ | ०·३४ | ०·२४ |
| सन्दूर (Bothrichloa intermedia) | २·१६ | ०·२८ | ०·१७ |
| कुश (Eragrostis Cynosuroides) | ६·७५ | ... | .... |
| जनेवा (Andropertusus) | ६·९१ | .... | ... |
| झरना (Elesine Verticillata or chloris barbata) | १०·८२ | ०·८८ | १·०० |
| मूसा (Eragrostis puona) | ९·९१ | ०·५५ | ०·८७ |
| चीना (Panicum miliaceum) | १२·३५ | ०·५७ | ०·८१ |

# आँकड़ा—१०५

६२६. युक्तप्रान्तके कुछ पेड़ोंके पत्तोंका पोषक मूल्य :

| | कच्चा प्रोटीन | चूना | फॉसफोरस |
|---|---|---|---|
| हल्दू | १५·२६ | २·४१ | ०·२६ |
| कचनार | १३·१५ | ३·४० | ०·०४ |
| शहतूत | १३·९९ | २·७४ | ०·४५ |
| नीम | १५·३१ | ५·५३ | ०·४८ |
| पीपल | १२·६८ | ४·५८ | ०·४७ |
| पाकर | १०·९० | २·९२ | ०·४५ |
| बेर | १२·८ | ४·२३ | ०·७६ |
| शीशम | १६·२६ | ४·७३ | ०·५४ |
| पस्ताउना | १६·३७ | ५·०० | ०·५८ |

# आँकड़ा—१०६

६३०. बम्बई प्रान्तके कुछ चारे :

| | कुल कच्चा प्रोटीन | चूना | फॉसफोरस |
|---|---|---|---|
| Mimosa Hamata | ११·८७ | ४·४६ | ०·२४ |
| Lepidagathis Cristata | ९·२५ | १·९७ | ०·३१ |
| Lantana Came leaves | ७·६६ | २·८२ | ०·२३ |
| Cichorium intibus pods | १३·३० | ०·२४ | ०·२४ |
| Grewia birgata leaves | ११·६९ | ५·३१ | ०·२१ |
| Acacia Catachu leaves | ११·८१ | ४·६५ | ०·१९ |
| Randia dumatorum leaves | ३·८७ | ३·८७ | ०·०९ |

## आँकड़ा—१०७

६३१. मदरासके कदन्नोंका पुआल :

| | कुल कच्चा प्रोटीन |
|---|---|
| तेनाई पुआल | ३·०८ |
| भरगू पुआल | २·१८७ |

## आँकड़ा—१०८

६३२. मदरासकी कुछ घास :

| | प्रोटीन | स्नेह | कार्बोहाइड्रेट |
|---|---|---|---|
| चेंगाली गड्डी (Iseilema anthephoroides) | ४·२६ | १·९९ | ४३·२७ |
| नानाबालु गड्डी (Eremopogon Faveolatus) | ३·३९ | १·६६ | ४२·९४ |
| पुल्लिहसा गड्डी (Apluda aristata) | ४·४१ | २·५२ | ३५·८४ |
| करप्पा गड्डी (Chrysopogon Orintalis) | ४·४५ | १·१३ | ४२·६४ |
| बोथा गड्डी (Cymbopogon Caloratus) | २.२७ | २·६२ | ४४·३६ |
| दब्बा गोगाडा (Andropogon Sp) | २·३९ | २·३८ | ४५·७० |
| नेन्द्रा (Sehima Nervosum) | २·९३ | १·४७ | ३७·९० |
| नक्का पीठू (Perotis Indica) | ४·०३ | १·८७ | ४९·४१ |
| ग्रेसीलिया नूटान्स (Melan ocenchrismonica) | ४·६३ | १·३७ | ४७·०० |
| लोप्पोयोगन (L.Tridentatus) | २·३७ | १·५१ | ३९·५८ |
| चिपुरु गड्डी (Aristida setacea) | ३·३२ | १·१४ | ४३·८६ |
| एटरोपोगन मनसोटेचो | ४·३३ | १·४१ | ४४·३४ |
| क्लोरिस इनकम्प्लीटा | ५·४८ | १·२४ | ४५·०३ |
| गोगाडा गड्डी (Chrysopogon montanus) | २·८३ | १·५१ | ४५·३७ |
| पूभुला गड्डी (Eragrostis bifaria) | २·५० | १·७७ | ४३·६६ |

# आँकड़ा—१०९

६३३. चारेके कुछ मद्रासी पौधे :

| | प्रोटीन | चूना | फॉसफोरस |
|---|---|---|---|
| नाला माडा (Avicennia officinalis) | ११·३४ | ०·९८ | ०·४२ |
| नेराथेला थीगा (Derris uliginosa) | १६·४२ | ०·८४ | ०·३७ |
| आछ या टेपी (Harwickia binata) | १०·७९ | ४·१० | ०·२४ |

# आँकड़ा—११०

६३४. सूखे घासके प्रतिशत भागमें औसत गन्धक :

| | कुल गन्धक | कुल नाइट्रोजन |
|---|---|---|
| Panicum maximum | ०·१२३ | १·३५३ |
| Pennisetum Cenchroides (अनजन) | ०·१९६ | १·९६२ |
| Andropogon contortus | ०·१२३ | ०·८७० |
| Andropogon annulatus | ०·१६३ | १·१५७ |
| Andropogon pertusus | ०·११५ | १·११७ |
| Sorghum Vulgare | ०·१३७ | १·९८६ |
| Cymbopogon | ०·१०६ | १·०६४ |
| Rhodes grass | ०·२३४ | १·७७४ |
| Elusine Corcane | ०·४०५ | २·३५३ |
| Elusine indica | ०·२८६ | १·२७४ |
| Chloris barbata | ०·४७७ | १·७०४ |
| Cynodon dactylon (दूब) | ०·५६२ | २·२२८ |

—(श्री रथ और श्री कृष्णन, इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, मार्च, १९३७)

# भारतमें गाय

## पहला खंड

## चौथा भाग

गव्य धन्धा

# चौथा भाग

## गव्य धन्धा

---

### अध्यायोंकी सूची



---

# अध्याय २२

## गायकी व्यवस्था

६३५. **गोपालनके उद्देश्य :** गोपालन, कृषि, खादकी बिक्री आदिका मिश्रित क्षेत्र खोला जा सकता है और केवल गोपालनका भी। शहरमें दूध बेचनेही के लिये भी गायें पाली जा सकती हैं। पर इस अंतिम उद्देश्यका भी सम्बन्ध खेती और खादसे अलग नहीं किया जा सकता। गोपालन विषयक सभी बातें ध्यानमें रख व्यवस्था करनी चाहिये। शहरमें बेचनेके लिये कम खर्चमें दूध बेचना, गोवध होने देना या बछड़ोंको मारना या भूखों रखना तथा गोबर और गोमूत्रका उचित उपयोग न करना राष्ट्र विरोधी काम हैं। इस दृष्टिकोणके अनुसार इस परीक्षामें दूध बेचनेवाले कुछ व्यवसायी खरे उतरेंगे। शहरोंमें दूध व्यवसायका विषय पीछे छेड़ा जायगा। अभी तो देहातोंकी मिश्रित खेती पर ही विचार किया जायगा।

जिस किसीके पास कुछ पशु हैं, उसके लिये समस्या यह है कि, उसका सुन्दर उपयोग कैसे हो। दूसरी तरहसे यह कह सकते हैं कि, राष्ट्रकी भलाईकी दृष्टिसे मुनाफेके साथ नया उद्योग चलाना। एक बार शुरू कर देनेसे नये कारबार और पुराने पशुपतियोंकी स्थितिमें असामंजस्य नहीं भी हो सकता है। नये कारबारमें एक अंतर हो सकता है। यह लोग अपनी पसन्दका स्थान और पशु चुन सकते हैं, पर पुराने पशुपालोंको यह सुबीता नहीं है।

६३६. **नया कारबार :** हम लोग नये कारबारकी बात शुरू करें। पुराने ढगके कारबारी नया ढग देखकर अपने कामका सुधार कर सकते हैं और उसे नयेके ऐसा बहुत कुछ कर सकते हैं।

६३७. **स्थानका चुनाव :** स्थान ऐसा चुनना चाहिये जहां खेती और गोचरके लायक जमीन हो। कुछ वर्षोंके अनुभवसे मालूम हो जायगा कि, प्रति एकड़ कितने ढोर वह रख सकता है। अनेक किसानोंके जितने ढोर होते हैं

उतनेसे ही आरम्भ करना ठीक होता है। नये कारबारीको पुराने तरीकेके कारबारियोंके इतने नफेसे ही आरम्भमें संतुष्ट होना चाहिये। अपने अच्छे प्रबन्धसे अतिरिक्त आय हो जाय यह दूसरी बात है। सुधरे हुए तरीकेसे काम करनेवाला आदर्श क्षेत्र बनाना हमारा लक्ष्य होना चाहिये। सभी चारे अपनेही यहाँ पैदा करना चाहिये। पर यह कठिन काम है। पर कमसे कम एक निश्चित परिमाण, जैसे कि २० सैकड़ा हरा या साइलेज चारा अपने यहाँ ही तैयार करना चाहिये। फलियोंके चारेका भी प्रबन्ध रहे। इसका कुछ अंश साल भर मिलता रहे। प्राकृतिक साधन या "वापी कूप तड़ाग" से पानीका प्रबन्ध होना चाहिये। इसके सिवा और भी विचारणीय मुद्दे हैं। स्थानके चुनावमें बाजारका पास होना, यातायातकी सुविधा, और मजूरोंका भी विचार रखना चाहिये।

**६३८. ठट्ठका चुनाव :** यदि खरीदना है तो आरंभ करनेके लिये उस स्थानके सर्वोत्तम पशु खरीदे जायँ। लक्ष्य चाहे जो हो पर "स्वल्पारंभ" ही "श्रेयस्कर" है। प्रयत्न यह होना चाहिये कि, अपने ठट्ठकी संतानसे कुछ वर्षोंमें उपयुक्त ठट्ठ बने। इसलिये मूल ठट्ठ छोटा ही हो। कितना छोटा हो यह प्रबन्धकी शक्ति पर निर्भर है। जहाँके ढोर बहुत छीजे हुए हैं, जैसे कि, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, बिहारके कुछ अंश ; कृष्णा, तंजूर, मालाबार जिलोंके कुछ अंश, इन नम इलाकोंमें "स्वल्पारंभ श्रेयस्कर" अवश्य है। धानका पुआल, और गुँड़ा बहुत घटिया चारा है। पोषणके अध्यायोंमें (८१६, ८२७, ६०३) इसके सुधारके उपाय बताये गये हैं। ये उपाय जो मेरी देखभालमें हुए हैं, ठीक पाये गये हैं। फिर भी इन इलाकोंमें सावधानीसे आगे बढ़ना चाहिये और अनुभवके अनुसार काम करना चाहिये।

जिस स्थानमें मानी हुई नस्लके ढोर हों वहाँ शुद्ध प्रकारके ढोर चुनना चाहिये, जिससे निश्चित परिणाम ही प्राप्त हों। अनेक सरकारी क्षेत्रोंमें अनुभव हुआ है, कि, उचित प्रबन्धमें प्रसिद्ध नस्लकी खरीदी गायोंको, खरीदनेके पहलेके दूधसे औसत ६० सैकड़ा जादे दूध हुआ है। जाने सुने ढोरसे प्रारंभ करना सबसे अच्छा है। तब आदमी जान सकता है कि, अच्छे प्रबन्धका सद्यः फल हो सकता है।

जिन्हें पहलेसे ही गायें हैं उन्हें आरम्भसे पिछली कठिनाई रहेगी। पर इस पोथीमें जो उपाय लिखे गये हैं उनके अनुसार धीरज और विश्वाससे काम किया

गया तो वह कठिनाइयाँ नहीं रहेंगी। ऐसे पशुस्वामीको शुरूके समयकी अपनी कमी मालूम रहेगी। उसे अपने हरेक पशुकी जानकारी रहेगी और उनके साथ कैसा बर्त्ताव किया जाय यह भी वह जानता होगा। यह भी फायदेकी बात है। यदि उसके पास कम दूध देनेवाली गायें हैं तो अच्छी खिलाईसे वह कुछ सुधार कर सकता है। लेकिन वंशपरम्पराकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि वह नस्लही दुधार नहीं है तो वह खिलाकर नहीं बनायी जा सकती। ऐसी हालतमें अच्छी खिलायीके साथ अच्छे साँढ़की जरूरत ठट्ठके सुधारके लिये है।

६३६. **साँढ़का वरण :** साँढ़ चुनना होता है। यदि उस स्थानमें उपयुक्त साँढ़ न हो तो बाहर से लाना पड़ेगा। साँढ़ पालना छोटे टट्ठवालेकी हैसियतका काम नहीं है। आजकल तमाम भारतके सरकारी पशुपालन विभाग प्रांतोंकी माली हैसियतके अनुसार सुधरे साँढ़का प्रचार कर रहे हैं। नये व्यवसायी उचित अधिकारियोंको राजी कर स्थानीय शर्त्तोंके अनुसार साँढ़ प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी बातोंके लिये मिलजुलकर काम करनेकी जरूरत है। उद्योगी किसान साथी किसानोंके सहयोगसे गोसुधारकी पंचायत बनायेगा। शुरूमें गाँवके लिये साँढ़ लाना और उसके निर्वाहका प्रबन्ध करना, यह काम होगा। ऐसा किसान अपना काम ही नहीं बनाता, वह सारे गाँवको अपना जानकर महत्वका सुधार करता है और उन्हें नस्ल सुधारके लिये तैयार करता है। जैसा चाहिये वैसा साँढ़ मिल जानेसे उसका काम सरल हो जाता है। जिस स्थानमें कोई खास नस्ल होती है वहाँ ऐसे उपहारी या पाले साँढ़ उस इलाकेके लिये मानी गयी नस्लके हों। अज्ञातकुल ढोरके इलाकेमें जो साँढ़ पाला जाय वह वहाँ की ऐसी गाय का बच्चा हो जिसका काम अच्छा रहा है।

कहा जा चुका है कि, अज्ञातकुल स्थानोंमें किसानोंको हरियाना या इसी तरहके साँढ़ बाँटे गये हैं। इसमें क्या बुराई है यह भी बताया जा चुका है। अगर ये साँढ़ असफल हुए तो जैसी हालत पहले थी उससे भी खराब हो जायगी। इसलिये ऐसे इलाकोंमें दूसरे प्रांतोंसे साँढ़ मँगानेकी अपेक्षा कुछ दिन ठहरना अच्छा है। (५०६, ५१२, ७६६) पहली संतानमें मोहक अच्छाई दीख पड़ती है। विवेकी व्यवसायी इन कारणोंको अच्छी तरह जान लें।

सन् १९४०-'४१ की बंगालके कृषि विभागकी रिपोर्ट है :

"बंगालके कुछ जिलोंमें पशुसुधारका काम चार वर्ष से हो रहा है। सरकारी सांड़से पैदा अनेक बछियाँ ब्या चुकीं और दूध दे रही हैं। अपने इस सालके दौरेमें मैंने अनेक ऐसे पशु देखे जिनके बारेमें रिपोर्ट है कि, वह अपनी देशी माँ से अधिक दूध दे रही हैं। प्रतिदिन ६ से ८ सेर देनेवाली बछियाँ देखनेमें आयीं।

"इसी तरह देखा गया कि, ओसर भी अच्छे बैल तैयार हुऐ हैं। इन ढोरोंके मालिक, इनका बढ़ियापन जानते हैं। साधारण तौरपर वह इतने दाम पर उसे बेचनेको तैयार होते हैं जो बंगालके ढोरके लिये सपनेकी चीज मानी जाती है।"

पर यह एक जगहकी पहली दोगली संतानके बारेमें रिपोर्ट है। दूसरे, तीसरे या चौथे पुस्तके बाद सभी इतने अच्छे नहीं हो सकेंगे। (१६५, ५०६-'१२, ७६६) इसलिये अज्ञातकुल जननीके साथ श्रेष्ठ प्रकारके सांढ़के समागमका ललचानेवाला परिणाम हो तो भी उद्योगियों को ऊपर बताये कारणसे ऐसा प्रयोग करनेके पहले ठहर कर उसे और देख लेना अच्छा होगा।

६४०. छँटाई : सरकारी क्षेत्रोंमें यह चाल है कि, अनचाहे ढोरको हटा देते हैं। जिस गायका दूध कम होता दिखायी देता है उसे हटा दिया जाता है। जो बछिया मनचाही नहीं निकलती उसे भी हटा देते हैं। इसी तरह बछड़ोंके साथ किया जाता है। इस लोपविधिसे वर्ष वर्ष ठट्ठका दूध वेग से बढता हुआ मालूम होगा। इसका लेखा उस संस्थाकी प्रशंसाका कारण हो सकता है। पर देशके गोधनका सुधार एक अलग चीज है। यह सच है कि इस तरह किसी केन्द्र विशेषमें ऊँचे दर्जेकी एक नस्ल तैयार हो जायगी। कुछ दिनोंके बाद इस ठट्ठकी संतान मूल ठट्ठके जैसाही परिणाम प्राप्त करनेके लिये भरोसेके साथ काममें लायी जा सकती है। लेकिन यह विचार पूराका पूरा मान लेना भूल होगी। क्योंकि उन्नत ठट्ठमें भी उन्मूलन या छँटाई प्रति वर्ष करनी होती है। उनका क्या होता है? मूल ठट्ठसे हटानेके बाद आसपासके लोग उनसे संवर्धनका काम लेते हैं, क्योंकि मूल ठट्ठका काम उन्हें अपनी ओर आकर्षित करता है। मूल ठट्ठके औसत ढोरकी अपेक्षा बहिष्कृत कुछ और तरहके होते हैं। एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रकी फेरा बदलीसे राष्ट्रके गोधनकी कुछ भलाई नहीं हो सकती। 'क' ठट्ठमें बहिष्कृत जो करते वह अब 'ख' ठट्ठमें करेंगे। एक बात यही होती है कि, मूल ठट्ठ विशुद्ध और ऊँचे दर्जेका रहता है। इसलिये उन्मूलनसे सामर्थ्यकी सही तसवीर सामने

नहीं आती। इसलिये जो राष्ट्रीय कर्त्तव्य मान पशुपालन करते हैं उन्हें घटिया पशु दूसरोंको सौंपनेमें सन्तोष नहीं हो सकता। ऐसी हालतमें यदि ठट्ठका मालिक देखे कि किसी पशुका कार्य उचित से कम है तो वह क्या करे? यदि वह काम चलाऊ हो और इसकी जरूरत मालिकको नहीं हो तो वह खरीददारको बेचनेका सबब बताकर उसे बेच सकता है। यदि वह बहुत घटिया हो तो उसे प्रजोत्पादन नहीं करने देना चाहिये। यदि वह नर है तो उसको बधिया कर देना चाहिये। बधिया बैलोंको उचित दाम पर बेच सकते हैं। क्योंकि उनसे कुछ बुराई नहीं हो सकती।

**६४१. घटिया गायोंको बाँझ बनाना :** इसी तरह घटिया गायको भी संतान नहीं पैदा करने देना चाहिये।

अभी देहातमें डाक्टरी चीरफाड़से गर्भाशय निकाल गायको बाँझ बनाना कठिन है। इस क्रियाको जरायु-कर्त्तन (स्पेयिंग—spaying) कहते हैं। घटिया गायको बाँझ बनानेके इस तरीके के दुरुपयोगकी भी आशंका है।

ब्लैकके "पशुचिकित्सा कोष" (Black's Veterinary Dictionary) में इस खतरे का जिक्र है। स्पेयिंग शीर्षक देकर इसबारेमें लिखा है। अधिक दिन तक दूध लेनेके लिये ऐसा करते हैं। इससे फिर वह गर्भ धारण नहीं करती और अंतमें कसाईखाने पहुँच जाती है।

"स्त्रियोंका गर्भाशय निकालनेकी क्रियाका साधारण नाम स्पेयिंग है।..."

"अनेक देशोंमें स्वस्थ्य पुरुष-पशु जिन कारणों से बधिया किये जाते हैं उन्हीं कारणोंसे पशु-स्त्रियोंको भी बाँझ बनाया जाता है।

"गायोंको इसलिये नस्तर लगाते हैं कि, वह बहुत दिनों तक (कभी कभी ४-४ वर्ष तक) दूध देती रहें, और ब्यानेसे जो गड़बड़ी होती है वह न हो। ऐसी गायें साधारण तौरपर अधिक दूध देती हैं। उसमें मक्खनभी पहलेसे अधिक होता है। कमसे कम १८ महीनों तक एक समान दूध होता है। कुछ शहरोंके बाड़ोंमें केवल दूधके लिये गायें पाली जाती हैं। वहां बछड़ोंकी कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि, उनके लिये वहां स्थान नहीं है। वहां प्रसवके बाद जहां तक जल्दी हो गर्भाशय निकाल देते हैं। इससे दूधकी मात्रा बहुत कुछ समान रहती है और साथही साथ इसके मोटापन भी बढ़ता है। इस कारण जब गाय चाहे मानसे कम दूध देती है (जैसे कि, प्रायः प्रति दिन २ गैलन) तब उसे तुरत कसाईके हाथमें बेच देते हैं।"

दुधार गायके इस व्यवसायीकरणमें दूध देनेके साधारण कालमें केवल दूध लेनेकी अपेक्षा दूधके बाद उसे मांसके लिये बेच देनेमें ज्यादे फायदा है। जरायु काटी गायका मांस साधारण दुधार गायकी अपेक्षा अधिक मुलायम और रसदार होता है। काश अधिक समान रूपसे मोटी होती है। उत्तर और दक्षिण अमेरिकाके पशुक्षेत्रोंमें मादाओंकी जरायु-कर्त्तन साधारण तौरपर कर दी जाती है जिससे कि, वह ठट्ठमें अधिक शांतिसे रह सकें तथा और अच्छे किस्मका मांस देने लायक वह बन सकें।"

"चीरा: असली क्रिया दो में से एक तरहसे की जाती है। उचित तैयारी करनेके बाद बायीं तरफ चीरा लगाया जाता है। साफ हाथ उसके भीतर डालकर गर्भाशय (डिंबकोष) हथियाकर उसे नस्तरकी छुरीसे काटकर हटा देना चाहिये...... साधारण सावधानीसे किसी तरहका उपद्रव नहीं होता..."

शहरके ग्वाले केवल एक ब्यानका दूध लेने तक उसे रखते हैं। इसके बाद उसे कसाईको सौंप देते हैं। दूधके लिये वह फूँका लगाते हैं। इस क्रियामें योनिमें फूँक कर हवा भरते हैं। दुहनेके समय यह नित्य करना होता है। इसी कामके लिये डाक्टरी तरीकेसे गर्भाशय निकालना अधिक शास्त्रीय विधि है। इसमें तकलीफ नहीं होती। इसके साथ ऊपर वर्णित लाभ भी हैं। भारतमें जरायु-कर्तनका प्रचार होनेसे (ग्वालोंको) गायको बाँझ करने और कसाईके हवाले करनेमें और भी लोभ होगा। कलकत्तेमें फूँका लगाना जुर्म ठहरा दिया गया है। जरायु-कर्तन जुर्म नहीं ठहराया जा सकता। इससे गोबधमें ग्वालोंका और भी सुबीता होगा। पर इस विधिका समर्थन नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह ढोरों और समाजके लिये अंतमें हानिकर है।

**६४२. घटिया गायोंको अलग करना :** जो गाय प्रसवके लायक नहीं मानी जाय उसे अलग रखना चाहिये और इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि, गरम होने पर उसका सांड़से समागम न होने पावे। यदि गोबर और कम्पोस्टका कुछ मूल्य हो तो जो गाय जननी बनने लायक नहीं है वह भी गोबर और शक्तिके अनुसार भारवाही काम करनेके लिये रक्खी जा सकती है। बहुत जगह उसे हलमें या तेल घानीमें जोतते हैं।

इसलिये छँटाई या उन्मूलन नहीं करना चाहिये। हाँ, यदि उद्योगी अपने ठट्ठको नियंत्रित रखना चाहें तो और बात है। तब अच्छे पशु इस कामके लिये बेचे

जायँ जिसके लिये उनकी माँग है। घटिया नर बधिया कर दिये जायँ और घटिया मादा हलके लिये हारी की जाय।

६४३. ठट्ठके बूढ़े पशुओंका हटाना : स्वास्थ्यपूर्ण वातावरणमें जल्दी जल्दी प्रजोत्पत्ति होती है और ठट्ठ बढ़ता है। गाय की उमर १८ वर्ष मानी गयी है। इससेभी अधिक दिन जीनेवाली गायें भी हैं। वह लगभग अंतिम दिनों तक ब्या सकती हैं। बूढ़ी गायोंकी संतानभी घटिया नहीं होती। इसलिये उन्हें ब्याने देना चाहिये। तेरह चौदह वर्षके बाद दो ब्यानोंका अंतरकाल अधिक हो जाता है। अपनी मौतसे मरनेके बरस दो बरस पहले वह बेकार हो सकती हैं। इसके सिवा बूढ़े साँड़ और बैलोंका सवाल है। फलानेकी उमर बीतनेपर साँड़को बधिया कर देना चाहिये और उससे बैलका काम लेना चाहिये। साँड़की समस्या महत्वकी नहीं है। क्योंकि ६० गायों और उतने ही छोटे ढोरके ठट्ठमें एकही साँड़ होता है। बैल बूढ़े होनेपर बेकार हो जाते हैं। उनका क्या हो? उमर होनेपर बेकार होनेवाले ढोरका सवाल भी आगे आना चाहिये। जिन्हें गोबधमें आपत्ति नहीं वह कसाईके हाथ बेच सकते हैं। पर मनुष्यताकी पुकार दूसरी है। जिस पशुने आपकी जन्म भर सेवा की है उसके प्रति सदय हों और जबतक उसकी मौत नहीं आती उसे जीने देना चाहिये। इसके बाद खर्चका भी सवाल है। ठट्ठके पालनेके खर्चमें बेकार पशुका भी खर्च जोड़ना ठीक होगा। गाय या उसकी संतान चाहे जिस उमर की हो कभी बेकार नहीं है, यह साहसी व्यवसायियोंको सिद्ध करनेकी कोशिश करनी चाहिये। खाये चारेके बदले वह गोबर और मूत्र बराबर देती रहेंगी। यदि इन चीजोंकी ठीक व्यवस्था हो तो इनमें इतना मिल जायगा जिससे जानवरों के बुढ़ापेका खर्च निकल जायगा।

६४४. संवर्धक—उसका अपना पिंजरापोल : गाय और दूसरे पशुओंकी रक्षाके लिये पिंजरापोल जैसी उदार संस्था स्थापित हुई है। शहरमें सबके लिये बूढ़े पशु संभालना सरल नहीं है। उनके मालिकोंके मनमें उन्हें कसाईके हाथ बेचनेका लालच हो सकता है। इसलिये दानी लोगोंने शहरोंके आसपास पिंजरापोल खोले हैं। सारे भारतमें लगभग ८०० पिंजरापोल हैं। पर उनसे देशके कुछ ही बूढ़े बेकार पशुओंका काम निकल सकता है। यदि सभी बूढ़े ढोरोंकी रक्षा करनी है तो मनुष्यताके नाते सभी मालिकोंको अपने बूढ़े पशुओंकी ठट्ठमें ही रखना होगा। पिंजरापोल चलानेके लिये दानी प्रशंसाके पात्र हैं। पर जो

पशुस्वामी अपने बेकार ढोर पिंजरापोल भेजते हैं उनकी प्रशंसा नहीं हो सकती। दयाकी भावनासे अन्धे हम न हों बल्कि बूढ़े पशुओंका बढ़िया से बढ़िया उपयोग करें। यदि उनका मलमूत्र और मरनेके बाद उनके अवशेषका भी मूल्य लगाया जाय तो बूढ़े जानवरोंके पालने से भी लाभ होगा। पिंजरापोल आदर्श कार्य कर सकते हैं। वह पशुजन्य सभी वस्तुओंका उपयोग कर अपना खर्च चलानेका उदाहरण दिखावें। पिंजरापोलके दानी और संचालकोंका यह कर्तव्य है कि, जनता अपने बूढ़े जानवरोंके साथ कैसा सलूक करे और उसको जादेसे जादे मुनाफेके साथ कैसे पाल सकते हैं, यह दिखावें। यदि बूढ़े पशुके पालनमें कुछ घाटा ही हो तो उसे सारे ठट्ठ पर बैठा देनेसे नहीं के बराबर होगा। दानका अर्थ त्याग है। बूढ़े पालतू जानवर उदारताकी प्रेरणासे पाले जायँ। पर मालिक उसके खर्चका भार जितना कम कर सके करे। बूढ़े जानवरका भरण पोषण जरूरी है। उसका खर्च पूरे ठट्ठके साथ रहे। खर्चको कम करनेके लिये उसके गोबर आदि और लाशका पूरा उपयोग करना चाहिये। यह सबसे अधिक मानवोचित उपाय है।

मरे जानवरोंकी लाशको आचारिक (sanitary) ढंगसे ठिकाने लगाना और उसका फायदेके साथ उपयोग करनेका तरीका मेरी पोथी "Dead Animals to Tanned Leather" (मरे पशुसे पके चमड़े तकका हाल) में है।

६४५. **गायके साथ संबन्ध:** अच्छे बर्त्तावका गाय पर प्रभाव पड़ता है। वह मीठी बोली, सेवा और चाहभरी आँखोंकी भी भूखी है, यह सच है। गायसे अधिक लाभ लेनेके लिये सदयता बहुत जरूरी चीज मानी जानी चाहिये। यदि आप उससे तने रहेंगे तो वह भी तनी रहेगी और इसका परिणाम दोनों के लिये अहितकर होगा।

ढोर पालने पर मालिक उसके और उसकी संतानके साथ वैसा ही बर्त्ताव करे जैसा वह अपने स्वजनोंसे करता है। यही स्वाभाविक और मानवोचित भी है। इसीलिये उसके साथ किसी तरह की निठुरता नहीं करनी चाहिये और न उसका बध करना चाहिये। गाय हंसगतिसे चलनेवाला पशु है। उसे तेज भागनेके लिये कोंचना नहीं चाहिये। बैलकी भी अपनी ही गति है। जरूरतके कारण मनुष्य उसे गाड़ीमें वेगसे हांक सकता है। पर यह ठीक नहीं है। वह वेगवान नहीं है। हमारे देशमें वेग पहली जरूरत नहीं मानी जाती। रेलोंने आकर हमारी यात्राका वेग बढ़ा दिया है और दूरी कम कर दी है। पर उससे हमारी कुछ

भलाई नहीं हुई है। कुछ हद तक वेगवान सवारियाँ काममें लायी जायँ। लेकिन भारतीय किसानके दैनिक काममें वेगका स्थान नहीं है। मंदगति बैल उसका सहचर है।

६४६. **गाय क्यों, घोड़ा क्यों नहीं :** भारतीयोंने वेगवान घोड़ेको भारवाही पशु क्यों नहीं बनाया? भारत घोड़ेकी उत्तम नस्ल तैयार कर और पाल सकता है, यह बात सिद्ध हो चुकी है। फिर भी खेतीके काममें निरंतर साथ रहनेसे उन्हें घोड़ेके बदले गाय अच्छी लगती है। भारतकी तरह यूरोपमें भी गाय और घोड़े दोनों पाले जाते हैं। यूरोपमें घोड़े अर्थात् वेगकी तर्जीह दी गयी है। वहाँ गाय केवल दूध और मांसके लिये पाली जाती है। यह भेद क्यों? मेरी समझमें दोनों राष्ट्रकी संस्कृति इस विभेदके कारण हैं। भारतीय अपने स्वभावसे मिलते-जुलते पशुको अपना सहचर बनाना चाहते थे। यदि भारतीय घोड़ेको अपने प्रेमका पशु बनाते तो गायसे उनकी जो घनिष्ठता है वह नहीं हो पाती। यदि गायके बदले घोड़ा पसन्द किया जाता तो भारतमें मनुष्य और गायका जो प्रेमका संबन्ध है वह नहीं हो पाता। भारतीयोंने घोड़ेको वेगवान यातायात, डाक और सामरिक कामके लिये ही रक्खा है। लेकिन उन्हें अधिक पालतू शान्त और उपयोगी ऐसे पशुकी चाह थी जिसे वह प्यार कर सकें और पूज सकें। भारतीयोंको इसमें अद्भुत सफलता मिली। उन्होंने जो परम्परा चलायी उसे आजकलके अर्थशास्त्री बहुत बुरा बता रहे हैं। लेकिन यह आनन्दकी बात है कि, इनके मुनाफेके सिद्धान्त और समाजमें पदस्थ होनेके कारण भी वह लोग कभी यह परम्परा तोड़ नहीं सकते। श्रद्धा, प्रेमका यह नाता सदियों पुराना और बहुत घना है। कोरे तत्वविदोंके इशारेसे इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। गाय और मनुष्यका नाता विश्वकी एकताकी भावनासे स्थिर हुआ है। इसलिये वह सहज टूटनेवाला नहीं। इस भावनाको समझनेके लिये गहराई तक जाना होगा।

जब घोड़े और गायमें हमने गायको पसन्द किया है तब गोवंशसे घोड़ेका काम लेनेकी सोच नहीं सकते। मैं बहुत वेगवाले बैलोंकी गाड़ी पर चढ़ा हूँ। मैंने उनके वेगकी तारीफ की है। मैं ऊँची नीची जमीनमें ऐसी बैलगाड़ी पर घंटेमें ८ मील गया। दो घंटेके बाद फिर १ घंटेमें लौट आया। यह काम घोड़ोंके मुकाबलेका है। वेगवाली सवारीकी गद्दीके आनन्द और शरीर सुखके बदले में मनही मन उससे कुढ़ता हूँ। यह लिखते समय मुझे इसके कारणका पता चल गया। बैल वेगसे चलानेके लिये

नहीं हैं। उनकी रचना इसके लायक नहीं। गाय और बैलकी मन्दगति ही उनकी सुन्दरता है। तुम अपनी सुन्दर, मन्दगामिनी गर्भिणी बेटी और बहूको असीस देते हो। गाय गर्भिणी हो चाहे नहीं, वह तुम्हारी वैसी ही बहू, बेटी है। मन्दगति उनकी अपनी चीज और शोभा है। यदि तुम गाय और उसकी संतानका अच्छा उपयोग चाहते हो तो उसे वेगसे मत चलाओ।

६४७. **गायोंका नामकरण करो :** अपने बेटे बेटियोंका हम जैसा नाम रखते हैं वैसा ही नदियों और फूलों पर नाम हम अपनी गायोंका भी रक्खें। नामसे पुकारा जाना उन्हें अच्छा लगता है। छोटे बछरू भी अपना नाम समझते हैं। एक जगह खुले मैदानमें १५० गायें दुही जाती हैं। उनके बच्चे बाड़ेमें रहते हैं। दुहनेके समय गायका नाम पुकारा जाता है और निश्चित जगह पर वह अपने आप आ जाती है। बछरूका नाम पुकारने पर वह भी बाड़ेके द्वार पर आ जाता है और रखवाला द्वार खोल उसे बाहर निकलने देता है। चूके बिना सभी गाय और बछरू यही करते हैं। यदि तुम्हें कोई गाय है जिसे तुम बहुत प्यार करते हो तो उसका नाम लेकर पुकारने पर यदि वह सुन सके तो दौड़ी आवेगी। मानो वह पूछ रही हो कि "क्या हुआ? क्यों मुझे बुलाया? मैं यह रही।" जरा मुसकाओ, थपकी लगाओ, उसकी चिन्ता मिट जायगी। वह सन्तुष्ट होकर लौट जायगी। यदि कोई गाय बैल गलती कर रहा हो, उसे डाँट दो, वह समझ लेगा कि यह काम नहीं करना चाहिये और तुरतही अपनी भूल वह सुधार लेगा। ऐसे पशुके लिये "अरउआ" की क्या जरूरत है?

६४८. **अरउआके बदले खुरहरा :** श्री वाइन सायरने टट्ठके प्रबन्धके बारेमें लिखा है कि, उनके पूसाके गव्यक्षेत्रमें छड़ी या अरउआकी मनाही थी। उसके बदले नौकरोंको खुरहरा दिया गया था। रखवालोंका यह काम था कि, चरनेके समय गाय और बछरुओं पर खुरहरा करें, उनकी धूल झाड़ें और उनकी देहमें लगी किलौरी आदि वह निकालें। गाय दुष्ट भी हो सकती है। वह तुमको मारनेकी कोशिश कर सकती है और सो भी कारण बिना। उसे जीतनेका तरीका यह है कि, उसकी दुष्टता पर ध्यान न दो और उस पर दया करते जाओ। कुछ दिनोंमें वह पालतू हो जायगी। प्यार उसे जीतेगा।

६४९. **गायको प्यार करो :** मनुष्यके घने संपर्कमें उनकी भावना बहुत परिष्कृत हो गयी है। मैं कारण तो नहीं बता सकता पर इसकी प्रतिक्रिया साफ

देखी जा सकती है। अलीपुर जेलमें मेरी निगरानीमें जो गायें थीं उनका एक बछड़ा लँगड़ी (Black quarter) नामक महामारीसे मर गया। उस गायका नाम "बोतू" था। वह अधीर हो गयी। वह बराबर रोती रही और उसने खाना छोड़ दिया। एक हफ्ते तक वह आँसू बहाती रही और भूखी रही। उसकी आँखसे इतना आँसू बहा कि, उसमें तकलीफ हो गयी। उसे स्वाभाविक करनेमें बहुत दिन लगे। मैं समझता हूँ जबतक वह फिर नहीं ब्यायेगी, उसका मन पूरी तरह शान्त नहीं होगा।

उसी ठट्ठमें एकबार एक गायको गुदभ्रंश (काँछ) निकल आयी। उसे आँगनमें रख उसका इलाज करना पड़ा। सारी रात उसे बहुत कष्ट रहा। वह चाँदनी रात थी। जहाँ दुधार गायें बँधी थीं वहाँ से वह आँगन साफ नजर आता था। दूसरे दिन सभी गायोंको बहुत कम दूध उतरा। इससे पता चलता है कि, दूसरेके कष्टका सभी दुधार गायों पर कैसा असर हुआ।

वहाँ एक बछिया "मीरा" थी। जब वह कुल पाँच हफ्तेकी थी उसकी अगली टाँगमें चोट लगी। उसे विषैला बुखार (septic fever) हो गया। बुखारसे तो वह बच गयी लेकिन चोट और हड्डीकी मुरक नहीं छूटी। सूजनके कारण हड्डी नहीं बैठायी जा सकी। सूजनमें पीव मालूम पड़ा, मैंने उसे छुरीसे चीर दिया। दूसरे दिन मेरे पास लाये जानेके समय वह समझ गयी कि, क्यों लायी जा रही है। इसलिये उसने रोना शुरू किया। उसे कोई छुए भी इसके पहले ही उसकी आँखें बहने लगीं। चीरा लगानेवाले सर्जनको देख कोई बच्चा जैसे करे, यह भी उसी तरह हुआ।

गायको आपकी दया चाहिये। यदि किसी समय वह बेकही हो जाय तो उस पर गुस्सा मत होइये। आपके क्रोधसे कोई भलाई नहीं होगी। इसके बदले मामला और भी बिगड़ेगा। मार और जबरदस्तीसे आप उससे मनचाहा काम ले लें यह हो सकता है पर इससे आपके पशुका स्वभाव खराब हो जायगा। कुछ ऐसे होंगे कि, जितना निठुरता आप उनसे करेंगे वह उतनेही दुष्ट होते जायेंगे। आप उन्हें मार और सजा देकर उनसे अपनी मर्जीका काम नहीं ले सकते। यदि आप सुन्दर ठट्ठ चाहते हैं तो सजा तो क्या डाँटना भी छोड़ दीजिये। श्री वाइन सायर तो यहाँ तक कहते हैं कि, जिस गायको दो आदमी पकड़ कर आपके सामने लावें उससे भविष्यकी कुछ उम्मीद नहीं की जा सकती। कुछ अंशमें यह बुरे प्रबन्धका परिणाम है।

वंशक्रमका भी इसमें कुछ अंश है। उसके साथ दयाके बर्त्तावसे उसे आप ठीक कर सकते हैं।

इंगलैंड, अमेरिका, डेनमार्क तथा यूरोपके अन्य देशोंके गोपालकोंका एकही मत है कि, गायके साथ सदय बर्ताव करो।

**१५०. ठट्ठका घर :** यदि आप फायदेवाला ठट्ठ बनाना चाहते हैं तो उसे रहनेके लिये पर्याप्त स्थान देना चाहिये। केवल दूध उत्पादनके लिये शहरी लोग एक अस्तबल काफी मान सकते हैं। पुआल और चारा रोज़ रोज़ खरीदा जाता है। इसलिये गाय और उसके बच्चेको रहने लायक स्थान क़ाफी मालूम होता है। पर यह गोपालन नहीं है। गोहनन है। कसरतके बिना बछरू दुबला जायगा। उसके मरने पर उसके चमड़ेको मढ़ाकर गायके आगे रखते हैं जिससे उसे दुह सकें। दूध सूख जाने पर गायकी गति भी बछड़ेकी ही होती है और उसकी जगह दूसरी अभागिन गाय आती है। इसके लिये जगह खाली करनेके लिये पहलीको मरना होता है। यह गोपालन नहीं है। शहरमें दूध देनेके विषय पर अन्य अध्यायमें लिखा गया है। गायका त्रिविध उपयोग है। वह बैलोंकी जननी, दूध देनेवाली और खाद पैदा करनेवाली है। इस खादसे जमीन, पौधे और उससे उत्पन्न पदार्थोंके द्वारा मनुष्य और गाय दोनोंका पालन करती है। यह चक्र ("विषय परिचय" देखो) बराबर चलाते रहना है। इसलिये किसी तरहके गोपालनमें उसके तीनों कामके लिये स्थान होना चाहिये। यदि सुधरे तरहसे काम करना है तो ठट्ठको रहनेका अधिक स्थान चाहिये।

उनके रहनेके लिये छप्पर बनाये जायँ जिसमें खिलानेकी नाँद भी रहे। दुधार गाय और बछरुओं की कसरतके लिये जगह होनी चाहिये। चरनेके लिये कुछ गोचर भी होना चाहिये। इसके सिवा गोबर आदिकी हिफाजत और उसका कम्पोस्ट बनानेका भी प्रबंध होना चाहिये।

यदि ठट्ठ काफी बड़ा हो, मान लीजिये बीस मूड़ ढोरका, जिसमें ४ या ५ गायें हैं, तो बछरुओं और बैलोंको अलग बाँधना और खिलाना चाहिये। पर छोटे ठट्ठमें जिसमें एक जोड़ी बैल, दो बच्चे और एक गाय हो तो वह एकही जगह रक्खे जा सकते हैं। दुधार और बिसुकी गायको अलग अलग चारा दिया जाता है, इसलिये उन्हें अलग अलग बाँधना चाहिये। इसी तरह बैलों और बच्चोंका अलग प्रबन्ध करना चाहिये। यदि कई बच्चे हों तो उन्हें उमरके हिसाबसे अलग बाड़ेमें रखना

और खिलाना चाहिये। हालके जन्मे से लेकर २ महीने तकके बच्चोंको एक साथ रख सकते हैं। २ महीनेसे ऊपर और ६ महीने तकके बच्चोंको एक साथ रखना चाहिये। ६ महीनेसे ऊपरसे डेढ़ वर्ष तकके बच्चोंका दूसरा जत्था हो सकता है। इससे अधिक उमरसे लेकर जवान होने तकके एक साथ रखे जायँ। फिर गाय और बैलोंको अलग किया जाय।

यदि बच्चोंको इस तरह अलग अलग रखनेका प्रबन्ध है तो उन्हें एकही नाँदमें खिलाया जा सकता है। यदि छोटे बड़े एक साथ रखे गये तो बड़े छोटेको मारेंगे और कुचलेंगे तथा उनका भी हिस्सा खा जायेंगे। यदि अलग अलग रखनेका स्थान नहीं है तो सभी बच्चोंको अलग अलग बाँधा जाय और अलग अलग नाँदमें खिलाया जाय, जिससे कि, दूसरे उस नाँद तक न पहुँच सकें।

सभी बछरुओंको अलग अलग नाँदमें खिलाना बहुत अच्छा है। इससे एक दूसरे को दिक नहीं कर सकते। यदि बछरू उमरके हिसाबसे अलग रक्खे जाते हैं तो उनका एक साथ खाना, खेलना और चरना देखनेकी चीज होती है।

६'५१. **गोहाल :** गोहालके भीतर खानेकी नाँद बीचमें रहे और उसके दोनों तरफ आमने सामने ढोर बाँधे जायँ। देहातोंके लिये ऐसा मकानही सुबीतेका होगा। हो सके तो नाँदकी दो कतारें हों। मिट्टीकी नाँद खिलाने और पानी पिलानेके काम आ सकती है। दोनों पंतिके पशुओंके लिये पानीकी एकही नाँद हो सकती है। पशु और दीवालके बीच २-३ फूट जगह छोड़नी चाहिये जिससे कि रखवाले इधर उधर जा सकें और गोमूत्र बहनेके लिये नाली भी बन सके।

खिलाने पिलानेकी नाँद ऊँची कुर्सी देकर बनायी जाय। सयाने ढोरकी नाँद जमीनसे २½ फूट ऊँची हो। एक एक पशुको इतनी जगह दी जाय कि, वह अगल बगलके पशुको तकलीफ दिये बिना आरामसे लेट सके। छोटे आकारके पशुको चार फूटके लगभग स्थान चाहिये। खूँटे या कड़ियामें नाँदके इतने पास उन्हें बाँधना चाहिये कि, जिससे जितना चाहिये उससे जादे वह इधर उधर न जायँ। नाँदकी लम्बाईमें एक मजबूत बाँस लगाना चाहिये। इस बाँसमें उचित दूरी पर सरक फन्दा रहना चाहिये। पशु बाँधनेका यह सुबीतेका ढंग है। बाँसको जगह जगह कसकर बाँध देना चाहिये।

गच मिट्टी की ही हो। पक्की सीमेंटकी गच साफ करनेमें आसानी होती है।

देहातमें यह संभव नहीं है। गरीब किसान पक्की गच नहीं बना सकता। पशुकी तन्दुरुस्ती और खादके लिये कच्ची गच अच्छी रहेगी।

बहुत नम स्थानोंमें बरसातमें जब कोई चीज जल्दी सूखनेका नाम नहीं लेती, कच्ची गच पेशाबसे गीली हो सकती है और अन्तमें उससे कीचभी हो सकती है। गचपर बलुही मिट्टी डालकर यह बात रोकनी चाहिये। इस परतको बीच बीचमें हटा कर नयी तह जमानी चाहिये। (४७२-'७३)। इसमें मेहनत लगती है। फिरभी पशुओंके स्वास्थ्य और खादकी रक्षाके लिये यह मेहनत करनी होगी।

गचकी ढाल नालीकी ओर होनी चाहिये। यह नाली एक गढ़ेमें गिरे। गढ़ा ढका रहना चाहिये। गढ़ेमें एक नाँद रहनी चाहिये जिसमें पेशाब जमा हो। पशुओंकी हर कतारके दोनों तरफ ऐसी चार नालिया हों। नाली और गचकी ढाल इसीके अनुसार रखी जाय।

छप्परके चारों ओर चटाई से घेर देना चाहिये। यह घेरा अधिक ऊँचा न हो और जमीनसे कुछ इंच ऊपर रहे। इसकी ऊँचाई दो फूट हो सकती है। इसके बाद ३ फूटका अंतर देकर ऊपरभी चटाईका घेरा रहे। बरसात और कड़े जाड़ेमें रक्षाके लिये बाँसकी टट्टी या टाटका पर्दा लगाया जा सकता है। साधारण तौर पर गायें ठंढ अच्छी तरह सह सकती हैं। उन्हें वर्षासे कष्ट होता है, खासकर जब वह अंधाधुंध होती है। धूप, हल्की वर्षा, जाड़ा, गर्मीमें सयाने पशु २४ घंटे बाहर रह सकते हैं। इससे उन्हें हानि नहीं होती। दुधार गायको घरके भीतर रखनेकी जरूरत है। क्योंकि ऋतु परिवर्तनका इन पर असर होता है।

बंगालमें जहाँ ऐसे बाड़ेमें ढोर रक्खे जाते हैं, जिसमें छायेदार पेड़ और बिना घेरेका छप्पर हो, वहाँ वह जाड़ेमें भी बाहर ही रहना पसन्द करते हैं। वर्षासे कष्ट पाकर ही वह छप्परके नीचे जाते हैं। हल्की वर्षा वह सह सकते हैं। पर घनी वर्षासे कष्ट होता है। इससे उनकी रक्षा होनी चाहिये।

गचकी मिट्टी लेकर गोबर गोमूत्रकी खाद बनानेका तरीका ४६८-'७२ पैरामें लिखा गया है। इसके बदले खाली गोबरकी खाद भी बन सकती है। लेकिन इस तरीकेमें बहुत बर्बादी है। इसे छोड़ देना चाहिये। इसकी जगह कंपोस्टको तर्जीह देनी होगी।

९५२. **दूसरे छप्पर :** गोहालके छप्परके बाद दो छप्पर और होना चाहिये। एक कंपोस्टिंगके लिये और दूसरे गोहालके वास्ते जरूरी सूखी मिट्टी

रखनेके लिये। यदि सालभरके लिये सूखी मिट्टी का प्रबन्ध न रहे तो गोबर गोमूत्रका पूरा उपयोग नहीं हो सकता। इसके लिये एक छप्परकी जरूरत है। खुलेमें मिट्टीकी ढेर लगानेसे काम नहीं चलेगा। क्योंकि वर्षके पानीसे मिट्टी भीग जायगी और सोखनेके कामकी नहीं रहेगी।

गोशालाकी जमीन पर गोड़थार चीजें फैला देनी चाहिये। यह बिछावन और पेशाब सोखनेका काम करेगी। इससे उस बिछावनका कंपोस्ट बन जायगा। बिछावनके लिये सूखे पत्ते, फालतू पुआल, फसलकी खूँटियाँ सदा तैयार रखनी चाहिये। कंपोस्टके लिये हर दिन हरे पत्ते भी मिलाते रहना चाहिये। फसल काटने के समय हर बार उसकी इतनी खूँटियाँ जमा कर लेनी चाहिये जो अगली फसल तक काम दे सकें।

तात्विक विचारमें प्रति मास प्रति पशुके गोबर और मूत्रकी कीमत १॥) डेढ़ रुपये कूती गयी है। यदि ठट्ठमें २० पशु हों तो गोबर और गोमूत्रसे इस हिसाबसे ३०) रुपये प्रति मास आमदनी हो सकती है। इसका कंपोस्ट बनानेसे इसका मूल्य तिगुना हो जाता है। इसमें कंपोस्टकी सामिग्री भी शामिल है। फसल पर यह कैसा जादू करती है यह "विषय परिचय"में कहा जा चुका है। इसलिये जहाँ और जैसे भी ढोर रक्खे जाते हों, दिनमें हर समय गोबर आदिके जमा करने और हिफाजतका पूरा ख्याल रखना चाहिये। चरनेके समय उनकी खाद गोचरके काम आती है। लेकिन उसे नहीं रहने देना चाहिये। उससे सार्वजनिक गोचरके लिये कंपोस्ट बनाकर फिर गोचरमें ही डालना चाहिये। गोचर आने जानेके समयके गोबर और मूत्रके जमा करनेका भी उपाय करना चाहिये। रास्तेमें पेशाब कर ढोर उसे गन्दा करते, उससे कोई लाभ नहीं। एक दो पशु जिन्हें इसकी शिक्षा मिल चुकी उनके ऊपर बर्त्तन लटका कर यह काम किया जा सकता है। जहाँ पशु पेशाब करें वहाँ खड़ा कर उनकी पेशाब बर्त्तनोंमें ली जा सकती है। जब वह आगे बढ़ जायँ तब उनका गोबर जमा किया जा सकता है।

६५३. **खुलेमें ढोर रखना**: सर अलबर्ट होवर्डने विलायतके एक किसानका उदाहरण दिया है। उसने गोशालाका खर्च कैसे घटाया:

"मार्लबरो (Marlborugh) के पास श्री होसियरकी जमीनमें गोचरकी धरतीमें ह्यूमस (Humus) बनानेका बहुत ज्वलन्त दृष्टान्त देखा जा सकता है। महायुद्धके बादकी सस्तीका मुकाबला करनेके लिये उन्होंने बथान

(गोशाला), गोबर ढोनेकी गाड़ी आदि सब हटा दिया। दुर्दिनमें जो करना चाहिये उन्होंने ठीक वही किया। नयी जमीन तैयार करनेके लिये उन्हें यह बहुत अच्छी बात मालूम पड़ी। गायें घरके बाहर रहतीं और खातीं थीं। उन्हें जंगम विश्राममें (bails)* दुहा जाता था। उनका गोबर और मूत्र कम खर्चमें इस परित्यक्त गोचरोंमें फैला दिया जाता था। बची खुची घासका संयोग गोबर, मूत्र, हवा, पानी और क्षारोंसे होता था। यह स्थिति इंदौर पद्धतिकी थी। श्री होसियरकी गुप्तशक्ति काममें आने लगी। जीवाणुओंने ह्यूमूस बनाकर उसको एक परत सारे मैदानमें डाल दी। केंचुएने उसे तमाम फैला दिया। घास और क्लोभरकी जड़ें जीवाणुकी मददसे इस ह्यूमूससे खूब जमी। वहांकी घास सुधर गयी और जमीनकी पशु पालनेकी शक्ति अन्धाधुन्ध बढ़ी। धरती उपजाऊ हो गयी। हर पांच वर्षमें उसमें दो तीन फसल पुआलोंकी हो जाती थी। इसके बाद घास उपजायी जाती थी। यह क्रम था। पशुओंके स्वास्थ्यमें भी इससे लाभ हुआ। (जब यह साहस भरा काम शुरू किया गया) आसपासके रहनेवालोंकी भविष्य धारणा थी कि गायें और ओसर क्षय तथा अन्य रोगोंसे तुरत नष्ट हो जायेंगी, पर यह नहीं हुआ।"—(होवर्ड "एग्रिकलचरल टेस्टामेंट" पृ० ९९-१००)

भारतमें इस दृष्टान्तकी नकल करनेको कम गोचर हैं। पर जहां ऐसे गोचर हों वहां पशुओंको २४ घंटे खुलेमें रखनेका प्रयोग करने लायक है। इससे गोचर सुधरेंगे और खूँटे पर खिलानेमें जो खर्च होते हैं वह कम होंगे।

पूर्व बंगालमें गायोंको सूखे मौसममें खेतोंमें छायेमें रखनेकी चाल है। गोबरसे जमीनको मजबूत करना इसका उद्देश्य है। छायाके लिये हल्का छप्पर। हर महीने एकसे दूसरे खेतमें ले जाते हैं। बरसातमें जब खेत रहने लायक नहीं रहता तब ढ़ढ़को घर ले जाते हैं। पशु जहां जहां रहे हैं वहांकी फसल बहुत अधिक होती है। हर दिन जो खाद होती है उसे वह लोग प्रायः जोतकर सभी जगह फैला देते हैं। पेशाबको जमीन सोख लेनी है। छप्पर हटानेके बाद यह भी जमीनमें फैला दी जाती है।

६५४. **मच्छड़ और मक्खी :** मच्छड़ और मक्खीसे गायें बहुत तंग होती हैं। इनमेंसे कुछ खून चूसनेवाली हैं। यह काट कर खून चूसते हैं और

* दुहनेके समय ढ़ढ़का विश्राम स्थान।

रोग फैलाते हैं। ढोरके रोगके विचारमें इनके बारेमें हम और भी जानेंगे। मच्छड़ और मक्खीसे गायको बचाना चाहिये। यह ढोरके शत्रु हैं और बहुत हानि करते हैं। मच्छड़ भगानेका मुख्य उपाय धुआँ करना है। कहीं कहीं भीगे पुआलसे धुआँ करनेकी चाल है। मच्छड़ और मक्खी धुआँ नहीं सह सकतीं और भाग जाती हैं। नियंत्रित धुएँसे यह शत्रु दूर रक्खे जा सकते हैं। नीमकी भीगी पत्तीका धुआँ खास कर अच्छा निवारक है।

६५५. **विष और उसका लगना :** मैदानमें चराते समय रखवाला (गौरखिया) इस बातका ध्यान रक्खे कि ढोर हानिकारक चीज न खा लें। कई तरहके पौधे विषैले होते हैं। स्थानीय आदमी उन्हें जानते हैं। इनसे बचना चाहिये।

चरनेवाले ढोरको एक खतरा पेशेवर जहर देनेवालोंसे है। एक वर्गके लोग हैं जो चमड़ेके लिये ढोरको जहर दे देते हैं। मिठाईमें संखिया मिलाकर गोचरमें रख देते हैं या मौका मिला तो केलेमें रख खिला देते हैं। इस खतरेसे ढोरकी हिफाजत करनी चाहिये।

६५६. **चोटसे बचाव :** ठट्ठके ढोर अक्सर आपसमें लड़ते हैं। कभी कभी कड़ी चोट लगती है। गायोंका नियंत्रण करनेके लिये भारतके कुछ सरकारी क्षेत्रोंमें पैदा होनेके थोड़े दिन बाद बच्चोंका विशृंगीकरण कर दिया जाता है। इससे सींग नहीं निकलती। जो पशु आपसमें लड़ते हों उनकी सींग काट कर गोल कर देनी चाहिये या सींगकी नाकपर लकड़ीके गेंद खोस देना चाहिये। यह भी बहुत अच्छा उपाय है।

६५७. **कुब्बका घाव :** कुब्बका घाव अक्सर कौओंके चोंच मारने से होता है। एक बार हो जानेसे उनका आराम होना कठिन है। उसके कारण अनेक पशु बुरी तरह विकृत हो जाते हैं। इस घावमें जलन होती है और धीरे धीरे यह फैलता है। कौओंका चोंच मारना रोकना होगा। नीचे लिखा मलहम लगानेसे घाव धीरे धीरे आराम होता है :—

मुर्दा शख (litharge)—१ भाग (तौलसे)
तमाकूके पत्तेकी बुकनी —१ भाग ”

दोनोंकी महीन बुकनी नारियल जैसे ठंढे तेलमें मिलाकर मलहम जैसा बना लेना चाहिये।

एक रात इमलीका लेप लगाकर घाव साफ किया जाता है। दूसरे दिन साफ घाव पर मलहम लगाया जाता है। यदि एक बारके लेपसे घाव साफ न हो तो कई दिन तक बराबर लेप लगाना चाहिये। मुर्दाशंखका मलहम रोज लगाना चाहिये। यदि मलहम ठीक लगा रह जाय तो एक दिनके बाद लगा सकते हैं। इस तरह बराबर लगाते रहें। घाव एक या दो महीनेमें भर जाता है। पर यदि फिरसे चोंच मारना नहीं बचा सके तो जादे समय भी लग सकता है। अंतमें एक गूत (दाग) मात्र रह जाता है। इस पर भी कुछ दिनके बाद रोआँ जम जाता है। पूरी तरह पहले जैसा होनेमें १ वर्ष लग जाता है।

६५८. **किलनी :** इससे ढोर बहुत परेशान रहते हैं। स्थान विशेषकी किलनीकी सूरत विशेष तरह की होती है। इन्हें खुरहरेसे अलग किया जा सकता है। यह गोशालाके फर्स, दीवार और गोचरमें भी मौकेकी ताकमें रह सकते हैं। इन स्थानोंमें इनसे पिंड छुड़ाना कठिन है। कीटनाशक दवाओंसे बहुत मदत मिलती है। तमाकू कम खर्चका बहुत अच्छा कीटनाशक है। तमाकूको चूर कर टीनके बर्तनमें रक्खें और उसमें किरासन मिलावें। एक गैलन (पेट्रोलकी आधी टीन) किरासनमें ६ आउन्स तमाकू मिलाना ठीक होगा। इस मिश्रणके बर्तनको किसी दूसरे पानी भरे बर्तनमें रख कई घन्टे तक गरम करना चाहिये और बीच बीचमें चलाते रहना चाहिये। इस तरह किरासनमें तमाकूका जहर निकोटिन (nicotine) घुल जाता है। इस किरासनकी फुहार पशुके शरीर पर देनी चाहिये। फुहारके लिये मिश्रणकी तमाकूको थिरा लेना चाहिये और साफ छाना हुआ किरासन काममें लाना चाहिये। यह चीज पशुके चमड़ेमें खास कर जहाँ बुराई हो वहाँ लगाना चाहिये। किलनी तुरत नहीं मरती इसलिये इसका परिणाम तुरत नहीं दिखायी पड़ता। दूसरे दिन किलनी यद्यपि चमड़ेसे चिपकी रहेंगी फिर भी वह मरी हुई होंगी। मरोंको आसानीसे झाड़कर अलग कर सकते हैं। यदि गच पर यह हों तो उसे खोदकर कंपोस्ट की ढेरमें डाल देना चाहिये और नयी मिट्टी गच पर डालनी चाहिये। अगर यह नहीं हो सके तो जमीनमें पुआल बिछाकर सावधानी के साथ आग लगा देनी चाहिये। इसकी गरमीसे जो जमीन पर हैं वह और जो उसके भीतर घुस गये हैं, दोनों मर जायेंगे। इस बात से होशियार रहना चाहिये कि, आग मकानमें न लग जाय। ढोरोंको हटा कर गचका उपचार करना चाहिये।

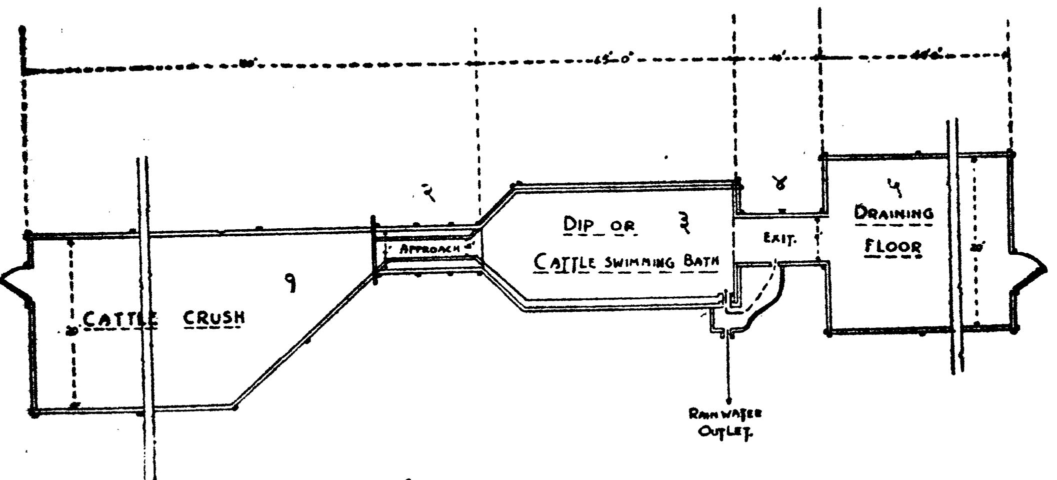
चरनेकी जगहोंकी भी जाँच करनी चाहिये। जो गोचर किलनी-संकुल हों उनसे बचना चाहिये। यदि यह जगह क्षेत्रकी है तो उसे जोत कर उसमें कोई फसल लगा देनी चाहिये जिससे इस शत्रुसे छुटकारा मिल जाय।

६५६. **पशु-अवगाहन** : सवर्धक, सहयोग पद्धतिसे किलनीका उन्मूलन कर सकते हैं। पशुके शरीरमें चिपकी किलनी कुछ सेकेन्ड बिषैले पानीमें डूबे रहें इसलिये पशुओंको बिषैले पानीसे भरे हौजमें नहलवाया और तैरवाया जाता है।

"गोता लगानेके हौजकी बनावट (चित्र ४५ और ४६) ३ भागोंमें है। (१) प्रवेश, (२) अवगाहन या तैरनेका हौज और (३) निकलनेका स्थान।... प्रवेश मार्गकी रक्षा चारों तरफ घेरकर की जाती है। इसमें एक पशुके निकलने लायक जगह होती है। इसके कारण पशु पानी देख कर लौट नहीं सकता। हौजकी बनावट पशुकी जातके अनुसार होती है। प्रवेशद्वारकी ढाल ऐसी होती है कि, पशु एक साथ हौजमें गिर पड़े और गोता खा जाय, क्योंकि गलीके अंतमें उसे कूदना ही पड़ता है। इसके बाद पशुको चालीस फूट तक तैरना है। इसके बाद आसानीसे निकल आनेके लिये सीढ़ी होती है। निकलनेके स्थानकी गच ऐसी बनी रहती है कि, पशुकी देहसे निचुड़ा पानी बह कर फिर हौजमें चला आता है। इससे रासायनिक पदार्थकी बरबादी बच जाती है।" —(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, जनवरी, १९३८)

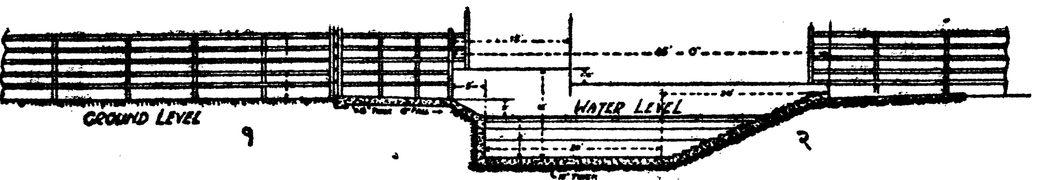
६६०. **सफाई** : गउओंको अपने चमड़ेकी सफाई बहुत पसन्द है। उसमें गोबर और मूतका लगना उन्हें उतना ही बुरा मालूम होता है जितना मनुष्यको। पर, कुत्ते बिल्ली जैसे अपने शरीरको अपने मलमूत्र द्वारा गन्दा होनेसे बचाते हैं, वह उपाय यह नहीं जानतीं। प्रबन्धक यह देखे कि, मलमूत्रसे उनकी देह गन्दी न हो सके। गन्दा हो जाने पर उनका शरीर धोकर साफ कर देना चाहिये। जहां पानीकी कमी हो वहां पुआलसे रगड़ कर सफाई की जा सकती है। लेकिन सबसे अच्छा धुलाई ही है। खूँटे पर खिलाये जानेवाली गाय रोज धोयी जाय। आसपासमें यदि नदी हो तो उन्हें धारमें ले जाकर रगड़ रगड़ कर धोना चाहिये। जहां मजदूर सस्ते हों, सीमेंट की हुई गच पर खूँटे से बांध उनकी धुलाई होनी चाहिये। जाड़ेके दिनोंमें भी धुलाईसे कोई हानि नहीं होती। जाड़ेमें नहलानेमें सावधान रहना चाहिये। कुछ गाय और बच्चे जाड़ेमें नहाना सह नहीं सकते।

PLAN OF CATTLE DIP

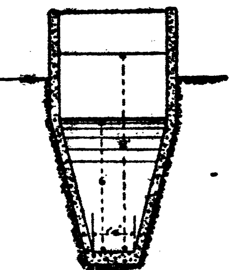



चित्र ४५. पशु-अवगाहन हौजका रेखाचित्र

१. पशुका बाड़ा, २. प्रवेश, ३. तैरनेका हौज, ४. निकलनेका स्थान, ५. पशु-शरीरसे पानी झड़नेका स्थान ।

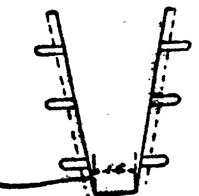



SECTION OF CATTLE DIP



SECTION OF BATH

हौजका अंश



SECTION OF CRUSH AT ENTRANCE

प्रवेशके पास बाड़ेका अंश

चित्र ४६. पशु-अवगाहन हौजका रेखाचित्र
१. जमीनकी सतह, २. पानीकी सतह ।

६६१. **छँटाई :** खुर और सींग साफ रक्खे जायँ। कभी कभी खुरको छाँटनेकी जरूरत होती है। खुरकी जाँच करनी चाहिये। यदि वह बड़े हुए मालूम पड़ें तो उन्हें छाँट कर बराबर कर देना चाहिये। नाल ठोकनेका जो कायदा है, इसका भी वही है।

६६२. **फिसलनी गच :** फिसलनी गच या जमीनसे बचना चाहिये। बुरी तरहसे फिसलनेसे मृत्यु, हड्डी हटनेके या टूटनेकी भी मिसाल हैं। पशु जितना भारी है, फिसलनी गच, जमीन या राहके खतरेसे उतनी ही सावधानी करनी चाहिये।

६६३. **राह, दरवाजे, और बाड़े :** ठट्ठको कभी सड़क और खासकर सँकरे दरवाजे होकर भगाना नहीं चाहिये। बाड़े या गोहालका दरवाजा ऊँचा रखना चाहिये। उपद्रवी पशुको नीची दीवाल या दरवाजा कूद कर भागनेका लालच होता है। इस तरह प्राणघातक चोट लग सकती है। भागना रोकनेके लिये द्वार या दीवालके ऊपर नुकीलापन न रहे। इससे भागनेकी कोशिशमें पेट फट सकता है और मौत भी हो सकती है। कँटीले तारका घेरा कभी नहीं लगाया जाय।

६६४. **साँढ़को काबूमें रखना :** यदि साँढ़ ठट्ठमें है तो उसकी नाकमें नकेल डालकर काबूमें रखना चाहिये। बिना नकेलका साँढ़ वशका पशु नहीं है। कभी कभी बहुत शान्त पशुभी अपने रखवाले और मालिकको ढसना (सींगमारना) चाहता है। साँढ़के पास जानेमें इसका ख्याल रखना चाहिये। घनिष्टताके कारण आदमी सावधानीकी बात भूल जा सकता है पर उसका परिणाम कठिन या घातक चोट हो सकती है। साँढ़ इतना बलवान होता है कि किसी आदमीको दे मारना या कुचल देना उसके लिये बड़ी बात नहीं है। (१०४६)

६६५. **पशुके लिये कसरत :** दुहनेके बाद उछलने कूदनेके लिये बछड़ेको छोड़ देना चाहिये। वह स्वास्थ्य और स्फूर्तिके लिये उछल कूद करते हैं। उन्हें सदा बाँधे रखना या सँकरी जगहमें जहाँ वह खेल कूद नहीं सकें रखना निठुरता है। उन्हें मनमानी दौड़धूप और खेलकूदके लिये रोज कुछ समय देना चाहिये। हमारे बच्चोंसे भी अधिक बछड़ोंको खेलकी जरूरत है। गाय और साँढ़से भी कसरत करानी चाहिये। गायको साँढ़से भिन्न सलूक चाहिये। उनसे कुछ काम लिया जाय या तेज दौड़ाया जाय। यदि गाय खूँटेपर ही खिलायी जाती है, गोचरमें नहीं जाती तो

उसे धीरे धीरे टहलाना चाहिये। सभी उमरके ढोरको उचित कसरतकी जरूरत है। अवस्थाके अनुसार इसकी व्यवस्था होनी चाहिये।

६६६. **चिकनी बाँधनेकी रस्सी :** बाँधनेकी रस्सी चिकनी होनी चाहिये। गलेकी रस्सी पतली और चिकनी हो। मजबूतीके लिये कई मिला कर बाँटी जायँ। उन्हें काफी ढीला रखना चाहिये। देहके भटकसे पतली रस्सी टूट न जाय इसके लिये गलेकी रस्सीमें एक मोटी रस्सी जुड़ी रहे जिसका फंदा मुँह पर हो। इसका परिणाम यह होगा कि, रस्सी पर जोर लगानेसे सिर झुक जायगा। कुछ गायें रस्सी तोड़कर भाग जाती हैं। बाँसके पतले टुकड़े रस्सीसे जोड़कर साँकल की तरह काममें लाये जा सकते हैं।

६६७. **नियमित समय :** गायकी सभी सेवा नियमके अनुसार समय पर हो। दिनमें उन्हें खोलनेका समय, सफाईका समय, खिलाने और दुहनेका समय सब दिन एक हो। समयकी पाबन्दी नहीं रखने से वह ऊब और चिढ़ जाती है। बैलोंके काम करनेका समय भी जहाँतक हो स्थिर रहे जिससे वह कामके लिये कब तैयार होना चाहिये और कब छुट्टी मिलेगी यह जान सकें।

वह बोल नहीं सकते हैं पर विरोध कर सकते हैं। इसे और अपनी खीज वह प्रगट किया करते हैं। उनसे अच्छा काम लेनेके लिये कार्यक्रम जहाँतक हो प्रतिदिन कड़ाईके साथ पूरा किया जाय।

६६८. **स्वास्थ्य :** पशुओंकी तन्दुरुस्तीका ख्याल रक्खा जाय। बीमारीका पहला लक्षण शायद आहार छोड़ना है। कारणकी खोज तुरत कर उसके इलाजका उपाय करना चाहिये। स्वास्थ्यकी साधारण अवस्था देखनी चाहिये। इसके लिये देहके घेरकी नाप हर महीने लेनी चाहिये और आँकड़ेके अनुसार तौल जाननी चाहिये (६२५)। बढ़नेवालोंकी उचित तौल होनी चाहिये और प्रौढ़ोंकी कायम रहनी चाहिये। दो वर्ष तकके उमरवाले बढ़नेवालोंकी नापजोख प्रति सप्ताह जरूरी है। सयानोंकी जाँच महीने या ६ महीनेमें होना काफी है।

६६९. **गोदना—दागना :** बड़े ठट्ठमें पशुओंकी पहचानका कुछ उपाय रहना चाहिये। जहाँ पुराने गोरखिये होते हैं वहाँ सयाने पशुओंकी पहचानमें कठिनाई नहीं होती। पर बछड़ेकी पहचानमें पुराने रखवाले भी अक्सर भूल करते हैं। यह भूल दूध छुड़ाये बच्चोंमें ही होती है। जो दूध पीते रहते हैं उनमें कठिनाई नहीं होती। दूध छुड़ानेसे माँके साथ सम्बन्ध छूट जाता है।

उमर बढ़नेसे उनके रंग ढंग जल्दी जल्दी बदलते हैं। इसलिये उनकी पहचान अधिक से अधिक कठिन होती जाती है। पुराने सेवकोंकी बदली से उनकी पहचान बिल्कुल नहीं हो पाती। इसलिये पहचानका कोई स्थायी उपाय होना जरूरी है। इसके लिये उनकी देह पर कोई स्थायी चिन्ह बना देना चाहिये।

बड़े क्षेत्रोंमें पशुके चमड़े पर नम्बर दागनेकी चाल है। लोहेके बने अक्षर गरम करके दाग दिये जाते हैं। जिससे नंबर उभड़ आते हैं। वहांका चमड़ा जल जाता है और घाव हो जाता है। आराम होने पर दाग रह जाता है। इस तरीकेसे पशुके पास जाये बिना दूरसे ही उसे पहचान सकते हैं। इसमें पशुको बहुत कष्ट होता है और उस स्थानकी खाल चमड़ा बनानेमें बेकार हो जाती है। साधारण तौरपर चूतड़ पर दागते हैं। इस तरह चमड़ेका बहुत मूल्यवान भाग खराब और उसका व्यापारिक मूल्य घट जाता है।

दूसरा तरीका कानके भीतरी भाग पर अंक या अक्षर गोदनेका है। इसके लिये अक्षर और अंक सहित गोदनेके औजार मिल सकते हैं। इस औजारके छेदमें सुइयाँ लगी रहती हैं। जिन अँकों या अक्षरोंकी जरूरत हो उसे सजाकर गोद देते हैं। औजार दबानेसे बहुतसी सुइयाँ चुभती हैं और उनपर उन सुइयोंके दाग उतर आते हैं। उस दाग पर एक तरल पदार्थ मल दी जाती है। यह चुभे छेदमें घुस जाती है जिससे स्थायी निशान बन जाता है। यह निशान उसके जीवनभर रहता है। इसमें एक ही आपत्ति यह है कि, नंबर जाननेके लिये पशुके पास जाकर उसका कान उलटना होता है। लेकिन दागनेकी अपेक्षा इसमें जो खूबी है इस कारण यह आपत्ति उतनी गहरी नहीं है।

कभी कभी सींग और खुर पर दागा जाता है। यह बढ़नेवाले अंग हैं, इसलिये इनपरके निशान मिट सकते हैं। इसलिये उनकी जाँच बीच बीचमें करना पड़ता है और उन्हें फिरसे बनाना होता है। सींग और खुर पर अक्षर खोदना अच्छा उपाय है। इसके लिये बढ़ईकी छेनीसे अक्षर खोद सकते हैं। सींगपर अक्षर बनानेके लिये आरीसे भी काम ले सकते हैं।

# अध्याय २३

## खिलाना और पालना

६७०. **प्रांतोंके मुख्य चारे :** पशुपालनका यह सबसे महत्वका विषय है। ढोरकी पोषक आवश्यकताका वर्णन हो चुका है। उनका आँकड़ा और ब्यौरा दिया जा चुका है, जिससे कि, पोषणकी आवश्यकता हिसाब लगाकर जैसा चाहिये वैसा योग्य आहार जाना जा सकता है। इससे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज और भिटामिनकी आवश्यकता जान सकते हैं। फिर भी आवश्यकताके अनुसार सभी उपकरणोंवाला सस्ता और सहजमें मिलनेवाला युक्ताहार बनाना कठिन काम है। इसके लिये एक गुर नहीं बनाया जा सकता।

स्थानभेदसे गायके खिलानेकी चीजभी भिन्न भिन्न होती है। एकही प्रांतके एक जिलेसे दूसरे जिलेमें भेद होता है। पंजाब छोड़ प्रायः सभी प्रांतोंमें अन्न और दलहनकी डाँटही पशुओंको खिलायी जाती है। जिस इलाकेमें जो अन्न होते हैं उन्हींका डाँटका चारा होता है। धान मुख्य अन्न है। भारतके आधेसे अधिक निवासीका भोजन यही है। इसके पुआलसे शायद दो तिहाई ढोरका काम चलता है। क्योंकि धानके इलाकेमें दूसरी जगहसे जादे पशु हैं।

बड़े महत्वका दूसरा अन्न गेँहूँ है। पंजाबका मुख्य आहार गेँहूँ ही है। युक्तप्रांतकी भी यह मुख्य फसल है। मध्यप्रांत, सीमाप्रान्त, सिन्ध और बिहारके कुछ भागमें भी यह मुख्य फसल है। इन इलाकोंके पशुओंको मुख्य रूपसे गेहूँके पुआल पर ही निर्भर होना पड़ता है। गेँहूँके पुआलकी त्रुटि गेहूँके चोकरसे दूर हो जाती है। इसलिये धानके इलाकेके पशुओंके इतना यहाँके पशु अभागे नहीं हैं। गेँहूँके इलाकोंमें पंजाब सबसे भिन्न है क्योंकि, वहाँ बहुत जादे चारा पैदा किया जाता है। भारतमें १ करोड़ एकड़ जमीनमें चारा उपजाया जाता है और

इसमेंकी ५० लाख एकड़ जमीन अकेले पंजाबमें है। इसलिये पंजाबके ढोरोंको अनुकूल अवसर है। ज्वार-बाजरा मदरास, बम्बई, मध्यप्रान्त, युक्तप्रान्त, मध्य भारत और राजपुतानामें बहुत होता है। इन चीजोंकी डाँट धान और गेहूँकी पुआलसे कहीं पुष्ट चारा है। इसलिये इन फसलोंके इलाकेमें ढोरके निर्वाहका आदे अच्छा मौका है।

गायको खिलानेके लिये हर प्रान्त और जिलोंका अलग अलग मान बनाना होगा। धानके इलाकेकी समस्या सबसे कठिन है। क्योंकि, धानका पुआल और गुँड़ा घटिया चारा है। खासकर इसलिये कि, पुआलमें अतिरिक्त पोटाश होता है और चूना अपचनीय ऑक्सलेटके रूपमें है। लेकिन धानके पुआलकी समस्या सुलझ गयी है। इसके बारेमें कहा जा चुका है। चारेके साथ कुछ हरी घास, कुछ फलियाँ, खली, हड्डीका चूर्ण, और पूरा नमक देकर उसका सुधार हो सकता है।

यदि धानके इलाकोंके पशुओंको खिला कर संतुष्ट किया जा सके तो गेहूँ और ज्वार, बाजराके इलाकों, जहाँ अपेक्षाकृत अधिक सुबीता है, वहाँ कोई कठिनाई नहीं होगी।

**६७१: निर्वाहके लिये खिलाना:** (७२६-'३२) हम जानते हैं कि, गायको भरपेट रूखा चारा खिलाना चाहिये। रूखे चारेके साथ पुष्टई जैसे कि, चोकर, फलियोंका सूखा चारा, दाना (अन्न और दलहन) खली और बिनौला भी देना चाहिये। इन सबके मेलसे हमें युक्ताहार मिलता है, जिसकी जरूरत है।

रूखे चारेमें कमसे कम २० सैकड़ा या $\frac{१}{५}$ हरियाली जरूर होनी चाहिये। हरा चारा ७५ सैकड़ा तक दिया जा सकता है। सौ सैकड़ा तक भी दे सकते हैं पर उसमें होशियारी रखनी चाहिये। लेकिन साधारण तौरपर ७५ सैकड़ा ही अच्छा है। इसमें २५ सैकड़ा सूखा सामान मिलाना होगा। धूपमें सुखाये चारेमें भिटामिन 'डी' रहता है। खूँटे पर खानेवाले जानवरको भिटामिन 'डी' की कमी हो सकती है। इसके लिये हरी घासके साथ धूपमें सुखाया चाराभी खिलाना चाहिये। चरनेवाले पशुको धूपका अभाव नहीं होता इसलिये भिटामिन 'डी' का भी अभाव नहीं रहता। जहांके गोचर अच्छे हैं वहाँ सिर्फ हरे चारेसे ही पशु यथेष्ट पुष्ट हो सकते हैं।

अधिक दूध देनेवाली गायको चरनेके अतिरिक्त पुष्टई भी देनी चाहिये। इसकी मात्राका आधार गोचरका अच्छापन है। पर यह बहुत कुछ किताबी बात है।

हमारे यहाँ अच्छे या बुरे गोचर अधिक नहीं हैं। सरकारी क्षेत्रोंके सिवा आजके भारतमें केवल चराई पर पशुका निर्वाह नहीं हो सकता।

७३१ और ७३७ पैरामें धान पुआलके दो तरहके चारे दिये गये हैं। धानका पुआल सबसे खराब पुआल है। इसके बदले उस स्थानमें मिलनेवाले अन्य पुआल काममें लाये जायँ तो चारा बहुत अच्छा हो सकता है। साधारण कामके लिये ऊपरके आँकड़ोंमें धानके पुआलको हम दूसरा पुआल भी मान सकते हैं।

उसी तरह पैरा ७३७, ७६० में दूबकी जगह हम कोई हरा चारा मान सकते हैं, मूँगफलीके सूखे चारेके बदले फलियोंका सूखा चाराभी मान सकते हैं और अलसीकी खलीके बदले कोई खली मानलें जिससे कि, इनको मूल समझ इनका उपयोग हो।

## आँकड़ा—१११

### पैरा ७३१ और ७३७ के आधार पर निर्वाहका आहार

| | ५०० रत्तलकी गाय | | ८०० रत्तलकी गाय | |
|---|---|---|---|---|
| | गुर क | गुर ख | गुर क | गुर ख |
| पुआल | ८ रत्तल | ७ रत्तल | १२·५ रत्तल | ११·२ रत्तल |
| हरा चारा | २ ,, | २ ,, | ३·२ ,, | ३·२ ,, |
| फलियोंका चारा | कुछ नहीं | १·५ ,, | कुछ नहीं | २·४ ,, |
| खली | ·७५ रत्तल | कुछ नहीं | १·२ रत्तल | कुछ नहीं |

पशुको जितना प्रोटीन, फॉसफोरस और चूना चाहिये उसे देनेके लिये ६० और ६२ नम्बरके आँकड़ोंमें (७३१, ७३७) हमने सभी घासोंमें दूब, फलियोंके चारेमें मूँगफलीका सूखा चारा और खलियोंमें अलसीको पसन्द किया था। साधारण बात बतानेके लिये ऊपरके पैरामें यह विशेषता नहीं दिखायी गयी है। इनके बदले कोई हरा चारा, फलियोंका कोई चारा और कोई खली बतायी गयी है। इनकी कमियोंका खतरा जानकर भी यह किया गया है। यदि अधिक उदारता दिखायी जाय और एकके बदले दूसरेके जगह फलियाँ तथा खली दोनो ही साथ साथ दी जायँ तो यह कमी दूर हो जायगी। इस बदले रूपमें गुर क और ख एक होकर यों हो जायगा :

# आँकड़ा—११२

## मिलाजुला निर्वाह आहार

| | | ५०० रत्तलकी गायके लिये | ८०० रत्तलकी गायके लिये |
|---|---|---|---|
| पुआल | ... | ७ रत्तल | ११·२ रत्तल |
| हरा चारा | ... | २ ,, | ३·२ ,, |
| फलियोंका चारा | ... | १·५ ,, | २·८ ,, |
| खली | ... | ·७५ ,, | १·२ ,, |

(६४८, ६७२, ६८३-'६०, ६६६-१००१, १०४०, १०४३, १०४८, १०७४)

६७२. **साधारण निर्वाह आहार :** इस गुरका झुकाव अब साधारण हो गया है। मोटे तौरपर यह परिमाण हम नीचे लिखे अनुसार रख सकते हैं :—

### ८०० रत्तलकी गायका निर्वाह आहार

(१) पशुकी तौलका दो सैकड़ेसे कुछ ($\frac{१}{८}$) कम पुआल और हरा चारा ८०० रत्तलकी गायके लिये १४$\frac{१}{२}$ रत्तल मान लें। इनमें हरा चारा कमसे कम $\frac{१}{५}$ हो। यदि अधिक हरा चारा दिया जाय तो उसी अनुपातमें सूखा चारा कम होना चाहिये। हरे चारेका हिसाब सूखेके आधार पर लगाया गया है। यानी सूखा चारा जितना चाहिये, उसके अनुसार हरा चारा दिया जाय। बरसातमें कुछ घासकी तौल $\frac{१}{४}$ या $\frac{१}{५}$ भी सूख जाती है। सूखे मौसममें सूखनकी तौल एक तिहाई होती है। डाँटवाले चारे से पत्तेवाले अधिक सूखते हैं, यह याद रखना चाहिये।

(२) फलियोंका चारा सूखे रूखे चारेके बजनका $\frac{१}{६}$ हो।

(३) खली, फलियोंके चारेकी तौलका $\frac{१}{६}$ या सूखे रूखे चारेका $\frac{१}{१२}$ हो। यदि (२) और (३) को एक साथ लें तो दोनों मिलकर सूखे चारेकी पुष्टईका $\frac{१}{४}$ होगा।

निर्वाहके चारेका ऊपरकी बातका और सरल रूप नीचे लिखे अनुसार होगा :—

(१) पशुकी तौलके सैकड़ा दो रत्तलसे (लगभग $\frac{१}{८}$) कुछ कम सूखा और हरा चारा।

(२) रूखे चारेकी तौलकी चौथाई पुष्टई।

इस आधार पर कोई भी अपने यहाँके लिये निर्वाहका आहार-मान बना सकता है। (१) और (२) विषयके अनुसार जितने प्रकार भी आसानीसे मिल सकें चुन कर उनकी सूची बना सकते हैं। उनकी पचनीयता और रासायनिक रचना भी उनके नामोंके आगे लिखी जा सकती है। यदि इस प्रस्तावित सूचीमें पैरा ७३१ और ७३७ में बताये मानसे कुछ कमी हो तो वह चीज बदल सकते हैं या उसका सुधार कर सकते हैं।

६७३. **दुधार गायको खिलाना** : (७७०-'७१) दुधार गायको निर्वाह आहारके अतिरिक्त खिलाना चाहिये जिससे कि प्रति रतल दूधके लिये उसे पैरा ७७० में (आँकड़ा ६६) बताये अनुसार नीचे लिखी चीजें मिल सकें :—

## आँकड़ा—११३

### दूधके लिये निर्वाहसे अतिरिक्त आहार

| | | १ रत्तल दूधके लिये | | १० रत्तल दूधके लिये | |
|---|---|---|---|---|---|
| पचनीय प्रोटीन | ... | ·०५ | रत्तल | ·५ | रत्तल |
| स्टार्च इक्वीभैलेन्ट | ... | ·३० | ,, | ३·० | ,, |
| चूना | ... | ·५ | ग्राम | ५ | ग्राम |
| फॉस्फोरस | ... | ·४ | ,, | ४ | ,, |

उदाहरणके लिये १० रत्तल दूध देनेवाली गाय लें। हम पता लगा सकते हैं कि प्रोटीन आदिकी जरूरत पूरी करनेके लिये योग्य पुष्टई कितनी दी जाय। निर्वाहके आहारके अतिरिक्त दुधारको दाल देनेकी चाल बहुत जगह है। यह करनेके लिये हम दालोंका आँकड़ा देख सकते हैं। दुधार गायके लिये उर्द उपयुक्त दलहन है। दुर्भाग्यवश पैरा ६२७ की तालिकामें उर्दका आँकड़ा नहीं है। केवल एक ही दलहन चनेका हिसाब है। हम चाहे जो उपयुक्त दलहन काममें ला सकते हैं। फिरभी हिसाब लगानेके लिये हम चनेकी पचनीयताके अंक काममें ला सकते हैं।

# आँकड़ा—११९

## चनेका पोषक मूल्य

| | प्रति सैकड़ा तौल प्रति १०० रत्तल | प्रति ५ रत्तल | १० रत्तल दूधके लिये जरूरत |
|---|---|---|---|
| कच्चा प्रोटीन | १४·२३ रत्तल | ·७ रत्तल | ·५ रत्तल |
| एस० ई० | ७८·५ ,, | ३·९ ,, | ३·० ,, |
| चूना | ०·१६ ,, | ०·००८ ,,=३·६ ग्राम | ५ ग्राम |
| फॉस्फोरस | ०·९३ ,, | ०·०४७ ,,=२१ ग्राम | ४ ,, |

हम देखते हैं कि, ५ रत्तल चनेमें प्रायः सभी आवश्यक पचनीय एस० ई० हैं। चूना जितना चाहिये लगभग उतना है और फॉस्फोरस जरूरतसे कहीं जादे है। दूसरे दलहनोंके परिणाम भिन्न होंगे। पर मोटे तौरपर हम इतना जान गये हैं कि, प्रति १० रत्तल दूधके लिये ५ रत्तल दलहन से जरूरत लगभग पूरी हो सकती है। कुछ अच्छे गव्यक्षेत्रोंमें यही होता है। इसका अर्थ यह कि, दुधार गायको निर्वाह और दूधके लिये नीचे लिखी चीजें जरूरी हैं :—

६७४. दुधार गायका आहार : (७७०-'७१)

(१) पशुकी तौलके २ सैकड़ासे (प्रायः $\frac{1}{2}$) कम सूखा चारा और हरा चारा (सूखेके बराबर हरा चारा)। हरा चारा सूखेकी तौलके $\frac{1}{5}$ से कम न हो।

(२) कई तरहकी पुष्टईका मिश्रण, जैसे फलियोंका चारा, चोकर, खली आदि। यह रूखे चारेकी तौलका चौथाई हो।

(३) प्रति रत्तल दूधके लिये आधा रत्तल दलहन दी जाय।

(४) हड्डीकी बुकनी प्रति पशु २ से ३ आउन्स तक खासकर धानका पुआल खानेवालों को दी जाय।

(५) जैसा चारा हो उसके हिसाबसे $\frac{3}{4}$ से २ आउन्स तक प्रति दिन नमक दिया जाय। पुआलमें सबसे जादे दिया जाय।

ऊपरकी सरसरी तौर पर कही बातमें हरे चारेमें सूखा चारा केवल २० सैकड़ा माना गया है। हरा चारा जितना जादा हो उतनाही अच्छा आहार होगा

और पुष्टई की जरूरत उतनी ही कम होगी। यदि कोई उपयुक्त हरा चारा मिल सके तो केवल वही गायको खिलाया जा सकता है। केवल दूधके लिये जितना पुष्टई चाहिये मिलाना होगा। सूखे चारेका आधार भी धान या गेहूँके पुआलसा घटिया सामान है। अच्छी समिग्रीके साथ कम पुष्टईकी जरूरत होगी।

यह जान लेना चाहिये कि, जिस पुष्टईका जिक्र है उसमें फलियोंका सूखा चारा दो भाग और खली एक भाग है। यह घटिया पुष्टई है। यदि और अच्छी पुष्टई हो तो वह कमही खिलाना जरूरी होगा। दूधके लिये बढ़िया पुष्टईके लिये केवल चना दिया गया है।

किस आधार पर, किसी स्थानमें मिलने वाली सामग्रीसे ठीक रूखा और पुष्टईका चारा बनानेका आधार क्या हो, यह हम अब जान गये। उसके गुरमें नीचे लिखी चीजें होंगी :—

## आँकड़ा—११५

### १० रत्तल दूध देनेवाली ८०० रत्तलकी गायका आहार

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | रूखा चारा—८० भाग सूखा और २० भाग हरा चारा | ... | १४ रत्तल |
| २. | निर्वाहके लिये पुष्टई— ३·६ रत्तल<br>१० रत्तल दूधके लिये अतिरिक्त पुष्टई—५ ,, | ... | ८·६ रत्तल |

६७५. **खिलानेके बारेमें मैक्गूकिन :** उत्तरी सर्किलके फौजी गव्यक्षेत्रके कन्ट्रोलर कैप्टन सी० ई० मैक्गूकिनने एक लेख लिखा है "भारतमें दुधार पशुके खिलानेका व्यावहारिक आँकड़ा" (इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३१, पृ० १२४)। इसमें उन्होंने ८०० रत्तलकी दुधार गायकी आहारकी आवश्यकताओंका हिसाब लगाया है, जिसमें दूसरे चीजोंके अलावा ७५ सैकड़ा सूखा और २५ सैकड़ा हरा चारा नीचे लिखे अनुसार है :—

| | | |
|---|---|---|
| सूखा चारा (७५% सूखा, २५% हरा) | ... | १४ रत्तल |
| पुष्टई मिश्रित | | ६ रत्तल |

पुष्टईका मिश्रण नीचे लिखे अनुसार है :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| गेहूँका चोकर | ... | ... | ४ भाग |
| लाल सरसों (तोरिया) की खली | ... | ... | २ " |
| चनेकी भूसी | ... | ... | ५ " |
| चना | ... | ... | १ " |

मैक्गूकिनकी पुष्टई मिश्रण पैरा ६७४ के प्रस्तावित मिश्रणसे अधिक पुष्ट है। रूखा चारा भी मैंने २० सैकड़ा रखा है और उनने २५ सैकड़ा। हरा चारा जितना जादे हो पुष्टई उतनी कम चाहिये। मेरे आँकड़ेमें ८·६ पुष्टईके बदले मैक्गूकिनके आँकड़ेमें केवल ६ रत्तल है। रूखा चारा दोनों आँकड़ोंमें १४ रत्तल है। मैक्गूकिनके आँकड़ेमें अतिरिक्त पुष्टई है तथा चना भी मिलाया गया है। इन दो मुद्दोंके होते भी मैं समझता हूँ कि, दोनोंमें कोई वास्तविक भेद नहीं है। दो दृष्टियों से दोनों आँकड़े बनाये गये हैं। इसलिये जितनाभी हो सकता है दोनोंमें कुछ समानता ही है। मैक्गूकिनने अच्छा चारा ही चुना है। पर मैंने केवल पुआल जैसे घटिया सूखे चारेको भी स्थान दिया है। मैने अपने आँकड़ेके बारेमें यह सिफारिश रक्खी है कि, उसके चारे और पुष्टईका हिसाब और तुलना पैरा ७३१, ७३७ और ७७० में वर्णित निर्वाहके आँकड़े से करनी चाहिये और यदि जरूरत हो तो आवश्यक फेरबदल कर दिया जाय। जब मैक्गूकिनका आँकड़ा छपा था उस समय (१९३१) में यह संभव नहीं था।

इस आँकड़ेपर गौर करनेकी जरूरत है। इसलिये उनके हिसाबकी मुख्य बात और दुधार गायसे आहारका आँकड़ा कुछ ब्यौरेके साथ नीचे दिया जाता है। इससे एक अनुभवी निपुण आदमी जो इस बारेमें राह दिखा सकते हैं उनकी दृष्टिसे इस समस्याका अध्ययन पाठक कर सकते हैं।

६७६. **मैक्गूकिनके आँकड़ेका रूप :** "...गव्यक्षेत्रमें जितने काम होते हैं उनमें ढोरको खिलानेकी कलाको एक निश्चित रूप देनेका काम सबसे कठिन है।

"इसके कारण अनेक हैं। उनमें अनेक रोज रोज बदलते रहते हैं। यद्यपि सही सही खोजके आधारपर अनेक शास्त्रीय सहायता मिल सकती है लेकिन स्थानीय परिस्थितिमें काम लेनेपर उनमेंसे अनेक प्रमाण भ्रामक निकल सकते हैं।

"इसलिये मैं हिचकिचाकर ये आँकड़े छाप रहा हूँ। मेरा दावा केवल यही है कि, उनसे तीन शर्तें पूरी होती हैं जो मेरी समझमें साधारण किसानको बतायी किसी विधिके लिये आवश्यक हैं। जैसे कि :

(१) उनमें ढोरके आहारके मुख्य गुणोंका विचार रहता है।

(२) यह सरल हैं, क्योंकि, इनमें कभी कभी कमसे कम चूनेकी जरूरत होती है।

(३) इसमें स्थानीय परिस्थिति और खिलानेवालेके बढ़े अनुभवके अनुसार सुधार हो सकता है।

"...इसलिये मैं केवल उन्हीं मुख्य कारणों पर विचार करूँगा जिन्हें किसान अपने ढोरके आहारके लिये सोचता है और वह कारण इन आँकड़ोंमें कैसे आये।"

**६७७. मैक्गूकिनका आहारोंका वर्गीकरण :** "तरह तरहके खिलाये जानेवाले आहारका विश्लेषण साधारण किसान नहीं कर सकता। आहारमें रूखे चारेकी मात्रा अधिक होती है, यह बात उसीमें अधिक लागू है। एकही प्रकारके चारेका आहार-गुणभी धरती और मौसम, काटनेके समय आदि कारणोंके अनुसार अलग अलग होता है।

"इन आँकड़ोंमें चारेका चार वर्ग किया गया है। उत्तरी भारतके वास्ते आँकड़ोंको बहुत पेचीला किये बिना यथेष्ट पाया गया है। तरह तरहके पशुओंके लिये आजकल जो सबसे लाभकारी मान माना जाता है, सारे आहारका गुण उतना तक करनेके लिये पुष्टईके मिश्रणोंका परिमाण निर्धारित कर दिया गया है। पंजाब, सीमाप्रान्त और बलूचिस्थानके ३,००० से अधिक पशुओंको पिछले ६ वर्षोंके खिलानेके आधार पर यह आँकड़े हैं।"

आहारके आँकड़ेमें मैक्गूकिनने रूखे चारेका चार वर्ग (क) (ख) (ग) (घ) किया है।

(क) वर्ग : इसमें रूखा चारा बिलकुल सूखा होता है। जैसे कि, भूसा, कड़बी और सूखी घास आदि। (फलियोंकी पत्ती, फूलनेवाला अंश, और भूसी आदि भूसा है ; ज्वार, बाजरा आदिकी डाँट कड़बी है।)

(ख) वर्ग : इसमें चारेका लगभग ७५ सैकड़ा सूखा और २५ सैकड़ा हरा होता है। या सौ सैकड़ा शुरूमें काट कर अच्छी तरह सुखायी घास हो सकती है।

(ग) वर्ग : इसमें ५० सैकड़ा सूखा और ५० सैकड़ा हरा चारा होता है।

(घ) वर्ग : इसमें २५ सैकड़ा सूखा और ७५ सैकड़ा हरा चारा होता है।

"महत्वपूर्ण। सौ सैकड़ा हरा चारा, खास कर जब उसमें गीलापन ज्यादे हो तो कभी नहीं खिलाना चाहिये।

"टिप्पणी १ : कन्दमूल और साइलेज हरा चारा माना जाता है।

"टिप्पणी २ : जिस हरे चारेमें बहुत जादे गीलापन हो जैसे बरसीम, कन्दमूल आदि उसे हरा चारा जितना खिलाना चाहिये उससे ३३⅓ सैकड़ा अतिरिक्त खिलाना चाहिये।"

"टिप्पणी ५ : चारा अगर कुट्टी किया हुआ न हो तो २० सैकड़ा अतिरिक्त खिलाना चाहिये।"

**६७८. मैक्गूकिनका आहारका आँकड़ा :** नीचेके आँकड़ेके पहले चार खंभोंमें ८०० रत्तल तकके दुधार पशुओंके लिये पुष्टइयोंकी तौल रत्तलमें बतायी गयी है :—

## आँकड़ा—११६

### मैक्गूकिनका आहारका आँकड़ा

पुष्टईका मिश्रण रत्तलमें

| दैनिक दूध रत्तल | (क) वर्गका चारा कुल सूखा | (ख) वर्ग ७५% सूखा २५% हरा | (ग) वर्ग ५०% सूखा ५०% हरा | (घ) वर्ग २५% सूखा ७५% हरा | कितना चारा खिलाया जाय कुल सूखा रत्तल | कुल हरा रत्तल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १-३ | ५ | ३ | २ | ... | १४ | ७० |
| ३-६ | ६ | ४ | २ | १ | ,, | ,, |
| ६-९ | ७ | ५ | ३ | १ | ,, | ,, |
| ९-१२ | ८ | ६ | ४ | २ | ,, | ,, |
| १२-१५ | ९ | ७ | ५ | ३ | ,, | ,, |
| १५-१८ | १० | ८ | ६ | ४ | ,, | ,, |
| १८-२१ | ११ | ९ | ७ | ५ | ,, | ,, |
| २१-२४ | १२ | १० | ८ | ६ | ,, | ,, |
| २४-२७ | १३ | ११ | ९ | ७ | ,, | ,, |
| २७-३० | १४ | १२ | १० | ८ | ,, | ,, |
| ३०-३३ | १५ | १३ | ११ | ९ | ,, | ,, |
| ३३-३६ | १६ | १४ | १२ | १० | ,, | ,, |

आँकड़ा बताता है कि, यदि (ख) वर्गका चारा, जिसमें ७५% सूखा और २५% हरा चारा है, खिलाया जाय तो ९-१२ रत्तल दूध देनेवाली गायको ६ रत्तल पुष्टई खिलाना चाहिये। आँकड़ेमें प्रति ३ रत्तल दूधकी बढ़तीके लिये १ रत्तल पुष्टई बतायी गयी है। मैंने प्रति २ रत्तल दूधकी बढ़तीके लिये १ रत्तल पुष्टई दी है। यदि अच्छे वर्गका सूखा चारा और पुष्टई हो तो पुष्टई प्रति ३ रत्तल दूधके लिये १ रत्तल दी जा सकती है। पर जहाँकी हालत मैक्गूकिनके अनुसार पंजाब और सीमाप्रांतके क्षेत्रोंकी तरह नहीं है और जहाँके हरे और सूखे चारे घटिया हैं वहाँ २ रत्तल दूधके लिये १ रत्तल पुष्टई देना ही बुद्धिमानी है।

ऊपरके आँकड़ेमें मैक्गूकिनकी पुष्टई निम्न चीजोंका मिश्रण है :—

| | | |
|---|---|---|
| गेहूँका चोकर | .... | ४ भाग |
| मूँगफली, लाल सरसोंकी खली | | २ ,, |
| चनेकी भूसी | .... | २ ,, |
| चना | .... | १ ,, |

उन्होंने दूसरी पुष्टई भी बतायी है। उन्होंने हरेक पुष्टईका कुछ मनमाना पर साथ ही तुलनात्मक मूल्य बताया है। इससे यदि एकके बदले दूसरी पुष्टई देनी हो तो यह नया मिश्रण ठीक कितना दिया जाय यह मालूम हो सकता है।

## आँकड़ा—११७

### ६७६. मैक्गूकिनकी पुष्टईका मूल्य :

| पुष्टई | इकाई मूल्य | वर्ग नं० | अंतिम मिश्रणमें हरेक वर्गका अधिकतम और न्यूनतम प्रतिशत जितना होना चाहिये। न्यूनतम % | अधिकतम % |
|---|---|---|---|---|
| तीसीकी खली | ७४ | १ | ३० | ६० |
| तिलकी खली | ७२ | | | |
| लाल सरसोंकी खली | ६५ | | | |
| बिनौलेकी खली | ६३ | | | |
| सरसोंकी खली | ६१ | | | |
| चना | ६८ | | | |

| पुष्टई | | इकाई मूल्य | वर्ग नं० | अंतिम मिश्रणमें हरेक वर्गका अधिकतम और न्यूनतम प्रतिशत जितना होना चाहिये। न्यूनतम % | अधिकतम % |
|---|---|---|---|---|---|
| जई | ... | ६० | | | |
| मक्का | .... | ८१ | २ | २५ | ५० |
| गेहूँका चोकर | ... | ४३ | | | |
| चनेकी भूसी | ... | ३५ | | | |
| बिनौलेकी भूसी | ... | १० | ३ | .... | ४० |
| धानकी भूसी | .... | ८ | | | |
| जौ | .... | ७१ | | | |
| गेहूँ | .... | ७२ | ४ | .... | २५ |

पुष्टईका यह मूल्य निर्धारण सचमुच कैसे होता है इसे दिखानेके लिये मैकगूकिनने एक हिसाबका उदाहरण दिया है।

उनका मौलिक पुष्टई मिश्रण नीचे लिखी चीजोंका है। उनका मूल्य नीचे लिखे अनुसार है :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४ रत्तल गेहूँका चोकर | ... | ४×४३=१७२ | इकाइयाँ |
| २ ,, लाल सरसोंकी | खली | २×६५=१३० | ,, |
| २ ,, चनेकी भूसी | ... | २×३५= ७० | ,, |
| १ ,, चना | ... | १×६८= ६८ | ,, |
| ९ रत्तल | | कुल— ४४० | इकाइयाँ |

इसलिये प्रत्येक रत्तल मिश्रणके लिये ४४० ÷ ९ = ४८·९ इकाइयाँ (लगभग) हैं।

यदि ऊपरको पुष्टई काममें लावें तो ९–१२ रत्तल दूध देनेवाले ८०० रत्तलके पशुको (ख) वर्गके आहारमें ६ रत्तल पुष्टई दी जायगी। इन ६ रत्तलोंमें ६ × ४८·९ या ६ × ५० = ३०० मैकगूकिन इकाइयाँ होंगी।

यह ३०० मैकगूकिन इकाई हम किसी दूसरे मिश्रणसे भी दे सकते हैं। पुष्टईके मूल्यके आँकड़ेकी दाहिनी ओर उसका परिमाण दिया हुआ है। इन ३००

इकाइयोंके लिये हम एक ही चीज काममें नहीं भी ला सकते हैं। लेकिन आँकड़ेमें जैसा बताया गया है हमें उन चीजोंका अनुपात उसीके अनुसार रखना होगा।

मान लीजिये कोई पौष्टिक मिश्रण इन चीजोंसे बना है :

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३ रत्तल तीसीकी खली | ... | ३×७४=२२२ | इकाइयाँ |
| १ ,, जौ | ... | १×७१= ७१ | ,, |
| २ ,, गेहूँका चोकर | ... | २×४३= ८६ | ,, |
| ३ ,, चनेकी भूसी | ... | ३×३५=१०५ | ,, |
| ९ रत्तल | कुल— | ४८४ | इकाइयाँ |

इसमें हरेक रत्तल पुष्टईमें ४८४ ÷ ९ = ५३·८ इकाइयाँ हैं। मानका मिश्रण ४८·९ इकाईका था। यह आखिरी मिश्रण ४८·९ इकाईसे लगभग ४ इकाई अधिक शक्तिवाला है। इसलिये यदि नया मिश्रण दिया जाय तो आँकड़ेके वजनसे १०% कम पुष्टई दी जाय।

**६८०. हरा चारा : मैकगूकिन और सेन :** मैकगूकिनने ७० रत्तल हरे चारेको १४ रत्तल सूखे चारेके बराबर माना है। डा० सेनका ६२७ पैरेमें हरे चारेके तुल्य सूखे चारेके आँकड़ेके हिसाबका नीचे लिखा आधार है :—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (क) | सभी सूखी सामिग्री, जैसे सूखा चारा, खली, दाना आदि | | ९० | सैकड़ा |
| (ख) | रसदार साइलेज | .... | ३० | ,, |
| (ग) | हरी घास, हरी मक्का | .... | २५ | ,, |
| (घ) | ज्वार (पुष्ट) | .... | ३० | ,, |
| (ङ) | ,, (पकी) | .... | ४० | ,, |
| (च) | बरसीम और लूसन जैसी हरी फली | .... | २० | ,, |

१४ भाग सूखे चारेकी जगह ७० भाग हरा चारा देनेका मतलब सूखेका ५ गुना हरा चारा होता है। इसका आधार २० सैकड़ा सूखी सामिग्री है। मैकगूकिनने बरसीम और कन्दों जैसे खास तौरसे गीले आहारके लिये अन्य दूसरा अतिरिक्त ३३⅓ सैकड़ा रक्खा है। यह अंक बहुत जादे मालूम होते हैं।

डा० सेनका आधार अधिक पुष्ट है। हरे चारेका सूखा आधार निकालनेके लिये इसे ही काममें लाना चाहिये।

६८१. **खूँटे पर खिलानेके साथ चराई :** देहातोंमें चराईसे भी कुछ आहार प्राप्त हो जाता है। ऐसी हालतमें कुल आहार अंदाजकी चीज हो जाती है। चराईमें गायने कितना खाया यह जाननेका उपाय यह है कि, कितना अतिरिक्त आहार उसने खूँटे पर खाया, यह जाना जाय। गायें जितना खा सकती हैं उतना खाने देने पर साधारण तौर पर वह अपनी देहके तौलका २ सैकड़ा सूखा सामान खाती हैं। इससे उनका निर्वाह भी अच्छी तरह होता है। इसी आधार पर उनके लिये शरीर तौलका २ सैकड़ा सूखा सामान निर्धारित किया गया है। गायें जितना रूखा चारा खा सकें, खाने देना चाहिये। इस लिये चराईके बाद यदि गायको खूँटे पर भी खिलाया जाय तो उसके परिमाणके अंतरसे यह मालूम हो जाता है कि, चरकर उसने कितना खाया। जितनी हरियाली गाय चर गयी है उसीके हिसाबसे पुष्टई देनी चाहिये। पुष्टईका परिमाण स्थिर करनेमें गोचरके प्रकारका भी विचार किया जाता है। यदि उसने बरसीम और लूसन जैसे फलियोंके गोचरमें भरपेट चरा है तो उसे पुष्टईकी कुछ भी जरूरत नहीं। (५८७, ५६६)

६८२. **चराईके लिये काट छाँट :** चरनेके बाद गायके लिये खूँटेपरकी खिलायीमें पुष्टईमें काट छाँट करनेके लिये नीचे लिखा मार्गदर्शन मैकगूकिनने किया है :—

| | | |
|---|---|---|
| साधारण चराईमें | ... | २५ सैकड़ा |
| अच्छी चराईमें | ... | ५० सैकड़ा |
| बहुत अच्छी चराईमें | .... | ७५ से १०० सैकड़ा |

"स्थायी और गहरी चराईवाले, पर साथ ही भरेपूरे हरे तथा पोषक गोचरमें चरानेवाले पशुको (घ) वर्गकी पुष्टई मिश्रण ५० सैकड़ा कम देना चाहिये।" (मैकगूकिनका आँकड़ा)। मैकगूकिनकी टिप्पणी है कि, "गायके साथ दूध उत्पादनके लिये स्वाभाविक स्थायी तथा पोषक गोचरके फायदे अंदाजसे ज्यादे मानना कठिन है।" (५६६)

६८३. **खिलानेके साधारण सिद्धान्त :** गायको उचित आहार मिले इसलिये क्या खिलाया जाय। जितना वह खा सकती है उतना रूखा चारा हम उसे देते हैं। और उसने जो खाया है उसके अनुसार सूखे आहारकी प्रायः चौथाई पुष्टई भी देते हैं। यदि उसे सूखा चारा खिलाया गया है तो और भी पुष्टई दी

जाती है। हरा चारा जितना ज़ादे हो पुष्टईकी जरूरत उतनी ही कम होती है। यदि आहारमें कुछ फलियां भी हैं तो जरूरतकी पुष्टई उससे भी मिलती है। दुधार गायके प्रति २ रत्तल दूधके लिये हम १ रत्तल पुष्टई देते हैं। हरा चारा जितना ज़ादे और अच्छा होगा, पुष्टईका अनुपात उतना ही कम होगा। खनिजकी कमी पूरी करनेके लिये हड्डीका चूर्ण और प्रतिदिन $\frac{3}{4}$ आउन्ससे २ आउन्स तक नमक देना चाहिये। खूँटे पर खिलाने से नमककी जरूरत अधिक हो जाती है। (६७१)

६८४. **दूधके लिये खिलाना :** ब्यानेके बाद गायोंको दूध उतरने लगता है। बच्चेको पिलानेके लिये स्वाभाविक रीतिसे जितना दूध होता है उससे अधिक पानेके लिये कोशिश की गयी है। स्वाभाविक कार्यसे अधिककी मनुष्यकी माँग उसने खूबीके साथ पूरी की है। उचित खिलाईसे वह मनुष्यको अधिक दूधके रूपमें अतिरिक्त आहार लौटा देती है। अन्दाज है कि, निर्वाहका पूरा आहार देनेके अतिरिक्त जितना भी उसे दिया जाता है वह उसके आधेका दूध बना देती है। उसका यह आचरण मशीन जैसा है। उसे खिलाओ और दूध लो। लेकिन सभी मशीनें एक सा काम नहीं करतीं। उसी तरह सभी गायें चारेका दूध बनानेमें एक सी नहीं हैं। दूध बनानेकी कुछ की शारीरिक शक्ति सीमित है। उन्हें अधिक खिलानेसे दूध नहीं बढ़ता, मांस बढ़ता है। क्योंकि दूध बनानेकी उनकी शारीरिक शक्ति परिमित है। ऐसी हालतमें अतिरिक्त आहार व्यर्थ जाता है। यदि आहार बढ़ानेसे दूध नहीं बढ़ता तो इसका अर्थ यह है कि, गायका दूध बनानेवाली मशीन काम नहीं कर रही है। यह दूसरी बात है कि, जितना खिलाओ वह सब पचा लेगी। ऐसी हालतमें मालिक ध्यान रक्खे और उसकी दूध देनेकी शक्तिके अनुसार ही उसे खाना दे।

दूसरी तरफ कुछ गायें ब्यानेपर अपर्याप्त खानेपर भी पूरा दूध देंगी। पर यदि बराबर ही कम आहार मिलता गया तो दुधार गायका दूधभी कम हो जायगा। अन्तमें वह आहारके अनुपात ही में दूध देती रहेगी। गायसे ज़ादे से ज़ादा फायदा उठानेके लिये उसे खूब खिलाना ही बुद्धिमानी है। जितना दूध बढ़े उतना खिलाते जाना चाहिये। खिलाते खिलाते यदि दूधका बढ़ना रुक जाय तो और ज़ादे खिलाने से फायदा नहीं है। (६७१)

६८५. **कम खिलानेमें घाटा है :** गायको कम खिलानेसे लाभ नहीं होता। हरेक किसान जानता है कि, दुधार गायको कम खिलानेसे घाटा होता

है। क्योंकि उसे कुछ जादे खिलानेसे उसके बदलेका वह दूध दे देती है। बिसुकी गायको खिलाना भी फायदेका है, यह बात किसानके मनमें बैठाना कठिन है। बिसुकी गायको कम खिलानेका अर्थ है ठट्ठकी बर्बादी। कम खिलायी गायके पेटका बच्चा कमजोर होगा और वह जितना दूध दे सकती उससे कमही दूध देगी। इसके सिवा वह अधिक दिन तक दूधभी नहीं देगी। एक व्यानका कुल दूध बहुत कम होगा।

यह बात नहीं भूलनी चहिये कि, दुधार गायको निर्वाह आहारके अतिरिक्त जितना दिया जाता है उसका दूध बनता है। मानलो कि, किसी गायको १० इकाई निर्वाहके लिये और १० दूधके लिये कुल २० इकाई चाहिये। पर उसे केवल १५ इकाई ही दी जाती है। ऐसी हालतमें १५ और २० के अनुपातमें उसका दूध नहीं घटेगा। वह आधा हो जायगा। क्योंकि, १५ इकाईमें १० उसके निर्वाहमें लगता है। दूधके लिये १० के बदले ५ ही इकाई जमा रहती है। उसका दूध ५ ही इकाईके अनुसार होता है। अर्थात् दूध आधा हो जायगा। उसे यदि केवल १० इकाई ही खिलायी गयी तो इससे वह दूध देना बन्द कर केवल अपना निर्वाह करेगी।

कम खिलानेका कारण चारेकी कमी है। इसका उपाय दूसरे भागमें बताया गया है। वह उपाय है ठीकसे कम्पोस्ट की खाद देकर उपज बढ़ाना। इस तरह कुछ जमीन चारा पैदा करनेके लिये निकल सकती है। पेड़का चाराभी कामका हो सकता है। फसल काटनेके बाद फलियाँ लगानेसे बहुत अच्छा चारा मिल सकता है। साथही उससे धरतीका उपजाऊपनभी बढ़ता है। क्योंकि, उसकी जड़के जीवाणु नाइट्रोजन जमा करते हैं। (६७२)

**६८६. गायोंको अलग अलग खिलाना :** गायको अलग अलग खिलाना चाहिये। ठट्ठको उमरके हिसाबसे कई दलमें बाँट देना चाहिये। दुधार गायोंका भी अलग अलग प्रबन्ध हो। सभी दुधार गायोंको एकसे आहारकी न तो जरूरत है और न चाहिये ही। दूध जितना जादे हो उतनाही जादे चारा और पुष्टई चाहिये। इसलिये सभी गायोंको उनकी जरूरतके अनुसार अलग अलग खिलाना चाहिये। सभी गायोंको साधारण आहार देनेके बाद अतिरिक्त पुष्टई दूधके हिसाबसे देनी चाहिये। इससे लेखा रखनेकी जरूरत सिद्ध होती है। रजिस्टरमें हरेक गायके नामके आगे उसके दैनिक दूधकी तौल लिखनी चाहिये और उसी मुताबिक उसे अतिरिक्त पुष्टई देनी

चाहिये। गायका दूध जैसे जैसे घटता जाय उसकी पुष्टई कम करते जाना चाहिये। ब्यानेपर पूरा दूध देनेके लिये जितनी पुष्टई चाहिये उसकी उसे जरूरत होगी। (६७१)

६८७. **स्वादिष्ट चारा :** आहार केवल उचित ही न हो वह गायको स्वादिष्ट भी लगे। गायकी रुचि और अभ्यास ही स्वादिष्ट होनेकी कसौटी है। यदि एक तरहका चारा खानेका अभ्यास गायको है तो वह दूसरे तरहकी चीज नहीं भी खा सकती है। गाय बहुत रूढ़िग्रस्त पशु है। यदि आप गायको मोटा और अपर्याप्त आहार देते जाइये तो वह अपनेको उसके अनुकूल बना लेती है। अपर्याप्त चारेसे भी वह अधिक पोषण ले लेती है। साधारण तौरपर वह ऐसा नहीं करती। यह कहा जाता है कि, विलायतसे आयी गायोंकी अपेक्षा भारतीय गायें चारेसे अधिक पोषण ग्रहण करती हैं। भारतीय गायोंने अपने पालनेवालेकी दरिद्रताके अनुकूल अपनेको बना लिया है। खानेके कितना अनुकूल वह हो गयी है यह अचरजकी बात मालूम होती है। जिस आहारपर हमारी गायोंको जीना होता है वह ४५% कमीवाला माना जाता है। फिरभी गायें जी रही हैं। भलेही वह दुबली, कंकालमात्र, किलनीसे भरी, रोगोंकी शिकार हों।

अपनी रूढ़िप्रियताके कारणही वह पिछली शताब्दीसे उपेक्षित रहते भी जो खाना मिला उसी पर मगन रहती है। इसी कारण आज दूसरा खाना देनेपर वह नहीं खाती। इसलिये दूध बढ़ानेके लिये यदि खानेमें परिवर्तन करना हो तो एकाएक न कर धीरे धीरे करना चाहिये। एकाएक आहार बदलनेसे वह जितना खाती है उतना नहीं भी खा सकती है। इससे दूध कम हो जायगा।

धीरे धीरे आदत पड़ने से बदला चारा भी स्वादिष्ट मालूम होने लगेगा। जो आज अरुचिकर है पीछे वही बहुत रुचिकर हो जा सकता है। पुष्टई और नमक भी गायको स्वादिष्ट मालूम होता है। यदि गायको पुष्टई और नमक पहले खिला दिया जाय उसके बाद रूखा चारा दिया जाय तो वह उतना नहीं खायगी जितना सब कुछ मिला कर देने पर खाती। यदि यह रूखा चारा धान या गेहूँके पुआलका हो तो और भी नहीं खायगी। नमक मिलाकर स्वाद बढ़ाया जा सकता है। पर उससे भी अच्छा मसाला आदि है। गायके आहारको स्वादिष्ट बनानेमें मसालेका भी स्थान है।

बदबूदार, सड़ागला और फफूँदा खाना नहीं खिलाना चाहिये। फफूँदे भयावह होते हैं। फफूँदा लगा, आदमीके नहीं खाने लायक अन्न खानेसे पशुओंके मर

जानेको भी खबर है। साधारण तौरपर गाय ऐसा आहार नहीं खाती। भूखके मारे उनकी रुचि दब जा सकती है या नमक आदि मिलानेसे उनका अस्वाद छिपाया जा सकता है।

६८८. **तरह तरहके भोजन :** भोजनमें जितनी ज्यादे चीजें मिली हों उतना ही अच्छा है। क्या चाहिये और प्राप्य आहारमें वह किस रूपमें है इसका पूरा पता नहीं लगा है। इसलिये तरह तरहकी कई चीजें खिलानेके लिये चुननी चाहिये। इससे एककी कमी दूसरे से पूरी हो सकती है। घास और मुख्य रूखे चारे जितनी तरहके हो सकें, हों। कई तरह की चीजें मिलाकर खिलानेसे उनको बदलनेकी कोई जरूरत नहीं। जब तक दूसरी फसल न हो यह मिश्रण चल सकता है। मिलाजुला खाना बराबर खिलाना हानि नहीं करता और इससे एक छोड़ दूसरी चीज गायको अस्वादिष्ट भी नहीं लगेगी।

यदि गायको असाधारण भूख लगा करे तो इसका कारण जानना चाहिये और उसका इलाज करना चाहिये। असाधारण भूखका लक्षण हड्डी, चमड़ा, मिट्टी आदिका खाना है। इससे खनिज पदार्थकी कमी मालूम होती है। इसका इलाज उसे खनिज खिलाना है। हड्डीकी बुकनीके रूपमें उसे कैलशियम फॉस्फेट दिया जा सकता या सीप आदिके चूर्णके रूपमें उसे चूना खिलाया जा सकता है। नमककी कमीका पता आसानीसे चल सकता है और उसे दूर किया जा सकता है। पोषणके अध्यायमें कहा जा चुका है कि, गायोंके पास नमकके टुकड़े चाटनेके लिये रख देना चाहिये। (६७१)

६८९. **खाना तैयार करना :** पुष्टइयोंको उबालना अनावश्यक है। चक्कीमें दल लेनाही बस है। यह सूखा खिलाना ही सबसे अच्छा है। इस तरह पुष्टई अलग अलग बाँटना सरल है। कहा जाता है, अन्न और दलहनकी प्रोटीन उबालनेसे कम पचती है। कभी कभी गोबरकी जाँच करनी चाहिये। यदि उसमें बिना पचा अन्न दिखायी पड़े तो खाना तदनुसार ही देना चाहिये। अच्छी तरह हजम होनेके लिये दाल उबाल कर देना अच्छा होता है। खास कड़े अन्नको भिगा कर ही देना चाहिये। खड़े दाने, उर्द आदिको अँकुरा कर देना बहुत अच्छा है। अँकुरानेसे भिटामिन 'ए' बढ़ जाता है और जल्दी हजम भी होता है। पैरा ११६६ में मॉल्ट बनानेकी जो क्रिया है अंकुराने की वही है। कुछ गव्यशालामें देखा गया है कि, अँकुराया बिनौला खिलानेसे

दूध तो बढ़ता ही है, गायें जल्दी गरम भी हो जाती हैं। अँकुराये बीजमें भिटामिन 'ई' होनेके कारण ऐसा होता हो।

पुआलकी २ इंच लंबी कुट्टी करनी चाहिये। कड़ी डाँटकी कुट्टी महीन करनी चाहिये। समूचा पुआल या डंठल देनेसे बर्बाद जादे होता है और वह खाया भी कम जाता है। कुट्टी करके खिलानेमें नफा है।

पुआल या डंठल को नाँदमें भिगा कर मुलायम कर लेना चाहिये। नाँदमें चारा डाल कर उसमें जरूरतके अनुसार पानी, नमक, खली और अन्य पुष्टई मिलानी चाहिये। कुछ पशु-चिकित्सकोंका मत है कि, डंठल सूखा ही खिलाया जाय। इससे भीतरके पाचक रस जादा निकलते हैं। जब गायें गोशालाके बाहर हों उसी समय सानी लगानी चाहिये।

रूखे चारेमें मिलाये बिना यदि पुष्टई अकेली खिलायी जाय तो अच्छी तरह हजम हो सकती है। गायोंको पुष्टई अलग खिलायी जा सकती है। ऐसी हालतमें पुष्टईके बिना रूखा चारा कम स्वादिष्ट हो जाता है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये और खाना इस तरह खिलाना चाहिये कि, पुष्टईके साथ या बिना भी कुल रूखा चारा खा लिया जाय। गायें जब खानेको पहुचें तो मुलायम स्वादिष्ट चारा उन्हें तैयार मिले।

जब अन्न खिलाया जाय तब बाँटनेके पहले, बीचमें और बाद भी अन्नपर पहरा रखना चाहिये। गाय या बछड़े चुरा कर चाहे जितना खा सकते हैं। इसका परिणाम भयंकर हो सकता है। फफदनेवाले दाने अधिक खा जानेसे वायु बहुत पैदा होती है। वह जितना पैदा होती है उससे कम निकले तो पेट फूल जाता है। पेट फूलनेसे महाप्राचीरा (diaphragm) पर दबाव पड़ता है जिससे साँस लेनेमें गड़बड़ी होती है। यह महाप्राचीरा फट भी सकती है। इसका परिणाम घातक होता है। सतर्क नहीं रहनेसे पशु अन्न अधिक खा जा सकते हैं, इससे पेट फूलनेकी घटना घट सकती है।

भोज आदिके बाद बचा भात, दाल अधिक खिला देनेसे पशुका पेट फूलकर उसकी मौत हो सकती है। ऐसी दुर्घटना न हो इसका ध्यान रखना चाहिये। (६७१)

६६०. **आहारोंकी संख्या :** ढोरोंको सबेरे और साँझ दो बार खिला सकते हैं। साथ ही दोपहरको कुछ थोड़ा दे देना चाहिये। दूध देनेवाली गायका दुहनेके बाद तड़के ही खिलाना चाहिये। खिलानेके बाद जब गायें कसरतके लिये

चरनेको या सफाईके लिये बाहर ले जायी जायें उसी समय नाँदकी सफाई कर डालनी चाहिये। लौटने पर उन्हें सानी तैयार मिलनी चाहिये। वह सब बहुत जल्दी खाती हैं। घंटा डेढ़ घंटामें वह आधे दिनकी खुराक खा जाती हैं। खानेके बाद वह आराम करती हैं। कुछ देरके बाद पागुर करने लगती हैं। इस समय उन्हें शान्तिके साथ रहना बहुत अच्छा लगता है।

जहाँ दिनमें तीन बार दुहनेकी चाल है वहाँ दोपहरको दुहनेके बाद गायको कुछ खिलाना चाहिये। इसके बाद गायें साँझको दुही जाती हैं। इसके बाद उन्हें बाकी खाना रातभरके लिये खिला दिया जाता है। वह इसे खाती और पागुर करती हैं तथा सबेरे दुही जानेके लिये फिर तैयार रहती हैं।

काम करनेवाले बैलोंका समय खेतके कामके अनुसार कर लेना चाहिये। यदि वह खूब तड़के खेतमें काम करनेको जाते हों तो उन्हें और पहले खिला देना चाहिये। खेतसे लौटनेपर एक खाना उन्हें दिया जाय और तीसरा रातके समय। पर यदि कामका समय कुछ और हो तो खाने तथा कामका समय इस तरह बँटा रहे जिससे उन्हें खानेके बाद आराम और पागुरका समय काफी मिल सके।

६६१. **भोजनकी रेचकता :** हरा चारा खिलानेसे पेट साफ रहता है। इस दृष्टिसे भी हरा चारा जरूरी है। पर बहुत जादा पनीला चारा खिलानेसे पतला गोबर हो सकता है। इन दोनो बातोंका ख्याल रखना चाहिये। उसी तरह बहुत जादा सूखा चारा खिलानेसे पचनेमें गड़बड़ी हो सकती है।

६६२. **आहारका भारीपन :** आहार वजनी हों। पागुरवाले पशुओंका पेट और अँतड़ियाँ वजनी आहारके लायक बनायी गयी हैं। गाय और घोड़ेकी बनावटमें बहुत अंतर है। घोड़ेको ऊपर नीचे दाँत होते हैं इससे अपना खाना कुतर सकता है। इसके सिवा अपने मजबूत चौभोंसे वह अपने आहारको अच्छी तरह चबाकर पीस लेता है। गायकी अपेक्षा घोड़ेके पेटमें कम जगह है। इसलिये गायकी अपेक्षा घोड़ेको पुष्टई आहारकी जादे जरूरत है। पत्ते और डाँटदार गायका साधारण वजनी खाना घोड़ेके लिये फायदेका नहीं है और न वह उसे पचा सकता है। घोड़ा इतनी सामिग्री नहीं खा सकता। उसके पेटको कम वजनका अधिक पुष्टई आहार चाहिये। पचनेके लिये खानेके समयही घोड़ा चबाता है। गाय जल्दी जल्दी निगलकर आरामसे पागुर करती है। इसलिये गोपालक वजनी खाना देनेका ख्याल रक्खे। यदि समान आहारगुणका पुष्टई

आहार गायको खिलाया जाय तो वह उसे तुरत चट कर जायगी तथा पेट भरनेके लिये औरभी चाहेगी। यदि उसे अनिरिक्त नहीं दिया गया तो आजिज होकर रस्सी, कागज, कपड़ा या जो कुछ रद्दी चीज उसके सामने आवेगी उसे खानेकी कोशिश करेगी। भारी भरकम चीज खाये बिना उसकी भूख नहीं मिटती और वह खानेके लिये तरसती रहती है।

६६३. **पीनेका पानी :** खानेकी नाँदके पासही साफ पानी काफी रखना चाहिये जिससे प्यास लगने पर गायें पूरा पानी पी सकें। उनके खानेमें जितना पानी होता है उसके अनुसार वह पानी पीती हैं। यदि उन्हें बहुत पनीला चारा दिया गया तो वह कम पानी पीयेंगी। पर सूखा चारा देनेसे अधिक पानीकी दरकार उन्हें होगी।

६६४. **लेखा रखना :** गायोंको उनकी जरूरतके अनुसार अलग अलग खिलाया जा सके इसके लिये लेखा रखना चाहिये। इसमें ठट्ठको कई आहार-श्रेणीमें बाँटना होता है और हरेक दलके लिये निर्दिष्ट आहार दिया जाता है। हर गायको जितने बार दुहा जाय उसके दूधकी तौल लिख ली जाय। इसी लेखेके अनुसार उन्हें पुष्टई खिलायी जाय। दूसरे सभी लेखोंकी बात अलग कही जायगी।

६६५. **गायका फलाना :** ब्यानेके कुछ दिन बाद गाय गर्माती है। तब उसे साँढ़के समागमकी जरूरत होती है। शास्त्रकी भाषामें इसे ऋतुकाल कहते हैं। इस कालमें गाय साँढ़का सहवास चाहती है। यह एक शारीरिक कारण है। इसका बुद्धिसे कोई सरोकार नहीं है। जब डिम्बकोषमें डिम्ब पुष्ट होता है तब यह इच्छा होती है। पशुओंमें एक विचित्र प्रकारकी सनसनी पैदा होती है। यह कुछ देर रहती और फिर मिट जाती है। गाय गरम और चिड़चिड़ी हो जाती है। भूखका ठिकाना नहीं रहता, दूध कम हो जाता है। गायके बहुत बेचैन होनेके पहले ही होशियार गोपालक समझ लेता है कि यह गरम हो रही है। जननेन्द्रिय फल जाती है और उसमें रक्त भर जाता है। उसमेंसे श्लैष्मिक स्राव होने लगता है। प्रायः गाय रंभाती और पूँछ उठाकर कूदती है। वह दूसरी गायों पर चढ़ती है। यह गरम होनेका निश्चित लक्षण है। गरम होनेकी यह अवस्था जिसे ऋतुकाल कहते हैं बारसे बारह घंटे रहती है। इसी समय साँढ़से मिलाना चाहिये। गरम होने पर जितनी जल्दी साँढ़से गाय मिलायी जाय

उतना अच्छा है। कुछ देरके बाद गरमी मिट जाती है तब साँढ़ उसे फला नहीं सकता। ठीक समय पर चुने हुए साँढ़के पास गायको ले जाना चाहिये।

ठट्ठमें साँढ़ रखनेके बारेमें दो मत हैं। कुछ इसके पक्षमें हैं और कुछ इसकी निन्दा करते हैं। मैं हर समय ठट्ठके साथ साँढ़का रहना उचित समझता हूँ। आदमीकी अपेक्षा साँढ़ गरमीका पता अधिक पा सकता है। गायके गरम होने पर नहीं फले इसकी गुंजाइश कम रहती है। सफल समागम होनेके बाद गाय और साँढ़को अलग कर देना चाहिये। यदि अधिक देर तक दोनों साथ रहें तो साँढ़ अपने पंषत्वको बर्बादी करेगा और यदि तुरत ही दूसरी गायको फलानेकी जरूरत हुई तो उसके लायक कम रहेगा। इधर गाय भी थक जायगी। एक समागमसे ही काम पूरा हो जाता है। बारबारके समागमसे फलानेमें सफलता होगी यह कोई बात नहीं है।

ब्यानेके तीन महीने बाद उसे फलने देना चाहिये। यदि वह जल्दी गरम हो जाय तो उसे साँढ़से नहीं मिलने देना चाहिये। क्योंकि जल्दी जल्दी ब्यानेसे वह कमजोर हो जाती है। तीसरे महीनेमें फलानेसे ९ महीनेके बाद या पहले ब्यानके साल भर बाद वह ब्यायेगी। एक वर्षके पहले ब्याना ठीक नहीं है। चौथे या पाँचवे महीनेमें यदि वह नहीं गरमावे तो यह चिन्ताकी बात है। क्योंकि, देरसे ब्यानेसे दूधकी हानि होती है। पर सदा ऐसा नहीं होता। ऐसी गायें हैं जो ७ वें महीनेके बाद गरमाती हैं और १६ वें या १७ वें महीनेमें ब्याती हैं। इस बीच १२ महीनेसे ज्यादे तक दूध देती रहती हैं।

६६६. **गरमानेमें देरी :** यदि कोई गाय गरमानेमें देरी करे तो उसका कारण ढूँढ़ना चाहिये। वह उसके मोटेपनके कारण ऋतुकालमें देर हो सकती है। दूध देनेके समय या बिसुकने पर उसकी हिफाजत नहीं होनेसे पोषणका अभाव भी एक कारण हो सकता है। इसलिये गरमानेमें देरी होने पर गायकी स्वास्थ्यकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि अधिक या कम खिलाईका दोष हो, उसे सुधारना चाहिये।

६६७. **गरमानेके लिये "हरमोन" की सूई :** यदि गाय गरम नहीं हो रही है तो इसका अर्थ है कि, जरूरी हरमोन (hormones) पैदा नहीं हो रहे हैं। हरमोनका धात्वर्थ उत्तेजित करना है। हरमोन एक पदार्थ हैं। यह जिस तन्तु या अवयवमें पैदा होते हैं उसे छोड़ दूसरोंके रक्तमें मिलकर प्रभावित करते हैं।

डिम्बकोष (ovary), थन, गले (thyroid) आदि की गिल्टी के रस हरमोनके उदाहरण हैं।

गाभिन गायके मूतमें यह होता है। मूतमें से इस हरमोनको निकाल चमड़ेमें (subcutaneous) सूई लगानेसे यह डिम्बकोषको उत्तेजित करता है। इससे गाय गरम हो सकती है। अभी तक मूतकी सूई गर्भ परीक्षाके लिये लगायी जाती थी। लेकिन अब गर्भधारण करनेके लिये इसकी सूई लगायी जाती है।

इंस्टिट्यूट ऑफ ऐनिमल जेनेटिक्स, एडिनबरा ने इस क्रियाकी सिफारिश की है। इसकी जांच भारतमें श्री पी० टी० कर ने की है। ऊपरके इंस्टिट्यूटकी अपेक्षा इन्होंने एक सरल उपाय निकाला है। पुराने तरीके में गाभिन गायकी पेशाबसे सल्फो सैलीसिलिक तेजाब (sulpho salicylic acid) के जरिये प्रोटीन पदार्थ जमा करना होता था: श्री कर ने देखा कि, बाँझपनकी हालतमें गाभिन गायकी पेशाबकी सूई चमड़ेमें लगानेसे आसानीसे अधिक अच्छा परिणाम होता है। उन्होंने लिखा है :

"....हमलोगोंने देखा कि, साधारण उपयोगके लिये इस उपयोगको सरल करनेसे वह व्यवहारिक और निरापद रहता है। लेकिन सूईके लिये पेशाब ताजी ही तुरत काममें लायी जाय। जीवाणु रहित किये हुए पात्रमें मूत जमा करना चाहिये। पहला कुछ आउन्स मूत नहीं लेना चाहिये। इसे साधारण छनने कागज (filter paper) में छानकर प्रति १०० रत्तल शरीरतौलके लिये १० सी० सी० के हिसाबसे सूई देनी चाहिये। नहीं पकनेके लिये जो साधारण सावधानी होती है की जानी चाहिये। लगातार चार दिन तक एक मात्रा रोज देनी होती है। एक व्यवसायी गव्यक्षेत्रमें यह उपाय काममें लाया जा रहा है और अच्छा साबित हुआ है। सार्वजनिक संस्थाओंके साँढ़ और जेलोंकी गाय पर मेरे कर्मचारियोंने इसका प्रयोग किया है। अधिकांशमें यह सफल सिद्ध हुआ।"—(पशु पालन शाखाकी दूसरी बैठककी रिपोर्ट, १९३६, पृ० १४१)

क्रिया बहुत सरल है। जिन्हें मनुष्य या ढोरोंके सूई लगाने की आदत है वह इसे कर सकते हैं।

सूई लगानेका सद्यः प्रभाव यह होता है कि, गायका दूध घट जाता है। वह धीरे धीरे फिर बढ़ जाता है। पर पहले जैसा सदा ही नहीं होता है। मेरा अनुभव यही रहा है।

मैंने तीनको सूई लगाई है। सभी सफल हुई। एक ११ दिनमें दूसरी २१ दिनमें और तीसरी सूई देनेके महीने भर बाद।

जो चाहते हैं कि, उनकी गाय ठीक समय पर गर्मावे उनके लिये यह अच्छा उपाय है।

**गर्मानेके लिये गायको छिक करना :** देरसे गर्माना रोकनेके लिये एक उपाय है। ठट्ठमें एक घटिया सांढ़ रक्खो, उसके मुतानके आगे टाटका एक टुकड़ा लटका दो। यह पीठसे बँधा रहेगा। ऐसा सांढ़ गायको छिक करके उसे गरमा देगा। टाटके कारण वह उसे फला नहीं सकता। छिक करने पर जब गाय गरम होगी ठट्ठका सांढ़ उसे फलावेगा।

६६८. **कृत्रिम वीर्यदान :** गायको सांढ़से समागम करानेके बदले ठीक तरहसे जमा करके सुरक्षित वीर्यकी सूई लगाकर गाभिन कर सकते हैं। इस उपायमें बड़ा सुबीता है। क्योंकि, दूरके परीक्षित सांढ़के वीर्यसे भी गाय गाभिन की जा सकती है। इससे नस्लमें वेगसे सुधार होगा। भारतमें इसका प्रचार नहीं है। यहाँ कठिनाइयाँ भी हैं, इस कारण इसका व्यापक उपयोग सम्भव नहीं है। दूसरे देशों जैसे रूसमें यह साधारण चाल है। इससे बहुत संतोषप्रद परिणाम निकला है। स्वाभाविक वीर्यदानसे सूईके वीर्यदानमें अधिक असफलतायें नहीं हुई हैं। स्वाभाविक वीर्यदानमें ६० से ७० सैकड़ा सफलता मिली है।

कृत्रिम क्रियामें सांढ़का समागम ऐसी गायसे कराया जाता है जिसकी योनिमें रबरकी थैली घुसायी रहती है। स्रवित धातु रबरकी नलीमें जमा करके पैराफिन तेलमें (paraffin oil) प्रयोगशालामें हिफाजतसे रक्खा जाता है। दूसरा तरीका यह है कि, हाथसे सांढ़का वीर्य किसी वर्त्तनमें निकाला जाता है। ग्लूको-फास्फेट (gluco-phosphate) के हल्के घोलमें १५° से २५° सैंटीग्रेड गर्मीमें शुक्रकीट २० दिन तक जीता रक्खा जा सकता है। खास तरहके बने वर्त्तनमें वीर्य बाहर भेजा जा सकता है। इसमें उसका पुंसत्व कम नहीं होता। एक बारके निकले वीर्यसे बहुतसी गायें फल सकती हैं। भारतकी शाही कृषि अनुसन्धान समितिने कृत्रिम वीर्यदानकी एक योजना बनायी है। १९४१-'४२ की रिपोर्टमें लिखा है कि, योजना उस साल चालू नहीं की जा सकी क्योंकि, इसके लिये अफसरकी नियुक्ति नहीं हो सकी थी। भारतमें कुछ प्रयोगके ही कार्य हो रहे हैं।

६६९. दुधार और बिसुकी गायकी हिफाजत और उन्हें खिलाना : गाय साधारण तौर पर बिसुकनेके पहले गाभिन हो जाती है। इसलिये बिसुकी गायकी हिफाजतका सवाल भी गाभिन गायकी तरह है। बिसुकने पर भी यदि गाय गाभिन न हो तो कारणका पता लगाना चाहिये। उसकी तन्दुरुस्ती ठीक कर या हरमोनकी सूई लगाकर उसे गर्माना चाहिये। पर यदि शरीरमें ही कोई दोष है तो इन उपायोंसे काम नहीं बनेगा। हो सके तो किसी पशुपालन निपुणसे गायकी परीक्षा करानो चाहिये। सरकारी और जिलाबोर्डके भेटेरिनरी असिस्टैन्टोंको इस कामकी शिक्षा साधारण तौर पर नहीं दी जाती। इसलिये उनसे यथार्थ काम नहीं भी निकल सकता है। अब हमारे भेटेरिनरी कालेजोंमें पशुपालन और गव्यव्यवसाय पर ध्यान दिया जाने लगा है। इस प्रयासका परिणाम कुछ वर्षोंके बाद देखनेमें आवेगा।

दुधार हालतमें ही यदि कोई गाय गाभिन हो जाय तो यह मानना चाहिये कि, उसे निर्वाह और दूध देनेके लिये यथेष्ट आहार मिल रहा है। यदि उसकी हालतमें कोई बिगाड़ न हुआ हो तो उसके लिये गोचरकी जरूरी कसरतके सिवा खास तौर पर कुछ करनेकी जरूरत नहीं। गर्भके पहले महीनेमें चराईके साथ खूंटे पर खिलाना बस इतना ही जरूरी है। (६७१)

६७०. गर्भकालमें आहार नियन्त्रण : बिसुकी गायको खिलाना अधिकतर उसकी हालतके अनुसार होता है। उसकी हालत यदि सुन्दर है और कुछ जादे मांस शरीर पर है तो निर्वाह-आहारके अतिरिक्त कुछ थोड़ा और देना ही जरूरी है। पर उसे मोटा नहीं होने नहीं देना चाहिये। फलियोंकी चराई उसके लिये बहुत अच्छी है। दूध देनेके समय जो आहार उसे मिल रहा था, उसमें दूधके लिये जितना अतिरिक्त मिलता था उतना छोड़ कर देना चाहिये। पहले कहा जा चुका है दूधकी मात्राके अनुसार आहार देना चाहिये। जब दूध देना बन्द हो जाय तो दूधके लिये जो खाना दिया जाता है वह बन्द हो जाना चाहिये। इसलिये उसके बिसुकने पर केवल निर्वाह-आहार उसे मिलेगा। गर्भकालमें भी उसे यही खाना मिलेगा। हाँ, दुबली हो जानेपर बात दूसरी है। बिसुकी गायके ब्यानेसे जब तक दो महीना न रह जाय उसे विशेष आहार कुछ देनेकी जरूरत नहीं। इसके पहले उसे अच्छी हालतमें रखना जरूरी है।

यदि वह अच्छी हालतमें नहीं है तो अगले प्रसवके बाद उसका दूध घट जायगा।

और प्रसवके समय पुरैन (placenta) नहीं निकलने जैसी गड़बड़ी हो सकती है। लोग यह समझते हैं कि, गर्भस्थ भ्रूणके लिये गर्भकालमें खिलानेकी जरूरत है। यह भूल है। जन्मकालमें जिस बच्चेकी तौल ४० रत्तल होती है उसमें केवल १० रत्तल सूखा सामान है। ८० रत्तल दूध पैदा करनेमें गाय उतनाही सूखा सामान पैदा करती है। गर्भिणी मनुष्य-स्त्री और गायकी बात अलग है। क्योंकि, गर्भिणी स्त्रीको बालककी रचनाके लिये तुलनामें बहुत अधिक सामान लगाना होता है। (६७१)

१००१. **गाभिनको खिलाना और बछड़ेका आकार :** एक विश्वास यह है कि, यदि गायको गर्भकालमें अच्छी तरह नहीं खिलाया जायगा तो उसका बच्चा छोटे आकारका होगा। यदि भिटामिनकी कमी है तो बच्चा जी भी नहीं सकता। लेकिन माँके दुबलेपनसे उसके छोटा होनेकी कोई बात नहीं है। माँके हाड़-मांस और खूनकी बछड़ेको जितनी जरूरत है, मिल जाती है। भलेही माँ इनसे भरी पूरी न हो। कुछ बहुत असाधारण हालतमें निस्सन्देह बच्चे पर असर होता है पर गायकी साधारण उपेक्षासे ऐसा नहीं होता। उपेक्षाकी हानि मालिक और गाय दोनोंको होती है। यदि गर्भकालमें उसे अच्छी हालतमें नहीं रक्खा गया तो वह गाय दूध देगी ही। ब्यानेके बाद चाहे जितना बढ़िया खाना उसे दीजिये उससे कोई लाभ नहीं। "का वर्षा जब कृषी सुखानी"। उसका दूध कम होगा। (६७२)

१००२. **दुधार गायपर पूसाका प्रयोग :** शाही किसान वाइन सायरने गायकी सेवाका एक उपाय निकाला है। उनके उपायका ब्यौरेके साथ विचार करनेसे दुधार गायके प्रबन्धमें बड़ी मदत मिलेगी। उनके लेख मार्च और सितम्बर, १९३४ के "एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया' में छपे हैं।

आहारके हमारे आँकड़ेमें हर २ रत्तल दूधके लिये १ रत्तल पुष्टई दी गयी है। मैकगूकिनके विचारके अनुसार यह बताया गया है कि, यदि गायको पुष्टिकर रूखा चारा खिलाया जाय और चराया जाय तो पुष्टईकी आवश्यकता कम हो जाती है।

पूसाके ढङ्गमें बुराइयाँ बढ़ रही थीं। वाइन सायरने इसका कुछ कारण तो जरूरतसे जादे खिलाना और कुछ पूसा और कुछ दूसरी जगहोंमें काम लेनेका प्रचलित उपाय माना है। उन्होंने इसका इलाज सोचा और उसे सफलताके साथ अजमाया। गव्यक्षेत्रके ढोरके प्रबन्धमें उनके प्रयोग बहुत ऊँचे दर्जेके और सुदूर-प्रसारी महत्वके थे।

पूसाका साहीवाल ठट्ठ पंजाबमें १९०४ में खरीदा गया। उसमें १४ गायें और १ साँढ़ थे। १९१० में १८ गायें और १ साँढ़ तथा १९२३ में २ साँढ़ खरीदे गये। ठट्ठ सबसे अलग रक्खा गया। उसमें छूतके गर्भपात की एक भी घटना नहीं हुई। खरीदे ठट्ठका दूध १९१४ में प्रति दिन प्रति गाय ५ रत्तलसे प्रारम्भ हुआ। यह १९२८ में बढ़कर जादे से जादे १६.२ रत्तल हुआ। मार्च १९३२ में घटकर १३.९ रत्तल रह गया। १९२८ तक दूधकी बराबर बढ़ती हुई। ठट्ठके सुधारके लिये उनसे काम लेनेका अपना नया उपाय इसी समय सायरने चालू किया। साल भर काफी हरा चारा दिया गया और फलियोंके गोचरमें चराया भी गया। पुष्टईकी आवश्यकता बहुत कम हुई। फिरभी नियमानुसार २ रत्तल दूधके लिये १ रत्तल पुष्टई दी गयी।

## आँकड़ा—११८

### पूसाके ६०० रत्तल गायका अतिरिक्त आहार

९०० रत्तलकी गायके चारेका विश्लेषण करने पर नीचे लिखा परिणाम निकला :—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | सूखा चारा (भूसा) | — | ८ रत्तल | बथानमें खिलाया गया |
| २. | हरा चारा (बरसीम) | — | ४० रत्तल | |
| ३. | बरसीमकी चराई | — | २० रत्तल | |

(गाय अनुमानसे जितना खा सकती है)

ऊपरके आहारमें एस० ई० ५.५४ रत्तल हुआ। प्रति १०० रत्तलके लिये .६ रत्तल निर्वाह आहारके हिसाबसे ९०० रत्तलकी गायको ५.४ रत्तल एस० ई० चाहिये। इसलिये इस आहारमें वाँछित एस० ई० है। आवश्यकताकी तुलनामें इसमें प्रोटीन बहुत जादे है। उसका कारण अच्छे प्रकारकी फली और दूसरे हरे चारे हैं।

दूधके लिये निम्न पुष्टई का मिश्रण दिया गया :—

| | | एस० ई० | कच्चा प्रोटीन |
|---|---|---|---|
| ३ रत्तल जई | ६० सैकड़ा दरसे | १.८ रत्तल | ९.५ सैकड़ा |
| २ ,, चना | ६८ ,, ,, | १.३६ ,, | २८.० ,, |
| १ ,, रेपकी खली | ६० ,, ,, | ०.६० ,, | ३७.० ,, |
| ६ रत्तल | | ३.७६ रत्तल | |

६ रत्तलमें कुल एस० ई० ३·७६ रतल है। अर्थात् एक रत्तल पुष्टईमें ·६२६ रत्तल एस० ई० हुई।

एक रत्तल दूधके लिये आधा रत्तल पुष्टईमें ·३१३ एस० ई० मिली। सायरके अनुसार प्रति रत्तल दूधमें ०·२७ रत्तल एस० ई० और हमारे आँकड़े नं० ६६ के अनुसार ०·३ एस० ई० निर्धारित है। सायर ने इसे देख समझा कि, बहुत जादे पुष्टई खिलायी जा रही है। पचनीय प्रोटीनकी बात लें तो यह ठीक है। उस समय (१९३२) भारतीय चारोंकी प्रोटीनकी पचनीयता का पता नहीं था। इसका श्रेय सायरको है कि उन्होंने सही बात बतायी। उन्होंने देखा कि, बहुत जादे पुष्टई दी जा रही है। इसलिये प्रति ३ रत्तल दूधके लिये १ रत्तल पुष्टई मिश्रण देना उन्होंने तय किया। इसका उल्लेखनीय परिणाम हुआ। ठट्ठमें जादूसा परिवर्तन सिर्फ दूधकी उत्पत्तिमें ही नहीं, ब्याने और थनकी गड़बड़ियोंमें भी हुआ।

**१००३. पूसा साहीवालकी अत्यन्त खिलाई :** नया तरीका बदलनेके समय पूसा गव्यशालाके साहीवाल ठट्ठमें नीचे लिखी कमियाँ थीं :—

(१) दूधकी उत्पत्ति बढ़ती नहीं थी। इसके बदले कम होनेका रुख था।

(२) ब्यानेके बहुत दिन बाद समागम होता था।

(३) कुछ गायें बाँझ हो रही थीं और अपनी माँके इतना दूध नहीं देती थीं। इसलिये उन्हें क्रमशः वेशी संख्यामें निकाल देना होता था।

(४) स्तनप्रदाहकी गड़बड़ी (Mastitis) हो जाती थी।

सायरने पता लगाया कि, (१) और (२) बुराइयोंका कारण गायोंको बहुत जादे पुष्टई खिलाना है। मांसके लिये जिस तरह पशु पाले जाते हैं उसी तरह उनका पालन होता था क्योंकि, पूसाके साहीवाल ठट्ठको अंगरेजी रीतिसे खिलाया जाता था। (३) और (४) की बाँझपन और थन आदिकी गड़बड़ीके लिये उन्होंने दूसरे कारण और उनके उपाय बताये। (१) और (२) के लिये उन्होने २ रत्तल दूधके लिये १ रत्तल पुष्टई मिश्रणके बदले ३ रत्तल दूधके लिये १ रत्तल देना तय किया।

**१००४. आहार कम करनेसे दूध बढ़ा :** गायोंमें परिवर्त्तन हो गया। पुष्टईकी कमीसे पहले साल दूध ४७ सैकड़ा तक बढ़ा।

दूसरे वर्ष यह कुछ घटा। इसका कारण अन्य क्षणिक गड़बड़ियाँ थीं। इसका खानेसे कोई संबन्ध नहीं था। फिर भी ४१ सैकड़ा बढ़ती रही।

पुष्टई बढ़ानेके अतिरिक्त समान समयान्तर पर गउओंको सायरने चार बार दुहना शुरू किया। सभी गउओंने २० रत्तलसे जादे दूध दिया। परिवर्त्तनके पहले और बादकी दूध उत्पत्तिका अन्तर नीचे दिखाया जाता है :—

## आँकड़ा—११६

### विशेष उपचार से साहीवाल ठट्ठकी औसत दूध उत्पत्ति

| | गायोंकी संख्या | औसत दैनिक दूध उत्पत्ति। |
|---|---|---|
| विशेष उपचारके पूर्व | ४९ | ६६५·६ रत्तल |
| अप्रैल १९३२ से विशेष उपचारसे | ४९ | ९८३·६ ,, |

**१००५. प्रसवांत समागमकाल घटाना और बाँझपन :** प्रसवांतर समागमकाल जाँचके दिनोंमें १७२ दिनसे घट ९४ दिन रह गया।

"...इससे पता चलता है कि, कुमारी अवस्था से दूध देनेकी अवस्थाका समय घटानेका बाँझपन और बिसुकने पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है। मोटापन घटानेसे बाँझपनभी प्रायः मिटा है। बाँझपनका सरोकार स्त्रियोंकी मोटाईसे है, इस लोकमतके अनुकूल ही यह है।"

**१००६. दूध बढ़ाना, कई बार दुहना :** दिनमें चार बार दुहकर दूध बढ़ाना, कम दुधारको जादे बनाना और थनकी गड़बड़ी दूर करनेके सायरके अपने सिद्धान्त और उपाय थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि, कम दूध देनेवाली देशी गाय विलायती गव्यक्षेत्रके उपचार और आहारके लायक बिलकुल नहीं है। उनका तर्क है :

"... वह छोटी गाय है। १,५०० रत्तलकी विलायती नस्लके मुकाबले उसके वजनकी औसत ८५० रत्तल है। मालूम होता है कि, यह कई बार थोड़ा थोड़ा दूध दुहनेके बहुत उपयुक्त है। उसका बच्चा उसीके भरोसे छोड़ देनेसे जो हालत हो, और अगरेजी तरीके उस पर सफल नहीं होते हैं इसलिये उसे प्रमाणके बिना प्रायः कम दुधार जातिकी कह दिया जाता है। इसलिये सभी गायोंकी पुष्टई कम

कर दी गयी और उन्हीं उपकरणों और मात्राकी बनी पुष्टईका अनुपात ३ पर १ लागू किया गया। २० रत्तलसे अधिक दूध देनेवाली गायोंको २४ घंटेमें समान अन्तरकालमें ४ बार दुहा जाता था। पहले ३० दिन तक चाहे जितना दूध देतो हों सभी गायें ४ बार दुही जाती थीं।"

१००७. **पूसा साहीवालका विशेष प्रबन्ध:** कम दूध देनेवाली गायोंका दूध बढ़ानेके लिये इस विचारके अनुसार उन्होंने और भी प्रयास किया। उन्होंने देखा कि, बहुतसी तरुण गायें अपने वंश और जातिके अनुरूप दूध नहीं देतीं। आरम्भके वर्षोंमें इस कारण तीसरे ब्यानमें बहुतसी गायें बेच दी गयीं कि, वह कम दूध देती हैं और मानके अनुसार नहीं हैं। इसके कारण ठट्ठके दूध-उत्पादनमें बहुत कमी पड़ने लगी। सन् १९२८ में प्रति दिन प्रति गाय जादेसे जादे १६·४ रत्तल दूध होता था, वह स्थिर नहीं रह सका।

वह गायोंके लक्षणोंमें भेद मानते थे। उन्होंने जादे दूध देनेवाली गायोंको ही बार बार दुहनेको बात नहीं सोची। कम दुधारका दूध बढ़ानेके लिये भी वह दिनमें कई बार उन्हें दुहनेकी बात सोचते थे।

"कोई गाय कम दूध देती है इससे यह नहीं सिद्ध होता कि, वह दुधार नहीं है। यह उक्ति सही है कि, 'अच्छा दूध देनेवाले कुलीन टट्ठमें आधा फल वंशका मिलता है और आधा अच्छे प्रबन्धका'।"

१००८. **दूध देनेके लिये बछियोंको तैयार करना:** "...उचित उपायोंसे काम लेने पर भी जब तक यह स्पष्ट न हो जाय कि, इस गायमें अधिक दूध नहीं है तब तक कम दुधार कह कर उसकी निन्दा नहीं की जाय। यहाँ गायको अनुकूल पड़े ऐसा उपाय काममें लानेकी जरूरत मालूम होती है। क्योंकि बहुतसी गायोंकी वंशावली और नस्लसे जैसी उम्मीद नहीं थी वह कम दूध देनेवाली नहीं रहीं। ब्यानेके पहले ही सभी बछियोंको दुहानेकी आदत लगाना तय किया गया। उन्हें दूध देना सिखानेके लिये जरूरत हो तो ब्यानेके पहले और बाद दुहा जाय। यह उपाय संक्षेपमें बताया जा सकता है। ब्यानेके दो महीने पहलेसे बछियाको ४ रत्तल पुष्टई प्रतिदिन दो जाय। उसका थन मला जाय और उसे इसकी आदत अच्छी तरह लगाई जाय। दूध शुरू हो जानेपर यदि जरूरत हो तो उसे नित्य दुहा जाय। ब्यानेके बाद उसे दुहना सिखाया जाता है। इस सिखाईमें २४ घंटेमें उसे औसत सात आठ बार दुहते हैं, जरूरत हुई तो जादेसे जादे १५ बार तक दुहते हैं।

विशेष हालतमें यह उपचार ७ से १० दिन तक किया जाता है जैसा कि, ब्रीसूरती नामकी ओसर पर किया गया।"

१००६. ब्रीसूरती पर सायरका उपचार : उन्होंने ब्रीसूरती पर किये उपचारका यह आँकड़ा दिया है :

## आँकड़ा—१२०

### ब्रिसूरती बछिया नं० ६०६ पर किया उपचार

| | | |
|---|---|---|
| ब्यानके पहले दुहनेके दिनकी गिनती | ... | १० दिन |
| दुहनेका समय | ... | सबेरे और साँझ |
| पहले पाँच दिनका औसत दूध | ... | १ रत्तल |
| पिछले पाँच दिनका औसत दूध | ... | २ ,, |
| ब्यानके बाद उपचार दिनकी गिनती | ... | ७ दिन |
| दुहनेका समय | ... | १२ बार प्रतिदिन |

प्रति दिनका दूध :

| | |
|---|---|
| पहले दिन | ५·० रत्तल |
| दूसरे ,, | ८·५ ,, |
| तीसरे ,, | ११·५ ,, |
| चौथे ,, | ११·५ ,, |
| पाँचवें ,, | १४·० ,, |
| छठे ,, | १६·५ ,, |
| सातवें ,, | १८·० ,, |

"ब्यानेके पाँच दिन बाद वह अपने मामूली दूध पर आ गयी।

"बहुत जगह होता है कि, ओसरको बछड़ेसे पिलवाते हैं। यह गन्दा उपाय है। इसकी मनाही की गयी है। क्योंकि बच्चा छुड़ाने पर ओसर अशान्त हो जाती है पर आदमीके हटनेसे ऐसा नहीं हो सकता। दूसरे और तीसरे ब्यानमें सभी गायोंके साथ इसी तरह किया गया और ब्यानेके पहले १ गायसे एक दिनमें १६ रत्तल तक दूध दुहा गया।

"इस प्रयोगके प्रारम्भमें १९३२ के अप्रैलमें अच्छे नस्लकी दो गायें बुल्की नं० ५८० और अल्गो नं० ५३१ ठट्ठमें थीं। दूसरे और तीसरे ब्यानमें उन्हें दूध नहीं उतरा। इसलिये नियमके अनुसार उन्हें दुधार नहीं माना गया। ये दो गायें पसन्द की गयीं और इनपर कड़ाईकी गयी। १५ दिनके बाद बुल्की और ८ दिनके बाद अल्गी को दूध उतरने लगा। उनके पहले ब्यानके लेखेके साथ नया लेखा नीचे दिया जाता है।"

१०१०. अल्गी और बुल्कीका विशेष उपचार :

## आँकड़ा—१२१

### अलगी और बुल्कीके दूधका आँकड़ा

| ब्यानकी संख्या | रत्तलमें दूधकी कुल उपज<br>अल्गी नं० ५३१ | <br>बुल्की नं० ५८० |
|---|---|---|
| १ | ६० दिनमें ४२४ | ८९ दिनमें ६७६ |
| २ | ५० ,, ४०२ | ११७ ,, १,३०० |
| ३ | २१० ,, २,०२१ | २९४ ,, ६,१५२ |
| ४ | ३०४ ,, ५,६२८ | ... ... |
| ५ | १७० ,, ३,५९५ | ... ... |

( तारीख तक अंक )

"बुल्की नं० ५८० के दूध देनेमें कुछ उल्लेखनीय विशेषता रही है। एक दिनमें उसमें ४० से २० रत्तलका अंतर रहा और ऐसा मालूम पड़ा कि बहुत दिनों तक अपना दूध रोक सकती है। पर अब उसकी समान स्थिति हो गयी है। ये दोनो गायें दूध देनेमें अब ठट्ठमें सबसे अच्छी हैं।"

**१०११. वत्स्य-मृत्युऔर ब्यानके पहले दुहना :** प्रसवके पूर्व दुहनेसे नवजातको पेउसी (colostrum) नहीं मिल सकती, इस पर लेखकने आगे चल कर विचार किया है। वह कहते हैं कि ब्यानेके सिलसिलेमें उस क्षण कुछ गायें पेउसी दे सकती हैं। यदि न दें तो बच्चोंको तीसीका कुछ तेल पिलाना चाहियें। उन्होंने सिद्ध किया है कि, इस कारण बच्चोंकी मृत्यु संख्या बढ़ी नहीं है। यह ध्यान रखना चाहिये कि, पूसाका ठट्ठ माँसे अलग रख हाथसे पिला कर पाला गया था।

# आँकड़ा—१२२

## पूसामें वत्स्य-मृत्यु संख्या (बरतनसे दूध पिलानेका काल)

| समय | बछड़ोंकी संख्या | प्रतिशत मृत्यु |
|---|---|---|
| अप्रैल १९३१ से मार्च १९३२ | ७० | ४·३ |
| ,, १९३२ से मार्च १९३३ | ६९ | १·४ |

"अधिकांश उदाहरणोंमें गाय और बाछीकी दुहाईकी शिक्षामें बहुत सफलता मिली है। जहाँ गायें (सभी बात नियमानुकुल होने पर भी) जितना चाहिये उतना दूध नहीं दें तो इसके अजमानेकी सलाह दी जाती है। गाय और बाछीके मूल्यमें इस उपायसे उल्लेखनीय अंतर किया जा सकता है। सिखाया हुआ कोई ग्वाला यह काम कर सकता है"

**१०१२. गर्भ और गाभिन गायकी हिफाजत:** जब गायके पेटमें बच्चा आता है तब उसे गाभिन कहते हैं। समागम और प्रसवके बीचका समय गर्भकाल है। गायका गर्भकाल २८२ दिनोंका है। संयोगकी तारीखसे प्रसवकी तारीख जाननेकी सूची दी जा रही है।

**गर्भकालके परिवर्त्तन:** गर्भकालमें गर्भाशय और जननेन्द्रियमें बहुत बड़ा परिवर्त्तन होता है। प्रसवके बाद ही वेगसे यह परिवर्त्तन समाप्त होने लगता है। पहले गर्भकालके कुछ परिवर्त्तन स्थायी होते हैं, जैसे दूधकी गिल्टी और जननेन्द्रियका आकार सदाके लिये बढ़ जाता है। गर्भकालमें जननेन्द्रियकी धमनी बड़ी हो जाती है जिससे कि भ्रूणकी शरीर-रचनाके लिये पूरी सामग्री मिलती रहे। जननेन्द्रियकी भीतरी दीवालमें धमनीका रक्त आता है और वहाँ पुरैनके द्वारा भ्रूणको मिलता है। ज्यों ज्यों भ्रूण बढ़ता है जननेन्द्रिय भी बढ़ती है। गर्भके अंतिम महीनोंमें पेटका अधिकांश गर्भाशय ही घेर लेता है। पुरैनके दलोंका (cotyledons) संख्या और आकार बढ़ जाता है। यह छत्तेकी तरह बढ़कर जननेन्द्रियमें भी घुस आते हैं।

**१०१३. गर्भके लक्षण:** गर्भ पुष्ट हो जाने पर कोई अनुभवी भी कह सकता है कि गाय गाभिन है। पर प्रारम्भिक कालमें यह बताना कठिन है।

ऋतुका रुकना मुख्य परिवर्त्तन है। गाभिन नहीं रहने पर हर तीन सप्ताहके बाद यह होता है। पर यह निश्चित लक्षण नहीं है। गर्भकालमें नकली ऋतुस्राव हो सकता है। जिस गायका समागम हो चुका है उसके फिरसे गरम होने पर यदि साँढ़ उससे समागम नहीं करे तो यह गर्भ रहनेका निश्चित लक्षण है। गायका स्वभाव बदल जाता है। वह अधिक सीधी और शान्त हो जाती है। यदि समागमके बाद वह फलती नहीं (गर्भ नहीं रहता) तो उसका चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है। गर्भके प्रारम्भिक दिनोंमें गायका स्वास्थ्य खास तौर पर सुधर जाता है। पर अंतिम दिनोंमें जब पेट भ्रूणसे ही भरा रहता है उस समय उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है। गाभिन गाय चलने और परिश्रमसे थक जाती है। गर्भ पहचाननेका सही तरीका यह है कि, सुबेरके समय उसकी दाहिनी बगलपर ठंढा पानी छींटा जाय। यदि गर्भ पाँच या अधिक महीनेका है तो ठंढे पानी से गर्भका हिलना डुलना दिखायी पड़ता है।

ज्यों ज्यों गर्भ बढ़ता है, पेट फूलता जाता है। अंतिम कालमें वह पचकता है और दोनो तरफ खाली दिखायी देता है। पिछले भागकी पेशियाँ लटकती सी मालूम होती हैं। कुब्ब और पूँछकी जड़ बहुत उभरी दिखायी देती है। जब पूँछकी जड़ ऊँची रहे और दोनों बगलें दब जायँ तो यह समझना चाहिये कि, गाय २ या ३ दिनमें ब्यायेगी। दूधकी गिल्टियाँ बढ़ जाती हैं यद्यपि पहले कुछ हफ्तोंमें वह सिकुड़ने लगती हैं। यदि गाय दूध दे रही है तो उसका दूध कम हो जाता है और गर्भके ७ वें महीनेमें बिलकुल बन्द हो जाता है। कुछ गाय ऐसी भी हैं जो ब्यानेके समय तक दूध देती रहती हैं। लेकिन इसका ख्याल रखना चाहिये कि ७-८ महीनेके बाद उसे दुहा न जाय और अच्छा खिलाया भी जाय। नहीं तो फायदेके बदले हानि होती है। तन्दुरुस्ती बिगड़ने से आगे ब्यानमें कम दूध होता है। फिर चाहे जितना खिलाओ यह बढ़ नहीं सकता। मनुष्यके भ्रूणके हृदयकी धड़कन ६ महीनेके बाद स्टेथस्कोपसे (stethoscope) सुन सकते हैं। पर गायके पेटकी कितनी हलचलों और आवाजोंके कारण स्टेथस्कोपसे भ्रूणके हृदयकी धड़कन नहीं सुनाई पड़ती।

**१०१४. गर्भकालमें ठूँस ठूँसकर खिलाना :** गर्भकालमें बहुत सँभाल या ठूँस ठूँस कर खिलानेसे कोई लाभ नहीं होता। फिर भी इसका ध्यान रखना चाहिये कि गाय जादे से जादे सफाईके साथ रहे और उसका स्वास्थ्य बहुत

सुन्दर बना रहे। आहार पौष्टिक हो और उसमें उत्तेजक पदार्थ कुछ भी न हों। अधिक रेचक पदार्थ नहीं दिये जायँ। उसे काफी पानी मिलना चाहिये। गर्भके समय पानीकी आवश्यकता बढ़ जाती है।

गर्भके अंतिम दिनोंमें गायको अलग बाँधना चाहिये। ठट्ठकी दुष्ट गायें गाभिनको दिक कर सकती या चोट पहुँचा सकती हैं। धक्के या चोटसे गर्भपात हो सकता है। गर्भपातका परिणाम बहुत बुरा होता है। क्योंकि, उसके बाद गाय जल्दी गरम नहीं होती और उसका स्वास्थ्य गिरता रहता है। फिर गाभिन होनेमें उसे दो वर्ष लग सकते हैं। गर्भकालमें कसरत बहुत अच्छी चीज है पर वह हल्की होनी चाहिये। गाभिन गाय यदि श्रमके बिना दिनभर बेकार खड़ी या बैठी रहे तो प्रसवके समय कठिनाई होती है। गर्भके समय कड़ा जुलाव नहीं देना चाहिये। ७ वें महीनेके बाद दूधकी गिल्टियों और थनकी मालिश करनी चाहिये जिससे कि, दूध जादे हो। दिन पूरा होने पर गायको मोटा बिछौना देना चाहिये जिससे कि लेटनेमें पेटके बच्चेको चोट न लगे।

# आँकड़ा—१२३

## १०१५. गर्भकालमें भ्रूणका विकाश :

१ हली अवस्था : १४ दिन। डिम्बकी लंबाई १/१२ इंच। अनुबीजित डिम्ब डिम्बनालीसे गर्भाशयमें पहुँचता है।

२ सरी अवस्था : ३ से ४ सप्ताह। भ्रूणकी लंबाई $\frac{1}{2}$ इंच। भ्रूणका पता मालूम होने लगता है। उसका सिर और देह मालूम हो सकती है।

३ सरी अवस्था : ५ से ८ सप्ताह। भ्रूणकी लंबाई १$\frac{3}{4}$ इंच। खुर और पंजा निकलता है।

४ थी अवस्था : ९ से १२ सप्ताह। भ्रूणकी लंबाई ५$\frac{1}{2}$ इंच। चारों पेट अलग होते हैं।

५ वीं अवस्था : १३ से २० सप्ताह। भ्रूणकी लंबाई १२ इंच। ओंठ, पलक और आँखके ऊपर बाल जमते हैं। बछिया-भ्रूणमें स्तन निकलते हैं।

६ ठी अवस्था : २१ से ३२ सप्ताह। भ्रूणकी लबाई २ फूट। बरौनी (पलकके बाल) निकलती है। सिर और पूँछ पर बाल उठते हैं।

७ वीं अवस्था : ३३ से ४० सप्ताह। भ्रूणकी लंबाई ३ फूट। भ्रूण पूरे आकारका हो जाता है। शरीर धीरे धीरे बालसे ढक जाता है। पंजे पूरे लेकिन मुलायम होते हैं।

# आँकड़ा—१२४

**१०१६. गायके गर्भकालका समय :**

औसतकाल २८२ दिन। बछड़ा प्रायः ४ दिन देर करके होता है। (इक्ल्स)

| तारीख | | तारीख | | तारीख | |
|---|---|---|---|---|---|
| समागम | प्रसव | समागम | प्रसव | समागम | प्रसव |
| जन० १ | अक्तू० ८ | मई ६ | फर० ११ | सित० ८ | जून १६ |
| ,, ६ | ,, १३ | ,, ११ | ,, १६ | ,, १३ | ,, २१ |
| ,, ११ | ,, १८ | ,, १६ | ,, २१ | ,, १८ | ,, २६ |
| ,, १६ | ,, २३ | ,, २१ | ,, २६ | ,, २३ | जुलाई १ |
| ,, २१ | ,, २८ | ,, २६ | मार्च ३ | ,, २८ | ,, ६ |
| ,, २६ | नभ० २ | ,, ३१ | ,, ८ | अक्तू० ३ | ,, ११ |
| ,, ३१ | ,, ७ | जून ६ | ,, १३ | ,, ८ | ,, १६ |
| फर० ५ | ,, १२ | ,, १० | ,, १८ | ,, १३ | ,, २१ |
| ,, १० | ,, १७ | ,, १५ | ,, २३ | ,, १८ | ,, २६ |
| ,, १५ | ,, २२ | ,, २० | ,, २८ | ,, २३ | ,, ३१ |
| ,, २० | ,, २७ | ,, २५ | अप्रैल २ | ,, २८ | अगस्त ५ |
| ,, २५ | दिस० २ | ,, ३० | ,, ७ | नभ० २ | ,, १० |
| मार्च २ | ,, ७ | जुलाई ५ | ,, १२ | ,, ७ | ,, १५ |
| ,, ७ | ,, १३ | ,, १० | ,, १७ | ,, १२ | ,, २० |
| ,, १२ | ,, १८ | ,, १५ | ,, २२ | ,, १७ | ,, २५ |
| ,, १७ | ,, २३ | ,, २० | ,, २७ | ,, २२ | ,, ३० |
| ,, २२ | ,, २८ | ,, २५ | मई २ | ,, २७ | सित० ४ |
| ,, २७ | जन० २ | ,, ३० | ,, ७ | दिस० २ | ,, ९ |
| अप्रैल १ | ,, ७ | अगस्त ४ | ,, १३ | ,, ७ | ,, १४ |
| ,, ६ | ,, १२ | ,, ९ | ,, १७ | ,, १२ | ,, १९ |
| ,, ११ | ,, १७ | ,, १४ | ,, २२ | ,, १७ | ,, २४ |
| ,, १६ | ,, २२ | ,, १९ | ,, २७ | ,, २२ | ,, २९ |
| ,, २१ | ,, २७ | ,, २४ | जून १ | ,, २७ | अक्तू० ४ |
| ,, २६ | फर० १ | ,, २९ | ,, ६ | | |
| मई १ | ,, ६ | सित० ३ | ,, ११ | | |

१०१७. **प्रसव :** भ्रूणका विकाश जब पूरी तरह हो जाता है तब वह बाहरी चीजकी तरह हो जाता है और प्रकृति उसे गर्भाशयके बाहर करनेकी चेष्टा करती है। गर्भस्थ भ्रूण पुरैनमें लगी नारके द्वारा अपना पोषण पाता है।

पुरैनके दल गर्भाशयकी ओर होते हैं। उनके द्वारा भ्रूणको माँका रक्त मिलता है। भ्रूणमें रक्त संचार होकर उसका पोषण होता है। उसका मल और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर जानेवाली धमनियोंमें होकर निकल जाता है। धमनियाँ लौट कर दलोंमें जाती हैं। यहाँसे मल माँके रक्तमें मिलता है और शुद्ध रक्त फिर नारके द्वारा भ्रूणमें जाता है। इस तरह भ्रूणका रक्त संचार होता है। भ्रूण जब पूर्ण विकसित होकर बाहर निकलने लायक हो जाता है तब गर्भाशयमें कुछ दाह होने लगता है। भ्रूणको बाहर निकलनेका वेग होने लगता है। इसेही प्रसव कहते हैं। इसके फलस्वरूप बछड़ेका जन्म होता है। प्रसवकी क्रिया लगातार होती रहती है।

१०१८. **प्रसवकी चार अवस्थाएँ :** अध्ययनके लिये इसे चार अवस्थाओंमें बाँट दें :

(१) प्रारम्भिक अवस्था,

(२) विस्तारकी अवस्था,

(३) प्रसवकी अवस्था,

(४) पुरैन निकलनेकी अवस्था।

गर्भाशयमें भ्रूणके चारों ओर एक तरहका नमकीन पानी रहता है। इसे गर्भोदक (Liquor Amni) कहते हैं। यह एक थैली जैसी झिल्लीमें होता है। इसी झिल्लीमें रहकर भ्रूण बढ़ता रहता है। पानीमें डूबा रहने पर भी दम नहीं घुटती क्योंकि, गर्भकालमें साँस नहीं ली जाती। साँसका काम रक्त-शोधन है। भ्रूणका रक्त-शोधन माँके रक्तसंचारके साथ होता है। दिन पूरा होनेपर गर्भाशय भ्रूण, पुरैन आदि सभी चीजें बाहर निकाल देना चाहता है।

१०१९. **प्रसवकी प्रारम्भिक अवस्था :** यह कई घंटा या दिनकी हो सकती है। लगभग इसी समय थन फूलकर कड़ा और कोमल हो जाता है तथा उसे दबानेसे उसमें से रस निकलने लगता है। योनिद्वार फूलता और लाल हो जाता है। वह बड़ा और थलथल हो जाता है। भूरे रंगका श्लैष्मिक पदार्थ उससे बह कर पूँछ और पिछले भागको गंदा कर देता है। पेट नीचेकी ओर फूल जाता है।

प्राणिकी बंधन ढीली हो जाती है। कभी कभी गाय उत्तेजित हो जाती है और खुली रहनेसे भयाकुलसी दौड़ती है।

**१०२०. विस्तारकी दूसरी अवस्था :** विस्तारकी दूसरी अवस्था होनेपर प्रसवकी सभी तैयारी शुरू होती है। शुक्र जब डिम्बको अनुबीजित कर देता है तब गर्भाशयका मुँह कसकर बन्द हो जाता है। उसके बाद गर्भाशयमें बाहरसे कुछ नहीं घुस सकता। गर्भाशयकी गरदन मोटी हो जाती है और एक जीवणु-नाशक पदार्थ से उसका मुँह बन्द हो जाता है। इससे हानिकारक जीवाणु उसमें नहीं जा सकते। अब सब उल्टा हो जाता है। जननेन्द्रियका द्वार सिर्फ खुलता ही नहीं बल्कि बच्चा बाहर निकल सके इतना फैल जाता है। इसलिये बच्चेके निकलनेके पहलेही खुलना और फैलना शुरू हो जाता है। जननेन्द्रियके द्वारकी मोटी पेशियोंको पतला होना और फैलना चाहिये। इसलिये ऐसी शक्ति जो दबा और फैला सके चाहिये।

पानीके थैलेसे यह काम पूरा होता है। भ्रूण पानीके थैलेमें रहता है। उचित समय पर जननेन्द्रियके भीतरसे एक दबाव होता है। निचोड़ने जैसी एक क्रिया होती है। इस दबावसे पानीवाला थैला बाहर निकलता है। इसकी झिल्लीका कुछ अंश जननेन्द्रियके द्वारमें चला जाता है और अंगुस्ताने जैसी सूरतका हो जाता है जिसमें पानी भरा रहता है। पानी पर दबाव पड़नेसे अंगुस्ताना फैलता है इससे जननेन्द्रियका द्वार फैलता है। दबावके कारण जो फैलाव है उसीसे प्रसवकी पीड़ा होती है। प्रसव पीड़ा ("पीर") लगातार नहीं होती यही इसकी विशेषता है। वह उठती है, दबाव डालती है, गहरी होती है और दब जाती है। हर पीरमें कुछ अधिक फैलाव होता है। दबने पर पशुको कुछ आराम मिलता है और फिर दूसरी पीर आती है।

गायको जब पीरें होती हैं तब वह उठती और बैठती रहती है। उसकी कातर आँख और उठना बैठना देखे बिना भी कह सकते हैं कि, उसे पीरें आ रही हैं। जब तक जननेन्द्रियका द्वार इतना नहीं खुलता कि योनि और योनिद्वार तक एक समान अबाध राह बन जाय तब तक पीरें आती रहती हैं। इस समय तक द्वार पूरा खुल जाता है और प्रसव की दूसरी अवस्था खतम होती है।

**१०२१. तीसरी अवस्था—भ्रूणका निकलना :** अच्छी तरह द्वार खुल जानेपर गर्भाशयमें फिर मरोड़ा होता है। इससे भ्रूणका अगला भाग गर्भाशयके

बाहर निकलता है। इसके बाद के धक्कों से बच्चा आगेही बढ़ता जाता है। अंतमें उसका अगला खुर दिखायी पड़ता है। इसी समय पानी के दबावसे भिल्लीको थैली लंबी हो जाती है और बढ़ने पर फट जाती है। उसका कुछ पानी निकल कर राह साफ कर देता है।

साधारण तौर पर बछड़ेके दोनो अगले खुर पहले निकलते हैं। उनसे लगी उसकी नाक रहती है। (अंगरेजीमें इसे thin end of the wedge कहते हैं)। जिस समय बछड़ेका खुर और नाक गायकी योनिद्वार पर होते हैं उस समय उसका सिर गायकी वस्ति (पेड़ूके नीचेका भाग—pelvis) में होता है। इसी समय सिर और कंधा वस्तिके छोटे छेदसे बाहर निकलता है। सबसे अधिक प्रयास और पीरका समय यही है। गाय कराहती है। पहले ब्यानकी गाय तो रँभाने लगती है। इस अवस्थामें मार्मिक पीड़ा होती है। बच्चेके शरीरमें सबसे बड़ा व्यास जहाँ है वह निकलनेके समय रास्ता सबसे जादा खुलना चाहिये। इसी समय सबसे जादा पीड़ा होती है।

अंतमें पेशियोंकी रुकावट वेगसे टूटता है और बछड़ेका सिर बाहर निकल आता है। गायके खड़ी रहने पर बछड़ेका सिर लटकने लगता है। इसके बाद बाकी देह भी निकल आती है और बच्चा पैदा हो जाता है। गायकी "नार" छोटी होती है। यह प्रसवके साथही निकल आती है। इसके बाद जननीके शरीरसे शिशुका बिलगाव पूरी तरह हो जाता है। यदि जननी खड़ी ही है तो शिशु जमीनमें सरक पड़ता है और बैठी रहनेपर धीरे धीरे बाहर आ जाता है। गाय यदि खड़े खड़े प्रसव कर रही है तो एक आदमीकी जरूरत वहाँ है। बच्चेके निकलते ही वह उसे थाम ले जिससे कि, उसे चोट नहीं लगे।

**१०२२. चौथी अवस्था—पुरैनका निकलना :** प्रसवके समय पुरैन और सभी झिल्लियाँ गर्भाशयमें ही रहती हैं। यह सब प्रसवके बाद निकलती हैं। स्वाभाविक ढंगसे पुरैन कुछ घंटेमें निकलती है। कमजोर और उपेक्षित गायकी पुरैन निकलनेमें देर लग सकती है। गायकी वृत्ति पुरैन खा लेनेकी रहती है। उस पर निगाह रखनी चाहिये। ज्योंही पुरैन निकले उसे हटा कर गाड़ देना चाहिये। यदि पुरैन निकलनेमें २४ घंटेसे अधिक देर हो तो, हो सके तो पशु चिकित्सकको बुलाना चाहिये। पर जहाँ वह न हो वहाँ स्वयं उपाय करना चाहिये। उपचारकको नख कटवा कर हाथ साबुनसे धोना चाहिये, फिर टिंचर

आयडिन और पानी के हल्के घोलमें हाथ डुबाना चाहिये जिससे हाथों पर बहुत हल्का रंग चढ़ जाय। ५% कारबोलिक तेलसे भी वही काम निकलता है और साथ ही हाथ चिकना भी हो जाता है। इसके बाद योनिमें हाथ डालकर पुरैन खोजना चाहिये। वह गर्भाशयमें चिपकी रहती है। उसे खुरचकर बाहर निकाल लेना चाहिये। इस क्रियाके बाद पोटाश परमैंगनेट (Potash Permanganate) के बहुत हल्के घोलसे जननेन्द्रियमें डूश देना चाहिये। घोलमें हल्के से हल्का रंग रहे। यदि अधिक देरीके कारण सड़ाँद होने लग गयी हो तो सल्फानिलएमाइड (Sulphanilamide) की १० टिकियाँ एक दिनमें एक बार खिलानी चाहिये या ऐसीही कुछ दूसरी औषधि देनी चाहिये। हाथसे पुरैन निकालनेकी क्रिया तभी की जाय जब और अधिक देर होनेसे विपदकी आशंका हो। नहीं तो प्रकृति पर ही भरोसा करना चाहिये।

बच्चा जैसेही जन्मे उसे गायके आगे कर देना चाहिये। गाय उसे चाट चाट कर साफ करने लगेगी। इसके बाद नार पर ध्यान देना चाहिये। आयडिनके हल्के घोलमें डोरा भिगाकर नाभिसे आध इंच ऊपर नार बाँधो। बँधी जगहके बादका भाग तेज कैंचीसे काट डालो। कैंची आयडिन के घोलमें धोयी हुई हो। कटी नाभि पर टिंचर आयडिनका फाहा रख देना चाहिये। तीन चार दिन तक यहाँ पर टिंचर आयडिन लगाते रहना चाहिये इससे नार सूख जाती है।

कुछ ही मिनटोंके बाद बछड़ा खड़े होनेकी कोशिश करता है। खड़ा होनेमें उसकी मदत करनी चाहिये। उसे थनसे लगानेके पहले कुछ दूध दुह लेना चाहिये। थनके दूधमें यदि कुछ जीवाणु हों तो इससे निकल जाते हैं। थन चूसने से जननेन्द्रिय का संकोच होता है। यह पुरैन निकलनेके लिये जरूरी है। बछड़ेके पीनेसे पुरैन निकलनेमें मदत मिलती है।

**१०२३. प्रसवके बाद गायकी संभाल :** योनिद्वार, पूँछ और अगल बगल गरम पानीसे धोकर साफ कर देना चाहिये। यदि पुरैन निकलनेमें देर हो रही है तो गाय पर निगाह रखनी चाहिये और गरम पानीमें एक कण पोटाश परमैंगनेट मिलाकर उस स्थानको धोते रहना चाहिये। नीमकी पत्ती डालकर उबाला पानी भी धोने के लिये सुन्दर कीटघ्न है। गायको गरम पानी पिलाना चाहिये। खाली पानीके बदले उसे रुचिकर बनानेके लिये उसमें कुछ चोकर और नमक भी डालना चाहिये। खिचड़ी खिलाना और भी अच्छा है। यह

बाजरा आदि की हो सकती है या चोकर, गुड़ और कुछ तिलका तेल डालकर बन सकती है। दो दिनों तक उसे पुष्टई सिर्फ इतना ही देना चाहिये जितनेसे खाना स्वादिष्ट हो सके। इसके बाद उसे धीरे धीरे पौष्टिक आहार देना चाहिये। छठे दिन तक पूरी मात्रा हो जानी चाहिये।

१०२४. **नवजातकी सँभाल :** यदि गाय चाट कर बच्चेको साफ न करे तो उसे साफ कपड़े से पोंछ कर साफ कर देना चाहिये। जाड़ेमें बच्चे को गरम रखनेके लिये कुछ दूर पर आग जलानी चाहिये। गर्भकी गर्मी बच्चे को अब नहीं मिलती इसलिये उसे इस गर्मी से कुछ आराम मिलेगा।

थनसे जो चीज पहले निकलती है वह दूध नहीं है। इसे पेउसी (colostrum) कहते हैं। यह देखनेमें दूधसी ही होती है। नवजातकी जरूरत पूरी करनेके लिये इसमें प्रोटीन और खनिज भरे रहते हैं। यह केवल बलवर्धक ही नहीं है, रेचकभी है। बछड़ेके पेटमें जमा गर्भमल (meconium) इसकी सहायतासे बाहर निकल जाता है। बच्चेको अपने काम लायक इसे पीने देना चाहिये। बहुत दुधार गायका सभी दूध यदि बछड़ेको पीने दिया जाय तो वह अतिसार रोगसे मर जायगा। क्योंकि, बच्चेके पेटसे जादे दूध गायको होता है। उसे उतना ही दूध देना चाहिये जितना उसके लिये फायदेमन्द हो। गायको दुहना चाहिये। दुहनेसे यह मालूम हो जाता है कि हर बार प्रति स्तनसे कितना दूध निकलता है। इससे यह अंदाज लग सकता है कि, बच्चेके लिये कितने स्तन मुकर्रर किये जायँ।

यह बात बहुत दुधारोंके लिये है। कम दुधार, बच्चेके लायक भी पूरा दूध नहीं दे सकती हैं। पहले बच्चेकी जरूरत पूरी करनी चाहिये।

१५ दिन तक माँका दूध ही बच्चोंका केवल मात्र आहार है।

१०२५. **बछड़ेको थन छुड़ाकर हाथसे पिलाना :** सरकारी फौजी क्षेत्रों और कुछ निजी क्षेत्रोंमें यह चाल है कि, जन्मसे ही बछड़ोंका थन छुड़ा देते हैं। उन्हें हाथ से पिलाकर पालते हैं। यह चाल यूरोप और अमेरिकाकी है। इस देशमें भी इसे चलानेकी सिफारिशकी जाती है। मैं नहीं समझता कि, माँ और बच्चेका स्वाभाविक संबंध क्यों तुड़वाया जाय जिससे माँ बच्चेको पहचान न सके और बच्चा माँको। जहाँ थन छुड़ाकर बच्चा पालनेकी चाल है वहाँ जन्मते ही बच्चेको माँके पाससे हटा देते हैं। गायकी आँखपर पट्टी बाँध दी जाती है जिससे वह बच्चेको देख न ले। ऐसे बच्चोंको धातृगृहमें रखकर पाला जाता है। माँसे

बच्चोंको बिछुड़ानेके पक्षमें बहुतसी बातें कही जाती हैं। सभी कारण आर्थिक हैं। भारतीय गायें इस चालके प्रतिकूल हैं। सारे भारतमें इसके चलजानेकी कुछ भी संभावना नहीं है। बड़े गव्यक्षेत्रोंको इसमें फायदा हो सकता है और वह इसे काममें ला सकते हैं। मैं इसकी कोई जरूरत नहीं समझता। माँ और बच्चे दोनो एक दूसरेको जाने, बच्चा माँके स्नेह से बञ्चित नहीं किया जाय, उसे माँका स्तनपान करने दिया जाय। यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसकी कदर करनी चाहिये। मैं नहीं समझता इससे दूधमें कुछ बचत हो सकती है। चाहे हाथ से पिलाओ चाहे थनसे, बछड़ेको जरूरतका दूध मिलना ही चाहिये। यह होनेसे इस प्रथामें कोई फायदा नजर नहीं आता।

**१०२६. हाथसे पिलानेके पक्षमें दावा :** जन्मते ही मातासे अलग कर हाथसे पिलानेमें जो फायदा है उसके पक्षमें नीचे लिखी बातें कही जाती हैं :—

(१) दुधार गायकी जाँचमें दुहनेमें जितना दूध निकाला जाता है उसीका हिसाब होता है। बच्चेको पिला देनेसे उतना दूध जाँचके हिसाबमें और गायकी रजिस्टरी करनेके समय कम हो जाता है।

(२) बछड़ेको पिलानेसे वह किसी दिन कम किसी दिन जादे पीयेगा। इससे अनिश्चितता रहेगी। दुहनेवाले इस बात से फायदा उठाते हैं। अपनी गफलत या चोरीके कारण दूध कम होनेका दोष वह बछड़ेके सिर मढ़ेंगे कि वह चोरी से जादा दूध पी गया।

(३) बछड़े मरनेसे गाय दूध नहीं देगी। पर हाथ की पिलाईमें यह सब गड़बड़ी नहीं है।

**१०२७. हाथ पिलाईका दावा समाधानकारी नहीं :** इनमेंसे कोई आपत्ति बड़ी नहीं है। जिन देशोंमें हाथसे पिलानेका तरीका प्रचलित था, वहीं केवल दुहनीके दूधसे गायकी जाँचका तरीका चलाया गया। भारतमें दूसरी बात है। जाँचका तरीका बदला जा सकता है। अभीतक गायकी जाँच नहीं सी होती थी। रजिस्टरी और दूधका लेखा लेना अभी शुरू हुआ है। थनसे पिलानेमें जो दूध लगे उसके लायक भी नियम बन सकते हैं। यह सही है कि पहले कुछ हफ्तोंमें हाथसे पिलाये जानेवाले बच्चोंको काफी दूध पिला दिया जाता है। जो दुहा जाता है उसका एक भाग बच्चेको पिला दिया जाता है। बच्चोंको खिलाना

दिया गया यह स्थिर करना कठिन काम नहीं है। यह कर लेना चाहिये तब नं० १ आपत्ति मिट जायगी।

नं० २ आपत्ति बच्चेका अनिश्चित मात्रामें पीना और दुहनेवालोंकी चोरी तथा देखभालका विषय है। विश्वासी ग्वाला रखनेसे यह सवाल नहीं उठ सकता। लाखों आदमी जो स्वयं अपनी गायें दुहते हैं, उनके लिये यह कोई समस्या नहीं है। चोर ग्वाला बच्चेके सिर दोष मढ़े बिनाभी चोरी कर सकता है।

बछड़ा पिलानेवाली गायका बछड़ा मर जाय तो वह बिसुक जाती है। यह सही है। लेकिन बछड़ेकी मृत्युकी घटनायें शायद कभी होनी चाहिये। इसके बदले थन छुड़ानेसे बछड़ेकी उमर कम होती है। उसके मरनेसे राष्ट्रकी हानि है। गव्यक्षेत्रोंमें बछड़े अवांछित और अपहर्त्ता माने जाते हैं। शहरमें दूध बेचनेवाले गव्य-व्यवसायी बछड़ेके मुँहसे छीनकर गायका बूँद बूँद दूध लेना चाहते हैं। यह हत्यारी प्रथा है। इसके चलते हजारों बछड़े मारे जाते हैं। बछड़ोंका बध करनेवाली चालको बढ़ावा नहीं दिया जा सकता। पर स्वास्थ्यपूर्ण सँभालसे भी यदि बच्चा मर जाय तो इसे अपरिहार्य जानना चाहियें।

हाथ पिलाईकी बात ठहरती नहीं है। बछड़ेके बिना सभी भारतीय गायें नहीं दुही जा सकतीं। बछड़ेके बिना दुहनेमें असफलता मिली है और दूध भी कम हुआ है। आकस्मिक मृत्युसे हुई हानिसे अधिक हानि इस तरह होती है।

१०२८. **हाथ पिलाई—नकली चाल है :** यदि इसकी छानबीन की जाय तो इसके सिवा इसमें और कुछ खूबी नहीं मालूम होगी कि, यह यूरोप और अमेरिका की प्रथा है। वहाँ संदिग्ध लाभके संभावनासे माँ और बच्चेको जन्मसे ही बिछुड़ा दिया जाता है। भारतमें मातासे बच्चेको बिछुड़ाकर उसे कटोरेमें दूध पिलानेकी जरूरत नहीं।

भारतमें सरकारी और कुछ निजी गव्यक्षेत्रोंका प्रबन्ध उनके हाथोंमें है जो यूरोप और अमेरिकामें पढ़े हैं। वहाँ बछड़ोंको हाथसे पिलानेकी प्रथा है। बछड़ोंकी जानकी परवाह किये बिना दूध पाने पर ही जादा ध्यान दिया जाता है, संवर्धन पर नहीं। एक सरकारी क्षेत्र है जहाँ विभिन्न जेलोंके गोरखिये शिक्षणके लिये भेजे जाते हैं। वहाँ हाथ पिलाईकी चाल है। बच्चोंका ध्यान कम रक्खा जाता है। ऐसी शिक्षा पाकर जब ये लोग जेलको लौटते हैं तब असफल रहते हैं। क्योंकि वहाँ हाथ पिलाईकी चाल नहीं है। ये शिक्षित आदमी

बच्चोंकी ओरसे लापरवाह हो जाते हैं। इनकी देखभालमें बच्चे मरने लग जाते हैं। बछड़ोंकी जान सस्ती समझने, उन्हें व्यर्थ और भार मानने, इनके कारण हाथ पिलाईकी चालवाले अनेक गव्यक्षेत्रोंमें बच्चे मरते हैं।

१०२६. हाथ पिलाईमें बछड़ोंकी जान बचाना : सायर थन छुड़ाकर बछड़ोंको हाथसे पिलानेके पक्षपाती थे फिरभी उनकी प्राण रक्षामें वह तत्पर थे। उनकी देखभालमें पूसामें बछड़ोंका मरना बिरलेही होता था। वह कटोरेमें पिलानेके पक्षपाती थे, पर उनके साधारण आदेश वत्सपालनमें उपयोगी हैं। "कटोरेमें पीनेवाले बछड़ोंका पालन" इस विषय पर उन्होंने जुलाई १९३७ में एक लेख लिखा था। ढोरको खिलाने और काम लेनेकी पूसा पद्धति सीखने लोग पूसा आते थे। सीखनेवाले सरकारी गव्यक्षेत्रके गोरखिये और सुपरभाइजर होते थे। सायर लिखते हैं :

"...इनमेंसे अनेक आदमियोंका विचार और उपाय देख दुख होता है कि, दुधार गायके पालनमें वत्सपालन सबसे उपेक्षित दिशा है। सरकार नौकरों, पशुओं और इमारत पर खर्च करनेमें मुट्ठी खोल देती है। वह मूर्खता या वत्सपालनके आरम्भिक साधारण सिद्धान्तोंकी उपेक्षाके द्वारा धनकी बर्बादी होते चुपचाप देखती है। हर कुलीन ठट्टका भविष्य उसके बछड़ों पर निर्भर है। यदि किसी ठट्टमें बच्चोंकी मृत्युसंख्या ४० सैकड़ा है तो अच्छे प्रकारके पशु संवर्धनमें जितना खर्च होना चाहिये उसका दूना होता है। ऊँचे खर्च पर संवर्धित अनेक पशुओंकी हानि सरकारको होती है। यह धन्धा तथा पशु-संवर्धन ऐसे क्षेत्रोंमें सिखाया जाता है जहाँ ऐसी मौत हर सालकी साधारण घटनायें हैं। ....साधारण बछड़ेका जन्मसे ही पालन कैसे किया जाय, उसकी तन्दुरुस्ती कैसे ठीक रक्खी जाय और सभी रोगोंसे उसे बचा कर जवान बनाया जाय इसीका स्पष्ट निर्देश करना ही उद्देश्य है। पूसामें हमलोगोंको कोई आधुनिक मकान नहीं था, कोई विशेष योजना या औजार नहीं थे। हमारे नौकर ग्वाले शायद भारतमें सबसे कम पारिश्रमिक पाने वाले हैं। उन्हें कोई प्रमाणपत्र या यहाँ पायी शिक्षाके अलावा कोई शिक्षा नहीं मिली है। लेकिन हमारे यहाँ बछड़ोंकी मृत्युसंख्या १·६ सैकड़ा है। यही सबसे बड़ा प्रमाणपत्र है। ढोरोंका संवर्धन और प्रबन्ध करनेसे हमलोगोंको इसका ज्ञान प्राप्त हुआ है। दुनियाँमें ऐसा ज्ञान ही सबसे अच्छा है। शिक्षित कर्मचारी और जंगली ढोर उसी तरह किसी कामके नहीं जैसे कि शिक्षित

ढोर और जंगली कर्मचारी। कर्मचारी लोगोंसे ढोरको सिखवाओ और तब ढोरभी कर्मचारियोंको सिखा सकेंगे।" —(एग्रिकल्चर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, जुलाई, १९३७)

**१०३०. हाथकी पिलाईसे बछड़े पालना :** "साधारण तौरपर यह महसूस भले ही न किया जाय पर सफल वत्सपालन उसके जन्मके पहले ही आरम्भ होता है। यदि आपकी गायको गर्भकालमें ठीक तरह से खिलाया गया है, उसे ठीक शिक्षा मिली है और ठीक तरहसे रक्खी गयी है तो बछड़ेके जन्मते समय गाय बहुत शान्त और अच्छी हालतमें रहती है। वह पहलेही दुही जा चुकी होगी इसलिये उसका थन मुलायम होगा, इस कारण अनेक कठिनाइयाँ नहीं होंगी।

" ... जैसे ही बच्चा पैदा हो गायके सिरपर एक टाट डाल दो और बछड़ेको हटा लो। इसे फुर्तीके साथ चुपचाप और होशियारीसे करो। गाय चाहे दिनके २ बजे ब्याये या रातके, इससे इसमें कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिये। इसे समान फुर्तीसे करना चाहिये ..."

"अब आपके हाथोंमें एक नवजात भीगा बछड़ा है। इसे किसी रक्षित स्थानमें ले जाओ और सूखे टाट पर डाल दो। पहले मुँह और नथुने साफ करो। इसके बाद पुराने मुलायम टाट से पोंछ कर देह एकदम सुखा दो। आध इंचके बाद नार काट दो और उसपर टिंचर आयडिन लगाओ। नारके सूखने तक ४-५ दिन यह करते जाओ। साधारण तौरपर नार डोरेसे बाँधी जाती है। इसकी कोई जरूरत नहीं है। जिस समय बछड़ा पोछा जा रहा हो उसी समय अपनी उँगली (आपका हाथ साफ और नख कटे होने चाहिये) उसके मुँहमें डालो। इस तरह उसे चूसना सिखाओ। यह बहुत महत्वकी बात है, क्योंकि, जब कटोरेसे बछड़ेको दूध पिलाया जायगा तब वह आपकी उँगलीसे ही पियेगा। नवजात बछड़ेको कभी नहीं नहवाओ। माताकी नकल करो। वह उसे चाटकर पोछती है। पुराने टाट से यह काम पूरी तरह हो जाता है। जब बछड़ा अच्छी तरह चल फिर सके तो उसे आधा रत्तल पेउसी पिलाओ। एक घंटेके बाद बछड़ा चलने फिरने लगता है। चार घंटेके बाद उसे साधारण आहार दिया जा सकता है।

"अपनी जननी या किसी दूसरी ब्यानेको तैयार गायकी पेउसी दी जाय। क्योंकि पेटकी मल निकालनेके लिये यह जुलाबका काम करती है। यदि पेउसी मिल नहीं सके या दूसरी गायोंका पूर्ण दूध दिया जाता हो तो चार पाँच दिनो तक

प्रति रात एक आउन्स तीसीका तेल उसे इसी कामके लिये देना चाहिये। मैं यहाँ कहना चाहता हूँ कि, शायद ही हमारे किसी बछड़ेको अपनी जननीकी पेउसी मिलती है। उनमेंसे अनेकोंको ऐसी गायोंकी पेउसी दी जाती है जो कई दिन बाद ब्याने वाली हैं। क्योंकि पूसामें ब्यानेके पहलेही गायें दुही जाती हैं। ऐसे समय, जब कोई दूसरी गाय ब्यानेको नहीं है, यदि कोई गाय ब्याये तो उसके बछड़ेको पेउसी नहीं मिलती। उसे पूर्ण दूध और तीसीका तेल दिया जाता है। पेउसी आवश्यक नहीं है। तीसीके तेलवाले बछड़े भी दूसरोंके जैसेही तन्दुरुस्त हुए हैं।"

## आँकड़ा—१२५

**१०३१. नवजात बछड़ेको कटोरेमें पिलाना :**

| जन्मके समय बछड़ेकी तौल रत्तल | | पिलाये दूधकी मात्रा रत्तल |
|---|---|---|
| ४० से नीचे | ... | ५ से ५$\frac{1}{2}$ |
| ४० से ४५ | ... | ६ से ६$\frac{1}{2}$ |
| ४५ से ५० | ... | ६$\frac{1}{2}$ से ७ |
| ५० से ५५ | ... | ७ से ७$\frac{1}{2}$ |
| ५५ से जादे | ... | ८ |

"रक्तातपकी गर्मीवाला दूध ही पिलाया जाता है, इस महत्वके नियममें कोई अंतर नहीं पड़ता। बछड़ोंके दस्त आदि अनेक रोगोंमें यह नियंत्रक कारण है। प्रत्येक बछड़ेकी हालत और पाचन शक्तिके अनुसार हर हफ्ते $\frac{1}{2}$ रत्तल दूध बढ़ा दिया जाता है। शुरूमें महीने भर उन्हें दिनमें तीन बार पिलाया जाता है, सबेरे ७॥ बजे, २॥ बजे दोपहर और रातके ८॥ बजे। कमजोर बछड़ेके लिये यह नियम ६ हफ्तोंके लिये चलता है। महीने भरके बाद दिनमें केवल दो आहार जरूरी हैं।..."

"६ हफ्तोंके बाद उन बछड़ोंको कुछ सूखा और हरा चारा दिया जाता है।..."

यहाँ सायर बछड़ोंको अलग अलग कटोरेमें पिलाने और खुलेमें एक दूसरेसे काफी दूर दूर बाँधनेकी सिफारिश करते हैं जिससे एकसे दूसरेको कोई गड़बड़ी न मालूम पड़े।

बछड़े जब खूँटे से बँधे रहते हैं तब उनकी जाँचकी जाती हैं, उनपर खुरहरा किया जाता है और उनकी देखभाल होती है। इस तरह उनकी सँभाल शुरू होती है। यह सचमुच उनका मनुष्यसे नजदीकी संपर्क है।

१०३२. सायरका बछड़ोंके आहारका आँकड़ा: सायरने मामूली हालतके लिये आहारका आँकड़ा दिया है। जल्दी पुष्ट होनेके लिये दूसरे आँकड़ेके अनुसार अधिक और विशेष आहार देना चाहिये।

## आँकड़ा—१२६

### बछड़ेके आहारका आँकड़ा

| उमर हफ्तेमें | पूर्ण दूध रत्तल | दुद्धी रत्तल | दाना रत्तल | नमक आउन्स |
|---|---|---|---|---|
| १ | ८ | ... | ... | ... |
| २ | ८ | ... | ... | ... |
| ३ | १० | ... | ... | ... |
| ४ | १० | ... | ... | ... |
| ५ | १२ | ... | १/२ | १ |
| ६ | १२ | ... | १/२ | १ |
| ७ | १२ | ... | १/२ | १ |
| ८ | १२ | ... | १/२ | १ |
| ९ | ८ | २ | १ | १ |
| १० | ८ | २ | १ | १ |
| ११ | ६ | ४ | १ | १ |
| १२ | ६ | ४ | १ | १ |
| १३ | ४ | ४ | १ १/२ | १ |
| १४ | ४ | ४ | १ १/२ | १ |
| १५ | ४ | ४ | १ १/२ | १ |
| १६ | ४ | ४ | १ १/२ | १ |
| १७ | २ | ६ | २ | १ |

| उमर हफ्तेमें | पूर्ण दूध रत्तल | दुद्धी रत्तल | दाना रत्तल | नमक आउन्स |
|---|---|---|---|---|
| १८ | २ | ६ | २ | १ |
| १९ | २ | ४ | ३ | १ |
| २० | २ | ४ | ३ | १ |
| २१ | ... | ४ | ३ | १ |
| २२ | .... | ४ | ३ | १ |
| २३ | .... | ४ | ३ | १ |
| २४ | .... | ४ | ३ | १ |

कटोरेमें पीनेवाले बछड़े २० हफ्ता या ५ महीनेमें जितना पूर्ण दूध ऊपरकी सूचीके अनुसार पीयेगा उसका हिसाब करने पर ९५२ रत्तल नीचे लिखे अनुसार होता है :—

## आँकड़ा—१२७

### पूसामें बछरू पालनेके लिये दूधकी मात्रा

| | | |
|---|---|---|
| १ ला | ४ हफ्ता | २५२ रत्तल |
| २ रा | ४ ,, | ३३६ ,, |
| ३ रा | ४ ,, | १९६ ,, |
| ४ था | ४ ,, | ११२ ,, |
| ५ वाँ | ४ ,, | ५६ ,, |
| | कुल— | ९५२ रत्तल |

यदि बछड़ोंको थनसे ही पिलाया जाय तो इससे अधिक पच आनेकी संभावना नहीं है। पूसाकी गायोंमें कुछ कम दूधार गायें अपने पहले और दूसरे ब्यानमें अल्गी और बुल्कीके इतना दूध भी मुश्किलसे दे सकीं, उन्हें अपने बच्चोंको पिलाने भर ही दूध हुआ था।

**बछरुओंकी तौलमें वृद्धि—खिलायीकी कसौटी :** अच्छी नस्लकी गायका बछड़ा जिसकी प्रारम्भिक तौल ४० से ५० रत्तल होती है, प्रति सप्ताह उसकी

औसत तौल ७ से ९ रत्तल या १ रत्तल प्रति दिन बढ़ती है। सायरका अनुभव भी यही है। चारा खानेवाले बछरूकी यही तौल अगर बनी रहे तो आदर्श बात हो। मैंने देखा है कि कम खानेवाले बछरू भो इसी हिसाब से बढ़े हैं। पहले ४ हफ्तोंमें तौलकी बढ़ती कुछ कम हो सकती है। पर ज्यों ही बछड़े पौष्टिक चारे पचाने लगते हैं, कमी पूरो हो जाती है और प्रतिदिन १ रत्तलके हिसाबसे उनमें बढ़ती होने लगती है। कुछ तो और भी बढ़ते हैं। सायरकी सूचीके अनुसार कटोरेमें बछरूको आहार कराना, थन पिलानेसे अधिक खर्चीला मुझे मालूम होता है। मजबूत और स्वस्थ्य बछड़ोंके पालनेमें कटोरेकी अपेक्षा थनसे पिलानेमें अधिक किफायत है। जो ४० से १०० सैकड़ा बछड़ोंको मरने दे सकते हैं उन्हें इसमें बचत हो सकती है। लेकिन वह हमारी समझके बाहरकी बात है। क्योंकि, गव्य-व्यवसायमें स्वस्थ्य बछड़े तैयार करना भी वैसाही उद्देश्य होना चाहिये जैसा कि, दूध उत्पादन करना।

**१०३३. सायरने बहुत जादे दूध पिलाया है :** हाथ पिलायीका सायरका नुस्खा बहुत खर्चीला है। इस दिशामें जिन दूसरों ने काम किया है वह पिलानेके लिये दूसरा परिमाण बताते हैं। रोड्सके पशुपालन अफसर श्री सी० ए० मरे की रायका जिक्र किया जा सकता है।—(एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, जुलाई, १९३५)

उन्होंने एक आंकड़ा प्रकाशित किया है। इसमें ५ आयरसायर और फ्रीजलैंड बछरू प्रयोगके विषय थे। इन्हें ६५५ रत्तल पूर्ण दूध पौष्टिक-आहारके मिश्रणके साथ दिया गया जिससे ठीक विकाश हो सके।

**१०३४. कम दूध पर बछड़े पालना : रोड्सका प्रयोग :** और भी कम पूर्ण दूध पर बछड़े तैयार करनेका दूसरा प्रयोग किया गया। इस प्रयोगमें बछड़ोंको ४०८ रत्तल पूर्ण दूध दिया गया। इतनी मात्रा केवल ८वें सप्ताह अर्थात् जन्मसे दो महीने तक दी गयी। इसके बाद उन्हें सिर्फ सूखी घास और पौष्टिक चारे दिये गये। श्री मरे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि, वृद्धि सन्तोषप्रद थी, यद्यपि तौल कुछ कम थी। इसे बछड़े पीछे पूरा कर लेंगे यह उम्मीद थी।

पहले ६ महीनोंमें जैसा कहा जा चुका है बछड़ोंको ४०८ रत्तल पूर्ण दूध और ४५० रत्तल पौष्टिक और ६४९ रत्तल सूखी घास दी गयी। इस प्रयोगमें शुरूसे ही बछरू फलियोंकी सूखी घास और चारे मनमाना खा सकते थे। साधारण तौरपर

बछड़े दूसरे सप्ताहसे घास चरने लगते हैं। इसके बाद वह घास और पौष्टिक चारे काफी खाते हैं इसलिये दूधकी जरूरत कम हो जाती है।

यह कहना जरूरी है कि, रोड्सके प्रयोगवाले बछड़े हरियाना या साहीवाल बछड़ोंसे तौलमें करीब करीब दूने थे। सायरने जिन बछड़ों पर कटोरेमें दूध पिलानेका प्रयोग किया था उनका ८ बछड़ोंमें प्रत्येककी औसत तौल ४७·३ रत्तल थी। जन्मके समय हरियानाके बछड़ोंकी भी लगभग यही तौल होती है। सायरके प्रयोगमें ८ सप्ताहमें बछड़ोंकी औसत तौल ९२·० रत्तल हो गयी। इसलिये ५६ दिनोंमें ९२ – ४७·३ = ४४·७ रत्तल तौल बढ़ी, अर्थात् मोटे हिसाबसे प्रतिदिन $\frac{3}{4}$ रत्तल बढ़ती हुई।

रोड्सके प्रयोगमें बछड़ोंकी औसत तौल ७८ रत्तल थी जब कि उनकी साधारण तौल ९० रत्तल रहा करती है। रोड्सके पहले प्रयोगमें बछड़ोंकी औसत तौल ८६ रत्तल थी, जब कि साधारण तौल वही ९० रत्तल होती है। ऐसा मालूम होता है कि, हमारे साहीवाल या हरियानाके बछड़ोंसे ये साधारण तौर पर दूने होते हैं। ४५० रत्तल पूर्ण दूध पाने पर नं० २ प्रयोगमें १८० दिनोंमें ये बछड़े ३०२ रत्तल हो गये। ३०२ – ७८ = २२४ रत्तल बढ़नी हुई। अर्थात् $1\frac{1}{4}$ रत्तल प्रति दिन। इसके मुकाबले सायरके बछड़ोंकी $\frac{3}{4}$ रत्तल प्रति दिन की बढ़ती थी। इसलिये यह सोचा जा सकता है कि, रोड्सके प्रयोगके ४०८ रत्तल पूर्ण दूधके बदले हमारे देशी साहीवाल या हरियाना बछड़े और कम पूर्ण दूधमें पल सकते हैं।

[भारतमें केवल दो सप्ताह ही माँका यथेष्ट पूर्ण दूध पीकर बछड़ोंका स्वास्थ्य अच्छा रक्खा जा सकता है। उनके साथ बड़ी उमरका बछड़ा रखकर उन्हें चारा और पौष्टिक चारा खाना सिखाया जा सकता है। वह देखकर नकल करते हैं और दूसरे सप्ताहके बाद पौष्टिक चारा और घास थोड़ा थोड़ा खाने लगते हैं। पौष्टिक चारा और घास उनको पहुँचके भीतर रखना चाहिये। जब वह यह खाने लगें तो दूधकी मात्रा कम करते जाना चाहिये। ८ सप्ताहके बाद उन्हें इतनाही पीने देना चाहिये जितनेसे गाय दूध दे। दुहनेके बाद जो बचा रहे उसे बछड़ेको पीने देना चाहिये। यह (अंतिम धारें) दूधसे अधिक पुष्ट हैं। इस तरह बछड़ोंका पालन सस्तेमें हो सकता है, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहेगा और पूर्ण विकाश होगा] तथा कटोरे में दूध पिलानेका नकली ढंगभी नहीं करना पड़ेगा।

बछड़ेके लिये कटोरेके दूधकी अपेक्षा थनका दूध अधिक लाभप्रद है। क्योंकि

दूध देनेके कालमें थनसे बहुत कम मात्रा पिलाने पर भी सन्तोषप्रद परिणाम होते देखा गया है।

१०३५. **बछड़ा पालना खर्चीला है :** गव्यक्षेत्रमें बछड़े पालना लाभकारी नहीं है। जहाँ मालिक तुरत लाभके लिये गाय पालता है वहाँ बछड़ा भार रूप है। बछड़ोंके पालनेमें जो कुछ खर्च होता है वह गव्य-व्यवसायीको बहुत मालूम होता है। क्योंकि, बैल, साँढ़, गाय या जो कुछ आप बच्चेसे तैयार करना चाहते हैं उसमें खरीदनेसे जादे खर्च पड़ जाता है। तब बछड़े कौन पालता है? गव्य-व्यवसायी नहीं पालते। गाँवमें जहाँ दूध सस्ता है, चारा और मजूर सस्ते हैं और जो बिना बछड़ेके दुहना नहीं चाहते और न उसका उपाय करते हैं वहाँके लोगही बछड़े पालते हैं।

भारतके व्यवसायी गव्यक्षेत्रोंमें यही होता है। जो संवर्धनके लिये गायें पालते हैं उन्हें बछड़े पालना होता है और तमाम खर्च गव्यक्षेत्रके व्यवस्था खर्चमें जोड़ा जाता है। पर व्यवसायी गव्यक्षेत्र वाले तुरत लाभके लिये काम करते हैं, और यह लाभ वह सदा लेना चाहते हैं। केवल भारतके ही व्यवसायी गव्यक्षेत्रोंका यह हालत नहीं है, अमेरिका, इंगलैन्ड और तमाम यूरोपका भी यही हाल है।

आधुनिक गव्यधन्धाकी किताबों और पाठ्य पुस्तकोंमें यह सलाह रहती है कि अपने बछड़ोंको नहीं बेचो। उन्हें अपना ठट्ठ बनाये रखनेके लिये पालो। वह ऐसा करते नहीं हैं इसीलिये यह सलाह है। वह अपने बछड़े बेचकर दूसरोंसे—जो शहरोंमें दूध नहीं बेचते उनसे—जवान बछिया खरीदना पसन्द करते हैं। सारी दुनियाँमें यही होता है। कमसे कम खर्चमें दूध पाने के लिये बछड़ेके बिना दुहनेका उपाय निकाला गया है। यह एक कला है और पच्छिममें शास्त्रीय रीतिसे इस कलाका विकाश किया गया है। यह बछड़ोंके स्वास्थ्य और अच्छे पालनके लिये नहीं है। यह दूध बेचनेवाले गव्यक्षेत्रोंको अधिक मुनाफा पैदा करनेके लिये है।

१०३६. **दुग्ध व्यवसाय और बछड़ा मारना :** यूरोप और अमेरिकाके गव्य-व्यवसायी हिसाब लगाते हैं कि, यदि वह सभी बछड़े पालें तो उन सबको अपने ठट्ठमें नहीं रख सकते। उन्हें उन सबको बेच देना होगा। बछड़े और अतिरिक्त बछियोंको हटानेकी जरूरत है। इसका अर्थ सभी बच्चोंको बेच देना है। उन्हें पालकर बेच देनेमें घाटा है। बछड़े दुद्धी

पर पाले जाते हैं या उन्हें दाना या तथाकथित दुग्ध-पर्याय दिया जाता है, तिस पर भी उनके बेचनेका खर्च नहीं निकल सकता। इसलिये बछड़ोंको गोस्तके लिये—जिसे वत्स्यमांस (veal—भील) कहते हैं—बेच दिया जाता है। गव्यक्षेत्र दूधसे मुनाफा उठाता है और बछड़े मारे जाते हैं। इसमें भी दिक्कत है। सद्यःजात बछड़ेके शरीरमें बहुत पानी, लगभग ७५ सैकड़ा है। ठोस पदार्थ केवल २५ सैकड़ा हैं। ऐसा बछड़ा वत्स्यमांसके लिये अच्छा नहीं माना जायगा मांस बाजारके लायक कमसे कम ३ सप्ताह की उमरका बछड़ा होता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके कई राज्योंमें ३ सप्ताहसे कमका बछड़ा मांसके लिये मारनेकी कानूनी रोक है। पर ३ सप्ताह तक भी पालना बोझ है। इतना छोटा बच्चा दूधके सिवा और कुछ नहीं खा सकता और दूध मँहगी चीज है। वत्स्यमांसके मानकी तौल होनेके लिये दूध पिलानेमें जितना खर्च है उनके बेचनेसे उससे भी कम दाम मिलता है। इसलिये मांसके काममें लानेके बदले बछड़ेको मरने दिया जाता है। बछड़ेको पालनेका सबसे सस्ता तरीका उन्हें जन्मते ही मरने देना है।

१०३७. **नवजात बछड़े मरनेको हैं :** इकल्सने अपनी किताब "डेयरी कैटल ऐन्ड मिल्क प्रोडक्सन" के पृष्ट २२५ में इसे यों लिखा है :

"भील (वत्स्यमांस) की उत्पत्ति : यूरोपकी जैसी हालत है वहाँ केवल मांसके लिये थोड़े ढोर पाले जाते हैं। वहाँ लोगोंकी मांसकी माँग पूरी करनेके लिये भील मुख्य वस्तु है। अमेरिकामें चारा सस्ता है। इसलिये मुख्य रूप से या केवल मांसके लिये वहाँ पशु पाले जाते हैं। इसलिये वहाँ भील बहुत कम महत्वकी चीज है। इस पर वहाँ कम ध्यान दिया गया है। वास्तवमें भीलके बछड़े दुग्ध उत्पत्तिके उपजात हैं। शहरोंकी इसकी पूर्त्ति करनेका साधन वही गायें हैं जो वहाँ दूधकी पूर्ति करती हैं"....

"भीलके उत्पादनसे आमदनी : भीलके बछड़ेके बारेमें पहला सवाल यह उठता है कि, जबतक वह बेचने लायक नहीं होता तबतक जितनेका दूध उसे पिलाया जाता है, वह क्या उसके दामके लायक है"...

"भीलके बछड़ेसे प्रति रत्तल मांसके लिये लगभग १० रत्तल दूधकी जरूरत होती है। पर १० रत्तल दूधके दामके बराबर बछड़ेका दाम शायदही होता है। साधारण हालतमें भीलके बछड़ेका प्रति रत्तल मांस घाटेसे ही बिकता है। जन्मके

समय उसे तौलकर बेचनेमें ही लाभ है। इसका अर्थ यह है कि, बछड़ा जितनी छोटी उमरमें बेचा जाय उतनाही मुनाफा है, भले ही कुल आमदनी कम हो। इसीलिये छोटेसे छोटा बछड़ा लोग बेचना चाहते हैं। इसीलिये शहरों और राज्योंने भीलके लिये बछड़ा बेचनेकी न्यूनतम उमरका कानून बनाना जरूरी समझा है। कानून ३ सप्ताहकी उमरका है पर इस उमरके पहले ही कितनोंकी बाजार पहुँचना वह नहीं रोकता "...

१०३८. **अमेरिकन गव्य-व्यवसायी और ग्वाले :** गव्य-व्यवसायी बिना बछड़ेके गाय दुहते हैं इसका कारण हमने जान लिया। इस मामलेमें भारतके बहुत बदनाम शहरी ग्वाले अपने अमेरिकन और यूरोपी हम-पेशोंके बराबर हैं। दोनो ही नफेके लिये काम करते और बछड़ा पालनेकी परवाह नहीं करते, उनकी मौतसे खुश होते हैं।

फिरभी जितनी गायें और साँढ़ चाहिये उतनेके लिये बछरू पालना ही पड़ता है। इसलिये सवाल यह उठता है कि, न्यूनतम खर्चसे बछरू कैसे पाला जाय जिससे उसका स्वास्थ्य ठीक रहे और अपने वंशके अनुरूप सुन्दर पशु बन सके।

१०३९. **दुद्धीसे बछड़ा पालना भारतमें व्यावहारिक नहीं है :** वत्स-पालनमें यदि दुद्धीके साथ, निकाले मक्खनकी पूर्त्ति करनेके लिये कुछ दाना मंडके रूपमें दिया जाय तो वह पूर्ण दूधकी जगह पर बहुत कुछ हो जाता है। किसी रूपमें भिटाभिन "ए" भी देना चाहिये। दो सप्ताहकी उमर होने पर बछड़े थोड़ीसी सूखी या हरी घास पचाने लगते हैं। इससे उन्हें यह भिटामिन मिल जाता है। बछड़ेका विकास हो और तन्दुरुस्त रहे इसलिये पहले दो सप्ताह तक इस भिटामिनकी पूर्त्तिके लिये उसे कुछ पूर्ण दूध जरूर देना चाहिये।

दुद्धीके प्रयोगका अर्थ है कि घरमें मक्खन निकाला गया है। दुग्धसार (cream) निकालनेवालोंको दूध देनेवाले, अपनी दुद्धी लौटा ले जाते हैं। भारतमें मनुष्य आहारके लिये दुद्धीकी माँग है। इसलिये बछड़ोंको उसका मिलना कम संभव है।

१०४०. **न्यूनतम दूधसे बछड़ा पालना :** इसलिये दुद्धीकी सहायता बिना भी बछड़ा पालनेका उपाय खोजना होगा। बछड़ेको न्यूनतम दूध देकर और पौष्टिक आहार खानेकी आदत बहुत जल्दी डालकर यह काम हो सकता है। दूसरे सप्ताहके बाद पौष्टिक आहार और कुछ हरी घास या कुट्टी बछड़े खा सकते हैं।

उनसे बड़ी उमरवालोंके साथ वह यह आसानीसे सीख सकते हैं। दुहनेके बाद थनमें बचा दूध जब बछड़ा पीले तब जीभ पर पौष्टिक आहार, चनेकी भूसी, तीसीकी खलीका खाना रखना चाहिये। इससे वह इनका खाना सीख लेता है। या इसके लिये उन्हें बड़ी उमरवालोंके साथ रखना चाहिये। उन्हें पौष्टिक आहार खाते देखकर नये पशु भी सीख लेते हैं।

६ सप्ताहके बाद खिचड़ी, पौष्टिक आहार और सूखी घास अधिक खिलायी जाती है, उसी हिसाबसे थनमें बहुत कम दूध छोड़ दिया जाता है। १२ सप्ताहके बाद वह केवल इन्हीं आहारों पर रहते हैं। दुहनेके बाद जो बच रहता है या दुहनेके लिये दुहनेके पहले जितना दूध पी लेते हैं उतना ही केवल पाते हैं। इस आधार पर १२ सप्ताहके बाद दूधका खर्च एकदमसे नहीं जोड़ना चाहिये। यह बात दूसरी है कि जबतक गाय दूध देती रहती है दो बार की दुहाईमें वह आधा या पौन रत्तल दूध पी जाते हैं। मैंने देखा है कि, हरियानाका ५० रत्तल तौलवाला बछड़ा ३०० से ३५० रत्तल दूध थनसे पिलाकर पाला जा सकता है और उन्हें इस तरह खिलाया जा सकता है कि जबतक गाय दूध देती है, और उसके बाद भी, उनकी तौल नित्य १ रत्तल बढ़ती रहती है। (६७१)

**१०४१. ३५० रत्तल दूध पर हरियानाका बछड़ा पालना :** उपरोक्त परिणाम पानेके लिये हरियानाके बछड़ोंको मैंने नीचे लिखे रूखे चारे और पौष्टिक आहार खिलाये थे :—

# आँकड़ा—१२८

## ३५० रत्तल दूध पर हरियानाका बछरू पालना

[ हरियानका बछड़ा—जन्मकालकी तौल ५० रत्तल ]

| दैनिक आहार | क<br>६ से १२ सप्ताह तकका बछड़ा | ख<br>१२ से २४ सप्ताह तकका बछड़ा | ग<br>२४ सप्ताह से १२ महीनोंका बछड़ा |
|---|---|---|---|
| सूखो घास, पुआल, घास | १ रत्तल | ४ रत्तल | ८ रत्तल |
| दालकी भूसी | १½ ,, | २ ,, | २¼ ,, |
| अन्न, खुद्दीकी खिचड़ी | ½ ,, | १ ,, | १½ ,, |
| खली—तीसी और सरसोंकी बराबर मात्रा | ½ ,, | ¾ ,, | १ ,, |
| नमक .... | १ आउन्स | १ आउन्स | १ आउन्स |
| हड्डीका चूर्ण .... | .... | १ ,, | १ ,, |
| माँका दूध (लगभग) .... | १½ से ३ रत्तल | १ रत्तल | ½ रत्तल |

६ से १२ सप्ताहके लिये जो मात्रा दिखायी गयी है वह ६ सप्ताहका बछड़ा खा नहीं सकता। इस उमरके बछड़ोंके एक ठट्ठको यह खाना दिया जाता है। छोटे कम खाते हैं और बड़े जादा। ६ बछड़ोंके ठट्ठके लिये "क" के हिसाबसे आहार तौला जाता है और सबको साथ खिलाया जाता है।

उसी तरह "ख" में १२ सप्ताहवाले कम खाते हैं और २४ सप्ताहवाले जादा। लेकिन औसत आहार ऊपर लिखे अनुसार होता है।

"ग" दलको "ख" से बहुत कम अतिरिक्त पौष्टिक चारेकी जरूरत है। रूखा चारा बढ़ा दिया जाता है।

दूध ६ सप्ताहकी उम्रवालोंको प्रायः ३ रत्तल दिया जाता है। १२ सप्ताहवालोंके लिये इसकी मात्रा घटा कर १½ रत्तल रह जाती है। १२ सप्ताह बीतने पर कमजोरोंको १ रत्तल से कुछ अधिक दिया जाता है और बलिष्ठोंका घटाया जाता है। "ग" दलके लिये नाममात्रका दूध दिया जाता है, गाय पन्हानेके लिये जितना चाहिये केवल उतना ही। दुहनेके बाद उन्हें तुरत गायके पाससे हटा दिया जाता है।

पहले सप्ताहमें बछड़े अपनी माँके साथ ही रहने पाते हैं। उन्हें चार बार पेट भरकर पीने दिया जाता है। इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि, वह पेटसे ज्यादे नहीं पीये। केवल अतिरिक्त दूध ही दुहा जाता है। पहले सप्ताहके पूरे आहारसे शुरू अच्छा होता है। दूसरे सप्ताहमें अन्दाज ५ रत्तल प्रति दिन पीने दिया जाता है। तीसरे सप्ताहसे दूध घटाते घटाते १३ वें सप्ताहमें १ रत्तल ही रह जाता है। अन्दाजी हिसाबका एक आँकड़ा नीचे दिया जाता है:—

## आँकड़ा—१२६

### हरियानाके बछड़ोंको अपनी माँके थनोंका प्रायः कितना दूध पीने दिया जाता है (१ से ३६ सप्ताह तक)

| | | दैनिक आहार | दूध पिया |
|---|---|---|---|
| १ ला सप्ताह | १ सप्ताह | .... | माँके साथ |
| २ सरा सप्ताह | १ ,, | ५ रत्तलके हिसाबसे | ३५ रत्तल |
| ३सरे से ५ वाँ सप्ताह | ३ ,, | ४ ,, ,, | ८४ ,, |
| ६ ठे से ७ वाँ सप्ताह | २ ,, | ३ ,, ,, | ४२ ,, |
| ८ वें से ९ वाँ सप्ताह | २ ,, | २ ,, ,, | २८ ,, |
| १० वें से १२ वाँ सप्ताह | ३ ,, | १½ ,, ,, | ३१½ ,, |
| १३ वें से २४ वाँ सप्ताह | १२ ,, | १ ,, ,, | ८४ ,, |
| २५ वें से ३३ वाँ सप्ताह | १२ ,, | ½ ,, ,, | ४२ ,, |
| | ३६ सप्ताह कुल | | ३४६½ अर्थात् ३५० रत्तल |

पहले सप्ताह दूधका हिसाब नहीं लगाया गया है। क्योंकि, वह पेउसी है, बेचने लायक दूध नहीं है।

बछड़ोंके स्वास्थ्य पर ध्यान रक्खा जाता है। दुबले पतलोंको अधिक दूध दिया जाता है। दो सप्ताहके बाद उन्हें रूखा और पौष्टिक चारा खानेकी आदत लगायी जाती है। जो चर सकते हैं उन्हें कम दूध दिया जाता है। बछड़ोंके लिये तीसीकी खली सबसे अच्छी है। प्रयोगके स्थानमें घरमें ही सरसोंकी खली थी। तीसीकी खली बाजारसे खरीदनी पड़ी। इसलिये आधी सरसोंकी और आधी तीसीकी खलीका मिश्रण दिया गया।

अंदाज किया गया है कि, दूसरे सप्ताहसे ३६ सप्ताहके भीतर माँका ३५० रत्तल दूध पीते हैं। इसी आधार पर उन्हें आहार दिया जाता है। दुहनेवाला आसानीसे जान सकता है कि, बछड़ेके लिये थनमें कितना बच रहा है। प्रबन्धकोंको इच्छाके अनुसार काम करनेवालेकी मददसे बछड़ोंको वृद्धि और स्वास्थ्यके लिये न्यूनतम दूध पिलाना सरल है। दुह करके हाथसे पिलानेसे अपने आप थनसे पिलानेका तरीका कहीं अच्छा है।

बछड़ोंको पौष्टिक आहार खिलाते समय यह याद रखना चाहिये कि, यदि अच्छे गुणवाला रूखा चारा खिलाया जाता है तो पौष्टिक चारा कम खिलाना चाहिये। फलियोंकी सूखी घास पौष्टिक चारा ही है। ऊपरके प्रयोगमें धानके पुआल और हरी गिनी घासका रूखा चारा दिया जाता था।

बछड़ोंके आहारके आँकड़ेमें हरियानाके बछड़ोंका ही हवाला है। साहीवालकी तौल भी वही है और उन्हें भी वही सब चाहिये। जिन बछड़ोंको जन्मकी तौल दूसरी है उनके साथ दूसरी बात होगी।

तरुण बछड़ोंके आहार, पौष्टिक आहारके कुछ सरल मिश्रणसे तैयार किये जा सकते हैं। नीचेके मिश्रणोंसे सफलता मिली है।

## आँकड़ा—१३०

### बछरूको खिलानेके लिये पौष्टिकका मिश्रण

| | | | |
|---|---|---|---|
| मिश्रण १ — | पिसी मक्का | ... | ३९ रत्तल |
| | ,, जई | ... | ४० ,, |
| | बिनौलेकी खली | ... | २० ,, |
| | नमक | ... | १ ,, |
| मिश्रण २ — | पिसा जौ | ... | २०० ,, |
| | पिसी जई | ... | १५० ,, |
| | गेहूँका चोकर | ... | १५० ,, |
| | तीसीका खली | ... | ५० ,, |
| | हड्डीका चूर्ण | ... | ४ ,, |
| | नमक | ... | ३ ,, |

| | | | |
|---|---|---|---|
| मिश्रण ३ — | पिसी मक्का | ... | ३४ रतल |
| | पिसी जई | ... | ३५ ,, |
| | बिनौलाकी खली | ... | २० ,, |
| | सूखी दुद्धी | ... | १० ,, |
| | नमक | ... | १ ,, |

१०४२. **बछड़ोंकी जन्मके समयकी तौल :** खिलानेके मामलेमें बछड़ोंकी जन्म कालकी तौलका महत्वपूर्ण स्थान है। जन्मके बाद बछड़ोंको तौलकर उनकी सही तौल जानी जा सकती है। जन्मके समय बछड़ेकी तौल साधारण है या नहीं यह जानना जरूरी है। भारतमें जन्मकालकी मामूली तौल मांकी तौलका ५ सैकड़ा मानी जाती है।

मैकगूकिनने इसका गुर बनाया है। इसका आधार यह है कि, जन्मके समय बछड़ेकी तौल पर मांके तौलकी २ इकाई और बापकी १ इकाईका प्रभाव रहता है। उसके अनुसार इन ३ इकाइयोंकी औसत तौलका ५ सैकड़ा बछड़ेकी तौल होनी चाहिये।

## आँकड़ा—१३१

### बछरूकी जन्म तौलका गुर

$$\frac{\left.\begin{array}{l}\text{मांकी तौल} \times 2 \\ \text{बापकी तौल} \times 1\end{array}\right\} \text{क}}{3}$$

क को ३ से भाग देने पर मां बापकी औसत तौल होती है। इस तौलका ५ सैकड़ा या इसका $\frac{1}{20}$ बछड़ेकी साधारण तौल होनी चाहिये। लेकिन अमेरिकामें आधुनिक मत यह है कि जन्म कालमें बछड़ोंकी तौल केवल मां पर होती है। बापका असर कुछ नहीं होता है। यदि वह एक ही नस्लका हो तब भारतमें हम जन्म तौल मांका ५ सैकड़ा या $\frac{1}{20}$ जोड़ते हैं। अमेरिकामें विभिन्न नस्लोंकी साधारण तौल नीचे लिखे अनुसार भिन्न भिन्न है :—

# आँकड़ा—१३२

## अमेरिकामें बछरूकी जन्म तौल

| नस्ल | दोनो लिंगोंकी औसत जन्म तौल | माँकी तौलके अनुपातमें बछड़ेकी तौल प्रतिशत |
|---|---|---|
| जरसी | ५५ | ६·३ |
| होल्सटीन | ८९ | ७·८ |
| गरेन्सी | ७१ | ७·१ |
| आयरशायर | ७२ | ७·३ |
| भूरा स्विस | १०० | ८·९ |
| डेयरी शॉर्ट हॉर्न | ७३ | ६·० |

भारतीय नस्लोंकी जन्म तौल और माँकी तौलके प्रतिशतका आँकड़ा अभी नहीं बनाया गया है। ऐसा समझा जाता है कि, जब भारतीय नस्लोंकी साधारण जन्म तौलका हिसाब किया जायगा तो अमेरिकाके आँकड़ेकी तरह उसमें भी भिन्नता मिलेगी। तब तक भारतीय बछड़ोंकी जन्म तौलका हिसाब करनेके लिये माँकी तौलका ५ सैकड़ाका मान मान लिया जाय।

१०४३. **ओसर पालना :** ओसर पालनेका अर्थ भविष्यकी गाय तैयार करना है।

**खिलाना :** ६ महीनेसे १२ महीने उमर तकके बछरूके खिलानेका परिमाण बना दिया गया है। इस खिलायीमें घटिया रूखा चारा जैसे पुआल और २० सैकड़ा गिनी घास दी जाती है। इस घटिया रूखे चारेके अनुरूप पौष्टिक चारा दिया जाता है। यदि अच्छा रूखा चारा दिया जाता है तो उसी हिसाबसे कम पौष्टिक चारा देनेसे काम चल जाता है। (६७१)

१०४४. **६ से १२ महीनेकी ओसर :** इस उमरकी ओसरके लिये मॉरीसनने सुझाव दिया है :

"जैसा रूखा चारा खिलाया जायगा पौष्टिक चारेकी मात्रा उसीके अनुसार होगी। अच्छे रूखे चारेके साथ प्रति पशु २ से ३ रत्तल पौष्टिक काफी होना चाहिये। पर साधारण रूखे चारेके साथ ४ से ५ रत्तल पौष्टिक चारा ओसरोंकी तौल ठीकसे

बढ़नेके लिये देनेकी जरूरत है। ६ से १२ महीने उमरकी ओसरोंको प्रतिदिन ८ से १५ रत्तल सूखी घास खिलाना चाहिये। चाहे ५ से १० रत्तल सूखी घास या ८ से १५ रत्तल साइलेज दिया जाय।"

यह बात अमेरिकन गायके लिये है। अमेरिकन गायोंमें जरसी गाय हमारी हरियाना गायके आकार और तौलसे बहुत मिलती है। इसलिये उमरका विचार हरियाना पर भी लागू होगा। मौरीसनके मानके विचारसे 'ग' स्तम्भमें बताया दूसरी श्रेणीका आहार जिसमें २३/४ रत्तल पौष्टिक आहारके साथ २१/४ रत्तल फलियोंकी भूसी दी गयी है तथा १०४१ पैराका ८ रत्तल रूखा चारा हमारे जलवायुके अनुसार उचित जान पड़ता है। इसके फलस्वरूप रूखे चारेकी जरूरत कम होती है। व्यवहारमें सूचीका परिमाण सन्तोषप्रद पाया गया है।

गोचर, उसमें भी अच्छे गोचरकी जोरदार सिफारिश की जाती है। यदि गोचर सुन्दर है तो बछियाके पूर्ण विकाशके लिये पौष्टिक चारेकी कुछ जरूरत नहीं। वर्ष भर उम्रकी हो जाने पर रूखा चारा खानेकी उनकी शक्ति बढ़ जाती है। तब रूखे चारेकी किस्मके विचारसे उन्हें कमसे कम पौष्टिक चारेकी जरूरत होती है। यदि उन्हें धान या गेहूँका पुआल दिया जाता है तो पौष्टिक चारेकी पूरी जरूरत रहती है। ज्वार, मडूआ और हरा चारा या साइलेज काफी खिलानेसे कम पौष्टिक चारेकी जरूरत होती है। लूसन और बरसीमके गोचरमें चरानेसे पौष्टिक चारेकी कुछ जरूरत नहीं होगी। लूसन और बरसीम की चराई पौष्टिक चारेकी जगह ले लेगी।

१०४५. **पहले ब्यानकी उमर :** अमेरिकामें ब्यानेके लिये २४ महीनेकी उमर अच्छी मानी जाती है। इसके लिये बछियाका साँढ़से १५ महीनेकी उमरमें समागम कराना चाहिये। अमेरिकामें यदि बछिया पहली बार १६ या १८ महीने तक नहीं गरमावे तो फिर प्राय: उसका गरम होना कठिन माना जाता है।

भारतमें २४ महीनेकी उमरमें बहुत कम ब्याती हैं। पूसामें देखा गया है कि, जल्दी जवान होनेके प्रयोगमें सफलता मिलती है और इससे बछड़ेकी तौल या गायके शरीर पर बुरा असर नहीं पड़ता।

बछिया काफी उन्नति कर रही है या नहीं यह जाननेके लिये उसकी तौल जानना जरूरी है। हरियानाकी बछियाके उन्नति विकाशके लिये दूसरे वर्ष तक औसत १ रत्तल प्रति दिन वृद्धि उचित मानी जा सकती है।

# आँकड़ा—१३३

**१०४६. जरसी ओसरकी तौलका आँकड़ा :**

मौरीसनकी मानी जरसी बछियाकी मामूली तौल नीचे दी जाती है :—

| महीना | | तौल |
|---|---|---|
| जन्मकाल | .... | ५४ रत्तल |
| १ | .... | ६८ " |
| २ | .... | ९२ " |
| ४ | .... | १६४ " |
| ६ | .... | २५० " |
| ८ | .... | ३३१ " |
| १० | .... | ४०२ " |
| १२ | .... | ४६२ " |
| १४ | .... | ५१८ " |
| १६ | .... | ५६८ " |
| १८ | .... | ६१५ " |
| २० | .... | ६५८ " |
| २२ | .... | ७०२ " |
| २४ | .... | ७५० " |

बछियोंके पालनेमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि, वह बहुत मोटा न हो जायँ। अधिक खिलाई और मोटाईसे उनके गरम होनेमें देर लग जाती है। खिलाना कला है। इसे अनुभवी लोगोंसे सीखना चाहिये। आँकड़ेसे मदत और मार्गदर्शन मिल सकता है। आँकड़े पर पूरा भरोसा करना भयंकर है। क्योंकि जानवरोंको क्या और कितना खिलाना चाहिये यह इनसे नहीं मालूम हो सकता।

**१०४७. हर ब्यानमें दूधकी उत्तरोत्तर अधिक उत्पत्ति :** गाय

जितना दूध दे सकती है, पहले ब्यानमें उससे कम देती है। दूसरे ब्यानमें भी वह पूरा पूरा नहीं देती। तीसरेसे वह पूरा दूध देने लगती है और छठे तक बराबर देती जाती है। उसके बाद भी परिस्थिति अनुकूल हो तो वैसे देती रहती है। इसके बाद दूध घटने लगता है।

१०४८. **साँढ़के लिये बछड़ा पालना :** ओसरके लिये जो उपाय बताया गया है वही इसके लिये भी है। ६ महीना पूरा होने पर बछड़ेको बछियोंसे अलग कर देना चाहिये। क्योंकि, साँढ़ बछड़ा बछियोंसे जल्दी तैयार हो जाता है। अमेरिकामें अच्छी तरह बढ़ा हुआ साँढ़-बछड़ा थोड़े समागमके लिये १० से १२ महीनेमें तैयार हो जाता है। पर जब तक वह दो वर्षका न हो जाय हफ्तेमें एक या दो समागमसे अधिक नहीं कराना चाहिये। भारतमें उमर स्थिर करनेके लिये अमेरिकन मानमें ६ महीना और जोड़ देना चाहिये। उससे थोड़ा काम तो १½ वर्षकी उमरसे लिया जा सकता है पर २½ वर्षकी उमर होने पर पूरा काम ले सकते हैं। जल्दी प्रौढ़ होनेसे बछड़ा अनुपयुक्त हो जाता है यह आशंका सायरके प्रयोगसे जाती रही। (६७१)

१०४९. **बछड़ेसे प्रौढ़ साँढ़ होना :** छोटी उमरसे ही बछड़ेको साँढ़ बनाना चाहिये। १ वर्षका होने पर उसकी नाकमें नकेल लगा देनी चाहिये। नकेल कभी घिस कर पतली नहीं होने पावे। २½ वर्षकी उमरमें बदल कर बड़ी नकेल लगा देनी चाहिये।

साँढ़-बछड़ेको इस तरह रखना चाहिये जिससे वह सदा यही समझे कि, आदमी उसका मालिक है। उसकी शक्ति कितनी है इसका पता उसे लगने नहीं देना चाहिये (६६४)। बाड़ा और गोहाल ऐसा बनाना चाहिये जिसे वह तोड़ कर निकल नहीं सके। इससे तोड़ कर भागनेकी आदत उन्हें नहीं लगेगी। साँढ़से काम लेनेके समय उसकी नकेलमें मजबूत रस्सी बाँध लेनी चाहिये। नकेलमें बाँस लगाना और भी अच्छा है। साँढ़से काम लेनेमें घातक दुर्घटनायें हो सकती हैं, यह याद रखना चाहिये। इसलिये सदा सावधान रहना चाहिये। मौरीसनकी चेतावनी है कि, जिन "सीधे" साढ़ों पर बहुत जादे भरोसा किया गया है प्रायः सारी दुर्घटनायें उन्हींके कारण हुई हैं।

साँढ़से कुछ काम लेना चाहिये। इन्हें छोटी उमरमें ही काम सिखा देना चाहिये। अकेले गाड़ी खींचना एक उपाय है। नित्य थोड़ी देरके लिये पानी

चलाने जैसा फुर्तीला काम लेना ज्यादा अच्छा है। इससे उनकी हालत हमेशा दुरुस्त रहती है। कामके बिना आलसीकी तरह खानेसे साँढ़ जल्दी ही नपुंसक हो जाता है और उसकी सूरत भी बिगड़ जाती है।

**१०५०. सालमें समागम संख्या :** सालमें ६० समागम हो सकते हैं। यदि उचित अवकासके बाद हो तो १०० समागम भी हो सकते हैं।

**साँढ़ बदलना :** यदि किसी ठट्ठमें कोई साँढ़ ३ वर्षसे अधिक रहे तो सपिंड समागम होने लगता है। इसलिये दूसरे प्रतिष्ठानोंसे आपसमें साँढ़ बदलनेकी प्रथा चल पड़ी है। यदि साँढ़ अच्छा है और उसकी बेटियोंने अच्छा दूध दिया तो साँढ़ रक्खा जा सकता है। संवर्धनके सिलसिलेमें इस पर विचार हो चुका है।

**१०५१. बधिया करना :** बछड़ेका बधिया ६ महीनेके उमरमें कर देना चाहिये। उनका बधिया आगे भी हो सकता है लेकिन समागमकी उमर होनेके पहले ही बधिया करना अच्छा है क्योंकि केवल पसन्द किये साँढ़से समागमका काम लेना है। अँड़िया बछड़ा उचित संवर्धनके लिये भयंकर है। आशंका न रहे इसलिये १२ महीनेके भीतर ही उन बछड़ोंका बधिया कर देना चाहिये जिन्हें साँढ़ नहीं बनाना है।

बधिया करनेके लिये "बरडिज़्जौ कैसट्रेटर" काममें लाना चाहिये। इसमें दर्द बहुत कम होता है और पकनेका डर नहीं है। कठिनाई इसमें यही है कि, नस छिटक सकती है जिससे अच्छी तरह बधिया नहीं हो सकता है। कुछ खून उसमें हो कर बहता रहेगा जिससे बछड़ा अधूरा समागम कर सकता है। इससे बचनेका उपाय यह है कि दोनो नसोंको अलग अलग और दो दो जगह-दबायी जायँ। ऊपर दबा कर फिर नीचे दबानेसे दुबारा दर्द नहीं होगा।

दबानेसे अंड और वृषण दोनो फूलते हैं। सूजन कई दिनके बाद दब जाती है। पोषणके अभावमें इसका आकार सिंकुड़ कर छोटा हो जाता है।

**१०५२. बैलोंकी खिलायी :** बैलोंसे जैसा काम लिया जाय उसीके अनुसार उन्हें खिलाना चाहिये। उनकी तौलके अनुसार निर्वाह-आहार बताया जा चुका है। कामके लिये अतिरिक्त आहार मिलना चाहिये। निर्वाह-आहारमें कामके लिये १,००० रत्तल शरीर तौलके लिये जितने पोषणकी जरूरत है वह मिलानी चाहिये।

# आँकड़ा—१३४

## कामके लिये बैलको खिलाना

(सेन द्वारा, आर्मसबीके आधार पर)

| काम | पचनीय प्रोटीन रत्तल | एस० ई० रत्तल |
|---|---|---|
| भारी (दिनमें ८ घंटा) | १·५ | १३·१२ |
| मध्यम (दिनमें ४ घंटा) | ·९ | ६·५६ |
| हल्का (दिनमें २ घंटा) | ·५ | ३·२९ |

१,००० रत्तलके पशुके निर्वाह-आहाके लिये ६ रत्तल एस० ई० और ·६ रत्तल पचनीय प्रोटीन चाहिये।

यह ध्यान देनेकी बात है कि, बीचके अर्थात् ४ घंटे कामके लिये उतना ही एस० ई० चाहिये जितना निर्वाहके लिये और प्रोटीन निर्वाहके दूनेसे भी जादे। यह आर्मसबीके हिसाबसे है। आजकल आर्मसबीके हिसाबकी प्रोटीनकी जरूरत बहुत जादे मानी जाती है। दूसरी तरफ यह मत है कि, प्रोटीन केवल निर्वाहके लिये चाहिये कामके लिये नहीं, यह वास्तविक व्यवहारमें सिद्ध नहीं होता। इसलिये बिलकुल प्रोटीन नहीं और आर्मसबी का बहुत जादे प्रोटीन, दोनोंका मध्यम मार्ग ठीक है। यह मध्यम मार्ग निर्वाहके अनुपातसे ४ घंटेके श्रमके लिये दूनी खिलायीका निर्देश करता है। दूसरे शब्दोंमें दूना निर्वाह प्रोटीनका और दूना निर्वाह एस० ई० का खिलाना है।

यह याद रखना होगा कि यह नयी एस० ई० और प्रोटीन सबकी सब पुष्टई चारेके रूपमें खिलानी होगी। क्योंकि पशु जितनी घास खा सकता है उतनी निर्वाहके लिये हम खिला चुके हैं। श्रमके लिये रूखा चारा खानेकी जगह अब उसके पेटमें नहीं रही है। श्रमके लिये यदि कुछ और खिलानेकी जरूरत हो तो वह आँकड़ेके अनुसार पौष्टिक चारेके ही रूपमें खिलाया जा सकता है। अर्थात् प्रोटीन और एस० ई० दोनो ही पौष्टिक चारेके रूपमें ही होना चाहिये।

प्रोटीनवाले चारेके बिना अतिरिक्त आहार अरुचिकर हो जाता है। रुचि, शास्त्रीय सीमा नहीं मानती। कामकाजी पशुओंको पौष्टिक चारेके रूपमें प्रोटीन देना होता है।

यदि रूखा चारा बढ़ा दिया जाय और पशु उसे पचा भी ले तब भी उससे काम नहीं चल सकता। क्योंकि, उससे उत्पन्न शक्ति चबानेके काममें खर्च हो जाती है। निर्वाहमें ऐसी शक्तिके व्ययसे ताप उत्पन्न होता है जो शरीरको बनाये रखता है। पर जहाँ शक्तिकी आवश्यकता है वहाँ यह ताप उसे पूरा नहीं कर सकता। इसलिये पौष्टिक चारेके द्वारा अतिरिक्त शक्ति जुटाना एक तौर पर अनिवार्य है।

इसलिये साधारण नियम यह है कि, श्रमके लिये पौष्टिक चारेके रूपमें आहार देना चाहिये। इसमें आँकड़ेके अनुसार प्रोटीनका काफी अंश होना चाहिये।

१०५३. **दुधार गायकी सँभाल :** शास्त्रीय प्रबन्धसे गायकी दूध देनेकी शक्ति बहुत बढ़ सकती है। पूसा और दूसरी जगहोंमें इस विषय—जल्दी प्रौढ़ बनाना और साँड़ तथा गायकी आकार वृद्धि—की गवेषणा की गयी है। नीचे साहीवाल गाय पर किये प्रयोग दिये जाते हैं। इनसे सीखा जा सकता है।

साथके आँकड़ेसे पता चलेगा कि, पूसा (बिहार), लायलपुर (पंजाब) और फिरोजपुर (पंजाब) के क्षेत्रोंने साहीवालकी कितनी उन्नति की है।—(राइटकी रिपोर्ट, पृ० १७२)।

## आँकड़ा—१३५

१०५४. लायलपुर, पूसा और फिरोजपुरके ठट्ठकी दूध देनेकी उत्तरोत्तर उन्नति (इनके स्थापित होनेकी तारीखसे ):

औसत दैनिक उत्पत्ति रत्तलमें

| | १९१४ लायलपुर | १९११ पूसा | १९१२ फिरोजपुर | पूर्ण संख्या * |
|---|---|---|---|---|
| १ ला वर्ष | ५·६० | ५·८ | ११·३ | ४·६ |
| २ रा वर्ष | ५·४० | ७·६ | ११·६ | ५·९ |
| ३ रा वर्ष | ६·८० | ८·३ | १२·९ | ८·६ |
| ४ था वर्ष | ७·१८ | ६·६ | १२·९ | ९·२ |
| ५ वाँ वर्ष | ७·४५ | ६·८ | १२·६ | ९·८ |
| ६ ठा वर्ष | ८·६० | ६·१ | १४·८ | १०·६ |
| ७ वाँ वर्ष | ९·३१ | ७·४ | १४·७ | ११·३ |
| ८ वाँ वर्ष | ७·२७ | ८·२ | १५·० | ११·१ |
| ९ वाँ वर्ष | ९·१० | ८·० | १६·२ | ११·९ |
| १० वाँ वर्ष | ९·३० | ९·४ | १६·४ | ११·७ |
| ११ वाँ वर्ष | ९·०३ | १०·८ | १७·४ | १२·५ |
| १२ वाँ वर्ष | ९·८ | १२·० | १६·४ | १२·१ |
| १३ वाँ वर्ष | ११·२८ | १२·३ | १५·३ | ९·९ |
| १४ वाँ वर्ष | १०·७३ | ११·७ | १८·० | १२·५ |
| १५ वाँ वर्ष | ११·९७ | १२·७ | १७·० | १२·५ |
| १६ वाँ वर्ष | ११·४० | १४·३ | १५·४ | १२·० |
| १७ वाँ वर्ष | ११·६७ | १२·४ | १६·९ | १२·९ |
| १८ वाँ वर्ष | १२·८२ | १३·० | १७·७ | १२·८ |
| १९ वाँ वर्ष | ११·४३ | १३·६ | २०·३ | १७·० |
| २० वाँ वर्ष | १५·०५ | १८·५ | २२·६ | १६·८ |
| २१ वाँ वर्ष | १६·५४ | .... | १८·३ | १३·७ |
| २२ वाँ वर्ष | १७·१५ | .... | १६·५ | ११·१ |

* दूध देनेवाली और सूखी गायोंकी पूर्ण संख्याका औसत है। अन्य स्तंभमें दिखाया गया औसत दूध देनेवालियोंका है। यह भी एक बात है कि फिरोजपुर ठट्ठमें बाजारकी माँग पूरी करनेके लिये नयी गायें खरीदी जाती थीं इससे उसकी कुल औसत की उत्तरोत्तर वृद्धि पर प्रायः पर्दा पड़ जाता था।

ऊपरका आँकड़ा देखनेसे पता चलेगा कि, २२ वर्षोंमें कितनी उन्नति हुई है। फिरोजपुर ठट्टका आरम्भ औरोंसे अच्छा था। वहाँ अपेक्षाकृत अधिक दूध देनेवाली गायोंसे काम शुरू हुआ। पर लायलपुर और पूसामें आरम्भमें ५.७ रत्तल दूध देनेवाली गायें ही थीं। फिरोजपुरमें आरंभिक उत्पादन ११.३ रत्तल था। फिरोजपुरके आरंम्भिक उत्पादनकी बराबरी करनेमें पूसा और लायलपुरको १२ वर्ष लगे। ऑलवरके शब्दोंमें पूसा और लायलपुरने १२ वर्षोंमें अपना उत्पादन दूना कर लिया। एक बार बहुत उन्नति हो जाने पर उसी हिसाबसे ठट्टका दूध बढ़ते रहना संभव नहीं है। आगेकी उन्नति कमसे कम होती जायगी। लायलपुर और पूसा ठट्टकी प्रति गायका प्रति दिन और भी ५ रत्तल दूध बढ़ कर दैनिक औसत १७ रत्तलके लगभग होने में और १० वर्ष लगे। १७ रत्तल दूध देनेके लिये ५ या ६ रत्तल दूध बढ़नेमें शुरूमें ११.३ रत्तल दूध देनेवाली फिरोजपुरी गायोंको ११ वर्ष लगे। यह बढ़ कर १८, २०, और २२ रत्तल भी हो गया, लेकिन कायम नहीं रहा। क्योंकि, २२ रत्तल पँहुचने पर तीनही वर्षोंमें वह घट कर १६.५ रत्तल रह गया। इसका कारण नयी गायोंकी—जिन्हें कम दूध होता है—खरीद या ठट्टकी ही गायोंका दोष हो सकता है।

आँकड़ेसे पता चलता है कि, निपुण प्रबन्धमें साहीवाल गायें क्या कर सकती हैं। गाँववालोंके हाथमें पड़ी साहीवालका हाल पढ़ने पर हम इसकी उल्टी बात देखेंगे। (२६३)

फिरोजपुर, लायलपुर और पूसाके क्षेत्रोंमें हुई उन्नति का कारण कई प्रयोग हैं। आँख मूँदकर काम करनेसे यह सफलता नहीं मिली है। हरेक ठट्ट प्रयोगका विषय बनाया गया, कितनी माथापच्ची और कला कुशलतासे खोजका काम हो सका। पूसाके साहीवाल ठट्ट पर श्री वाइन सायरके प्रयोगकी कई छपी रिपोर्ट बहुत शिक्षाप्रद हैं। (२६३)

१०५५. **पूसाकी साहीवाल :** साधारण तौरपर माना जाता था कि, प्रौढ़ साँढ़से ही समागमका काम लेना चाहिये और प्रौढ़ ओसरोंसे ही समागम कराना चाहिये, तभी निरोग संतान पैदा होगी। इसी कारणके अनुसार काम किया गया। यूरोपकी अपेक्षा भारतके ढोर बहुत देरसे प्रौढ़ होते हैं। समागम काल और प्रसव कालमें देरी होने से आर्थिक हानि होती है। इसके अलावे जो लोग ठट्टके सुधारके लिये प्रजनन संबन्धी प्रयोग करना चाहते हैं उन्हें बहुत लम्बे अर्से तक अपेक्षा करना

होता है। इन कारणोंसे भी वाइन सायरने पूसाके अपने अधीन साहीवाल ठट्ठ पर प्रयोग किया।

उन्होंने नयी रीतियाँ चलायीं। उन्हींकी खोजका फल है कि, आज हम जान सके कि, उचित प्रबन्ध से आशु प्रौढ़ताका परिणाम संतोषकारी होता है। साँढ़की जाँचकी प्रचलित रीति यह है कि, उसके समागमसे उत्पन्न गायके दूध देनेकी शक्तिकी तुलना उसकी माँसे की जाती है। ऐसे प्रयोगोंमे इंगलैन्डमें ५॥ वर्षका समय लगा करता है। पर भारतमें ऐसे प्रयोगके लिये ९ वर्षका समय चाहिये। इतने समयमें जाँचवाला साँढ़ बूढ़ा और बेकाम हो जायगा। प्रचलित आँकड़ा नीचे दिया जाता है। (७२, २५८–'६३, १०६१)

## आँकड़ा—१३६

### १०५६. भारत और इंगलैन्डमें परीक्षित साँढ़ोंकी उमर :

| | इंगलैन्डमें | | भारतमें | |
|---|---|---|---|---|
| | वर्ष | महीना | वर्ष | महीना |
| पहले समागमके समय साँढ़की उमर | १ | ६ | ३ | ० |
| किस उम्रमें बछरू जन्मा | ० | ९½ | ० | ९½ |
| यह बाछी जवान हो साँढ़से कब समागम करती है | १ | ६ | २ | ६ |
| गर्भकाल .. | ० | ९½ | ० | ९½ |
| पहले ब्यानका अन्त ... | ० | १० | ० | १० |
| दूसरे ब्यानका अन्त ... | ... | ... | १ | ० |
| | ५ वर्ष | ५ महीना | ८ वर्ष | ११ महीना |

भारतमें पहले ब्यानमें पूरा दूध नहीं होता इसलिये साँढ़का गुण जाननेके लिये दूसरा ब्यान भी देखना होता है। आशु प्रौढ़ताके कारण इंगलैन्डमें साँढ़की जाँच ५॥ वर्षमें हो जाती है। पर भारतमें ८ वर्ष ११ महीने या यों कहें ९ वर्ष लगते हैं।

"पूसामें किसी नस्लके मिल सकनेवाले सबसे अच्छे नमूने खरीदनेसे हम बाज आये (यह वास्तवमें ढोर संवर्धन नहीं है)। यहाँ ऊपरकी तरह प्रायः सभी मामलेमें

अनुभव हुआ। दूध बढ़ानेके काममें सबसे बड़ी बाधा यही थी यह कहना और कुछ नहीं किन्तु सच्ची बातका इजहार करना है। बहुत समय तक हम अज्ञात गुणके साँढ़से काम लेते रहे। इसका फल यह हुआ कि, कई बार हमें अचानक आनन्द हुए और बहुत बार गहरे धक्के लगे। इसससे प्रगति मन्द रही।" (७२)

१०५७. **१०,००० रत्तल औसतका लक्ष्य :** "इससे यह साफ हो गया है कि, यदि साहीवाल ठट्ठकी प्रगति अभीके उपायसे करके औसत १०,००० रत्तलका लक्ष्य पाना है (पहले दर्जेके दुधार ठट्ठका यही लक्ष्य है) तो यह केवल ऊँचे साँढ़से काम लेने पर हो सकता है। यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि, अपने ठट्ठका औसत दूध जितना ही आप बढ़ावेंगे, मामूली साँढ़ उसे उतना ही घटा देगा। ५,००० रत्तल वाली गायकी सतानकी अपेक्षा १०,००० रत्तलवालीकी संतानका बिगड़ना अधिक सरल है। ठट्ठके दूधकी उपज जैसे जैसे बढ़ती है इस नियमका महत्व भी बढ़ता है।" —(पूसाके आशु प्रौढ़ताके प्रयोग—सायर, एग्रिकलचर एन्ड लाइभ-स्टॉक इन इंडिया, नभम्बर, १९३८)

श्री वाइन सायरने सोचा कि, अब वह समय आ गया है कि, बिना जाँचा साँढ़ काममें लाना किसी तरह ठीक नहीं। "इंगलैन्डमें सफल पशु-संवर्धनके लिये आशु प्रौढ़ता एक विशेष कारण है, उसका विकास करना" जरूरी हो गया है।

तब प्रयोगकर्त्ताने आशु प्रौढ़ता लानेके लिये साँढ़, बछड़े और बाछियोंको अच्छा खिलाना शुरू किया। उन्हीं बच्चोंको साधारणसे जादा समय तक पूर्ण दूध अधिक परिमाणमें देना शुरू किया। यह और दूसरे कामोंपर ध्यान देकर उन्होंने आशु प्रौढ़ता लानेमें सफलता पायी। नये बच्चोंकी तौल वेगसे बढ़ने लगी। २४ महीनेमें उनका आकार और वजन जितना बढ़ता था वह १८ महीनेमें ही हो गया। इससे शुरूमें ही ६ महीनोंकी साफ बचत हुई। इससे बछड़े और बछियाँ दोनो ही शीघ्र प्रौढ़ हो गये।

लखम नं० ५६८, बिसुन और नाल्हने १ वर्ष ७ महीनेसे लेकर १ वर्ष ११ महीनेमें समागम करना शुरू कर दिया। इनसे पैदा बच्चे ठट्ठके पुराने मानके अनुरूप ही हुए। बच्चोंकी तौलमें कमी नहीं हुई। (७२)

१०५८. **साँढ़ और ओसरकी आशु प्रौढ़ता :** आशु प्रौढ़ साँढ़ोंसे तीन तरहकी गायोंका समागम कराया गया :

१. बूढ़ी गायें,

२. २॥ वर्षमें प्रचलित रीतिसे प्रौढ़ हुई बछियाँ,

३. आशु प्रौढ़ बछियाँ।

(१) और (२) के बछड़ोंकी जन्मके समय तौलमें कुछ खास कमी नहीं हुई। नं० (३) आशु प्रौढ़ साँड़ और आशु प्रौढ़ बछियाकी संतानकी तौल ठट्ठकी साधारण तौलसे कम थी। पर यह जैसी उम्मीद थी वैसा ही हुआ।

आशु प्रौढ़ साँड़का आशु प्रौढ़ बछियासे समागम कराना संवर्धनकी रीतिके विरुद्ध है। रीति यह है कि, आशु प्रौढ़ बछियासे देरसे प्रौढ़ हुआ साँड़ समागम करे और आशु प्रौढ़ साँड़ देरसे प्रौढ़ हुई गायसे। फिर भी इस प्रयोगमें पैदा हुआ बछड़ा, जन्मके समय कम तौलका होते हुए भी पीछे जाकर पूरे वजनका हो गया। लगती नं० ६३३ का जनक १ वर्ष ८ महीनेका था और जननी १ वर्ष १० महीना १८ दिनकी। बछरू जन्मके समय हल्का था, पर पीछे चलकर ठीक तौलका हो गया। यहाँ यह बताना जरूरी है कि, जिस नस्लका औसत आकार जितना है उतना होनेके लिये जन्मकी तौलसे कोई सरोकार नहीं है। (७२)

१०५६. **आशु प्रौढ़ता सफल हुई :** श्री वाइन सायरने आशु प्रौढ़ताके प्रयोगके कुछ आँकड़े दिये हैं। उनसे इसमें सन्देह नहीं रहता कि, प्रयोग सफल रहे। वह कहते हैं :

"... मैं यहाँ यह कह दूँ कि, हमारी सर्वोत्तम ओसर दोनो तरफसे आशु प्रौढ़ताकी (संतान) है। उसकी माँ १ वर्ष १ महीना और २९ दिन पर फली ... साँड़ २ वर्ष ९ महीना और ५ दिनका था। यह एक वर्ष सात महीने और सत्ताइस दिनकी उमरसे समागम कर रहा था।"

आशु प्रौढ़ताका दुधार गुण पर कोई असर नहीं है। यह एक दम दूसरा कारण है।

"इन प्रयोगोंका मूल कारण उपयोगिता थी। प्रचलित रीतिके मुकाबले आशु प्रौढ़तासे उपयोगी कालमें जो अंतर आ जाता है यह नीचे लिखी गायोंके इतिहाससे जाना जा सकता है। जो चार गायें दिखायी गयी हैं ....वह ठट्ठकी चुनिन्दा हैं। सभीने १० महीनोंमें ८,००० रत्तल से जादा दूध दिया है। (७२)

१०६०. प्रचलित और आशु प्रौढ़ प्रयोगोंके गायोंकी सूची :

## आँकड़ा—१३७

### पुराने ढंग और आशु प्रौढ़ प्रयोगोंमें गायोंका इतिहास

| गायका नाम और नम्बर | ब्यानकी संख्या | ब्यानेके समय उमर वर्ष | मास | दिन | प्रति ब्यानमें दूधकी उत्पत्ति रत्तल | दिन | टिप्पणी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **पुरानी प्रथाकी गायें** | | | | | | | |
| चन्द्रमा नं० ५६९ | १ | २ | १० | २८ | ३,०७७ | ३०६ | |
| | २ | ४ | ४ | ३ | ३,३७३ | ३०४ | |
| | ३ | ५ | ४ | ११ | ६,६०४ | ३०३ | विशेष व्यवस्थावाली ब्यान |
| | ४ | ६ | ४ | १३ | ६,०२९ | ३०४ | |
| | ५ | ७ | ६ | ० | ८,०१५ | ३०६ | |
| चकई नं० ५६३ | १ | ३ | ५ | २५ | १,२५५ | २७१ | |
| | २ | ५ | १ | ६ | ५,९५७ | ३०४ | ,, |
| | ३ | ६ | ३ | ४ | ६,८९९ | ३०६ | ,, |
| | ४ | ७ | ३ | १९ | ८,००१ | ३०४ | ,, |
| माखी नं० ५५७ | १ | २ | ११ | ४ | २,९९४ | ३०३ | |
| | २ | ४ | ३ | १३ | ५,४७८ | ३०३ | |
| | ३ | ५ | ५ | १९ | ७,२२६ | ३०६ | ,, |
| | ४ | ६ | ५ | १७ | ७,०८२ | ३०६ | ,, |
| | ५ | ७ | ४ | २५ | ८,०४९ | ३०६ | ,, |
| रमती नं० ५६६ | १ | ३ | ११ | ९ | ५,०६६ | ३०६ | |
| | २ | ५ | २ | १३ | ८,८६३ | ३०४ | ,, |
| | ३ | ६ | ३ | १० | ८,३२७ | ३०४ | ,, |
| | ४ | ७ | ३ | ५ | ६,००१ | ३०८ | ,, |
| **आशु प्रौढ़ताके प्रयोगकी गायें** | | | | | | | |
| विरंगी नं० ६३१ | १ | २ | ३ | २५ | ३,७४४ | ३०४ | ,, |
| | २ | ३ | ६ | २९ | ६,३६१ | ३०४ | , |
| | ३ | ५ | ० | ० | ... | ... | ३१ रत्तल प्रति दिन दे रही है। |
| चपरामा नं० ६७६ | १ | १ | ११ | ८ | ४,३०६ | ३०४ | विशेष व्यवस्थावाली ब्यान |
| चनसुरी नं० ६५३ | १ | २ | ७ | २९ | ७,६८६ | ३०४ | |
| मुक्ता नं० ६५४ | १ | २ | ८ | १२ | ३,९७८ | ३०७ | |

ऊपरके आँकड़ेमें देखा जा सकता है कि, ठट्ठकी सबसे अधिक दूध देनेवाली औसत गायोंसे आशु प्रौढ़ ओसर किसी तरह घटिया नहीं है। चपरामा ६७६ को २३ महीनेकी उमरमें बच्चा हुआ। इसका समागम ९॥ महीने पहले करीब १४ महीने की उमरमें हुआ। पहले ब्यानमें ४,३०६ रत्तल दूध दिया। इससे आशु प्रौढ़ताकी सफलता सिद्ध होती है।

अच्छी खिलायी और पालनके जरिये आशु प्रौढ़ करनेका अपना तरीका श्री वाइन सायरने छिपाया नहीं है।

ऊपरका आँकड़ा प्रयोगका एक दूसरा परिणाम बताता है। टिप्पणीका स्तंभ देखनेसे पता चलेगा कि, विशेष व्यवस्था करने पर कुछ गायोंका दूध बहुत बढ़ा। उदाहरणके लिये सूचीमें पहली चन्द्रमाको पहले और दूसरे ब्यानोंमें ३,००० रत्तल के लगभग दूध हुआ। तीसरे ब्यानमें उसकी विशेष व्यवस्था की गयी जिससे उसका दूध दूना ६,००० रत्तल हो गया। उसी तरह मास्वीका ५,४७८ से ७,२२६ रत्तल हो गया। रमतीका और भी जादे सुधार हुआ। उसका दूध ५,०६६ से ८,८६३ रत्तल हो गया। विशेष व्यवस्थासे पूसामें सोहीवाल गायोंकी निश्चित उन्नति हुई है।

१०६१. **पूसाके कुलीन साहीवाल ठट्ठकी विशेष व्यवस्था :** विशेष व्यवस्थाका अर्थ बच्चोंके साथ विशेष वर्त्ताव करना है। इससे वह रखवालों और आदमियोंको अपना मित्र मानने लगती हैं और झिझक छोड़ देती हैं। उन्हें बहुत पोषक आहार कृत्रिम उपायसे खिलाया जाता है। आरम्भके महीनोंमें पूर्ण दूध और बादको पूर्ण दूध और दुद्धीका मिश्रण रूखे चारेके साथ दिया जाता है। ओसरोंको थनकी मालिशकी आदत लगायी जाती है जिससे वह ऐसी क्रियाओंको असाधारण नहीं समझतीं। नये आदमीका पास आना या उसकी सेवाका उन्हें अभ्यास हो जाता है। इसकी आदत उन्हें लग जाती और इससे उन्हें भय नहीं लगता और न भड़कती हैं। उचित आहारके पानेके सिवा वह दिनमें चार बार दुही जाती हैं। श्री सायर लिखते हैं :

"इस सिलसिलेमें व्यवस्था (handling) साधारण परिभाषा है। थनकी मालिश ही उसका अर्थ नहीं है और न ब्यानेके ठीक पहलेका कोई विशेष वर्ताव। दुधार पशुओंकी जन्मसे ही व्यवस्था करनी चाहिये।"

जन्मके बाद बच्चे माँके पाससे हटा दिये जाते हैं। उन्हें पोंछने और सार

पर कोथम्न दवा लगानेके बाद उन्हें कटोरेमें पेउसी पीना सिखाया जाता है। कुछ दिनका होने पर हरेक बच्चेको खूंटेसे बांधा और कटोरेमें खिलाया जाता है। इसलिये उसे बचपनसे ही बांधने पर शान्त रहने और बांधनका अभ्यास हो जाता है। जब वह बँधा रहता है ऐसे ही समयमें उसे खाना दिया जाता है। (७२, २५८-६३, १०५५)

१०६२. **दूध देनेकी भावनाके साथ जीवनका आरम्भ:** खानेके समय विशेष रीतिसे बछड़ोंको बांधनेसे किसी बछड़ेकी जाँच जिस किसी समय कोई कर सकता है और वह हर तरहकी व्यवस्थाके अभ्यासी हो जाते हैं। इससे १० महीनेका होने पर उन्हें जवान बछड़ोंके बाड़ेमें भेजा जाता है उस समय तक वह बहुत पालतू हो जाते हैं। उनकी व्यवस्था कोई भी कर सकता है। इसलिये उनका जीवन उचित दुधार भावनासे आरम्भ होता है। सभी जवान ओसरोंको चरनेके लिये झुंडमें जाने दिया जाता है। उन्हें कभी बांधा नहीं जाता। उनकी देखभाल रोज होती है। यदि किसी ओसरकी जाँच जरूरी हुई तो उसे ग्वाला ले आता है। सभी ओसरें सप्ताहमें एक बार तौली जाती हैं।

ग्वाले या रखवालोंकी लाठी या सोटा रखनेकी मनाही थी। इस सबब सभी ढोर धीरे धीरे चलते थे। किसी तरहकी धक्का मुक्की नहीं होती थी। बथानमें केवल साँढ़के नकेलकी लग्गीकी ही मंजूरी थी। लाठीकी जगह सबको बुरुश और खुरहरा रखना होता था। वह लोग चरनेके समय उनकी पीठ पर खुरहरा फेरते थे इससे उनके किलनी और जूँ दूर हो जाते थे।

१०६३. **ओसरोंकी विशेष व्यवस्था:** "ओसर जब गरम होती है तब यदि वह ५०० रत्तलकी और १८ महीनेकी उमरकी है तो उसे फला कर अपने झुंडमें लौटा दिया जाता है। सात महीनेका गर्भ होने पर उसका आहार प्रतिदिन २ से ४ रत्तल बढ़ा दिया जाता है (गर्भकालका पहला आहार), यह ब्यानेके दो सप्ताह पहले तक दिया जाता है। इसके बाद उसे प्रति दिन ६ रत्तल पौष्टिक आहार दिया जाता है। ब्यानेके करीब पन्द्रह दिन पहले उसे सौरीके घेरेमें ले जाते हैं। वहाँ उसकी व्यवस्था और मालिश रीतिके अनुसार शुरू की जाती है। इससे जब उसका थन फूला दिखायी देता है तबसे धीरे धीरे उसकी मालिश और दुहाई शुरू करते हैं। यह मालिश और दुहाई ब्याने तक जारी रहती है। जब तक बच्चा हो न जाय तब तक मालिश और दुहाई चलती रहती है।"

**१०६४. पूसा : ब्याने पर विशेष उपचार :** "यदि उसका थन बड़ा होता है तो वह दुह ली जाती है जिससे थन पर सूजन न हो। पहले दुहनेके मुख्य कारणोंमें यह एक है। ... बड़ी थनवाली ओसरका सातसे चौदह रत्तल तक दूध दुहा गया है। ब्यानेके साथ साथ उसका बच्चा हटा दिया जाता है और उसे हर दूसरे घंटे दुहा जाता है कि, उसे पूरा दूध उतरे। जल्दी जल्दी दुहाईका यह समय विभिन्न हुआ करता है। कुछको दूध तुरत उतर आता है और कुछको कई दिन लगते हैं। पर उसे दूध है तो इस उपचारसे वह उसे उतारेगी ही और एक बार शुरू हो जाने पर बराबर होता रहेगा। इस उपचारका लाभ दिखानेके लिये हमारे यहाँ एक ८,००० रत्तलकी गाय है। यह उसका ५ वां ब्यान है। यह गाय स्वाभावकी शर्मीली है। आज इतना दूध पानेके लिये उसको व्यवस्था सावधानीसे करनी होती है। इसके पहले ब्यानमें केवल १,२०० रत्तल दूध ही हुआ। क्योंकि जन्मसे ही उचित व्यवस्था नहीं होनेके कारण वह बहुत शर्मीली और घबड़ानेवाली थी। इसलिये हमारी रीति तुरत उस पर नहीं चलायी जा सकी।"

**१०६५. साहीवालकी शरीर रचनासे उसके गुणोंमें परिवर्तन :** श्री सायरके साहीवालके प्रयोग नयी नयी दिशामें होते रहे। वह दूधकी उपज बढ़ानेके अलावे और कई कठिनाइयाँ दूर करनेको कटिवद्ध थे। उन्होंने देखा कि, साहीवाल संसारकी सर्वोत्तम दुधार नस्लोंमें एक है। उस स्थितिकी होनेमें साहीवालको जो बाधायें हैं उनके मिट जानेसे ही उन्हें संतोष हो सकता था। उन्होंने सोचा कि, दुनियाँकी सर्वोत्तम दुधार नस्लोंकी बराबरी करनेके लिये इस नस्लकी शरीर रचनामें फेर बदल करना जरूरी है।

**१०६६. शरीर रचनामें परिवर्तनके लिये विशेष उपचारकी कठिनाइयाँ :** साहीवालके नरमें पहली कठिनाई यह है कि, वह कम उमरमें ही सुस्त और उमर बढ़ने पर बहुत कुछ नपुंसक हो जाता है। यह बड़ी भारी त्रुटि थी। श्री सायर साहीवालकी बनावटमें आवश्यक परिवर्तन करनेको तत्पर हुए। उन्होंने पता लगाया कि, त्रुटिका कारण मुतानका ढीलापन है। ऐसा समझा जाता था कि, ढीले मुतानका सम्बन्ध अधिक दूध देने से है। उन्होंने इसे गलत साबित किया और मुतानको चुस्त करनेमें सफल हुए। चुस्त मुतानवालोंकी ३ पीढ़ी पैदा की गयी। उनकी जाँचसे पता चला कि, मुतानकी चुस्तीसे दूध नहीं कमता। साहीवालके

थनमें भी सुधारकी जरूरत थी। वह घड़ेकी तरह झूलता है। साहीवाल प्रथम श्रेणीकी दुधार हो जाय इसके लिये थनके सुधारको जरूरत है। थनके इस आकारका कारण उसका दबा हुआ कटि-प्रदेश है। इसलिये ऐसा सांड़ खोजनेकी जरूरत थी जो कटि-प्रदेशको उभार कर थनका सुधार कर सके। दूध देनेकी शक्ति घटाये बिना मनचाहा परिवर्तन और थनका सुधार करनेमें वह सफल हुए।

१०६७. दुनियाके दूधके लेखोंमें साहीवालका स्थान : दुनियाके सर्वोत्तम दूध देनेवालोंकी बराबरी करनेके लिये अब साहीवाल बढ़ रही है। कई बार उसने ३०० दिनमें १४,००० रत्तल दूध देकर दिखा दिया है।

पंजाबमें ही उत्तरी सर्कलके फौजी गव्यक्षेत्रोंके असिस्टेंट डाइरेक्टर मेजर सी० ई० मैकगूकिन इस नस्लके सुधारके लिये अपने ढंगसे काम कर रहे हैं। अधिक दूध देनेके लिये जैसी शरीर रचना चाहिये विशेष कर यह कर रहे हैं।

# अध्याय २४

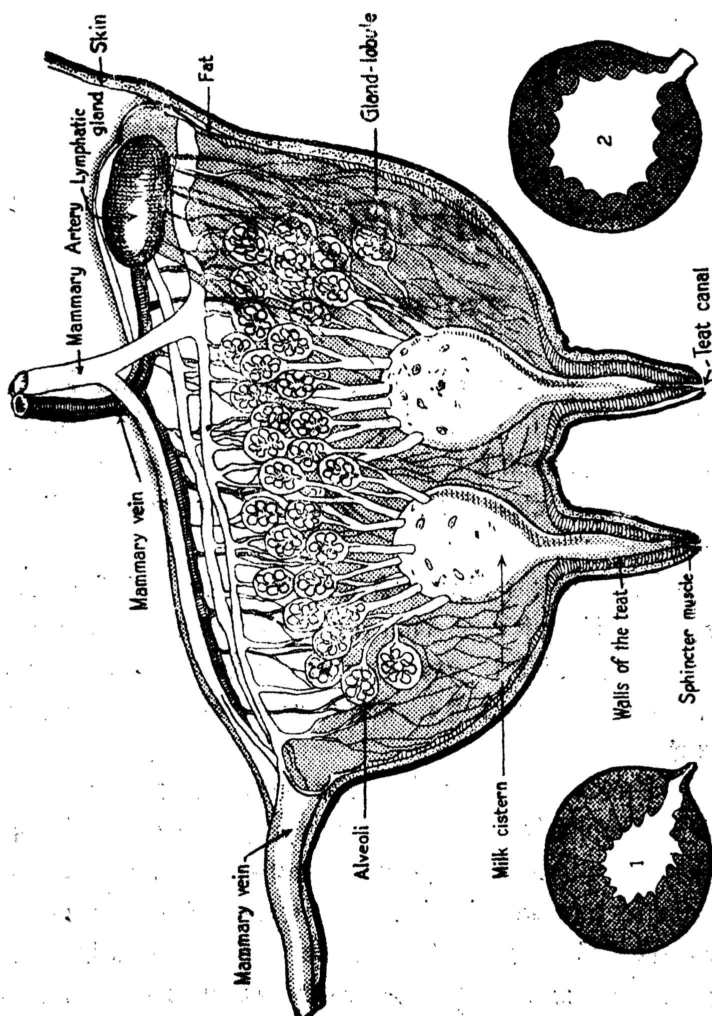
## दुग्ध स्राव और दूध

१०६८. **दुग्ध—ग्रन्थि :** गायका थन एक तरहकी ग्रन्थि है। इसे दूधकी ग्रन्थि कहते हैं। इस ग्रन्थिमें दूधकी धमनीसे रक्त आता है। इस रक्तके पदार्थोंसे ग्रन्थि दूध बनाती है। इस धमनीकी बहुतही छोटी छोटी धमनियाँ बन जाती हैं। इनसे होकर दुग्ध-तन्तुके हरेक भाग और प्रस्रवण-कोषोंमें रक्त पहुँचता है।

दो तीन सप्ताहके भ्रूणमें भी दूधकी मूल ग्रन्थि निकल आती है। जन्मके बाद यह धीरे धीरे बढ़ती है। जवानी आने पर ग्रन्थि तेजीसे बढ़ने लगती है और ब्याने तक बढ़ती रहती हैं। थनका आकार बढ़ जाता है। इसकी भीतरी बनावट बहुत पेचेली दिखायी पड़ती है। अन्तिम अवस्था आने पर दुग्ध-प्रस्रवण-कोष बनते हैं।

ग्रन्थि चार भागोंमें बँटी हुई है। हरेक भागको चौथाई कहते हैं। हर थनमें एक चूची होती है। हरेक चूचीके साथ एक दूधका कुंड होता है जिसमें १ आउन्स तक दूध रहता है। दूध जमा करनेवाली नालियोंसे कुंडमें दूध भरता है। इन नालियोंकी शाखा प्रशाखायें होती हैं। अंतिम शाखाओंकी महीन नालियाँ गोल और खोखले ढांचेमें खतम होती हैं। इस गोल ढांचेके किनारे कोषोंकी इकहरी पांत होती है। इन कोषोंसे दूधकी ठोस सामिग्री निकलती है। ये कोष उन्हें स्वयं नहीं तोड़ते। यही कोष खूनसे दूध बनानेकी सारी क्रिया मिल कर करते हैं।

सारे खूनका दूध नहीं बनता है। मोटे तौरपर रक्त दो पदार्थोंका बनता है। एक रक्त-द्रव (प्लाज़्मा) और दूसरा रक्तके कण (कॉरपसिल्स)। किसी कांचकी नलीमें रक्त रखनेसे रक्तके कण बढ़ जाते हैं और हलके पीले रंगकी एक चीज अलग हो जाती




चित्र ४७. गो-दुग्धाशयके अंगोका निदर्शक रेखाचित्र

Mammary vein—दुग्ध शिरा, Mammary artery—दुग्ध धमनी, Lymphatic gland—लसिका ग्रन्थि, Skin—चमड़ा, Fat—चर्बी, Gland-lobule—ग्रन्थिका, Teat canal—दुग्ध नलिका, Sphincter muscle—रन्ध्र संकोचक पेशी, Walls of the teat—स्तनास्तर, Milk cistern—दुग्ध कुंडिका, Alveoli—दुग्ध कोटर।

है, इसे द्रव (प्लाज़्मा) कहते हैं। खोजोंसे पता चलता है कि, दूध बननेमें कणका सीधा सम्बन्ध कुछ नहीं है। द्रव पदार्थसे ही दूधके भिन्न भिन्न घटक बनते हैं। शास्त्र दूध बननेकी वास्तविक पद्धति नहीं जान सका है। शास्त्रवेत्ताओंके लिये यह अब तक रहस्यमय पदार्थ है। जीवन निर्वाहके लिये इसमें सबसे अधिक शक्ति है। अनुमान किया जाता है कि, एक रत्तल दूध बननेके लिये ४०० रत्तल खून थन होकर बहता होगा। १२ घंटेमें १२ रत्तल दूध बननेके लिये थनमें खूनकी कैसी तेज धार बहती होगी! हर घंटे ४०० रत्तल अर्थात् मिनटमें ७ रत्तल रक्त बहता होगा।

दूधकी धमनीकी रक्तवाही शक्ति जरूरही बहुत जादे होगी। दूध बननेके बाद बची सामिग्री लौटा ले जानेके लिये शिराओंकी शक्ति भी बड़ी होगी। एक रत्तल दूध बननेके लिये ४०० रत्तल रक्त की जरूरत होती है। इसका अर्थ यह है कि एक रत्तल रक्तका बहुत कम अंश दूध बननेके काम आता है। लौटते रक्तका $\frac{१}{४००}$ भाग ही कम होता है। इसलिये शिराओंमें लौटा हुआ खून साधारण शिराओंके खूनसे जादे भिन्न नहीं होता। दुग्ध शिरा इतना खून बहन करनेके लिये जरूरही असाधारण बड़ी होगी।

टेढ़ी मेढ़ी लकीरके रूपमें थनके ऊपर दुग्ध शिरा देखी जा सकती है। गायकी दूध देनेकी शक्तिका अनुमान लगानेके लिये दुग्ध शिराकी जाँच की जाती है।

१०६६. **दूध बनना :** कुछ लोग मानते थे कि, दुहनेके समय दुग्ध प्रस्रवरण हो सकता है। दूसरा मत यह था कि, दुग्ध प्रस्रवरण बराबर होता है और थनमें जमा दूध ही निकाला जाता है। शारीरिक-क्रिया-शास्त्रियोंने भी यही मत माना है। वह कहते हैं कि, एक बार जितना दूध निकाला जाता है वह पहलेसे ही थनमें जमा रहता है।

दूध उतरनेके ऊपर गायका नियंत्रण रहता है। थनके स्नायुजालके कारण उसका नियंत्रण है। यदि वह चाहे तो बने दूधका उतरना वह रोक दे। दुहनेके समय भी वह अपने बच्चेके लिये कुछ दूध रोक रखती है। इसलिये दुहनेके बाद बच्चेको पीने देते हैं और उस दूधका फायदा उठाते हैं। बच्चा जब पीने लगता है तब वह फिर दूध छोड़ देती है। जब बछड़ेके लिये उसने दूध उतार दिया तो फिर उसे दुह सकते हैं। पर यह तभी करना चाहिये जब बछड़ा रूखा और पोष्टिक चारा यथेष्ट मात्रामें खाने लग जाय।

**१०७०. दूधमें चीनीका अंश :** दूधमें कई पदार्थ जैसे मक्खन, दूधकी चीनी (लैक्टोज), प्रोटीन, खनिज और भिटामिन होते हैं। दूधकी ग्रन्थिके शक्तिशाली संग्रही कोष इन्हें रक्तसे तैयार करते हैं। दूधमेंकी चीनी, रक्तकी चीनीसे तैयार होती है। रक्त और दूधके चीनीके अनुपातमें सम्बन्ध है।

**१०७१. दूधकी प्रोटीन :** दूधमें तीन प्रोटीन होते हैं--केसीन, लैक्टएलबुमिन, और लैक्टो ग्लोबुलिन। सबसे जादे केसीन होती है। केसीन रक्तमें नहीं होती। शायद रक्तद्रवकी प्रोटीन लेकर ग्रन्थि उसका संश्लेषण कर केसीन बनाती है। उसी तरह लैक्टएलबुमिन बनता है। पर लैक्टो ग्लोबुलिन सीधे रक्तसे ही आता है। यह पेउसीमें बहुत जादे, १० से १५ सैकड़ा तक होता है। यह उपकरण पेउसोसे जैसे जैसे दूध बनाता जाता है कम हो जाता है। दूधमें यह केवल ०·१ सैकड़ा रह जाता है। इसीसे ऐसा मालूम होता है कि, लैक्टो ग्लोबुलिनसे ही दूसरे दोनो प्रोटीन—केसीन और लैक्टएलबुमिन-- अंतमें बन जाते हैं।

**१०७२. रक्तद्रवसे मक्खन आदि :** दूधकी ग्रन्थि स्नेह आदि भी बनाती है। मक्खन स्नेहाम्लोंका पेचीदा मिश्रण है। अंतिम रूपमें भी कई अम्ल (तेजाब) रहते हैं।

खनिज और भिटामिन दूधके घटक हैं। ये दूधमें खूनसे सीधे ही आते हैं।

**१०७३. दूध स्रवण करनेवाले प्रभावी "हरमोन" :** यह कहा जा चुका है कि दूध स्रवण करनेकी गायोंमें एक उत्तेजना होती है। देहमें उत्पन्न हरमोन यह उत्तेजना पैदा करते हैं। दूधकी ग्रन्थिका विकास भी इसी उत्तेजनासे होता है। गर्भकालमें यह डिम्बकोषमें बनता है।

डिम्बकोषमें और तरहके भी कुछ हरमोन बनते हैं। ये ऋतुकालिक हैं। मासिक धर्म इन्हींके सबब होता है। दूध देना, प्रोलेक्टीन या गैलेक्टीन अथवा लैक्टोजन नामक चीजें हरमोनके कारण होती हैं। यह हरमोन पिचुरी (pituitary) ग्रन्थिके एक भागमें बनता है। थाइरोक्सिन हरमोन थाइरॉड ग्रन्थिमें बनता है। यह दूध बढ़ाता है और दूध स्रवणके लिये साधारण हरमोन यही माना जाता है। एड्रीनल ग्रन्थिसे भी एक प्रभावी निकलता है। यह भी दूध स्रवणके लिये महत्वका माना जाता है। इन सक्रिय पदार्थोंका विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ है।

यह समझा जाता है कि डिम्बकोषका हरमोन (प्रभावी) दूधवाले या प्रोलेक्टीन प्रभावीका बनाना गर्भकी पहली अवस्थामें बन्द कर देते हैं। इस समय आगे होनेवाली जरूरतके लिये प्रभावी पदार्थ दूधकी ग्रन्थि बनानेकी तैयारी करते हैं। प्रसवके बाद पिचुरीके काफी पदार्थ अपना काम करने लगते हैं। इससे दूधवाले प्रभावी रुकावटवाले प्रभावी पर प्रबल हो जाते हैं। दूध देनेके काल और दुहाईके समय इस प्रभावीको उत्तेजना मिलती है।

दूध देते देते गर्भ रह जाने से दोनो विरोधी प्रभावी फिर लड़ना शुरू करते हैं। निरोधक प्रभावी प्रबल हो जाते हैं और वह अगले ब्यानकी थकावट सहनेके लिये देहको तैयार करनेके लिये दूध बन्द कर देते हैं।

यह भी देखना होगा कि दूध देनेकी उत्तेजना परम्परागत गुण है। यदि निर्वाह और दूध देने इन दोनो कामोंके लिये काफी आहार न मिले तो भी अधिक दुधार वंशकी गाय अधिक दूध देती रहेगी। भलेही इससे उसका शरीर घुले। इसलिये अधिक दूध देना पशु-विशेष, उसकी परम्परा, दूधवाले प्रभावीको पैदा करनेकी शक्ति इत्यादि पर निर्भर है। इस दृष्टिकोणसे यह कहा जाता है कि, दूध देना शुरू कर देने पर गायोंको शुद्ध किये हुए दूधके प्रभावीकी सूई लगानेसे उसकी प्रतिक्रियासे भविष्यकी दूध देनेकी शक्तिका पता चल सकेगा।

१०७४. **खिलाना और दुग्ध स्रवण :** केवल खिलानेसे दूध नहीं होता है। यदि परम्परागत गुणोंका अभाव है तो अतिरिक्त खिलायी से दूध तो नहीं बढ़ेगा, अतिरिक्त मांस और चर्बी बढ़ेगी। देहमें मांस और चर्बीके इस अतिरिक्त वृद्धिसे नुकसान है। गाय देरसे गरम होती है और धीरे धीरे बाँझ हो जाती है। (९७१)

१०७५. **दुहना :** दुहनेके पहले गायका थन खूब साफ कर लेना चाहिये। यदि गायकी देह, उसकी अगल बगल और पूँछ गन्दी है तो दुहनीमें कुछ न कुछ गन्दगी गिरेगी ही, इससे दूध दूषित हो जाता है। सबसे अच्छी सफाई सूखी सफाई है। पुआलसे रगड़ने से पूँछ और देह साफ हो सकती है। साफ कपड़ेसे थन पोछ लेना चाहिये। एकबार पोछनेसे यदि काम न बने तो एक दूसरे कपड़ेसे पोछना चाहिये जिससे कि दूध दूषित करनेके लिये जरा भी गन्दगी न रहे।

दुहनेवालेका नख कटा होना चाहिये और दुहनेके पहले उसे साबुन से अपना हाथ अच्छी तरह धो लेना चाहिये।

दुहनी बिलकुल साफ होनी चाहिये। दूधवाला यह देख ले कि थन और चूची साफ हैं और दुहनेवालेका हाथ और दुहनी भी साफ हैं। दुहनेका समय नियमित होना चाहिये। साधारण नस्लोंको दिनमें दोही बार दुहना चाहिये और दुहनेके समयका अन्तर बराबर १२ घंटेका रहना चाहिये। यदि दुहनेका समय सबेरे चार बजे है तो तीसरे पहर भी चार बजे ही दूसरी बार दुहना चाहिये। यदि तीन बार दुहना है तो बीचमें आठ आठ घंटेका अन्तरकाल होना चाहिये। चार बारकी दुहाई में ६ घंटेका अन्तर चाहिये।

शान्त और छायादार जगहमें दुहना चाहिये। जो गाय जहाँ दुही जाती है, नित्य वहीं दुही जाय। दुहना शुरू करनेके पहले गायसे मीठी बोली बोलो और दुह कर मीठी बोली बोल उसे थपकी दो। गायोंको ऐसा व्यवहार सुहाता है। कुछ लोग दुहनेके समय स्वादिष्ट पौष्टिक आहार देते हैं। इससे वह अधिक दूध दे यह जरूरी नहीं है, लेकिन हमारे मीठे व्यवहारके इस सलूकका मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि यह करना है तो रोज करो, कभी कभी नहीं।

दुहनेके समय नये आदमी गायके पास नहीं रहें। यदि कई गायें और कई दुहनेवाले हैं तो जो आदमी जिस गायको दुहता है नित्य वही दुहा करे। दुहनेवालेकी बदली गायको अच्छी नहीं लगती। जो आदमी ठीक तरह से उसे दुहता है उसे वह चाहती है। इसलिये वही एक आदमी रोज दुहे। दुहनेवालेकी बदली से गड़बड़ी होती है, इससे दूध कम होता है।

**१०७६. उँगली और मुट्ठीसे दुहना :** दुहनेका सही तरीका अनुभवी लोगोंसे सीखना चाहिये। दुहनेके समय मुट्ठीके भीतर अँगूठा नहीं रखना चाहिये।

दुहनेके दो तरीके हैं—एक उँगलीसे और दूसरा मुट्ठीसे। उँगलीवाले तरीकेमें चूचीको अँगूठासे पकड़ते हैं। फिर उससे चूचीको दबाकर जितना खींच सकते हैं खींच कर दूध निकालते हैं। इससे दूधकी धार बँध जाती है। दो चूची दुहनेके लिये दोनों हाथ लगाते हैं। एकके बाद दूसरे हाथसे दुहा जाता है। पूरा खींचकर चूची छोड़ दी जाती है और फिर उसे जड़के पास पकड़ कर खींचा जाता है। पहले पासकी दोनों चूची दुहकर तब बादकी शुरू की जाती है। जल्दी जल्दी हाथ बदलनेसे दूधकी धार लगातार मालूम होती है। यद्यपि धार कभी इस और कभी उस चूचीसे गिरती है।

मुट्ठीमें पकड़ी जा सके ऐसी बड़ी चूची जिसकी हो उसे मुट्ठीसे दुहा जा सकता है। छोटी गायें या छोटी चूचीवालियोंको इस तरह नहीं दुह सकते। बड़ी गायें और भैंसे मुट्ठी से दुही जा सकती हैं। इस तरीकेमें चूचीको मुट्ठीमें



चित्र ४८. दुहनेकी कला—धार निकालना
(फीडिंग एन्ड मिल्किंग ऑफ काउज)



चित्र ४९. दुहनेकी कला—मुट्ठीसे दुहना
(फीडिंग एन्ड मिल्किंग ऑफ काउज)

दबाकर खींचते हैं। एकके बाद दूसरे हाथसे दोनों चूचियां दबायी जाती हैं। इसमें दूधकी धार बड़ी निकलती है। क्योंकि, हर बार निचोड़नेके बाद हाथ ऊपर नहीं ले जाना पड़ता है। उँगलीसे दुहनेमें रगड़से चूचीमें सनसनी पैदा होती

है। मुट्ठीकी दुहाईमें बच्चेके पीनेकी सी समानता है। इसमें गायको कुछ आराम मालूम होता है। मुट्ठीकी दुहाईसे थनमें कुछ दूध रह जाता है। इसे पीछे उँगलीसे निकाल लेना चाहिये। शुरू करनेके बाद काफी वेगसे दुहना चाहिये। निपुण दुहनेवाले दूसरोंकी अपेक्षा जल्दी दुह लेते हैं और जादे दूध निकालते हैं। दूधकी उत्पत्ति बहुत कुछ दुहनेवाले पर निर्भर है। अच्छा दुहनेवाला उसी गायसे कमसे कम समयमें जादे दूध दुहेगा।

**१०७७. दूधकी अंतिम धारोंमें स्नेह :** दुहनेके समय दूधकी अंतिम कुछ धारोंमें आरंभिकसे स्नेह अधिक होता है। जिस गायके दूधमें औसत स्नेह ४ सैकड़ा होता है उसकी शुरूकी धारोंमें बहुत कम १ सैकड़ा स्नेह हो सकता है और अंत की धारोंमें ८ से १० सैकड़ा तक। शहरोंमें चाल है कि, हर ग्राहक के घर ले जाकर गायको दुहते हैं। इससे पहले ग्राहकको बहुत कम मक्खनवाला दूध मिलता है और आखिरीको बहुत जादेवाला।

दुहनेके बाद दूध तौल कर दूसरे बर्तनोंमें रखने या बाहर भेजनेके लिये डालना चाहिये। दूसरी जगह ऐसे बर्तनमें दूध भेजा जाय जिसकी सफाई अच्छी तरह हो सके। बर्तनमें ढक्कन होना चाहिये। दूध नपनेसे निकलना चाहिये। नपना बर्तनके भीतर लटका रहना चाहिये। इसके लिये बर्तनके भीतर एक अँकुसी हो। इससे जब उसका काम नहीं रहता तब वह बर्तनके भीतर साफ हालतमें ढका रहता है।

**१०७८. सबेरे और साँझके दूधमें स्नेह :** सबेरेकी अपेक्षा साँझके दूधमें स्नेह जादे होता है। ग्राहकोंको दूध देने और दूधके मक्खनको कूतनेके समय यह याद रखना चाहिये।

**१०७९. दुहनी और मशीनसे दुहना :** दुहनीका पेंदा गोल हो, उसमें किसी तरहका मोड़ नहीं होना चाहिये। मोड़ और कोनेसे जल्दी और ठीक सफाई नहीं हो सकती। गोलाईमें गन्दगीके टिकनेका कहीं जगह नहीं है। (११७५)

दुहनीकी सफाई पर ध्यान रखना चाहिये। गव्यशालाके सभी बर्तन खूब अच्छी तरह ठंढे पानीसे साफ कर लिये जायँ। जिनमें बहुत चिकनई हो उन्हें गरम पानी और राखसे रगड़ कर साफ करना चाहिये। इसके बाद फिर गरम पानी से धो कर धूपमें रख देना चाहिये। यदि हवामें बहुत धूल उड़ती हो तो काममें लानेके पहले बर्तनोंको पानीसे धो लेना चाहिये।

स्वास्थ्यप्रद ढंगसे दुहाई और श्रम बचानेके लिये दुहनेकी मशीन बनायी गयी है। भारतके देहातोंमें उनसे काम लेनेका कोई सवाल ही नहीं है। शहरकी गोशालाओंमें भी उनकी उपयोगितामें सन्देह है। दुहनेके मशीनमें नलीका उपयोग होता है। जैसी चाहिये वैसी सफाई नलीकी नहीं हो सकती। रबरके नलीके भीतर दूधकी परत बैठ जाती है। इसका साफ होना कठिन है। भापसे काम नहीं लिया जा सकता, क्योंकि, इससे रबर जल्दी खराब हो जाती है। जिन गोशालाओंमें दुहनेकी मशीन मँगा ली गयी थीं वहाँ भी इनसे काम लेना बन्द किया जा रहा है।

दुहनेके बाद बच्चेको कुछ देर अपनी माँके पास रहने देना चाहिये। जरूरतसे जादा देर तक रहने से वह अपने माँको दिक करने लगते हैं, यह रोकना चाहिये।

> १०८०. **दूधके गुण :** जिन लोगोंने सफलता पायी है, जो बड़े, बली, और शक्ति-संपन्न हुए हैं, जिन्होंने मृत्युको जीता है, जो दुनियाँमें सबसे अच्छे व्यवसायी हैं, जो कला, साहित्य और संगीत विनोदी हैं, जो शास्त्र और मानव बुद्धिके सभी कामोंमें प्रगति कर चुके हैं; ये लोग वह हैं जिन्होंने अच्छी तरह दूध और उसके पदार्थ सेवन किये हैं।

—डा० ई० भी० मैक्कोलम।

—(मैनियन द्वारा उद्धृत—"कैटल वेल्थ ऑफ इन्डिया")

पुराना और नया साहित्य दूधकी प्रशंसासे भरा पड़ा है और ये इसे पूर्ण पोषक मानते हैं। इसके गुण बहुत और विभिन्न हैं। आजका साहित्य दूधकी जीवनदाता शक्तियोंके गुणगानसे भरा हुआ है। ये गुण किसी दूसरे एक आहारमें नहीं मिल सकते।

दूध आज भी रहस्यमय द्रव माना जाता है। इसमें १०१ विभिन्न पदार्थ हैं। दूधके घटक-द्रव्योंके बनावटी मिश्रणमें कितनी ही चतुराई की जाय वह दूधकी बराबरी नहीं कर सकता। वह अद्वितीय है। इसके घटक-द्रव्योंके मूल्यसे इसका कुल पोषक मूल्य अधिक हैं। इसलिये दूध अपने घटकोंके बराबर के अतिरिक्त भी कुछ है। आगे कहे ३ प्रोटीनोंमें १९ एमीनो तेजाब हैं। इसके मक्खनमें ११ स्नेहाम्ल हैं और ६ भिटामिन, ८ क्रियाशील रस (enzymes), २५ खनिज, १ चीनी, ५ फॉसफोरस, १४ नाइट्रोजन पदार्थ, सब दूधमें घुले हुए हैं।

**१०८१. वेदोंमें दूधकी प्रशंसा :** भारतमें सभ्यताके आरम्भसे ही गाय पूज्य मानी जाती है और इसके दूधका गुण गान किया गया है। नये और पुराने लेखकोंकी दूधकी प्रशंसासे एक अध्याय भर दिया जा सकता है। डा० एन० एन० गोडबोलेने अपने "दूध—सबसे पूर्ण आहार" में दूधकी प्रशंसामें वेदकी ऋचायें उद्धृत की हैं।

वशाया दुग्ध पीत्वा साध्वा वसवश्चये।
ते वै ब्रघ्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते॥

अथर्व वेद १०।१०।३११

जब इन साध्यों और बसुओंने गायका दूध पिया है तब उन्होंने स्वर्गमें इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है।

पयो धेनूनां रस ओषधीनां जवभर्वतां कवयो इन्वथ।

अथर्व वेद ४।२७।३

जिन अश्वोंने गायके दूध और नवीन पौधोंके रसको पान किया हैं, उनकी शक्ति और तेजका कवियोंने गुणगान किया है।

संसिंचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रमम्।

अथर्व वेद २।२६।४

मैं शक्ति और रसके रूपमें दूध और मक्खनको मिलाता हूँ।

**१०८२. दूध—पूर्ण अवद्रव :** पानी और तेलके मिश्रणको अवद्रव कहते हैं। दूध अद्वितीय अवद्रव है। पूर्णतामें कोई दूसरा अवद्रव दूधकी बराबरी नहीं कर सकता। भारतमें गायके दूधमें ५ सैकड़ा मक्खन होता है। यह उसकी तौलका $\frac{1}{20}$ भाग है। यह अति सूक्ष्म बुन्दकियोंकी सूरतमें दूधमें घुला मिला रहता है। उसकी मिलावट ऐसी है कि, धरे धरे या उबालनेसे भी जल्दी वह अलग नहीं होता। यदि देर तक दूध धरा रहे तो वह धीरे धीरे अलग हो कर ऊपर आ जाता है और मलाईकी तह पड़ जाती है। हिलाने या मथने से या उबाल कर रखने से यह क्रिया जल्दी हो जाती है। मक्खन बिलोनेमें यही क्रिया होती है। अनेक दूसरे अवद्रव गरम करने से अलग हो जाते हैं। पर इस मामलेमें दूध अद्वितीय है। गरम करने से वह अलग नहीं होता।

१०८३. **केसीन** : दूधका केसीन दूसरा अद्भुत प्रोटीन पदार्थ है। गरमाने से यह थक्का नहीं होता। गाढ़ा करने पर यह घुलने लायक नहीं रहता, पर सीधे उबालनेसे उसकी घुलनेकी शक्ति बनी रहती है।

स्नेह और प्रोटीनसे पोषक तथा हाड़-मांस बननेके लिये उपयुक्त पदार्थ मिलते हैं। दूधकी जगह कोई दूसरी चीज नहीं ले सकते। यह पूर्ण आहार कहा जाता है, क्योंकि हाड़-मांस दूसरे पदार्थोंकी सहायताके बिना भी केवल इसीसे बन सकते हैं। इसमें लोहा कुछ कम है। पर जननी गर्भमें बच्चेको काफी लोहा दे देती है। इसके बिना, ६ महीना तक उसका काम चल सकता है। इसके बाद दूधकी लोहेकी कमी पूरी करनी होती है। प्रकृतिने इसे बच्चोंके लिये एकमात्र पोषक बनाया है। लेकिन बूढ़े भी बच्चोंकी तरह इससे पोषण पाते हैं।

१०८४. **मनुष्य और गायका मेल** : (६४६) गायके दूध देनेकी शक्ति, घास खानेकी उसकी आदत जिसके कारण वह कच्चा चारा खाकर बहुमूल्य गोबर और मूत करता है जिससे खेत उपजाऊ बनता है, उसकी पुरुष संतानकी काम करनेकी शक्ति, इन अद्भुत आविष्कारों वह मनुष्यके लिये अपरिहार्य हो गयी है। गाय और उसके दूधके बिना आर्य सभ्यता जैसी है वैसी नहीं बन सकती थी। घोड़ीको भी दूध होता है और घोड़े भी काम करते हैं पर वैसा नहीं जैसा गाय। जैसे आहार पर गाय पनपती है वैसे पर घोड़ा नहीं पनप सकता। जितनी पत्तियाँ गाय खा सकती है उतनी घोड़े नहीं। घोड़ेको दाना और पुष्टई चाहिये। भारतका कैसा सौभाग्य है कि भूतकालमें उसके पुरखोंने गायके साथ दयाका वर्ताव किया, उसे अवध्या ठहराया और उसके मांसकी मनाही की। इसके बदले उन्होंने उसे प्यार किया, उसकी दूध देनेकी शक्तिका विकास किया और बैलोंसे काम लेना शुरू किया। मनुष्यको सभ्य बनानेका यह महान कार्य था। गायकी भक्तिसे मनुष्यमें अधिक मनुष्यता आयी।

गायका दूध अतुलनीय, सुन्दर और अद्वितीय है। फिर भी उसके पोषक गुणकी अपेक्षा उसका संबन्ध और भी बड़ी बातों से है।

१०८५. **दूध—उसके औद्योगिक उपयोग** : मनुष्यने दूधसे सैकड़ों काम लिये है। इसके केसीनसे रासायनिक अगणित चीजें बनाते हैं। उन्होंने इसका ऐसा ऐसा उपयोग किया है कि अचरज होता है।

"इंडियन फार्मिंग" जुलाई, १९४२ में "दुधिया राह" शीर्षकमें निम्न अंश छपा है :—

"हमारी अनेक फाउन्टेन पेनोंकी खोल और एभरशार्प पेन्सिल दूधके पदार्थकी (प्लास्टिक) बनी होती हैं। लिखनेके बढ़िया कागजोंकी चमक दूधकी पालिशसे ही है। आदमीको उड़नेमें सहायता देनेके लिये हवाई जहाजका सटुआ तख्ता (प्लाइ उड) दूधकी सहायता से ही बनता है।"...

"...भारजीनिया पोलिटेक्निक इस्टिट्यूटके प्रो० जी० एच० रोलिंग्स कहते हैं :

'हो सकता है दूधसे पुते कमरेमें दूधके जोड़े पलंगपर दूधके बने बिछे कंबलसे आप जल्दी ही उठ बैठें। दूधका बना कंबल जमीनकी ठंडसे आपके पैरकी रक्षा कर सकता है। दूधकी बनी नल खोलकर आप सबेरेका स्नान कर सकते हैं। इसके बाद दूधके बने हैन्डलवाले अस्तुरेसे आप हजामत बना सकते हैं, दूधके कंघेसे आप बाल सँभार सकते हैं और दूधके आधारके बुरुससे उसे झाड़ सकते हैं, और शायद दूधमें जड़े शीशेमें अपना चेहरा देखकर खुश हो सकते हैं।

'आप दूधसे बने गरम कपड़े जिसमें दूधकी बनी बटनें लगी हों पहन सकते हैं और दूधकी कलई की हुई टाई बाँध सकते हैं। शायद आप दूधसे बनी अपने रेडियोकी चाभी घुमा आपके पसन्दके जगहकी खबर सुन सकते हैं। दूधके बने कटोरेमें दूधकेही बने चमचेसे आप मलाईमें भीगे अन्न खा सकते हैं। खानेके बाद पीनेके लिये आप सिगरेटका दूधका बना बेठन खोल सकते हैं। ऑफिस जानेके पहले आप अपनी पत्नीके, दूधके बने प्रसाधनसे चिकने किये ललाट चूमना चाहें। अंतमें दूधकी बनी खोलके फाउन्टेन पेन निकाल बिल चुकानेको (दूधका बिल) दूधसे चिकना किये कागज पर चेक लिखना मत भूलिये।"
—(गोट वर्ल्ड से)

केसीनकी चीजोंका आजके निर्माताका यह वर्णन है। इन लुभानेवाली चीजोंके लिये हम भारतीय दूध के केसीन नहीं चाहते। हमारे भूखे बच्चोंके देहमें कुछ रक्त मांस बढ़े इसलिये हम केसीन पदार्थोंको आहारके काममें लाना चाहते हैं। यह कहीं ज्यादा लुभावना उपयोग होगा। यही सच्चा "सफेद जादू" या सच्चा "दुधिया रास्ता" होगा।

१०८६. विभिन्न देशोंमें दूधकी खपत : हमें अपने देशवासियोंके पोषणके लिये काफी दूध नहीं होता है। भारतीयोंने अच्छे दिन देखे हैं। असलमें

कभी "दूध घीकी" नदी बहती थी। यह अधिक दिनकी बात नहीं है। आज सब बिगड़ गया है। गायकी रक्षा और उसके मल मूत्रको बचाकर अधिक अन्न उपजा, अपनी भलाई करनेकी एक राह हमने देखी। दूध हमारे पोषणके लिये है, शौकको चीजें बनानेके लिये नहीं। दुनियांमें भारत ही ऐसा देश है जहां गायें सबसे जादा हैं और जहांके आदमियोंको सबसे कम दूध आहारके लिये मिलता है। विभिन्न देशों और भारतमें प्रति मनुष्य दूधकी खपत क्या है यह नीचेके आंकड़े से मालूम होगा।

## आँकड़ा—१३८

### बीस देशोंमें दूध उत्पत्तिका अनुपात और प्रति मनुष्य उसकी उत्पत्ति और खपत

| देश | दूधकी कुल उत्पत्ति (मिलियन गैलन) | मनुष्य संख्या (हजारमें) | प्रति मनुष्य दैनिक उत्पत्ति आउन्स | प्रति मनुष्य दैनिक खपत, आउन्स |
|---|---|---|---|---|
| न्यूजीलैंड | ८७० | १,५५९ | २४४ | ५६ |
| डेनमार्क | १,२०० | ३,५५१ | १४८ | ४० |
| फिनलैंड | ६२० | ३,६६६ | ७४ | ६३ |
| स्वीडन | ९८० | ६,२३३ | ६९ | ६१ |
| आस्ट्रेलिया | १,०४९ | ६,६३० | ६९ | ४५ |
| कनाडा | १,५८० | १०,३७७ | ६६ | ३५ |
| स्वीजरलैंड | ६०७ | ४,०६६ | ६५ | ४९ |
| नीदरलैंड | ९७० | ७,९३५ | ५४ | ३५ |
| नार्वे | २९० | २,८१४ | ४५ | ४३ |
| सं० रा० अमेरिका | १०,३८० | १,२२,७७५ | ३७ | ३५ |
| चेकोस्लोवेकिया | १,२०० | १४,७३० | ३६ | ३६ |
| बेलजियम | ६५१ | ८,०९२ | ३५ | ३५ |
| अस्ट्रिया | ५४५ | ६,७६० | ३५ | ३० |

| देश | दूधकी कुल उत्पत्ति (मिलियन गैलन) | मनुष्य संख्या (हजारमें) | प्रति मनुष्य दैनिक उत्पत्ति आउन्स | प्रति मनुष्य दैनिक खपत आउन्स |
|---|---|---|---|---|
| जरमनी | ५,०९६ | ६६,०३० | ३४ | ३५ |
| फ्रांस | ३,१५० | ४१,८३५ | ३३ | ३० |
| पोलैंड | १,९९० | ३१,९४८ | २७ | २२ |
| ग्रेट ब्रिटेन | १,४७४ | ४५,२६६ | १४ | ३९ |
| इटली | १,०५० | ४१,१७७ | ११ | १० |
| रूमानिया | ३८२ | १९,०३३ | ९ | ९ |
| भारत | ६,४०० | ३,५२,८३८ | ८ | ७ |

—(राइटकी रिपोर्ट)

भारतमें प्रति मनुष्य दूधकी खपत केवल ७ आउन्सकी दिखायी गयी है। ऊपरका आँकड़ा प्रकाशित होनेके बाद भारतमें नयी कुताई हुई है। राइटकी रिपोर्ट छपनेके बाद बहुत दूध पैदा करनेवाले कई प्रांतोंमें लगातार ५ वर्षोंका चारेका अकाल रहा है। इससे वहाँकी पशु-संख्या घट गयी है। जिससे दूधकी उत्पत्तिमें भी कमी हो गयी है।

**१०८७. सन् १९३७ के बाद दूधकी उत्पत्तिमें कमी :** "भारत और बर्मामें दूधके बाजारकी रिपोर्ट" (१९४१-'४२) में इस पर यों लिखा है :

"इन दुहराये आँकड़ोंसे महत्वकी यह बात मालूम होती है कि, प्रति मनुष्य खपत (१९४१ में) और भी घटी है। सन् १९३१ की जन-गणना और १९३५ की पशु-गणनाके आधार पर ६·६ आउन्सकी तुलनामें यह प्रायः १२ सैकड़ा घटकर ५·८ आउन्स रह गयी है...इसका कारण यह है कि दुधार गायके लिये प्रसिद्ध इलाकोंमें जैसे सिन्ध, राजपुताना, काठियावाड़ और दक्खिन पच्छिम पंजाबमें १९३५-'४० के बीच अकाल पड़ा इससे वहाँकी दुधार पशु संख्या बहुत घट गयी..."

६,४०० मिलियन गैलन उत्पत्तिके मुकाबले बाजार रिपोर्टका अनुमान ७,४४६·९ लाख मन या ५,९५७ मिलियन गैलन था। इतने बड़े अनुमानकी दृष्टिसे अंतर अधिक नहीं है। प्रति मनुष्य असली कमीका कारण सन् १९४१ की जनगणनाके अनुसार मनुष्य वृद्धि है।

अकालका असर दूर होने पर अंक पहले जैसा हो जायगा। फिर भी ६'६ या ७ आउन्स प्रति मनुष्य दूध कष्टका विषय है। इस पर देशको धीरजसे विचार करना चाहिये।

१०८८. **दूधकी उत्पत्ति ६० सैकड़ा बढ़ सकती है :** दूधके अभाव से पोषणकी समस्या भीषण हो गयी है। रोगभी अपना दाँव वसूल रहे हैं। गरीबी और दुष्पोषण-जनित रोग बढ़ रहे हैं और डाक्टरोंकी संख्या बढ़ने पर भी मौत चढ़ ही रही है। अधिक जन्म-संख्या मृत्यु-संख्याको दबा सकती है। पर फिर भी हालत वही रहेगी, क्योंकि दूधकी कमीसे देशमें पोषणका अभाव फैल रहा है। दूध बाजारको रिपोर्ट कहती है कि, नस्ल सुधारे बिना भी अच्छी खिलायी और संभालसे दूधकी उत्पत्ति ६० सैकड़ा बढ़ सकती है। मैं समझता हूँ कि, यदि बाधायें दूर कर दी जायँ तो उचित और पर्याप्त खिलाईसे दूध दूना हो सकता है। इसमें लोगोंकी धार्मिक वृत्तियाँ बाधायें नहीं हैं पर आजकी राजनैतिक स्थिति ही बाधा है। इसके कारण लोग गायके लिये जो करना चाहते हैं, नहीं कर पाते। बाधा दूर करनेका उपाय दूसरे भागमें गोरक्षाके सिलसिलेमें बताया गया है। यदि गाय बच सके तो नर-नारी सभी बच जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं। भारतमें गोरक्षाका अर्थ मनुष्य रक्षा है।

६ या ७ आउन्ससे १२ या १४ आउन्स प्रति मनुष्य दूधकी उत्पत्ति बढ़ानेसे हम संतुष्ट नहीं हो सकते। हमको प्रति दिन प्रति मनुष्य दूधकी खपत ४० आउन्स करनी होगी। आजकी उत्पत्ति और खपतका यह ६ गुना है। यह कोई असंभव काम नहीं है।

दूसरे देशोंसे भारतके दूधकी खपतकी तुलना करते हुए दूध बाजारको रिपोर्टने बताया है कि, यूरोप और अमेरिकाकी गायके दूधमें ३'८ सैकड़ा मक्खन होता है। पर भारतकी गायको ५ सैकड़ा होता है, भैंसका और भी जादे ७ सैकड़ा। दोनों मिल कर औसत ६ सैकड़ा मक्खन देंगी। यदि दूधका दाम केवल मक्खनके अनुसार लगाया जाय और ६ सैकड़ाकी जगह भारतके दूधमें ३'८ सैकड़ा ही मक्खनका मान कर दिया जाय तो भारतमें दूधकी खपत ५'८ आउन्ससे बढ़कर ९'२ आउन्स प्रतिदिन प्रति मनुष्य हो जाती है। लेकिन इस रीतिसे हिसाब करनेसे न तो भारत अधिक दूध पीनेवाला प्रसिद्ध हो सकता है और न उसका स्वास्थ्य सुधर सकता है। दूधमें गणनाके लायक पोषक पदार्थ केवल मक्खन ही नहीं है। पोषणको दृष्टिसे

१०११. प्रान्तोंमें प्रति पशु दूधकी उत्पत्ति :

## आँकड़ा—१४०

दूध देनेवाली गाय और भैंस विभिन्न प्रान्त और रियासतोंमें कितना दूध देती हैं। भैंसके दूधके मुकाबले गाय का प्रतिशत। (दूध बाजारकी रिपोर्ट १९४२)

| | गाय | | | | भैंस | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ३ वर्षकी दूध या संवर्धनके लिये पली लाख | प्रति गाय दूधको लगभग उत्पत्ति रत्तल | लाख मनमें दूधकी वार्षिक उत्पत्ति | गायके कुल दूधका प्रतिशत | ३ वर्षको दूध या संवर्धनके लिये पली लाख | प्रति भैंस दूधकी लगभग उत्पत्ति रत्तल | लाख मनमें दूधकी वार्षिक उत्पत्ति | भैंसके कुल दूधका प्रतिशत |
| काश्मीर राज्य | ७·३ | २८० | २४·९ | ०·८६ | ३·६ | ५७० | २४·९ | ०·७८ |
| सोमाप्रान्त | २·१ | १२०० | ३०·६ | १·०६ | १·६ | १,६२० | ३१·९ | १·०० |
| उ० प० एजेन्सी और कबोलेका इलाका | १·६ | ७३० | १४·६ | ०·५० | १·३ | ९०० | १४·० | ०·४४ |
| ब्रिटिश बलूचिस्तान | ०·६ | १,००० | ७·७ | ०·२७ | ०·०४ | ९०० | ०·४ | ०·०१ |
| बलूची रियासतें | ०·७ | १,३०० | ११·० | ०·३८ | ०·०१ | १,८०० | ०·३ | ०·०१ |
| पंजाब | २२·३ | १,४४५ | ३९१·९ | १३·५३ | २८·९ | २,८२० | ८१४·९ | २५·४५ |
| म० भा० की रियासतें | ३८·२ | ७३० | ३३९·२ | ११·७१ | १९·१३ | ९०० | २०९·३ | ६·५३ |

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राजपूताना | १६·६ | ७३० | १४७·३ | ५·०८ | ६·३ | १,००० | ७६·६ | २·३९ |
| सिन्ध | ७·१ | १,३१५ | ११३·३ | ३·९० | ३·८ | २,३२० | १०५·८ | ३·३० |
| प० भा० की रियासतें | ४·३ | १,००० | ५२·३ | १·८१ | ३·९ | २,५०० | ११८·१ | ३·६९ |
| गुजरात एजेंसी | १·९ | ६०० | १३·९ | ०·४८ | १·१ | १,००० | १३·७ | ०·४३ |
| बड़ौदा राज्य | १·६ | ३४५ | ६·८ | ०·२३ | ३·६ | १,८१० | ७९·२ | २·४७ |
| बम्बई प्रान्त | १९·७ | १४० | ३३·६ | १·१६ | १३·० | ८४० | १३३·० | ४·१५ |
| मैसूर राज्य | १४·४ | २४० | ४२·१ | १·४५ | ५·४ | ५९० | ३८·७ | १·२१ |
| मदरास प्रान्त | ५०·० | ४५० | २७३·४ | ९·४४ | २८·७ | ८०० | २७९·० | ८·७१ |
| मध्यप्रान्त | ३४·६ | ६५ | २७·३ | ०·९४ | ८·९ | ५४५ | ५८·८ | १·८४ |
| हैदराबाद राज्य | २६·० | १३० | ४१·१ | १·४२ | १३·० | ८२५ | १३०·४ | ४·०७ |
| युक्तप्रान्त (१९३५) | ५७·३ | ६२५ | ४३५·३ | १५·०२ | ४०·६ | १,२४० | ६११·९ | १९·११ |
| बिहार | २८·८ | ६२० | २१६·१ | ७·४७ | ११·० | १,६५० | २२०·६ | ६·८९ |
| उड़ीसा | १४·८ | ३५० | ६३ | २·१७ | १·४ | ७५० | १२·८ | ०·४० |
| बंगाल | ७४·८ | ४२० | ३८१·६ | १३·१७ | २·० | ९०० | २३·४ | ०·७३ |
| आसाम | १७·२ | १६० | २९·२ | १·०० | १·६ | ३१५ | ६·३ | ०·२० |
| ... ... | — | — | — | — | — | — | — | — |
| ... ... | — | — | — | — | — | — | — | — |
| भारत का कुल — | ४८९·९ | ४८६·७ | २८९७·९ | (१००) | २१४·३६ | १,३२९·२ | २,२०२·८ | (१००) |

गायके दूधके अंकोंके छानबीनसे पता चलता है कि, गायके दूधकी उत्पत्तिमें कई प्रान्तोंका स्थान विशिष्ट है। प्रति वर्ष प्रति गायके दूधकी सबसे ज़ादे उत्पत्ति पंजाबमें है जो १,४४५ रत्तल है। उससे जराही कम सिन्धमें १,३१५ रत्तल है। इसके बाद बलूचिस्तानकी रियासतोंका नम्बर है। यहाँ १,३०० रत्तल है। इसके बाद सीमाप्रान्तमें १,२०० रत्तल है। पश्चिम भारतकी रियासतोंमें १,००० रत्तल है। ओंगोल नस्लवाले मदरासका स्थान महत्वका माना जा सकता था। पर बात ऐसी है कि, सारे प्रान्तमें ओंगोल इलाका बहुत छोटा है, और बंगालकी प्रति, गायकी दूध उत्पत्ति ४२० रत्तलसे, सब मिलाकर मदरासकी दूध उत्पति ४५० रत्तलमें बड़ा अन्तर नहीं है। बिहार और युक्तप्रान्तमें क्रमशः ६२० और ६२५ रत्तल होता है। इनकी स्थिति कुछ अच्छी है। उड़ीसा (३५०) और आसाम (१४०) बंगालसे कम हैं। बम्बई बेचारे आसामके बराबर है। आँकड़ा आँख खोलनेवाला है। इससे मालूम होता है कि, बंगाल, आसाम, उड़ीसा और मदरासके धान इलाकेकी गायें उनसे ऊँचे दर्जे बिहार और युक्तप्रान्तकी गायोंके बराबर जल्दी हो सकती हैं।

मदरास (४५० रत्तल), बम्बई (१४० रत्तल) और मध्यप्रान्त (६५ रत्तल) की गायोंका प्रति वर्ष प्रति गाय कम दूध देना दूसरी दृष्टिसे देखना होगा। गायोंकी गिनतीमें तीन वर्षसे ऊँची वह सभी गायें आ जाती हैं जो संवर्धनके लिये पाली गयी हैं। मदरास, मैसूर, बम्बई और मध्यप्रान्तके अच्छे संवर्धक इलाकोंमें बैल बनानेके लिये बछड़ों पर बहुत ध्यान दिया जाता है। वहाँ गायें जान बूझ कर इस डरसे नहीं दुही जातीं कि इससे बछड़े खूब नहीं बढ़ेंगे। यह कहा जा चुका है कि, कंगायम नस्लके संवर्धक अपने बछड़ोंको उनकी माँके दूधके अतिरिक्त, दूसरी गायोंका भी दूध पिलाते हैं।

मध्यप्रान्तके वर्धा और नागपुरके आसपास या यों कहें कि, कपासके इलाकेमें अच्छे बैलोंकी कीमत बहुत है। इसलिये वहाँ गायके दूधकी तरफ ध्यान दिया जाता है। गाँववाले दूध पीते ही नहीं। व्यापारिक केन्द्रों और हाट बाजारोंकी दूधकी माँग शहरी ग्वाले पूरी करते हैं। यह लोग इन स्थानोंमें भैंस पालते हैं।

ये आँकड़े विचारणीय हैं। जो लोग गोहित चाहते हैं वह इसके अनुसार प्रान्तोंमें कामकी सूरत निकालें। गाय और भैंसोंकी संख्यासे पता चलता है कि, गायके लिये क्या खतरा है।

**१०६२. देहातका दूध और शहर :** दूध शहर चला जाता है। इससे देहातमें घर खर्चके लिये और भी कम बचता है। यह लक्षण अच्छा नहीं है।

भारतका अधिकांश जन-समुदाय गाँवमें रहता है। भारतके स्वास्थ्यकी उन्नतिका पहला अर्थ है गाँवके स्वास्थ्यकी उन्नति। रुपयेके लोभसे गाँववाले इस जीवनदाता पदार्थको कई रूपोंमें, खासकर घी बना कर, शहर भेजते जा रहे हैं।

## आँकड़ा—१८१

### प्रति मनुष्य शहरमें दूधकी खपत आउन्समें (१९३५)

| | दूध | दूधके बने पदार्थ | कुल खपत | प्रान्तीय खपत | प्रान्त और शहरके खपतका अनुपात |
|---|---|---|---|---|---|
| पेशावर | ४·५ | ११·९ | १६·४ | ६·८ | २·४ |
| लाहोर | ४·० | १२·४ | १६·४ | १५·२ | १·१ |
| दिल्ली | ४·९ | १७·८ | २२·७ | ५·२ | ४·४ |
| करांची | ६·१ | ११·९ | १८·० | | |
| हैदराबाद | ५·८ | १४·१ | १९·९ | १८·० | १·१ |
| सक्खर | ४·० | १०·१ | १४·१ | | |
| शिकारपुर | ८·८ | १६·० | २४·८ | | |
| लखनऊ | ३·४ | १४·० | १७·४ | | |
| कानपुर | ३·३ | १२·५ | १५·८ | ७·० | २·५ |
| आगरा | ३·० | १५·८ | १८·८ | | |
| पटना | ३·८ | ५·० | ८·८ | ४·२ | २·१ |
| कटक | ०·६ | २·९ | ३·५ | ३·४ | १·० |
| कलकत्ता | ३·८ | ६·० | ९·८ | २·८ | ३·२ |
| ढाका | ३·० | ५·० | ८·० | | |
| शिलौंग | २·१ | ५·८ | ७·९ | १·३ | ६·१ |
| बम्बई | ४·३ | ११·३ | १५·६ | ५·५ | २·७ |
| पूना | ४·२ | ९·८ | १४·० | | |
| नागपुर | २.२ | ३·९ | ६·१ | १·८ | ३·४ |
| हैदराबाद (दक्खिन) | २·५ | ४·७ | ७·२ | ३·९ | १·९ |
| बंगलूर | २·५ | ३·६ | ६·१ | ४·४ | १·४ |
| मदरास | २·३ | ४·६ | ६·९ | | |
| मदुरा | २·९ | ५·३ | ८·२ | ३·७ | २·० |
| त्रिचनापल्ली | २·६ | ४·५ | ७·१ | | |
| २३ शहरोंका औसत | ३·७ | ८·९ | १२·६ | ५·८ | २·२ |

—(दूध बाजारकी रिपोर्ट, १९४१-'४२, पृ० ५८)

१०६३. दूधकी खपतका ब्यौरा : ऊपरके अंकसे साफ है कि शहरोंमें अनुपातसे बहुत जादे दूध खपता है। अंतिम स्तम्भसे पता चलता है कि २३ शहरोंके औसतमें शहरमें देहातकी अपेक्षा २·२ गुना जादे दूध प्रति मनुष्य खपता है। दूध बाजारकी रिपोर्टसे मामला और भी साफ होता है :

"देशके भिन्न भिन्न भागके ५० शहरोंमें दूधकी खपतके अंकसे पता चलता है कि, शहरके लोगोंमें प्रति वर्ष प्रति मनुष्य १ मन दूधकी खपत है। इसी आधार पर शहरोंके ३७४ लाख आदमी सालमें इतने लाख मन दूध खा डालते हैं। इसके अलावा शहरोंमें ४२६ लाख मन दूधका दही, मलाई बरफ, रबड़ी, मलाई आदि बनते हैं और प्रायः ५० लाख मन दूध क्रीम आदि बननेमें लगता है। इसलिये सब मिला कर ८५० लाख मन दूध या भारतके कुल दूधका लगभग १४ सैकड़ा दूधका देशमें व्यवसाय होता है।"

ऊपरका दूध व्यवसाय शहरके ३७४ लाख लोगोंके लिये है। इसमें अमीर सबसे जादे लेते हैं और गरीब सारे भारतके अंकसे भी कम पाते हैं।

१०६४. दूधकी चीजें बनाना : १४ सैकड़ा दूधके अतिरिक्त शहरमें घी सबसे जादे खपता है। दूधकी बनी कुल चीज और घी इस भाँति हैं :—

## आँकड़ा—१४२

### भारतमें दूधके उपयोग

| | वार्षिक परिमाण (लाख मन) | कुल उत्पत्तिका प्रतिशत | बनी चीजोंके कुलका प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| दूध ही खपा | १,७६२·१८ | २८·० | ... |
| इतनेका घी बना | ३,५८९·१४ | ५७·० | ७९·२ |
| ,, खोआ बना | ३११·६७ | ५·० | ६·९ |
| ,, दही बना | ३२७·९५ | ५·२ | ७·२ |
| ,, मक्खन बना | १०७·५६ | १·७ | २·४ |
| ,, मलाई बरफ बना | २१·३५ | ०·३ | ०·५ |
| ,, क्रीम बना | २३·६२ | ०·४ | ०·५ |
| अन्य पदार्थ | १४९·४४ | २·४ | ३·३ |
| कुल— | ६,२९२·९१ | (१००) | (१००) |

**१०६५. शहरमें ४० सैकड़ासे ज़्यादे जाता है :** यह साफ है कि कुल दूधके ५७ सैकड़ेका घी बनता है। इसका अधिकांश शहर चला जाता है। इसलिये शहर १४ सैकड़ाके अतिरिक्त ५७ सैकड़ाके घीका भी अधिकांश पचा लेता है। यदि घीको ५७ सैकड़ा दूधके पोषक मूल्यका आधा मान लें तो मट्ठेके रूपमें गाँवमें सिर्फ आधा रह जाता है। यही उसके उत्पादक और उनके पड़ोसियोंका पोषण है। दूसरा आधा जिसको २८ सैकड़ा मान लें तो उसका अधिकांश घीके रूपमें गाँवके बाहर चला जाता है जिसका अनुमान १६ सैकड़ाके लगभग हो सकता है। यह १६ + १४ कुल दूधका ३० सैकड़ा होता है। खोआ आदि चीजें जो शहर चली जाती हैं इन्हें भी जोड़ कर ४० सैकड़ा माना जा सकता है। इतना सब शहर चला जाता है। कुल दूधके उत्पत्तिका २८ सैकड़ा, दूधके ही रूपमें व्यवहारमें आता है।

रिपोर्ट कहती है कि, देशके कुल दूधकी खपतका आधा या १४ सैकड़ा शहरवाले खा लेते हैं। यह ४० सैकड़ा दूधका चला जाना बहुत बड़ी हानि है। गाँववालोंके स्वास्थ्यकी यह हानि रोकनी चाहिये। पर आजकी प्रवृत्ति शहरमें और भी अधिक दूध खपानेकी है। सरकारकी बनायी दूध बिक्रीकी समितियोंका एक ही काम है कि शहरमें दूध और उससे बनी चीजें बेचना। पूरी रिपोर्ट पढ़ने पर पढ़नेवालेके मन पर यही छाप पड़ती है। शहरोंमें दूध ले जानेके अच्छे साधनोंकी अनेक योजनायें बनायी गयी हैं।

यदि शहरोंको अधिक दूध चाहिये तो आसपास ही और अधिक दूध पैदा करना चाहिये। दूर दूरसे शहरोंमें दूध लानेका लालच नहीं किया जाय और गाँवका स्वास्थ्य नहीं बिगाड़ा जाय। देखनेवाला देख सकता है कि शहरके पड़ोसमें रहनेवाला आदमी, भले ही उसकी आमदनी ज़्यादे हो पर शहरसे दूरवाले आदमीकी अपेक्षा उसका स्वास्थ्य अधिक खराब और अधिक रोगी है। इसका कारण यह है कि, थोक खरीददार उनके पोषक पदार्थ—दूध, मछली, तरकारी खरीद कर शहर भेज देते हैं। उन्हें उनके स्वास्थ्यकी क्या चिन्ता है? शहरोंको दूध पिलानेके लिये दूध बाजारकी रिपोर्ट दूर देहातके दूधका भी शोषण करनेके उपायसे भरी है।

**१०६६. गाँवके लिये दूध :** गाँवमें उत्पन्न दूध जैसी चीज गाँवमें ही रहनी चाहिये। शहरवालोंके लिये शहरके आसपास ही अधिक दूध पैदा करनेका इन्तजाम होना चाहिये। इसके लिये चारा वहीं खास तौरपर उपजाना चाहिये।

शहरोंमें बहुत ज्यादा ढोर रखनेसे देहातमें चारेकी कमी पड़ जायगी। वहाँ ऐसे भी चारा कम है। यदि शहरकी भूखसे देहातकी रक्षा करनी है तो शहरोंके लिये दूधकी माँग पुरानेके लिये उसके पास पड़ोसमें ही गाय रखने और चारा उपजानेका प्रबन्ध करना होगा।

१०६७. **दूध उत्पत्तिका खर्च :** सन् १९३२ में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषदने सरकारी गव्यक्षेत्रोंमें दूध उत्पादनके खर्चका हिसाब लगाया था। उसके बादसे नीचे लिखा आँकड़ा अब तक प्रमाणित माना जाता है :—

## आँकड़ा—१४३

### दूध और घीका उत्पत्ति खर्च

| | | प्रति सेर | |
|---|---|---|---|
| | | सरकारी क्षेत्रमें उत्पत्ति व्यय | देहाती लोगोंका विक्रय दर (पंजाब) |
| | | रु०-आ०-पा० | रु०-आ०-पा० |
| गायका दूध | .... | ०-१-६ | ०-१-३ |
| भैंसका दूध | .... | ०-१-१० | ०-१-५ |
| भैंसका घी | ... | १-१०-६ | १-०-६ |

—(दूध बाजारकी रिपोर्ट, १९४१-'४२, पृ० ११४)

पैरा १२२ और ऊपरके आँकड़ेसे पता चलेगा कि सरकारी क्षेत्रोंमें सिन्धी और साधारण साहीवाल गायके दूधका उत्पादन व्यय क्रमशः ९·४२ पाई और ९·१८ पाई प्रति रत्तल है, यह प्रति सेर १½ आनाके लगभग है। यह सरकारी क्षेत्रोंका खर्च है जहाँ बहुत अच्छी तरह निपुणोंकी देखरेखमें अच्छे घर, गोचर और सभी सुबीते हैं। यहाँ अफसरोंके बड़े खर्चके हिसाबके बिना खर्च १½ आना प्रति सेर है।

१०६८. **क्षेत्र और देहातके पशुओंके दूधकी लागत :** सरकारी क्षेत्रोंके पशुओंको टीका आदि लगाकर रोगसे बचाया जाता है। यहाँ सुस्थ और कामकी गायें अच्छी हालतमें रक्खी जाती हैं। कम दूध देनेवाली गायें हटा दी जाती हैं।

यहाँ भी गाय या ठट्ठ जितना अच्छा हो खर्च उतना ही कम होता है। यह पैरा १२२ के साधारण साहीवाल और फिरोजपुर साहीवालके तुलनात्मक आँकड़ेकी क्रमशः ९·१८ और ७·१६ पाईसे मालूम होता है। पर देहाती साहीवालकी

तुलनामें सरकारी क्षेत्रका मामूली साहीवाल असाधारण पशु है। सरकारी साधारण साहीवालको ३,८०० रत्तल दूध प्रति ब्यानमें हुआ है। सात इलाकोंकी जाँचकी रिपोर्टसे पता चलता है कि, मन्टगुमरी इलाकेमें (साहीवालका स्थान) गायको एक ब्यानमें १,३४३ रत्तल दूध होता है। सरकारी क्षेत्रोंमें उसी नस्लकी ३,८०० रत्तल दूध देनेवाली गायसे प्रति ब्यानमें १,३४३ रत्तल दूध देनेवाली गायका खर्च जरूरही बहुत जादा होगा।

१०६६. **देहाती घाटेसे बेचते हैं :** एकही नस्लकी देहाती गायोंने सरकारी क्षेत्रोंकी अपेक्षा एक तिहाईसे कुछ अधिक दूध दिया है। ऐसी गायोंके दूधका खर्च देहातमें सरकारी क्षेत्रोंसे कमसे कम दूना होना चाहिये, यानी प्रतिसेर १½ आनेके बदले ३ आने होना चाहिये। यह विचार भारतके सबसे अधिक दूध देनेवाली नस्लोंमेंसे एक पर लागू है। मदरास, उड़ीसा, बंगाल और बिहारकी औसत घटिया गाय जो प्रति ब्यानमें ४०० से ५०० रत्तल दूध देती है, इनके खर्चका अनुमान कीजिये। यदि ५० और १०० मील दूरके देहातका दूध भी शहर भेजनेकी कोशिश की जाती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि, देहातियोंसे उनके पोषणका सबसे दामी पदार्थ कम दाम पर लिया जाता है। दाम उत्पादनके खर्चसे भी बहुत कम है। केवल नकदी पैसेके लोभसे यह किया जाता है। कष्टमें पड़ने पर कोई आदमी चौथाई दाम पर भी अपनी सम्पत्ति दे सकता है। पर यह दाम उचित नहीं कहा जा सकता, और कोई सरकार इस आधार पर बड़ा सौदा करनेकी योजना नहीं बना सकती।

देहाती घी १ रुपया सेर बिकता है। इसके मुकाबले सरकारी फार्ममें इसकी तैयारीका खर्च १ रुपया १० आने है। यहाँ अंतर और जादे है। दामकी स्थितिके बारेमें रिपोर्ट कहती है :

"सरकारी क्षेत्रोंमें ढोरकी आरम्भिक लागत जादे लगती है, और उनका दाम कम जाता है। चारेका दाम अधिक होता है, जादा खिलाया जाता है और मजूरी आदि जादे होती है। इससे गाँववालोंकी अपेक्षा इनके उत्पादनका खर्च अधिक होनेकी संभावना है। लेकिन क्षेत्रके ढोरके अधिक दूध देनेसे ये कारण मन्द पड़ जाते हैं और गाँवके ढोरसे कम खर्चमें ये दूध उत्पन्न करते हैं।"

यदि यह तर्क मान लिया जाय तो पंजाबके उत्पादकोंको पूरा दाम नहीं मिलता, यह स्पष्ट है। उन्हें लागत दामसे भी कममें दूध बेचना पड़ता है।

इसलिये ऐसा मालूम होता है कि, दूर दूरसे सस्ता दूध जमा करनेके बदले चतुराई इसमें है कि, शहरोंके वास्ते म्युनिस्पल्टियाँ दूध उत्पादन और चारा उपजानेका प्रबन्ध. करें।

११००. **दूधका दाम बढ़ाना चाहिये :** दूध सस्ता कैसे मिले यह समस्या नहीं है। समस्या है कि अधभूखी लाखों गायोंका पेट कैसे भरा जाय। इसका समाधान होनेसे दूधका दाम बदली हालतके अनुसार हो जायगा। तब लोगोंकी सर्वांगीण उन्नति होगी और स्वास्थ्य ठीक रहेगा। यदि लोगोंको गरीबी कुछ दूर हो तो दूधका दाम बढ़कर जैसा होना चाहिये हो जायगा। क्योंकि, तब लोग इस स्वास्थ्यप्रद रसको घाटेसे बेचना नहीं चाहेंगे जिसके कारण वह गायोंको खिला भी नहीं सकते। पर दूधका दाम बढ़नेसे गायवाला गायकी हालत सुधारेगा।

११०१. **दूधके स्नेह और ठोस पदार्थके घटक :** गायकी नस्ल, ब्यानेके बाद जितना समय बीता, और उसकी उमरके हिसाबसे दूधकी बनावटमें अन्तर रहता है। बहुत जादे नमूनोंका औसत निकालनेसे भिन्नताके अन्य कारणोंमें सुधार हो जाता है और नस्लके जो विभेद होते हैं उनका पता चल जाता है। नीचेके अंकमें विभिन्न नस्लोंके दूधकी बनावट दी गयी है :—

## आँकड़ा—१४४

### विभिन्न नस्लोंकी गायके दूधकी बनावट

(दूध बाजारकी रिपोर्टसे उद्धृत)

| नस्ल | जाँचके नमूनोंकी संख्या | विशेष गुरुत्व | स्नेह प्रतिशत | स्नेह रहित ठोस पदार्थोंका प्रतिशत | जाँचका वर्ष और अधिकारी |
|---|---|---|---|---|---|
| अमृतमहाल | ५८ | १·०२७ | ४·५८ | ... | एस० राव, बंगलूर १९१३ |
| औंगोल | ४८ | ... | ५·०५ | ... | डेयरी ईस्ट० बंगलूर १९२७ |
| साहीवाल | १३४ | १·०३२ | ४·६५ | ९·२० | फौजी डेयरी, पेशावर १९१६ |
| सिंधी | २,५०० | .... | ४·६५ | ८·६९ | डेयरी ईस्ट० बंगलूर १९४० |
| गीर | ७३० | ... | ४·५४ | ९·१५ | ,, |
| थारपर्कर | ५० | १·०३१ | ४·६० | ९·६३ | ई० कैटल ब्रीडिंग फार्म करनाल, १९३४ |
| हरियाना | ४० | १·०३१ | ४·६० | ९·६८ | |

ऊपरके आँकड़ेमें विभिन्न नस्लोंके ३,५०० से अधिक नमूनोंका विश्लेषण है। किसी नमूनेमें ४'५ सैकड़ासे कम स्नेह नहीं है, यह देख सकते हैं। हम यह मान सकते हैं कि, भारतीय गायोंके दूधमें कमसे कम ४'५ सैकड़ा स्नेह है। किसी विशेष स्थितिमें किसी गायको कम स्नेह हा सकता है जैसे तुरत ब्यायी गायके दूधमें या शुरूके दुहे दूधमें। पर सभी गायोंका दूध मिला देनेसे यह कमी पूरी हो जाती है और ४'५ सैकड़ा स्नेह हो जाता है। इसलिये भारतीय गायके दूधमें न्यूनतम स्नेह ४'५ सैकड़ा मानना होगा।

११०२. **दिन और रातका दूध :** कहा जा चुका है कि, साँझके दूधमें सबेरेसे अधिक स्नेह होता है। पर इसे पूर्ण मान नहीं मानना चाहिये। विभिन्न समयोंमें दुहे दूधके स्नेहका प्रतिशत नीचेके आँकड़ेमें मिलेगा। गायें यूरोपी नस्लोंकी हैं और प्रयोगस्थल भी भारत नहीं है। इसलिये इसका स्नेह भारतीय गायों पर लागू नहीं है। इन्हें यूरोपी गायोंसे १ से १½ सैकड़ा अधिक स्नेह होता है। आँकड़ेमें केवल अलग अलग समयमें दुहे दूधके स्नेहका अंतर दिखाया गया है।

## आँकड़ा—१४५

### दिनमें तीन बारकी दुहायी—बड़े अंतरकालका असर

| | अंतरकालके बाद | स्नेह प्रतिशत | उत्पत्ति रत्तल | प्रति दुहायीमें स्नेहकी तौल रत्तल |
|---|---|---|---|---|
| रात | १२'५ घंटा | २'५९ | ११९'५ | ३'१० |
| सबेरे | ५'५ ,, | ४'७९ | ८३'५ | ३'९४ |
| तीसरे पहर | ५ ,, | ४'८८ | ६३'० | ३'०८ |

—(डेभिस—"केमिस्ट्री ऑफ मिल्क" १९३९, पृ० २६)

आँकड़ा बताता है कि, रातका दूध परिमाणमें कितना ज्यादे है पर स्नेह उसमें कम है। यह भी देख सकते हैं कि, तीन बारकी दुहायो में यद्यपि दूधकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न है तो भी सबेरे और साँझके ५ घंटेमें कुल जितना स्नेह हुआ वह १२ घंटेके बाद रातको जमा किये दूधके लगभग बराबर है। श्री डेभिसकी सम्मति है :

"...रात या रातमें ही क्रियाशील अनेक कारण जादा दूध पैदा करते हैं। इसमें स्नेह कम होता है। नौ, बारह और पंद्रह घंटेके अंतरमें रातको दिनके इतने ही अंतरकी अपेक्षा अधिक वजनका दूध और स्नेह उत्पन्न होता है। स्नेहकी अपेक्षा दूधकी वृद्धि जादे होती है। यदि आधी रात और दोपहर दिनमें दूध दुहा जाय तो दूसरे घंटेकी अपेक्षा आधी रातसे दोपहर दिन तकके १२ घंटेमें प्रति घंटा और अधिक स्नेह निकलेगा। इस बार स्नेहकी वृद्धि अधिक होगी।"—(पृ० २७)

यह कहा जा चुका है कि, जैसे जैसे दूध दुहा जायगा उसमें स्नेह बढ़ता जायगा। पहलेकी धारोंमें कम स्नेह होगा और अंतिममें सबसे जादा। इसका अन्तर नीचेके आँकड़ेमें दिखाया गया है :—

## आँकड़ा—१४६

### विभिन्न दुहाईमें स्नेहका अंतर

(स्नेहका प्रतिशत) श्री वान स्टाइकका परिणाम।

| अंश | गाय क | गाय ख | गाय ग |
|---|---|---|---|
| पहली धार | ०·९० | १·६० | १·६० |
| दूसरी ,, | २·६० | ३·२० | ३·२५ |
| तीसरी ,, | ५·३५ | ४·१० | ५·०० |
| अंतिम ,, | ९·८० | ८·१० | ८·३० |

"यदि फुर्ती और सफाईके साथ दुहा जाय तो सबसे जादे स्नेह मिलेगा ..." —(डेभिस—"केमिस्ट्री ऑफ मिल्क" १९३९, पृ० २७)

**११०३. गायकी उमरके साथ स्नेहका परिमाण :** डेभिसने श्री स्पायरके अंक उद्धृत किये हैं। इन्होंने ६ महीनों तक ९०३ आयरशायर गायोंका अध्ययन किया है। इन गायोंको लगभग एक समान एक समय तक दूध हुआ। आँकड़ेसे पता चलता है कि दो या तीन वर्ष उमरकी गायोंका अधिक स्नेह होता है। आरम्भ ३·८३ सैकड़ासे होता है। इसके बाद जैसे जैसे उमर बढ़ती है, धीरे धीरे, पर बराबर स्नेह घटता है। १३ वर्षकी उमरमें गायमें स्नेह ३·४२ सैकड़ा रह जाता है। यह याद रखना चाहिये कि, ये अंक यूरोपी गायके हैं। भारतीय गायके स्नेहमें भी इस तरहका वर्गीकरण हो सकता है।

११०४. **दूधमें स्नेहाम्ल :** दूधमें नीचे लिखे स्नेहाम्ल बड़े परिमाणमें मिलते हैं : ब्यूटायरिक, केपोरिक, केप्रीलिक, केप्रिक, लौरिक, मिरिसटिक, पामिटिक, स्टियरिक और ओलिक।

इसके सिवा कुछ असंयुक्त (अनसेचूरेटिड) अम्लका भी अंश है। स्नेह, ग्लिसरीन और स्नेहाम्लोंके संयोगसे बनता है। विज्ञानमें यह स्नेहाम्लोंका ग्लिसरीन है। स्नेहके विश्लिष्ट होने पर इसके दोनों घटक स्नेहाम्ल और ग्लिसरीन बन जाते हैं। क्षारके उपचार करने पर यह होता है जैसे साबुनसाजीमें। क्षार ग्लिसरीन भाग निकाल देता है और स्नेहाम्लोंसे मिल कर स्नेहाम्लोंका क्षार लवण बन जाता है। साबुन असलमें यही है। खनिजाम्लोंसे साबुन भी विश्लिष्ट हो जाता है। ऐसे विश्लेषणसे शुद्ध स्नेहाम्ल अलग हो जाता है। इसलिये स्नेहोंसे अम्ल बनानेके लिये पहला काम स्नेहसे साबुन बनाना है। फिर अम्लसे साबुनको तोड़ लेना है।

दूधके स्नेहके स्नेहाम्लोंको अच्छी तरह समझ चुके और इससे दूधके स्नेहको समझा। दूधके स्नेहके कुछ स्नेहाम्ल भाफसे उड़नेवाले हैं। अर्थात् पानीमें छाननेसे (डिस्टिल) ये अम्ल भाफसे उड़ते हैं, तब इन्हें जमा किया जा सकता है। मक्खनकी इस क्रियाके आधार पर मक्खनकी एक तरहकी जाँच जिसे रेकर्ट माइसिल जाँच कहते हैं, की जाती है। गायके शुद्ध मक्खनको एक तरहके आर०, एम० (रेकर्ट माइसिल) गुणका होना चाहिये। उसी तरह भैंसके शुद्ध मक्खनको भी एक दूसरी तरहका होना चाहिये। इस तरह कुछ हद तक गाय और भैंसके मक्खनका भेद किया जा सकता है। दूधमें कुछ स्नेहमें घुलने लायक भिटामिन होते हैं। जब मक्खन निकाला जाता है या उससे घी बनाया जाता है तब ये भिटामिन मक्खन और घीमें चले जाते हैं। २५ वें अध्यायमें घीके प्रकरणमें इस बारेमें और कहा जायगा।

११०५. **दूधके स्नेह और स्नेह भिन्न पदार्थ :** दूधके दूसरे ठोस पदार्थ केसीन, दूधकी चीनी और खनिज लवण हैं। भिटामिन अलग ही दूधका एक घटक है। सभी ठोस पदार्थ स्नेह-भिन्न-ठोस माने जाते हैं। इनका संक्षिप्त रूप स्ने० भि० ठो० (S. N. F.—सोलिड नॉट फेट) है। दूधके अनुसार स्ने० भि० ठो० भी भिन्न भिन्न होते हैं, पर स्नेहकी तरह बहुत ज्यादे नहीं।

११०६. **दूधके विशेष गुरुत्व पर स्नेहका प्रभाव :** दूधका गुरुत्व (स्पेसिफिक ग्रेविटी) उसके स्नेह और स्ने० भि० ठो० पदार्थोंके कारण होता है। किसी घनमानके पानीकी तौलको इकाई मानकर उसी घनमानके दूसरे द्रवकी तौल विशेष गुरुत्व है। पानीका विशेष गुरुत्व या इकाई १ है। सुबीतेके लिये इस इकाईको १००० मानते हैं। दूधका विशेष गुरुत्व १०२८ है। दो कारणोंसे विशेष गुरुत्व होता है। एक स्नेह और दूसरा स्ने० भि० ठो०। ये दोनों विभिन्न दिशामें काम करके विशेष गुरुत्व करते हैं। स्नेह विशेष गुरुत्व घटाता है। स्नेह पानीसे हल्का है। इस लिये दूधमें जितना ही स्नेह होगा गुरुत्व उतना ही कम होगा। पर ठोस, चीनी, केसीन और एलबूमीनायड और खनिज लवण विशेष गुरुत्व बढ़ाते हैं। दूधके पदार्थोंके परस्पर विरोधी गुणोंका मिलावटी दूधवाले फायदा उठाते हैं। मिलावट करके भी वह दूधका विशेष गुरुत्व कायम रखते हैं। उपाय बहुत सरल है। कुछ स्नेह निकाल कर दूधका विशेष गुरुत्व बढ़ा दिया जाता है। यदि शुरूमें दूधका विशेष गुरुत्व १०२८ था तो कुछ स्नेह निकालनेसे वह बढ़ जायगा। मान लीजिये १०३० हो गया। अब उसका विशेष गुरुत्व १०२८ फिरसे बनानेके लिये उसमें पानी मिलाने ही की जरूरत है।

इस मिलावटी दूधमें और पानी मिला कर उसका गुरुत्व १०२० किया जा सकता है। यदि विश्लेषण करनेसे दूधमें कम स्नेह, मान लीजिये केवल दो सैकड़ा मालूम पड़े और विशेष गुरुत्व भी कम मान लें १०२० जान पड़े, तो इसका अर्थ हुआ कि, दूधमें से न केवल आधा स्नेह गायब किया गया है बल्कि उसमें इतना जादे पानी मिलाया गया है जिससे उसका गुरुत्व १०२० रह गया। स्नेह निकालनेसे तो उसका गुरुत्व बढ़ना चाहिये था। ऐसे दूधमें शायद ६० सैकड़ा पानी मिलाया गया है। स्नेह निकाले बिना भी यदि पानी मिलाया जायगा तो वही बात होगी, स्नेह और गुरुत्व दोनों कम हो जायँगे।

विशेष गुरुत्व लैक्टोमीटर नामक यंत्रसे जाना जा सकता है। लैक्टोमीटर निर्दिष्ट ताप पर ही विशेष गुरुत्व बता सकता है। यंत्र १५ डिग्री सेंटीग्रेड तापके माफिक बनाया गया है। जब तक दूधमें ताप नहीं होगा इसकी जाँच सही नहीं होगी। पर एक ही तापके पानी मिले और शुद्ध दूधकी पहचान इससे कुछ हो जायगी। लेकिन ऊपर कहा जा चुका है कि कुछ उस्तादी करनेसे लैक्टोमीटरको

जाँच व्यर्थ की जा सकती है। जैसे कि पानी मिले दूधमें चीनी मिलाकर उसका कम गुरुत्व अधिक किया जा सकता है।

११०७. दूधके स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थ : भारतीय गायके दूधमें स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थ ८·९ सैकड़ा है। ८·५ न्यूनतम माना जा सकता है। स्नेह-भिन्न-ठोसमें केसीन प्रधान है। यह प्रोटीन है। इसके साथ दो नाइट्रोजन पदार्थ लैक्टएलबुमिन और लैक्टग्लोबुलिन—मिले हुए हैं। दूधमें केसीनका विभिन्न परिमाण २·२ से ३·५ सैकड़ा तक रहता है। इसका औसत २·८६ है। यह फॉस्फो-प्रोटीन है। इसका अर्थ यह है कि फॉसफोरिक तेजाब इसकी बनावटमें मिला हुआ है। दूधके दूसरे दोनों प्रोटीन लैक्टएलबुमीन और लैक्टग्लोबुलिन मिल कर ०·५६ सैकड़ा है। लैक्टग्लोबुलिन से लैक्टएलबुमिन की मात्रा दूनी है।

केसीनके बाद दूधको चीनी या लैक्टोजका स्थान है। दूधमें ४·८ सैकड़ा लैक्टोज है। खनिजोंको राखके रूपमें कहा जाता है। दूधका जलानेके बाद यह चीज रहती है। गायके दूधमें औसत ·७२ सैकड़ा राख होती है।

ऊपरके अनुसार दूधके कुल घटक इस तरह हैं :—

## आँकड़ा—१४७

### भारतीय गायका दूध : रचनामें औसत सैकड़ा

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| स्नेह | | ... | ... | ४·८ सैकड़ा |
| स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थ | | ... | ... | ८·९ ,, |
| केसीन | | २·८६ | ३·४२ | |
| लैक्टएलबुमिन | ०·३८ | ०·५६ | | |
| लैक्टग्लोबुलिन | ०·१८ | | | |
| लैक्टोज | | .... | ३·८ | |
| राख | | ... | ०·७२ | |
| | | | ८·९४ | |
| कुल ठोस | | ... | ... | १३·७ सैकड़ा |

११०८. केसीन : केसीन शुद्ध उजला राखरहित गन्धहीन ठोस पदार्थ है। बिलकुल सूखा रहने पर वह बहुत सीलता है। पर यदि इसमें ८ सैकड़ा सील हो

तो जैसेका तैसा रहता है। ८ सैकड़ासे अधिक सीलन होनेसे यह खराब हो जाता है।

**केसोनकी घुलनेकी शक्ति :** केसीन अम्ल और क्षारमें घुलता है। सीली हालतमें यह बहुत खनिज-अम्ल, जैसे गन्धक और हाइड्रोक्लोरिक तेजाबके हल्के घोलमें पूरी तरह घुल जाता है। अम्ल, जैसे साइट्रिक या लैक्टिक में भी यह घुल जाता है। सोडियम कारबोनेट या बाईकारबोनेट और बोरेक्स (सुहागा) जैसे क्षारमें भी यह घुल जाता है।

दूधमें अम्ल और क्षार दोनो लक्षण हैं। केसीन प्रस्तुत करनेके लिये कमजोर अम्ल मिलाते हैं। केसीनके घोल या दूधमें रेनिन (वनस्पति जातीय एक पदार्थ जो दूधको जमा देता है) के जरिये इसका प्रक्षेप होता है। रेनिनकी मददसे बने केसीनका पैराकेसीन कहते हैं। इसमें कई एमिनो तेजाब होते हैं। जिनके नाम हैं— ग्लाइसान, एलेनीन, भेलान, लिउसीन, आइसोलिउसीन, फीनाइलएलेनीन, टाइरोसीन, सेरीन, साइस्टीन, प्रालीन, ऑक्सीप्रोलोन, एसपारटिक एसिड, ग्लूटेमिक एसिड, ट्रिप्टोफेन, आर्जिनीन, लाइसीन और हिस्टीडीन। यह दूधमें कलशियम फॉस्फेट तेजाबके साथ मिला जुला कालायडल कमप्लेक्सके रूपमें मिश्रण है।

दूधका फॉस्फो-प्रोटीन केसीन, मुर्गीके अन्डेकी इसी वस्तुके जैसा है जिसे भिटेलीन कहते हैं। अन्डेके भीतरके चूजेको विकासके लिये इसी भिटेलीनसे सब सामग्री मिलती है। दूधके केसीनकी बनावट बहुत कुछ इसी तरह की है। दूधको वृद्धि करनेवाली अद्भुत शक्ति इसीसे मालूम हो सकती है।

पेटमें एनजाइम दूधको जमा देते हैं। नवजातके लिये यह जमना फायदेकी बात है। जमा पदार्थ ठस हो जाता है, इससे मांस पेशिओं अपना काम करती हैं। स्नेहकी बुन्दकियाँ प्रोटीनके थक्केके बीच पड़ जाती हैं और थोड़ी थोड़ी मात्रामें पचती हैं। दूधके दूसरे उपकरण लैक्टएलबुमिन और लक्टग्लोबुलिन हैं। यह भी पूरी प्रोटीन हैं। लेकिन केसीन से श्रेष्ठ हैं। क्योंकि, गन्धकयुक्त तेजाब से एमीनो तेजाब—सिस्टीन—केसीनमें कम है। दूसरे दो प्रोटीन इसकी कमी पूरी करते हैं। यह कहा जा चुका है कि, लक्टग्लोबुलिन प्रोटीन है और ग्लाबुलिन रसका भिन्न रूप है। यह दूधमें लैक्टएलबुमिनके आधे परिमाणके बराबर दूधमें होता है।

**११०६. दूधकी चीनी या लैक्टोज :** लैक्टाज डाइसेकराइड है। यह टूट कर दो चीनियाँ ग्लूकोज और गैलक्टोज बन जाती हैं। जब दूधका नाइट्रोजन-

वाला अंश फटता है तब सारा स्नेह प्रोटीनमें समा जाता है और प्रेक्षपित हो जाता है। जो पानी बचता है उसमें कुछ खनिज लवण और बाकी चीनी—लैक्टोज होती है। शुरू हालतमें यह स्फटिक जैसा पदार्थ है। छेनाका (फटे दूधका) पानी भाफ बना कर उड़ानेसे लैक्टोजके स्फटिक बनते हैं। दूध गाढ़ा करनेसे सभी लैक्टोज़ उसीमें रह जाता है। इसलिये उसमें किरकिरापन आ सकता है। लैक्टोज बहुत जल्दी फफदनेवाली वस्तु है। इसलिये पनीर या छेनाका पानी कुछ देरके बाद फफदने लगता है। छेनाका पानी वेकुअम पैन या मल्टीपिल ईफेक्ट एवापरेटर में भाफ बना कर उड़ाया जाता है। पानीको इतना गाढ़ा करते हैं कि, उसमें ५५ से ६० सैकड़ा कुल ठोस पदार्थ हो जायँ। इनमें प्रायः ४० सैकड़ा लैक्टोज होता है। ठंडाने पर बड़ी बड़ी डली कुछ दिनोंमें अलग हो जाती हैं। इसे मशीनसे (सेन्ट्रीफ्यूगल मशीन) निकाला जाता है। छेनेके पानीमें से ३·५ से ४ सैकड़ा तक यह निकलता है। इस कच्चे अशुद्ध डलीको गरम पानीमें गला कर विरंगीकरण करके फिरसे डली बनायी जाती है। इसे सुखा कर पीसते हैं। यही बाजारू लैक्टोज दूधकी चीनी है। इससे बच्चोंका आहार, मिठाइयाँ बनती हैं और दवाकी टिकियों पर लेप चढ़ाया जाता है।

आहारमें ८ सैकड़ा नाइट्रोजनके हिसाबसे यदि दूधकी प्रोटीन खिलायी जाय तो कुछ गवेषक उसका पचनीय मूल्य ९५ सैकड़ा मानते हैं और जीवशास्त्रीय मूल्य ९० सैकड़ा। दूधकी प्रोटीन अन्नकी पूरक है। मनुष्यके आहारमें इसे भी शामिल करनेमें मुख्य यही बात है।

१११०. **दूधके खनिज घटक**: गायके दूधमें लोहा है। खूनका हेमोग्लोबीन लोहेसे ही बनती है। यह प्रसिद्ध है कि, दूधमें इतना लोहा नहीं है जिससे वर्धनशील शिशु या बछड़ेकी जरूरत पूरी पड़े। गायकी पेउसीमें लोहा ज़ादे है। प्रति १० लाखमें यह ४ भाग है। डेभिस (Davies) के अनुसार गायके दूधमें साधारण तौरपर प्रति १० लाखमें १·१ से २·४ भाग लोहा है। दूसरे गवेषक दूसरा अंक बताते हैं।

तन्तु-निर्माणके आवश्यक विभिन्न खनिज दूधमें बहुत हैं। बचपनमें बाढ़ बहुत होती है। इस कालमें देहके घटक निरेन्द्रिय और खनिज पदार्थ केवल दूधसे मिलते हैं। दूधमें चूनेका अच्छा अंश है। हरी सब्जीमें, खास कर फलियोंमें बहुत चूना होता है और दूसरे आहारमें अपेक्षाकृत कम चूना होता है।

तरकारियोंमेंकी अपेक्षा दूधका चूना अधिक पचनीय है। सयानेलोगोंके आहारमें सस्ते कार्बोहाइड्रेटकी पूर्तिके लिये दूधकी वकालत की जाती है। यह चूनेका अतिरिक्त और श्रेष्ठ साधन है। चूना, फॉसफोरस और भिटामिन 'डी' हड्डी बनने और बच्चोंका सूखा रोग रोकनेके काममें आते हैं।

रक्ताल्पता दूर रहे इसके लिये लोहा और ताँबा जरूरी है। दूधसे यह चीजें मिलती हैं। अतिरिक्त ताँबासे रक्ताल्पता जल्दी आराम होती है और हेमोग्लाबीन अधिक रहता है।

१११९. **दूधका ताँबा :** दूधमें १० लाखका प्राय: ०·३ भाग ताँबा होता है, पर इतने कम परिमाण पर भी दूधके पोषक गुणमें इसका बहुत जादे हाथ है। क्योंकि, शरीरको लोहेके उपयोगमें यह मदत करता है। ताँबेसे दूध और इसकी बनी चीजें बहुत जल्दी बिगड़ भी जाती हैं। दूधमें मैंगनीज, जस्ता, आयडीन आदि भी कुछ कुछ हैं।

१११२. **दूधके द्रव्य :** स्तनपायियोंमें प्रसवके बाद बच्चेका स्वतन्त्र अस्तित्व हो जाता है। माँसे उसका सम्बन्ध केवल दूधके द्वारा ही है। गर्भमें माँका रक्त उसकी वृद्धि कर रहा था। बाहर जब तक वह खाना खाकर पचा नहीं सकता, दूध ही उसका आहार है। इसीसे उसकी वृद्धि होती है।

बनावटी आहारोंमें (संश्लेषित) दूधके पदार्थ थोड़ासा भी मिलानेसे वह बहुत वृद्धिकारी होता है। इससे खोज करनेवालोंका ध्यान दूधके विभिन्न द्रव्योंकी ओर गया। इसी खोजमें भिटामिनका आविष्कार हुआ। इसके बाद पोषणकी बहुतसी समस्यायें हाथमें ला गयीं। उनमेंसे अनेक सुलझ भी गयी हैं।

प्रसवके बाद थनसे पहली बार जो चीज प्राप्त होती है वह दूध नहीं है, पेउसी है। पेउसीमें प्रोटीन बहुत जादे होती है। प्रधान प्रोटीन लैक्टग्लोबुलिन है।

दूधका लैक्टग्लोबुलिन केवल पोषक ही नहीं प्रतिपिंडों (एन्टीबोडीज) और क्षमताकारी कारणोंका माँ से बच्चेमें ले जानेवाला भी माना जाता है। दूधके स्नेह, प्रोटीन और चीनीके शक्ति-उत्पादक गुणोंको वैसाही महत्व देना चाहिये जैसे कि अन्य खाद्योंके इन गुणोंको देते हैं। परन्तु शक्ति-उत्पादक गुणोंके सिवा भी दूधके वृद्धिकारी और स्वास्थ्यकारी गुणोंका खास मूल्य है।

१११३. **पेउसी :** पेउसीका ग्लोबुलिन (लैक्टग्लोबुलिन) और खूनका ग्लोबुलिन रसे एकही वस्तु है। पेउसीके स्नेह और दूधके स्नेहमें भी कुछ

अन्तर है। इसमें केप्रीलिक और केप्रिक तेजाबका अंश अधिक है। साधारण मक्खनसे पहली पेउसीके मक्खनमें नौ गुना केरोटीन, आठ गुना भिटामिन 'ए' और दुगना भिटामिन 'डी' होती है। मांके शरीरसे प्रतिपिंड संतानमें पेउसीके द्वारा आते हैं। दूध जमानेवाले जीवाणु भी नवजातके शरीरमें पेउसीके द्वारा जाते और खूनमें मिलते हैं। पेउसीके मारफत नवजातके शरीरमें गये प्रतिपिंड उसके हिफाजतके लिये महत्वके हैं। पेउसीके अभावमें रोगकारी जीवाणु बछड़ेके शरीरके हर अवयव पर आक्रमण कर रक्तमें विष पैदा कर देते हैं। गर्भमें पुरैनकी रुकावटके कारण गाय भ्रूणमें प्रतिपिंड नहीं डाल सकती। इसलिये संतानके जन्मके बाद पेउसी पिलानेकी सख्त जरूरत है। (१०११) श्री सायरने स्वाभाविक रक्षक-आहार पेउसी दिये बिना कुछ बछड़े पाले। वह भाग्यशाली थे। पर यह कहना ही होगा कि उन्होंने यह खतरेका काम किया था। पहले यह समझा जाता था कि बच्चेके पेटसे गर्भ-मल निकालनेके लिये यह एक तरहका जुलाब है। यह दिखाया जा चुका है कि, पूसाके विशेष व्यवस्थावाले ठट्ठमें प्रसवके पहले ही पेउसी दुह ली जाती थी। फिर भी बच्चे अच्छी तरह पनपे। बच्चोंको साधारण दूधके अतिरिक्त १ आउन्स तीसी तेल भी प्रतिदिन दिया जाता था। पूसामें यह हो गया यह भाग्यकी बात हैं। पर सभी बछड़ोंका भाग्य ऐसा ही नहीं है। पेउसीमें प्रतिपिंड है। यह पेटके भीतर और बाहरके जीवाणुसे रक्षा करता है। सप्ताह भरमें बदल कर यह साधारण दूध बन जाती है। दूधका रक्षण-मूल्य पेउसी काल तक ही सीमित नहीं है। इसके आहार अर्थात शक्ति और प्रोटीन मूल्यसे साधारण मूल्य कहीं जादा है। दूध अपने पोषक घटकोंकी अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ है।

शरीर रचनाके लिये आवश्यक सभी प्रोटीनकी पूर्ति दूधसे होती है। इसमें कुछ आवश्यक और कुछ साधारण एमिनो तेजाब हैं। अभी तक साधारण और आवश्यकोंको पूरी तरह अलग करना कठिन रहा है। दूधकी प्रोटीन पूर्ण प्रोटीन है। रचनाके लिये और छीजनकी मरम्मतीके लिये नयी प्रोटीन यह बनने देती है।

११९४. **दूधका पोषक-ताप मूल्य :** यूरोपी गायके प्रति रत्तल दूधमें ३१० पोषक-ताप होता है। इसमें स्नेहकी ताप ५० सैकड़ा, लैक्टोजकी २९ सैकड़ा और प्रोटीनकी २१ सैकड़ा है। पर भारतीय गायोंके स्नेहमें इससे बहुत जादे ताप होता है और कुल ताप भी ३१० से कही जादे हैं। ४·५ सैकड़ा स्नेहवाले १०० ग्राम दूधके स्नेहका शक्ति-मूल्य ८२·५ पोषक-ताप है। इस

आधार पर भारतीय गायके एक रतल दूध (जिसमें ४·५ स्नेह है) ५३१ पोषक-ताप होगा। इसमेंसे ३७१ ताप स्नेहसे और १६० प्रोटीन और लैक्टोजसे है।

११९५. **दूधके भिटामिन :** दूध भिटामिनोंकी प्राप्तका मुख्य साधन है। पर इसका परिमाण गायके खाये चारेके प्रकार पर निर्भर है। यदि गायको पुआल या इसी तरहकी दूसरी सूखी सामिग्री खिलायी जाती है और छायेमें सुखाया चारा या साइलेज नहीं दिया जाता तो उसके दूधमें कम भिटामिन होगा। गायको भिटामिनकी कमीसे कष्ट होगा और ऐसी गायके दूधमें भिटामिन 'ए' नाममात्रको मिलेगा।

दूधमें भिटामिन 'डी' बढ़ानेके लिये नकली उपाय काममें लाये जाते हैं। इसके लिये दूध पर किरणोंका प्रयोग किया जाता है। दधमें भिटामिन 'डी' बढ़ानेके लिये किरण डाला हुआ इरगोस्टरोल (ergosterol) खिलानेकी सिफारिश की जाती है। इस रीतिसे दधमें भिटामिन 'डी' तो बढ़ जाता है पर उसका दाम बहुत हो जाता है। दूधमें यदि भिटामिन 'ए' रहे तो वह किरण उपचारसे भिटामिन 'डी' बननेमें मदत करता है। (६१२)

११९६. **दूधकी विशेषतायें :** दूध सफेद रंगका द्रव है। स्नेहकी अत्यन्त सूक्ष्म बुन्दकियों पर पड़े प्रकाशकी चमक, उतराते कैलशियम केसीनेट और कैलशियम फॉसफेटके कारण यह सफेदी है। यदि दूधमें केरोटीन कुछ अधिक हो तो उसमें कुछ पीलापन भी आ जाता है।

दुद्धीमें कुछ नीलापन रहता है। दुद्धोमें बचे स्नेहके मुताबिक नीलापन कम जादे होता है। दुद्धोमें पानी मिलानेसे नीलापन जादे हो जाता है।

दूध केसीनके घोल और लैक्टोजका अवद्रव (एमलशन) है। इस अवद्रवमें एक खास तरहकी लचक होती है जो स्नेह पदार्थोंके बढ़नेसे घटती है। स्नेहकी बुन्दकियोंमें एक तरहका केपीलरी खिंचाव है। इसीमें दूधके घुले पदार्थ चले जाते हैं जिससे वह लचक घट जाती है। दूधमें हवा घुलने से वह लचक बढ़ती है पर कैलशियम केसीनेट से अम्ल बनने पर वह लचक घट जाती है।

दुहनीमें या मथनेसे दूधमें झाग (फेन) उठते हैं। झाग वायु (गैस) है जो तरल पदार्थकी बहुत ही पतली तहमें बहुत जादे घिर जाती है। इसके लिये वह लचक कम करनी होती है जिससे उस घोलका पतला आवरण फैल

जाता है। आवरण (फिल्म) काफी लचीला और चिमड़ा होता है। इस लिये वायुका बबूला फूल जाता है। इसमें घुली वायु, कारबन-डाइऑक्साइड और दूधकी हवाके कारण ऐसा होता है।

**स्नेह निकालना :** स्नेहके गुरुत्व '९२ से '९४ और दूधके गुरुत्वमें अन्तर है। वह १'०३ से अधिक है। इसीसे दूधसे स्नेह निकालना सम्भव है। दूधका लसीलापन मक्खन निकलना रोकता है। पर इसी लसीलेपनके कारण स्नेहकी बुन्दकियाँ दूधके ऊपर आ जाती हैं जैसे तेल और पानी मिलने पर होता है। फिर भी लसीलापन ही सब कुछ नहीं है। क्योंकि जिलेटिन मिला कर लसीलापन बढ़ानेसे स्नेह जल्दी उतराने लगता है। जिलेटिन पदार्थ मिलाकर दूधका लसीलापन बढ़ानेसे क्रीम अधिक अच्छी तरह निकलती है। पर यदि चीनी जैसे वही उतरानेवाले पदार्थ मिला कर लसीलापन बढ़ाया जाय तो क्रीम बननेमें देर होगी। केशिका (केपीलरी) नलियोंसे अधिक चापके द्वारा प्रवाहित करके स्नेह बुन्दकियोंको तोड़नेका नाम होमोजेनाइजेशन है। दूध पर यह प्रक्रिया करनेसे स्नेह निकालनेमें बड़ी कठिनाई होती है।

रक्खा रहनेसे क्रीम दूधके ऊपरी स्तरमें आ जाती है। क्रीमकी यह स्तर निकाल लेनेके बाद बचा हुआ दूध दुद्धी कहा जाता है पर इस तरह दूधमें बहुत स्नेह रह जाता है। क्रीम पूरी तरह अलग हो जाय इसके लिये रई या क्रीम सेपरेटर से काम लिया जाता है। हाथकी मथानी हो या सेन्ट्रीफ्यूगल सेपरेटर, नतीजा एक ही है।

क्रीम निकालनेकी मशीन इतने वेगसे घुमायी जाती है कि, मिनटमें ६,००० चक्कर लगते हैं। ऊपर उठी क्रीम एक नालीसे निकलती है और दुद्धी दूसरीसे जो जरा हट कर होती है। दोनोंके बीचकी दूरी घटायी बढ़ायी जा सकती है। यदि मथनीमें दूध बराबर आता रहे तो यही दूरी दुद्धीके घनमानके अनुपातमें क्रीमका घनमान नियंत्रित करती है। ९०-११० डिग्री फारेनहाइट तापमें अलगाव सबसे ठीक होता है। इससे कम तापमें लसीलापन बढ़ जाता है। इससे स्नेह बुन्दकियोंके अलग होनेमें अधिक रुकावट होती है।

क्रीम सेपरेटरसे निकाली हुई क्रीम मथनेसे स्नेहकी बुन्दकियाँ जमा हो कर एकमें मिल जाती हैं। जमा होनेके साथ उसमें लसीलापन आ जाता है। जमा हुआ स्नेह ही मक्खन है।

११९७. दूधका अम्ल लक्षण : दूधके अम्लको लैक्टिक (लैक्टिक एसिड—दुग्धाम्ल) कहते हैं। ताजी दूधमें लैक्टिक अम्ल कुछ नहीं बनता। फिर भी उसमें कुछ अम्लता होती है। इसका नाम दुग्धाम्ल दिया जाता है। दूध रक्खा रहनेसे ऑक्सीजनकी क्रियाके कारण कुछ स्नेह टूटकर स्नेहाम्ल हो जाते हैं। इससे उसमें अम्लता आ जाती है। यह और भी बढ़ सकती है। स्नेहाम्लोंके कारण हुई इस अम्लताको भी दुग्धाम्ल ही कहा जाता है। रक्खे हुए दूधमें अन्तमें दुग्धाम्ल बनता है। दूधका लैक्टोज टूटने पर यह बढ़ती रहती है। ताजे दूधमें ०·१ से ०·१८ सैकड़ा तक अम्लता रहती है। जब लैक्टिक तेजाब बननेसे ०·२६ सैकड़ा अम्लता दूधमें हो जाती है तब गरमाने पर यह जम जाता है।

१११८. जमना : दूध रेनिन की क्रियासे जमता है। लैक्टिक अम्लके जीवाणु दूधमें ही हो जायँ तब भी वह जमता है। जैसे दही। गरमानेसे भी दूध जमता है, जैसे खोआ। खोआ बनानेमें जब गरमाते गरमाते दूधमें निश्चित गाढ़ापन होता है तब चला कर उसका हवासे संयोग किया जाता है। इससे दूध जम जाता है। खोआ बनानेमें जमनेकी अवस्थामें अन्तमें उसका रंग एकदम बदल जाता है और उसमें कठीलापन आ जाता है। गाढ़ेपनका अनुपात ४·५ से ४·८ है। इस समय कुल ठोस पदार्थ प्रायः ६० सैकड़ा हो जाते हैं। इस क्रियामें प्रोटीनकी घुलनेकी शक्ति मारी जाती है। खोआमें पानी मिलानेसे फिर दूध नहीं बन सकता।

१११९. दूध पास्चुराइज (जीवाणुरहित) करना : इसका उद्देश्य दूधके रोगकारी जीवाणु नष्ट करना है। जो जीवाणु दूधको मनुष्यके लिये अखाद्य बना देते हैं उनका बढ़ना रोकना भी इसका उद्देश्य है। पास्चुराइज करनेसे दूधका टिकाऊपन बढ़ जाता है, पर खर्च अधिक होता है, इससे उसकी व्यवहारिकता संदिग्ध है। साधारण तौर पर पास्चुराइज जिस रीतिसे किया जाता है उसे "होल्डर" कहते हैं। दूध ६२·५ से ६५ डिग्री सेन्टिग्रेड तक गरम किया जाता है। इस ताप पर वह आध घंटा रक्खा जाता है। इसके बाद उसे ठंढा करके बोतलोंमें बन्द किया जाता है। दूसरा तरीका "फ्लैश पास्चुराइज" करना है। इस तरीकेमें दूधको तुरत ७५ डिग्री सेन्टिग्रेड पर पंहुचाकर उसपर १५ सेकेन्ड तक रक्खा जाता है, फिर तुरत ठंढा किया जाता है।

यह प्रथा पश्चिमी देशोंके लिये है, जहाँ पीनेके पहले गरम करनेकी प्रथा नहीं है। भारतमें काममें लानेके पहले दूध गरम कर लिया जाता है, इसलिये पास्चुराइज

करनेसे कोई लाभ नहीं। ऐसा करनेसे बिगड़े बिना दूध कुछ अधिक समय तक रह सकता है। पर इससे भारतमें कुछ लाभ नहीं होगा, क्योंकि यहांके वातावरणकी गरमीमें पास्चुराइज करने पर भी जीवाणु वेगसे बढ़ते हैं।

भारतमें दूध रखनेका सबसे सुन्दर तरीका यह है कि उसे गरम करके अनुकूल ताप पर रक्खा जाय। पास्चुराइज करनेकी अपेक्षा दूध गरम करके कुछ ताप पर रखना सस्ता है और इस तरह वह बेचनेके लिये अधिक समय तक रक्खा जा सकता है। वातावरणके साधारण तापकी अपेक्षा १५० डिग्री फारेनहाइट या ६६ डिग्री सेन्टिग्रेड ताप पर दूध बहुत देर तक रह सकता है।

**११२०. दूधका पोषक मूल्य :** मनुष्यकी आहार सामग्रीमें, विशेषकर बच्चोंके लिये दूधकी तरह लाभकारी दूसरी कोई चीज नहीं है। जिस उमर तक दूधके सिवा और कुछ नहीं पचता, यही सबसे पूर्ण आहार है। ६ महीने तक की उमरके बच्चेको दूध ही केवल मात्र पोषक है। यदि ६ महीनेके बाद भी केवल दूधही का आहार दिया जाता है तो लोहेकी कमीसे पोषणकी कमी होने लगती है। पर दूध किसी भी उमरके लिये अनमोल पोषक है।

गायके दूधमें चूना और फॉसफोरस बहुत हैं। केवल जननीके दूधपर पाले बच्चोंकी अपेक्षा गायके दूध पर पलोंका विकाश अधिक होता है। इसका कारण गायके दूधमें अधिक चूना हो सकता है।

अन्नके साथ दूध देनेसे वृद्धि संतोषप्रद होती है। बच्चोंके पालनेमें इससे बहुत मदत मिलती है। भोजनमें यदि काफी दूध रहे तो, चाहे जिस आहारकी शक्तिका उपयोग अधिक अच्छा होता है। बचानेवाले मुख्य आहारोंमें दूध एक शक्तिशाली आहार है। आहारमें थोड़ासाभी दूध बहुत फायदा करता है।

**११२१. दूध और बच्चोंकी वृद्धि :** बच्चोंकी वृद्धिके लिये दूध आवश्यक है। अन्य स्तनपायियों की अपेक्षा मनुष्योंको बढ़नेमें बहुत समय लगता है। उनकी वृद्धि २१ वर्ष तक होती रहती है। इस कालमें यदि पोषणकी कुछ कमी हुई तो, इसके बाद भी दूध देनेसे पहले कमी कुछ पूरी हो जाती है।

यदि बचपनमें खूब दूध पीनेसे अच्छी वृद्धि हुई तो कम उमरका मरना रुक जायगा। दूध पीनेसे शिशु-मृत्यु कम हो जायगी, अच्छे दाँत और अधिक जीवनी शक्ति होगी, प्रजनन शक्ति बढ़ेगी तथा दीर्घ जीवन सुनिश्चित है।

सारी दुनियाँमें दूधके द्वारा बच्चोंकी वृद्धि देखनेकी चाल है। हमारे देशमें भी कुछ प्रयोग हुए हैं। उसका परिणाम भी दूसरे जगहोंके ऐसा ही हुआ है।

राइटने अपनी रिपोर्टमें नीचे लिखे दो आँकड़े दिये हैं :—

## आँकड़ा—१४८

### स्कूलके बच्चोंकी वृद्धि पर पूर्ण दूधके प्रभावका प्रयोग

| | दूध पर | | | | बिना दूध पर | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | तीन महीनेमें औसत वृद्धि | | | | तीन महीनेमें औसत वृद्धि | | | |
| | लड़के | | लड़कियाँ | | लड़के | | लड़कियाँ | |
| | तौल | ऊँचाई | तौल | ऊँचाई | तौल | ऊँचाई | तौल | ऊँचाई |
| दल नं० | रत्तल | इंच | रत्तल | इंच | रत्तल | इंच | रत्तल | इंच |
| १ | ३·९२ | ०·८० | ५·३५ | ०·७८ | १·६० | ०·६० | १·१ | ०·१८ |
| २ | ३·९० | ०·७० | ४·३३ | ०·३८ | १·५६ | ०·४६ | १·१ | कुछनहीं |
| ३ | ३·७० | ०·५३ | ३·०० | ०·१९ | १·९० | ०·४२ | १·० | ०·०७ |
| ४ | ... | ... | ५·५० | ०·२९ | ... | ... | ०·५ | कुछ नहीं |
| औसत— | ३·८४ | ०·६७ | ४·५४ | ०·४१ | १·६ | ०·४९ | ०·९२ | ०·०६ |

## आँकड़ा—१४९

### स्कूलके बच्चों पर दूधोंके प्रभावका प्रयोग

| | | तीन महीनेमें तौलकी औसत बढ़ती | तीन महीनेमें ऊँचाईकी औसत बढ़ती |
|---|---|---|---|
| **छात्रावास १ (लड़के)** | | | |
| दल क (दूध मिला है) | ... | ४·७७ | ०·६१ |
| दल ख (दूध नहीं मिला है) | ... | २·१३ | ०·३५ |
| दल ग (दूध मिला है) | ... | ३·०७ | ०·६९ |
| दल घ (दूध नहीं मिला है) | ... | १·०० | ०·४३ |
| **छात्रावास २ (लड़कियाँ)** | | | |
| दूध पानेवाली लड़कियाँ | .... | ४·८ | ०·८० |
| दूध नहीं पानेवाली लड़कियाँ | ... | ०·८ | ०·५३ |
| **छात्रावास ३ (लड़के)** | | | |
| दूध पानेवाले लड़के | ... | ४·५७ | ०·६७ |
| दूध नहीं पानेवाले लड़के | ... | ०·८४ | (?) |

दूध बाजारकी रिपोर्टमें ( पृ० ७६ ) नीचे लिखा आँकड़ा है :—

## आँकड़ा—१५०

### भारतीय स्कूली लड़के लड़कियोंको अतिरिक्त दूध देनेसे उनकी वृद्धि पर प्रभाव

| | लड़के | | | | लड़कियाँ | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | तीन महीनेमें औसत वृद्धि | | | | तीन महीनेमें औसत वृद्धि | | | |
| | तौलमें | | ऊँचाईमें | | तौलमें | | ऊँचाई | |
| प्रति बच्चा दूधका परिमाण | अतिरिक्त दूध पर रत्तल | अतिरिक्त दूध बिना रत्तल | अतिरिक्त दूध पर इंच | अतिरिक्त दूध बिना इंच | अतिरिक्त दूध पर रत्तल | अतिरिक्त दूध बिना रत्तल | अतिरिक्त दूध पर इंच | अतिरिक्त दूध बिना इंच |
| शिमला ( १ रत्तल ) | ३·८४ | १·६ | ०·६७ | ०·४९ | ४·५४ | ०·९२ | ०·४ | ०·०६ |
| नयी दिल्ली ( १ रत्तल ) | ३·७६ | २·०२ | ०·६३ | ०·४३ | ३·७३ | १·५० | ०·५६ | ०·२४ |
| नयी दिल्ली ( ½ रत्तल ) | ३·६२ | २·६३ | ०·६३ | ०·५३ | ५·७२ | १·४२ | ०·४६ | ०·४१ |
| नयी दिल्ली ( १ रत्तल दुद्धी ) | २·७९ | २·०२ | ०·५३ | ०·४५ | २·१० | ०·१३ | ०·५२ | ०·१५ |
| दक्खिण भारतका एक स्कूल— ( ८ आउन्स दूधकी जगह दुद्धीका १ आउन्स चूर्ण ) | ४·७७ | २·१३ | ०·६१ | ०·३५ | ४·८० | ०·८० | ०·८० | ०·५६ |

यह ध्यान देनेकी बात है कि लड़कियाँ लड़कोंसे जादे बढ़ती हैं। इसका कारण शायद पहलेका अधिक दुष्पोषण हो। इस आँकड़ेसे पता चलता है कि, दुद्धी दूधसे कम नहीं है। दूसरी जगहोंका भी यही अनुभव है।

"कुछ स्कॉटिश शहरोंमें स्कूल जानेवाले बच्चोंको दूध या दुद्धी दी जाती थी। इससे संतोषप्रद वृद्धि हुई। लेहटन ओर क्लार्कने पाया कि, दुद्धी दूधकी तरह ही लाभकारी है। दुद्धोका असर दधके भिटामिन "डी" (जो हर हालतमें कम होगा) की अपेक्षा उसके खनिजोंके कारण हो सकता है। आहारके किसी किसी भिटामिनका मूल्य भी कैलशियम साल्ट अतिरिक्त देनेसे बढ़ जायगा।" —(डेभिस—"केमिस्ट्री ऑफ मिल्क" १९३९, पृ० ४९९) (४६६)

११२२. **म्युनिस्पल स्कूलोंमें मुफ्तका दूध :** दूध बाजारकी रिपोर्टमें कहा है :

"नयी दिल्लीकी म्युनिस्पल्टीने यह योजना चालू रक्खी। स्कूलके बच्चोंको मुफ्तमें दूध बाँटनेके लिये उसने अपने बजटमें १,६०० रुपये रक्खा है। लेकिन दुर्भाग्यसे उसके स्कूलके ३,००० बच्चोंमें इस रकमसे केवल ५० को ही दूध मिल सकता है। यद्यपि चीफ मेडिकल अफसरने अभिभावकोंसे अपील की कि वह पैसा देकर इस योजनामें शरीक हों, पर यह समझा जाता है कि, केवल ३५ अन्य लड़के इसमें शामिल हुए।

"इस प्रयोगसे आसपासके लोगोंकी रुचि बढ़ी है। युक्तप्रान्तकी सरकार भी अपने कुछ स्कूलोंमें दूध पिलानेका असर देख रही है। सन् १९३९-'४० में उसने इस कामके लिये ९,००० रुपये मंजूर किये। दक्षिण भारतके प्रयोगको ध्यानमें रख, और इसलिये भी कि दुद्धीका विदेशी चूर्ण गरीबोंको सस्ता मिले, भारत सरकारने उसका आयात-कर जून, १९३९ से बिलकुल माफ कर दिया। यह पहले २५ सैकड़ा था। पर रिपोर्ट यह है कि, दुद्धीका सस्ता चूर्ण स्कूली बच्चोंको खिलानेकी अपेक्षा मिलावटके काममें जादे आता है।" —(पृ० ७६-७७)

दुष्पोषणकी समस्या भारतके कुछ शहरोंके स्कूल जानेवाले बच्चोंमें ही नहीं है। दिल्लीमें ५० छात्र सालमें १,६०० रुपयेका दूध प्रतिदिन १ रत्तलके हिसाबसे पी गये। अर्थात् हरेक छात्रको महीनेमें २॥ रुपयेका (१५ सेर) दूध पिलाना पड़ा। देशव्यापी आवश्यकताके सामने युक्तप्रान्तकी सरकारके ९,००० और दिल्ली म्युनिस्पल्टीके १,६०० रुपयोंसे क्या हो सकता है? ग्राम पाठशालाओंके छात्रोंको

भी भोजनकी पूर्त्तिमें दूध देनेकी जरूरत है। दान और सरकारी आश्वासनसे ऐसी समस्या नहीं सुलझती।

**११२३. बुनियादी स्कूलोंमें मुफ्त दूध :** यह जरूरत पूरी करनेको गान्धीजीका चलायी बुनियादी शिक्षा योजना हर तरहसे उपयुक्त है। ७ से १४ वर्षके बच्चोंका हरेक बुनियादी स्कूल, कृषि और गव्यधन्धा करनेवाला स्कूल हो। स्कूलके लड़के लड़कियाँ कुछ गायें पालें। स्कूलकी गोशाला मक्खन और घी बना कर बेचे और बच्चे अपने मजूरीमें दुद्धी या छाछ पावें। राष्ट्रीय शिक्षा और पोषणकी समस्याके बारेमें दृष्टिकोण बदलनसे यह सब हो सकता है। यह सब परस्पर संबन्धित हैं। ऐसे बुनियादी स्कूल प्राचीन कालके गुरुकुलके जैसे होंगे जिनमें छात्र अपने गुरुओंकी सेवा करके शि.ा पाते थे। लड़के अपने गुरुकी गायें चराते थे। इसके बदले उन्हें गुरुजीके घरसे खाना और दूध भी मिलता था। कुछ कालके लिये यही उनका घर होता था।

यह याद रखना होगा कि, भारतमें नर-नारी, लड़के-लड़कियाँ और ढोर भी दुष्पोषण से पीड़ित हैं। यह समस्या जरा इधर उधर करने से हल नहीं होगी। इस बुराईको दूर करनेके लिये आमूल परिवर्तनकी जरूरत है।

**११२४. दूध और दीर्घ जीवन :** वृद्धिकारी होनेके अलावा दूध सयानोंका स्वास्थ्य सुधारता है और दीर्घ जीवन दाता है।

"दीर्घ जीवन और यथेष्ट दूध पीनेकी आदतका संबन्ध आकर्षक है। जरमनीमें इस बातका पता लगा है कि वहाँकी कुल ६० मिलियनकी आबादीमें केवल १०० आदमी १०० वर्ष या उससे जादे उमरके हैं। पैरिसके पास्चुर इंस्टिट्यूटमें जो तथ्य जमा किये गये हैं उनसे साबित होता है कि, बुलगेरियाकी आबादी प्रायः ५ मिलियनमें (अर्थात् जरमनीकी जनसंख्याका लगभग १/१२) ५,००० के लगभग आदमीकी उमर १०० वर्ष या उससे जादे है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका कारण बुलगेरियन लोगोंका आहार है। वह लोग नित्य ही दूध, पनीर और दही बहुत खाते हैं, पर मांस केवल छुट्टियोंमें खाते हैं।"—(गोडबोले—"मिल्क—दि मोस्ट परफेक्ट फुड" पृ० ४९)

# अध्याय २५

## गव्य पदार्थ

११२५. घी : दूध जीवाणुकी वृद्धि और वंश विस्तारके लिये बहुत अनुकूल है। यह हवामें इतने जादे हैं कि, जो दूध हिफाजतके साथ नहीं रक्खा जाता उसमें इनमेंसे कोई चला जायगा। वहाँ वह मौजसे फले फूलेगा। ये दूधको बिगाड़ देते हैं जिससे वह मनुष्यके खाने लायक नहीं रहता। इसलिये भारतमें चाल है कि, दूधको गरम करके रखते हैं। इससे दूध कई घंटे तक बिगड़ता नहीं है। यह नियम बहुत अच्छा है और लोगोंकी जरूरत और जलवायुके अनुकूल है।

इसके सिवा दूधकी कई चीजें बनायी जाती हैं। जैसे पास्चुराइज करनेमें उद्योगियोंने यूरोपकी असफल नकल की है वैसे ही इस मामलेमें भी की है।

भारतीय लोग मक्खनका घी बना कर खाते हैं। यूरोपी लोग मक्खन ही खाते हैं। घीकी अपेक्षा इसका रखना कहीं कठिन है। इसका टिनमें बन्द करना और रखना बहुत खर्चीला है। यह थोड़ेसे भारतीय परिवारोंमें काममें आता है। इसकी माँगभी बहुत सीमित है। भारतीयोंको क्रीम अधिक रुचिकर नहीं है। इसलिये क्रीम और मक्खन बनानेके धन्धेका प्रचार यहाँ अधिक नहीं है।

भारतमें मक्खन कम खाया जाता है। उसमें पानी बहुत होता है, इसलिये विलायती टिनमें बन्द मक्खनकी तरह टिकाऊ नहीं होता। घी बनानेके लिये यह मक्खन बनाया जाता है। भारतमें घीका सर्वत्र प्रचार है। यह जल्दी बिगड़ता नहीं और यदि बनाने और रखनेमें सावधानी रक्खी गयी तो दो दो वर्ष तक ठीक रहता है।

घी बहुत दिन तक खुला भी रह सकता है, बिगड़ता नहीं। बर्तनका मुँह खोलनेके बाद उसे तुरत बेचनेकी जल्दी जरूरत नहीं। धीरे धीरे खुदरा बेच काममें ला सकते हैं।

बनानेमें एक ओर सुबीता है। अधिकांश घी, दही मथ कर बनाया जाता है। मक्खन निकालनेके बाद जो पतला दही बच जाता है उसे मठा, छाछ, लासी, घोल आदि कहते हैं। छाछमें स्नेह और स्नेहमें घुले भिटामिनके अलावे दूधके सभी पोषक पदार्थ होते हैं। घी बनानेका धन्धा ग्राम-उद्योग है। घीके धन्धेमें छाछ उपजात है। पर इसे उपजात नहीं कहना चाहिये, क्योंकि इसका पोषक मूल्य घीसे कम नहीं है। सभी प्रोटीन, लैक्टोज, खनिज लवण इसीमें रह जाते हैं। देहातमें घी बनानेके बाद यह पोषक पदार्थ घरमें ही खरच होता है। घी आगेके काम या बेचनेके लिये रक्खा जाता है। इसलिये यदि घी बिक भी जाय तब भी दूधका ५० या उससे भी अधिक सैकड़ा पोषक गुण घरमें ही काम आता है।

भारतके लिये घी इतना अनुकूल है कि आहारकी यह सर्व-जनप्रिय वस्तु हो गयी है। जो लोग घी खरीदते हैं यह उन्हें पुष्टि करता है और जो इसे बनाते हैं यह उन्हें भी पुष्ट करता है, क्योंकि वह छाछका सेवन करते हैं। यह बताया जा चुका है कि, जितना दूध होता है उसका कुल २८ सैकड़ा ही पीनेके काममें आता है। ५७ सैकड़ाका घी बनाया जाता है। ये दोनों मिल कर कुल दूधका (२८+५७)=८५ सैकड़ा होता है। बाकी १५ सैकड़ा तीन तिहाइयोंमें बँट जाता है। एक तिहाई अर्थात् ५ सैकड़ेका खोआ बनता है। दूसरी तिहाईका दही और अंतिम तिहाईकी बहुतसी चीजें जैसे मिठाइयाँ, पेड़ा, बरफी, रसगुल्ला, रबड़ी आदि और क्रीम तथा मलाई बरफ भी बनती है। (२७६)

**११२६. घीका महत्व :** भारतमें दूधकी बनी सभी चीजोंमें घी मुख्य है और व्यापारकी सबसे महत्वकी वस्तु है। दूध बाजारकी रिपोर्ट (१९४१-'४२) कहती है :—

"गरम देशोंकी आबहवामें भी साधारण ढंगसे रखने पर भी यह बहुत दिनों तक ठीक रहता है। इसके इतना बननेका यही कारण है। घीके ठीक रहनेके गुणकी जाँचके कुछ फलसे मालूम होता है कि, अच्छी तरह बनाया हुआ घी प्रायः दो बर्ष तक रह सकता है और साफ करके (टाँसकर, गरम कर) फिर पहले जैसा किया जा सकता है।"—(पृ० ६७)

५७ सैकड़ा दूधका घी बनना सारे भारतका औसत है। पंजाब और बिहार जैसे कुछ प्रान्त हैं जहाँ ७७ सैकड़ा दूधसे घी बनाया जाता है। उड़ीसा भी पंजाब और बिहारकी जोड़ी हो सकता है। बंगालमें कम दूध होनेकी वजहसे कुल ३१ सैकड़ेका घी बनता है। बंगालकी जरूरत पूरी करनेके लिये अन्य प्रान्तोंसे बहुत ज्यादा घी बंगाल आता है। बने और बिके घीका दाम १०० करोड़ रुपये कूता जाता है।

५७ सैकड़ा दूधका घी बनता है, इससे घीका हमारे देहातकी अर्थ व्यवस्थामें क्या स्थान है यह मालूम होता है। दूधके बने अनेकों पदार्थोंमें घी ७९·२ सैकड़ा है। इसका विस्तृत कुटीर शिल्प बताता है कि, भारतमें घी बनानेमें कितनी अनुकूलता है। दूधका स्नेह और स्नेहमें घुलनेवाले भिटामिनको बिगड़े बिना रखनेका कोई दूसरा उपाय नहीं। घीके रखनेका कोई खास ढंग भी नहीं है।

"बादको आदमीके खानेके लिये दूधके स्नेहके निकालने और रखनेके महत्व पर जोर देनेकी जरूरत नहीं। भारतकी हालतमें इस तरह स्नेहका बनाना चतुराईकी बात है। इस रूपमें वह बिगड़ता भी नहीं है और भोजन बनानेके काममें भी आता है। सहज प्राप्त शुद्ध तेल और स्नेहसे भी यह काम लिया जाता है।"... —(डेभिस—"इंडियन इनडीजिनस मिल्क प्रोडक्टस" पृ० ४०) (२७६, २८०)

**११२७. घी बनानेका देहाती तरीका :** देहातमें घी दहीसे निकाला जाता है। दूधको पहले उबाला जाता है जिससे उसके जीवाणु नष्ट हो जायँ। फिर ठंढा होकर वह गुनगुना रह जाता है, तब दही जमानेके लिये उसमें जामन डालते हैं। एकसे तीन या अधिक दिन भी जमने दिया जाता है। अधिक दिनोंमें अधिक दुग्धाम्ल बन जाता है जिससे घीमें अम्लता बढ़ जाती है।

फिर भी दहीसे गाँववालोंकी रक्षा बहुत होती है। थोड़े दिनके भीतर ही दही मथ लेना कोई जरूरी नहीं है। मथने लायक काफी दही हो इसलिये कई दिनों तक उसे जमा करते हैं।

काफी दही जमा हो जाने पर कई दिनका बासी दही मथ लेते हैं। दही मथनीमें डाल कर रईसे मथा जाता है। रई घुमानेके लिये उसमें रस्सी लपेटी रहती है। रस्सीके दोनों छोर बारी बारीसे खींचने पर रई जोरसे नाचती है। इससे पतले दहीमें भँवरसी पड़ती है। दही टूट जाता

है और मक्खन उतराने लगता है। इसे जमा कर लिया जाता है। मथनेमें जितना कम ताप होगा उतना जादे मक्खन निकलेगा। इसलिये साधारण तौरपर सबेरेके समय दही बिलोया (मथा) जाता है। गरमीके दिनोंमें यदि दही खास तौरपर ठंढा नहीं रक्खा जाय तो कम मक्खन निकलता है। मक्खन निकालनेके लिये दहीमें पानी मिलाया जाता है। उतरानेवाला मक्खनका लौंदा उसमेंसे निकाल लिया जाता है। इसमें केसीनके भी कुछ कण रहते हैं। इस मक्खनके लौंदेको धोया जाता है जिससे उसमेंसे केसीन और अन्य घुले हुए पदार्थ निकल जायँ। कुछ धोये हुए इस मक्खनमें पानीका बहुत अंश रहता है। इसमेंसे पानी निकालना जरूरी है। पहलेके निकाले मक्खनमें मिला कर यह मक्खन भी रख दिया जाता है। काफी जमा होने पर उसे गला कर घी बनाया जाता है बिलोनेके बाद बची हुई चीज छाछ है। यह पुष्टिकर आहार है।

११२८. **मक्खन गलाना :** गरम करनेसे मक्खनके साथका सारा पानी और केसीन अलग हो जाता है। यह लोहेकी कड़ाहीमें किया जाता है। आँच धीमी धीमी देकर मक्खन गलाते हैं। और गरमानेसे ताप बढ़ जाता है तथा पिछला पदार्थ साफ होने लगता है। अच्छी तरह गरम करनेसे पानी उड़ जाता है। मैल ऊपर आ जाता है, इसे झाँझरेसे उठा लेते हैं। इसके बाद केसीनके अणु जल कर नीचे बैठने लगते हैं। यह काम पूरा होनेकी सूचना है। अंतमें एक विशेष तरहकी सुगन्ध आने लगती है। गरम करनेके समय जरूरतके अनुसार चूल्हेमें ईंधन देकर या निकाल कर आँच ठीक रखते हैं। इसके बाद घी किसी बर्तनमें उड़ेल लिया जाता है। बर्तन अधिकतर मिट्टीका घड़ा या टिन होती है। अधझुलसा केसीन और नमक नीचे बैठा रहता है। इसे छान लेते हैं। यह कच्चा घी है। बाजारू घीमें कभी कभी जितना चाहिये उससे जादे पानी रहता है। व्यापारी इसे खरीद कर फिर टाँसते और टिनमें भरते हैं। यह तैयारी माल हुआ।

जमा करनेमें एक बार गरम करनेभरकी साधारण तौर पर जरूरत होती है। पिछला घी कपड़ेमें छान कर या ऐसे ही दूसरे बर्तनमें भर लिया जाता है। पर यदि कच्चा घी पूरी तरह साफ किया हुआ नहीं हो तो काफी टाँसते हैं। इसके लिये उपयुक्त ताप १०० डिग्री सेंटिग्रेड है। इस तापमें घीमें जरा भी पानी

नहीं बचता। साथ ही इस बातकी सावधानी रखनी होती है कि, घी खरा न हो जाय (जल न जाय) और उसमें जले रंगकी खराबी न आ जाय।

११२९. **क्रीम और मक्खनका घी :** दही बिलौनेसे सभी मक्खन नहीं निकलता। पानी मिलानेसे अधिक निकलता है। फिर भी कुछ मक्खन छाछमें बच जाता है जिससे वह और पोषक बनता है। देहातमें जो लोग शुद्ध दूध नहीं पी सकते उनके लिये यही दूध है। मशीनसे क्रीम बनानेसे प्रायः सारा मक्खन निकल आता है। केवल माखन रहित दुद्धी रह जाती है। बिहारके देहातोंमें भी मशीन घुस गयी है। दूधवाले इलाकोंमें दो चार गाँवोंके बीच क्रीम निकालनेका इन्तजाम रहा करता है। इसे गाँवके व्यवसायी चलाते हैं या घी वालोंका क्रीम जमा करनेका यह केन्द्र होता है। दूधवाले यहाँ दूध ले आते हैं। क्रीम निकाल कर उन्हें दुद्धी और क्रीमका दाम दे दिया जाता है। घीका दाम क्रीमके अनुसार हुआ करता है। इसके बाद चरनर (मशीन) में थोड़ासा क्रीम डाला जाता है (११६९)। चरनर एक पीपा है। इसमें छोटीसी धुरी रहती है जिसके सहारे यह तिपाई पर लगा रहता है। इसका ढक्कन खोला और बन्द किया जा सकता है। मक्खनकी हालत देखनेके लिये इसमें एक खिड़की होती है।

पीपेमें क्रीम डालकर हैंडलसे घुराते हैं। इससे उथल पुथल होती है और स्नेहकी बुन्दकियोंको थपेड़ा लगता है और उनका लौंदा जमा होने लगता है। पूरी क्रिया हो जाने और धो लेनेके बाद चरनर खोल कर मक्खन निकाला जाता है। ऐसे मक्खनका कड़ापन एकसा रक्खा जाता है। इससे यह ठीक तरहसे मालूम हो जाता है कि ऐसे मक्खनसे कितना घी निकलेगा। क्रीम बनानेवाले घी वालोंके हाथ मक्खन बेच देते हैं। वह लोग इस मक्खनसे ठीक उसी तरह घी बनाते हैं जैसे दहीवाले मक्खनसे बनाते हैं।

११३०. **सीधे क्रीमसे घी :** कहीं कहीं सीधे क्रीम गरम करके घी बनाते हैं। ऐसी हालतमें दूधसे क्रीम निकाल कर उसे तुरत गरम किया जाता है। बाकी सभी क्रिया पहलेकी तरह ही होती है। केवल क्रीममें अधिक केसीनका सवाल रहता है। मक्खन बनानेमें अधिकांश केसीन धोकर निकाल दिया जाता है इसलिये गलाने पर गाद ज्यादे नहीं होती। पर सीधे क्रीमसे घी बनानेमें केसीनकी गाद बहुत निकलती है। इसमें कुछ घी समाया रहता है। इससे इतने घी की हानि होती है। कहा जाता है कि इस क्रियामें कम घी होता है।

पर क्रीमसे सीधे बनाये घी की अपनी खास सुगन्ध होती है। इसमें अम्ल बननेका भी कोई डर नहीं रहता। इससे घी अधिक टिकाऊ होता है।

११३१. **क्रीमको खट्टा करना :** क्रीमसे घी बनानेका बीचका एक उपाय और है। क्रीममें जामन डाल कर उसे खट्टा करते हैं। दुग्धाम्लकी संधान क्रिया (फफदना) होने देते हैं। इससे जैसी चाहिये वैसी अम्लता और सुगन्ध हो जाती है।

क्रीम बनानेके कारखानोंमें जहाँ दूध इस तरह लिया जाता है कि, दुद्धीका लौटाना असम्भव हो, वहाँ यह प्रक्रिया हानिकारी है। ऐसी हालतमें दुद्धीसे केसीन बनाते हैं। यह केसीन खानेके काममें नहीं आता। उससे सरेसका काम कारखानों में लिया जाता है। लैक्टोज और खनिज लवण व्यर्थ जाते हैं। बड़ी मशीनोंके बिना लैक्टोज निकालना कठिन है। कुछ कारखानोंमें यह बनाया जाता है।

११३२. **घी का स्वाद और गन्ध :** अलग अलग प्रान्तों और जिलोंमें घीके अलग अलग स्वाद और गन्ध पसन्द किये जाते हैं। कौनसा स्वाद और गन्ध लोग चाहते और उसके तैयार करनेकी प्रणाली क्या है यह जान लेने पर ग्राहकोंकी तुष्टिके लिये उसे स्थिर करना कठिन नहीं है।

कई घटकोंके योगसे गन्ध होती है। मक्खनकी गन्ध बियूटायरिक और अन्य उड़नेवाली तेजाबोंकी गन्ध, जले केसीनकी जलायँध हुआ करती है। अंतिम गन्ध अन्य दो गन्धोंसे तीव्र होती है।

दहीसे घी बनानेमें दुग्धाम्लसी कुछ चीज उसमें घुल जाती है। आवश्यक मानका दही और घी दोनों चीजके बनानेके समय उसका नियंत्रण चाहिये। इसी कामके लिये क्रीम खट्टा करनेकी भी जरूरत है।

११३३. **घी का दाना :** ग्राहक घीके दानेको भी महत्व देते हैं। पिघलानेके बाद ठंढ़ा करनेके वेगके अनुसार घीका दाना बनाया जा सकता है। यदि घी बहुत धीरे धीरे ठंढा होने दिया जाय और उसे छेड़ें नहीं तो उसके दाने बहुत मोटे होंगे। पर जल्दी ठंढा करने और चलानेसे दाने बहुत नन्हें होंगे। ग्राहक प्रायः बड़ा दाना ही पसन्द करते हैं। घी के पतलेपन और दानेका अनुपात मौसम और वातावरणके तापके अनुसार बदलता है।

दुग्धाम्लके जीवाणुओंकी दीर्घकालिक क्रियासे कम ताप पर उबलनेवाले कुछ दुग्धाम्ल नष्ट हो जाते हैं। इससे घी की तरलता घट जा सकती है।

इस विषयकी पूरी जाँच नहीं हुई है। स्थानीय ग्राहकोंकी माँगके अनुसार घी का दाना या रवा बनाना चाहिये। आयडिन मूल्य से असंयुक्त स्नेहके होनेका पता चलता है। असंयुक्त स्नेहसे भी घी के दानोंमें कमी बेशी हो सकती है।

११३४. **घी का रंग :** गायका घी पीला होता है। घी के कैरोटीनके कारण यह रंग होता है। भैंसका घी उजला होता है क्योंकि उसमें कैरोटीनका अभाव है। जब कैरोटीनसे भिटामिन 'ए' बन जाता है तब रंग हल्का हो जाता है। इसलिये हल्के पीले रंगके गोघृतमें कम कैरोटीन हो सकता है। पर रंगके हल्केपनसे भिटामिनकी वृद्धिका पता नहीं लग सकता।

## आँकड़ा—१५१

### गायके घी की रचना (गोडबोले और सद्‌गोपाल)

| स्नेहाम्ल | | सैकड़ा |
|---|---|---|
| बियूटायरिक तेजाब | ... | ४ |
| केपोरिक | ... | २ |
| केप्रीलिक | ... | १ |
| केप्रिक | ... | २ |
| लोरिक | ... | ४.५ |
| मिरिस्टिक | ... | १० |
| पामिटिक | ... | २६ |
| स्टियरिक | ... | १० |
| ओलिक | ... | ३४.५ |
| लीनोलिक | ... | ५ |
| जिसका साबुन नहीं बन सके (अनसपोनीफाइएबिल) | ... | १ |

११३५. **घी की पचनीयता :** ऊपरकी सूचीमें जिन स्नेहाम्लोंका नाम पहले है, उनकी बनावट सरल है। इन्हें शरीर सरलतासे सोख लेता है। पामिटिक आदि बादके नामवालोंको मनुष्य-शरीर कठिनतासे सोख सकता है। अंतिम ओलिक और

लीनोलिक को असंयुक्त अम्ल (अनसेचूरेटिड) कहा जाता है। मनुष्यके पोषणमें इनका महत्वका हाथ है। शरीर इनका आचूषण कर सकता है।

यह कहना कठिन है कि घी में कौनसा कारक कितने पोषक मूल्यका है। बहुतसे स्नेह हैं। केवल पचनीयताके मानसे वह सब घी से बहुत श्रेष्ठ हो सकते हैं। उनका ताप मूल्य पचनीयताके अनुपातमें ही होगा। यदि बात ऐसी ही है तो यह कहा नहीं जा सकता कि, घी की श्रेष्ठता आहारमें कैसे है। पर हजारों वर्षसे घी, तेल और चर्बीसे श्रेष्ठ खाद्य रहा है।

११३६. **घी का पोषक मूल्य :** हम जान गये हैं कि, गायके घीमें भिटामिन 'ए' का अग्रदूत कैरोटीन और भिटामिन 'ए' स्वयं भी बहुत ज्यादे है भैंसके घी में इसकी कमी है (५२०)। यदि पचनीयता स्नेहोंकी तारीफ हो तो घी नारियलके तेलके आगे घुटने टेक देगा। पर यदि पचनीयता और कैरोटीन-भिटामिन-'ए' इन दोनों ही बातोंके लिये स्नेहकी तारीफ हो तब गायका घी ही रहेगा और भैंसका घी तेलोंकी श्रेणीमें चला जायगा।

गायके घी और मक्खनमें भिटमिनों की अधिकता है। इससे वह पोषक वर्गमें कौड और दूसरी मछलियोंके समकक्ष्य है। पर कैरोटीन और भिटामिन मूल्य ही सब कुछ नहीं है। कैरोटिन-भिटामिन और पचनीयताके कारण हमारे आहारमें उसका ऊँचा स्थान है। खाद्य स्नेहोंके, जैसे मारगरीनके निर्माता अपने गहरे प्रचारसे इसे मिटा नहीं सकते। यदि मारगरीन या नारियलके तेलमें कुछ भिटामिन मिला भी दिया जाय तो भी वह शुद्ध गव्य घीसे कम ही रहेगा।

मारगरीनके निर्माताओंने मारगरीनको मक्खनसा ही सिद्ध करनेके लिये बहुतसा साहित्य छपाया है। फिर भी मारगरीन भेष बदल कर ही बाजारमें बिकता है। उसका रंग, रूप, स्वाद सब मक्खनसा बनाया जाता है। इतना होने पर भी कानून कहता है कि, मारगरीनके डिब्बे पर यह लिखा रहना चाहिये कि यह गव्य नहीं है। इसलिये मारगरीन मक्खनका बाजार छू भी नहीं सका है।

पश्चिममें नकली चीजको असली कह कर बेचनेकी रुकावट कानूनने की है। पर नकलीसे असलीकी रक्षा करनेको भारतमें सरकारकी आँख नहीं खुलती। मिलावट रोकनेके लिये नाममात्रकी रुकावट है। पर वह कहने भरको है। धोखा चल ही रहा है। असली चीजको गरदनियाँ पड़ रही है और सस्ती मिलावटी चीज उसकी जगह ले रही है। (१०६-'२७)

**११३७. स्नेहोंकी तुलनात्मक पचनीयता :** गोडबोले और सद्‌गोपालके नीचे लिखे आँकड़ेसे स्नेहोंकी पचनीयता स्पष्ट हो जायगी :—

# आँकड़ा—१५२

## कुछ अपचनीय और पचनीय स्नेह

| | | अपचनीय पामिटिक और स्टियरिक ग्लेसराइड्स % | पचनीय ओलिक और लीनोलिक ग्लेसराइड्स % | सरलतासे पचनीय नीचेके स्नेहाम्ल (L. fatty acid) ग्लेसराइड्स % |
|---|---|---|---|---|
| १. | गायकी चर्बी | ५२ | ४६+ | २ =१०० |
| २. | भेड़की चर्बी | ५५ | ४२+ | ३ =१०० |
| ३. | सुअरकी चर्बी | ४० | ६०+ | ० =१०० |
| ४. | भैंसका मक्खन | ४४ | ३४+ | २२ =१०० |
| ५. | गायका मक्खन | ३६ | ४०+ | २३·५= ९९·५ |
| ६. | नारियलका तेल | ९ | ११+ | ८० =१०० |

ऊपरके आँकड़े मालूम होता है कि पचनीयताकी दृष्टिसे नारियलका तेल सबसे श्रेष्ठ है। इसमें सरलतासे पचने लायक ८० सैकड़ा और पचने लायक ११ सैकड़ा, कुल ९१ सैकड़ा पचनीय स्नेह है। गायके घीमें केवल २३·५ सैकड़ा सरल पचनीय और ४० सैकड़ा पचनीय, कुल ६३·५ सैकड़ा पचनीय स्नेह है। पचनीयताकी होड़में दोनोंका आहार मूल्य नीचे लिखा होगा :—

नारियलका तेल ... ९१

गायका घी ... ६३·५

या ३ : २, नारियलका तेल ३ : २ अधिक पोषक है। दोनोंके दाममें कोई तुलना नहीं। गायका घी नारियलके तेलसे ४ गुना मँहगा है।

यदि नारियलके तेलमें कुछ भिटामिन मिला दिया जाय तो बराबर मात्राके घी और इसके दामका अंतर क्या होगा इसका कोई आधार नहीं मिलता। दामका अंतर जो हो पर प्रकारका अंतर तबतक बना रहेगा जबतक, हम दूध और तज्जन्य पदार्थकी पोषणकी विशेषताका पता नहीं लगाते।

**११३८. घीका टिकाऊपन :** घीका टिकाऊपन उसके अम्ल, पानीकी मात्रा और रोशनीमें खुला रहने पर निर्भर है। ताँबा या भारी धातुओंसे दूषित होना भी एक कारण है।

**११३९. घीका ताँबेसे दूषित होना :** पहले ताँबेके दोषों पर ही विचार हो। दूध, घी यदि ताँबेके बर्तनमें रक्खा जाय या उनसे इसका संसर्ग हो जाय तो कुछ ताँबा इनमें घुल जाता है। यह भयानक चीज है, क्योंकि यह स्नेहको सड़ाने लगता है। ज्यों ज्यों सड़ता है सड़न और जादे होती है। ताँबेसे दूषित घी तुरत बिगड़ जाता है। दूधमें ताँबेकी अति सूक्ष्म मात्रा है। यह भी दूधको खराब कर सकता है। पर दूधसे मक्खन निकाल लेने पर बुराईकी यह जड़ मिट जाती है।

**११४० घी पर नमीका असर :** यदि घीमें पानीका कुछ अंश रह गया है तो जीवाणु अपना काम करने लगेंगे। जहाँ पानी और घीका संसर्ग होता है उस स्थान पर क्रिया गहरी होती है। घी खराब हो जाता है। उसकी गन्ध मिट जाती है और धीरे धीरे वह बिक्रीके लायक नहीं रहता। इसलिये इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि, घी में अतिरिक्त नमी नहीं रहने पावे। ठीक तरह से टाँसे घीमें नमी रहनी ही नहीं चाहिये। पर जादे टाँसनेसे इसमें घी खराब हो जानेका डर रहता है जिससे उसका रंग और गंध बिगड़ जाती है। गन्ध ऐसी कोमल वस्तु है कि फिर सुधर नहीं सकती, कितनी ही चेष्टा क्यों न की जाय और भलेही उसे अधिक ताजे घीमें मिला दें। बड़े प्रतिष्ठानों में संभव हो तो थरमामीटर काममें लावें। इसका ध्यान रहे कि, गरमी ११० डिग्री सेन्टिग्रेडसे जादे न बढ़े। घी १२३ डिग्री सेन्टिग्रेड तक गरम किया जा सकता है, पर इसमें खतरा रहता है। अच्छी तरह टाँस लेने पर भी यदि घीमें कुछ गन्दगी या ठोस कण पड़ जायँ तो इससे वह बिगड़ेगा।

घीकी नमी दूर करनेका गोडबोले और सदगोपालने एक रासायनिक उपाय बताया है। टाँसना पूरा हो जाय तो ताजा सुखाया हुआ सोडियम सल्फेट या निर्जलीकृत फिटकरी उसमें डालकर चलाई जाय। ये नमक नीचे बैठ जाते हैं। पर चलानेके समय सारा पानी सोख लेते हैं। इन निर्जल किये हुए द्रव्योंकी उपयोगिता उनकी प्यास पर निर्भर है। वह दाना बनानेके लिये पानी चाहते हैं। सोडियम सल्फेटकी डली गरम करके सुखानेसे उसका पानी उड़ जाता है।

यह निर्जलीकृत पदार्थ यदि घीमें डाला जाय तो वह यदि उसमें कुछ पानी रहा तो सोख लेगा। घी निर्जल हो जायगा। यद्यपि सोडियम सल्फेट निर्दोष वस्तु है फिर भी ठीकसे काम करने से रासायनिक पदार्थ अनावश्यक हैं।

११४१. **घीका लोहेसे संसर्ग :** लोहा और निकल जैसी भारी धातुसे घीका कोई फायदा नहीं होता। लोहेका बर्तन काममें लाना पड़ता है लेकिन जो भाग घीके संसर्गमें रहे वह चमकीला हो। यदि इस भागमें जंग लगी है तो जंगका लोहा घीमें घुल जायगा। यह बुराई पैदा करेगा। घी पर टीनकी कुछ भी क्रिया नहीं होती। लेकिन टिनके कनस्तरमें जंग लगी हो सकती है और इससे दोष शुरू हो सकता है। लोहेके १० लाख अणुओंका ५ भाग भी घीको अति शीघ्र खराब कर सकता है। इससे घीमें मछली या तेलकी गन्ध आ सकती है। यदि घीमें कुछ मुक्त अम्लता हो जो दही के घीमें रहा करती है तो बुराई तेजी से बढ़ती है।

११४२. **घीके मुक्त स्नेहाम्ल :** दहीके बने घीमें साधारण तौर पर कुछ स्नेहाम्ल रहा करते हैं। इन्हें कम रखना चाहिये। साधारण हालतमें मुक्त अम्लता खतरेकी सीमा नहीं पार करती। अम्ल कम रखनेके लिये सब कुछ करना चाहिये। एगमार्क घीकी अच्छी किस्मोंके लिये सरकार ने आदर्श ठहराया है कि, उसमें १·५ से अधिक मुक्त अम्ल न हो। साधारण हरे लेबलकी किस्ममें २·५% ओलिक तेजाब से अधिक नहीं होने का मान है।

अधिक अम्लतासे जल्दी ही सड़न आनेका खतरा है। इसलिये इससे बचना चाहिये।

घीकी अम्लता पोएँटमें बतायी जाती है। एक पोएँट अम्लताका अर्थ है दस ग्राम घीकी वह अम्लता जो दसवें साधारण सोडियम हाइड्रोक्साइडसे बिलकुल नष्ट हो सके। यह ०·२८२ सैकड़ाके बराबर है।

फौजकी जरूरतके लिये ९ पोएँटसे कम अर्थात् २·५ सैकड़ासे कम अम्लता स्वीकार की गयी है। साधारण तौरपर बाजारू घीके अधिक नमूनोंमें ७ से ९ पोएँटके भीतर अम्लता होती है। क्रीमके मक्खनमें ३ से ४ पोएँट अम्लता होती है।

घी में अम्लता दहीकी ही हालतमें नहीं आती। टाँसनेके पहले रखे हुए मक्खनमें भी हो जाती है। रखनेसे वह बढ़ती है। दो वर्ष रक्खे घी में ७ पोएँट तक अम्लता बढ़ सकती है। गरम मौसममें वृद्धि अधिक होती है।

**११४३. सूर्यप्रकाश और घीकी हिफाजतपन :** घीके हिफाजतपन पर सूर्यकी रोशनीका असर भीषण होता है। जो लोग कांचके बर्तन या बोतलोंमें घी रखते हैं यह बात जानलें।

नमी, धातुमिश्रण और अम्लताका असर सूर्य प्रकाशमें तेजसे होता है। इसलिये सूर्यकी सीधी किरणों या दिनके प्रकाशमें जहां तक हो घी खुला न रक्खें। जाड़ेमें घी जम जाता है। उसे पिघला कर निकालनेके लिये बर्तन धूपमें नहीं रखना चाहिये। गरम पानीमें बर्तन रखकर गरमाना सबसे अच्छा है।

**११४४. घी पर तापकी क्रिया :** हवा घीको जलाती है। इससे उसमें सड़ायँध आती है। नमी और हवा साथ साथ काम करते हैं। दोनोंमें कोई अलग भी काम कर सकती हैं। नम हवामें बर्तन खुला रहना सड़ायँध को न्यौता देना है। क्योंकि, नमी, हवा और प्रकाश तो घी के खुले भागपर ही धावा बोलते हैं पर खुले भाग पर ही केवल बुराई नहीं होती। बिगाड़ पीछे सब जगह फैल जाता है।

**११४५. घीके दोषों पर कैरोटीनका बाधक क्रिया :** जिस तरह हवा, रोशनी, नमी और धातुके दोष से घी जलता है उसी तरह ऊपरके दोषके दूतोंके खिलाफ घीमें एक क्रिया होती है। यह कैरोटीनका प्रभाव है। कैरोटीन जलानेके कारणोंको नष्ट करता है। गायके घीमें कैरोटीन अधिक है। इसलिये समान परिस्थितिमें वह शायद भैंसके घीसे अधिक टिकाऊ है। क्योंकि भैंसके घीमें कैरोटीन नहीं है। (५२०)

यदि ठीक तरहसे घी बनाकर सावधानीसे बिना जंगकी सूखी टिनमें रख तुरत बन्द कर दिया जाय तो वर्षभर तो उसमें सड़ायँध नहीं आवेगी। पर कोई त्रुटि रह जाय तो वह गड़बड़ी खड़ी कर सकती है।

यह देखा गया है कि, घीमें जरासे अधिक तेजाबसे बाधकगुण पैदा होता है। इसमें कबीला मिलानेसे यह और भी बढ़ता है।—(इंडियन जरनल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, दिसम्बर १९४०-४१, पृ० ३६१)

बरसातके तैयारी घीसे नबम्बर और मार्चके बीचका घी अच्छा होता है। बरसाती घी घटिया माना जाता है और टिकाऊ नहीं होता।

**११४६. टिन भरना :** टिनमें घी भरनेके पहले देख लेना चाहिये कि, उसमें पानी नहीं है। बरसात या कुहरेके दिनकी नम हवा टिन भरनेके लिये बुरा

है। टिन भरनेके पहले देख लेना चाहिये कि टिनमें नम हवा नहीं है। आग पर टिन जरा गरम लेनेसे काम हो जाता है।

११४७. **घीका मान :** दूधकी तरह घी भी पशुकी नस्ल, आहार, आवहवा और मौसमके अनुसार तरह तरहका होता है। इसलिये सभी हालतोंके लिये एक मान स्थिर करना कठिन है। शुद्धताका विचार करके मान स्थिर करनेकी कोशिश की गयी है। अब घी सरकारी मार्काका मिल सकता है। यह बताये मानके अनुसार होगा। घी उत्पत्तिके कुछ बड़े केन्द्रोमें यह व्यापारिकी बहुत बड़ी वस्तु है। वहाँ थोक व्यापारी अपनी दूकानका सरकारसे लाइसेन्स ले सकते हैं। सरकारी रासायनिक देखेगा कि, उनका माल मानके अनुसार है। सभी खर्च उनको देना होता है। इस प्रणालीमें थोकदार घी खरीदकर सरकारी नियंत्रणके गोदाममें रखता है। यहाँ सरकारी आदमी उसकी जाँच करते हैं। जो माल न्यूनतम मानसे कम होता है वह गोदामसे हटा दिया जाता है।

पास किया हुआ माल कोटिके अनुसार छाँट दिया जाता है। इनके नमूनोंकी विशेषता नीचे दी गयी है। टिनका मुँह राँज दिया जाता है और वहाँ पर एक लेबेल चिपका दिया जाता है, जिससे कि सरकारी मान बतानेवाला लेबेल बिना हटाये टिन खुल न सके।

# आँकड़ा—१५३

## ऐगमार्क घीका मान

| | गायका घी पीला लेबेल | भैंसका घी नीला लेपेल | स्पेशल लाल लेबेल | साधारण हरा लेबेल |
|---|---|---|---|---|
| बियूटरो परीक्षण ४०° से० पर | ४०-४२·५ | ४०·५-४२·५ | ४०·५-४२·५ | ४०·५-४३·५ |
| इतने सैकड़ासे अधिक नमी नहीं | ०·५ | ०·५ | ०·५ | ०·७५ |
| साबुनीकरण मूल्य | २२२-२२६ | २२६-२३४ | २२२-२३४ | २२०-२३६ |
| रेकर्ट माइसल मूल्य | २६-२८ | ३० से कम नहीं | २८ से कम नहीं | २४ से कम नहीं |
| मुक्त स्नेहाम्ल इतने सैकड़ासे अधिक नहीं | १·५ | १·५ | १·५ | २·५ |

११४८. **मानकी उपयोगिता :** मान इस तरह बताया गया है कि, यदि घीमें तेल या चर्बी मिलाया जाय तो मानकी सभी बातें ठीक नहीं उतरेंगी। मिलावटी मालमें मानसे कुछ न कुछ कम होगा ही। मान लीजिये घीमें तेल इस तरह मिलाया गया है कि, रेकर्ट माइसल मूल्य नमूनेके जैसा हो गया। मिलावटी माल आर० एम० जाँचमें तो पास हो जायगा पर रिफ्रैक्टोमीटर की जाँचमें गिर जायगा। मिलावटकी पकड़ साधारण तौरपर इन्हीं दो जाँचोंसे की जाती है।

११४९. **घीकी बियूटरो-रिफ्रैक्टोमीटर जाँच :** जब प्रकाश किरण एक माध्यमसे दूसरे पर जाती है तो उसकी दिशा जरा बदल जाती है। यदि पानीमें कोई लकड़ी डुबायी जाय तो जहाँ पर वह पानीमें डूबती है वहाँ टेढ़ी मालूम होती है। सीधी दिशासे वक्रताका कोण नापा जा सकता है। अनुवीक्षण यंत्रकी तरहके यंत्रसे विभिन्न तरल पदार्थोंमें होकर जानेवाली किरणकी वक्रगतिका कोण जाना जाता है। मक्खन ही लीजिये। मक्खन पिघला कर पतला कर लिया जाता है और यंत्रसे किरणकी बदली दिशाका कोण जाना जाता है। कुछ अंक यंत्रमें ही पढ़ लिये जाते हैं। पर यह परिवर्त्तनके कोण पर निर्भर है। मक्खनके लिये ४०·५ से ४२·५ कोण माना गया है। बियूटरो-रिफ्रैक्टोमीटरमें कुछ तेलोंके बारेमें निम्न अंक निकलता है।—(गोडबोले और सदगोपाल)

## आँकड़ा—१५४

### विभिन्न स्नेहोंके बियूटरो-रिफ्रैक्टोमीटरके अंक (४० डिग्री सेन्टिग्रेड पर)

| | |
|---|---|
| कोकोजम | ३४·२ |
| नारियलका तेल (कोचीन) | ३४·२५ |
| जैतून ,, | ५४·७ |
| तिल ,, | ५९·० |
| तीसी ,, | ६२·० |
| भेड़की चर्बी | ४५·५ |
| गायकी चर्बी | ४९·० |
| वनस्पति | ५१·५५ |
| मारगरीन | ५०·३–५२·२ |

मक्खनके लिये निर्धारित ४०·५ से ४२·५ की बि० रि० यंत्रकी गणना कोई तेल अकेले ही पास नहीं कर सकता। लेकिन कुछ मिश्रणसे वह मक्खनके नमूनेसा हो सकता है। गोडबोले और सद्गोपाल इसका उदाहरण देते हैं :

| स्नेहोंकी मिलावटका ढंग | ४० डिग्रि सेन्टिग्रेड पर रिफ्रैक्टोमीटरका अंक |
|---|---|
| १. सुअरकी चर्बी, घी और नारियलका तेल | ४३·५ |
| २. कड़ी चर्बी, घी और नारियलका तेल | ४४·० |
| ३. वनस्पति, घी और नारियलका तेल | ४२·४ |
| ४. कड़ी चर्बी १०%, घी ७५%, पैराफीन मोम ५% और नारियल तेल १०% | ४१·० |

देख सकते हैं कि, घी के साथ कुछ तेलोंकी मिलावट उसे घी के नमूने जैसा रखता है। उस्तादी यह है कि, घी को बीचकी हालतमें रख कर उसमें जादे और कम अंककी चीजें मिलायी जाती हैं। नारियल तेल का अंक कम है और चर्बी या वनस्पति का जादे है। इस ढंगसे की गयी मिलावटसे बि० रि० मीटरमें मिलावटी माल भी शुद्ध सिद्ध होगा।

नमूनेमें कितना उड़नेवाला स्नेहाम्ल है उसे रे० मा० अंक अपने ढंगसे बताता है। कड़े कोटिके घीका रेकर्ट माइसल मूल्य २६ से ३० माना गया है।

## आँकड़ा—१५५

### कुछ चर्बी और तेलोंका रेकर्ट माइसल मूल्य

| | | |
|---|---|---|
| नारियल तेल | ... | ६-८·५ |
| सुअरकी चर्बी | ... | ०·३-०·९ |
| कड़ी चर्बी | ... | ०·१-०·६ |
| घी | ... | २६-३० |

इसके बारेमें यह साफ है कि, साधारण मिलावटके कामकी चीजोंका मूल्य बहुत कम है, पर पैराफीन मोम मिला कर उस्तादी की जा सकती है।

११५०. **मिलावटी घी जाँचमें पास हो जाता है :** गोडबोले और सद्‌गोपालकी चार नं० की मिलावटमें २५ सैकड़ा मिलावट है। फिर भी वह घी के नमूनेसा ही दिखायी पड़ता है।

# आँकड़ा—१५६

## असली और मिलावटी घीका भेद

कड़ी चर्बी १०%, घी ७५%, पैराफीन मोम ५% और नारियल तेल १०% की मिलावटका मूल्य।

| | मिलावटी नमूनेका यंत्रमें अंक | हरे लेबेलके घीका यंत्रमें अंक |
|---|---|---|
| बियूटरो रिफ्रैक्टोमीटरमें अंक | ४१·० | ४०·५–४२·५ |
| रेकर्ट माइसल मूल्य | २५·६३ | २४–३० |
| साबुनीकरण मूल्य | २२२·३ | २२०–२३६ |

ऊपरके अंकसे यह साफ हो जायगा कि, धूर्त व्यापारी २५ सैंकड़ा मिलावटकी चीज भी सरकारी जाँचमें असली सिद्ध करा लेगा। असल बात यह है कि रासायनिककी सहायता घी में मिलावट करके उसे असलीसा बनानेमें ली जाती है।

सरकारी मानमें और भी त्रुटियाँ हैं। यह कहा जा चुका है कि घीके नमूनेमें आहार और नस्ल आदि कई कारणोंसे फर्क हो जाता है। सरकारी नमूना प्रकाशित होने पर बम्बई और काठियावाड़के व्यापारियोंने सिद्ध किया कि, कुछ बातोंमें उनका असली घी सरकारी मानसे नीचा रहता है। इसका मुख्य कारण यह था कि वहाँ गायको बिनौला और खली खिलायी जाती है। इसके भक्खनका अंक यंत्रमें दूसरा निकलता था। इसके बाद बम्बई और केन्द्रीय सरकारोंने दूसरा मान स्थिर किया।

इसलिये नमूनेमें घी बननेकी जगहका भी जिक्र किया रहता है।

एन० एस० डाक्टर, बी० एन० बनर्जी और जेड० आर० कोठावालाने "इंडियन जर्नल आफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, मार्च, १९४० में एक लेख लिखा है। अपनी खोजके फलस्वरूप घीकी नीचे लिखी सीमा उसमें दिखायी है :—

# आँकड़ा—१५७

## घीके प्रस्तावित मान

| | गाय | भैंस |
|---|---|---|
| बि० रि० अंक ४०° सेन्टिग्रेड पर | ४०·० —४५·२ | ४२·५—४३·६ |
| आर० एम० मूल्य | २३·० —३० | ३०·२—३१·७ |
| पोलन्सकी ,, | १·९ — ३·० | १·५— २·० |
| क्रिशनर ,, | १७·० —२४·२ | २६·६—२६·८ |
| साबुनीकरण ,, | २१९·० —२३० | २२९·०—२३९ |
| आयडीन ,, | २९·० —४२·३ | ३०·८—३४·९ |
| मुक्त स्नेहाम्ल प्रति सैकड़ा | ०·२१—०·९१ | ... ... |

एगमार्क घीके सरकारी मानसे इन अंकोंका मेल पूरा पूरी नहीं होता। सरकारका ध्यान इस तरफ है। घीका नमूना स्थिर करनेके लिये बंगलूर की प्रयोगशालामें खोजका काम बनर्जीको सौंपा गया है। घी की मिलावटमें इन नमूनोंसे चाहे जो कुछ हुआ हो सुधार इससे जरा भी नहीं हुआ।

११५१. **घीकी मिलावट :** कुछ लोग कह सकते हैं कि, वर्तमान नमूनेके घीमें २५ सैकड़ा मिलावटका ब्यौरा देनेकी क्या जरूरत है। यदि इस घृणित व्यापारके करनेवाले साधनहीन नौसुखिए होते तो इसकी जरूरत नहीं होती। कानूनको धोखा देकर मिलावट करनेकी इन्हें सभी सुबिधा प्राप्त हैं। ये रासायनिकोंकी मदद भी लेते हैं। घीमें मिलावट करना चरम सीमाको पहुँच गया है। आहार संबन्धी कानून शिथिल पड़ गया है। कम साधन सम्पन्न ही इससे डरते हैं। मुख्य अपराधी बच जाते हैं।

११५२. **वनस्पति या जमाया हुआ तेल (हाइड्रोजेनेटेड) :** घी पर असली चोट इन दिनों हाइड्रोजनसे सिद्ध तेल और चर्बी कर रहे हैं। पतले तेल को एक उपायसे कठीला किया जा सकता है। उसे हाइड्रोजेनेशन कहते हैं। इससे तेलका रंग और गंधभी उड़ जाती है। तेलमें निकिल जैसे उत्प्रेरकके सामने हाइड्रोजन मिला दिया जाता है। इससे इस क्रियाका नाम हाइड्रोजेनेशन

है। हाइड्रोजेनेशनके बाद तेल रंग और गंधहीन हो जाता है। साबुनके लिये चर्बी सी कड़ी चीज चाहिये। वह हाइड्रोजन-सिद्ध तेलसे बन सकती है। कितना कड़ापन और कैसी बनावट पदार्थकी हो यह कारीगरके हाथकी बात है। ऐसी चीजसे कारीगर किसी स्नेहकी नकल तैयार कर सकता है।

११५३. **वनस्पतिकी मिलावट :** असलमें घीकी हर बातकी—रंग, बनावट और दाना नकल करनेके लिये हाइड्रोजन-सिद्ध तेल तैयार किया जाता है। घीकी गन्ध उसमें लानेके लिये नकली गन्ध बनानेके कारखानेभी तैयार हैं। घीकी हूबहू नकल तैयार की गयी है। इसे व्यापारी घीमें मिलाते हैं या इसमें एक बूँद मिलाये बिना भी घी कह कर ही चला देते हैं। वनस्पति-घीके नामसे प्रसिद्ध यह चीज रिफ्रैक्टोमीटर या रेकर्ट माइसल जांचमें पास नहीं हो सकती। पर यह कोई रुकावट नहीं है, क्योंकि या तो कानून है नहीं या आँख मूँदे हैं।

कठिनाई पर कठिनाई यह है कि, घीकी जाँच भी एक कला है। खास तौर पर सजो प्रयोगशालाके सिवा यह दूसरी जगह हो नहीं सकती। पर सरकार चाहे तो इसे या उसकी घीमें मिलावट पकड़नेके लिये सरल उपाय कर सकती है। लेकिन किया कुछ नहीं गया है। राइटने वनस्पतिका जिक्र किया है। हाइड्रोजन सिद्ध तेलका यही नाम पड़ा है। इसका अर्थ वनस्पतिसे बनी चीज जो घी नाम पर चलायी जाय। इसे वनस्पति घीके नाम पर भी बेचा जाता है। राइट साफ तौर पर कहते हैं :

"घीमें औसत मिलावट कितनी होती है यह बतानेवाला कोई आँकड़ा मिलता नहीं। मिलावटके मुख्य स्नेह, 'वनस्पतिन', 'चर्बिनी' और कुछ शुद्ध तेल जैसे, नारियल, मूँगफली और बिनौलेके तेल हैं। भारतमें ये पदार्थ जिस परिमाणमें प्राप्य हैं उसके अकसे इन चीजोंकी मिलावटका मोटा अंदाज किया जा सकता है। वनस्पतिन ५ कारखानोंमें बनती है। कहा जाता है कि ये कारखाने (१९३७) हर साल ३३,००० टन माल तैयार कर सकते हैं, लेकिन आजकल शायद २५,००० टनसे जादा नहीं बनता। इसके अतिरिक्त १,००० टन विदेशोंसे आता है। कुछ कारखानेदारोंका कहना है कि, कुल माल अर्थात् २३,५०० टनका प्रायः ९० सैकड़ा घीमें मिलानेके काममें आता है।"—(राइटकी रिपोर्ट, पृ० ३४)

यह बात १९३७ की है। तबसे और भी कारोखाने जरूर खड़े हो गये हैं। तथाकथित वनस्पति-घीका घीमें मिलाना तेजी से बढ़ रहा है।

गाँववाले भी इसके बारेमें जान गये हैं। अब वह दही जमानेके लिये गरम दूधमें भी इसे मिलाने लगे हैं। वनस्पति मिलानेसे इतना मक्खन और निकल आता है। इसे वह घी गलानेवालोंको देते हैं। इसके सिवा थोक और खुदरा बेचनेवाले बड़े नफेके लिये इसे काममें ला रहे हैं। लड़ाईके पहले वनस्पतिका दाम बारह तेरह रुपये मन था और घीका ४० रुपये मन। इतना बड़ा लोभ थोड़े ही लोग छोड़ सकते हैं। खासकर तब जब कि, जनता रासायनिक की सहायता बिना यह धोखेबाजी पकड़ नहीं सकती।

खानेवालोंकी रक्षाके लिये सरकारको यह सलाह दी गयी थी कि हौलेन्डमें जैसे मक्खन मारगरीनकी मिलावटसे बचाया गया वैसा ही कुछ काम वह करे।

तिल तेलमें कुछ ऐसे द्रव्य हैं जिनसे वह जाँचमें पकड़ा जाता है। इसके लिये कुछ तेजाब मिलानेकी जरूरत होती है। इससे उसमें ललाई आ जाती है। हौलेन्डमें जमाये तेलमें कुछ तिल तेल मिलानेके लिये कानून कारखानोंको बाध्य करती है। इससे यदि यह पदार्थ मक्खन या अन्य गव्यमें मिलाया जाय तो साधारण अम्ल परिक्षासे ही पकड़ा जायगा। व्यापारिक सूचना विभागकी (कमर्सियल इन्टेलिजेन्स विभाग) कृपासे मैंने यह नियम पाये हैं। भारतमें भी यही उपाय काममें लानेके लिये आन्दोलन हो रहा है। पर हुआ कुछ नहीं है और धोखाबाजी बेरोक चल रही है। इस मामलेमें भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषदकी रिपोर्ट (१९४१-४२) से आजको स्थिति जान सकते हैं।

"घीमें वनस्पतिकी मिलावट रोकना : इस प्रश्न पर समितिका ध्यान बहुत दिनोंसे है। सचालक समिति ने अपनी जुलाई १९४१ की बैठकमें दूध और दुग्ध पदार्थ समिति और परामर्श समिति की इस विषयकी सिफारिश पर विचार किया।

"(१) आहारकी मिलावटका कानून पूरे प्रान्त या राज्यमें लागू किया जाय। वह शहर या म्युनस्पल्टीकी सीमाके भीतरही तक लागू न रहे।

"(२) ये कानून अधिक चतुराईसे काममें लाये जायँ। जहाँ जरूरी हो अपराधियोंको सबक सीखनेवाला जुरमाना किया जाय। (प्रान्तीय और रियासती सरकारोंका ध्यान इस तरफ दिलाना खास तौर पर जरूरी है)।"

"(३) मार्केटिंग अफसरोंको आहारमें मिलावटके कानूनके अनुसार जाँच करने और नमूना उठने का अधिकार दिया जाय।

"(४) घी और वनस्पतिके सभी थोक, खुदरा और फेरीसे बेचनेवालोंको लाइसेन्स दिया जाय। एक ही आदमीको दोनों तरहके मालका लाइसेन्स नहीं दिया जाय।

वनस्पतिके साथ तिल तेलकी मिलावट।

"(५) जमे तेल (जैसे वनस्पति) के सभी कारखानावालोंको बाध्य किया जाय कि हाइड्रोजेनेशन के बाद वह उसमें कमसे कम १० सैकड़ा तिल तेल मिलावें।

"(६) वनस्पति या इसी तरहके जमाये तेल बन्द टिनमें ही बेचे जायँ और उनपर उचित लेबेल लगा रहे।

"(७) घी और मक्खन जाँचनेके उपायमें सुधार करनेके लिये और खोज की जाय।

"प्रान्तों और रियासतोंको इन सिफारिशोंकी सूचना देना और उनका मत जानना तय हुआ। वनस्पतिमें रंग डालना अनिवार्य करनेके बारेमें भी पूछा जाय। रंगसे वह घृणित या नहीं बेचने लायक नहीं हो।"—"(पृ० ५३-'४)

११५४. घीमें मिलावटकी पहचान : उसी रिपोर्टमें घीकी मिलावट जाननेके लिये खोजके कामकी योजना पर नीचे लिखी बात है :—

"...यह काम प्रो० बी० एन० बनर्जीकी देखभालमें अब बंगलूरके इंडियन साइन्स इंस्टीट्यूटके जिम्मे किया गया है। योजनाका उद्देश्य है कि, घी में चर्बी और तेलोंकी मिलावट चट कर पकड़नेका सरल उपाय निकालें।"—(पृ० ५३)

"वनस्पति" का अत्याचार इतना बढ़ गया है कि, शुद्ध घी कौन कहे, बाजारमें शुद्ध चर्बी मिलना भी मुश्किल है। अच्छी कड़ी चर्बीका दाम २० से २५ रुपया मन था (लड़ाईके पहले)। यदि १२ रुपया मनकी वनस्पति चर्बीके नामसे बिक सकती है तो शुद्ध चर्बी नहीं मिल सके यह ठीकही है।

११५५. मिलावट जारी है : आजकल मिलावटका बाजार गर्म है। ऊपर घीका विचार हो चुका है। दूधकी मिलावटकी चर्चा पीछे होगी। कानून हैं। वह चलाये भी जा सकते हैं। और भी कड़े कानून बना कर उनसे कड़ाईसे काम लिया जा सकता है। यह सारी दौड़धूप बेकार है।

सस्ता दाम ध्येय हो गया है। इससे मिलावटकी मनोवृत्ति बढ़ती ही जायगी। खानेवाले सस्ती चीज चाहते हैं। इससे इस काममें और भी दुविधा है। कारखानेवाले सस्ता करनेकी होड़में आदेसे जादे मिलावट करते जायेंगे। जनता और

यह युग सस्ती चीज चाहता है। इसका तार लगातार रहेगा। आजके वातावरणमें कानून जादा कुछ नहीं कर सकता। कड़ा कानून और कड़ाईसे उसका पालन अच्छा है पर सस्तेपनकी होड़ रोके बिना केवल कानून कुछ नहीं कर सकता।

११५६. **सस्तेके बदले उचित दाम : विचार बदलना होगा।** सस्तापन ही सब कुछ नहीं है। सस्तेपनके पीछे दौड़नेसे—सस्ती शिक्षा, सस्ता खाना, सस्ता कपड़ा, सस्ती मुकदमेबाजी, और सस्ती सफलतासे हम जीवनको ही सस्ता बना रहे हैं। जो करने लायक नहीं वही कर रहे हैं। सस्तेपनके पीछे पागल, सारे मनुष्य समाजकी नैतिकता ही नष्ट हो गयी है।

मनुष्य चीजोंके उचित दाम देना सीखे। सस्तापन औचित्यको दबा देता है और इसके पीछे जो दौड़ते हैं उनका वह नाश करता है। बहुमूल्य चीजोंका जैसे कि, बहुमूल्य दूध और घी तथा बहुमूल्य शिक्षाका शौक हममें बढ़े। सस्तेपनके कारण हमारा जीवन निस्सार हो गया है। वैसा नहीं रहेगा तब सच्चा जीवन होगा, वह बहुमूल्य होगा, आनंददायक होगा, और तब मिलावट करनेवाले अपने आप अपना धन्धा छोड़ देंगे तथा अच्छी चीज बनावेंगे और बेचेंगे। मिलावट करना किसी रोगका लक्षण है। कानून केवल लक्षण मिटाकर दुख दूर नहीं कर सकता। मनुष्यके सामाजिक मूल्य बदलने होंगे।

११५७. **खोआ :** दूध गाढ़ा करके खोआ बनाया जाता है। इसमें दूधके सभी पोषक तत्व रहते हैं। इसलिये यह दूधके अम्ल पदार्थोंसे श्रेष्ठ है। पानी मिलाकर इससे दूध फिर नहीं बनाया जा सकता क्योंकि इसकी प्रोटीन गरम करनेसे अघुलनशील हो गयी है। दूध वगैर नष्ट हुये रखनेका यह सुन्दर उपाय है और काममें भी खूब लाया जाता है। हलवाई इसे कई दिन तक रखते हैं और बाजारकी जरूरतके मुताबिक इससे माल तैयार करते हैं। अच्छी तरह रखनेसे यह ४ या अधिक दिन तक रखा जा सकता है। चीनी मिलानेसे यह बहुत दिन तक, मौसमके अनुसार ३ या ४ महीने तक ठीक रह सकता है। भारतमें कुल दूधके ५ सैकड़ेका खोआ बनता है।

उत्तरी और पच्छिमी भारतमें इसका प्रचार अधिक है। युक्तप्रान्त और सिन्धमें यह वस्तु, विशेष रूपसे प्रिय है। इन प्रांतोंमें कुल दूधका ११·६ और ९ सैकड़ा खोआ बननेके काममें आता है। कहा जाता है कि, युक्तप्रान्तमें बहुतसे हाट और मेले लगते हैं। इनके कारण खोआकी बिक्री बढ़ी है, क्योंकि इनमें मिठाईकी अनेक

दुकानें कुछ दिनोंके लिये खुल जाती हैं जिनमें यह पौष्टिक पदार्थ बहुत बिकता है। खोआ अत्यन्त सघन पदार्थ है। सघनताका अनुपात १ : ६ अर्थात् ६ सेर दूधमें १ सेर खोआ होता है। इससे डब्बेके विदेशी दूधकी तुलना नहीं हो सकती। डब्बेके दूधका गाढ़ापन १ : २·५ या १ : २·४ अर्थात् २·५ रत्तल शुद्ध दूध या दुद्धीका १ रत्तल टिनवाला दूध होता है।

खोआ बनानेमें बड़ी होशियारी करनी होती है। २½ सेर दूधसे आधा सेर खोआ तैयार होता है। एक घानीमें २½ सेर दूधका ही खोआ बनाया जाता है। क्योंकि बनानेकी विधिकी आखिरी क्रियामें जोरसे चलाना और खुरचना होता है और साथही निगरानी भी रखनी होती है। इसलिये बड़ी घानी लेनेसे यह क्रिया हो नहीं सकती।

दूध लोहेकी गोल पेंदे और कन्नेदार कड़ाहीमें छोड़ा जाता है। कड़ाहीका पेट खूब साफ चमकीला किया जाता है। १२ से १५ सेर दूधके लायक कड़ाही होती है। कड़ाहीमें दूध छोड़कर उसे भट्ठीपर चढ़ाते हैं। दूध छीलनी से बराबर चलाया जाता है। दूधमें उफान आने लगता है। परन्तु उसे बराबर चलाते रहनेसे वह पेंदेमें लगता नहीं है। दूध बहुत उफनता है। गड़बड़ी रोकनेके लिये कभी कभी उसकी आँच कम या जादे करते हैं। जब दूध गाढ़ा होने लगता है तब और जोरसे चलाना होता है। सहूलियतके लिये कुछ लोग अन्तमें एक कण फिटकिरी उसमें मिला देते हैं। गुजरात और काठियावाड़में फिटकिरीका काम जरासा दही या नीबूके रससे लेते हैं। फिटकिरी डाले या बिना डालेभी आँच लगाकर चलाते रहनेसे दूध एकाएक जमकर मुलायम लोंदा बन जाता है। फिटकिरी मिलाना जरूरी नहीं है, सिर्फ इससे कुछ सहूलियत होती है। नहीं तो यह काम केवल गरम करनेसे ही हो जाता है। पूरा जमनेके पहलेही कड़ाही उतार ली जाती है पर चलना जारी रहता है जिससे रही सही नमी भी उड़ जाय। इसके बाद सब माल कड़ाहीमें जमाकर निकालते और पत्तल पर रखते हैं। एक घानीमें १०-१२ मिनट लगते हैं। एक घंटेमें पाँच छ लोंदा तैयार होता है।

बननेमें जितनी देर लगती है उसे जल्दी ही समझनी चाहिये। क्योंकि आध मनके लगभग दूधका २ घंटेमें खोआ तैयार हो जाता है। सुन्दर रंगका चिकना खोआ बनानेमें बनानेवालेकी कारीगरी ही असली चीज है। गायके दूधका खोआ जरासी पीलाई लिये रहता है। भैंसके दूधका खोआ उजले रंगका होता है। यों

तो सारा कामही होशियारीसे करनेका है पर जब गाढ़ा दूध जमने लगता है उस समय विशेष होशियारी करनी होती है।

तापसे दूध तब जमता ह जब उसमें स्नेह-रहित-ठोस पदार्थ ४० सैकड़ा या कुल ठोस पदार्थ ६० सैकड़ा हो जाय। अर्थात् जमनेका अनुपात ४·५ से ४·८ हो जाय। कुछ जमना चूल्हे पर ही होता है और शेष चूल्हे परसे उतार कर।

जम जानेके कारण मावेके कणमें तैरते रहनेका गुण नष्ट हो जाता है। इसलिये यदि खोआ खौलते पानीमें घोला जाय तो वह नीचे बैठ जाता है। इसकी प्रोटीनकी घुलनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। यह एक विचित्र बात है कि, इतनी तेजीसे चलाने पर भी स्नेहको बुन्दकियाँ अलग नहीं होतीं। खोआमें तेलकी चिकनई नहीं होती। महीन छेदोंमें चापके द्वारा दूध पार करनेसे स्नेहकी बुन्दकियाँ अलग हो जातीं हैं। इसे होमोजेनेशन कहते हैं। इतनी जटिल मशीनके द्वारा जो काम होता है चतुराईके साथ चलानेसे वही हो जाता है। खोआ बनानेमें स्नेहकी बुन्दकियाँ उसमें घुली मिली रहती हैं, मुक्त अवस्थामें कुछ भी नहीं पायी जाती हैं।

खोआ बहुत सुन्दर चीज है और टिकाऊ भी है। ताजे खोआमें जीवाणु या उसके बीज नहीं होते। क्योंकि, तापसे वह नष्ट हो जाते हैं। पँचसेरी हाँडीमें भी आध मन दूधका खोआ अँट सकता है। खोआमें लैक्टोजके बहुत महीन कण होते हैं। डब्बेके दूधमें लैक्टोजके कण प्रायः किरकिराते हैं। पर खोआमें यह बात नहीं होती। खोआ गन्दगीकी छूत लगनेसे ही सड़ता है। यह पत्तोंपर खुला रक्खा जाता है। इससे जीवाणु और फफूँदकी छूत उसमें लग जाती है। फफूँदेसे अधिक हानि नहीं है। पहले बाहरी ओरका रंग बिगड़ता है। बिगड़ना शुरू हो गया इसकी यह सूचना है। इसके बाद साराका सारा बिगड़ जाता है, उसमें फफूँदे लग जाते हैं और खाने लायक नहीं रहता।

खोआ जीवाणु रहित रखनेका सस्ता उपाय उसमें चीनी मिलाकर रखना है। बहुतायतके समयकी उत्पत्ति, अभावके समय तक रक्खी जा सकती है। इसीसे कमी वेशीका लेखा जोखा पूरा हो सकता है। चीनी कड़ाहीमें ही मिलानी चाहिये।

**११५८. गाढ़ादूध (खीर—बंगाल) :** गाढ़े दूधको बंगालमें खीर कहते हैं। गाढ़ेपनका अनुपात १ : ३ या १ : ४ है। यह चीज गाढ़ी और चिपकनी होती है। कभी कभी इसमें चीनी भी मिलायी जाती है। ऐसे मीठे गाढ़े दूधमें

डब्बेके दूधकासा स्वाद होता है। खोआसे यह कहीं कम टिकाऊ होती है। यह दिनके दिन खा लेनेकी वस्तु है। इसमें पानीका अंश भी रहता है। इसलिये इसमें लैक्टोजके दाने मोटे किरकिरे हो जा सकते हैं। खासकर चीनी रहित प्रकारमें यह जादे होता है। लेकिन यह बहुत अधिक दिन तक रक्खी नहीं जाती। इसलिये इसमें लैक्टोजके दाने मोटे हों इसकी संभावना कम रहती है।

११५९. **रबड़ी :** गरम दूधको ठंढा करनेसे उसके ऊपर मलाईकी परत पड़ जाती है। यदि धीमी आँच पर दूध गरम किया जाय और उसकी भाफ जल्दीसे उड़ानेके लिये पंखा किया जाय तो मलाई जल्दी पड़ती है। रबड़ी बनानेका रहस्य यही है। चौड़े मुँहकी कड़ाहीमें दूध गरम किया जाता है और उस पर जल्दी जल्दी पंखा किया जाता है। जैसे जैसे मलाई पड़ती जाती है उसे बाँसकी पतली कमाची से उठा कर कड़ाहीके किनारे डालते जाते हैं। इसमें जो थोड़ा पतला दूध चला आता है वह बह कर बाकी दूधमें मिल जाता है और इस तरह मलाईकी तह पर तह पड़ती जाती है। जब कड़ाहीका बचा दूध जितना चाहिये उतना गाढ़ा हो जाता है तब उसमें चीनी डाल कर चासनी जैसा बना लेते हैं। सूखी मलाई चासनी जैसे दूधमें डाल दी जाती है और सबको मिला दिया जाता है। एक रत्तल दूधमें दो आउन्स चीनी डालते हैं। सूखी दूधमें मिलानेके बाद कुछ देर और उसे गरम करते हैं। तैयार रबड़ी गाढ़े मीठे दूधमें पड़ी मोटी मलाई है।

अधिक मिठास जिन्हें भाता है उनके लिये दूधकी चीजोंमें रबड़ी भी एक बहुत रुचिकर पदार्थ है।

११६०. **दही :** दूधके पदार्थोंमें यह भी मुख्य है। कुल दूधके ५७ सैकड़ेसे घी बनाया जाता है और घी मुख्य रूपसे दहीके द्वारा ही बनता है। मदरासमें घी बनानेके लिये जितना दही जमाया जाता है उसे छोड़ कुल दूधके ११ सैकड़ाका दही बाजारमें बिकता है। दही खानेवालोंकी सूचीमें मैसूर सबसे पहला है। यहाँ कुल दूधके १९ सैकड़ाका दही खाया जाता है। इसके बाद सिन्ध और काश्मीर हैं। यहाँ १४ सैकड़ा दही होता है। पंजाबमें यह कम पसन्द किया जाता है। वहाँ केवल १·१ सैकड़ा यह तैयार होता है पर उसीके पड़ोसी सीमाप्रान्तमें १० सैकड़ाका दही खाया जाता है।

दूधको टिकाऊ बनानेका सबसे सरल उपाय उसका दही बनाना है। इस तरह यद्यपि अम्लता (खट्टापन) बढ़ती रहती है पर वह कई दिन तक रह सकता है।

इस बातको छोड़ उसका आहार गुण ठीक वैसा ही रहता है जैसा जामन डालनेके पहले था।

ऊँचे दर्जेका स्वादिष्ट दही बनानेमें बड़ी कारीगरी खर्च की जाती है। साधारण उपाय यह है कि, दूध खूब गरम कर उसके जीवाणु नष्ट कर दिये जाते हैं। इसके बाद गुनगुना करके उसमें जामन मिलाते हैं। जामनके लिये पहलेका ही दही काममें आता है। दही मिट्टीके साफ बर्तनमें जमाया जाता है। अधिक कड़ा और स्वादिष्ट दही बनानेके लिये दूधको गरम कर गाढ़ा कर लेते हैं। इसमें चीनी मिला सकते हैं इससे उसमें अधिक अम्लता नहीं हो सकेगी। ठंडा होनेके समय दूधको छेड़ते नहीं हैं। इससे उस पर मलाई जम जाती है। जामन चलाये बिना ही छोड़ना चाहिये। जामन थोड़ासा ही, दूधके परिमाणके अनुरूप दिया जाता है। ताप बना रहे इस लिये दहेंड़ीको ताप अवाहक ढक्कनसे ढाँकते हैं और पुआल आदिको गेंडुली पर रखते हैं। गरमीमें दही ६ घंटेमें जम सकता है। जामनकी कमी वेशी करनेसे जमनेमें दो या अधिक दिन की देर लग सकती है। किसी विशेष अवसर पर अधिक दहीकी मांग पूरी करनेके लिये ग्वाले इसी रीतिसे कई दिन आगेसे दही जमाने लगते हैं।

अच्छा दही देखनेमें साफ, चिकना ठोस एकरस मालूम होना चाहिये। उसमें पानी और बुलबुले (गैसके) नहीं होना चाहिये। दही काटने पर चिकना और छेद रहित हो। गैस बनना हानिकारक संधान क्रियाका (फफदना) द्योतक है। कभी कभी उसमें सुराका संधान भी होने लगता है, इससे उसका स्वाद तीखा हो जाता है। असावधानी और अशुद्ध जामन मिलानेसे यह होता है। यह लैक्टो-बेसीलस एसीडोफील्सकी करनी है। ये जीवाणु भिन्न भाववाले हैं और हमारी अँतड़ियोंमें रह सकते हैं। यह जीवाणु अँतड़ियोंमें रह स्वास्थ्य-हित कार्य करते हैं। हानिकारक जीवाणुओंकी वृद्धि ये रोकते हैं। दूधके जीवाणुओंकी अनेक गुण गाथा है। शिशुओंकी अँतड़ीमें दूधके केवल जीवाणुओं के ही बीज होते हैं। दहीसे दीघ जीवन और रोगनिरोध होना माना जाता है। लोगोंका विश्वास है कि, मनुष्य इसके कारण शक्तिका उपयोग अधिक सुन्दर कर सकते हैं। दूध पीनेके बदले उसका दही खाने या छाछ पीनेमें अधिक लाभ है। छाछ मक्खन रहित दही ही है। दुद्धीका भी दही जम सकता है पर उसमें शुद्धदूधके दही जैसो पौष्टिकता और स्वाद नहीं होता। दुद्धीके दहीमें पानी डालकर मथ देनेसे वह छाछकी तरह ही हो जायगा।

आमनके बिना हवा या जमीनके जीवाणुकी क्रियासे दूध अपने आप जम जाय वह दही नहीं है। यह घटिया चीज है।

आमन जैसा होगा दही वैसाही होगा। डेयरी रिसर्च इंस्टिट्यूटमें खोज हो रही है कि, अच्छे प्रकारके दहीके संधानक को छाँट लिया जाय। जिससे विशेष स्थितिमें निर्दिष्ट मानका दही तैयार किया जा सके। पर अभी तक कुछ काम बना नहीं है। प्रसिद्ध दही जमानेवालों से उनकी कला अच्छी तरह सीखकर असली काम किया जाना चाहिये। जो शास्त्रवेत्ता बाजारके बढ़िया से बढ़िया दही जैसा दही जमा सकता है वह विभिन्न वस्तुओंमें उत्तम दही जमानेके कारणोंका विश्लेषण और संश्लेषण कर सकता है। गवेषकोंका यही उद्देश्य होना चाहिये। अम्लोत्पादक और गंधोत्पादक इन दो प्रकारके जीवाणुओंकी अलग अलग उत्पत्ति करनी चाहिये और उनका उचित योग जानना चाहिये। आज काल हर जगह कुछ खास लोग ही बढ़िया दही जमाना जानते हैं। पर यह करनेसे इस क्रियाका रहस्य सबको मालूम हो जायगा। जीवाणुके संस्कारमें उसका वंश विस्तार करना बड़ा कारण है। निपुण लोग जीवाणुके नमूने खरीद उनका वंश विस्तार चाहे जितना कर सकते हैं। इस दिशामें खोजकी बहुत गंजाइश है।

११६१. **छेना :** छेनाके खट्टे पानी, साइट्रिक तेजाब या नीबूके रस या फिटकिरी डालने से दूध फट जाता है। उसका सारा केसीन एक तरफ हो जाता है और स्नेहकी बुन्दकियाँ सबकी सब उसीमें घिर जाती हैं। इस तरह इस एक ही क्रियासे केसीन और स्नेह दूधसे अलग हो जाता है। बचे पानीमें लैक्टोज और कुछ खनिज लवण होते हैं। पशुजन्य या वनस्पतिकी बनी रेनेट मिलाकर पनीर बनानेमें भी यही बात होती है। लेकिन उनकी गढ़तमें बहुत अंतर है। रेनेट डालकर फाड़नेसे बहुत भारी और घना लोंदा बनता है। इसी कारण पनीर बन पाती है। गरम दूधमें अम्ल डालकर फाड़नेसे हल्के और छोटे छोटे लोंदे बनते हैं। यह मिठाइयाँ बनानेके लिये उपयोगी है।

छेना दुद्धी से भी बन सकता है पर यह पूर्ण दूधके छेनाकी तरह चिकना नहीं होगा। छेना कपड़ेमें बाँधकर टाँग दिया जाता है जिससे उसका पानी चू जाता है। सबका सब पानी निचोड़नेके लिये छेनाकी गठरी दो तख्तोंके बीच रख उसपर बोझ रखते हैं। निरन्तर चापसे धीरे धीरे सारा पानी निचुड़ जाता है।

बाजारू छेनेमें बहुत पानी रहता है। बाजारमें घुलाये पानीसे छेनाकी गठरी निकाल तुरत तौल लेनेकी चाल है।

छेना गरम दूधसे बनाया जाता है। जब दूध खौलने लगता है तब उसमें फाड़नेवाली चीज डाली जाती है। इसे चलाकर कुछ और मिलाते ही हैं कि, दूध फट जाता है। कपड़ेसे छानकर इसे जमा करते हैं। उचित अम्ल और क्रियासे सुन्दर चीज बनती है।

छेनाका बासी पानी जो धरा धरा खटा जाता है, दूध फाड़नेके लिये सबसे अच्छी चीज है। यह सामग्री बिना पैसे की बहुत उपयुक्त है।

११६२. सन्देश : छेनाका सब पानी निचोड़ देनेसे वह मिठाई बनाने लायक हो जाता है। बंगालमें इसका सन्देश और रसगुल्ला आदि बनाया जाता है। छेनामें चीनी मिलाकर संदेश बनाते हैं। यह सूखी चीज है। रसगुल्ला रसदार मिठाई है। इसके लिये छेनाकी गोली चासनीमें पकायी और चासनीमें ही रक्खी जाती है।

दोनों चीजें बनानेके लिये छेनाका सब पानी निचोड़ उसे कड़ा कर लेना जरूरी है। कड़ा हो जाने पर इसे किसी तख्ने पर रख मल कर महीन चूरा बना लेते हैं। सन्देश बनानेके लिये इसी चूरेमें चीनी मिलाकर फिर मलते हैं। मिठाई बनानेके लिये छेना मलनेमें बहुत मेहनत करनी होती है। चीनी मिले छेनेको कड़ाहीमें रख चूल्हे पर चढ़ाते हैं। इसे अच्छी तरह चलाते हैं। गरमी और नमीसे चीनी मल और मिलाकर एक रस हो जाती है। इसमें जरासी चिपचिपाहट होती है इससे इसकी गोली सरलतासे बँध जाती है। इसके बाद हाथ या साँचेमें बनी मिठाई ठंढी होकर कड़ी हो जाती है। इलायची और दूसरे मसालोंका महीन चूरा कड़ाही उतारनेके पहले मिलाया जाता है। इससे उसमें विशेष सुगन्ध आ जाती है। कितने ही तरहके सुगन्ध द्रव्य होते हैं। उनमेंसे कोई चुनना चाहिये।

इस तरह बना संदेश तीन दिन तक नहीं बिगड़ता। गरमीमें वह इतने दिन तक नहीं ठहरता। यह जितना सूखा और ठोस होगा उतना ही टिकाऊ होगा।

रसगुल्लेके छेनामें हवालगानी होती है। हवा लगे छेनेकी गोली बनाकर उसे खौलतीचासनीमें छोड़ते हैं। गरमीसे उसके भीतरकी हवाके बुलबुले फैलते हैं और इस फैली जगहमें चासनी घुस जाती है। रसगुल्ला बहुत कुछ स्पंजकी तरह होता है जिसमें चासनी भरी रहती है।

रसगुल्ला और सन्देश बनानेमें कायदेकी जरूरत है। इनकी क्रिया कारीगरोंसे सीखी जा सकती है। इनका बनाना कोई गुप्त रहस्य नहीं है। अलग अलग हलवाइयोंकी मिठाइयोंमें कुछ विशेषता होती है। नये सीखनेवाले इसकी नकल नहीं कर सकते। पर सीधा तरीका सीखना आसान है। सन्देश और रसगुल्ला छेनेकी खास भारतीय मिठाई है।

**११६३. जमाया हुआ दूध : डब्बेका दूध :** यह दूध पूर्ण दूध या दुद्धी से बनता है। इसे वेकुअममें (हवाके कम दबावमें) सुखाया जाता है। इसमें चीनी मिलाते या नहीं भी मिलाते हैं। गाढ़ा दूध टिनके डब्बेमें बन्दकर बेचा जाता है। यह विदेशी वस्तु है। आजकी हालतमें यह भारतमें टिक जायगी ऐसी संभावना है। इस विदेशी चीजकी बिक्री बहुत जादे नहीं है। यदि लोग दूधकी जरूरत पूरी करने के लिये भारतीय साधनोंको सावधानीसे काममें लावेंगे तो डब्बेके दूधकी अधिक आवश्यकता नहीं होगी।

इसका कारण खोजनेके लिये दूर जानेकी जरूरत नहीं। जाँच करने पर पता चलेगा कि डब्बेके दूधका धन्धा असलमें टिन बनाने और चीनी बेचनेका धन्धा है। इसमें दूधका काम गौण ही है। केवल मात्र दूधभराई का है।

५ रुपयेके १ मन पूर्ण दूधको डब्बेके दूधके निर्माता २० रुपयेमें बेचेंगे। उसी तरह बारह आने की दुद्धीको वह १० रुपयेमें बेचते हैं। डब्बेके दूधका बाकी दाम, टिन बनानेवाले, डब्बा बनानेवाले, पैकिंग बक्स बनानेवाले और चीनी वालेको मिलता है। इसलिये यह वास्तवमें दूधवालोंका नहीं, टिनवालोंका धन्धा है। इसलिये यह काम करनेकी इच्छा रखनेवालोंको पहले यह जान लेना चाहिये कि, कनस्तर बननेका प्रबन्ध हो सकता है या नहीं।

राइटका कहना है कि, दुद्धीसे डब्बेका दूध बनानेसे साढ़े तीन रुपयेकी दुद्धीसे २८ रुपयेका माल तैयार होता है। चाहे जिस दृष्टिसे देखा जाय यह धन्धा टिनका डब्बा बनानेवालोंका ही है। राइट भी कहते हैं कि डब्बेके दूधका कारखाना चलानेके लिये दूध या दुद्धी बहुत जादे, ३०,००० रत्तल प्रति दिन चाहिये। उनका अनुमान है कि, कारखानेके आसपासके गाँवोंसे इतना दूध नहीं मिल सकता। इसलिये यह भी कह सकते हैं कि, कमसे कम निकट भविष्यमें डब्बेके दूधका आधुनिक कारखाना चलनेकी संभावना भारतमें नहीं है।

भारत २५ लाख रुपयोंका सूखा और डब्बेका दूध बाहरसे मँगाता है। सूखे

दूधका व्यापार डब्बेके दूधको दबाकर बढ़ रहा है। इस चीजका आयात रोकनेके लिये अभी यही किया जा सकता है कि (खासकर, टिन, चीनी और पैकिंग बक्सका) गाँवमें यह कैसे तैयार हो यह सोचें।

यदि डब्बामें बन्द करनेकी क्रिया सरल कर दी जाय तो डब्बेका दूध देहातोंमें सफलताके साथ तैयार हो सकता है। यदि किरासिनकी टिन इस काममें आ सके तो यह धन्धा देहातोंमें भी किया जा सकता है। इस तरह जिस मौसममें दूध कमहोता है उस समय गाँवालोंको अपने लिये और पासकी हाटमें बेचनेके लिये दूध मिल सकता है। किरासिनकी टिनमें रखना सस्ता भी है। लेकिन कठिनाई यही होगी कि, ग्राहकको इतना दूध हफ्ते भरमें ही खा जाना होगा।

दूध घुलकर फिर पहले की तरह हो जाय इसके लिये दूधके गाढ़ेपनका अनुपात १ : २·५ करना होता है। पर यह काम वेकुअमसे करनेकी जरूरत नहीं। खौलते पानीकी कड़ाहीमें दूधका बर्तन रख कर यह काम किया जा सकता है। इस तरह गरम करनेको वाटर बाथ पर गरम करना कहते हैं।

**११६४. डब्बेका दूध बनाना—देहाती उपाय :** कलईदार पीतल या अलमोनियमकी साफ कड़ाहीमें ५ रत्तल दूध गरमकर आधा कर लेना चाहिये। यह काम धीमी आँच पर हो। दूध कड़ाहीमें लगकर जल न जाय इसलिये उसे बराबर चलाते भी रहें।

जब दूध आधा रह जाय तो इसमें १ रत्तल चीनी मिलावें। वाटर बाथके लिये एक कम व्यासकी कड़ाही हो। इस बाहरी कड़ाहीमें पानी भर कर दूधकी कड़ाही इस पर चढ़ानी चाहिये। पानीके भापसे दूध गरम होता है। दूध बराबर चलाया जाय। चीनी सहित दूधकी तौल जब असली दूधके आधेके बराबर हो जाय तो माल तैयार हो गया मानना चाहिये। ठीक गाढ़ापन लानेके लिये खाली कड़ाही तौल लेनी चाहिये। काम खतम करनेके बाद दूध सहित कड़ाही तौलनेसे मालकी तौल मालूम हो जायगी। यदि कड़ाही जितनी चाहिये उससे भारी निकले तो कुछ देर और गरम किया जाय। फिर तौलकर देखा जाय। इस तरह अभ्याससे गाढ़े दूधको देखकर यह मालूम हो जायगा कि, माल तैयार हो गया या नहीं।

**टिन बन्दी :** गाढ़ा करनेसे कम महत्वका काम यह नहीं है। यह काम अधिक महत्वका और सूक्ष्म माना जा सकता है। टिनके बर्तन पहले अच्छी तरह साफ कर सुखाये जाते हैं। सूखे डब्बेमें गरम दूध भरा जाता है। डब्बेके ऊपर

छोटा सा छेद होता है इसीसे दूध भरा जाता है। भरनेके बाद छेद राँज दिया जाता है। इसके बाद ढक्कनमें सूईकी नोक बराबर छेद किया जाता है। और डब्बोंको पानी भरे बर्तनमें रखते हैं। डब्बे पानीमें आधा डूबे रहते हैं। इसके बाद पानी भरा बर्तन आग पर चढ़ाया जाता है। आध घंटे तक पानी खौलता रहता है। इसके बाद सूची-छिद्र राँगसे बन्द कर दिया जाता है। बस रँजाईका काम पूरा हुआ।

डब्बोंकी ढक्कन बन्दी पात्र हटाये बिना करनी चाहिये। टीपसे दूध डब्बोंमें भरना चाहिये। यह काम ऐसी सफाईसे हो कि, दूध ढक्कनके तलेसे छू न जाय। क्योंकि, इसमें दूध लग जानेसे राँजनेके समय गरम होकर झुलस जायगा। इससे दूधमें जलनेकी गन्ध आने लगेगी।

११६५. **बच्चोंके आहारमें दूध :** बच्चोंके लिये २३ लाख रुपयोंकी दूधकी बनी खानेकी चीजें विदेशोंसे आती हैं। खोज करनेसे पता चलेगा कि, नाममात्रके दूधके लिये देश कितना मँहगा सौदा ले रहा है!

बच्चोंके आहारका औसत दाम १ रुपया १३ आना प्रति रत्तल है। इस दुग्ध आहार या माल्टेड दूधमें, दूध प्रति रत्तल कितना है? हौरलिक्स दूधके १ रत्तलकी बोतलमें २·२ रत्तल दूध रहता है। इस दूधकी १ रत्तलकी बोतल खरीदनेसे १ सेर दूधका दाम १ रुपये १३ आना देना होता है। इसमें जरासा माल्ट और स्टार्च (मैदा जातीय पदार्थ) पची हालतमें हैं। क्या ऐसी चीजके लिये भारत २३ लाख रुपये बाहर भेजते रह सकता है? क्या भारतकी दरिद्र प्रजा सोनेके दाम दूध खरीदेगी?

आजके व्यापारमें विज्ञापन बड़ी चीज है। डाक्टर रोगियोंके लिये यह दूध बताते हैं। पर उनमेंसे थोड़ेही जानते होंगे कि, इसमें दूध कितना है। अपने रोगी और कमजोर बच्चोंको यह माल्ट मिला हुआ दूध पिलानेवाली कितनी मातायें जानती हैं कि, १ रत्तलमें असली दूध है कितना? यदि वह जानतीं तो बच्चोंको इस इस्तेहारबाजीके मँहगे दूधके बदले कुछ और देतीं। यह चीजें धनी देशोंके बच्चों और कमजोरोंके लिये हैं। भारतके लिये नहीं।

बच्चोंके लिये अति प्रशंसित माल्ट मिले १ रत्तल दूधमें नीचे लिखे उपकरण होते हैं:—

(१) अँकुड़े जौका सत्त थोड़ासा।

(२) थोड़ासा स्टार्च।

(३) एक सेर दूध।

(१) थोड़ासा, मान लीजिये आध सेर जौ या गेहूँ अंकुरानेसे माल्ट नामक पाचक रस उसमें बनता है। पानी मिलाकर इसे पीसनेसे उसमें सभी पाचक रस मौजूद रहते हैं। यह सरलतासे घरमें बन सकता है।

(२) थोड़ा सा स्टार्च। आरारूट या गेहूँके आटेकी लपसी बना कर पतला स्टार्च तैयार किया जाता है। इसमें माल्ट मिलाकर घुलने लायक बना लिया जाता है। आटेकी सुसुम लपसीमें थोड़ा सा माल्टका सत्त मिलाकर घंटे भरके करीब इसी ताप पर रखते हैं।

(३) एक सेर दूधमें (१) और (२) का मिश्रण मिलाकर माल्ट मिला दूध बना लिया जाता है। अब इसे काममें ला सकते हैं। एक रत्तलकी बोतलमें यही होता है। एक रत्तल माल्टका दूध तुरत बनाना जरूरी नहीं है। यदि चौथाई रत्तल रोज खर्च हो तो ½ रत्तल या १ पाव कच्चा दूध दिया जाता है। यह बहुत कम है। इस थोड़े दूधमें आरारूटकी लपसी मिला सकते हैं। माल्टेड दूधका आधार यही है। जौ या गेहूँको अँकुरा कर पीसो, कपड़ेमें छानो और इसमें मिला दो। जौका सत्त ही माल्टका सत्त है। इसे सुसुम दूध और लपसीमें मिलाकर चौथाई रत्तल माल्टका दूध तैयार हुआ। इसका खर्च—सात आने मात्र या इससे भी कम है। यदि आप इतना दूध काममें न लाते हों, सप्ताहमें १ रत्तल ही लाते हों तो उसका खर्च प्रति दिन २ पैसा हुआ। एक ही बातका ध्यान रखना है कि माल्टका सत्त कुछ ताजी रहे। कितनी आसानीसे यह बन सकता है यह नीचेके वर्णनसे मालूम होगा।

११६६. **बच्चोंके आहारके लिये माल्टका सत्त :** थोड़ासा कोई अन्न धान या जौ लो। इसमेंसे सारा कूड़ा कचरा चुन बिन और फटक कर निकाल दो। इसे पानीसे इतना धोओ कि, पानीका रंग नहीं बदले। इस अन्नको एक रात और एक दिन पानीमें भीगने दो। दूसरे दिन अन्न पानीसे निकाल किसी कपड़ेमें ढीली गठरी बाँध अँधेरेमें टाँग दो। २४ घंटेमें अंकुर निकल जायगा। इसे जरा पानी मिलाकर सिल पर महीन पीस लो। फिर साफ कपड़ेसे छानो। यही घोल माल्टका सत्त है। इस घोलमें पचानेवाले क्रियाशील रस अर्थात् माल्ट हैं। इसे लपसीमें फेंटकर दूधमें मिलाते और उसे सुपच बनाते हैं।

११६७. **पनीर :** भारतमें प्रायः साढ़े आठ लाख रुपयोंकी पनीर हर साल आती है। इतनेका ही मक्खन भी आता है। पनीर और मक्खन

विलायतवालोंके लिये दूधके पदार्थ हैं। इन देशोंमें मुख्य रूपसे दूध ही पिया जाता है और दूध की बनी चीजोंमें पनीर और मक्खन खाते हैं। भारतमें कितने ही प्रकारके गव्य पदार्थ हैं जिनमें मक्खन भी एक है। पर देहाती ग्वालोंका मक्खन, कारखानेके डब्बा बन्द मक्खनसे भिन्न चीज है।

भारतके लोगोंमें अभी पनीरके लिये रुचि नहीं है और यहांके जलवायुमें अच्छा पनीर बन भी नहीं सकता। इसलिये जो विलायती पनीरके जैसी पनीर चाहते हैं उन्हें वही लेनी होगी, नहीं तो यहां जैसी मामूली पनीर बनती है उसीसे संतोष मानना होगा

१०,००० हन्डर पनीर भारतमें बाहरसे आती है। इसका दाम ८॥ लाख रुपये है। इसका अधिकांश यूरोपी लोग ही खाते हैं। पनीर बनानेकी भारतमें जो कठिनाई है नीचे लिखी जाती है।

११६८. **पनीर बनाना :** शुरूमें पनीर हमारे छेनेकी तरह होती है। रेनेटकी मददसे दूध फाड़ा जाता है। दूधसे जैसे छेना बनता है उसी तरह की यह क्रिया है। छेना बनानेके लिये दूध खौलाया जाता है। पर पनीर बनानेके लिये नहीं। छेना फटता है पनीर जमता है।

रेनेट एक पाचक-रस है। यह पशुजन्य पदार्थ है। गाय और बकरीके बच्चोंके चौथे पेटमें रेनेट होता है। यह इसलिये है कि, मांका जो दूध वह पीये वह उनके पेटमें जम जाय। चौथे पेटमें पहुँचते ही दूध जमकर थक्का हो जाता है। पचनेकी सुबिधाके लिये बछड़ों और मेंमनोंको इसकी जरूरत है। बछड़ा मारकर उसके चौथे पेटसे रेनेट निकाला जाता है। इसे सुखा कर रख सकते हैं। जरा सा रेनेट बहुत दूध जमा सकता है। इससे जमनेमें विशेषता यह है कि, थोड़ी ही देर में थक्का ठोस हो जाता है। कुछ ही सेकन्डकी जरूरत होती है। दही जमनेमें तो घंटों लगते हैं।

रेनेटसे दूध जमा कर टोकरीमें उसका पानी निचोड़ लिया जाता है। तब पनीर बनती है। जमी चीज टोकरीमें वैसी ही छोड़ दी जाती है कि वह कड़ी हो जाय। उसका बाहरी भाग चिकनाकर पुष्ट होनेके लिये रख दिया जाता है। तब उसमें विशेष प्रकारकी गन्ध होती है। यह लोगोंको रुचती है। कुछ और परिवर्तन भी होते हैं जिससे पनीर स्वादिष्ट लगती है।

भारतमें रेनेटकी कठिनाई है। जानवर मार कर बने रेनेटसे यहाँ लोगोंको घृणा है। बहुतसे लोग रेनेटसे भारतमें पनीर बनाते हैं।

हालमें रेनेटकी जगह एक वनस्पति पदार्थ निकाला गया है। अश्वगन्धाके फलोंमें रेनिन होती है। १०० ग्राम दूध जमानेके लिये एक ग्राम फलमें काफी रेनिन है। यह पौधा पंजाब, सीमाप्रान्त और सिन्धमें बहुत होता है। अभीतक तो यह रेनेट पशुजन्य पदार्थसा ही पाया गया है। अच्छा माल तैयार करनेके लिये १५५ से १६० डिग्री फारेनहाइट तक दूध गरम करना चाहिये। जमनेमें ३० सेकेन्ड लगते हैं।

**पनीर बनानेमें कठिनाइयाँ:** पनीर पकनेके लिये हवामें अधिक नमी और कम ताप चाहिये। ताप ५५ से ६० डिग्री फारेनहाइट तक हो। तापसे सड़न शुरू हो जाती है और अधिक सूखन होती है। इससे इसपर कीड़े मकोड़ोंका धावा हो सकता है।

इसलिये भारतमें नकली ताप और नमी पैदा किये बिना पनीर पक नहीं सकती, और पकने से ही उसमें विशेष स्वाद आता है। इस नकली इन्तजामसे लागत बहुत बढ़ जायगी।

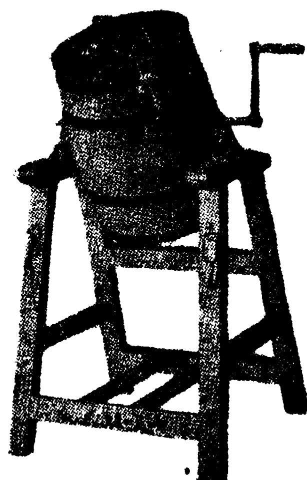
अभी जो कुछ भारतमें बनता है वह पनीर नहीं है। डा० डेभिस उसे दही-पनीर कहते हैं। उसमें दहीका खट्टापन या धुआँगन्ध भी आता है। पकने और प्रोटीनके टूटनेसे पनीरमें जो मुरमुरापन होता है सो इस पनीरमें नहीं है। भारतमें बनी पनीर सच पूछो तो पकती ही नहीं।

भारतमें बहुत कम पनीर ढाका, बंडेल और सूरतमें बनती है। ढाकाकी पनीर धूमजन्य पदार्थ है। दबाकर पानी निचोड़नेके बाद मुलायम पनीर निकाल कर कई दिन तक सुखायी जाती है। इससे बाहरकी और पतली सी कड़ी पपड़ी पड़ जाती है। इसके बाद उसमें गोबर या लकड़ीका धुआँ लगाया जाता है। धुआँ लगायी पनीर एक या दो महीने ठहरती है।

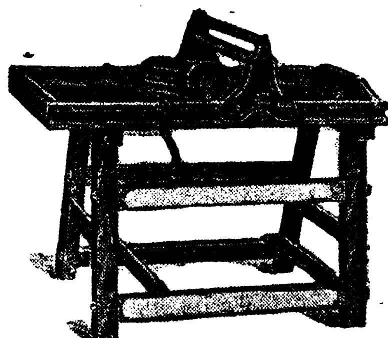
सूरत और ढाकाकी पनीर एकही चीज है। पर इसमें कुछ भेद है। सूरतकी पनीरका पानी निचोड़कर उसे नमकीन मट्ठेमें रखते हैं। इससे वह कड़ी और नमकीन हो जाती है। बाहर की ओर कड़ापन हो जाता है। इसे धुआँया नहीं जाता। इसे १० से १४ दिन के भीतर खा डालना चाहिये। दुद्धीके दहीका पानी निचोड़ और उसे टाँग कर यह बन सकती है। इसके बाद इसमें नमक

मिलाकर साँचेमें ढाल लें। ऐसी पनीरका प्रचार होना चाहिये जिससे दूधका पोषक आहार केसीन बनानेमें नष्ट न हो जाय।

११६६. **मक्खन** : घी बनानेके लिये जो देहाती मक्खन होता है उसमें बहुत पानी और केसीन रहता है। बादकी क्रियाओंसे इसे भी विदेशी मक्खनसा बनाया जा सकता है। मक्खनको टिकाऊ बनाना कठिन है। विदेशी जैसाही अब देशमें क्रीमसे मक्खन बनने लगा है। देखनेमें और स्वादमें भी, मक्खन



चित्र ७०.
क्रीमसे मक्खन निकालनेवाला लकड़ीका पीपा—"चरनर"



चित्र ७१. मक्खनमें समानरूपसे नमक फैलानेवाला और उसमें जलकी मात्रा कम करनेवाला यंत्र—"वर्कर"

जैसा होना चाहिये, वैसा ही है। ९ लाख रुपयेके लगभगका मक्खन बाहर से आता है। भारतका धन्धा बढ़नेसे बाहरी आमदनी कम हो सकती है।

मक्खन ताजी क्रीम या घी बनानेके लिये दहीसे निकाले मक्खनसे बन सकता है। कठिनाई यही है कि, क्रीम या दहीवाले मक्खनमें यदि एक बार अनचाही गन्ध आ जाय तो उसे दूर कर, मानके अनुसार बना नहीं सकते।

क्रीमसे मक्खन निकालनेकी एक क्रिया नीचे दी जाती है। घर पर निकाली क्रीममें कुछ अम्लता रहती है। क्रीमकी अम्लता जाननेके लिये यही करना चाहिये

जो आगे अम्लताकी जाँचमें बताया गया है। यदि क्रीममें कुछ अम्ल बढ़ गया है तो उसमें सोडा बाइकार्बका घोल डाल उसे कम कर लेना चाहिये। अम्लता २·५ सैकड़ा कर लेनी चाहिये।

एक रत्तल सोडा १०० रत्तल क्रीमकी अम्लता १ सैकड़ा कम करेगा। इसी आधार पर सोडा मिलाना चाहिये। अधिक सोडा बाइकार्बसे मक्खनका स्वाद तीखा हो जायगा। इसलिये अधिक सोडा न मिलाया जाय इसका ध्यान रहे। अधिक सोडा बाइकार्ब मिलानेसे मथनेके समय गैस बनती है जिससे मथनेमें कठिनाई होती है। सोडा बाइकार्ब और खानेका सोडा एक ही चीज है।

क्रीम चरनर मशीनमें (चित्र ५०) मथी जाती है। इस मशीनका वर्णन (११२६) हो चुका है। यह बढ़िया मथानियोंमें एक है।

११७०. **मथनेका ताप** : मशीनमें डालनेके पहले क्रीमका ताप कम कर ४५ डिग्री फारेनहाइट कर देना चाहिये। मथानी मिनटमें ४० चक्करके वेगसे घुमायी जाती है। आधेसे कम पीपेमें क्रीम भरनी चाहिये। यदि मात्रा कम हो तो मशीन कम वेगसे घुमानी चाहिये। जब मक्खनके दाने गेहूँके बराबर होने लगें तब मथनेका काम पूरा हुआ मानना चाहिये। आधघटा मशीन चला कर यह स्थिति लानी चाहिये। मथना खतम करनेमें तापका बड़ा कारण है। ६० डिग्री फारेनहाइट लगभग ताप सबसे अच्छा है। यह गर्मीमें वातावरणके तापसे बहुत कम है। जाड़ेमें बहुत जगह ६० डिग्री फा० के लगभग साधारण ताप रहता है। गरमीमें क्रीमके बरतनको चारों तरफ बर्फ रख कर उसे ठंढा करनेसे बहुत अच्छा रहता है। मशीनका ताप भी बर्फका पानी छींट कर कम करना चाहिये। ठंढे देशोंमें सुन्दर मक्खन स्वाभाविक पदार्थ है। यदि भारतमें सुन्दर मक्खन बनाना है तो जाड़ेको छोड़ और समय नकली उपायसे ठंढेपनका इन्तजाम करना होगा।

३० से ३५ मिनट मथनेके लिये समय स्थिर है। यदि उचित आकारके दाने मक्खनमें नहीं दिखायी पड़ें तो समझना चाहिये कि, अभी और मथनेकी जरूरत है। इसलिये इतना ताप कर देना चाहिये जिससे कि, निश्चित समयके (आध घंटाके भीतरही काम पूरा हो जाय। काम न बहुत जल्दी और न बहुत देरसे पूरा हो।

मथनेकी मशीनमें ठीक तापकी क्रीम डालनी चाहिये। मशीनका ताप भी उतना ही रहे। कुछ चक्कर घुमा कर मशीन बन्द कर देना चाहिये और मुँह

खोल देना चाहिये। इससे क्रीममें बची हुई गैस निकल जायगी। कुछ क्षणके बाद मुँह लगा कर ६० मिनट उचित वेगसे मशीन घुमानी चाहिये। जब मक्खन अलग हो जाता है तब अजीब तरहकी आवाज क्रीममें होने लगती है। अनुभवसे मशीन चलानेका वेग, ठीक ताप और ठीक समयके भीतर मक्खन निकाल लेना जाना जा सकता है।

अब मशीन बन्द कर उसमें ठढा पानी मिलाओ। इससे क्रीमसे मक्खन निकलनेमें सहूलियत होती है और उसमें बहुत जादे क्रीम नहीं जा पाती। मशीनके भीतरकी चीजके ताप (५० से ६० डिग्री फा०) से इस पानी का ताप ५ या ६ अंश कम होना चाहिये। यदि पानी बहुत गरम या ठंढा होगा तो मक्खनकी गढ़त बिगड़ जायगी। दोनों ही हालतोंमें मक्खनमें पानीका प्रतिशत बहुत जादे होगा।

५ मिनट मशीन चलानेके बाद मक्खन निकला घोल निकाल दो। यह एक छननेसे होकर निकलेगा। इससे उसके साथ बह कर आनेवाला मक्खन नहीं निकलने पावेगा। मशीनमें अधिकांश मक्खनोंका लौंदा बन जायेगा। केवल छिटफुट बुन्दकियाँ बह कर बाहर आवेंगी पर यह सब छननेमें आकर रुक जायेंगी। इन्हें उठा कर मशीनमें ही डाल दो।

**११७१. मक्खनकी धुलाई :** जब सब घोल बह कर बाहर चला जाय तो उतना ही पानी मशीनमें डालना चाहिये। दो चार बार हैंडल घुमा कर पानी तुरत निकाल दो।, यदि मक्खन बहुत मुलायम (पतला) हो तो अच्छी तरह ठढा किया हुआ और भी पानी धोनेके लिये डालो तथा कुछ चक्कर और लगाओ। अधिक धुलाई न की जाय। अधिक धुलाईसे मक्खनकी गन्ध और खूबी नष्ट हो जाती है। सब पानी निकल जानेके बाद थोड़ासा नमक मिला पानी डालो। नमक मक्खनका २ सैकड़ा हो सकता है। कोई कोई मक्खनका पानी निचोड़नेके लिये दबाते समय नमककी बुकनी मिलाते हैं। पर इसमें यह खतरा है कि, नमकके कण जैसेके तैसे रह जायँ। इससे मक्खन देखनेमें धब्बासा मालूम होता है। क्योंकि, नमक और मक्खनका जहाँ संसर्ग होता है वहाँ अधिक पीलापन हो जाता है। नमक मिला मक्खन मथानीसे निकाला जाता है तब उसका पानी और लगा हुआ क्रीम निचोड़नेके लिये उसे दबाया जाता है।

लकड़ीकी बनी मथानीमें क्रीम डाल देनेके बाद फिर उसके संसर्गमें आनेवाली सभी चीजें लकड़ी की ही बनी होनी चाहिये। धातुसे काम नहीं चल सकता।

मक्खन, "वर्कर" में कई बार तब तक दबाया जाता है जब तक कि, उसका सारा अतिरिक्त जल निकल न जाय। मक्खनके पानीकी सीमा कानूनसे १६ सैकड़ा है। कानूनसे अधिक जरा भी पानी उसमें नहीं रहने पावे। इस तरह तैयार किया हुआ मक्खन, टिनमें भर कर या यों ही बेचा जा सकता है। ठंढे तहखानोंमें उसका भंडार बनाना चाहिये।

पहले यह माना जाता था कि, नमक मिलानेसे मक्खन टिकाऊ हो जाता है। पर खोजसे पता चलता है कि, एक ही ढंगके भंडारमें बिना नमकके मक्खनकी गन्ध ज्यादा अच्छी रहती है।

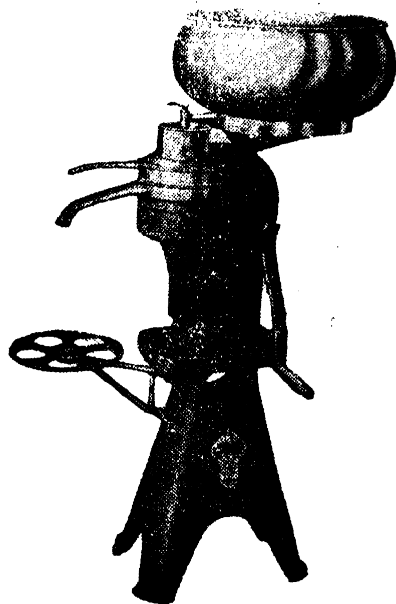
**११७२. चरनर मशीन साफ करना :** काम करनेके बाद जरा गरम पानीसे मशीन अच्छी तरह धो देना चाहिये। जिससे उसमें चिपका चिपकाया जो कुछ मक्खन हो साफ हो जाय। इसके बाद उसे खौलते पानीसे धोना चाहिये। इससे सभी जीवाणु मर जाते हैं। इसके बाद उसे खौलते पानीसे एक बार और धोकर धूपमें सुखाना चाहिये। बाहर भीतर धूप लगनेसे उसमें कोई गन्ध नहीं रहती। इस गन्धसे आगे बननेवाली चीज बिगड़ जा सकती है। सभी बर्तन, औजार और "वर्कर" भी अच्छी तरह मल धोकर धूपमें सुखा लेना चाहिये। मशीनको अंतमें नमकीन पानी से धो सकते हैं। इससे उसमें खट्टी गंध नहीं रहेगी।

**११७३. दुद्धी :** कुछ प्रान्तोंमें दुद्धीका कानूनमें स्थान नहीं है। पर कुछमें वह कानूनी गव्य-पदार्थ है।

दुद्धीका हमारी आहार-सामग्रीमें ऊँचा स्थान होना चाहिये। इसके बारेमें काफी कहा जा चुका है। इसके बारेमें बहुत भ्रम फैला हुआ है। स्कूली लड़के और बछड़ोंको भी बढ़ानेवाली यह चीज अच्छी पायी गयी है। दूध और दुद्धीमें असली अंतर मक्खनका है। एकमें यह है और दूसरेमें नहीं है। दुद्धी और गायके मक्खनका समान दाम कूता जा सकता है। दुद्धीमें दूधके वृद्धिकारक सभी प्रोटीन, चीनी और खनिज लवण रहते हैं। इन पोषक गुणोंकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये और दुद्धी तथा छाछका जो मोल है वह मानना चाहिये। जनताकी धारणा और अज्ञान तो मिटाना है ही। सरकारको भी इसका महत्व माननेके लिये राजी करना चाहिये कि, वह उसका उपयोग बढ़ाने और मनुष्यके आहारके लिये हिफाजत करनेका उपाय करे। यह नहीं कि, क्रीम बननेकी जगहोंमें इसकी जैसी बर्बादी होती है, होने दे।

लड़ाईके समयकी असाधारण व्यवसायिक परिस्थितमें क्रीमके कारखानोंकी दुद्धीकी केसीनका दाम ज्यादे मिल सकता है। इसलिये इसका बनाना मुनाफेका हो सकता है। पर साधारण समयमें केसीन विदेशोंसे सस्ती आती है। उस समय दुद्धीसे केसीनको बनाकर बेचना मुनाफेका काम शायद ही हो। जनता और प्रांतीय सरकारोंको दुद्धीका आहार गुण समझना चाहिये और इसे खानेके काममें लाना चाहिये।

दुद्धीको पौधेकी रेनेटसे जमाकर ठोस दही बनाना और फिर उसे सूरतकी पनीरकी तरह नमकीन पानीमें रखना और अंतमें ढाकाकी तरह धुआँ देकर (११६८) तीन महीनेके लगभग टिकाऊ बना लेना चाहिये। रुचि तो अभ्याससे बनती है। पशुजन्य रेनेटके बिना बनी पनीर सब खा सकते हैं। ऐसी स्नेह रहित पनीरकी कढ़ी और दूसरी तरकारियाँ बन सकती हैं। दूधके ऐसे अनमोल प्रोटीनका भारतमें कारखानोंके कामकी चीज नहीं बनाया जा सकता। जहाँ इसे लोग पसन्द नहीं करते हों वहाँसे यह उन जगहों में भेज दिया जाय जहाँके लोगोंको इसका स्वाद लग गया है। दुद्धी तो तुरत बछड़ोंको पिलानेके काममें भी आ सकती है।



चित्र ५२. दूधसे क्रीम निकालनेवाला यंत्र "क्रीम सेपरेटर" (पृ० ७५९ देखो)

**११७४. स्नेह-रहित छेना या केसीन :** दुद्धीसे पनीर बनानेके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह केसीन पर भी लागू है। केसीन जहाँ बनता है वहाँ इतना साफ तरीकेसे बनाया जाय कि, आदमी खा सकें। चाहे केसीन कहो चाहे स्नेह-रहित छेना—चीज एक ही है।

पनीर या छेनासे केसीन बनानेके तरीकेमें जरा फर्क है। कारखानोंमें काम आनेवाला यह पदार्थ यदि आदमीके खानेके लिये नहीं तैयार किया गया है तोउसे बिलकुल स्नेह-रहित होना चाहिये। इसके लिये क्रीम निकालनेवाली मशीनमें दुद्धीको बारबार मथना चाहिये जिससे उसमें नामको भी स्नेह न रह जाय। इसके बाद दहीका जामन डालकर उसे जमा देना चाहिये। दही जम जानेपर कपड़ेमें बाँधकर उसका पानी चुला लिया जाय। पानी निचोड़ा दही स्नेह-रहित छेना है। छेनाके पानीसे दुद्धीका बना छेना बड़ी तादादमें मुफस्सिलसे कलकत्ते आता है। बंगाल सरकारके आहार कानूनके होते भी यह स्नेह-रहित छेना कलकत्ता आने पाता है। कलकत्तेमें छेनाका व्यापार है। पर इसका भाव बहुत कम है। कभी कभी तो रेलभाड़ा भर हो दाम मिलता है। नहीं तो १ मन दुद्धी पर आठ दस आने मिल जाते हैं।

अब इसके धन्धेके पहलू पर विचार करें। स्नेह-रहित दुद्धीका दही जमाकर उसे भारी वजनसे दबाकर उसका पानी निचोड़ा जाता है। इसे तारकी चलनीमें चालते हैं जिससे कि, यह दानेदार हो जाय। फिर इसे धूपमें सुखाया जाता है। यही बाजारकी केसीन है।

---

# अध्याय २६

## बाजारू दूध और उसकी मिलावट

**११७५. बाजारू दूध—उसकी मिलावट :** आजकल जिस तरह दूधका इन्तजाम होता है वह संतोषप्रद नहीं है। दुहनेसे लेकर बिकने तक दूधमें अधिक सफाई लानेके लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। काममें लानेके पहले इसे सब जगह गरम कर लिया जाता है। इससे इसकी सफाईकी कमी बहुत कुछ दूर हो जाती है। गरम करनेसे बीमारी रुक सकती है। फिर भी गन्दे तरीकेसे इसका प्रबन्ध नहीं करना चाहिये। इस काममें सफाईका अभ्यास डालना जरूरी है। कलकत्तेमें भी ग्राहक दूध जाँचनेके लिये पूरे दूधमें अपनी उँगली डाल देते हैं।

उनकी उँगलीमें सब तरहकी छूत हो सकती है। हम लोग ऐसी अनाचारिक बातें सहते आये हैं। सुन्दर जीवनके लिये ऐसी असंस्कृत और अनाचारिक आदतें मिट जानी चाहिये। चाहे पानी उबालकर ही पीया जाय फिर भी हम पीनेके पानीमें किसीको उँगली नहीं डुबाने देते। हम अपने घरोंमें अपना भोजन छूतसे दूर और पवित्र रखते हैं। पर बाजारका दूध कहीं कहीं बहुत बुरी तरह बेचा जाता है। उसे हम उबाल लेते हैं यह अच्छी बात है। पर उसकी सँभाल ऐसी हो कि, हम चाहें तो उसे बिना उबाले भी पी सकें। इस आदर्शके अनुसार हम दूधके संबन्धकी गन्दी आदतोंको बदल डालें।

पर कुछ बातें ऐसी भी हो सकती हैं कि, नकलकी धुनमें हम यूरोपके लायक जो उपाय हैं उन्हें भी करने लगें। दुहनीका ही उदाहरण दिया जा सकता है। भारतका आधुनिक साहित्य दुहनीमें दूध दुहनेके गन्दे तरीकेकी निन्दासे भरा पड़ा है। डा० राइटने इस बारेमें उचित ही लिखा है :

"...समशीतोष्ण जलवायुवाले देशोंसे भारतकी दशामें मौलिक अंतर है। किसान गरीब हैं। इसलिये गव्य-धन्धेके विशेष सामान नहीं खरीद सकते। यद्यपि कड़ी धूपमें जीवाणु नाशकी तीव्र शक्ति है फिर भी औसत गरमी बहुत जादे है। ईंधनका अभाव है और ठंढा करनेके लिये पानी मिलना दुश्वार है। यदि पानी मिल जाय तो उससे काम बन सकता है। इसलिये यह स्पष्ट है कि गरम देशोंमें दूध उत्पादन आदिके जो उपाय हैं उनमें सुधार किया जाय। इन खास कठिनाइयोंका सामना करनेके लिये समशीतोष्ण देशोंके लायक उपायोंमें सुधार करने होंगे।"

"जिस मुद्दे पर मैं जोर देना चाहता हूँ उसका उदाहरण देना अच्छा होगा। अपने दौरेमें मैंने कई गाँवोंमें दूधका बर्तन धोनेका तरीका देखा है। साधारण तौर पर मिट्टी और राखसे मलकर बर्तनोंको कुएके पानीसे धो धूपमें सुखाते हैं। मुझे किसानोंके गन्दे तरीकोंके उदाहरणमें इसके बारेमें भी कहा जाता था। पर यह बहुत संभव है कि, लोग जैसा समझते हैं उससे कहीं जादे यह उपाय संतोषकारी हो। सोडा और मलनेके महीन मसालेके अभावमें मट्टी और पोटाश (राख) से मलनेसे सस्ती और कामकी सफाई हो सकती है और सूर्य किरणकी मारण-क्रिया से छूतवाले जीवाणु नष्ट हो सकते हैं।...पर सवाल यह है कि, ऐसी मामूली बातकी भी खोज नहीं हुई है जिससे किसानको यह भरोसा

हो सके कि, उनका तरीका अच्छा है तथा इसकी और उन्नति वह कर सकते हैं।"—(राइटको रिपोर्ट, पृ० १९)

प्रचलित प्रथा चालू रखनेके बारेमें कोई खोज तो हुई नहीं, इसके बदले उन्हें गलत बात बतायी गयी है। जैसे अधमुदी दुहनी आदर्श मानी गयी है, क्योंकि अधमुदी दुहनीमें हवा या छतकी धूल और गन्दगी नहीं गिर सकेगी। लोग यह भूल जाते हैं कि चिपटे पेंदावाली दुहनी गोल पेंदेवाली भारतीय दुहनीसे अच्छी नहीं है। चिपटे पेंदेमें कोने हैं, जो मैलके घर हैं। लोग यह भूल जाते हैं कि अधमुदे ढक्कनका पेंदेकी गन्दगी साफ करना कठिन है और वह देखा भी नहीं जा सकता।

घुटनोंके बीच गोल पेंदावाली दुहनी तिरछी रख कर दुहना सबसे अच्छा तरीका है। तिरछा रखनेसे अधिक धूल नहीं गिर सकती और गोल पेंदा साफ रहता है।

भारतीय प्रथाकी निन्दा और हँसी करनेके पहले हमलोगोंको राइटकी आँख और उनकी सी सहानुभूतिसे सभी बातोंको देखना चाहिये। इस बारेमें "रिपोर्ट ऑन दि मार्केटिंग ऑफ मिल्क" एक उदाहरण है। गन्दे उपायोंकी तस्वीरें भी इसमें दी गयी हैं। तस्वीर और उनपर की टिप्पणियाँ कष्टदायक हैं, सहानुभूति रहित, छिछली और चिढ़ानेवाली हैं। उनमें दूध जमा करना, ढोना और बेचना इन बातोंके सुधारकी कोई बात नहीं है। सुधार करना है, इसलिये सहानुभूतिके साथ उचित राह बतानेकी जरूरत है।

हमलोगोंने पच्छिमकी या यों कहें आधुनिकीकरणकी कुछ भूलोंकी नकल की है, पर इन्हें छोड़ देना होगा। आजकल टोंटीदार पीपेमें दूध बेचनेकी चाल है। यह नयी चाल है। गोल पेंदेवाले बर्तनकी जगह चिपटे पेंदेका बर्तन चल पड़ा है जिसके पेंदेके पास टोंटी लगी रहती है। यह टोंटी बाहर से चाहे जितनी चमकाई जाय, पर भीतरकी सफाई कभी नहीं हो सकती। इसका कारण उल्टी सीख, अज्ञान और अविचार है।

११७६. **दूधकी मिलावट :** जानबूझ कर दूधमें पानी मिलाना भीषण अपराध है। पहले इतनी मिलावट नहीं होती थी। यह आदत बढ़ती ही जा रही है। इसका हमारे आर्थिक और सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ा है। धन ही एक मात्र ध्येय बन गया है। इसलिये धन कमाना होगा। चाहे जिस उपायसे हो मुनाफा करना होगा। यदि कोई दुष्ट व्यापारी दूधमें पानी मिलाकर गैर-कानूनी

मुनाफा कमाता है या पानी मिला कर दाम घटाना है तो बस सब इसी बातकी होड़ करने लगते हैं। दूसरा आदमी और जादे मिलावट कर माल और भी सस्ता करता है कि उससे इसके यहाँ अधिक ग्राहक जुटें। इस होड़में अधिक से अधिक आदमी शामिल होते जाते हैं। यह हो सकता है कि आजका समय ही ऐसा है। यदि यही बात है तो हमें समय बदलना होगा और पवित्र पुराना समय चलाना होगा। आजकी चाल यह है कि "पकड़ सकते हो तो पकड़ो"। मिलावट होती रहेगी, यदि तुम्हारी सामर्थ्य है तो पकड़ो और कानून से उसे दन्ड दिलाओ। कानूनसे बचनेके उपाय निकाले जायेंगे। शक्ति हो तो फिर पकड़ो और सजा दो। यह शतानी चक्कर सदा बढ़नेवाला है। आज अच्छे विचारके लोग मिलावट रोकना चाहते हैं, पर अन्तमें वह भी मिलावटकी तारीफ करने लग जाते हैं, क्योंकि इससे गरीबोंको सस्तेमें दूध मिल सकेगा। सरकारी अफसर और सार्वजनिक संस्थाओंकी बहसमें प्रायः यह बात उठती है। मान लें कि गरीबोंको शुद्ध और दामी दूध देकर उन्हें स्वयं मिलावट करने को कहा गया। सस्ते दामकी पानी मिलायी चीज, जिसमें दूध कितना है यह ठीक नहीं, इसकी अपेक्षा स्वयं पानी मिलाना गरीबको सस्ता मालूम पड़ेगा।

दूधके व्यापारसे ईमानदारी गायब हो रही है। शहरोंमें दूधकी माँग सबसे जादे है, वहीं सबसे जादे मिलावट होती है। दूधमें पानी केवल शहरोंमें ही नहीं मिलाया जाता। यह बुराई इतनी फैली है कि, जब तक दूध देनेवाला व्यक्ति या संस्था विश्वासी न हो या दूध सामने ही न दुहाया गया हो, शुद्धताका भरोसा ही नहीं होता। कुछ प्रसिद्ध क्षेत्रोंमें भी मिलावट पायी गयी है। वहाँ भैंसके दूधमें पानी मिला उसे गायका कह कर चलाते हैं। कलकत्ता जैसे शहरोंमें सैकड़ों भैंसें दूधके लिये पाली जाती हैं। फिर भी वहाँ भैंसका दूध पाना कठिन है। क्योंकि सभी दूध पानी मिला कर गायके दूधके नामसे बेचा जाता है।

ऐसी हालतोंमें अधिक दाम भी शुद्धताका प्रमाण नहीं है। इस वजहसे लोगोंके विचारमें उल्टी धारा बह चली है। कहा जाता है कि यदि शुद्ध दूध मिलही नहीं सकता तो मिलावटी ही लिया जाय। इसमें घाटा कम है। पर यह बात सदा सही नहीं है।

**११७७. दूधके नमूने :** नीचे दूधके नमूनोंकी जाँचमें मिलावटका प्रतिशत दिया जाता है :—

# आँकड़ा—१५८

## आहारकी मिलावटके कानूनके अनुसार दूधके नमूनोंकी जाँच

| प्रान्त | परीक्षितोंकी कुल संख्या | प्रतिशत मिलावट पायी गयी |
|---|---|---|
| सीमाप्रान्त | ७० | २९·० |
| पंजाब | १,००५ | ३०·१ |
| दिल्ली प्रान्त | २,९९३ | १७·२ |
| सिन्ध | १,००६ | २८·६ |
| बम्बई प्रान्त | ९,०८८ | २२·० |
| मदरास प्रान्त | ३,८३४ | ४९·० |
| मध्यप्रान्त | ६२९ | ३०·८ |
| युक्तप्रान्त | २,४७२ | १९·८ |
| बिहार और उड़ीसा | १३९ | ५९·७ |
| बंगाल | २,०८३ | ५२·८ |
| आसाम | ९६ | ९१·९ |
| कुल — | २३,९१८ | २९·७ |

—(दूध बाजारकी रिपोर्ट, १९४१-'४२, पृ० २२९)

आँकड़ेसे मिलावटका पूरा पता नहीं चलता। प्रान्तोंमें दूधका जो मान ठहराया गया है जाँच उसीके अनुसार हुई है। यदि मान ही छोटा है तो जो दूध मानके अनुसार भी है उसमें भी मिलावट निकलेगी।

**दूधका मान और कानून :** साधारण तौर पर तीन वर्गका दूध माना गया है—गाय, भैंस और मिला हुआ। यह वर्गीकरण सब जगह काममें नहीं आता। साधारण तौर पर दुग्ध गोदुग्ध ही माना जाता है। अनेक प्रान्तोंमें गायके दूधका मान ही सरकारने माना है। प्रान्त प्रान्तके मानका अन्तर भी बहुत आदे है। विभिन्न प्रान्तीय सरकारोंने दूधमें नीचे लिखा मक्खनका प्रतिशत स्वीकारा है :—

"...मदरास और मध्यप्रान्तमें गायके दूधमें ३ सैकड़ा स्नेहका मान है। भैंस के दूधमें मदरास ४·५ सैकड़ा, पंजाब, युक्तप्रान्त, सीमाप्रान्त, मध्यप्रान्तमें ५ सैकड़ा। बिहारमें ५ सैकड़ा स्नेह, मिश्रित दूधमें। सीमाप्रान्तमें गायके दूधके लिये स्नेह-रहित-ठोस पदार्थका न्यूनतम मान ८ सैकड़ा है। यह मान शायद बहुत कम है। मध्यप्रान्तकी सरकारने भैंसके दूधका स्नेह-रहित-ठोस पदार्थका न्यूनतम मान ८·५ सैकड़ा रक्खा है।"—(डेभिस—"इंडिजिनस मिल्क प्रोडक्टस ऑफ इंडिया" पृ० १३)

बंगाल जैसे प्रान्तोंकी अपेक्षा जहाँ गायके दूधमें स्नेहका मान ३·५ सैकड़ा माना गया है, जिन प्रान्तोंमें ३ सैकड़ा मान है वहाँ मिलावटी दूध असलीके नाम बेचना अधिक सरल है।

गायके दूधमें ४·५ सैकड़ा स्नेह होता है। इसलिये यदि ३ या ३·५ सैकड़ा स्नेह ठहराया जाता है तो मिलावटी दूधके नमूने असली मान लिये जायेंगे।

भारतमें दूधका मान बहुत नीचा ठहराया गया है। भारतीय गायोंके दूधके नमूनोंकी इकट्ठी जाँचसे सिद्ध होता है कि, उनके दूधमें न्यूनतम स्नेह ४·५ सैकड़ा है। यह जग जाहिर बात है। फिर इतना नीचा मान पहले क्यों ठहराया गया और उसे कायम रखनेकी जिद क्यों की जाती है यह कहना कठिन है।

कारण यह हो सकता है कि, आँख मूँद कर दूसरे देशोंकी नकल की गयी है। दूसरे देशोंमें स्नेहका मान ३ से ३·५ सैकड़ा ही है। कानूनमें ३ से ३·५ सैकड़ा मान मंजूर है, इस कारण कमसे कम म्युनिस्पल्टीकी सीमाके भीतर दूधकी मिलावटको बढ़ावा मिला है। जैसे कि मदरासमें ४·५ सैकड़ा स्नेहवाले असली गो-दूध बेचनेवालेको वही दाम मिलेगा जो ३० रत्तल असली दूधमें ५० सैकड़ा पानी मिलाकर ४५ रत्तल करके मानवाला दूध बना कर बेचनेवालेको मिलता है। इस तरह मिलावट करनेवालेको ५० सैकड़ा मुनाफा मिलता है। इसका नतीजा यह होगा कि, मदरास में सभी दूध बेचनेवाले ५० सैकड़ा पानी मिलाने लगेंगे। और विश्लेषणात्मक जांचमें ५० सैकड़ा मिलावटवाला दूध असली मान लिया जायगा। ३ सैकड़ासे कम स्नेह निकलने पर ही वह मिलावटी माना जायगा। मिलावटके नमूनोंका प्रतिशत दिखानेवाला आँकड़ा देखते समय यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये। जहाँ ५० सैकड़ा मिलावटकी छूट है वहाँ कितनी मिलावट हो सकती है। म्युनिस्पल्टीके कानूनोंने गायके दूधका ४·५ सैकड़ासे कम मान ठहरा कर मिलावटको बढ़ाया है।

उसी तरह मिश्रित दूधके काल्पनिक मानने मिलावटको और उत्तेजना दी है। जब स्नेहका प्रतिशत इतना विभिन्न है तब केवल मिश्रित दूध कहनेसे काम नहीं चलता। यह साफ बताना चाहिये कि कौनसा दूध कितना है। और मिश्रित दूध ही ही क्यों? यह हम जानते हैं कि दोनों दूधके उपकरण भिन्न हैं और उनकी स्नेह बुन्दकियोंकी बनावट भी भिन्न है। इसलिये मिश्रित दूधकी मनाही होनी चाहिये। जो लोग भैंसके दूधमें पानी मिला उसे गायका कहते हैं उन्हें कानूनकी शरण नहीं मिलनी चाहिये। अनुवीक्षण यंत्रसे पता लग सकता है कि, यह दूध शुद्ध गायका है या पानी मिलाया भैंसका।

११७८. **विदेशी प्रथाके अनुसार दूधका कानून :** दूध बाजारकी रिपोर्टसे पता चलता है कि, कैसे कैसे वाहियात कायदोंकी नकल की गयी है। आहारकी मिलावट और प्रान्तीय कानूनोंमें अव्यवहार्य नियमोंको स्थान दिया गया है। पंजाबके हलवाइयोंको हिदायत है कि, वह हर रोज अपनी फर्स, टेबल, आलमारी आदि धोयें। युक्तप्रान्तके दूध बेचनेवालोंको हुकुम है कि किसी छूतका बीमारीके रोगी (थनकी क्षयभी इसीमें है) पशुका दूध न बेचें। इंगलैन्डमें भी क्षयमुक्त गायकी जाँच होनी है और उसका दूध अलग ही गारंटीके साथ बेचा जाता है। ठट्ठकी गायोंकी सरकारी परीक्षा होती है। युक्तप्रान्तमें जाँचका कोई प्रबन्ध नहीं है फिर भी कानून बनानेमें आँख मूँद कर नकल की गयी है।

भारतमें जैसे दूधका कोई निश्चित मान नहीं है उसी तरह दूधकी बनी चीजोंका भी नहीं है या अर्थहीन मान कानूनसे मंजूर हैं। इस संबन्धमें डा० राइटका कहना यथार्थ है :

"यदि खोआ और ऐसे पदार्थोंके मान ठहरा लिये जायँ तो इससे बनाने और पैक करनेके तरीकोंमें बहुत सुधार होगा। आजके मान (जहाँ हैं) को उपयोगितामें सन्देह है। उदाहरणके लिये पंजाब शुद्ध आहार कानून (१९२९) के अनुसार खोआमें १० सैकड़ा से अधिक नर्मी हर्गिज न हो और स्नेह २० सैकड़ा से कम न हो। फिर भी चालके अनुसार खोआ दूधका २५ सैकड़ा होना चाहिये।* ... यह साफ है कि, चालू मानकी फिरसे जाँच जरूरी है।

* खोआ २५ सैकड़ा नहीं होता, गाढ़ा दूध (खीर) होता है।

"...कुछ या केवल दुद्धीकी बनी चीजोंके प्रकारका कोई मान अनेक प्रान्तोंके आहार कानूनमें नहीं है।...केवल शुद्ध दूधकी बनी चीजोंका ही मान स्थिर करना जरूरी नहीं है, दुद्धी और आधी क्रीम निकाले दूधकी बनी चीजोंका भी मान स्थिर करना जरूरी है।"—(राइटकी रिपोर्ट, पृ० ४७-४८)

कलकत्ता जैसे कुछ शहरोंकी हालत बुरी है। कलकत्ता कारपोरेशनके आहार कानूनमें दुद्धी या उसकी बनी चीजोंको स्वीकार नहीं किया जाता। कलकत्तेमें कायदेके अनुसार दुद्धी बिक नहीं सकती। यह दूसरी बात है कि वह शुद्ध दूधके मानसे बिकती है। लेकिन कानूनके अनुसार असली नामसे दुद्धी बेचनेकी मनाही है।

११७६. **दुद्धी और आहार कानून :** दूध बाजारकी रिपोर्टमें कोआपरेटिभ मिल्क सोसायटी यूनियनकी इस कठिनाईका जिक्र है। यह समझा जाता है कि यह संस्था कलकत्तेकी नालियोंमें यह पोषक पदार्थ बहा देती है, क्योंकि कानून इसके बेचनेकी मनाही करता है। सोसायटी क्या करती है यह वही जाने, पर रिपोर्टमें यही बात छपी है।

केवल दुद्धीका बाजारमें प्रवेश निषिद्ध नहीं है, उसकी बनी चीजोंकी बिक्री भी दन्डनीय है। दन्डका कानून नामके लिये ही है। असल बात यह है कि, कलकत्तेके चारों स्टेशनों पर सांझ सबेरेके गाड़ियोंमें बोझका बोझ दुद्धीका छेना नियमसे आता है और यह बहुबाजारके छेना हाटमें बिक भी जाता है। खुले आम यह होता है और इसके लिये प्रबन्ध है। स्वास्थ्यके गार्जियनोंने हेल्थ अफसर रक्खे हैं। इनके भी मातहत हैं। इनको भी दिखाना है कि, यह लोग कर्तव्य परायण हैं, और जनताको भी सस्ता छेना चाहिये। महीनेमें एक बार या जब कभी थोकवालोंसे चिढ़ कर इन्सपेक्टर साहब छेना लादनेवालोंका पीछा करते हैं। लादनेवाले भी चाल जानते ही हैं। वह तितर बितर हो जाते हैं। एक आध आदमी पकड़ा जाता है। उसका माल नालीमें फेंक दिया जाता है। कभी किसी आढ़तिया पर मुकद्दमा चला दिया जाता है। वह जुरमाना भर देता है और यह भी जानता है कि, इन्सपेक्टरसे कैसे निबरना चाहिये। यदि कारपोरेशनका स्वास्थ्य विभाग कलकत्तेमें दुद्धीका छेना बन्द करनेकी ठान ले तो क्या यह होता रह सकता है? जब पोषण-विद्या बन ही रही थी तब जो मूर्खतापूर्ण कानून बना वह अभी भी कायम है। यह काममें कैसे आता है इसका उदाहरण ऊपर है।

बुराईका अन्त यहीं नहीं है। रंगका भेद भी किया जाता है। दुद्धीसे गाढ़ा बना डब्बेका दूध या चूर्ण दूध कलकत्तेमें सब जगहही बेरोक विदेशोंसे आता और बिकता है। कलकत्तेमें दुद्धीको विदेशी पहनावा पहनना जरूरी है। वह टिनोंमें बन्द होकर आवे और कानूनको पछाड़े।

कलकत्तेमें यह हो रहा है। पर बम्बईकी सरकारने चूर्ण दुद्धीके स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थको कुल मात्राके लिये नियम बना दिये हैं। भारत सरकारने विदेशी चूर्णका आयात-कर माफ कर दी है कि, स्कूल जानेवाले बच्चे स्वास्थ्य सुधारके लिये उसे खूब खायँ। क्या कलकत्तेके स्कूली बच्चे और जनताभी अपने स्वास्थ्यके लिये दुद्धीका छेना नहीं पा सकते?

१९८८. **तंग करनेवाली सजा:** केवल तंग करनेके लिये सजा देहात तकमें है। क्रीम बनानेवालों से दुद्धी लेकर यदि कोई ग्वाला दही जमावे और सस्ता बेचे तो वह सैनीटरी इन्सपेक्टरकी निगाहमें चढ़ जायगा। उसे अब तो अदालतमें जुरमाना भरना होगा या सजासे बचनेके लिये इन्सपेक्टरको "खुशी" करना होगा। आहारकी मिलावटके प्रान्तीय और म्युनिस्पल कानून बहुत बुरे हैं। व्यवहारमें ये निकम्मे और अत्याचार से भरे हैं।

१९८९. **कानूनके भंगकी हल्की सजा दी जाती है:** सन् १९३७ में डा० राइटने बताया था कि, कुछ मामलोंमें आहार-कानूनके भंगको महत्व नहीं दिया जाता। बात सुधरी नहीं है। हालकी (१९४१-'४२) दूध बाजारकी रिपोर्टमें नीचे की बात लिखी है:—

"मझगाँव (बम्बई) के मक्खनके एक व्यापारीको बम्बई आहार-कानून (१९२५) बार बार तोड़नेके अपराधमें नीचे लिखी सजा दी गयी:—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १६ जनवरी, | १९३९ को | ५ रु० | |
| १६ जनवरी, | १९३९ को | ५ रु० | |
| १३ मार्च, | १९३९ को | १५ रु० | |
| २१ अगस्त, | १९३९ को | ६० रु० | |
| २१ अगस्त, | १९३९ को | १०० रु० | |
| १२ फरवरी, | १९४० को | मक्खनमें १२ सैकड़ा अतिरिक्त नमीके लिये | १६ रु० |
| १५ मई, | १९४० को | मक्खनमें १९ सैकड़ा मिलावटके लिये | ५० रु० |
| १५ मई, | १९४० को | मक्खनमें ९ सैकड़ा अतिरिक्त नमीके लिये | १० रु० |

"इतने कम और अद्भुत जुरमानेके और कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। मक्खनमें ७४·१ सैकड़ा मिलावट करने के एक मामलेमें एक आनरेरी मजिस्ट्रेटने अपराधी को १ रुपया जुरमाना किया। दूधके मामलोंमें साधारण जुरमाना २ रु० से २० रु० तक होते हैं।..."—(पृ० २२७-'२८)

रिपोर्टमें बताया गया है कि, बम्बई कानूनमें पहले कसूरके लिये २०० रुपया जुरमाना है। बादके कसूरोंके लिये १,००० रुपया तक जुरमाना या जेल या दोनों ही हो सकते हैं।

डा० राइटकी रिपोर्टको सिफारिशोंको काममें लानेके लिये भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद बहुत कुछ कर रही है। पर बातें बहुत धीरे धीरे हो रही हैं। घी की मिलावटके बारेमें इस परिषदने जो किया सो पहले कहा जा चुका है। केन्द्रीय सरकार राह दिखा सकती है। प्रान्तोंमें पशु-पालनकी खोजका जो कुछ काम हो रहा है उसके लिये इस परिषदके मार्फत केन्द्रीय कोषसे ही रुपये मिलते हैं इसलिये वह प्रान्तीय सरकारों पर केवल नैतिक दबावसे ही अपनी इच्छा नहीं लाद सकती। प्रान्तों और राज्योंको राह दिखानेवाले केन्द्रके आहार-मिलावट कानूनकी प्रान्त अवज्ञा नहीं कर सकते।

# अध्याय २७

## दूध परीक्षा

११८२. **दूधके जाँचकी जरूरत :** दूधका काम करनेवालोंके लिये दूधकी जाँचकी कोई सरल विधि होनी चाहिये। इसकी जरूरत केवल मिलावट देखनेके लिये ही नहीं है। दूधसे दूसरी चीजें बनानेके लिये भी यह जरूरी है। अपने यहांकी गायके दूधकी जांचभी जरूरी है। उससे यह मालूम हो जाता है कि, उसके दूधमें कितना स्नेह है। क्योंकि, सभी गायके दूधमें

एकसा स्नेह नहीं होता। यदि स्नेहकी जाँचका सुबीता हो तो दूध स्नेहके आधार पर खरीदा जा सकता है। इससे दूध देनेवालोंकी मिलावट करनेकी आदत दूर हो जायगी। क्योंकि, जब दूधका दाम स्नेहके आधार पर दिया जायगा तब पानी मिलानेसे दूधवालेको उस पानीका बोझ व्यर्थ ढोना होगा।

इसलिये जाँच करना जरूरी है। इसलिये कुछ रासायनिक और भौतिक शास्त्रीय सरल विधियाँ यहाँ दी जाती हैं। इनके सहारे जो रासायनिक नहीं हैं, पर शास्त्रीय ढंग पर काम करना चाहते हैं वह भी आसानीसे यह कर सकते हैं।

शास्त्रीय यन्त्रों और पारिभाषिक शब्दोंका उपयोग छोड़नेसे काम नहीं चल सकता। नौसिखुओंको समझानेका पूरा ध्यान रक्खा गया है। रासायनिक तराजू काममें लाना ही होगा। रासायनिक यंत्र जैसे, बीकर (काँचका ग्लास्) ब्यूरेट, पिपेट, मेजरिंग सिलेंडर, मेजरिंग फ्लास्क आदि काममें लाने होंगे। सीखनेवालोंको अपने रासायनिक मित्रोंसे इनका उपयोग सीख लेना चाहिये। विविध यंत्रोंका काममें लाना या शास्त्रीय रीतिसे तौलना या विश्लेषण करना इनके वर्णन थोड़ेमें नहीं हो सकते। अपने मित्रोंसे इसकी व्यावहारिक शिक्षा लेनी चाहिये। इसकी जानकारी रखनेवालोंकी कमी नहीं है।

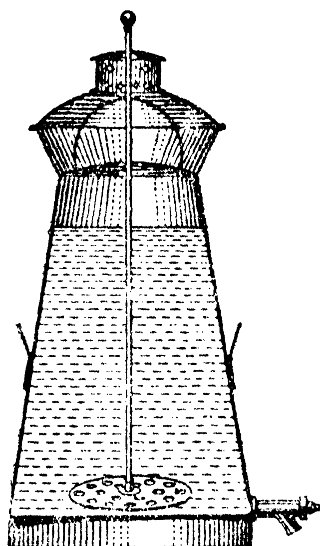
तौल और नाप अड़चनें हो सकते हैं। अध्यायके अन्तमें तौल और नापकी सूची दी गयी है (११६८)। इसे अच्छी तरह समझनेसे सीखनेवालोंको मालूम हो जायगा कि, "सी० सी०" या "लीटर" नामका क्या अर्थ है।

११८३. **नमूना लेना :** इसके बाद नमूना लेनेकी बात है। असावधानीसे लिया नमूना बादके सारे कामको व्यर्थ बना देगा। नीचे बताया गया है कि, नमूना लेनेका सही तरीका क्या है। यदि एक बार पढ़नेसे साफ समझ न आवे तो सावधानीके साथ फिर पढ़ना चाहिये। इसके साथ यंत्रों, सूचकों और हिसाबकी जानकारी अधिक कामकी चाहिये। हिसाब जाननेवालेको इससे सही जाँचमें आसानी होती है। इसके जो परिणाम होंगे वह काममें सहायक तो होंगे ही, साथही सफलतापूर्वक इन प्रयोगोंके करनेका आनन्द भी प्राप्त होगा।

११८४. **नमूना लेनेमें सावधानी :** दूधकी जाँचमें ठीकसे नमूना लेनेका बहुत महत्व है। हम यह जानते हैं कि यदि छेड़छाड़ न हो तो स्नेह दूधके ऊपर आ जाता है। इसलिये यदि ऊपरी सतहसे ही नमूना ले लेते हैं तो वह बर्तनके कुल दूधका नमूना नहीं होगा। इसमें बहुत ज्यादे स्नेह मिलेगा।

इसी तरह पेंदेका दूधभी बर्तनके दूधका असली नमूना नहीं होगा। क्योंकि, इसमें स्नेह बहुत कम होगा। इसलिये नमूना लेते समय दूध अच्छी तरह मिला लेना चाहिये। एकसे दूसरे बर्तनमें कई बार दूध मिलाकर तब नमूना लेना चाहिये। बर्तनके दूधका सही प्रकार बतानेवाला यही नमूना होगा।

यदि मिलाना संभव न हो तो छलनी की हुई चकती कईबार ऊपर नीचे करनेसे दूध अच्छी तरह मिल जाता है। (चित्र—५३)



चित्र ५३. नमूना लेनेके पहले दूधका टिन जिसके भीतर दूध मिलानेके लिये छलनीदार चकती है

अच्छी तरह मिला लेनेके बाद काँचकी एक नली पेंदे तक डुबानी चाहिये। उँगलीसे नलीका ऊपरी मुँह बन्द करके उसे निकालो और नमूनेकी बोतलमें उसका दूध डाल दो।

यदि विश्लेषणके लिये नमूना कहीं दूर भेजा जानेवाला हो या कानूनके अनुसार कहीं और उसकी जाँच होनी हो तो उसे चार आउन्सकी शीशीमें रखना चाहिये। काग लगाने लायक जगह छोड़ शीशी गरदन तक भर देनी चाहिये। नमूनेकी ऐसी शीशीमें लेबेल चिपका कर उस पर तारीख आदि विवरण लिखना चाहिये। कागको सुतलीसे बाँध उस पर मुहर लगा देनी चाहिये। यदि नमूनेकी जाँच तुरत होनेको न हो तो रासायनिक सामग्रियोंसे दूध बिगड़नेसे बचाना चाहिये।

**११८५. संयुक्त नमूना :** दूधवालोंसे जब मक्खनके आधार पर दूध लिया जाता है तब रोज रोज दूधकी जाँच करनी होती है। पर रोज रोज जाँच करनेके बदले संयुक्त नमूने की जाँच होती है। एक बोतल पर दूधवालेका नाम लिख लिया जाता है। उसीमें रोज दूधके अनुपातसे नमूना लेकर डाल दिया जाता है। हफ्ते भरका नमूना जब जमा हो जाता है तब विश्लेषणके लिये भेजा जाता है। जिससे दूध बिगड़ने न पावे इसलिये ३ रासायनिक द्रव्य काममें लाये जाते हैं। ये तीनों ही विष हैं। जाँचके समय तक दूध ठीक रखनेके लिये ये चीजें सरलतासे काममें लायी जा सकती हैं।

दूधके नमूने ठीक रखनेवाले रासायनिक द्रव्य :—

(१) मरकियूरिक क्लोराइड। यह तेज विष सफेद रंगका एक चूर्ण है। इसकी जरासी मात्रा भी पूर्ण घातक है। नमूनेकी शीशीमें जरासा डाल देनेसे दूध नहीं बिगड़ता। बुराई यही है कि, यदि किसीने अच्छा साधारण दूध समझ नमूना पी लिया तो जान चली जायगी। जहाँ हिफाजतका प्रबन्ध नहीं वहाँ ऐसी चीज रखना भी भयंकर है। इसे काममें नहीं लाना चाहिये। यदि यह काममें लाया जाय तो कुछ रंग डाल कर दूध रंग देना चाहिये। जिससे भूलसे खानेकी चीजोंमें कोई इसे मिला न दे।

(२) फौरमऌडिहाइड। विष तो यह भी है पर मरकियूरिक क्लोराइडके इतना नहीं। इसमें कठिनाई यह है कि, दूध जम जाता है। इससे सारी बोतलके मिले जुले दूधकी जाँच नहीं हो सकती। इसे भी काममें नहीं लाना चाहिये।

(३) पोटाश बाइक्रोमेट। यह भी विष है। पर इसके कारण दूध रंगीन हो जाता है। इसलिये दूधका रंगीन नमूना पहचाननेमें भूल नहीं हो सकती। शीशीमें कुछ दाने डाल देनेसे दूध नहीं बिगड़ेगा। यह इकहरे और संयुक्त दोनों तरहके नमूनोंके लिये अच्छा है।

**११८६. आपेक्षिक गुरुत्व निकालना :** आपेक्षिक-गुरुत्व-बोतलमें कुछ दूध तौलकर उसका आपेक्षिक गुरुत्व जाना जा सकता है। रासायनिक तराजूमें तौल कर आपेक्षिक गुरुत्व जाननेके लिये तराजूसे काम लेना सीखना होता है। रासायनिक तराजू बहुत सुकुमार यंत्र है। लैक्टोमीटर यंत्रके बारेमें बहुत लोग जानते हैं। इस साधारण यंत्रसे भी आपेक्षिक गुरुत्व जाना जा सकता है। पर रासायनिक तराजूसे आपेक्षिक गुरुत्व निकालना सबको जानना चाहिये। छोटी मोटी

जाँचमें तराजू बड़े कामकी चीज है। तौलकर आपेक्षिक गुरुत्व निकालना सीख लेने पर यह काम सरल हो जाता है।

तौल कर आपेक्षिक गुरुत्व निकालनेके लिये एक तरहकी बोतलकी आवश्यकता होती है जिसे आपेक्षिक-गुरुत्व-बोतल कहते हैं। यह बोतल पतले काँचकी होती है। इसकी डाट भी काँचकी होती है। डाटमें आरपार महीन छेद होता है। इस बोतलके साथही उसी तौलका एक पीतल का टुकड़ा दिया जाता है।

बोतलको दूधसे भर दो और डाट लगा दो। फाजिल दूध डाटके छेदसे बह जायगा। बोतल और डाटका छेद दूधसे भरा रहेगा। पहले गीले फिर सूखे कपड़ेसे बोतल पोंछ दो।

बोतलको तौलो। समान वजनवाले पीतलको दूसरे पलड़े पर रक्खो। जो तौल निकले वह केवल दूधकी ही तौल होगी। बोतलमें जितना पानी समा सकता है उसकी तौल बोतल पर ही लिखी रहता है। दूध और पानीका तौल हम जान गये। इसीसे आपेक्षिक गुरुत्व निकाला जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व ताप पर निर्भर है। पानी एक विशेष ताप पर तौला जाता है। साधारण तौरपर १५ सं० पर। पर मोटे हिसाबके लिये तापकी बात छोड़ भी सकते हैं। अधिक सही हिसाबके लिये तापमें सुधार कर लिया जाता है।



चित्र ५४. आपेक्षिक गुरुत्वकी बोतल

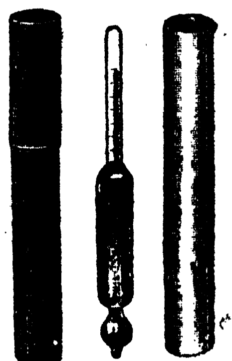
हिसाब :—

$$\frac{\text{तौलने पर दूधकी जो तौल हो}}{\text{बोतल पर लिखी हुई पानीकी तौल}} = \text{आपेक्षिक गुरुत्व}$$

**११८७. आपेक्षिक गुरुत्व : लैक्टोमीटरकी जाँच :** लैक्टोमीटर काँचकी एक नली होती है। इसका बिचला हिस्सा फूला होता है। निचला हिस्सा लट्टू की तरह होता है। नलीका मुँह ऊपरकी ओर बन्द रहता है। चिन्ह आपेक्षिक गुरुत्व बताते हैं। लैक्टोमीटरके नामसे बिकनेवाले अनेक यंत्र विश्वासके लायक नहीं होते। इसलिये विश्वासी कारखानेका बना यत्र लेना चाहिये। विश्वासी यंत्रोंमें "कुइविन लैक्टोमीटर" (Quevenne Lactometer) भी एक है।

इस यंत्रमें १०१५ से १०४० तक आपेक्षिक गुरुत्व निकलता है। पहले दोनों अंक नहीं लिखे जाते। १०१५ के बदले केवल १५ लिखा जाता है। दूसरोंकी तरह यह लैक्टोमीटर भी निर्दिष्ट तापके लिये ही बनाया गया है। जितना चाहिये दूधका उतना ताप करना झंझटका काम है। इसलिये तापके अंतरके लिये सुधार करना होता है। यह यंत्र ६० डिग्री फा० के लिये बनाया गया है। यदि बताये तापसे अन्य तापमें यंत्रसे काम लेना हो तो ६० के ऊपर हरेक डिग्रीके लिये ०·१ जोड़ो और ६० से कमकी हरेक डिग्री के लिये ०·१ घटाओ।

उदाहरणके लिये, यदि दूधका ताप ८० डिग्री फा० है और लैक्टोमीटर में २८ उठता है तो ६० के ऊपर हरेक डिग्रीमें हम ०·१ जोड़ेंगे। अर्थात् २० × ०·१ = २ हम जोड़ेंगे। तब सुधार करके १०२८ + २ = १०३० होगा।



चित्र ५. लैक्टोमीटर

पर यदि किसी खास ताप पर लैक्टोमीटरमें क्या उठा यह नहीं देखना है, केवल नमूनोंका तुलनात्मक अन्तर जानना है तब अलग अलग नमूनोंका अंक लिख लेनेसे ही काम चल जायगा। अलग अलग नमूने एक ही ताप के हों।

थनसे तुरत दुहा दूध गरम होता है। यह कुछ देरमें ठढा होता है। जैसे जैसे ताप कम होगा लैक्टोमीटरका अंक बढ़ेगा। इसलिये सही तुलनाके लिये थर्मामीटर से ताप देखना जरूरी है।

इसलिये यदि आप लैक्टोमीटरसे काम लेते हैं तो रासायनिक थर्मामीटर भी रखिये। थर्मामीटर दो नापके बनते हैं। सेंटिग्रेड और फारेनहाइट। फारेनहाइटको नीचेके गुरके अनुसार सेंटिग्रेड बना सकते हैं :—

(फारेनहाइट डिग्री−३२) × $\frac{५}{९}$ = सेंटिग्रेड डिग्री।

सेंटिग्रेडसे फारेनहाइट बनानेका नीचे लिखा गुर है :—

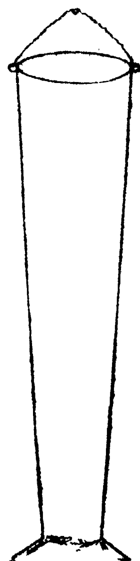
सेंटिग्रेड × $\frac{९}{५}$ + ३२ = फारेनहाइट डिग्री। फारेनहाइट या सेंटिग्रेड डिग्री नापका थर्मामीटर जो आपके दूसरे काम भी आ सके, पसन्द करिये। ध्यान रहे कि डाक्टरोंका थर्मामीटर हमारे इस कामका नहीं है। इसे क्लीनिकल थर्मामीटर कहते

हैं। क्लीनिकाल थर्मामीटरसे हम पशुओंका ताप नाप सकते हैं। दूधका ताप नापनेके लिये रासायनिक थर्मामीटर जरूरी है।

११८८. **गादकी जाँच :** दूधकी खरीदमें कभी कभी इस तरह जांचना बहुत अच्छा है। इससे दूधमें नहीं घुल सकनेवाला गन्दगीका पता चल सकता है। गन्दगी दूर करनेके लिये और सफाईकी जरूरत दिखानेके लिये इससे बढ़ कर और कुछ नहीं है। जाँचका एक सरल तरीका नीचे लिखा जाता है :

दोनों ओर खुली एक नली बनाओ जिसमें १¾ रत्तल दूध अँटे। नलीके एक ओर तारकी जाली चलनीकी तरह बैठायी रहती है। जाली बैठानेके पहले उसमें रुईका एक छोटासी चकती लगा देते हैं। नली किसी भी आधार पर रख दी जाती है। तब इसमें ऊपरकी ओर से दूध डालते हैं। दूध रुईमें हो कर बहता है। चकती सोख्ता कागजसे सुखाकर रक्खी जा सकती है। दूध गरम यानी १०० डिग्री फा० होना चाहिये।

यह याद रखना चाहिये कि, जो गन्दगी दूधमें घुल नहीं सकती वही इसमें मालूम पड़ेगी, इससे मालूम हो जायगा कि, दूध लानेमें सफाई कितनी बर्ती गयी है।



चित्र ५६.
गादकी जाँच की नली

११८९. **रिडक्टेज जाँच :** दूधमें जीवाणु होते हैं। ये विभाजनके द्वारा बड़ी तेजी से बढ़ते हैं। जीवाणु सब जगह होते हैं। ये ताजे और साफ दूधमें भी रहते हैं। थनमें बहुत नहीं होते। पर चूचीमें इनकी संख्या लाखों होती है। दूधमें जीवाणु चूची, दुहनेवालेके हाथ, बर्तनों, धूल और मक्खी से आ जाते हैं। दुग्धाम्लके जीवाणु दूधको खट्टा कर देते हैं। दूधमें कितना खट्टापन है इसकी जाँच होनी चाहिये। जब कुछ हद तक दूधमें अम्लता बढ़ जाती है तब उसे गरम करनेसे वह जम जाता है। हमारे देशकी गरमीमें रक्खा रहनेसे दूधमें अम्ल बढ़ता रहता है। ठंढसे जीवाणुकी वृद्धि रुक जाती है। इसलिये ठंढे देशोंमें खट्टा हुए बिना ही अधिक देरतक दूध रखना सरल है। जीवाणुकी भी बढ़ती अधिक नहीं होती।

दूध लेनेके समय उसके जीवाणुके बारेमें जानना अच्छा है। इसके सिवा अम्लकी भी जाँच होनी चाहिये।

दूधमें कुछ "पाचक रस" होते हैं। इसके सिवा उसमें आये जीवाणु भी उसमें कुछ पाचक रस पैदा करते हैं। ये पाचक रस यदि सूक्ष्म मात्रामें भी हों तब भी दूधमें अनेक उलट फेर करते हैं।

रिडक्टेज एक तरहका पाचक रस है। इसे जीवाणु दूधमें पैदा करते हैं। कुछ रंगोंके उड़ जानेसे इसकी उपस्थिति मालूम होती है। नीला मिथिलीन उन रंगोंमें एक है जिसका रंग इसके कारण उड़ जाता है। इसलिये दूधमें जीवाणुकी छूत का पता लगानेके लिये इससे काम लिया जाता है।

(१) २,००० भागमें १ भाग मिथिलीन नीला रंग घोलो। या १,००० सी०सी० या एक लीटर पानीमें ½ ग्राम।

(२) ऊपरका घोल मूल घोल है। जाँच के लिये ९ भाग पानीमें १ भाग मूल घोल मिलाया जाता है। इन शास्त्रीय नाप जोखके लिये जाँचनेवालेको कुछ नली रखनी होंगी। इनमें १ से १०० सी० सी० का चिन्ह लगा रहता है। एक नापमेका १,००० सी० सी० का फ्लास्क भी चाहिये।

(३) जाँचकी नली (टेस्टट्यूब) में १० सी० सी० दूधलो और उसमें १ सी० सी० रंगीन घोल छोड़ो।

(४) टेस्टट्यूबके ऊपर थोड़ासा पैराफीन तेल डालो जिससे उसकी सतह पूरी पूरी ढक जाय और हवासे उसका संसर्ग न रहे।

(५) टेस्टट्यूबको पानीमें रक्खो और रंगका बदलना देखो। इसका समय भी नोट करो।

परिणाम :—खराब दूध २० मिनटमें रंगहीन हो जायगा। दूध जितना ही अच्छा होगा, जीवाणुकी छूत जितनी कम होगी, रंगहीन होनेमें उतनी ही देर लगेगी। जितना समय लगता है वह जीवाणुकी छूतकी एक नाप है।

नीचेके आँकड़ेमें दूधके चार वर्ग बताये गये हैं। साथही उनका व्यावहारिक प्रकार, रंग बदलनेका समय और प्रति सी० सी० में जीवाणुओंकी लगभग गिनती दी गयी है :—

## आँकड़ा—१५६

### दूधका आचारिक प्रकार

| वर्ग | प्रकार | रंग बदलनेका समय | प्रति सी० सी० जीवाणु संख्या (लगभग)। |
|---|---|---|---|
| १ | अच्छा दूध | ५½ घंटा या अधिक | ५,००,००० या कम |
| २ | औसत अच्छा | २ से ५½ घंटा | ५,००,००० से ४,००,००० |
| ३ | बुरा दूध | २० मिनटसे २ घंटा | ४०,००,००० से २,००,००,००० |
| ४ | बहुत बुरा | २० मिनट या और कम | २,००,००,००० या अधिक |

**११६०. दूधका स्नेह निर्धारण : गरबर जाँच :** स्नेहके जाँचका सबसे सुबोतेका उपाय यह है कि, जिस तरह क्रीम सेपरेटरमें होता है उसी तरह दूधसे मक्खन निकाल लिया जाय। इस कामके लिये खास तरहसे बनी एक सेंट्रीफ्यूगल (केन्द्रोपसारी) मशीन काममें लायी जाती है। जाँचके लिये दूधका नपा हुआ नमूना विशेष नलियोंमें भरा जाता है।

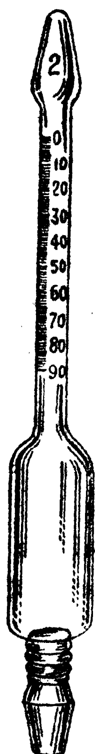
दूधवाली नलियाँ मशीनमें बड़ी तेजीसे घुमायी जाती हैं। केन्द्रोपसारी शक्तिसे स्नेह नलीके सँकरे छोरकी तरफ चला जाता है। सँकरे छोर पर जितनी जगहमें स्नेह रहता है उससे दूधमें स्नेहका प्रतिशतक जाना जाता है।

काम करते समय यह देखा गया है कि, केन्द्रोपसारी शक्तिसे स्नेह अलग करनेके लिये वेगसे काम करना होता है। दूसरी आवश्यकता यह पायी गयी कि दूधके रसभागके आपेक्षिक गुरुत्व और स्नेहके गुरुत्वका अंतर बढ़ा दिया जाय। अगर दूधका रसभाग अधिक भारी हुआ तो स्नेह बहुत जल्दी अलग हो जाता है। केसीनका कुछ उपद्रवकारी प्रभाव भी एक कारण है। मालूम होता है कि केसीन, स्नेह-बुन्दकियोंको पकड़ लेता है। यदि केसीनकी यह बात दूर की जा सके तो स्नेह जल्दी और अच्छी तरह निकल सकता है। ताप बढ़ना भी स्नेह निकलनेमें साधक है। इन सारी बातोंको पूरा करनेका एक सरल उपाय सेंट्रीफ्यूगल मशीनमें दूध रखनेके पहले दूधमें उतने ही घनमानका सघन गंधकका तेजाब मिलाना है।

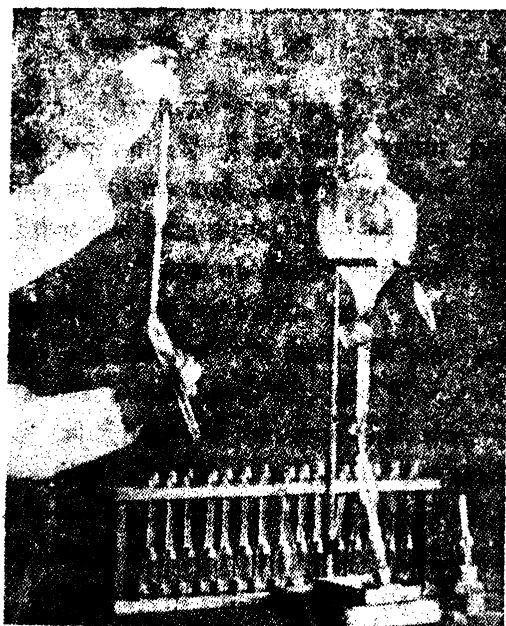
गन्धकाम्लमें प्रोटीन और खनिज द्रव्योंका घोल बनना, गरम एमिल एल्कोहलमें स्नेहका घुलना और केन्द्रोपसारी शक्तिके द्वारा अम्लीय घोलका अलग हो जाना, गरबर

विधिमें ये सब सिद्धान्त काम करते हैं। अगर स्पष्ट परिणामकी चाह है तो बोतलें, विकारक द्रव्य और जो विधि बताई गयी है उसमें जरा भी फर्क नहीं करना होगा। इस कामके लिये नीचे लिखे यंत्रोंकी जरूरत है।

"(१) चित्र ५७में जैसी दिखायी गयी है वैसी गरबर नली। इन नलियोंकी नपी डंडीमें ० से ७ या ८% तक स्नेहको जाँच हा सकती है।




चित्र ५७. गरबर ट्यूब



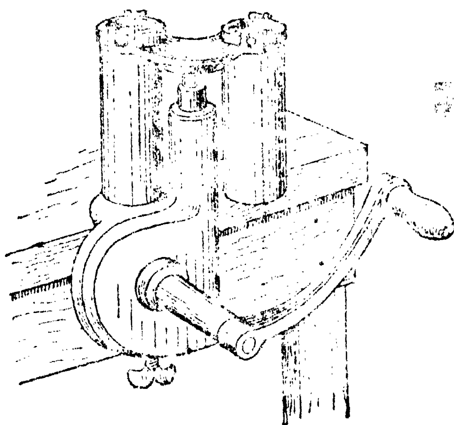
चित्र ५८. गरबर ट्यूबको भरनेका तरीका

"(२) ११ सी० सी० दूध, १ सी०सी० एमिल एलकोहल और १० सी०सी० गन्धकाम्ल नापनेके लिये पीपेट चाहिये। जाँचका काम जल्दी हो इसके लिये पिछले दोनों स्वतः संचालित लिये जा सकते हैं। यदि साधारण पीपेट काममें लाना हो तो उसके सिरे पर दो बल्ब होना चाहिये, जिससे आपत्तिजनक द्रव मुँह

में तेज खिंचावके कारण न जाय। एमिल एलकोहलका पीपेट काफी छोटा होनेसे सुविधा रहती है। ऐमिल एलकोहलके बोतलमें डालनेसे ही उसमें १ सी० सी० आ जाय। मुँहसे न खींचना पड़े। इससे नापनेका बहुतसा समय बच जाता है।

"(३) गरबर नली और पीपेट रखनेके लकड़ीके आधार। पीपेटके लिये यह खास तौर पर जरूरी है। क्योंकि इनकी छोर टूट जानेसे यह नापनेके कामके नहीं रहते।

"(४) वाटर बाथ (गरम पानीमें गरम करनेका साधन) और आधार जिस पर गरबर नली १४९ डिग्री फा० पर गरम की जा सके।



चित्र ५९.
सेन्ट्रीफ्यूगल मशीन

"(५) हाथ या शक्तिसे चलनेवाली सेन्ट्रिफ्यूगल (केंद्रोपसारी मशीन) जो मिनटमें १,००० बार घूम सके और जिसमें ८ से २४ नली रह सकें।

"जिन विकारकों (reagents) की जरूरत होती है वह यह हैं: (१) ५९ डिग्री फा० ताप पर १·८२० से १·८२५ आपेक्षिक गुरुत्वका गन्धकाम्ल। यह जल मिलाकर ९० से ९१% तक पतला कर लिया जाय। इस शक्तिका तेजाब सावधानी से पानीमें पतला किया जा सकता है। बाजारके तेज तेजाबके २०० भागमें १६ भाग पानी मिला कर पतला करना चाहिये। बाजारकी गन्धकाम्लकी शक्ति एकसी नहीं रहती। इसलिये इस अनुपातमें कुछ अदल बदल कर लेना चाहिये।

"(२) पेट्रोलियम-रहित शुद्ध एमिल एलकोहल जिसका आपेक्षिक गुरुत्व ५९ डिग्री फा० पर ०·८१६५ से ०·८१८ हो और जो १२४ और १३० डिग्री से० के बीच खौले। एमिल एलकोहलसे स्नेह पीले रंगके घोलसा होकर तुरत अलग हो जाता है।

"**विधि** :—गरबर नलीमें १० सी० सी० गन्धकाम्ल डालो और उसे आधार पर रक्खो। तब उसमें १ सी० सी० एमिल एलकोहल मिलाओ।

"विकारकोंको मिलानेमें इस बातका ध्यान रहे कि, नलीकी पेचदार गरदनसे इनका संसर्ग न होने पावे। अच्छी तरह मिलाया हुआ दूध पीपेटमें ११ सी० सी० नाप कर ले लो। गरबर नली कुछ तिरछी करके पीपेटको गरदनसे आगे तक ढुकाओ (चित्र—५८)। पीपेटसे दूध धीरे धीरे इस तरह निकालो कि तीनों द्रव पदार्थकी तह अलग अलग रहे। नलीमें दूध जोरसे नहीं गिरे यह जरूरी है। क्योंकि इससे दूध कुछ कुछ झुलस जाता है, इस कारण स्नेह और अम्लका मिलना, विलगाव करनेके बाद मालूम नहीं होता। काग कसके लगाओ। नलीकी डंडी पकड़ जोरसे हिलाओ। डंडीको एक दो बार उलट पुलट तेजाब मिलालो। कुछ देर हिलानेसे सबके साथ तेजाब मिलता है। इससे ताप पैदा होता है। तब नली मशीनमें रक्खो। डंडी केन्द्रकी ओर रहे। तीन मिनट तक मिनटमें हजार चक्करके हिसाबसे घुमाओ। मशीनमें घुमानेके बाद डंडी ऊपर करके नली वाटर बाथमें रक्खो। गरबर नली पर लिखे तापके अनुसार वाटर बाथ गरम करो। नली कुछ मिनट बाथमें छोड़ दो कि उसमें उतनी गरमी आ जाय। नली निकाल लो। कागको आगे पीछे करके स्नेह भागको नली पर खुदे एक निशान पर ले आओ। नलीमें तरल पदार्थका ऊपरी भाग अर्ध चन्द्राकार रहता है। इस अर्ध चन्द्रका तला जिस निशान पर हो वही अंक माना जाता है। सिरेसे नीचेके अंक घटादेनेसे प्रतिशत निकल आता है।

"**टिप्पणी** :—काग लगानेमें विद्यार्थियोंको प्रायः कठिनाई होती है। कभी वह बहुत कम कसते हैं इससे हिलाने पर वह निकल आता है या इतना जादे कसते हैं कि, स्नेह-स्तंभका अंक पढ़नेके लिये उसे ठीक नहीं कर सकते।

"कड़ी तेजाबका व्यवहार झुलसानेवाला है, इससे स्नेह-स्तंभ और बाकी द्रवको पहचान कठिन हो जायगी। यदि तेजाब खूब कमजोर हुई तो वह जमे हुए सभी

प्रोटीनको नहीं घुलावेगी। इससे भी अम्ल-द्रव और स्नेहका स्पष्ट अन्तर नहीं हो सकेगा।

"जिस एमिल एलकोहलमें पेट्रोल होता है उसके कारण कभी कभी भूलें हो जाती हैं। इसलिये १० सी० सी० अम्ल, ११ सी० सी० पानी और २ सी० सी० एमिल एलकोहलसे आँकना हमेशा उचित है। ऐसी हालतमें स्नेह पदार्थ अलग नहीं होना चाहिये।

"नेशनल फिजिकल लैबोरेटरीके मानकी नलीसे बीच बीचमें गरबर नलीकी जाँच कर लेनी चाहिये। इसमें १ से ६% स्नेहवाला दूधका नमूना काममें लाना चाहिये। नलीकी डंडीके हर भागका आवश्यक सुधार लिख लेना चाहिये।

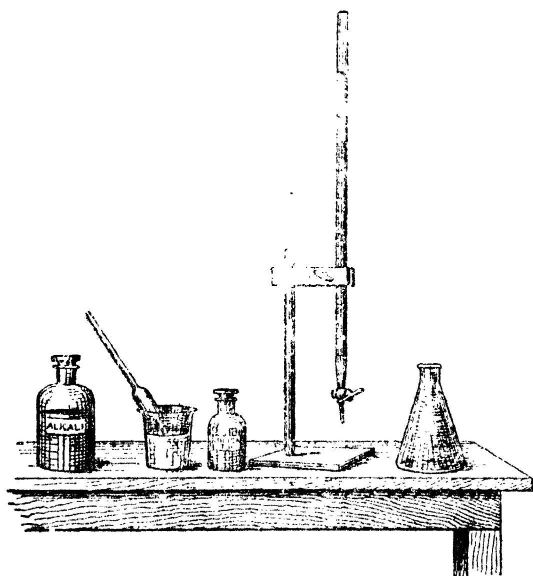
"इस विधिमें अर्ध-चन्द्रके तलेका अंक ही लेना जरूरी है, चाहे वह पीपेटमें हो चाहे गरबरकी नलीमें। पीपेटसे नापना हो या गरबरकी नलीसे स्नेह प्रतिशत निकालना हो, अर्ध-चन्द्रके तल भाग को आँखकी समानतामें रखना जरूरी है।"

—(एडगर—"ए टेक्स्ट बुक आफ डेयरी केमिस्ट्री" पृ० १४१-'४६)

**जाँचके बाद :**—गरबरकी नली गरम पानी और सोडासे धो डालो। साफ पानीसे धोकर सूखे कपड़ेसे पोंछो। नलीको हिलाकर उसकी गाद छुड़ाओ, उन्हें खाली करो और सोडा तथा गरम पानीसे धोओ। कूँचीसे काम लो। साफ पानीसे धोओ और लकड़ीके आधार पर रख दो कि सब पानी चू जाय।

११६१. **दूधकी अम्लताकी जाँच : अम्ल और क्षार :** कुछ देर रखने पर दूध खट्टा हो जाता है। यह दुग्धाम्ल जीवाणुके कारण होता है। यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि, दूधमें दुग्धाम्ल जीवाणुकी ही क्रिया होती है। साथही साथ दूसरे जीवाणु भी अपना काम किये जाते हैं। ये दूधमें अनचाही चीजें पैदा करते हैं जिससे दूध खराब हो जाता है। दुग्धाम्लके जीवाणु दूधको खट्टा या अम्लयुक्त कर देते हैं। हमारा काम इसी से। दूधमें एक तरहकी चीनी होती है जिसे लैक्टोज कहते हैं। दुग्धाम्ल-जीवाणु इसे तोड़कर दुग्धाम्ल बनाते हैं। खट्टापन या अम्लता धीरे धीरे बढ़ता है। जब अम्लता ०·२६ सैकड़ा हो जाय तब गरम करनेसे दूध फट जाता है। जीवाणु बढ़ते और दूधमें अम्लता बढ़ाते जाते हैं। अंतमें ०·९ सैकड़ा सघनता हो जाती है। जब दूधमें प्रायः १ सैकड़ा अम्ल (·९ सैकड़ा) हो जाता है, दुग्धाम्ल-जीवाणुकी वृद्धि रुक जाती है। दूधकी यह अधिकतम अम्लता है। इसके बाद जीवाणु, मरते नहीं, बने रहते हैं।

यदि अम्ल निकाल लिया जाय या प्रशमित (neutralize) कर दिया जाय तो वह फिरसे बढ़ने और अम्ल पैदा करने लगते हैं। इसलिये दूधका काम करनेमें उसकी अम्ल अवस्था जानना जरूरी है। दूधमें कुछ अम्ल लवण सहज होते हैं। जिससे उसमें हल्की अम्लता हो जाती है इसे "स्पष्ट अम्ल" (apparent acidity) कहते हैं। कुल अम्लता, स्पष्ट अम्लता और दुग्धाम्ल-जीवाणु-जनित अम्लता है।




चित्र ६०. दूधकी अम्लता निकालनेका साज सरंजाम

अम्ल और क्षार विरोधी पदार्थ हैं। क्षार अम्लता नष्ट करते हैं। यदि दूधकी अम्लता नष्ट करनेके लिये ज्ञात मात्रामें क्षार काममें लाये गये तो इससे किसी खास नमूनेके अम्लको नाप मालूम हो जायगी।

११६२. **अम्लताकी जाँचमें प्रशमन :** अम्लोंसे सभी परिचित हैं। गन्धकाम्ल अम्ल है। साइट्रिक अम्ल नीबूका रस है। सिरका अम्ल है। इसे एसेटिक एसिड या एसेटिक अम्ल कहते हैं। इसी तरह हाइड्रोक्लोरिक और

नाइट्रिक अम्ल भी प्रसिद्ध हैं। कास्टिक सोडा क्षार है। चूनेका पानी क्षार है। जब क्षार अम्लमें मिलाया जाता है तब वह अम्लता लक्षण नष्ट कर देता है और अपना क्षार लक्षण भी खो बैठता है। दोनोंके मेलसे उत्पन्न पदार्थको रसायन शास्त्रमें लवण कहते हैं।

दुग्धाम्ल कास्टिक सोडा से रोका जा सकता है। जब दोनों मिलते हैं जिससे अम्लता दूर हो जाती है तब क्षारताभी मिट जाती है। संयुक्त पदार्थ अर्थात् लवण, लैक्टेट होता है। यहाँ पर वह सोडियम लैक्टेट है।

११६३. **सूचक :** इसलिये दूधकी अम्लता जाननेके लिये हमें जानी हुई ताकतका कास्टिक सोडा चाहिये। इसके सिवा हमें कुछ सूचकों (indicators) की जरूरत होती है। यह हमें बताते हैं कि अम्लता मिटी या नहीं। या कुछ ऐसे पदार्थ जो हमें अम्ल या क्षारका होना दिखा सकें।

लिटमस कागज ऐसा ही सूचक है। यह वनस्पति रंग है। लिटमसमें रंगा सोख्ता कागज लिटमस कहा जाता है। लिटमस कागज क्षार लगनेसे नीला और अम्ल लगनेसे लाल हो जाता है। नीले और लाल लिटमस कागजसे हम अम्ल और क्षारका पता लगा सकते हैं। बहुत कुछ यही काम हल्दी भी करती है। क्षारसे यह लाल हो जाती है। भीगी हल्दी यदि सोख्ता कागज पर रगड़ दी जाय तो सूचक कागज बन जायगा।

**अम्लताकी प्रकारात्मक जाँच :** दूधमें नीला लिटमस कागज डुबानेसे यदि वह लाल हो जाय तो इससे अम्लताका पता चलता है। ललाई जितनी गहरी होगी अम्ल उतना ही अधिक होगा। खाली लिटमस कागजसे अम्लका केवल अच्छा अन्दाज मिल सकता है। अलग अलग शक्तिके — ·५, १, २, और ·३ सैकड़ा अम्लमें सूचक डुबा कर देखनेसे अम्लता जाननेका मोटा अन्दाज आँखको हो जाता है। अगर आदत डाली जाय तो जीभ भी काम दे सकती है। जीभ पर कुछ बूँद टपका कर अम्लता पता लगाना और उसका अन्दाज करना आ सकता है।

अम्लताकी मात्राका पता लगानेके लिये अधिक सुकुमार एक अन्य सूचक काममें आता है। यह फिनोप्थेलिनका घोल है। फिनोप्थेलिनकी बुकनी एलकोहलमें घुल सकती है। १० ग्राम फिनोप्थेलिन २५० सी० सी० एलकोहलमें घोलनेसे सूचक बन जाता है। यह अम्लमें रंगहीन रहता है पर क्षारसे मिल कर गुलाबीसे लेकर

गहरे लाल रंग तकका हो जाता है। जैसे जैसे क्षार अधिक होता है रंग तेज होते होते गहरा लाल हो जाता है।

**११६४. अम्लताकी जाँच :** दूधका अम्ल जाँचनेके लिये हमें क्षार या कास्टिक सोडाका मानवाला घोल चाहिये। एक हजार क्यूबिक सेन्टिमीटर (१ लीटर) पानीमें ४ ग्राम कास्टिक सोडा डालने से जैसा चाहिये वैसा घोल बन जाता है। यह है साधारण $\frac{१}{१०}$ घोल जिसे एन/१० कास्टिक सोडा लिखा जाता है। १ सी० सी० इस घोलसे ·००९ ग्राम दुग्धाम्लका प्रशमन हो जाता है। इसलिये दूधके किसी नमूनेका दुग्धाम्ल प्रशमित करनेके लिये जितने सी० सी० इस घोलकी जरूरत हो उतना ·००९ ग्राम दुग्धाम्ल उसमें जानो। एन/१० कास्टिक सोडाका मानवाला घोल बनानेके लिये इस क्षारको ठीकसे तौलना चाहिये। रासायनिक तराजू और कुछ ग्राम बटखरे चाहिये। कास्टिक सोडा ; कागज, खाल और पीतल खा जाता है। इसे हाथसे छूना नहीं चाहिये। लोहेकी चम्मच या लोहेकी चिमटीसे उठाना चाहिये। घरिया या घड़ीके काँचमें इसे रखकर तौलना चाहिये जिससे कि, निकतीके पीतलके पलड़ेसे यह छू न जाय। घरियामें अलकतरा पुता रहना चाहिये। विश्लेषणके कामके लिये रासायनिकोंके यहाँसे विश्लेषणात्मक कामके लिये शुद्ध कास्टिक सोडा लेना चाहिये। बाजारू कास्टिक सोडासे काम नहीं चलेगा, क्योंकि उसमें बहुत अशुद्धियाँ होती हैं। शुद्ध कास्टिक सोडाके पतले टुकड़े यदि मिल सकें तो निश्चित मात्रा तौलनेके लिये सबसे अच्छी चीज हो। कास्टिक सोडा बहुत जल्दी सील जाता है। असली बोतल सावधानीसे काग लगाकर रखनी चाहिये। कास्टिक सोडा पर हवाकी कारबोनिक एसिड गैसकी प्रतिक्रिया होती है। वह इसे कारबोनेट बना देती है।

मानका घोल बनानेके लिये चुलाया हुआ पानी (डिस्टिल) काममें लाना चाहिये। साधारण पानी में ऐसे द्रव्य हो सकते हैं जो सोडाके कुछ भाग को प्रक्षेपित कर सकते हैं। एन/१० घोल बनानेके पहले चुलाया पानी उबाल लेना चाहिये कि उसमें घुली हवा निकल जाय।

मानवाले इस क्षारका निश्चित परिमाण नाप कर निश्चित परिमाणके दूधके नमूनोंमें मिलाना चाहिये। नापके लिये ब्यूरेट नामका यंत्र काममें लाया जाता है। यह एक लंबी नली होती है। इसके पेंदेमें टोंटी लगी रहती है। ब्यूरेट सी० सी० के नापका बनाया रहता है। २५ सी० सी० का ब्यूरेट काममें लाया जा सकता

है। ब्यूरेटकी पेंदी काँचकी डाट या रबरकी नलीसे बन्द की जा सकती है। रबरकी नलीमें एक क्लिप लगी रहती है। कास्टिक सोडाके लिये रबरकी नलीही काममें लायी जाय। क्योंकि काँचकी डाटको कास्टिक सोडा कसके चिपका सकता है। इससे ब्यूरेट काम लायक नहीं रहेगा। पर यदि काँचकी डाटसे ही काम लेना हो तो उसमें काफी भेसलिन लगा देनी चाहिये। कामके बाद ब्यूरेट रखनेके लिये पहले यह भेसलिन पोंछ देनी चाहिये।

मानके क्षारका घोल ब्यूरेटमें डालो और डाट खोलकर सेलखरीकी कटोरी या कनिकल फ्लास्कमें रक्खे नमूनेमें डालो।

ब्यूरेटसे १७.५ सी० सी० दूध निकाला जाय। यह १८ ग्राम दूधके बराबर हुआ। कटोरी या फ्लास्कके १७.५ सी० सी० दूधमें चार पाँच बूँद फिनोफ्थेलिन सूचक डालो। रंगमें कोई परिवर्तन नहीं होगा, क्योंकि दूधमें अम्ल है। काँचकी डंडीसे कटोरीको समान चलाओ। यदि फ्लास्क काममें लाया गया है जो उचित भी है तो उसे हिलाकर उसका सामान अच्छी तरह मिला लो। ब्यूरेटसे उसमें क्षार बूँद बूँद तब तक टपकाओ जब तक उसका रंग हलका गुलाबी न हो जाय। घुमाकर मिलानेसे रंग गायब हो जायगा। कुछ बूँद और मिलाते जाओ कि, अन्तमें स्थायी गुलाबी रंग आ जाय। तब कितना सी० सी० क्षार काममें आया यह देखो। जाँच किया घोल कुछ देर छोड़ देनेसे गुलाबी रंग उड़ जायगा। इसका कारण यह है कि, जाँचके बाद जीवाणु और अधिक दुग्धाम्ल पैदा कर देते हैं। मानके घोलसे जीवाणु मरते नहीं हैं, केवल अम्लका प्रशमन हो जाता है। प्रशमनके बाद जीवाणु और जोरसे काम करते और अम्ल बनाते हैं। इसीसे रंग उड़ जाता है।

**हिसाब :** मानका घोल जितना सी० सी० काममें लाया गया है उसे ०.००९ से गुना करो। इससे १८ ग्राम दूधके नमूनेमें जितना दुग्धाम्ल है यह निकल जायगा। इसके बाद हिसाब लगाओ : १८ ग्राममें इतने ग्राम अम्ल है तो १०० ग्राममें इतने ग्राम अम्ल हुआ। परिणाम नमूनेके दूधके अम्लका प्रतिशत बताता है।

अम्लताके प्रतिशतकका गुर =

$$\frac{\text{०.००९} \times \text{सी० सी० क्षार काममें आया} \times \text{१००}}{\text{१८ ग्राम (दूध)}}$$

(यदि १८ ग्राम या १७.५ सी० सी० लिया जाय)

११६५. **चूनेके पानीसे अम्ल जानना :** दूधका अम्ल जाननेका अधिक सरल और अधिक शीघ्र गतिका उपाय, मानके क्षार घोलके बदले चूनेके पानी से काम लेना है। जाँच नीचे लिखे ढंगसे की जाती है।

एक बोतलको प्रायः भरकर उसमें थोड़ा चूना डालो। बोतल हिलाओ जिससे चूना पानीमें घुल जाय। जोरसे हिलानेके बाद उसे थोड़ी देर छोड़ दो जिससे पानी निथर जाय। ऊपरका साफ निथरा पानी हमारी जाँचका चूनेका पानी है। हिलाकर थिराया हुआ वही पानी कई बार काम आ सकता है।

चीनी मिट्टीकी सफेद कटोरीमें १७·५ सी० सी० दूध लो। इसमें चार पांच बूँद फिनोप्थेलीन मिलाओ। नपे सिलेंडरसे चूनेका पानी मिलाते जाओ और चलाओ जब तक उसका रंग हल्का गुलाबी न हो जाय। फिर देखो कि, चूनेका पानी कितना मिलाया गया है।

$$\frac{\text{चूनेका पानी सी० सी०}}{५०} = \text{अम्लताका प्रतिशत}$$

११६६. **फ्रीजिंग पोयेंट जाँच :** दूधकी बनावटोंमें बहुत अंतर हुआ करता है। यह दिखाया जा चुका है कि, दूधकी बनावटके अगणित कारण होते हैं। इतनी विभिन्नतामें एक समानता है फ्रीजिंग पोयेन्ट की। फ्रीजिंग पोयेन्ट उस तापको कहते हैं जिस पर कोई पदार्थ जमने लगता है। दूधका फ्रीजिंग पोयेन्ट लगभग एक ही -·५३ से -·५५ रहता है, अर्थात् शून्यसे आधा डिग्री सेंटिग्रेडके लगभग कम रहता है। सभी प्राणी और सभी आवहवाके दूधका फ्रीजिंग पोयेन्ट यही रहता है। पानी मिलानेसे फ्रीजिंग पोयेन्टमें गड़बड़ी होती है। वह बढ़ जाता है। यदि दूध -·५३ डिग्री सेन्टिग्रेडसे अधिक पाया जाय तो समझना चाहिये कि, दूधमें पानीकी मिलावट है। फ्रीजिंग पोयेन्टका दूधके स्नेहसे कोई सरोकार नहीं है। इसलिये दूध और दुद्धी दोनोंका फ्रीजिंग पोयेन्ट एक रहेगा। दूधमें दुद्धी मिलानेसे यह जाँच कामकी नहीं होगी इसलिये वह असलीसा ही सिद्ध होगा। केवल पानीकी मिलावटमें यह जाँच कामकी सिद्ध होती है। पानीकी मिलावट और फ्रीजिंग पोयेन्टके चढ़नेके मात्रिक अनुपातका पता लग गया है। यह जाँच नयी नहीं है। भारतमें भी नयी नहीं है। पर शायद अपनी सीमित व्यावहारिकताके कारण इसका प्रचार अधिक नहीं हुआ।

१९१५ में डा० जे० एन० लीथरने पूसामें गाय और भैंसके ओसत फ्रीजिंग पोवेन्ट नीचे लिखा निकाला था :—

| | | |
|---|---|---|
| गाय | ... | – ०·५४२° से० |
| भैंस | ... | – ०·५४१° से० |

१९३० में स्टीवर्ट और बनर्जीने बताया कि, गाय या भैंसके कलकतिया दूधका अधिकतर फ्रीजिंग पोयन्ट – ०·५३० से० मानना चाहिये।—(अग्रवाला—"ए लेबोरेटरी मेनुअल ऑफ मिल्क इन्सपेक्सन" १९४०, पृ० ४४)

पानीको मिलावटसे फ्रीजिंग पोयेन्टकी विविध बढ़तीका अग्रवालाने नीचे लिखा आँकड़ा दिया है।

## आँकड़ा—१६०

### पानीकी मिलावटसे फ्रीजिंग पोयेन्टका अंतर

| सेंटिग्रेड ताप | | प्रतिशत पानीकी मिलावट |
|---|---|---|
| – ०·५६५ | ... | २ |
| – ०·५४३ | ... | ४ |
| – ०·५३० | ... | ५ |
| – ०·५०६ | ... | १० |
| – ०·४९० | ... | १५ |
| – ०·४८५ | ... | २० |
| – ०·४५० | ... | २५ |

## आँकड़ा—१६१

### विभिन्न प्राणियोंके दूधका फ्रीजिंग पोयेन्ट

| | | सेंटिग्रेड तापकी डिग्री |
|---|---|---|
| भैंस | ... | – ०·५६ से – ०·५९ |
| गाय | ... | – ०·५५ से – ०·५८ |
| बकरी | ... | – ०·५५ से – ०·५९ |
| औरत | ... | – ०·५५ से – ०·५९ |

ऐसा मालूम होता है कि, फ्रीजिंग पोयेन्टके अनुसार पानीकी मिलावटका प्रतिशत निश्चित रूपसे नहीं जाना गया है। लीथरके दिये आँकड़े बनर्जी और स्टीवर्टके आँकड़ेसे भिन्न हैं। सबका मत यही है कि, यदि दूधका फ्रीजिंग पोयेन्ट – ०.५३ से ऊपर हो तो उसमें पानीकी मिलावट मानना चाहिये। फ्रीजिंग पोयेन्टके जाँचका मान स्थिर करनेके लिये भारतमें खोज हो रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषदके बोर्डने तय किया है कि, (१९४१-'४२ की रिपोर्ट) फ्रीजिंग पोयेन्ट जाँचका और भी अध्ययन हो। इस निश्चयकी सिफारिश प्रांतीय और रियासती सरकारों तथा इंडियन इन्स्टिट्यूट आँफ साइन्ससे को गयी है।

जाँचका वर्णन यहाँ करनेका इरादा नहीं है। जो लोग यह पोथी पढ़ेंगे और जैसे प्रयोगशालाकी बात सोची गयी है उसमें यह जाँच नहीं हो सकती। इसमें ऐसे थर्मामीटर की जरूरत होती है जो एक सेंटिग्रेड डिग्रीका सौवाँ हिस्सा बता सके। एक तरहका फ्लास्क काममें लाया जाता है। इसमें थोड़ासा ईथर हवा फूँक कर जमाया जाता है। इस जमते द्रवमें धातुकी एक नली डबाई रहती है जिसमें एक काँचकी नली लगी रहती है। इसमें कुछ सी० सी० दूध फ्रीजिंग पोयेन्ट जाननेके लिये छोड़ा जाता है। $\frac{1}{100}$ डिग्री सेंटीग्रेड बतानेवाला एक थर्मामीटर और उकटनी लगी रहती है। इसके साथही एक कंट्रोल थर्मामीटरका भी काम रहता है जो जमानेवाले द्रव्यका ताप बताता है। इसे जमनेके तापसे कम तापका रक्खा जाता है। दूसरी विधिमें अन्य पात्रमें नमक और वर्फ काममें लाते हैं। भीतरी नलीमें दूध, थर्मामीटर और उकटनी रहती हैं। बेक्मैन थर्मामीटर काममें लाया जाता है। यह "होर्टवेट क्रायस्कोप" नामी विशेष यंत्रमें लगा रहता है।

यदि दूधमें पानीकी मिलावटकी जाँच करानी हो तो आसपासकी जिस प्रयोगशालामें क्रायस्कोप हो वहाँ फ्रीजिंग पोयेन्ट जाँचके लिये उसे भेज सकते हैं। क्रायस्कोप जाँचके लिये दूध ताजा ही हो। कहा जाता है कि, बिगड़नेसे बचानेके लिये मरकियूरिक क्लोराइड डालनेसे जाँचमें कोई गड़बड़ी नहीं होती।

**११६७. कुल ठोस और स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थकी जाँच :** कुछ दूध तौल लिया जाता है। मानलें ३ से ५ ग्राम तक। यह भफा करके सुखा लिया जाता है। सुखानेके बाद उसे फिर तौल कर तौलको घटती जानी जाती है। सुखानेके बादकी तौल, दूधके तौले नमूनेमें ठोस पदार्थ की तौल हुई। दूधकी असली तौल और ठोसकी तौलसे कुल ठोसका प्रतिशत निकाला जाता है।

उसी नमूनेका स्नेह-प्रतिशत मालूम करके कुल ठोस-प्रतिशतसे उसे घटा देते हैं। यह कुल अस्नेह ठोस पदार्थ दूधका एस० एन० एफ० या स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थ हुआ।

**विधि :—** पहलेसे तौली और अच्छी तरह सूखी कटोरीमें ५ ग्राम दूध लो। थरमामीटर-युक्त एक दमचूल्हा (air oven) लो। चूल्हा गरमाओ और १०० डिग्री से० का ताप बनाये रक्खो। कटोरेको चूल्हे पर चढ़ाओ और बीच बीचमें उसे देखते रहो। यदि छाली पड़े तो उसे सूईसे तोड़ दो। थोड़ी देरमें पतली चीज सूख जायगी और कटोरीमें केवल ठोस पदार्थ रह जायगा। इसे निकाल कर "डेसीकेटर"में डालो।

डेसीकेटरमें तेज गन्धकाम्ल रहता है। इससे उसमें हवा नमीसे मुक्त रहती है। डेसीकेटरकी सूखी हवामें ठंढानेके लिये गरम कटोरी उसमें रख दी जाती है। ठंढी होनेपर कटोरी निकाल तौलो और तौल लिख लो। कटोरी फिरसे चूल्हे पर चढ़ाओ और आधा घन्टे तक १०० डिग्री से० ताप पर गरम करो। निकालो और डेसीकेटरमें ठंढा करके तौलो। यदि सभी नमी उड़ा दी गयी है तो दोनों बारकी तौल समान होगी। यदि ऐसा न हो तो फिर गरम करो और तब तक जब तक एकसी तौल न हो जाय। कटोरी और ठोस पदार्थकी सम्मिलित तौलसे कटोरीकी तौल घटा देनेसे ठोस पदार्थकी तौल निकल आती है। हिसाब निकालनेका तरीका यह है कि इतने (तौलसे) दूधमें इतना ठोस निकला इसलिये १०० (नाप) दूधमें इतना ठोस निकलेगा। इस तरह लगाये हिसाबसे दूधके कुल ठोस पदार्थका प्रतिशत निकल आता है। स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थका प्रतिशत जाननेके लिये कुलमें स्नेहका प्रतिशत घटा दो।

लैक्टोमीटरमें निकला आपेक्षिक गुरुत्व, स्नेह-प्रतिशत और कुल ठोस पदार्थका अनुपात दूधमें एकसा रहता है। इसलिये यदि लैक्टोमीटरका अंक और स्नेह प्रतिशत मालूम हो जाय तो कुल ठोसका प्रतिशत निकल जायगा। यह रिचमंडका गुर कहा जाता है। यह यों है :

$$\text{कुल ठोसका प्रतिशत} = \frac{\text{घ}}{४} + \frac{६\ \text{स्ने०}}{५} + ०{\cdot}१४$$

जिसको फिल्शमैनने सुधार कर यों रखा है :

$$\text{कुल ठोसका प्रतिशत} = \frac{\text{घ}}{४} + \frac{६\ \text{स्ने०}}{५} + ०{\cdot}२५।$$

घ = लैक्टोमीटरका अंक। स्ने० = स्नेह प्रतिशत।

यदि १५ डिग्री से० पर आपेक्षिक गुरुत्व और स्नेह-प्रतिशत मालूम है तो कुल ठोस हिसाब लगाकर मालूम कर लिया जाता है।

**११६८. नाप और जोख:** रासायनिक विश्लेषणके काममें आनेवाली तौल ग्राम और उसके भिन्न और गुणन हैं। नाप है क्यूबिक सेन्टिमीटर, उसके भिन्न और गुणन। ४ डिग्री से० ताप पर एक क्यूबिक सेन्टिमीटर पानीकी तौल पूरे एक ग्राम होती है। सेन्टिमीटर लंबाईकी नाप भी है। एक सेन्टिमीटर लम्बा, चौड़ा और ऊँचा पानीका हिस्सा एक क्यूबिक (घन) सेन्टिमीटर होगा। इसकी तौल १ ग्राम है। समान तौल और नापकी एक सूची नीचे दी जाती है :—

# आँकड़ा—१६२

## नाप जोखका आँकड़ा

### लंबाईकी नाप

१ इंच = २·५३९९ सेन्टिमीटर (= २·५४ प्रायः)।
१ फूट = ३०·४७९४ ,, (= ३०·४८ प्रायः)।
१ गज = ९१·४३८३ ,, या ०·९१४ मीटर।
इंचको सेन्टिमीटर बनानेके लिये २·५४ गुणा करो।
१ सेन्टिमीटर = ०·३९३७ इंच।
१ मीटर = १०० सेन्टिमीटर = १ गज और ३·३७ इंच।
सेन्टिमीटरको इंच बनानेके लिये ०·३९ से गुणा करो।
मीटरको गज बनानेके लिये १·०९ से गुणा करो।

### तौलकी नाप

१ ग्रेन = ०·६४८ ग्राम।
= ६४·८ मिलीग्राम।
१ ड्राम = ३·८८८ ग्राम।
१ आउन्स = २८·३५ ग्राम।
१ रत्तल = ४५३·५९२ ग्राम। मोटामोटी ½ किलोग्राम।
१ किलोग्राम = १,००० ग्राम।

आउन्स ( Avoir. ) को ग्राम बनानेके लिये २८·३५ से गुणा करो।

रत्तलको ग्राम बनानेके लिये ४५३·६ से गुणा करो।

रत्तलको किलोग्राम बनानेके लिये ०·४५४ से गुणा करो।

१ मिलीग्राम = ०·०१५४ ग्रेन।

१ ग्राम = १५·४३ ग्रेन।

= ०·०३२१ आउन्स।

१ किलोग्राम = १,००० ग्राम।

= २·२०४६ रत्तल ( Avoir. )

ग्रामको आउन्स बनानेके लिये ०·०३५२ से गुणा करो।

ग्रामको ग्रेन बनानेके लिये १५·४३२ से गुणा करो।

किलोग्रामसे रत्तल बनानेके लिये २·२०४६ से गुणा करो या मोटामोटी २·२ रत्तल।

## घन परिमाण (केपेसिटी) का नाप

१ फ्लुइड ड्राम = ३·५४४ क्यूबिक सेन्टिमीटर (सी० सी० या मिलीलीटर)।

१ फ्लुइड आउन्स = २८·४१२ सी० सी०।

१ पाइन्ट = ५६७·९३३ सी० सी० या ०·५६८ लीटर।

१ गैलन = ४·५४ लीटर।

१ लीटर = १,००० सी० सी० या मिलीलीटर।

= ३५·१९६ फ्लुइड आउन्स।

आउन्सको सी० सी० बनानेके लिये २८·४१२ से गुणा करो।

पाइन्टको सी० सी० बनानेके लिये ५६८·० से गुणा करो।

गैलनका लीटर बनानेके लिये ४·५४ से गुणा करो।

१ क्यूबिक सेन्टिमीटर = १ ग्राम डिस्टिल्ड पानी ४ डिग्री से० ताप पर।

= ०·०६१ क्यूबिक इंच।

= ०·०३५२ फ्लुइड आउन्स।

= १६·८९६ मिनिम।

सी० सी० को आउन्स बनानेके लिये ०·०३५२ से गुणा करो।

लीटरको पाइन्ट बनानेके लिये १·७६ से गुणा करो।

लीटरको आउन्स बनानेके लिये ३५·१९६ से गुणा करो

१ सी० सी० = १/१००० लीटर = १ मिलीलीटर ।

= १ ग्राम डिस्टिल्ड पानी ४ डिग्री से० ताप पर ।

१ गैलन = १० रत्तल पानी, २७७·२७४ क्यूबिक इंचमें ( ४·५४ लीटर ) फैला हुआ ।

### भारतीय तौल

१ रुपया = १ तोला = १८० ग्रेन ।

१ मन = ४० सेर = ८२ रत्तल २ आउन्स २ ड्राम ।

१ टन = २७½ मन ।

### एक ग्रामसे कम तौल

१ मिलीग्राम ।

१ सेन्टिग्राम ।

१ डेसिग्राम ।

ग्राम ।

किलोग्राम ।

१ सी० सी० से

१,००० सी० सी० = लीटर ।

मीटर ।

मिलीमीटर

से किलोमीटर ।

# अध्याय २८

## शहरमें दूधका प्रबन्ध

११९९. **शहरमें दूधकी पूर्तिकी विभिन्न दिशायें :** हमारी गायोंकी हालत सुधारनेके किसी मामलेमें शहरकी बात आ ही जाती है । यद्यपि, कुल जनसंख्याकी तुलनामें शहरी जनसंख्या कम है फिर भी देशकी संपत्ति और साधन

पर इनका भार बहुत है। शहरकी दूधकी पूर्तिके लिये दूर दूरसे गायें लायी जाती हैं। एक ब्यान भर ही इनसे दूध लेकर इनकी हत्या कर दी जाती है। कलकत्ता, बम्बई, मदरास, करांची, कानपुर आदि शहरोंमें दूधके प्रबन्धका यह एक पहलू है।

दूसरा पहलू यह है कि, शहरोंकी दूध पूर्तिके लिये गायें अस्वास्थ्यकर हालतमें पाली जाती हैं, इससे दूध अस्वाध्यकारी हो जाता है। उन पर अत्याचार किया जाता है। उनके बच्चोंको भूखों मारा जाता है। गायोंके विचारके अतिरिक्त शहरोंकी एक समस्या दूधमें मिलावट भी है।

म्युनिस्पल्टियों और पशु-हितैषियोंके ध्यानमें यह और अन्य कई सवाल हैं। बार बार प्रयास किये गये हैं। पर अबतक शहरकी दूध पूर्तिकी समस्याके बारेमें आशाकी एक भी किरण नहीं चमकी। उल्टे हालत हर वर्ष बदसे बदतर होती जा रही है। यह सही है कि, कलकत्तेमें फूका अपराध माना गया है। कानूनसे इसके लिये जेलकी सजा मिल सकती है। पर कानून बनाना एक बात है और उसे ठीक तरहसे काममें लाना दूसरी। यदि कानून नीतिसे काममें न लाया जाय तो अच्छे से अच्छा कानून भी बे-असर रहता है।

श्रेष्ठ नस्लोंकी हजारों गायोंका वध दयालुओंके कष्टका कारण है। जिन्हें गोवधसे विरोध नहीं है वह भी कामके पशुओंका वध पसन्द नहीं करते और चाहते हैं कि, अन्धाधुन्ध वध बन्द हो जाय। ढोरोंकी उन्नति चाहनेवाले पशुपालक इतने अच्छे तरुण पशुओंका भूखा मरना देख कांप उठते हैं। कुछ तो इसे गोवध से भी बुरा मानते हैं।

१२००. **शहरोंमें दूध-प्रबन्धकी हानिकारक रीति** : शाही गव्यनिपुण श्री विलियम स्मिथ कहते हैं :

"कलकत्ता और बंबईमें जितना ताजा दूध काममें आता है वह प्रायः सबका सब शहरके भीतर रक्खी और खिलायी गायोंसे ही मिलता है।* ये गायें अपनी जवानीमें खरीदी जाती हैं। उन्हें एक ब्यान भर ही साधारण तौर पर दुहा जाता है जो ९ महीनेका होता है। इसके बाद ही उन्हें मार डाला जाता है जिससे कि तुरत ब्यायी नयी गायोंके लिये जगह खाली हो। इसमें सन्देह नहीं

* अब ६० सैकड़ाका अनुमान है।—(दूध बाजारकी रिपोर्ट, १९४१-'४२)

कि, इनकी गति भी पहली गायोंकी होती है। इस तरहसे यह बुरी पद्धति चलती ही रहती है।..... यह माना जा सकता है कि, हमारे बड़े शहरोंमें दूध उत्पन्न करनेके लिये गायको खिलानेको पद्धतिके कारण पिछले १५ वर्षोंमें कम से कम २,५०,००० जवान गायें और भैंसें कटी होंगी।"—(मैनियन—"कैटल वेल्थ ऑफ इंडिया")

**१२०१. बिसुकी गायोंकी हिफाजत :** कहा जाता है कि बंबई में शायद ही २५ सैकड़ा बिसुकी गायें देहात भेजी जाती हैं, बाकी ७५ सैकड़ा कसाईखाने भेजी जाती हैं। कलकत्तेमें बिसुकी गायोंको देहात लौटानेकी चाल नहीं है। यहां प्रायः सौ सैकड़ा बिसुकी गायें मार डाली जाती हैं। शहरोंमें दूधके साथ गोवध और भूखे बछड़ोंका निश्चित संबन्ध है। यह निठुर चाल पचासों वर्षसे चली आ रही है।

बोर्ड ऑफ एग्रिकलचर एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी के पशुपालन शाखाकी कई बैठकोंमें शहरोंकी बिसुकी गायके उद्धारकी समस्या पर विचार हुआ है। अंतमें एक प्रस्ताव पास कर मामला ठंडा कर दिया गया। प्रस्तावमें कहा गया कि, एक कमेटी शहरोंमें भ्रमण कर योजना पेश करे। यह सन् १९३९ में हुआ। किसी कारण कमेटी काम शुरू नहीं कर सकी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषदकी वार्षिक रिपोर्ट, १९४१-'४२ में लिखा है कि, शहरके दुधार पशुओंका उद्धार करनेके लिये बनायी गयी एक कमेटीने मदरास शहर और उसके आसपास भ्रमण किया। इस कमेटीकी रिपोर्ट छपनेवाली है। इसी बीच दूध बाजारकी रिपोर्ट छप गयी है। इसमें शहरोंकी दूध-प्रबन्धकी समस्या सुलझानेकी विस्तृत योजना है। इसीमें शहरोंके दुधार ढोरके उद्धारकी समस्याके भी सुलझावे हैं।

बंबईमें कई दृष्टिकोणसे इस प्रश्न पर पूरी तरह विचार किया गया है। वहां काम शुरू करनेकी बहुत तैयारी भी की गयी है। श्री जेड० आर० कोठावाला उस समय बंबई कारपोरेशनके गव्यनिपुण थे। १९३९ में वह बंगलूरमें शाही गव्यनिपुण थे। उस साल पशु पालन शाखाकी मीटिंगके लिये उन्होंने बड़ा लेख लिखा था। इसमें उन्होंने अपने सुझाव दिये थे। इसके समर्थनमें इस मामलेमें बंबई कारपोरेशनके लगनसे किये कामोंकी विस्तृत रिपोर्ट थी। इस समस्याकी गुत्थियोंको समझनेके लिये जो लोग बंबईके प्रयत्नका इतिहास जानना चाहते हैं वह ऊपरकी मीटिंगकी रिपोर्टमें इस कागजको पढ़ें तो अच्छा हो।

**१२०२. बंबईमें दूधके प्रबन्धकी योजना :** दूध बाजारकी रिपोर्टमें (१९४१-'४२) बंबईके प्रयासका भी संक्षिप्त वर्णन है।

पिछले २०-२५ वर्षोंसे बंबई कारपोरेशन उत्तम दूध पूर्ति और जवान गायोंकी रक्षाकी योजना पर विचार कर रही है। सन् १९२० में उसने ३ लाख रुपये लगा ट्रॉमबे हल्केमें ५-६ सौ दुधार गायोंके लिये गोशाला बनानेकी योजना बनायी थी। इसके साथ ३०० एकड़ जमीन भी थी। पर यह योजना काममें नहीं आयी। क्योंकि, पीछे मालूम हुआ कि, योजनासे दुधार गायोंकी हत्या नहीं रुकेगी और योजना मुख्यरूपसे इसीके लिये बनायी गयी थी। इसकी भी आशंका की गयी कि, योजनासे दूधका दाम भी नहीं घट सकता। योजना छोड़ दी गयी।

१० लाख पूँजीसे पूनाके पास तेलीगाँवमें एक बड़ी गव्यशाला खोलनेकी दूसरी योजना सामने आयी। बंबई कारपोरेशन इसमें २ लाख रुपये लगाता। इस योजनामें यह था कि कारपोरेशन १० वर्ष तक ५½ सैकड़ा मुनाफा देनेकी गारंटी करे। गारंटीसे हुए घाटेको पूरा करनेके लिये १० सैकड़ासे अधिक मुनाफा लेनेकी छूट कारपोरेशन को दी गयी थी। पर इसमें एक कानूनकी अड़चन आ गयी। कारपोरेशनको अपनी सीमासे बाहर रुपया लगानेका हक नहीं था। इसके बाद ऐसे मामलोंमें रुपया लगानेके लिये कानूनमें परिवर्तन किये गये। पर जब कानून बदला गया तब एक नयी योजना बनायी गयी। इसमें प्रति दिनके लिये न्यूनतम दूध पूर्तिकी माँग की गयी। न्यूनतम बहुत जादे था—१,००,००० रत्तल प्रति दिन। यह माँग बहुत बड़ी थी और एक न एक कारण से योजनाके अनुसार कोई कम्पनी खड़ी नहीं की जा सकी। इसके बाद कोशिश की गई कि लोग शहरमें "सबसाइडी" *अर्थात् सहायता लेकर या उसके बिना दूध दें।* पर यह योजना भी नहीं चली।

अंतमें बंबई दूध सहयोग समितिने सबसाइडी लेकर दूध देनेकी एक योजना कारपोरेशन को दी। शहरके बाहर काडीवलीमें गोशालायें बननेको थीं। १८५ एकड़में चरागाह करनेकी बात थी। योजनाके लिये कुल २०० एकड़ की माँग थी। दूधका दाम ४॥ आना सेर होता और वह बन्द बोतलोंमें बिकता। इस योजनाके बारेमें आशंका प्रकट की गयी और वह खतम हो गयी।

जो हालत पहले थी आज वही है। साथही बढ़ती जनसंख्याके कारण कठिनाई और भी बढ़ गयी है। अभी २५,००० दुधार गाय-भैंस कारपोरेशनकी

सीमामें गन्दी हालतमें पाली जाती हैं। हर साल इन २५,००० पशुओं और उनकी संतानको क्या भोग भोगना होता है यह जग जाहिर है। मैंने एक दिनमें ६० बछड़ोंको कूड़ेखानेमें पड़े देखा। ये चेमूरके मृत पशुओंके टिकाना लगानेकी जगहमें भेजे जानेको थे। यह संख्या औसतसे कम मानी गयी है।

बंबई योजना असफल रही क्योंकि, शहरमें दुधार जानवर पालनेवाले ग्वालोंके होड़से सबसाइडी ठेकेदारोंको नहीं बचा सकी। यदि मिलावट जारी रहती है तो शुद्ध दूध देनेवाली बड़ी संस्था विचारहीन रोजगारियोंके होड़में चल नहीं सकती। यह जग जाहिर है कि, आहारमें मिलावटका कानून कैसे बेअसर रहा है।

१२०३. **सहयोग पद्धतिसे दूधका प्रबन्ध :** कुछ लोग शहरकी दूध पूर्तिके लिये सहयोग पद्धतिको इस समस्याका हल मानते हैं। शहरको दूध देनेवाले देहाती ग्वाले मिलकर अपनी सहयोग समिति बना सकते हैं। दूधका दाम इतना नियत कर दे सकते हैं जिससे उन्हें नफा हो। इस तरह शहरको भी सोसायटीसे सरकारी नियंत्रणके कारण शुद्ध दूध मिल सकता है।

सरकारने दूधकी सहयोग समिति बनानेमें मदद दी है। भारतमें बीसों ऐसी समितियाँ हैं जिनका कुछ महत्व है।

"ये सभी प्रान्तीय और रियासती सहयोग विभागके अफसरोंकी जी तोड़ मेहनतसे स्थापित हुई हैं। ये लोग अब भी इनके कामकी देखभाल बराबर करते हैं।"—(दूध बाजारकी रिपोर्ट)

१२०४. **सहयोग समितियाँ असफल रहीं :** सरकारकी सभी कोशिशोंके होते भी ये समितियाँ अच्छी तरह चल नहीं रही हैं। इनमेंसे कुछ सन् १९१२ के सहयोग समिति कानूनके बनते ही स्थापित हुई थीं। कलकत्ता और मदरासकी यूनियनोंको छोड़ उन्होंने जो कुछ काम किया है वह नगण्य है फिर भी दोनों शहरोंमें जितना दूध बिकता है उसका क्रमशः केवल १·८ और ६·९ सैकड़ा ही इन दोनोंने दिया है।

# आँकड़ा—१६३

## कुछ प्रसिद्ध केन्द्रोंमें सहयोगी और बाजारू दूधका अनुपात

| दूध समिति | रजिस्टरीकी तारीख | हिसाबका वर्ष | सहयोग समिति वर्षमें कितना दूध बेचती है मन | घी छोड़ बाजारू दूधका वार्षिक परिमाण मन | कुल दूध और सहयोगी दूध प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|---|
| कलकत्ता | १९१९ | १९३६-'३७ | ३८,१८३ | २१,१०,०६५ | १·८ |
| मदरास | १९२७ | १९३८-'३९ | ३२,२३६ | ४,७०,१२० | ६·९ |
| लखनऊ | १९३६ | १९३८-'३९ | ५,६६३ | ४,३८,७३० | १·३ |
| इलाहाबाद (सोसायटी) | १९१३ | १९३६-'३७ | २,९४३ | ३,०४,४१० | १·० |

ऊपर लिखी समितियाँ सबसे बड़ी हैं, फिर भी शहरकी दूध पूर्तिमें उनका कोई महत्व नहीं है। दूध बाजारकी रिपोर्टमें इनके बारेमें विस्तारसे लिखा है। रिपोर्ट पढ़ने पर यही मालूम होता है कि प्रायः सभी असफल रहीं। कारण कहीं दूर नहीं ढूँढ़ना है। ऐसा मालूम होता है कि, ये वास्तवमें सहयोग समितियाँ नहीं हैं। शहरके लोग इन समितियोंको बहुत कुछ उसी तरह चलाते हैं जैसे लिमिटेड कम्पनियाँ। कुछ शहरी लोग मिलते हैं और अपना यूनियन बना लेते हैं। ये विभिन्न गाँवोंके दूध देनेवालोंको अपने रजिस्टरमें दर्ज करते हैं। देनेवाले भी सोसायटी बना लेते हैं। शहरकी संस्था और देहातकी संस्थामें लेवाल और बेचवाल का संबन्ध है। संस्था में एकत्वकी भावनाका अभाव है। ऐसी स्थिति है इसलिये शहरकी प्रबन्धक समितिके विरुद्ध देहातकी उत्पादक समिति हड़ताल कर सकती है और दूध देनेसे इनकार कर सकती है। मदरासकी दूध सहयोग समितिको ऐसी हड़तालका सामना करना पड़ा है।

"बाहरी प्रभावके कारण एक साल (सन् १९२९) हालत ऐसी बिगड़ी कि सदस्योंने यूनियनको दूध देना बन्द कर दिया। यूनियन अस्पतालोंको दूध दिया करती थी। यह हालत सिर्फ कई सप्ताहों तक चली जिसके कारण यूनियनको १०,००० रुपये अस्पतालोंको दूध नहीं दे सकनेके कारण हरजाना देना पड़ा।"

यह मदरासके बारेमें हुआ। कलकत्तेकी यूनियन भी कुछ अच्छी हालतमें नहीं है, यह दूध बाजारकी रिपोर्टके नीचे लिखे अंशसे स्पष्ट होता है :

"यह भी देखा गया है कि कमीके समय जब बाहरवालोंसे ज्यादे दाम मिल सकता है कुछ सदस्य यूनियनको दूध नहीं देते। यूनियनको ही उसके सदस्य कुल दूध दे दें, इस आग्रहका कुछ असर सदस्योंपर नहीं हो सका है और न यूनियन बाहरवालोंको अपने सदस्योंसे दूध खरीदनेसे रोक सकती है।"

इससे मालूम होता है कि सोसायटी और सदस्यमें कोई अपनापन नहीं है। दोनोंका स्वार्थ परस्पर विरोधी है। सहयोग समितियोंका स्वरूप यह नहीं हो सकता।

१२०५. **तेलिनखेड़ी सहयोगी गव्यशाला :** दूध बाजारकी रिपोर्टमें जिन सहयोगी गव्यशालाओंका विस्तृत वर्णन है उनमें तेलिनखेड़ी सहयोगी गव्य समिति (नागपुर) भी एक है। इसके केवल १८ सदस्य थे। १९३६-'३७ में इन लोगोंके यहाँ २३ मन दूध होता था और ६ मन बाहरी लोगोंसे लेते थे। इस तरह २९ मन दूधका नित्य व्यापार करते थे। इसके विरुद्ध मदरास यूनियनमें १४ समितियाँ हैं जिनके ८०० सदस्य हैं, इन्हें ८० मन दूध होता है। कलकत्ता दूध सोसायटीमें १२३ समितियाँ और ८,३५९ सदस्य हैं। यह १०४ मन दूधका व्यापार करती है।

विश्लेषण करने पर दैनिक दूध प्रति सदस्य नीचे लिखा होता है :—

## आँकड़ा—१६४

### प्रति सदस्य दैनिक दूधका अंश

| | | प्रति सदस्य दूध | सदस्य संख्या | कुल दैनिक दूध |
|---|---|---|---|---|
| १. | तेलिनखेड़ी | ६४$\frac{1}{2}$ सेर | १८ | २९ मन |
| २. | मदरास | ४·४ सेर | ८०० | ८८ मन |
| ३. | कलकत्ता | ०·५ सेर | ८,३५९ | १०४ मन |

जो सदस्य नित्य एक आनेका आधा सेर दूध देते हैं उन्हें समितिको मुनाफेके साथ चलाने और उसकी भलाईकी चिन्ता क्या हो सकती है। परस्पर

सदस्य तथा समितिको एक करनेवाला कोई बंधन नहीं हैं। रिपोर्टमें चाहे जितनी तारीफ लिखी जाय पर यह बात सही है कि, सहयोगी दूध समितियोंका जहाँ तक सदस्य और हिस्सेदारोंके सम्बन्धका सवाल है वह लिमिटेड कंपनियोंसे कुछ ही कम हैं।

तेलिनखेड़ी समितिकी बात दूसरी है। उसका हरेक सदस्य समितिकी भलाईमें सच्चा और काम करनेवाला भागोदार है। इसका संगठन कृषि विभागने किया था। इसके लिये उसने सरकारसे ९०० एकड़ गोचर लिया था। शुरूमें इसमें १३ ग्वाले सदस्य और १५६ दुधार ढोर थे। सन् १९४० में इसके १८ सदस्य और ७५९ ढोर थे। जो बड़े ग्वाले शहरको दूध देते थे सचमुच यह उन्हींकी समिति है। इसमें कोई बाहरी व्यक्ति नहीं है। बाहरी सिर्फ सरकारी कृषि विभाग है जिसने इसका संघटन किया है और अबभी इसके संचालनमें जिसका हाथ है। यह ग्वालोंकी समिति है और ग्वालोंके लिये है। प्रान्तीय कृषि विभागने जिस प्रशंसनीय ढंगसे इसका संघठन किया है उससे आशा होती है कि, और उन्नति होने पर विभाग संचालन भी ग्वालोंके जिम्मे कर देगा। विभाग खाली निगरानी करेगा। यह एक उदात्त प्रयास होगा।

"...समिति गरमीके लिये सूखी घास तैयार करती है। सस्ते चारेका प्रबन्ध करती है। बेचनेके लिये गोबरका कंपोस्ट भी बनाती है। इससे समितिको अतिरिक्त आमदनी हो जाती है। यह उदारताके काम भी करती है जैसे गरीबोंको मुफ्त दवा बांटना, तेलिनखेड़ी क्षेत्र और उसके पड़ोसमें रहनेवालोंके लिये स्कूल चलाना। संयोगकी यह बात भी कही जा सकती है कि, इस समिति का संघटन और संचालन सहयोग विभागके बदले कृषि विभागके हाथमें रहा है।" —(दूध बाजारकी रिपोर्ट, पृ० १९५)

कृषि विभागने समितिको वास्तविक सहायता देनेके लिये बहुत कुछ किया है। आरम्भमें उसने समितिको बहुत बड़ा गोचर दिया और बादमें "प्रयोगके तौर पर ३,८३० रुपये साल पर, पांच वर्षके लिये सभी मकान, गोशाला, गोदाम, गोचर गव्यशालाके बर्तन आदि दे दिये।"—(दूध बाजारकी रिपोर्ट, पृ० १९४) सरकारी सहायता बिना समिति सफल नहीं भी हो सकती थी। पर सरकारने दूसरी समितियोंको भी सभी सम्भव सहायता दी। दूसरी और इस समितिमें यही फर्क है कि, तेलिनखेड़ी समितिके सभी सदस्य दूधवाले ही हैं। इन दूध बेचनेवालोंका,

जिनके पास अपने पशु हैं और दूध बेचना जिनका मुख्य धंन्धा है, कृषि विभागने संघटन किया। सफलताका बीज यहीं है।

१२०६. **ग्वालोंका संघटन कर देनेसे वह अपना काम ईमानदारीसे करेंगे** : मान लो कलकत्ता, बंबईके ग्वालोंका संघटन कर दिया गया। शहरके बाहर रहने, अपने ढोरको पालने, चराने और खिलानेके लिये उन्हें काफी जमीन दे दी गयी। आज जो नफा वह बुरी होड़से कमाते हैं, यदि ईमानदारीसे उसीका भरोसा होनेकी आशा हो जाय तो उन्नति चाहनेवाला मनुष्य-स्वभाव ग्वालोंको नयी व्यवस्थाके चारों ओर ला खड़ा करेगा। इससे उन्हें होड़के बिना, पशुओंको सताये बिना और ग्राहकोंको ठगे बिना ईमानदारीसे पैसे मिलेंगे।

तेलिनखेड़ी समिति अपवाद है। इससे मालूम होता है कि, सरकारी विभागकी बड़ीसे बड़ी सहायता होने पर भी दूध समितियाँ सहयोग समितिके रूपमें बुरी तरह क्यों असफल रहीं। दिखावेवाली दूध सहयोग समितियाँ अपने बल नहीं चल सकतीं। गायों और ग्राहकोंकी मदत तो वह क्या कर सकती हैं।

१२०७. **दूध बाजार रिपोर्टकी शहरोंमें दूध प्रबन्धकी योजना** : शहरोंमें शुद्ध दूध जुटानेकी योजना करना चाहिये। शुद्धता हर दृष्टिसे हो। शुद्ध दूधमें पूरा भिटामिन हो, उसमें मिलावट और छूत न हो, गोचरमें चरनेके कारण वह ताजा, साथ ही शुद्ध हो और सीधे आया हुआ हो, गाय और बछड़ोंकी जान बचानेवाला हो, पतली और कड़ी खादके उपयोगसे उत्पादक वस्तुको बर्बाद होनेसे बचानेवाला हो, उसके लिये कोई दूसरा अच्छा उपाय खोजना होगा। इस कारण हम बाजार रिपोर्टकी योजना पर विचार करें। इसमें उसने प्रान्तीय सरकारोंके लिये कानूनका मसविदा भी दिया है।

अस्वास्थ्यकर ढंगसे दूध उत्पन्न करना, छोटे छोटे अज्ञानी रोजगारियों द्वारा दूधमें मिलावट करने और बेचनेके कारण शहरोंमें दूध प्रबन्धकी दुर्दशाका वर्णन रिपोर्टमें है। उसमें लिखा है कि, आहारमें मिलावटका कानून सदोष, और कानून जिस तरह काममें लाया जाता है वह असंतोषकारी है।

सहयोग समितियाँ शुद्ध दध देनेवाली असफल निजी उद्योग हैं। सबसाइडी या सहायता देकर भी हालत सुधारनेकी बंबई कारपोरेशनकी कोशिश निष्फल सिद्ध हुई।

इसलिये रिपोर्टने दूधके नये कानूनका प्रस्ताव किया है। इस कानूनका उद्देश्य होगा कि, म्युनिस्पल्टीके भीतर गाय पालना गैर-कानूनी बना कर शहरमें दूध उत्पादन

बन्द कर दिया जाय। दूसरा काम दूध देनेवाली एकाधिकारी संस्था बनाना है। यह संस्था देहातमें सफाईके साथ दूध पैदा करेगी या खरीदेगी और उसे शहरके डिपोमें लावेगी। यहाँ उसे शीतलीकरणके बाद खुदरा ग्राहकोंको दिया जायगा। एकाधिकारवाले केन्द्रीय डिपोसे खुदरा ग्राहक या हलवाइयोंके हाथ बेचनेके लिये प्रमाणपत्र प्राप्त लोगोंको दूध दिया जायगा।

एकाधिकारी संस्था दूधके प्रकारकी जाँच करेगी। प्रमाणपत्र प्राप्त खुदरा बेचनेवालेसे बीच बीचमें नमूना लेकर उसकी जाँच की जायगी। मिलावट करने वालेको सजा दी जायगी। यदि कोई व्यापारी तीन बार सजा पायेगा तो उसका प्रमाणपत्र रद्द हो जायगा।

दूध जुटानेका प्रबन्ध मिल्क मार्केटिंग संस्था करेगी। सभी दाम, खुदरा भी, सरोकारियोंकी सम्मतिसे स्थिर किया जायगा। मार्केटिंग संस्थाकी तरफसे तनख्वाह पानेवाले आदमीकी देख रेखमें देहातमें दूध दुहा जायगा।

म्युनस्पल्टीको दूधके शुद्धताके बारेमें जबावदेही लेनी होगा। खुदरा बेचनेवालोंको वह प्रमाणपत्र देगी। मुनाफे पर पहला दावा ६ सैकड़ा मुनाफा होगा। छीजन और सूद बाद दे कर शेष ३३ सैकड़ा रिजर्भ फंडमें चला जायगा और ४० सैकड़ा तक उत्पादकोंको बोनस दिया जा सकता है।

१२०८. **शहरोंकी पूर्ति एकाधिकारी संस्था करेगी**: योजनाका मुख्य रूप यह है कि दूधकी पूर्तिका एकाधिकार सरकारी बाजार विभागके हाथ रहेगा। अंतमें यह अधिकार गैर-सरकारी संस्थाको मिल जा सकता है। इनको जरूरी पूँजी होनी चाहिये और सरकारकी बतायी शर्तें उन्हें माननी होंगी। रिपोर्टमें मान लिया गया है कि, शुरूमें सरकार या म्युनिस्पल्टीयाँ सात प्रयोग केन्द्रोंमें पूँजी लगावेंगी। ये केन्द्र करांची, दिल्ली, बंबई, मदरास, कलकत्ता, कानपुर और नागपुरमें होंगे।

दो लाख जनसंख्यावाले शहरके लायक १,००० मन दूध नित्य देनेके लिये ४½ लाख रुपयेकी पूँजी कूती गयी है, यह प्रति मनुष्य २ रुपयेके करीब पड़ती है।

इस प्रस्तावित परिवर्तनमें एकाधिकार तो है ही इसके सिवा दाम तय करना भी सरोकारी लोगोंकी सलाहसे एकाधिकारीके हाथ ही है।

सहयोगी योजनायें असफल सिद्ध हुईं। यह योजना, सहयोग विभागके बदले मिल्क मार्केटिंग विभाग जैसा कुछ बनाना चाहती है। पर नामकी बदलीसे अधिक काम होनेकी आशा नहीं है। सहयोग विभाग सरकारी विभाग है। इस विभागकी

देखभालमें दूध देनेका जो प्रबन्ध है उसकी जाँच की जाय तो संस्थाओंकी और जनताकी विरक्तिका कारण समझमें आ जायेंगे। एक विभागके बदले दूसरेके हाथ और अधिक अधिकारकी संस्था बदलनेकी बात मन्जूर करने लायक नहीं।

**१२०६. मिल्क यूनियन २⅓ गुना दाम लेता है :** सहयोग समितियाँ ढिलाईके साथ काम करती हैं। सरकारको इसका सुधार करना चाहिये। मार्केटिंग रिपोर्टसे उनके कामका भीतरी हाल कुछ मिलता है। उदाहरणके लिये कलकत्ता यूनियन, उत्पादकोंसे नीचे लिखी रीतिसे दूध खरीदता है :

"...१९४० में उत्पादकोंने जनवरी से जून तक ४½ रुपया मन और जूनसे दिसम्बर तक ५¾ रुपया मनके हिसाबसे दाम पाया। पर समितियाँ अपने सदस्यों से १०० तोला प्रति सेर दूध लेती हैं और यूनियनको ८० तोला प्रति सेर देती हैं।"—(पृ० १८५)

इससे मालूम होता है कि, आरंभिक समितियाँ २०% का अन्तर खरीद पर रखती हैं। यह मानना होगा कि दूध जमा करने और देखभालमें यह खर्च होता है। इसके बाद औसत पाँच रुपया दो आने मनके दरसे यूनियन समितियोंसे दूध खरीदता है। यह रेलभाड़ा देता है, इस्टैबलिस्मैन्ट और पास्चुराइज करनेका खर्च उठाता है। और ५ रु० २ आने लागतका दूध साधारण ग्राहकोंको १० रु० मनके दर से, अस्पतालों को सात रुपये ६ आनेके दरसे और कारपोरेशनको ८ रुपयेके खास दरसे देता है। "इस तरह यूनियनके कुल दूधका औसत दाम लगभग ७ रु० १२ आना मन है।"—(दूध बाजारकी रिपोर्ट)। अब हम हिसाब लगावें :

उत्पादक औसत ५ रु० २ आना मन पाते हैं : (दो छमाही, ४ रु० ८ आना और ५ रु० १२ आना का औसत)। मन १०० तोलाके सेरका होता है। इसलिये ८० तोलाके सेरसे उत्पादक ६५'६ आना प्रति मन पाता है। दूध कलकत्ते लाकर पास्चुराइज किया जाता है और ग्राहकोंको ७ रु० १२ आने या १२४ आनेमें दिया जाता है।

इसलिये ६५'६ आने लागतका दूध १२४ आनेमें बेचा जाता है। अर्थात् लगभग १०० सैकड़ाका अंतर रक्खा जाता है। इतनाही बस नहीं है। यह समझा जाता है कि, कलकत्ता यूनियन और उसकी समितियों से गायका शुद्ध दूध मिलता है। यह दूध थनसे जैसा निकलता है उसमें ४'५ सैकड़ा स्नेह होना चाहिये।

कलकत्ता मिल्क यूनियन का दूध ३·५ सैकड़ा मानका माना जाता है। अगर यह मानना सही है तो ४·५ सैकड़ा स्नेहवाले दूधको घटा कर ३·५ सैकड़ावाला कर दिया गया है। इस तरह एक और बड़े प्रतिशतकका अंतर किया गया है। इसलिये कोअपरेटिभ यूनियन (८० तोलेके सेरसे) ७ रु० १२ आ० या १२४ आना मनका दाम नहीं ले रहा है। ३·५ सैकड़ा मानका दूध दिया जा रहा है, यह मानो तो उसका दाम १५१ आना हो जाता है।

ऊपरकी बातके आधार पर उत्पादकोंके ६५·६ आनेके दूधका दाम बढ़कर औसत १५१ आना हो जाता है। उसका अर्थ हुआ कि, लागतसे १३० सैकड़ा अधिक अतर रक्खा गया है अर्थात् लागतका प्रायः २$\frac{1}{3}$ गुना।

१२१०. **मिलावट करना :** यूनियन जब दूधका स्नेह-प्रतिशत ३·५ करती है तब एक सवाल और उठता है। आहार-कानून दूधमें पानी मिलाने या दुद्धीकी इजाजत नहीं देता। दूधकी परिभाषा थनसे निकला द्रव की गयी है। न्यूनतम स्नेह ३·५ निश्चित है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि, कानून दूधमें पानी मिलाने और दुद्धीकी इजाजत देता है। दूध बाजारकी योजनामें भी विशेष मान तक ही दूधका स्नेह घटानेकी बात है।

यदि सरकारी देखभालमें इस तरह मान घटाया जाता हो तो ऐसी देखभालके विरुद्ध जनताका शिकायत ठीकही है। दूध बाजारकी रिपोर्टकी योजना एकाधिकारी संस्थाके लिये है। वह संस्था यदि ऐसी देखभालमें हो और जो इतना अतर रखनेवाली हो तो उसकी क्या तारीफ हो सकती है। कोई सरकारी विभाग दूध बेचनेकी रीतिमें परिवर्तन करे इसके पहले सरकारको चाहिये कि, वह सहयोग दूध समितियोंके सुधारके लिये कोशिश कर अपनी योग्यता दिखावे।

प्रांतीय सरकारें और म्यूनिसेप्लिटियाँ दूध बाजार रिपोर्टकी योजना स्वीकारें इसका कोई तर्कसम्मत आधार नहीं है। एकाधिकारी संस्थासे हालत नहीं सुधर सकती।

१२११. **तेलिनखेड़ाका दृष्टान्त :** इस हालतमें तेलिनखेड़ाका दृष्टान्त हो सकता है। करनेका काम यह है कि, शहरोंके लिये जो सहज दूध उत्पादक हैं उनकी संस्था बनायी जाय कि वह सब आपसमें मिल जायँ। स्नेह और स्नेह-भिन्न-ठास पदार्थके अनुसार दूधका न्यूनतम दाम तय करके उन्हें हानिकारी आपसी होड़से बचाया जाय। हरेक प्रमाणित (लाइसेंसदार) उत्पादक और विक्रेता पर

दबाव डाला जाय कि वह अपने दूधका स्नेह-प्रतिशत बतावें। ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि, गाय और भैंसका दूध थनसे जैसा निकला है वैसा ही अलग अलग बेचा जाय। शहरोंके बाहर काफी जमीन छोड़ी जाय जिसमें गाय सफाईसे पाली जा सके और चर सके। म्यूनिस्पिल सीमाके भीतर गाय पालना रोक दिया जाय। इन सभी बातोंको पूरा करनेकी कारवाई करनी होगी।

अभी तक जितनी योजनाओं पर विचार हुआ है वह समग्र दृष्टिसे नहीं बनी हैं। नगरोंकी दूध पूर्ति जैसा बड़ा काम व्यापक आधार पर आरंभ करना चाहिये। उत्पादकोंको पूरा दाम मिले इसका ध्यान योजनाओंमें अवश्य रहे। लक्ष्य सस्तापन न हो, उचित दाम हो। उत्पादकों, थोक और खुदरा बेचनेवालोंको लागत दाम और मुनाफा ठीक ठीक मिल जाय ऐसा दाम स्थिर करना चाहिये। चाहे जितनी दूरसे और जैसे भी दूध आता हो गायके स्वास्थ्य और उसके तथा बछड़ेके उचित पालनका ध्यान रखना होगा। दूध देनेवाले आढ़त यह देखें कि, गोबर-गोमूत्र ठीक तरहसे काममें लाया जाता है। इन बातोंमेंसे एक भी छूटने नहीं पावे। बूढ़ी, विसुकी, और बेकार गायोंकी भी हिफाजत रखनी होगी। यदि शहरी ग्वालोंके लिये शहरके बाहर अनुकूल स्थिति बना दी जाय तो यह सभी हो सकता है। यह स्थिति देहाती ग्वाले, शहरमें दूध देनेवाले गोपालक और गाँवके किसानके लिये भी अनुकूल हो जिससे सभी अच्छी तरहसे इस बड़े काममें जुट सकें।

१२१२. **देहातोंसे दूध बाहर भेजना**: सस्ते रेलभाड़ेके जरिया देहातका सस्ता दूध शहरोंमें भेजनेसे काम नहीं चलेगा। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद ऐसी बात सोच रही है। उसका प्रस्ताव है कि—

"रेलवे बोर्डसे कहा जाय कि, विभिन्न रेलवेसे पूछे कि, देहातसे शहरोंमें कमसे कम कितनी दूरी और परिमाणमें दूध ढोनेके लिये वह रियायती भाड़ा ले सकती है। जबाव पाने पर निर्दिष्ट मार्गोंके बारेमें कहा जा सकता है।" रेलवे बोर्डने इसका जबाव दिया कि, लड़ाईके बाद इसकी पूछ तलाशकी जायगी। —(भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषदकी रिपोर्ट, १९४१-'४२, पृ० ५३)

यह परिषद जानती है कि, दूधके दामसे लागत भी नहीं निकलती। वह ढोरोंकी भलाई भी चाहती है इसलिये शहरी लोगोंकी भलाईके लिये देहातकी गरीबीसे अधिक फायदा उठानेमें उसे मदत नहीं करनी चाहिये। जब तक दूधका उचित और लाभकारी दाम तय नहीं किया जाता तब तक तेज, अच्छी, सस्ती और बरफवाली

रेलगाड़ीसे देहातका दूध शहर ले जानेसे देहातके ढोर और आदमी शक्तिहीन होते रहेंगे। सस्ता और उचित लागतका दूध ये दोनों बातें एकसाथ नहीं हो सकतीं। हमारे व्यापारका आदर्श सस्तेपनके बदले इन्साफ और ठीक दाम हो। ठीक और उचित दामका ही चलन हो। दामका अर्थ ठीक दाम होना चाहिये। क्योंकि, अनुचित दाम सस्ता भलेही हो, खरीदने और बेचनेवालेकी हानि करता है। अंतमें वह सस्ता भी नहीं रहेगा।

**१२१३. उत्पादक गाँवोंकी रक्षा होनी चाहिये :** कभी हौलैंड मक्खनका निर्यात बेछूट करता था। कुछ दिनोंके बाद वहाँके बच्चे भिटामिन 'ए' की कमीसे बीमार होने लगे। क्योंकि वह तो देशके बाहर जानेवाले मक्खनके साथ चला जाता था। बच्चोंको अन्धेपनकी बीमारी होने लगी। जब मक्खनके निर्यात पर रोक लगायी गयी तब बीमारी मिट गयी।

अपने आदमियोंके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये हरेक देश वही करेगा जो हौलंडने किया। उत्पादकोंके ही स्वास्थ्यके लिये जो पोषक पदार्थ जरूरी हैं उसके अधिक निर्यात पर रोक लगनी चाहिये। देहातसे शहरोंमें दूध बहाया जा रहा है। दूध बाजारकी रिपोर्टमें इसकी झलक मिलती है कि, शहरके रहनेवाले देशके ११ सैकड़ा लोग कुल दूधका पचास सैकड़ा या उससे भी ज्यादे पी जाते हैं। जरूरी हो गया है कि, ऐसे विनाशसे देहातियोंकी रक्षा की जाय और देहातसे शहरमें दूध बहानेवाली योजनाओंको अब प्रोत्साहन न दिया जाय।

**१२१४. मानका दूध मिलावटी है :** आहार कानूनमें लिखा है कि, "दूध, स्वस्थ्य गायका पूरी तरह दुहनेसे निकला सहज स्वच्छ, ताजा द्रव है।"

इस परिभाषाके बाद स्नेह और स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थका प्रतिशत बताया गया है। ३ से ३·५ सैकड़ा तक स्नेह और ८·५ सैकड़ा स्नेह-भिन्न-ठोस बहुतसे प्रांतोंमें है। दूध सहज द्रव्य होना चाहिये कानूनके इस पहले अंशकी उपेक्षा होती आयी है। मिलावटके लिये जहाँ म्युनिस्पल्टियाँ मुकद्दमा चलाती हैं वहाँ इतना भरही देखती हैं कि, स्नेह और कुल स्नेह-भिन्न-ठोस प्रतिशत कानूनी मानका है या नहीं। इसका फल यह हुआ कि, कानूनी मानके भीतर जितनी मिलावट हो सकती है करनेवाले एक से एक शिक्षित और चालाक आदमी निकल आये हैं। इस बात पर जोर नहीं दिया जाता कि, ऐसा करना कानूनी नहीं है। इसलिये अधिकसे अधिक आदमी

दूधमें मिलावट करते और असली नामसे बेचते हैं। दूध बाजारकी रिपोर्टने इसका जिक्र किया है।

"आहार कानूनमें अभी पूर्ण दूधके लिये तीन मान है। गाय, भैंस और मिश्रित। जा पता चलता है उससे मालूम होता है कि, हर चीजमें कुल स्नेह और स्नेह-भिन्न-ठोस पदार्थ का जो कानूनी सीमा है उसमें और आसत भारतीय दूधकी बनावटमें बहुत अंतर है। इसका परिणाम यह होता है कि, बहुत मिलावटवाला भैंसका दूध असली दूधके मानका, गायके दूधके मानका और मिश्रित दूध बनाया जा सकता है। ऐसी बात किसी दूसरे देशमें नहीं हो सकती। उनके यहां एकही तरहका गायका दूध हो सकता है। पर उनकी सहज बनावट और माने हुए कानूनी मानमें बहुत थोड़ा अंतर रहता है।"

"यह भी देखा गया है कि, बाजारमें बहुत कम लोगोंको भैंसका असली दूध (६·५ सैकड़ासे जादे स्नेहवाला) या असली गोदुग्ध (४·५ सैकड़ासे जादे स्नेहवाला) मिल सकता है। हर तरहके दूधके साथ पानी मिला हुआ दूधही अधिक मिलता है। विशेषता प्राप्त गव्यक्षेत्रोंका दूध प्रायः मानवाला बनाया हुआ होता है। इनके दूधमें कानूनके अनुसार न्यूनतम मानमें स्नेहकी उम्मीद की जा सकती है।"

दूध बाजारकी रिपोर्टमें विशेषता प्राप्त गव्यक्षेत्रोंका बखान है जो प्रायः मानवाला बनाया गया दूध बेचते हैं। इनमें सहयोग समितियोंकी भी गणना होनी चाहिये। सहज दूधमें मिलावट करना आजके कानूनसे भी मिलावट है। सहज और शुद्ध दूधके लिये मान बदलना होगा।

# अध्याय २९

## गव्यधन्धेकी अच्छी योजना

१२१५. **गव्यशालाकी उत्तमतर योजना :** इसके पहले, मित्र मुझसे शहरोंमें दूधके व्यवसायकी मुनाफेवाली योजना के बारेमें पूछने आते थे। मुनाफेके लिये शहरोंमें बेचनेवाले गव्यक्षेत्रके खोलनेवालोंको इस किताबके पढ़नेसे कुछ राह मिल सकती है।

शहरोंमें दूधकी माँग है जो पूरी नहीं हो रही है। असली दूध दुष्प्राप्य चीज है। इसलिये अपनी पूँजीवाले या दूसरोंसे ले सकनेवाले योग्य व्यक्ति गव्य व्यवसाय कर सकते हैं। ऐसे उत्साहियोंको नीचे लिखी पंक्तियाँ सूचनाके तौरपर हैं।

यदि आपको अपनी पूँजी है तो यह भी विचारिये कि, गव्य व्यवसायकी शिक्षा क्या आपको मिली है। क्योंकि, और व्यवसायोंकी तरह इसमें भी शिक्षणकी जरूरत है। यह सही है कि, हरेक किसान गव्य व्यवसायी भी है। पर यह भी सही है कि, किसानको इसकी शिक्षा जन्मसे ही मिलती है। वह गायके स्वभावको जानता है, उसकी जरूरतें जानता है और यह भी जानता है कि, उसके पास जो साधन हैं उनसे ही इन जरूरतोंको कैसे पूरा किया जाय। बछड़ोंका पालन भी वह जानता है और उनको रोग होने पर क्या करना चाहिये। तुमने पोथी पढ़कर या इस पोथीको ही पढ़कर जो जाना है वह उतना नहीं भी जान सकता है। पर उसे एक तरहकी शिक्षा सहज प्राप्त है। यदि तुम पोथियों से गायके बारेमें उससे ज्यादे जानते हो तो हो सकता है तुम उससे अच्छा काम करो। पर उसका थोड़ासा भी अनुभव तुम्हें सीखना होगा। इसलिये पूँजीवाले और सारा समय लगानेवाले आदमीको यह काम करनेके पहले किसी गव्यक्षेत्रमें काम करके कुछ अनुभव लेना चाहिये। ऐसे अनुभवसे ही कोई गव्यधंधाके लायक हो सकता है।

यह हो सकता है कि, कोई पूँजीवाला आदमी इस अनुभव की मददसे गव्य क्षेत्र खोले। इस तरह काम हो सकता है। पर वास्तविक प्रबन्धक और मालिककी राय एक होनी चाहिये। भविष्यके अच्छे गव्यक्षेत्रमें केवल मुनाफेका ध्यान नहीं रहेगा। इस बात को बढ़ावा भी नहीं देना चाहिये। जो लोग गव्यधन्धेसे मुनाफाखोरी करना चाहते हैं उन्हें मेरी सलाह है कि, वह इसे छोड़ दें और अपनी भूख बुझानेके लिये कोई दूसरा धन्धा करें।

पर ऐसे भी आदमी हैं जो जिसे मैं अच्छा गव्यधन्धा कहता हूँ—वह करना पसन्द करें। यदि तुम ऐसे आदमी हो तो अनुभव कर लेनेके बाद गव्यधन्धा चलानेके लिये अपनी योजना आप बना लोगे।

अच्छे गव्यधन्धेके लिये ऐसी ग्राहकोंकी जरूरत है जो दूधका उचित दाम दें, होड़ बाजीका दाम नहीं। ऐसे ग्राहक जितने हों उतना ही काम हो सकता है। तुम्हें अपने ग्राहकोंको समझाना होगा। वह मुनाफेवाले गव्यधन्धे और यहां बताये अच्छे गव्यधन्धेका भेद समझें। यदि तुम इस पुस्तकको पढ़ चुके हो तो इसके बारेमें जान गये होगे। तुम्हें अपने होनेवाले ग्राहकोंको भी समझाना होगा।

१२१६. **ग्राहकोंको कुछ बातें :** तुम्हें अपने ग्राहकोंसे कहना होगा कि, तुम उन्हें शुद्ध, पुष्टिकारक और असली दूध ठीक दाम पर दोगे। पर दरवाजे दरवाजे सवेरे सांझ घूमकर उनके सामने गाय दुहनेवाले से तुम्हारा दाम ऊँचा होगा। देखनेमें प्रकार भेद कुछ नहीं होगा। पर इस विषय पर हम आगे कहेंगे। अभी ग्राहकोंको यह संतोष है कि, गाय उसके सामने ही दुही जाती है। इसलिये कुछ गड़बड़ीकी बात नहीं है। पर तुम्हारा दूध दूरसे आवेगा। वह ताजा दुहा होगा, पर तुम्हारा दाम अधिक होगा। इसके बारेमें पूछा जायगा।

१२१७. **सस्ता दूध और गोवध :** तुम्हें समझाना होगा कि, जो चीज वह लोग खरीद रहे हैं वह असली दूध तो है पर जिसको भूतपूर्व शाही गव्य निपुण श्री स्मिथने "गायको खिझनेवाले तरीकेसे दूध उत्पादन" कहा है वह चीज है। इस दूधके कारण ग्राहकके सामने खड़ी गाय कसाईखाने चली जाती है। इस दूधका दाम सस्ता है, क्योंकि घूम घूम कर बेचनेवाला ग्वाला बिसुकने पर गायको नहीं पालेगा। ग्वालेका सस्तापन इसमें है कि, बिसुकने पर वह गाय कसाईको दे दे और तुम्हारे दूधके लिये नयी गाय खरीदे। बिसुकी गायको रखनेके लिये उसे जगह नहीं है। कसाईखाना उसकी गोशालाका ही अंग है। तुम्हारा होनेवाला ग्राहक सस्ता दूध

गायकी जानके बदलेमें पाता है। ग्राहक सस्ता दूध चाहते हैं और ग्वाले सस्ता गोपालन। इसके लिये कसाईखानेकी मदद लेते हैं। इतने पर भी यदि तुम्हारा ग्राहक सस्ता दूध ही चाहता है तो तुम उसे हाथ जोड़ दूसरे ग्राहक की खोज करो। पर तुम उसे इतनी जल्दी मत छोड़ो, उससे थोड़ी और बहस कर सकते हो।

**१२१८. भिटामिनहीन दूध :** अपने होनेवाले ग्राहकोंसे कहो कि, अभी तक पोषणका जो शास्त्रीय ज्ञान हो सका है, नारियलके तेल और गायके मक्खनका मुख्य भेद उसके भिटामिनके कारण है। ग्राहकके सामने दुहे सस्ते और असली दूधमें भिटामिन कम या कुछ भी नहीं है। हरी घास चरनेके कारण दूधमें भिटामिन होता है। यदि गायको पौष्टिक चारा पूरी तरह खिलाया जाय तो जितनी घास देनी चाहिये न भी देने से एक ब्यानके दूधमें कमी नहीं होगी। फेरी लगाकर दूध दुहनेवाला अपनी गायको पौष्टिक चारा पूरा खिला सकता है जिससे वह पूरा दूध दे। पर वह दूधको अमृत बनानेवाली चीज नहीं देता है। तुम इसका भरोसा दिलाओ। तुम अपने अच्छे गव्यधन्धेमें गायको हरा चारा काफी खिलाओ। क्योंकि, इसके बिना दूध न केवल भिटामिन हीन होगा, बल्कि, गायका स्वास्थ्य भी धीरे धीरे गिर जायगा। वह गर्भधारणके लायक नहीं रह जायगी। यदि गर्भ रह भी गया तो बच्चा अंधा और अल्पजीवी हो सकता है। तुम गायकी और उसकी संतानकी सेवा करना चाहते हो इसलिये तुम उसे हरी घास खिलाओ। इससे दूधमें भिटामिन पूरा होगा ही। आज अपने सामने दुहवाकर भी ग्राहक भिटामिन नहीं पा रहा है। भिटामिनके कारण तुम्हारे दूधका मूल्य अधिक होगा। इस बातचीतका तुम्हारे ग्राहक पर असर हो सकता है। तुम हमारे अच्छे गव्य धन्धेका तर्क यहीं खतम मत करो।

**१२१९. भूखसे मरनेवाला बछड़ा :** तुम अपने ग्राहकसे कहो कि, जिस बछरूको वह अपने सामने देख रहा है, वह निश्चय ही भूखों मर जायगा। अभी ही बछरू आधा पेट खाना पाता है। वह जल्दी ही मर जायगा। ग्वाला इस गायको दूधके लिये अपने यहां रक्खेगा, या दूसरी गाय ले आवेगा, या पन्हानेके लिये किसी दूसरे नवजात बछरूको पीना सिखावेगा। बछरूको मरने देते हैं, क्योंकि पहले महीनेमें वह दूधके सिवा और कुछ नहीं पचा सकता। ग्वाला उसे थोड़ा भी दूध देनेकी बात सोच नहीं सकता। उसे बूँद बूँद दूध बेचना है और वह बछरूको चाहता भी नहीं। कमसे कम जितना दूध चाहिये उतना

बछरू नहीं पाता, पहले महीनेमें दूधके सिवा दूसरी चीज नहीं पचा सकनेके कारण इस तरह वह भूखा रहता है। इससे उसे कोई न कोई रोग हो जाता है और वह मर जाता है। इससे ग्वालेको हानि नहीं होती। वह बछरूके खालमें भूसा भरा लेता है। इसे वह तस्वीर कहता है। दुहनेके समय वह इसे गायके सामने रखता है। इससे गाय पन्हा जाती है। यह सच है कि, वह ग्राहकके दरवाजे पर तस्वीर नहीं ले जा सकता। इस लिये दूसरे बछरूको पीना सिखाता है। इसमें सफलता नहीं मिलती तो वह इस गाय को घर पर ही रखकर दुहता है और तुम्हारे द्वार पर दूसरी गाय लाता है। ग्वाला ग्राहकके द्वार पर जितना दूध दुहता है उससे जादा बेचता है। वह घाटेमें नहीं रहता। वह बछरूको नफेके लिये भूखा रखता है, घाटेके लिये नहीं।

**१२२०. शहरके गायके दूधका असली रूप:** मान लीजिये कि, बछरू भाग्यका धनी है और जबतक गाय बिसुकती नहीं तबतक जीता रहता है। फिर भी उसे भूखों मरना होगा। ग्वालेको बछरूकी जरूरत क्या है? कुछ भी नहीं। बछरूका भी भविष्य अच्छा नहीं है। बचपनमें इतनी उपेक्षा होनेसे वह न तो अच्छा बैल बन सकता है और न अच्छी ओसर। असल बात यह है कि, शहरकी गायका बच्चा भूखों मरनेसे कभी बचताही नहीं। उन्हें पालनेकी कोई गुंजाइश नहीं। कलकत्तेमें वह धापा और बंबईमें चेमूर चला जाता है। तुम अपने भावी ग्राहकको धापा ले जाओ। वहाँ म्युनिस्पल ठेकेदार शाह वालेस कंपनीका अहाता दिखाओ। यहाँ मरे जानवरको लाशकी अंतिम क्रिया होती है। या खादी प्रतिष्ठानका हावड़ा बेलगछिया चर्मालय दिखाओ। इन स्थानोंमें मरे बछरू देख सकते हैं। यदि तुम बंबईमें हो तो चेमूर जानेवाली कूड़ा गाड़ीके महालक्ष्मी स्टेशन पर अपने ग्राहकको ले जाओ। यदि तुमने स्वयं ये स्थान नहीं देखे हैं तो देखो। तुम और तुम्हारे होनेवाले ग्राहकको जानना चाहिये कि, शहरका सस्ता पर असली दूध यह है :

(१) गो-भक्षक दूध—जो दूध गायको कसाईखाने भेज उसे खा जाता है।
(२) सत्वहीन दूध—जिस दूधमें भिटामिन नहीं है।
(३) बछरू-भक्षक दूध—जो दूध बछरूको खा जाता है और उसे भूखों मारता है।

यदि तुम्हारे ग्राहकको धीरज हो तो उसे कहो कि शहरके अच्छे प्रबन्धवाले

गव्यक्षेत्रमें बछड़े भूखे रक्खे जाते हैं या उन्हें कसाईके हाथ बेच दिया जाता है। बछरू पालनेकी लागत तुम जान चुके हो। यदि वह शहरमें पला है तो उसका खर्च इतना ज्यादे होगा कि, पालनके खर्चके आधे पर भी वह बिक नहीं सकता।

बछरूको बचानेके लिये उसका पालना सस्ता होना चाहिये। जहाँ चरनेका प्रबन्ध है वहीं यह हो सकता है। यही बात गाय पर भी लागू है। गाय और उसके बछरूको पालनेके लिये जमीन जरूरी है और यह सब खर्चकी चीज है। शहरसे दूरके गव्यक्षेत्रमें जिसे पूरी जमीन हो यह सब हो सकता है और गाय तथा बछरू बच सकता है। पर उसमें कुछ दूध तो लग ही जायगा। शहरमें गाय पालनेवाला न गाय और न बछरूकी जान बचा सकता है। दोनों समयसे पहले ही मर जाते हैं।

**१२२१. गव्यधन्धा चतुर्विध यज्ञ है :** इतनाही नहीं। उसे कहो कि शहरमें गोबर और गोमूत्र नष्ट हो जाता है। यह राष्ट्रकी हानि है। मूतकी हिफाजत करनी चाहिये और उसे खेतमें डालना चाहिये। उसी तरह गोबरको भी। जब यह सब किया जाय, गायको पूरी उमर तक जीने दिया जाय, बछड़ोंका पालन किया जाय और उन्हें खिलाया जाय, गोबर और गोमूत्रका कंपोष्ट बना कर खेत उपजाऊ बनाया जाय तो यह चौगुना यज्ञ होगा :

(१) गाय और उसकी संतान बच जायगी।

(२) धरतीको गोबर, गोमूत्र और कंपोस्ट मिलेगा।

(३) जमीनकी उर्वरतासे पौधोंकी सेवा होगी।

(४) दूध, ढोरके काम और अधिक उपजाऊपनसे मनुष्यका उपकार होगा।

यह चतुर्विध यज्ञ है। तुम्हारे अच्छे गव्य धन्धेसे यह सब होगा। पर इसके कारण दूध मँहगा हो जायगा। यदि तुम्हारे इस काममें तुम्हारे भावी ग्राहकोंको विश्वास हो और तुममें भी हो तो ऐसी मदतके बल तुम अच्छा गव्यधन्धा स्थापित करनेका साहस करो।

अपने भावी ग्राहकोंकी जरूरतके आधार पर तुम तखमीना करो। कितने दूधकी जरूरत है, यह निश्चित जान लेना चाहिये। इससे तुम गायोंकी संख्या निकाल सकते हो। तुम्हारे पसन्दकी नसल इसका आधार है।

**१२२२. अच्छे गव्यधन्धेमें लागतका हिसाब लगाना :** तुम्हें जितनी दुधार गाय रखना है उसमें उनके बिसुकनेके दिन और बुढ़ापेके खर्चका

भी हिसाब रखो। इस तरह तुम्हारे क्षेत्रमें एक बार दुधार और बिसुकी गायें जितनी होंगी उनकी संख्या जोड़ लो। साँढ़ और बछरू तथा चारा उपजानेके लिये लगे बैलोंको भी जोड़ो तो कुल पशुओंकी संख्या निकल आवेगी। उनके खिलानेका खर्च, उनकी सँभालकी मजूरी और ग्राहकोंको दूध पहुँचानेका खर्च, आकस्मिक रोगोंसे पशुओंकी मृत्यु, यह सब लागत खर्च होगा।

खूँटे पर खिलाने और कुछ चरानेमें जितनी जमीन लगेगी उसे जोड़ो। चारा उपजाने और छान छप्पर खड़ा करनेमें जितनी जमीन लगेगी, बाड़ा लगाने और गव्यक्षेत्रके लायक जमीन बनानेका खर्च भी रक्खो। इससे तुम्हें आरम्भिक पूँजी, खर्च और छीजनका अंदाज हो जायगा। एक तरफ दूधकी उत्पत्ति और पशुओंके बढ़े दाम और दूसरी तरफ खर्च, छीजन और सूदका पड़ता निकालो। तुम्हारे तखमीनेमें जमीनका दाम तो होगा ही। जगह पसन्द करो और यह मान करके कि वह तुम्हे मिल ही जायगी तुम अपना तखमीना उसी आधार पर बनाओ।

चतुर्विध यज्ञ पूरा करनेके लिये तुम्हें अपने ग्राहकोंको किस भावमें दूध बेचना चाहिये, यह तब तुम समझोगे। अपने भावी ग्राहकोंको अपना तखमीना दिखाओ। यदि वह मंजूर करें तो इन विषयोंके अनुभवी लोगोंसे इसे जँचाओ। तुम्हारे हरेक ब्यौरेका जाँच करनेवाला एक ही आदमी नहीं भी मिल सकता है। इसलिये अपनी योजना और तखमीनेके जाँचके लिये तुम्हें कई अनुभवियोंकी मदत लेनी पड़ सकती है। उनकी आलोचनाओंके अनुसार अपनी योजना दुहराओ।

इस सुधरे तखमीनेको फिरसे अपने ग्राहकोंको दिखाओ और उनकी मंजूरी लेकर काम शुरू करो। सावधानीसे आगे बढ़ो। थोड़ेसे शुरू करो और अनुभवके अनुसार काम फैलाओ। तुम्हारा यज्ञ, वचन और कार्य से शुद्ध हो। तब तुम्हारा प्रयास निष्फल नहीं होगा।

**१२२३. गाँवमें सुधारक :** मैंने तुम्हें अपने ग्राहकोंसे कहनेको जो कहा है वह वास्तवमें तुम्हारे लिये भी है। यदि तुम्हें कोई बाहरी ग्राहक न मिले तब भी कम से कम एक जरूर मिलेगा। वह स्वयं तुम हो। ग्राहकोंकी कमी से डरो मत। उस एक ग्राहकके लिये कोशिश करो। इतने पर भी तुममें सामर्थ्य है तो भगवानकी दया से तुम सफल होगे। यदि अपने आपके एकमात्र ग्राहकसे तुम सफल नहीं होते तो ग्राहकोंकी सूची व्यर्थ है। शक्ति तुम्हारे भीतर होनी चाहिये अपने लिये यज्ञ आरम्भ कर दो।

शहरकी बिक्री तुम्हारा ध्यान खींचेगी। यदि तुम्हें शहरकी मदत नहीं मिले तो अपना गाँव पसन्द कर लो और यज्ञारंभ करो। गव्यक्षेत्रकी जरूरत तुम्हें अपने लिये है। ग्राहक गौण हैं। ऊपर कहा गव्यक्षेत्र एक प्रकारकी मिश्रित खेती है। इस खेतीमें तुम्हारी पत्नी और बच्चे तुम्हारी मदद कर सकते हैं। तब तुम्हारा परिवार किसानोंका परिवार बन जाता है। तुम अपने गाँवमें शुद्ध रूपमें यज्ञ करते हो। यज्ञकी भावनासे गोपालन करो वह तुम और तुम्हारे परिवारका पालन करेगी। शर्त यही है कि, तुम्हारा परिवार भी गाय, धरती और पौधोंकी सेवा करता है। पौधा, धरती और पशुके साथ एकत्वका आनन्द तुम्हें होगा। तुम एक उत्तम स्वप्नको चरितार्थ होते देखोगे।

# अध्याय ३०

## गव्यक्षेत्रका हिसाब किताब

१२२४. **क्षेत्रके प्रबन्धका खातापत्र :** क्षेत्रके प्रबन्धके लिये कुछ खाता रखना होता है। यह सब प्रबन्धके हिसाबके कागज हैं। मुख्यरूपसे दूध उत्पादन और अच्छी तरह प्रबन्ध करनेमें इनसे मदत मिलती है।

ठीक तरहसे प्रबन्ध करनेमें इन बहियोंसे बहुत मदत मिलती है। क्षेत्र व्यवस्थापकको जानना चाहिये कि, उसे कितनी गायें हैं, कितनी अगले महीने ब्यायेंगी, कितनी आठ या नौ महीने बाद ब्यायेंगी। उसे प्रत्येक गायके बारेमें यह जानना चाहिये कि, कौन कितना दूध देती है। इससे वह उन्हें अच्छा खिला सकता है, जिससे जादे नफा हो। वह बता सके कि उसके पास कितने बछरू हैं और किस किस उमरके। उसे मालूम होना चाहिये कि उसके पास क्या क्या और कितना चारा है और आगे क्या चाहिये। तब वह साल भरकी जरूरतकी पुआल या सूखी घास जमा कर सकता है। ये और अन्य बहुतसे ब्यौरे तैयार रखना चाहिये जिससे कि, झंझट और खोज ढूँढ़के बिना यह सब तुरत मिल जाय। तरीका जान लेनेपर बहीखाता रखना आसान है। उचित क्षेत्र प्रबन्धके लिये यह अपरिहार्य है।

(क) नियंत्रण बही। नियंत्रण बहीके कई विभाग होंगे :—

(१) दुधार गायोंके लिये।
(२) बछियोंके लिये।
(३) बछड़ोंके लिये।
(४) गाभिन गायोंके लिये।
(५) खाली गायोंके लिये।
(६) ब्यान रजिष्टर।
(७) साँड़ और बैलोंके लिये।
(८) बड़ी सूची।

(ख) ठट्ठ बही ।

(१) गायोंके लिये ।

(२) बछियोंके लिये ।

(३) बछड़ोंके लिये ।

(४) सांढ़ोंके लिये ।

(ग) दैनिक दूध बही ।

(घ) चारा बही ।

(ङ) चारेकी आमद-खर्च बही ।

(च) घटना बही ।

(छ) दैनिक घटना, दूधकी उपज और चारेकी खपतको बही

(ज) मासिक रिपोर्टका फारम

(झ) मजदूरोंकी हाजरी बही ।

## १२२५. नियंत्रण बही

### विभाग—१. दुधार गाय रजिस्टर

(सिलसिला दाहिने पेज तक—

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| टट्ठ बही नं० | गायका क्रम नं० | गायका नाम | वंशावली ... | जन्म तारीख ... | उमर बिन्दुमें | बच्चोंकी गिनती बिन्दुमें |
| १४ | १६ | जानकी | ... | १५-२-३३ | ... | .. |
| | | | जननी—गोदावरी- { सुमित्रा··· | | | .. |
| | | | { नन्दी ··· | | | . |
| | | | जनक ···राजा | | | |

खानापूरी करनेके लिये सूचना। दाहिने कोने पर वर्ष लिखो और जिस महीने तक बही रक्खी गयी यह बतानेके लिये १, २, आदि। खानापूरी नीचे लिखे अनुसार :—

(१) ठट्ठ बहीवाला नम्बर लिखो।

(२) सालकी क्रम संख्या ठट्ठकी सबसे बूढ़ी गायसे शुरू कर लिखो। यह बही हर साल बदली जायगी इसलिये हर साल नया क्रमांक पिछले वर्ष मृत्यु, बिक्री या नयी बाछी दाखिल होनेसे शुरू होगा।

(३) गायका नाम। हर गायका नाम होना चाहिये।

(४) वंशावली। जननी तथा जनक और जितने पिछले पुरखोंका नाम मालूम हो लिखो। (५) जन्म तारीख।

(६) उमर। इसके लिये बिन्दु लगाओ। इससे वर्ष पूरा होने पर वर्षमें कभी सिर्फ बिन्दु बढ़ा देनेसे काम चल जायगा, संख्यामें काटछाँटकी जरूरत नहीं होगी। इस उदाहरणमें उमर ९ वर्ष है।

## नियंत्रण बही

### विभाग—१. दुधार गाय रजिस्टर

—बायें पेजके सिलसिलेमें)

............१९४३ तक । १. २. ३. ४. ५.............

| ८ | ९ | १० | ११ | १२ |
|---|---|---|---|---|
| ब्यांतका वर्णन | फलनेकी तारीख | किसने फलाया | ब्यानेकी तारीख | खाली या गर्भका महीना |
| (१) लालमनी । जन्म तारीख······<br>दूध २७ मन २९ सेर ।<br>सबसे ज्यादा दिनमें ५ सेर । | | | | |
| (२) सुकुमार । जन्म तारिख······<br>दूध २९$\frac{1}{4}$ मन ।<br>सबसे जादा दिनमें ६ सेर । | | | | |
| (३) भारती आदि आदि । | | | | |
| (४) सुन्दरी । | | | | |

(७) बच्चोंकी संख्या बिन्दुमें ऊपर ६ नम्बरमें कहे कारणोंके अनुसार बच्चोंके लिये बिन्दु लगाओ । इस उदाहरणमें ५ बच्चे हैं ।

(८) ब्यांतका वर्णन । इस जगह बछड़ेका नाम और जन्म तारीख लिखो । पूरे ब्यांतमें कुल कितना दूध हुआ । दूसरे महीनेके किसी दिन सबसे जादा कितना दूध हुआ । नये बच्चोंका वर्णन लिखनेकी जगह रखनी चाहिये ।

(९) गाय कब फली । तारीख लिखो ।

(१०) फलानेवाले सांढ़का नाम ।

(११) जब गाय ब्याते तब उसकी तारीख लिखो खाना नं० ८ में बछड़ेका नाम ।

(१२) खाली या गर्भका महीना । लिखनेके समय खाली महीना पड़ी लकीरमें (- - -) और गर्भका शून्य में (०००) ।

## १२२६. नियंत्रण बही

### विभाग—२. बछिया रजिस्टर

........१९४३ तक। १. २. ३. ४.......

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नं० | नाम | वंशावली | जन्म तारीख | उमर | फलनेकी तारीख | किसने फलाया | खर्च |

(१) ढ्ढ बहीके अनुसार बछरूका नम्बर।

(२) बछरूका नाम। जन्मके बाद ही उसका नामकरण हो।

(३) वंशावली। जननी, जनक और उनके पुरखोंका नाम जहां तक मालूम हो लिखो।

(४) जन्म तारीख लिखो।

(५) एक एक महीनेके लिये एक बिन्दु लिखो। वर्ष पूरा होने पर बारहों बिन्दुओंको एक लकीरसे इस तरह जोड़ दो :

. . . . . . . . . . . .

. . . . . . . . . . . .

. . .

ऊपरके लकीर और बिन्दुका अर्थ २ वर्ष ३ महीने हुए।

(६) फलनेकी तारीख। बछिया जब बड़ी होकर फले तब उसकी तारीख लिखो।

(७) किसने फलाया। सांड़का नाम लिखो।

(८) खर्च। गायकी बहीमें नाम बदल दिया गया या बेच दी गयी यह लिखो। तारीख दो।

## १२२७. नियंत्रण बही

### विभाग — ३. बछड़ा रजिस्टर

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
|---|---|---|---|---|---|
| नं० | नाम | वंशावली | जन्म तारीख | उमर | खर्च |

(१) से (५) तक बछियोंकी तरह।

(६) बेचा गया या बधिया कर दिया गया या साँड़ बहीमें दर्ज किया गया, इस खानेमें लिखो।

## १२२८. नियंत्रण बही

### विभाग—४. गाभिन गाय रजिस्टर

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नं० | नाम | उमर | बच्चे | फलनेकी तारीख | फलानेवाला | जिस तारीख ब्यानेकी उम्मीद है | ब्यानेकी तारीख | दिनकी सख्या | बछिया या बछड़ा |

(१) वशावली रजिस्टरका नं० लिखो।

(२) नाम।

(३) गायके रजिस्टरके अनुसार उमर।

(४) ,, ,, ,, बच्चे लिखे जाँय।

(५) फलनेकी तारीख।

(६) फलानेवाला। साँढ़का नाम लिखो।

(७) जिस तारीखको ब्यानेकी उम्मीद हो। फलनेके तारीखमें २८२ दिन जोड़ो। पैरा १०१६ के अनुसार तारीख लिखो।

(८) ब्यानेके दिनकी तारीख लिखो।

(९) दिनकी संख्या। फलनेके दिनसे ब्याने तक जितने दिन लगे हों उसकी संख्या लिखी जाय।

(१०) बछिया या बछड़ा क्या हुआ, लिखो।

टिप्पणी :— ब्यानेके साथ गाय खाली हो जाती है। इस रजिस्टरमें उसके नामका अब महत्व नहीं रहता। इस रजिस्टरसे उसका नाम हटाना नामके नीचे मोटी लकीर खींच कर बताया जाता है। नाम काटा नहीं जाता। यदि गर्भ नहीं रहा और वह गरम हो गयी और फलायी गयी तो फलानेकी तारीख फिरसे लिखी जाती है। पहली खानापूरीके नीचे लकीर खींच उसे रद्द कर दिया जाता है। दुबारा खानापूरी करने पर यह टिप्पणी करनी होती है कि, दुबारा फलो।

## १२२१. नियंत्रण बही

### विभाग—५. खाली गाय रजिस्टर

..........१९४२ तक। १. २. ..........

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| नं० | नाम | उमर | बच्चे | ब्यानेकी तारीख | खाली महीने | फलनेकी तारीख |
| | | | | | | |

(१) से (४) तक गायके रजिस्टरसे लिखो।

(५) जैसेही ब्याये उसका नाम गाभिन गाय रजिस्टरमें इसमें लाओ। पिछले ब्यानेकी तारीख लिखो।

(६) खाली महीने पड़ी लकीरमें लिखो — — । जिससे कि, उसके खाली महीनेका पता नजर पड़तेही मालूम हो जाय।

(७) फलनेकी तारीख। तारीख लिखो। फलने पर उसका नाम गाभिन गायके रजिस्टरमें लिखा जाता है (विभाग नं० ४)। नामकी बदली काट कर नहीं, नामके नीचे मोटी लकीर खींचकर बतायी जाती है।

## १२३०. नियंत्रण बही

### विभाग—६. ब्यान रजिस्टर

( सिलसिला दाहिने पेज तक—

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| नं० | नाम | उमर | बच्चे | ब्यानेकी तारीख | दूध देनेके— | |
| | | | | | १ | २ |
| | | | | | १. मन सेर | १. मन सेर |
| | | | | | २. मन सेर | २. मन सेर |

(१) से (५) गायके रजिस्टर से लिखो।

(६) दूध देनेके महीने १, २, ३ आदिमें बाँटे जाते हैं। ये दूध देनेके महीने बताते हैं। इस खातेको दो पंक्तियोंमें भरना होता है। पहली पंक्ति महीनेके दूधकी तौल बताती है और दूसरी उस महीने तकका कुल दूध। जब दूध देना बन्द हो जाता है तब कुल दूधका वजन ७ वें खानेमें लिखा जाता है।

## नियंत्रण बही

### विभाग—६. ब्यान रजिस्टर

(—बायीं पेजके सिलसिलेमें)

·········१९४३ तक। १. २. ३. ४.·······

| ६ | | | | | | ७ | ८ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| महीने | | | | | | कुल दूध | दिन |
| ३ | ४ | ५ | ६ | ७ से | १२ | | |
| १. मन सेर | | | | | | | |
| २. मन सेर | | | | | | | |

(७) ब्यानका कुल दूध।

(८) जितने दिन दूध दिया उसकी संख्या लिखी जाती है।

## १२३१. नियंत्रण बही

### विभाग—७. सांड रजिस्टर

………तारीख तक

| १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|
| नाम | वंशावली | जन्म तारीख | उमर |

(१) से (३) तक ठट्ठ बहीसे लिखो।
(४) उमर विन्दुओंमें लिखो।

हर सांढ़के लिये एक पन्ना रहता है। उस पन्नेमें सांढ़के फलानेका लेखा और उसका परिणाम नीचेकी तरह लिखा जाता है :

| १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|
| फलानेकी तारीख | फलायी गाय | ब्यानेकी तारीख | फिर फलानेकी तारीख |

गाय फलाने पर इस पन्नेकी खानापूरी की जाती है। गायका गाभिन होने और ब्याना इसलिये लिखा जाता है कि फलाना सफल हुआ। यदि गाय फिर गरम हो जाय तो दुबारा फलाने की तारीख १ और ४ दोनों खानोंमें लिखी जाती है।

## १२३२. बैल रजिस्टर

………तारीख तक।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
|---|---|---|---|---|
| न० | नाम | उमर | वंशावली | खर्च |

इसकी खानापूरी ठट्ठ बहीसे होती है।

## १२३३. नियंत्रण बही

### विभाग—८. बड़ी सूची

इसमें ठट्ठके सभी पशुओंका नाम लिखा जाता है। उनके दर्ज करनेकी तारीख भी लिखी जाती है। मृत्यु, जन्म, बिक्री या और कारण से जब कुछ परिवर्तन होता है तब उस तारीखमें उसका सुधार किया जाता है।

हर बार दर्ज करनेके समय पशुका नया क्रमांक लिखा जाता है और परिवर्तनके लिये टिप्पणी लिख दी जाती है।

| | दर्ज होनेकी तारीख | दर्ज होनेकी तारीख | दर्ज होनेकी तारीख | आदि |
|---|---|---|---|---|
| | १-१०-४० | २०-११-४० | २५-१२-४० | |
| गायोंका नाम | | | | |
| वीणा | १ | १ | १ | |
| नर्मदा | २ | मर गयी | मर गयी | |
| जमुना | ३ | २ | २ | |
| लक्ष्मी | | | ३ | |
| | | | खरीदी गयी | |
| बछियोंका नाम | | | | |
| बछड़ोंका नाम | | | | |
| सांड़ोंका नाम | | | | |

१२३४. ठट्ठ बही

बिभाग—१. गायोंके लिये पृष्ठ संख्या........

नम्बर और नाम ........................जनक............................ { जनक और नस्ल, जननी और नस्ल, दूधकी उपज, रत्तल, दूध देनेके दिन }

नस्ल ..............................

जननी और नस्ल.................... { जनक और नस्ल, जननी और नस्ल, दूधकी उपज, रत्तल, दूध देनेके दिन }

गायके दूधकी उपज : दूधकी उपज, रत्तल
दूध देनेके दिन
ब्यानेकी तारीख

जन्म तारीख. ..........स्थान.............

खरीदनेकी तारीख........खरीदनेवालेका नाम........जिससे खरीदा ........दाम....खरीदनेके समय उमर.....

खरीद दाम ..................उसके बादकी कीमतें { वर्ष / रुपया }

टिप्पणी :—यह बही स्थायी है, इसलिये हिफाजतसे रखनी चाहिये। नियंन्त्रण बही हर साल बदलती है और गोशालामें रक्खी जाती है। ठट्ठ बही दफ्तरमें रहती है। नियन्त्रण बही से इसमें महीनेमें एक बार दर्ज होता है।

## ठट्ठ बही

### विभाग—२. बछियोंके लिये

इसका फारम गायकी तरहका ही है। इसमें केवल बछियाँ दर्ज होती हैं जो व्याने पर गायकी बहीमें बदल दी जाती हैं।

## ठट्ठ बही

### विभाग—३. बछड़ोंके लिये

बछियोंकी तरह ही।

## ठट्ठ बही

### विभाग—४. साँढ़के लिये

साँढ़ रजिस्टरकी तरह।

(देखो नियन्त्रण बही, विभाग—७)

## १२३५. दैनिक दूध बही

| १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|
| गायका नाम | ब्यानेकी तारीख | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० . . . . . . . . . २९ ३० | कुल |

(१) गायका नाम।

(२) गायके ब्यानेकी तारीख।

(३) कच्ची बही (दैनिक) से दूधकी दैनिक उपज लिखी जाती है। कच्ची दैनिक बहीमें सबेरे और शामका दूध और दिन भरका दूध लिखा जाता है। इसमें केवल दिनका मोट दिया जाता है। एक फुलसकेप आकारके कागजकी लंबाईमें ३० दिनोंकी खानापूरी हो सके इसलिये खाने छोटे बनाये जाते हैं। छोटी जगहमें दूधका वजन एक लाइनमें सेरमें लिखा जाता है और पाव, एक दो आदि अंकमें सेरके ऊपर लिखा जाता है। जैसे ५^२ का माने '५ सेर २ पाव अर्थात् '५॥ सेर हुआ। उसी तरह ३^३ या ४^१ का अर्थ ३ सेर १२ छटाक और ४ सेर ४ छटाक है। भिन्न या टुकड़ कच्ची बहीमें नहीं लिखा जाता इसलिये इसमें भी नहीं लिखा जाता। उसकी उपेक्षाकी जाती है। पावके भिन्नकी उपेक्षा करनेके कारण दुहनेके समय दूधका मोट घटा बढ़ा लिया जाता है।

(४) महीनेके अंतमें प्रति गायका महीनेका मोट लिखा जाता है। दिनके खानेके अंतमें दिनका मोट लिखा जाता है। महीनेके अंतमें अंतिम दर्जगी दिनोंका मोट या महीनेका मोट रहता है।

## १२३६. चारा बही

| १ | २ | ३ | ४ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | ५ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान | तौलकी इकाई | दर | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | १७ | १८ | १९ | २० ........ २९ ३० | कुल |
| पुआल | मन | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| उड़द | सेर | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |

(१) इसमें सामान लिखा जाता है ।

(२) दिन दिनका खर्च मन या सेरमें लिखा जाता है ।

(३) सामानकी इकाईकी दर लिखी जाती है ।

(४) एक पन्नेमें महीनेके ३० खाने भरे जाते हैं । दूधकी उपज लिखनेमें जगह बचानेके लिये जो उपाय किया जाता है वही यहाँ भी है । पूरा और चौथाई सेर या मन दर्ज किया जाता है । खर्च इस तरह लिखा जाता है कि इस तरहकी खानापूरी हो सके । भिन्न नहीं लिखा जाता है । सारे ठहके लिये चारा एक साथ लिया जाता है, इसलिये सेर या मन जो इकाई व्यवहारमें हो उसकी चौथाईसे कम भिन्न नहीं दिया जाय । महीनेके अंतमें चारेकी गोदाम बहीसे जाँच कर इस बहीसे खर्चका हिसाब निकाला जाता है ।

(५) महीनेके अंतमें हर सामानका मोट लिखा जाता है ।

## १२३७. चारेकी आमद-खर्च बही

यह बही साधारण व्यापारी बहियोंकी तरह ही है। इसमें आमदनी खर्च और मालकी बाकी लिखी जाती है। चारा बहीसे इस बहीकी जाँच की जाती है।

## १२३८. घटना बही

| १ | २ |
|---|---|
| तारीख | घटना |

(१) तारीख लिखी जाती है।

(२) दैनिक बही से (जिसमें दूध और चारा भी दर्ज होता है) लेकर दिनमें जो कुछ हुआ, सो सब इसमें लिखा जाता है। जन्म, मृत्यु, रोग, इलाज, डाक्टरका बुलाना या कोई विशेष घटना दर्ज की जाती है। इससे मासिक रिपोर्ट लिखी जाती है, जिसमें घटनोंका भी बर्णन रहता है।

## १२३६. दैनिक घटना, दूधकी उपज और चारेकी खपतकी बही

(१) हर गायके नाम से उसका दूध दर्ज किया जाता है। एक दिनके लिये नीचे लिखे अनुसार ३ खाने होते हैं :—

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| गायका नाम | तारीख | स० | शा० | कु० | स० | शा० | कु० |

स० शा० कु० में सबेरे, शाम और कुल दूध लिखा जाता है। सेर और पावसे लिखनेका कायदा है।

(२) चारा रोज रोज लिखा जाता है। चारा बही की तरह जो दैनिक बहीके इस विभाग से लिखा जाता है।

(३) घटनाकी दैनिक बही।

दैनिक बहीका एक भाग रोजकी घटना लिखनेके लिये अलग रहता है। यह घटना बही में लिखनेके लिये होता है।

यह कच्ची बही है। इसे पैंसिलसे लिख सकते हैं, क्योंकि, सभी खानापूरी दूसरी बहियोंमें दर्जकी जाती है।

## १२५०. मासिक रिपोर्टका फार्म

.........महीनेकी रिपोर्ट ।

(१) घटना बही ।

————

————

————

(२) दूधकी उपज ।

| १<br>गायोंका नाम | २<br>ब्यानेकी तारीख | ३<br>पहलेकी उपज | ४<br>इस महीनेकी उपज | ५<br>महीनेके अंत तक उपज | ६<br>फलनेकी तारीख |
|---|---|---|---|---|---|

१ से ६ खाना तक साफ है। खाना ४ के नीचे सभी गायोंकी महीनेकी उपजका मोट रहता है। इस मोटको जितने दिन दूध दुहा गया उतनेमें बाँट देते हैं। इससे प्रति गायका प्रति दिनका औसत मिलता है, जो उसी महीनेका औसत होता है

(३) चारेका खर्च ।

| सामान | महीनेका खर्च | परिमाण | दर | मूल्य |
|---|---|---|---|---|
| ———— | | | | |
| ———— | | | | |
| ———— | | | | |
| ———— | | | | |
| कुल— | ———— | ———— | ———— | ———— |

यहां महीनेमें चाराके कुल खर्चका मूल्य दिखाया जाता है ।

(४) प्रति सेर दूधकी लागत।

इस जगह दूधकी कुल उपज और चारे आदिका खर्च लिखा जाता है और दूधकी उपज पर पालनकी लागत बैठाकर दिखायी जाती है।

---

(५) ठट्ठकी हालत : बड़ी सूचीका मोट।

| | | होनेवाले बच्चे |
|---|---|---|
| गायोंकी कुल संख्या। | बछड़ोंकी संख्या। | जनवरी। |
| दुधार गायोंकी संख्या। | बछियोंकी संख्या। | फरवरी। |
| गाभिन गायोंकी संख्या। | साँढ़ोंकी संख्या। | मार्च। |
| खाली गायोंकी संख्या। | बैलोंकी संख्या। | अप्रैल आदि। |

---

जैसा ऊपर दिखाया गया है मासिक रिपोर्टका पाँच भाग रहता है। कागजकी नाप और खाना ठट्ठके हिसाबसे रखना चाहिये। एकसे अधिक तावकी जरूरत हो सकती है। बड़े ठट्ठके दूधकी उपज ही लिखनेके लिये कई तावकी जरूरत हो सकती है।

प्रबन्धके लिये जो सामग्री चाहिये इससे मिल जायगी। यहाँ दूध उत्पादनकी कुल लागत नहीं लगायी गयी है। गव्यक्षेत्रके प्रबन्धकी बहियोंसे दूध उत्पादनमें खिलानेका खर्चका पता चलता है।

---

## १२४१. मजदूरोंकी हाजरी बही

यह बही दफ्तरमें रक्खी जाती है। एक हाजिरा बही क्षेत्रमें रहती है।

## अनुक्रमणिका ( निर्देशिका )

[ दोनों खंडोंकी ]

## ऊ



## ऋ



## ए



## ओ



## औ



## क

च

झ



ट



ठ

## थ

### फ

## व

## स

## शुद्धिपत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १२ | ८ | बढ़ती प्रतिफल | बढ़ते प्रतिफल |
| १३ | २१ | और अपना | और अपने |
| १४ | ६ | प्राणियों व समाजमें | प्राणियों तथा समाजमें |
| १५ | १ | कृतिम | कृत्रिम |
| १५ | २२ | आन्धी | आँधी |
| २१ | १६ | फंगसर्ड्रो | छत्राकर्ड्रो |
| २१ | २३ | बीमारीका | बीमारीके |
| २८ | ७ | पुष्टिकारी | पुष्टिकारक |
| २८ | १४ | हरी व | हरी तथा |
| ३५ | ४ | यही | यही बात |
| ३५ | २२-२३ | मनुष्यका सारे पशु जगतसे | सारे पशु जगतसे मनुष्यके |
| ३८ | ६ | पूरी | पूरा |
| ४५ | १५ | शास्त्री | शास्त्रीय |
| ४५ | २९ | जैसे | जैसी |
| ४६ | १७ | उसके | उसकी |
| ४९ | १५ | पाये | पायी |
| ५० | १६ | जनसंकुल और उद्योगो व कृषि प्रधान | जनसंकुल, उद्योगी और कृषि प्रधान |
| ५१ | १४ | बड़े लाटका | बड़े लाटके |
| ६२ | १५ | छीण | क्षीण |
| ६६ | १ | झूमके | झुमके |
| ६७ | २३ | बुढ़े | बूढ़े |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ६८ | १२ | गिनना | गिनाना |
| ६९ | १२ | कुह्मार | कुम्हार |
| ६८ | २८ | उपजका | उर्वरताका |
| ७० | २ | तत्वोंको | तत्वोंको |
| ७२ | १७ | यह आबादी | यहांकी आबादी |
| ९४ | १९ | चोकड़ | चोकर |
| ९९ | २ | कुटाइ | कुराइ |
| १०२ | २७ | खेरी | खीरी |
| १०७ | ८ | बिशुखती | बिसुकती |
| १०९ | १६ | बड़ी होती है | बड़ा होता है |
| ११३ | २० | अदूर दृष्टिवाले | अदूर दृष्टिवाली |
| ११९ | १३ | लिये जादे नहीं | लिये नहीं |
| १२१ | १३ | शाही कमीशन | शाही कमीशनने |
| १३६ | १३ | दुध्धी | दुद्धो |
| १३९ | १९ | भुल | भूल |
| १५१ | २८ | विभाजमें | विभाजनमें |
| १५२ | १ | मूलकरण | मूलकर्ण |
| १५६ | २७ | मामूलीके | मामूलीकी |
| १६३ | २८ | होते हैं तो | होते तो हैं |
| १७४ | २९ | पालनेवाले | पालनेवाली |
| १८३ | २४ | भूखे मरती | भूखी मरती |
| १८८ | २३ | चाराके | चारेके |
| २०१ | १२ | फिया होता | किये होते |
| २१२ | १९ | फायदा | कायदा |
| ३२९ | २५ | राहिरा | रोहेड़ा |
| ३४३ | २० | चुल्हे | चूल्हे |
| ३७९ | १४ | पास-पड़ोसीके | पास-पड़ोसके |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३९४ | ५ | आदिका | आदिके |
| ३९४ | ७ | अर्थमें | अथमें |
| ३९५ | १० | इसे | इसका |
| ४०१ | ६ | खेती | खेत |
| ४१० | १ | पूसामें | पटनेमें |
| ४११ | २४ | चारेका | चारेको |
| ४११ | २७ | जमीन्दारोंके | जमीन्दारोंकी |
| ४८१ | २ | सूखी सामान | सूखा सामान |
| ४९७ | १२ | पुआलका | पुआलके |
| ५०७ | १४ | गायके | गायको |
| ५११ | ६ | हरा चारा | हरे चारे |
| ५८९ | १४ | कोल्लुक्कटाई खास | कोल्लुक्कटाई घास |
| ५९० | १२ | सबसे बहले | सबसे पहले |
| ७७७ | ९ | तापकी क्रिया | हवाकी क्रिया |
| ८२३ | १० | केन्द्रोपसारी | केन्द्रापसारी |
| ८८७ | १०, १२, १५, २४ | कूर्पर | कर्पर |
| ८९७ | •४ | सीरका | सीरिका |
| ८९९ | १७ | सीरका | सीरिका |
| ९१८ | ११ | Gastroconemius | Gastrocnemius |
| ९१८ | चित्र १०६ | अस्थियाँ | पेशियाँ |
| ९२४ | २ | श्वाश नलिका | श्वास नलिका |
| ९२७ | १६ | ग्रहणा | ग्रहणी |
| ९३३ | ३ | महामात्रिका | महाधमनी |
| ९४२ | १ | अनुवीक्षण | अणुवीक्षण |
| ९४२ | २७ | वाया रसकुल्या | वामा रसकुल्या |
| ९५३ | १० | दछे | छेद |
| ९७९ | २६ | कंडरासनी | कंठरासनी |

शुद्धिपत्र : ३॥)

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १०१५ | १४ | मादक | निद्राकारी |
| १०१६ | ९ | प्रतिशत | प्रति हजार |
| १०५१ | २५ | सर्वांगीन | स्वभावज |
| ११८४ | ३ | नेभिल | नेभेल |
| ११९४ | २३ | भरनोमियाँ | भरनोनियाँ |
| १२११ | २४ | स्तनन्ध्यों | स्तनन्धयों |
| १२१८ | १५ | नौंक | नोक |
| १२४० | १ | थियार्सेनामाइन | थियोआर्सेनामाइन |
| १२४७ | १९ | माता | गिल्टी |
| १२६८ | १ | वहिस्तवक् | बहिस्त्वक् |
| १३९३ | ७ | कूर्पर | कर्पर |
| १४०५ | १० | श्वास-नालिका | श्वास-नलिका |
| १४०५ | २२ | क्षत | क्षय |